भारती भानु भारते



मेरी आत्मकहानी

आचार्य चतुरसेन

चतुरसेन साहित्य समिति
ज्ञानधाम, शाहदरा-दिल्ली ३२

प्रथम संस्करण, मार्च, १९५३

मूल्य सोलह रुपए

चन्द्रसेन, मंत्री चतुरसेन साहित्य समिति [illegible]
हरिहर प्रेस, चावड़ी बाजार, [illegible]

प्रथम सस्करण, माच, १९८३

मूल्य सोलह रुपए

च द्रसेन, मत्री चतुरसेन साहित्य समिति [illegible]
हरिहर प्रेस, चावडी बाजार, [illegible]

आत्मनिवेदन

मैं अभाव नक्षत्र में जन्मा। ज्योतिष में अभाव और सम्पन्न नक्षत्र है कि नहीं यह मैं नहीं जानता। ज्योतिष मैंने पढ़ा नहीं। परन्तु मैं इतना जानता हूँ कि मैंने जबसे होश सम्भाला तबसे अब तक जीवन में सदा अभाव ही का अनुभव किया। मैं एक [illegible] परिवार का सदस्य तो हूँ ही, परन्तु विद्यार्थी जीवन में वर्षों तक तीन रुपया माहवार पर गुजरान करनी पड़ी। फिर ऐसे भी अवसर आए कि लाख पचास हजार रुपए एक एक दिन में हाथ में आए परन्तु अभाव तो गया ही नहीं, वह तो सदा वैसा ही बना रहा। उसके लिए परिजनों की घृणा का पात्र बना, और मानापमान की तो बात ही क्या है। जहां अभाव ही अभाव है वहां अपमान तो पद पद पर है। सम्पन्न बनने को बहुत यत्न भी किए, पर सब व्यर्थ। अब भी करता हूँ, पर सब व्यर्थ। अब जीवन की सन्ध्या में सफलता भी क्या? जब जन्म ही उस नक्षत्र में हुआ है तो उससे उद्धार कहां।

इस अभाव के समुद्र में शाश्वत रूप से डूबे रहने का कारण है। मेरे जीवन ने कभी भी मेरे आदर्श को स्पर्श नहीं किया। मैं जहाँ था वहाँ मेरी दृष्टि थी ही नहीं। जहां दृष्टि थी, वहां पहुँच नहीं हो सकती थी। मेरे साहस का दोष नहीं। परिस्थिति का [illegible] भार हो गया था। एक कल्पना कीजिए—हाथ में एक भी पैसा नहीं है। आपकी वृत्ति तो आकाशी है, नियमित तो है नहीं। कल राशन कहां से आयेगा, इसकी चिन्ता में परेशान पत्नी खोई खोई सी घर में इधर उधर घूम रही है। गाय, भैंस भूखी खड़ी हैं, कल भी भूसा नहीं मंगाया जा सका था। आज भी नहीं। [illegible] दिया था, सब फ़ाकों और तरकारी साफ कर गए। नौकरों का वेतन भी देना है। बच्चों की फीस भी है। रजाइयां नहीं भरी गईं। [illegible] खत्म हो गई है, तीन दिन से पड़ोसियों से मांगकर काम चलाया जा रहा है। आज आगए हैं, दो चार मेहमान। [illegible]। उनके जलपान तो अभी चाहिए, [illegible] का भी समय नहीं। मैं मेहमानों से गपशप और खुशगवार [illegible] में मस्त हूँ। पत्नी को भी उस हास्य वार्ता में हिस्सा लेना ही पड़ता है, पर उनका मुख से हृदय तक सब सूखा है। क्या करें, समझ नहीं पड़ रहा। मुझसे [illegible] समझती हैं। जानती हैं, मैं कुछ भी सहायता दे ही नहीं सकता। अभाव मुझसे भी छिपा नहीं है। पर पत्नी के साहस, सामर्थ्य और व्यवस्था पर निर्भर हूँ। प्रतीक्षा खूब बढ़िया सा जलपान आने की प्रतीक्षा में हूँ। मैं खुश हूँ, मेहमानों की बदौलत मुझे भी मिल जाएगा। किन्तु कहाँ से? इस बात से मेरा कोई सरोकार नहीं। अब आप इसी प्रकार

मुझे दो करोड रुपया दे दीजिए, तो निश्चय ही [illegible]
और एक सप्ताह बाद वही दृश्य आ उपस्थित होगा। [illegible]
सोचने विचारने की आवश्यकता नहीं है, [illegible]
रहती ही है। इसी से मै कहता हूँ, कि [illegible]

पचास बरस पूरे हो रहे है कि [illegible]
मेरी कलम मे काफी स्याही है और मेरी [illegible]
गो आँखो की ज्योति क्षीण हो चुकी। वे [illegible]
सो सो फुलिस्केप शीटस रगकर ढेर कर देता था। [illegible]
करने की इच्छा होने लगती है। परन्तु हृदय मे अब [illegible]
रहा है। मस्तिष्क मे विचारो के दल बादल भरे है। [illegible]
आज यह मै अपने जीवन का पसठवा वसन्त [illegible]
बरस जिन्दा रहने दिया तो बडे बडे इरादे रखता हूँ। [illegible]

कारोबार मेरा सब चौपट है, आमदनी का [illegible]
समय पर जुटा सकूगा—इसका भरोसा नही है। [illegible]
जमा खर्च इन्ही हाथो से किया था। पर [illegible]
पाया था। साहित्य ने आज मुझे भूखा मार [illegible]
का मेरा प्रत्येक क्षण साहित्य मे डूबा हुआ है। [illegible]
सो पाता हूँ। मेरी टेबुल और चारपाई [illegible]
गया तो जा लेटा। वहा से थका तो फिर टेबुल पर। [illegible]
भूल गया हूँ। परन्तु जहा तक सुख का प्रश्न है, [illegible]
सकता हूँ, कि न राजा न महाराजा न [illegible]
न आज के युग के राष्ट्रपति उस आनन्द [illegible]
जो मै अपनी लेखनी से स्याही बखेरने मे करता हूँ। [illegible]
नेहरू को महाराज्यो के सत्कार मे [illegible]
पदयोजना मे ही मिल जाती है।

पेट की भूख मुझे चलविचल जरूर [illegible]
की घोषणा करती हुई अनुकूल उत्तर [illegible]
मुझे बगले झाकनी पडती है। पत्नी की ओर [illegible]
झुक जाती है। जो मर्द होकर घरगिरस्ती नही चला [illegible]
न सही मर्द, साहित्यकार तो हूँ। कारोबार [illegible]
से क्या ? ये सब बाते व्यर्थ [illegible]
अच्छा नाप तोल कीजिए, गिनिए मेरी साहित्यसम्पदा [illegible]

'आजकल' में मेरा एक लेख छपा था—'मैं उपन्यास कैसे लिखता हूँ।' इस पर कुछ साहित्य-बंधुओं ने कहा कि मैं अहंवादी हूँ। मैं उनके इस इलजाम पर गौर करता हूँ। स्वीकार करता हूँ कि मैं अहंवादी हूँ, साथ ही यह भी निवेदन करूँगा कि अहंवादी ही सही साहित्यकार रह सकता है। मेरे उस लेख में मेरा अहं नैसर्गिक रूप में था, जिसका स्पष्ट यह अभिप्राय था कि मेरी रचना-प्रणाली में मेरा ही हाथ रहा है। मुझे आत्मरंजन मिला है, किसी दूसरे का नहीं। यह बहुत गैरवाजिब बात हो जाती है। इसलिए इसीलिए आज तक हमारे साहित्य समालोचक कुछ मुझे कहानीकार मानते हैं न उपन्यासकार। यद्यपि मेरी चार सौ से ऊपर कहानियाँ प्रकाशित हैं, जिनमें अनेक कितनी ही बरसों से विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं। कहना चाहूँ तो कह सकता हूँ कि आज के तरुण तो उन्हें विद्यालयों में पढ़ ही रहे हैं, उनके पिता आदि भी अपनी छात्रावस्था में पढ़ी थीं। आने वाली पीढ़ी तो पढ़ेगी ही। उपन्यासों की संख्या भी २५-३० है जिनमें वैशाली की नगरवधू, सोमनाथ और वयं रक्षामः जैसे उपन्यास भी हैं। परन्तु हमारे मित्र समालोचकों ने उन्हें देखा ही नहीं है। जब भी कहानीकारों और उपन्यासकारों की चर्चा होती है, वे भूलकर भी मेरा और मेरी रचनाओं का उल्लेख नहीं करते। औरों की बात दूर, श्री गुलाबराय और श्री हजारीप्रसाद जैसे साक्षर समालोचक भी इस सम्बन्ध में सर्वथा मौन हैं। कहना चाहूँ तो कह सकता हूँ, अज्ञानी हैं। खुदा जाने किस जात के काँच का चश्मा आँखों पर चढ़ाकर मेरे ये बड़े नाम वाले मित्र हिन्दी साहित्य का अध्ययन करते और आलोचना करते हैं। खैर, तो मैं साहित्य-महारथियों की नजरों में जातिच्युत साहित्यकार हूँ, कदाचित् अपने इसी अहं के कारण और शायद इसी अहं के बलबूते पर मैं आज तक उन बातों का कानों को कोई परवाह भी नहीं की। उनका ज्ञान और अज्ञान उनके साथ और मेरा अहं मेरे साथ।

अब आज मैं अपने अहं का एक दूसरा प्रमाण इस निबन्ध में दे रहा हूँ, जिसको ... पर आप स्मरण रखें। आप लोग भली भाँति जानते हैं—कि मैं कभी कविता नहीं लिखता, ... मेरी कविताएँ ... छपी हैं। पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं कविता लिख ही नहीं सकता। मेरा साहित्य ... आरम्भ ही कविता से हुआ था। सन् १९१७ में जब लाला लाजपतराय माण्डले भेज दिए गए थे, तब उन पर मेरी सबसे पहली कविता '...' में छपी थी। बचपन में मैं अपनी ... कविताएँ जोर जोर से गाया करता था। मेरे बचपन में बनाए हुए लोकगीत मेरे ... स्त्रियों की जबानों पर रहते और ... की टकार के साथ ... ... धाम में बिखरते थे। बहुधा मैं पत्र भी कविताओं में लिखता था। अलबत्ता, वे मेरी ... साहित्यिक थीं या न थीं, यह दूसरी बात है। पर १५।१६ बरस के देहाती छोकरे में ... और ज्यादा भी क्या हो? मेरा कहना तो यही है—मेरे साहित्य

का आरम्भ हुआ कविता की धारा पर तो पवन [illegible]
मौके आ जाते है। परन्तु कवि सम्मेलन और [illegible]
तुकबन्दियाँ कर डालता हूँ। खड़ी बोली और ब्रज भाषा में [illegible]
नहीं, संस्कृत में भी। यद्यपि संस्कृत का अभ्यास मेरा [illegible]
पर जब आवश्यकता पड़ती है, वह संस्कार [illegible]
होता है। यह वास्तव में मेरे ग्रह का ही चमत्कार है। [illegible]
में गत नवम्बर मास में अकस्मात ही हो गई। जब [illegible]
लक श्री विश्वनाथ ने एकाएक मेरी गर्दन [illegible]
केवल छै दिन के भीतर। आज है पहली। [illegible]
को एक सप्ताह मिल जाय। १५ तारीख [illegible]
इतिहास में—जहाँ सौ पचास पुस्तकों, [illegible]
अम्बार मेज पर लगा था और सत्रह अठारह घण्टे [illegible]
जिससे दाँतों को पसीना आ जाए। तिस पर अस्वस्थ और [illegible]
जी की बात भी कहीं टाली जा सकती थी। जरा [illegible]
योग्य चेहरा, स्निग्ध हँसी, और नपी तुली कम से कम [illegible]
सा हठ। स्वीकार करना पड़ा। मुझ [illegible] नवम्बर मास में [illegible]
में बौद्ध संस्कार छा रहे थे। बस, [illegible]
की, और नाटक लिखना आरम्भ हुआ—'[illegible]' [illegible]
दिन में नाटक लिखा गया। एक दिन में [illegible]
गीत। गीत व्रज भाषा के भी, [illegible]
सब मिलाकर दस गीत और सुबह में [illegible]
का आधा चमत्कार। आया यह कि [illegible]
में। रुपये तलब किए गए तो मैंने कहा [illegible]
बस समझ लीजिए। नाटक [illegible]
में मेरे ग्रह ने क्या काम किया। नाटक [illegible]
कहानीकार नहीं हूँ, उपन्यासकार नहीं हूँ, [illegible]
डाक्टर हजारीप्रसादजी से पूछ लीजिए, [illegible]

२६ अगस्त, १९५६ }
पैंसठवीं वर्ष ग्रंथि }

[illegible]

विषय-सूची

निवेदन

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उस सामग्री को भी इसमें दे दिया है, [illegible]
घनिष्ट सम्बन्ध है।

बहुत पुरानी पवित्र स्मृति है, [illegible]
सिकन्दराबाद में माता पिता की [illegible]
एकाएक हमारे घर में स्फूर्ति का वातावरण [illegible]
और पिता बाजार से अनेक वस्तुएं लाने [illegible]
गृहिणी का हाथ बटाने लगी। घर की सफाई [illegible]
से पूछा—'अम्मा आज क्या बात है ?

माता ने उत्साह से कहा—'भय्या [illegible]
न समाती थी। 'भय्या' से उनका मतलब [illegible]
की शिक्षा समाप्त करके कुछ समय पूर्व [illegible]
के पद पर नियुक्त हुए थे। [illegible]
हू। उन दिनों दिल्ली से रेलगाड़ी में [illegible]
सिकन्दराबाद चार मील का मार्ग इक्का या [illegible]
द्वार पर जब उनका इक्का आकर रुका, [illegible]
आ गए, कहकर लपकते हुए उनके समीप [illegible]
उठ उठकर उन्हें नमस्ते कहने लगे। [illegible]
दूर था। गली का शोर सुनकर गृहपति [illegible]
हाथ जोड़कर प्रणाम किया और [illegible]
इससे प्रथम उनके प्रति कभी [illegible]
मुझे गुदगुदा रहा था। मैं माता के [illegible]
रहा था। मुझसे बड़े और दो भाई [illegible]
माता के पीछे ही छिपकर उन [illegible]
था। सफेद पाजामा, सफेद [illegible]
दन्त पंक्तियों में उन्मुक्त हास्य, [illegible]
चेहरा। माता ने मेरे [illegible]
गए। सिर पर हाथ फेरा और [illegible]

'भय्या, [illegible]'

'एक दिन के लिए [illegible]

'क्या, क्या मैं [illegible]'

'अम्मा अब तुम भी [illegible]

'वाह भय्या, वाह !

[illegible] और [illegible] दौड़कर उन्होंने माता [illegible]

[illegible]

[illegible] पास मुझसे कहा '[illegible]।'

[illegible] माता के पीछे खड़ा हो गया [illegible] उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम के उत्तर में [illegible] मुझे [illegible] फिर गया। मैं उनके सामने आता जाता रहा। [illegible] और मुझको बड़े भाई भद्रसेन [illegible] को अपने साथ रखा और [illegible]। भद्रसेन और मैं दिन [illegible] पुत्रवत् [illegible]। माता गई, पिता गए, भाभी गई, भद्र गए, पत्नी गई, परन्तु मैं [illegible] सिर पर से वरद्हस्त [illegible]। वरद्हस्त उठने का [illegible] हुआ, [illegible] फरवरी १९६० को [illegible] बजे [illegible] चिरविश्राम लिया। [illegible] पिता और वह मुझे पुत्र समझते और [illegible] रहे।

समय बीतता गया, मेरी जेठी संतान पुत्री प्रभा बढ़कर युवा हुई। उससे छोटे [illegible] तीनों [illegible] प्रतिभा [illegible] पर तु [illegible] प्यार दुलार और निगरानी [illegible] उसी भावना से उसी प्रकार मेरी [illegible] और शिक्षित किया। [illegible] आए और [illegible] 'बाऊजी' [illegible] गया और [illegible] फाग अभी २८ दिन [illegible]।'

[illegible]।'

[illegible] प्रकट नहीं किया, [illegible] मैं

पहले दिन उन्हें देखकर माताके पीछे छिप गया था, [illegible]
भाव मे उनकी मृत्यु घडी आने तक अक्षुण्ण [illegible]
से कोई बात कहते थे तो मैं पीछे [illegible]
पर बच्चे निर्द्वन्द्व थे, उन्हें मेरा पूज्य [illegible]
मन मे आरम्भ से ही स्थापित हो गया था। [illegible]
बहुत कम बीमार होते थे। जीवन मे [illegible]
बीमार हुए, मुझे ही अपनी रोग शय्या पर [illegible]
किसी भी भाति उन्हें न बचा सका, न [illegible]

आचार्यश्री के महाप्रयाण की दुखद घटना [illegible]
करती रही। उनके लिखने के कमरे में [illegible]
द्वार की किवाड खोलकर मैं अन्दर पर [illegible]
भव्य प्रतिच्छाया मेज पर झुकी बैठी [illegible]
अपना कदम पीछे हटा लेता—जैसा कि [illegible]
न करने की सावधानी बर्तने का अभ्यस्त था। [illegible]
की चेष्टा की परन्तु द्वार खोलते ही मुझे [illegible]
कर आहिस्ता से किवाड ठेल देता। कभी कभी मेरा [illegible]
चटाई पर रोती कलपती भाभी को जल्दीसे [illegible]
दूं और कहूँ कि देखो तो वे कमरे में हैं, अपनी [illegible]
बुलाने के लिए जाता भी,पर भाभीके कमरे [illegible]
मेरी वाणी जड हो जाती और हाथ [illegible]

प्रकाशको ने मुझसे आकर कहा कि [illegible]
करने के लिए रखी हो तो हमें दीजिए। [illegible]
धडकते हृदय से मैंने उनके लिखने के कमरे [illegible]
मधुर महक मेरे श्वास प्रश्वास में घुस [illegible]
से महक रहा है। मैंने चारों ओर देखा [illegible]
मेरे श्वासो मे जा रही थी। मैंने महापूज्य [illegible]
उनकी कुर्सी पर जाकर अपना मस्तक टेक दिया। [illegible]
कर मस्तक टेके बैठा रहा। मेरे आगे कुर्सी पर [illegible]
कणो मे घुस रहे थे।

अन्त मे मैं उठा और मैंने कमरे [illegible]
और द्वार बिल्कुल खोल दिए और मैं उस पवित्र भूमि पर [illegible]
महान लेखक को अलमारियों को खोला और [illegible]

िााा ार ााा ाारम्भ ाया। उनकी विशाल साहित्य सम्पदा को देखकर मेरा ा ा ाया। ाा, ा ाा ार गया। गोर, मरे पूज्यवर ने कितना लिखा था। ि ाा ा ाा िलने ा ाहस है? और ाने परिश्रमसे कलम पकड़ सकता ा ा ाार पृष्ठ के ६ ग्रन्थ, ८६ ग्र य कृतियां तथा १० हजार पृष्ठों के पत्र पाििा ा ा फुटकर भटर नो उनके जीवन काल मे ही प्रकाशित हो चुके थे। अब जो अलमारियों की ाण्डुलिपियों की लिस्ट बनाई तो ५२ ग्र थ अप्रकाशित निकले, जिनमे ८ ग्रन्थों की पृष्ठ संख्या हजार हजार से भी ऊपर बढेगी। दो उपन्यास 'मोती' और 'ा' अपूर्ण ा, ा ा पूर्ण किया। 'सोना और 'खून' के शेष भाग मे और डाक्टर कुमार ापूर एम०ए०,पी०एच० डी० लिख रहे है।

सन् १९५९ मे ा ार ४-५ दिन तक वे अपने ाल मे निरतर बैठकर 'सोना और खून' की अंतिम रूपरेखा तयार कर रहे थे। उस समय उनकी समस्त जीवन ाि उसी ा म जा ा थी और अपने पास वे किसी का आना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु ५ ि ा बाद जब वे अपनी उस रूपरेखा को सम्पूर्ण कर चुके और उन्होंने ाा आराम कुर्सी पर विश्राम किया, तब दो चीज देखकर म विमूढ हो गया। ा उनका ा और मुर्झाया हुआ पीला चेहरा, और दूसरा उनकी मेज पर 'जिन्दगी की ाार' की नवीन ा ार पाण्डुलिपि। वे मानवता को इतना प्रेम करते थे कि ा की ा ाा के प्रति उाे ा ा ाा ा ा ाा कि उन्होंने 'सोना ार ा ाी रूपरेखा ाा ा ा ा ी ाार ी ाि ि ााा ाा ा ि ाा ा ा ाााा ा ााा ाा ाा ाा। 'जिन्दगी की ाा' ाा ार ा ा ा ा ा ा ा है।

ा ा ा ा ा ा ा ा। ाा ाा ाा प्रेम, अपार श्रद्धा और ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा। ाा ा ा ा ाा ा ा ा ाा ा ा ा ा ा ाा ाा साहित्य ाााा ा।

[illegible]

[illegible] और म ाानी ाथ था। मा उनस ा ि ा ामिि ाार

'चतुरसेन स्मृतिग्रथ' निकाला जाए, जिसमे [illegible]
मनीषियो के सस्मरण और लेख रहे। परन्तु [illegible]
जिन्हे मैने अत्यन्त निकट समझा था, वे 'स्मृतिग्रथ' [illegible]
महीने तक चार पाँच मीटिंग होने पर भी [illegible]
ग्रथ' प्रकाशन के मेरे पुनीत प्रयास [illegible]
ढग से सोचा गया। फल यह हुआ कि उन मित्रो [illegible]
मनमे मेरी ओर से विपरीत भाव उत्पन्न हो गए। यद्यपि [illegible]
ने इसके लिए आर्थिक सहायता देने से इन्कार कर दिया था, पर [illegible]
सद्पुरुष श्री ब्रजमोहन रिटायर्ड इजीनियर ने [illegible]
श्रद्धा रखते थे, इस ग्रथ को निकालने की प्रारम्भिक [illegible]
का चेक मुझे भेज दिया था, जिसमे मैने प्रारम्भिक [illegible]
की, परन्तु भाभी ने मुझसे स्पष्ट कह दिया कि [illegible]
रुपया ऐठते हो और उनकी प्रतिष्ठा मे घातक हो। [illegible]
पत्तर समेट कर और मेरी लिखी समूची पाण्डुलिपि [illegible]
मे बन्द करदी। ताला बन्द करके ताली मुट्ठी मे [illegible]
करली। बहुत दुख हुआ। भीतर से [illegible]
हाथ पैर कापने लगे। अवाक निस्पन्द [illegible]

एक साहित्यिक कृति का प्रकाशन [illegible]
एकनिष्ठ सेवा, भावना, श्रद्धा, भक्ति, रुदन, [illegible]
कि मैं अपने भाई के नाम पर लोगो से रुपया [illegible]
हूँ। फूट गई मेरी तकदीर, समाप्त हो गया मेरा [illegible]
जो जो उनके साहित्य का खोजन और [illegible]
अक्षुण्य बनाए रखने के लिए [illegible]
मे एक दिन मेरे हाथ [illegible]
था, जो इस प्रकार था—

'प्रिय महोदय,

आपका २२ १० ६० का लिखा पत्र प्राप्त [illegible]
आपकी जो शर्ते है, उनमे नम्बर ६ मे [illegible]
मतभेद होने पर जो मुझे नुकसान होगा, [illegible]
चन्द्रसेनजी पूज्य आचार्यजी के सामने [illegible]
थे और अब भी वैसे ही कर रहे है। सो [illegible]
आपको ज्ञात होगा ही कि उनकी उत्तराधिकारिणी [illegible]

एक छोटी सी आप की बच्ची है। आपकी जानकारी के लिए यह पत्र लिख रही हूं।
२४-१०-६१ भवदीय कमलादिवाकर जानगांव

पत्र पढ़ कर मेरा मन भर गया। मैं जो स्वयं भी गत वर्षों से हिन्दी और हिन्दी साहित्य समर्पित रहा था, बहन कुछ करने के लिए बेचैन हो उठा था... नागपुर के एक भूमि खण्ड में ... नाम की ... बनेगी, जहां उनकी समस्त पुस्तकें होंगी, ... पोर्टरेट होगी। 'चतरभुज हाल' के ऊपर चार पांच कमरे साहित्य ... करने, अनुसंधान करने, विदेशी साहित्य मनीषियों का सत्कार करने और ... भारतीय हिन्दी ... को ... परिचित कराने, मनन करने के लिए होंगे ... ये सब ... के समान उभर कर मेरी आँखों के सामने से निकल गए। भाभी कितनी आतुर, चिन्तित और ... है स्वयं का मानसिक ... और मुझे ... समझने में, ... मिल गया। पिछले मास में ... से ... गुजराती ... प्रकाशित ... कर लिया गया था। ... हो गई थी और मैं ... टाइप करा कर भेजने को कह कर दिल्ली लौट आया था। उसी में किसी ... पर ... लिखा होगा कि मैं और भाभी दोनों ही इस हानि के जिम्मेदार होंगे, जिसे ... दृष्टि से ... समझकर भाभी ने मुझसे लिखा ... यह उत्तर दे ... थी। उसमें प्रथम ... किया ... कुछ ... था, मैं ... करता था। ... पत्र में भाभी का ... रूप में लिखा गया था, ... मिलता था। ... भी ... कुछ ... भी ... था। फिर भी भाभी ... मुझे ... और ... भाभी ...

... मैं ... भाभी ने ... उसका ... भी ... हरियाली उपजाए, तो भी भाभी ने मेरे पास ... रोक दिया। मेरे भाई गोया और ... भाभी, जिस पूज्य ...

ने मरते समय मुझे खूब सुशिक्षित, गुस्स [illegible]
से भी वंचित किया गया।

दिन बीतते चले गए और मैं उस पाण्डुलिपि [illegible]
अन्त में एक दिन मेरे मन में पाप समाया और [illegible]
एक दिन भाभी जब गुसलखाने में थी, मैं कुछ [illegible]
मेरे ही आधीन था, जहाँ मैं ही पुस्तक और [illegible]
बैठकर काम किया करता था, चुपचाप गया और [illegible]
लगाने लगा। ताला खुल गया। उसमें मेरी [illegible]
मैंने उठा लिया। यद्यपि उस अलमारी में आचार्यश्री [illegible]
द्वारा सजोई, सवारी छोटी हुई प्रकाशित [illegible]
पर पर भी ध्यान नहीं दिया। अपनी वस्तु [illegible]
निःशब्द अपने कमरे में लौट आया। [illegible]
से बचाए रहा। अन्त में मैंने पुनः [illegible]
परिवर्धन किए और पूर्ण वस्तु बनाकर उसे [illegible]
प्रस्तुत करने की चेष्टा करने लगा। पर [illegible]
प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्स के पास गया, पर [illegible]
इकार कर दिया, मुझे कुछ [illegible]
श्रीसोहनलाल भागवने इसके प्रकाशन [illegible]
का प्रकाशन आचार्यश्री की प्रतिष्ठा और [illegible]
प्रश्न है, इसलिए इसे अवश्य [illegible]
परन्तु उन्होंने कागज और छपाई [illegible]
अयाचित, अकल्पित और [illegible]
चिर प्रतीक्षा और निरन्तर [illegible]
यित हूँ। जीवन की एक साध, एक अपूर्ण [illegible]
रोम रोम में है। अपने प्रति [illegible]
न भी करे तब भी मैं आप्यायित हूँ, जिस प्रकार [illegible]
देखदेखकर मैं आप्यायित हूँ। अपना [illegible]
लिया। इस पुस्तकको पढ़कर यदि आप [illegible]
को, जिनके प्रति अब भी मेरे मन में वही पूज्यपूजन [illegible]
प्रवाहित है, जो आचार्यश्री के प्रति [illegible]

ज्ञानधाम, शाहदरा दिल्ली ३२
१ मार्च १९६३ [illegible]





[illegible]

तुम अपनी [illegible] में अपने पूज्य पिता को 'पापा' कहती [illegible] प्यार से [illegible]। तुम महातेज की एक [illegible] पापा ने तुम्हारा नाम रखा ज्योत्स्ना। [illegible] और तुम्हारे पापा' तुम्हें अक्षर [illegible]। [illegible] पुत्री हो जो तुम्हें [illegible] करने का गौरव प्राप्त [illegible] पापा [illegible] तुम कहा करती [illegible] पापा [illegible]।' और तब तुम पढ़ना सीखती [illegible]।

पर पापा [illegible] जब तुम केवल [illegible] वर्ष और चार मास की [illegible] थीं। समय पर तुम अपने ज्ञान और [illegible] तब तुम्हें अपने यशस्वी 'पापा' की [illegible] और तुम उनके विषय में बहुत कुछ जानना [illegible]। उस समय इस ग्रंथ को [illegible] पापा [illegible] जायेंगे। वे तुम्हारे समक्ष आ [illegible] पर तुम [illegible] आकृति को देख न सकोगी क्योंकि [illegible] तुम्हारे [illegible] आंसुओं की धार बह रही होगी [illegible] अपने में समा रहे होंगे।

तुम्हारी [illegible] में तुम्हारा

'चाचाजी'

निस्सग

म एक श्रान्त, कि तु अपराजित योद्धा ह । अपन चिरजीवन म ग ा गा कुछ खोया है पाया कुछ भी नहीं । मन एक भी मित्र जीवन म नही उपन किया । आज जीवन के न या म म अपन का सवथा एकाकी, सगहीन और निस्सग अनुभव करता ह । मरी दशा उस मुसाफिर क समान है, जो दिन भर निरन्तर मंजिल काटता रहा हो, और सब निजन राह ही म सूय अस्त हो गया हो, वह किंकत्तव्यविमूढ़ थककर राह क एक वृक्ष क सहार खड़ा रास्ता देख रहा हो । मेरे मंजिल दूर अपने घर म किसी सुख, सुख पर सम पड़ा था, स या की भाति स्थिर हो रहा था, और प्रत्येक समान मु र अपन पुत्र की कुशल कामना करता रहा ।

तो पर भी मे दुख और सुख दोनों की सम्पदा से सम्पन्न हूँ । दुख मेर हृदय म है, और सुख मेर जीवन के बाहर चारा ओर । मेरा दुख बहुत मूल्यवान है । मणि मुक्ताओं से भी अधिक मूल्यवान । उस दुख की निधि का, वेदनाओं, चिन्ताओं यातनाओं और दीघ निश्वासों सहित हृदय की मजूषा म म कृपण धनिक की भाँति छिपाकर रखे हुए है, उस मजूषा म यत्न से निधि भर कर, अच्छी तरह उस ढाक छिपाकर म शरीर म पर भार लगाता । अपने चारों ओर विस्तृत सुख ि । क सग म रहता , उस सुख का आत्मा । किन्तु ि ा ा आर । ा ा वा भाति । म सुख पर मरा तनिक भी आसक्ति नहीं, मोह भी नहीं । पर तु दुख को जिस सावधानी से म छिपाकर रखे हुए है, उसका किसी को आभास नहीं है । किसी ने िसी ा ा ा उस । ा । ा । ा ा भी । पग ा ा । ा ा । ा । कभी भी गोपनीय उस ा ा दखाता । ा । ा । म, कि त ा ा ा ा ा सार भाग म विस्तार ा आग । अपना उस दुख सम्पत्ति पर मेरी ा ा ि । ा । ा । ा ा है, उ ा । ा । ा । जीवन ा ा ा ा । ा । ा ा । ा । ा कुछ बाकी है ।

लोग ा ा है कि ज ा ा ा ा है । म ा ा ा , यदि ा ा पर ा समय है ा वह ा ा ा है । आत्मा से मेरा परिचय ा । । निश्चय ा ा ा ा । प्राणियों का मृत्यु होते देखा है । इसी ा ा, अनुभूत ही है ा म उस परिणाम पर पहुँचा हूँ, कि मृत्यु और जन्म ा ा ा किन्तु ा ा है, तथा दोनों म कोई तारतम्य नहीं है, इसलिए मेरा यह दृढ़ विश्वास है, कि जन्म और

तत्त्वो के सयोग से–जिसमे किसी नियन्ता या कर्ता [illegible]
भी उसी प्रकार भौतिक तत्त्वो के विघटन से होती है । [illegible]
नश्वर सत्त्व, आत्मा, जीव या और कुछ शेष नही रह जाता । [illegible]
अस्तित्व कतई खत्म हो जाता है । इसलिए, जीवन [illegible]
रक्षा करना, अधिक से अधिक इसे सुखी और सम्पन्न [illegible]
बुद्धिमत्तापूर्ण कर्तव्य है ।

जन्मस्थान

उत्तरप्रदेश के बुलन्दशहर प्रान्त मे, [illegible]
चान्दौख ग्राम मे एक क्षत्रिय परिवार के साधारण [illegible]
भाद्रपद कृष्णा, चतुर्थी रविवार (२६ अगस्त सन [illegible]) [illegible]
जन्म हुआ था । यह घर और यह ग्राम हमारा पुश्तैनी [illegible]
का स्थान था । स्थायी पत्रिक स्थान—इसी चान्दौख ग्राम [illegible]
३ ४ कोस पर 'बिबियाना' ग्राम है । चान्दौख मैने अपनी [illegible]
उस घर को पहचान सकता हूँ जिसमे मेरा जन्म हुआ [illegible]
देखा है, वहाँ के टूटे फूटे घर का भी मुझे ध्यान है । वहाँ हमारा [illegible]
और तालाब भी है । वह भी मैने देखा है । अब भी मेरे परिवार [illegible]
रहते है ऐसा सुनता हूँ, पर वे मुझे जानते नही है, और मै भी [illegible]
सुना था कि चान्दौख मे मेरे पिता श्री बहुत कम [illegible]
के निवास का सास्कृतिक प्रभाव बहुत रहा ।

पिताजी

पिताजी बहुत कम पढे लिखे थे । आजीविका [illegible]
मास प्रथम ही चान्दौख आ बसे थे । यहाँ उन्हे [illegible]
लाभ प्राप्त हुआ । एक थे प्राणाचार्य [illegible]
पण्डित, और आसपास के प्रसिद्ध चिकित्सक । दूसरे [illegible]
जमीदार । तीनो मित्र समान आयु थे, [illegible]
थे । मेरा जन्म होने पर मेरी जन्मकुण्डली [illegible]
या चतुर्भुज, पर कहते थे कुलदीपक । उनका कहना था [illegible]
योग्य नही है । जिएगा तो कुलदीपक होगा । [illegible]
था । कुछ दिन पूर्व स्वामी दयानन्द सरस्वती जब कर्णवास [illegible]
और ठाकुर साहब ने कर्णवास जाकर स्वामी जी [illegible] और [illegible]
था । तभी से उनके विचार आर्यसमाज की ओर झुक गए थे । फिर [illegible]
मे तीनो मित्रो का एकसाथ रहना हुआ, तो परस्पर विचार [illegible]

वे कट्टर आर्यसमाजी हो गए। तब तक बम्बई और लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी, परन्तु अभी उसका व्यापक परिणाम स्वरूप प्रकट नहीं हुआ था। मूर्ति-पूजा आदि के खण्डन की जबरदस्त चर्चा स्वामी दयानन्द के नाम के साथ देहातों में चल गई थी। जगह जगह लोग कहते थे — एक संन्यासी इधर रम रहे हैं। संस्कृत बोलते हैं। मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं। वेद को ईश्वर वाणी बताते हैं।

ठाकुर महावीरसिंह और पिताजी, दोनों का नया जोश था। इस नए जोश में इन्होंने अपनी नवशिक्षित शैली में न जाने कितना आर्यसमाज का प्रचार किया। वह नवशिक्षित शैली क्या थी, सुनिए। गाँवों के मन्दिरों, मठों और देवस्थानों से महादेव चामुण्डा भैरव आदि की मूर्तियाँ रातोंरात चुराकर गंगा में या निकट के तालाब में फेंक देना। जहाँ किसी देवता के स्थान पर बहुत सी स्त्रियाँ आती जाती थीं, वहाँ उसे भी खनकर फेंक देना, कि फिर उधर जाने का नाम न लें। कहीं विवाह शादि कृत्य पौराणिक रीति पर होता — तो झट एक समाजी पण्डित को लेकर जा धमकते, कभी कभी फौजदारी करके भी उसी से कृत्य कराते। लाठी के धनी थे। लाठी हाथ में होने पर १०।२० को भारी। डील डौल में विशाल, सुर्ख सिंदूरिया रंग, घनी काली दाढ़ी (पीछे दाढ़ी नहीं रखते थे) मजबूत सोटा हाथ में, नालदार चमरौधे का जूता। बस ठाकुर और आप गाँव गाँव घूमना और उपरोक्त अद्भुत रीति से आर्यसमाज का प्रचार करना। कभी कभी केवल 'नमस्ते' कहलाने के लिये लाठी चल जाती थी। श्री [illegible] से उन्होंने संध्या गायत्री सीखी। जीवन के अन्त तक उनका संध्या वन्दन का समय बंधा रहा। धीरे-धीरे दोहों और कविता का भी उन्होंने अभ्यास कर लिया। कविता करते थे — केवल स्त्रियों में प्रचलित ग्राम्यगीतों की। जिन्हें प्रथम माता जी को कण्ठ कराकर गवाया जाता, पीछे गाँव की अन्य स्त्रियाँ ब्याह शादी और त्योहारों पर वही गीत गाती थीं। ये गीत पातिव्रत धर्मसूचक, कुरीति निवारक, तथा [illegible] पूजा के खण्डनात्मक होते थे। जब विवाह आदि में स्त्रियाँ ये गीत गाती थीं, तो बड़े सुधारक पुरुषगण बहुत प्रसन्न होते थे।

वे नित्य प्रातः चार बजे उठते, कोई भजन गुनगुनाते हुए गाय भैंसों को सानी देते फिर एक चिलम भरकर हुक्का पीते हुए [illegible] बैठ जाते। जब तक हुक्का खत्म हो, [illegible] गोबर निकालने और [illegible] भैंसों के आगे। [illegible] निवृत्त होकर [illegible]। तब कहीं दिन निकलता। [illegible] आप नहा एक लोटा ताजा मट्ठा, पावभर ताजा मक्खन [illegible] गाड़ी को जुतकर लगाते। कमेरों को काम की हिदायत दी, और चल दिए ठाकुर साहब के पास। एक दो गाँव में अपनी रीति पर प्रचार किया, दोपहर को घर आए। सीधा सादा भोजन। दाल और मोटी मोटी रोटियाँ, साथ में पावभर घी। तोलकर साग,

तीसरे पहर उठे, तो ठाकुर की चौपाल या [illegible] जवान और आ जुटे, हुक्का गुड़गुड़ाने और [illegible] कट्टर, न रियायत न सशोधन। आस पास के दस [illegible] आदमियो की आलोचना हुई। जोरशोर से स्कीम [illegible] माता चामुण्डा, मूर्तिपूजा पुराण और श्राद्ध [illegible] और कहा पढाया जाय।

ठाकुर महावीरसिंह बडे मस्त जीव थे। पूरे गाव के [illegible] चिन्ता से बेफिक्र। लेकिन पूरे फक्कड, हाथ हमेशा [illegible] पूरी करने को कभी-कभी अद्भुत काम कर डालते थे। [illegible] सूअर गंगा के पठार से मार लाए। उन्हें घाडे पर [illegible] मास पठ म बेच दिया। अथवा—भीग और [illegible] खट से हाथ चला बैठते थे। उनके पुत्र [illegible] से स्नेह था। इसकी सगाई हुई लाहौर के राजा [illegible] चढी तो ठाकुर ने गाव भर के चमारो से बेगार [illegible] मार से उसका गर्भ गिर गया। तब ठाकुर और पिताजी ने [illegible] तथा कुछ दक्षिणा देकर मुह बन्द किया। [illegible] मझोलियो को मागकर ढेर कर लिया। पर उदयवीरसिंह [illegible] न हो पाया। सगाई मे पाए रुपयो की गठरी [illegible] कर वे विलायत भाग गए बरिस्टरी पढने। [illegible] बरिस्टर उदयवीरसिंह हुए।

पण्डित होमनिधि शर्मा के परामर्श से पिताजी [illegible] का विचार स्थिर किया। उस समय मेरी आयु [illegible] बाद, जिला बुलन्दशहर म आ गये। [illegible] होमनिधि शर्मा ने कहा था, कि [illegible] रहना चाहिए। यहीं आकर मैने [illegible] आरम्भ किया।

सिकन्दराबाद म पिताजी को प्रसिद्ध आर्यसमाजी [illegible] शर्मा का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उन्हें सब लोग शर्माजी [illegible] आढत की दूकान करते थे। मोटा [illegible] हाथ मे रखते। [illegible] देहात के लोग उनके व्यग भाषण सुन कर [illegible] मे पढता था। परन्तु पिताजी ने संस्कार विधि [illegible] लगाया था। बहुत बुरा लगता था तब यह पढना। [illegible] और [illegible] था। दात मुह मे एक भी न था, पान तमाखू खाता, [illegible]

तो तमाखू गले अटक कर खाँसी की भौंर ऊपर आती। आज तक उस पण्डित का भाड़ के समान फैला हुआ मुँह मुझे याद है। एक ओर आर्यसमाज के उपदेशक जी से पिताजी की मित्रता हो गई थी, उन्होंने एक ट्रैक्ट छपाया था। पिताजी ने जबरदस्ती वह मुझे समूचा रटा दिया था। और जब कहीं कुछ आदमियों की भीड़ होती, जलसा होता—तो पिताजी मुझे खड़ा कर देते, वह रटा हुआ भाषण सुनाने को। बहुधा मुझे वह प्रिय न लगता, फिर अनुशासन तो मैं सह न सकता था। बहुधा पिताजी के संकेत पर भाषण पाठ न करने पर चपत भी पड़ जाती थी। फिर तो रोते रोते, हिचकियाँ लेते लेते पूरा भाषण सुनाया जाता था। मजा यह था कि सुनने वाले तब भी खुश होते थे।

पिताजी आसपास के गाँवों में 'नमस्ते' के नाम से प्रसिद्ध थे। दूकान के आगे नमस्ते का साइनबोर्ड टँगा रहता था। साथ ही ताजे हुक्के, ढेर सा तमाखू, और तैयार आग। गाँव देहात के लोगों को शहर कस्बे में जो भी काम होता - ब्याह शादी के लिए चीज वस्तु खरीदनी होती, जेवर तैयार कराने होते, या कोई दूसरा काम होता, मामला मुकदमा करना होता—तो वे सीधे 'नमस्ते' की दूकान पर पहुँचते। अपनी बिरादरी का हुक्का सुलगाते, और अपनी जरूरत रफा करके घर लौट जाते थे। सब तरह की दिक्कत और ठगी से बच कर।

हिन्दू मुसलमान हरिजन अछूत जो भी उनकी दूकान के आगे होकर गुजरता—'नमस्ते' कहता। आर्य समाज का प्रचार वे डण्डे से भी करते थे, और जुबान से भी। सभा में भाषण नहीं देते थे, पर गाँव देहात में दस बीस जनों के बीच कड़कती भाषा में जब वे कुरीतियों और रूढ़ियों के विपरीत बोलते थे, दूर से उनकी आवाज को पहचानकर गाँव वाले आ जुटते थे। मुरारीलाल शर्मा भी मोटा-सोटा रखते थे। परन्तु जब किसी मार-पीट की जरूरत पड़ती थी, तो पिताजी को साथ लेते थे। काम करने का एक उदाहरण सुनिए। खबर मिली, कि एक चमारी मुसलमान बनाई जा रही है। मुसलमान उसे मस्जिद में ले गए हैं। सुनते ही लाठी हाथ उठा ली— सीधे मस्जिद में जा घुसे, चमारी का हाथ पकड़ ताँगे में उठा सड़क पर संकेत दिया और जग हवा से उड़ाते हुए सीधे दूकान पर ला बैठाया। पलक झपते यह काम हो गया। मुसलमान मस्जिद में बैठे थे, वे समझे ही नहीं, कि यह क्या हो गया, पीछे हल्ला गुल्ला करके दौड़े। तब तक वे अपने आसन पर पहुँच चुके थे। चमारी रो रही थी। भीड़ जुड़ गई थी। पिताजी कह रहे थे — तीन साल से पकड़ा है। दो सौ रुपया लेना है। जो मालिक बने रुपया दे जाय। एक दो दस्तावेज सन्दूक से निकालकर सामने रख दी। मुसलमान गरमा रहे थे — पर मुकद्दमे में वे साहस न कर सकते थे। दस्तावेज तो महज़ जालसाजी थी, घण्टे आध घण्टे में भीड़ फट गई। मुसलमान भी निराश लौट गए, तो घर लाकर चमारी को खाना दिया। पता पूछकर गाँव से चमार को बुल-

वाया। चमार के आने पर कहा—अरे च ता, [illegible]
मखोर अपनी औरत को सम्मान कर नही सकता। और [illegible]
जब सब उपचार खत्म हो गए, [illegible]
को गाव भिजवा दिया। ऐसी बहुत घटनाए [illegible]

पिलखन गाव का एक मुसलमान परिवार [illegible]
धमपाल और धर्मवीर की शुद्धि नहीं हुई थी। यह [illegible]
इससे प्रथम स्वामी दयानन्द के जीवन काल म [illegible]
सिह की। शर्मा जी ने कहा—चना, मोचा जबरदस्त है। [illegible]
है। और कोई ५०।६० आदमियो का गिरोह [illegible]
भली भाँति याद है। सम्भवत सन १९०८ या [illegible]
परिवार का कुआ बन्द कर दिया, इस पर पत्नी और [illegible]
पुरुष ने रातो रात घर के आगन म कुआ [illegible]
शुद्धि हुई और भोज हुआ। सारे परिवार ने भोजन [illegible]
अनपढ देहाती था। मगर मजेदार शेरदिल। [illegible]
तेजसिह भी गए थे, खूब लम्बे ताड के समान, [illegible]
सी दहाड। मुरारीलाल शर्मा का भाषण और [illegible]
रहा था। किसी ने कहा—हाथ का छुआ [illegible]
नही। एक ठाकुर थे—बड गूजर, [illegible]
लगाई—अरे भाई हीरासिह, कचौरी [illegible]
और हुक्का आया। लेकर ठाकुर एक टूटे हुए [illegible]
ठाकुरो को आवाज लगाई, हुक्का पहिले पिया [illegible]
चोधरी से कहा—पिओ ताऊ, पर ताऊ [illegible]
टेटुआ दबाच कर हुक्के की नली इनके म [illegible]
ठाकुर हो गया।

मुरारीलाल शर्मा और पिता जी [illegible]
पलट कर दी थी। आर्य समाज जगे [illegible]
सिकदराबाद आर्यसमाज का प्रमुख केन्द्र बन गया। [illegible]
प्रसिद्ध भजनीक वासुदेव आए, प० कृपाराम (पीछे [illegible])
समाज बनी, सन्ध्या हवन, भजन उपदेश [illegible]
आए दिन गाव देहातो म कोई न कोई गृहस्थ संस्कार [illegible], और [illegible]
इक्के पर बैठकर मै जरूर जाता। रटा हुआ भाषण [illegible]
हाथ साफ करता। सिकदराबाद उन दिनो आर्यसमाज का एक केन्द्र बना हुआ

था। प्रसिद्ध भजनीक बालमुकुन्द शर्मा और तेजस्वी गायक तेजसिंह की बड़ी धाक थी। रोज ही धूम धाम से प्रचार उपदेश और शास्त्रार्थ होते। मुरारीलाल शर्मा विशेष पठित तो न थे पर थे बड़े साहसी। हम बालक रोज मुसलमानों के बालकों को पकड़कर कहते 'साले, कर शास्त्रार्थ। उनके 'ना' कहने पर झट से मारपीट करके चम्पत होते। उस समय मुझे प्रसिद्ध वाग्मी पं० तुलसीराम का सान्निध्य प्राप्त हुआ और पं० कृपाराम का परिवर्तित दर्शनानन्द रूप देखा। पीछे उन्हीं से मैंने दर्शन पढ़े। इटावा के पं० भीमसेन जी के भी सनातनी होने के बाद तभी दर्शन हुए, और उनके तथा श्री दर्शनानन्द जी के शास्त्रार्थों की हम विद्यार्थी खूब नकल उतारा करते थे।

माताजी

उनका नाम था नन्ही देवी। उन्हें प्यार से मैं अन्त तक 'अम्मा' ही कहता रहा और 'तू' कह कर बोलता रहा। न 'तुम' कहा न 'आप'। और वे मुझे जब से मैंने होश सम्भाला —'भैया' कहती। सदा 'तुम' कह कर बोलतीं। कभी उन्होंने मुझे 'तू' कहा—यह याद नहीं आता। माता जी ममता की प्रतिमूर्ति थीं। त्याग स्नेह और सहिष्णुता को मिलाकर जो एक श्रद्धा और आदर की देवी की कल्पना की जा सकती है वही वे थीं। वे पढ़ी लिखी नहीं थीं। पर वे अमल हीरे की कनी थीं। प्रकृति ने उन्हें जो लोकोत्तर आभा दी थी, उस पर कृत्रिम चमक करने का किसी कारीगर को अवसर ही नहीं मिला। कभी उसकी आवश्यकता भी प्रतीत नहीं हुई।

जब मेरा जन्म हुआ, तब पिताजी की आयु इक्कीस वर्ष की और माताजी की सोलह वर्ष की होगी। पिताजी का शरीर लोहे का था, माताजी का भी वैसा ही था। अपने जीवन के अन्तिम समय में वे निरन्तर सोलह वर्ष रोग शय्या पर रहीं, फिर भी नित्य के बहुत काम निपटाती रहीं और ६८ वर्ष की अवस्था में जब उन्होंने इहलीला समाप्त की, तो उनका एक भी बाल सफेद न था। मैं भी आज पैंसठ को पार कर रहा हूँ बाल मेरे भी सब स्याह हैं। दाँत भी सबके सब हैं, जैसे तीस वर्ष पूर्व थे।

माताजी अपनी गृहस्थी का सब काम स्वयं करती थीं। पिताजी की भाँति वे भी प्रातःकाल में ऊषा के उदय होने से पूर्व उठकर एकदम घर के कामों में लग जाती थीं। उन दिनों गाँव के घरों में नौकरों से घर का काम कराने की परिपाटी न थी। वे उठकर सर्वप्रथम तमाम गाय भैंसों और उनके बच्चों को एक बार प्यार पुचकार आतीं। उन पर हाथ फेरतीं और प्रत्येक का नाम ले लेकर एक दो बातें करतीं। इसके बाद वे शौच से निवृत्त होकर दूध बिलोने बैठतीं, पाँच सात गाय भैंसों के दूध को वे अनायास ही अपने बलिष्ठ भुजदण्डों से बिलो डालती थीं। इसके बाद घर आँगन बुहार कर ताज गोबर से लीपकर निवृत्त होतीं। तब कहीं दिन निकलता। फिर वह स्नान कर सूर्य को अर्घ्य दे—भोजन बनातीं, और तब कातने बैठतीं। सिर के बाल के समान

बारीक सूत वे निकालती थी। उनको सूत [illegible]
अभ्यास था, और कमठता उनका [illegible]

मेरे माता पिता दोनों आज [illegible]
सहन की शैली से सबका दूर, अपना जीवन [illegible]
की सम्पूर्ण सत्ता पिताजी मे थी, और [illegible]

परिजन

पिताजी का नाम था श्री [illegible] ठाकुर, [illegible]
ठाकुर, उनके पिता—मेरे प्रपिता थे मनसुख बाबा। [illegible]
व्यक्ति थे। उन्होंने गाव मे बाग मन्दिर [illegible]
की कोई बहू बेटी दिन के प्रकाश में घर की [illegible]
कोई दीख गई तो बाबा भी लाठी [illegible]
गाव की बहुएँ उनके भय से सूर्यास्त [illegible]
द्वार पर काठ पड़ा रहता था, गाव में [illegible]
पाव दे दिया। मृत्यु उनकी सत्तावन [illegible]
भग एक सौ सत्रह वर्ष की आयु में हुई थी। मरने [illegible]
परिवार के सब लोगों को अपनी मृत्यु तिथि बता दी थी। [illegible]
लिखवाकर बुलाया था। बाग से एक ग्राम [illegible]
बनवाया था। अपने एक भतीजे को [illegible]
साथ लाना न भूले। मनसुख बाबा के [illegible]
ढिया थी, तथा सगे सम्बन्धी कौटुम्बिक, अपना [illegible]
स्त्री पुरुष मृत्यु समय बाबा के प्रस्थान का तमाशा [illegible]

निश्चित समय पर बाबा ने स्नान [illegible]
पहना। जामा एक प्रकार का [illegible]
पगड़ी बाँधी, और अपने ज्येष्ठ पुत्र मेरे पितामह [illegible]
उच्चारण करने को कहा। [illegible]
किसी सम्बन्धी को बुलाकर [illegible]
उन्होंने गाय के गोबर से जमीन लिपवाई। [illegible]
राम राम कहा और धीरे से धरती पर [illegible]
लोग जोर से शख घड़ियाल बजाने लगे। [illegible]

मनसुख बाबा का कारज भी बड़ी धूम धाम से हुआ। [illegible]
महत्त्व विवाह आदि के उत्सवों से भी अधिक होता था। [illegible]
उत्तराधिकार का प्रदर्शन हो, कि सब सम्बन्धी जान जायें कि मृत पुरुष [illegible]

अधिकारी होता है। उसी को मृतक की क्रिया करनी पड़ती थी—उसी को भोज के दिन पगड़ी बंधती थी, और वह उस दिन से प्रधान रूप से मृत पुरुष की सम्पत्ति का स्वामी—उत्तराधिकारी बन जाता था। बाबा के कारज में बारह गांवों की ज्योनार हुई। ज्योनार हुई मालपुओं की। मालपुए बना बनाकर बोरियों और तख्तों पर कोठों में छत तक चुन दिए गए थे। आज तो बड़े बड़े श्रीमंत भी डालडा का प्रयोग भोजों में करते हैं—तब असली घी ही का प्रयोग होता था। बाहर गांव की सातों जात का भोज हुआ था। उसके अतिरिक्त बारह कोस तक के सब चौराहों नाकों पर आते जाते अतिथि मुसाफिर रोककर भोज में सम्मिलित किए गए थे। बाबा के कारज में रुपए का ढाई मन गेहूँ, और उड़द की दाल रुपए की डेढ़ मन के हिसाब से खरीदी गई थी। कच्चा तेल रुपये का पच्चीस सेर, गुड़ एक मन दस सेर, और खांड रुपये की छत्तीस सेर खरीदी थी। ८-७ हजार मनुष्यों का भोज हुआ था। भोज में पचास रुपया बाहर का कर्जा हो गया था—उसका चुकता मेरे पितामह ने एक खत्ती चना बेचकर किया था। चना रुपये का साढे तीन मन बिका था। यह बहीखाता चिट्ठा पिताजी बहुधा सुनाया करते थे। पितामह श्री भूपालसिंह ठाकुर चार भाई थे। एक भाई ग्वालिए थे, गांव भर की भैंसे चराते थे। उनकी अपनी भैंस अलग थी उसका पूरा दूध वे स्वयं पीते थे। दूसरे भाई तालुकेदारी में कारकुन थे—तनख्वाह मिलती थी डेढ़ रुपया माहवार। पर सरकारी आदमी होने से रुआब बहुत था। पितामह भूपालसिंह सीधे सादे ईश्वर भक्त आदमी थे। थोड़ा सा लेन देन करते थे। किसी को जितने बीसी रुपये देते थे, उतनी गांठें उसकी मिरजई की तनी में लगा देते थे, कर्जदार कसम खा देता था—बस लेन देन पक्का हो जाता था। रुपया कौड़ी पैसा वसूल हो जाता था।

पिताजी का जन्म गदर के साल सन् १८५७ में हुआ। उस समय जब चारों ओर लूटमार और भगदड़ मची थी तो पितामह बीच खाट पर खाट बिछाकर लाठी लिए घर के द्वार पर बैठे रहते थे। गांव में तलवार और तोड़े की बंदूक तथा बल्लम भी रहते थे पर वे जमादार की गढ़ी में रहते थे। गांव का हथियार लाठी थी। गंडासा चलाना, हत्यारों का काम समझा जाता था, लाठी चलाना मर्दानगी का। दूध दही गांव में बिकता नहीं था, बहुत कम वस्तु नकद पैसों से खरीद की जाती थी—अन्न और गुड़ खांड तथा अन्य सब घर में ही तयार हो जाते थे। गांव में बढ़ई, लुहार, मोची, धोबी, नाई, कुम्हार गांव भर की अपनी अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। पर उन्हें नकद पैसे नहीं मिलते थे। फसल पर अन्न मिलता था। ब्राह्मण और वैश्य के लिए भी यही नियम था। कुम्हार हाथ से ही रुपये गिनते थे। बड़े लोग जामे और साधारण मिरजई पहनते थे। पाजामा हिन्दू नहीं पहनते थे वह मियाँ लोगों की पोशाक समझी जाती थी। मुसलमानों से छूआ छूत बहुत था। घर में यदि उस गिलास में पानी दिया

जाता था, तो उसे आग में [illegible] शुद्ध किया जाता था। [illegible]
एक हद से आगे भीतर नहीं आ सकते थे।

पिताजी चार भाइयों में [illegible]
ताया सुखराम ठाकुर [illegible] थे। [illegible]
हुआ था। वे सदैव मुझे - 'मग्रस पाजी' [illegible]
बहुत शौक था, मेरी ताई [illegible] और [illegible]
और पेडा—थोडे में थोडा यत्न से रखते थे। [illegible]
ताई मेरी ८६ साल की आयु पाकर। [illegible]
बडा भारी डील था। चेहरा गुलाब के समान [illegible]
चारों ओर से फूली हुई थी। बडे बडे [illegible]
अनुहार थे। गले की खाल बहुत नीचे तक [illegible]
समान थी। लडाकू चारों भाई थे। पर ताया जी [illegible]
थे —तो एकाध खून खच्चर अवश्य हो जाता था। [illegible]
और समूची भैंस का दूध उनके लिए यत्न से [illegible]
को देती, न बहुओं को हाथ लगाने देती। आम [illegible]
निशान लगा आते थे, फिर उस पेड का आम [illegible]
चौथे जाते, मन डेढ मन आम उतरवाए, टोकरा भरा, [illegible]
चुस्की ली और फेंका। क्या मजाल जो एक [illegible]
आए तो ढाई सेर दूध अघौटा पिया और [illegible]
डरते थे। नहाने से बचते थे। बचपन में हम [illegible]
कर तालाब में कमर कमर जल में [illegible]
छूकर कहा—पार हो गया पानी, देख। [illegible]
है। वहाँ के रईस ठाकुर थे कुँवर हनुमन्तसिंह। [illegible]
बहुत दिन धनौरा रहे। पिताजी [illegible]
बहुत मशहूर थी शेर के शिकार के लिए। [illegible]
बडे बडे अंग्रेज हाकिमों से हो गई थी। पिताजी [illegible]
और गंगाजी ले गए। दोपहर तक हथिनी के साथ [illegible]
उनसे बहुत हिल गई थी। ठाकुर [illegible]
अनूपशहर के पास एक रियासत थी 'गमा'। [illegible]
औरत थी। बुढापे तक पर्दे में रही, किसी ने उँगली [illegible]
न सुना, मगर रुआब सारे अमले पर। कचहरी के [illegible]
का काम देखती थी। जमीदारी के उन दिनों झगडे बहुत होते थे। [illegible]

[illegible] था। अदालत कचहरी के झंझट में ये लोग [illegible]। [illegible], रानी ने धनौरा कुर्क कर रखा था, पर [illegible] ठाकुर [illegible] दी। एक बार रानी का एक आदमी [illegible] में फँस गया। रानी ने [illegible] को बुलाकर कहा — अरे, सुखराम, तुझे अपने ठाकुर का भी ध्यान है।

'सरकार क्या चाहती हैं ?'

'धनौरा कुर्की पर चढ़ा है, अब तक तरह देती रही, अब नीलाम कराऊँगी। पर तू कहे तो धनौरा छोड़ दूँ।'

'छोड़ दीजिए सरकार, आप जो कहें मैं वही करूँ।'

'तो देख, मेरा आदमी कतल के मुकदमे में फँसा है, ठाकुर का हाकिम से मेल है, ठाकुर मेरा आदमी छुड़ा दे तो मैं धनौरा छोड़ दूँ।'

'पक्की जबान है सरकार ?'

'मैं तेरे सामने कह तो चुकी।'

'तो मैं ठाकुर से कहता हूँ।'

'पर फैसला कल ही सुनाया जायगा।'

'तब तो मुश्किल है।'

'छूट भी तो साठ हजार की है, आज का दिन और सारी रात है, घोड़ी कस जाती हैं, अभी दौड़ जा।'

और ठाकुर ने आधी रात को अंग्रेज सेशन जज की कोठी पर हुल्लड़ मचाया। साहब ने [illegible] में फैसला लिख चुका, मुलजिम को फाँसी होगी।

'तो हुजूर मेरा धनौरा गया।'

'क्या रानी धनौरा छोड़ देगी ?'

'उसकी जबान [illegible] है।'

'पक्की बात है, लिखा पढ़ी हुई ?'

'हुजूर, [illegible] ठाकुर हैं, दुश्मन हैं तो क्या, जुबान नहीं पलटते।'

और फैसला [illegible] गया। मुलजिम रिहा हो गया। रानी [illegible] धनौरा छोड़ दिया। साठ हजार की भरपाई कर दी।

[illegible]। घुड़चढ़ी होकर बारात गाँव के सिमाने पर जा पहुँची थी। गाँव में [illegible] रहते थे। [illegible] का गाँव था। [illegible] अक्सर ठाकुर [illegible] थे। [illegible] में आधी रस्म हिन्दू और आधी रस्म मुसलमानी होती थी। फिर भी मुसलमान [illegible] थे नहीं। [illegible] ताजियादारी गाँव में ठाठ से होती थी। घुड़चढ़ी में निकलकर बारात को गाँव से बाहर निकाल तायाजी एक नाई के चबूतरे पर

खडे होकर ताजियादारी देखने लगे। [illegible]
सुखाराम ने फेंका है। आवाज आने लगी—मारो मारो।

ताजिए जमीन पर रख दिए गए। [illegible]
खीची। लोगो ने ताया से कहा— [illegible]
निकल जाओ। पर ताया ने कहा—[illegible]
नही। फिर, मेरी मा क्या दुबारा मुझे पैदा [illegible]
कधे पर लाठी पडी। ताया ने जूता [illegible]
पर पडता, उस ओर का [illegible]
ओर सत्रह लाठिया छीन छीन कर [illegible]
पहुँच गई। ढाईसौ आदमी थे, [illegible]
लाठी चली कि सिर खिल गए। ताजिया [illegible]
छोड भाग खडे हुए। ताया ने [illegible]

जमीदार को खबर मिली। [illegible]
फूक डालना भारी फौजदारी घटना था। [illegible]
मे आया। गाव के चुने हुए गो पचास आ [illegible]
बैठा लिया। दिन भर बठाल रक्खा, फिर [illegible]
को गाव ने निश्चय किया और दूसरे दिन [illegible]
कर गाव के सिमाने पर रख [illegible]
नवाब साहब, कल को हम मर जाय [illegible]
रही है। वही कलमदान मगाकर नवाब [illegible]

ऐसी जिन्दगी थी उनकी। [illegible]
अनगिनत झुर्रियाँ पडी थी। [illegible]
उतनी ही तेज तरार थी, पर [illegible]
बहुधा उनके पुत्र [illegible]
उनके अन्त समय मे मै पास [illegible]
घिरी ऊर्ध्व स्वास [illegible]
उठी, और 'गई' कहकर ताया ने भी [illegible]

अक्षराभ्यास

चाँदोख से सिकन्दराबाद [illegible]
निकट रसूलपुर नामक एक छोटे से गाँव मे [illegible]
४ या ५ वर्ष की रही होगी। परन्तु वहा का [illegible]
कच्ची दीवारो पर छप्पर का उसारा, पूर्व दिशा मे घर का द्वार, [illegible]

[illegible] की गली, पास पड़ोस [illegible] स्मृति है। मुझे विश्वास है [illegible] सब गली कूचा [illegible] ताजा है। [illegible] पण्डित जी जिन्होंने मुझे [illegible] जिसका नाम भूरा था, पर जो [illegible] जिसके घर हम भाड़ पर चना ज्वार [illegible]। जिनके पुण्य प्रताप से मैंने अक्षराभ्यास किया, जिन्होंने मुझे अक्षरारम्भ कराया, उन पुण्यश्लोक पण्डित जी का नाम याद नहीं रहा, सम्भवतः [illegible] था। खूब याद है [illegible] गौरांग ब्राह्मण थे। दुबला पतला शरीर था, [illegible] मूछें थीं। वह चौपाल भी मुझे याद है, जहां पाठशाला लगती थी। गांव के एकदम छोर पर पश्चिम दिशा में, खूब ऊंची कुर्सी। कच्ची दीवारें और बिना किवाड़ों की तिदरी। पाठशाला भी हमारी वहीं लगती थी। गांव के बूढ़े लोग वहीं चारपाइयों पर बैठकर हुक्का पानी भी पीते थे, [illegible] में उपलों की आग सदा दबी रहती। पड़ौस में ऊख पिलती, रस पकता, गुड़ बनता। उस गुड़ की गन्ध माधुरी तो अब तक मेरे [illegible] में बसी है। गर्म गर्म गुड़ खाने का स्वाद भी अभी जिह्वा पर है। पाठशाला में हम खुली धरती पर बैठते। पण्डित जी नारियल हाथ में लेकर चारपाई पर बैठते, पुस्तकें हमारे पास नहीं थीं, और न कागज, कलम, दावात। लकड़ी की तख्तियाँ थीं। [illegible] हिरमजी [illegible] थी। उसमें [illegible] चमकने लगता था। उस पर लिखा जाता था [illegible] मिट्टी घाल ली जाती थी। [illegible] हमारी माता जी [illegible] हमारे पढ़ने [illegible]। [illegible] याद नहीं है। शायद [illegible] हमारे घर से जाता था। [illegible] आटा, [illegible] पण्डित जी खूब तीखी दृष्टि से [illegible] तोलते जोखते [illegible] पण्डित जी को [illegible] भर कर सीधा [illegible] जाता था।

जिस दिन मेरा [illegible] हुआ, और मैं पहली बार पाठशाला में गया—वह दिन भी मुझे [illegible] याद है। सुना था कि पण्डित जी मारते हैं, कान खींचते हैं,

मुर्गी बनाते है। एकाध बार दूर खड़े होकर मुर्गा [illegible] देखा भी था। माता पिता ने मेरी पिटाई कभी [illegible] की हो। पिटाई से मै घबराता भी बहुत [illegible] बालक की पिटाई होते देखता तो रोते हुए घर भाग [illegible] छिपाकर सुबक सुबक कर रोने लगता। माता समझ [illegible] बहुत देर बाद हिलकियां लेते लेते मैं [illegible] रहे है। तब माता मुझे बहुत ढारस देकर [illegible] अब भी पसठ वष की आयु मे वैसा ही है। [illegible] नही सकता। लज्जाजनक बात हो सकती है पर [illegible] रोता देख अब भी मै रो उठता हूँ। घर मे [illegible] कोई बालक रोता है, तो मेरी चलनी [illegible] हुआ, कह कर मैं इस कदर परेशान होकर दो [illegible] और पत्नी मेरी आखो मे आसू देख [illegible] मे किसी बालक को मैने मारा पीटा नही। [illegible] मुझमे बहुत है। पर गुस्से मे मै बकझक नही करता। [illegible] चुप्पी से बालक बहुत घबराते है। घर के लोग भी और [illegible] दो दो दिन चलती है। जब तक चलती है, सारे घर [illegible] जाता है।

अब, जब मुझे रजब पाठशाला जाना पड़ा [illegible] मेरा सिर काटने को ले जाया जा रहा है। [illegible] मा ने बारम्बार चुमकारा, पुचकारा, लड्डू [illegible] पिताजी ने भी फुसलाया और मुझे पाठशाला [illegible] मिला, नई धोती मिली, नई टोपी, [illegible] तरह याद है। उन दिनो मे हाथो मे [illegible] मे चादी की करधनी भी पहनता था। [illegible] बाद सिकन्दराबाद मे आकर ही पहना। [illegible] पिताजी ने मेरी धोती बांधी थी और [illegible] पण्डितजी के सम्मुख बताशे रक्खे गए, [illegible] को बाटे गये। मैंने पण्डित जी के कहने [illegible] टीका दिया। फिर मेरा हाथ पकड़ कर पण्डितजी ने [illegible] तीन बार 'श्री' उच्चारण करवाया। बस, इस दिन [illegible] मे चढकर घर चला आया। बताशे जो मुझे मिले [illegible]

हँस रहा था। हँस हँसकर पाठशाला की बात सुना रहा था। मैंने 'श्री' पढ़ा है, यह भी मैंने बता दिया। उस दिन की वह 'श्री' जैसे मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद में रम गई। कभी न भूली जा सकी।

परन्तु आगे गाड़ी ठप्प हो गई। पिताजी मुझे साथ ले जाकर पाठशाला छोड़ आते और मैं तमाम दिन तख्ती गोद में लिए, तथा सरकण्डे की कलम हाथ में लिए बैठा रहता। लिखता कुछ भी नहीं। पण्डितजी मेरी काफी रियायत करते थे। पिताजी ने कह दिया था कि मेरे साथ मारपीट न करें। हकीकत यह थी कि मेरे साथ मारपीट करना खतरनाक बात भी थी। क्योंकि जब मैं रोना शुरू करता था, तो आसानी से मेरा रोना बन्द नहीं होता था। रोते रोते मेरी सांस उलट जाती थी। दो एक बार तो दम घुटते घुटते रह गया। आंखें पलट गईं। पिताजी ने ये सब बातें पण्डित जी को समझा दी थीं। पण्डित जी तरह दे गए। पर मैं तो लिख ही नहीं सकता था। पण्डित जी प्यार से, लाड़ कर कहते—'अब लिखता क्यों नहीं।' तो मैं सुबकियां लेकर कहता—पिता जी लिखेंगे। पिता जी घर पर तख्ती लिखते, मुझे समझाते, तो मैं इत्मीनान से बैठा देखता। मेरी यह धारणा थी कि पिताजी तख्ती लिखते हैं, तो अब मुझे लिखने की क्या आवश्यकता है। काफी दिन बीत जाने पर भी मैं केवल ६ अक्षर सीख पाया। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ। परन्तु भूल जाता इ, ई। तब मैं इ, ई कहते कहते हिचकियां लेकर रोते रोते गंगा जमना के सागर बहा देता। पण्डित जी हैरान होकर किसी बालक के साथ मुझे घर भिजवा देते। मगर आप दाद दीजिये कि बिना पण्डित जी के निशान किए अ आ, उ ऊ भी मैंने तख्ती पर बहुत दिन तक लिखना नहीं सीखा। और जब सीखा तो एक ही दिन में पूरे सोलह स्वर लिख गया। सुनिए वह घटना भी। पण्डित जी सुबह ही तख्ती पर सोलहों स्वरों के निशान कर देते थे। कई बार सामने घुटवा देते थे। फिर तख्ती पर लिखने का आदेश देकर दूसरे बच्चों की ओर ध्यान देते थे। बीच बीच में मेरी भी हाजिरी लगाते रहते थे। परन्तु मेरी गाड़ी तो वहीं की वहीं रहती थी। हर बार जब वे कहते—लिख, तब हर बार मेरा एक ही जवाब था, पिताजी लिखेंगे। अन्त में पण्डित जी एक बार गम्भीर हो उठे। और अपने मस्तिष्क का सन्तुलन खो बैठे। उन्होंने क्रोध से लाल लाल आंखें करके लड़कों को ललकारा—कोई है, लाओ तो खजूर की कमच, आज मैं इस चतुर्भुज के बच्चे की खाल उधेड़ूंगा। और पांच सात बालक दौड़ चले खजूर की कमच लेने। खजूर की कमच की करामात मैं चार बार में देख चुका था। बस, मेरी गाड़ी दौड़ चली, और जब तक कमच आई, मेरी तख्ती भर चुकी थी। टेढ़े मेढ़े अक्षर, कांपते हाथ, आंसू भरी दृष्टि और हिचकियों से भरपूर रुदन सहित अटक अटक कर उन अक्षरों का अस्फुट उच्चारण। पण्डित जी ने शाबाशी दी, पीठ ठोकी, पुचकारा, गोद में उठाया, मगर इस लाड़ प्यार से भी मेरा रोना तो

रुका नही। पण्डित जी उस दिन स्वयं सभी [illegible]
दिखाई, बधाइयां दी। इस प्रकार मेरा [illegible]
पण्डित जी का हमारे सामने ही देहावसान हो गया। [illegible]
समान देह और डाली म बठकर वहा से [illegible]।

ग्राम्य जीवन

मै उस समय यद्यपि ४ ५ वर्ष की आयु [illegible]
ग्राम्य की बहुत सी बातें मेरी स्मृति मे है। [illegible]
का हसना, उसका भाड झोकना और [illegible]
है। मुझे वह बहुत प्यार करती थी। [illegible]
से घण्टो बात करती थी। जब भी वह आती [illegible]
थी। उसका वह चौडी गोट लगा गरारेदार [illegible]
भी मै नही भूला हूँ।

भूरा भरारा का घर हमारे घर के सामने [illegible]
थी। हम दोनो खूब घुलमिल कर खेलते थे। [illegible]
उम्र उसकी मुझ से अधिक थी। उसकी भी [illegible]
गहरा चिह्न जो मेरे स्मृति पट पर है, वह यह [illegible]
आकृति उस की अब भी मेरी दृष्टि मे है। [illegible] और
लाल चेहरा। बहुधा हमारे द्वार पर बैठा [illegible]
बडी भारी भीड आई और कुछ लोग [illegible]
मे घुस गए। गाँव भर वहाँ इकट्ठा हो गया। [illegible]
कर दिया। उस दिन तीन भवेशी [illegible]
कहा—भूरा चोर है। सिपाही और [illegible]
छिपा। वही से सिपाहियो की [illegible]
भूरा को बाध कर ले गए, तो मै [illegible]
क्या करेगे? और माता [illegible]
सुनी। दूसरे दिन उसकी [illegible]
तो उसने मुझे धक्का देकर गिरा दिया और भाग गया। [illegible]
माता जी ने फिर कभी न उस घर [illegible]
तक मै उसके साथ बात करता [illegible]
कर लेती थी, पर धीरे धीरे यह भी [illegible]
की धाक मेरे मानस पटल पर गहरी [illegible] गई। आज भी [illegible]
मेरे मन मे वही दहशत पैदा हो जाती है, जो उस समय हो गई थी। और [illegible]

तो स्वप्न में भी देख कर मैं डर जाता हूँ।

पीपल का बहुत बड़ा पेड़ हमारे घर के सामने ही था। उसकी स्मृति का एक कारण यह भी है कि वह हमारा अभिसार स्थल था। वहां भूरा चोर की लड़की उसी तरह मेरी ताक झांक में रहती, जैसे मैं। परन्तु माता मिलने नहीं देती थी, उसे घर में आने भी नहीं देती थी। शायद पिता जी ने भूरा के खिलाफ गवाही दी थी। उससे उस परिवार के साथ हमारे परिवार का सौख्य भाव नहीं रहा था। परन्तु मैं छत पर चढ़ कर, और वह लड़की उस पीपल के पेड़ के नीचे आकर दो चार बात कर लेते थे। कभी कभी दिन में अनेक बार यह अभिसार सम्पन्न होता था। तायाजी गांव में मेरे सबसे बड़े आलम्बन थे। शाम को तो वे नित्य मेरे पास आते—बहुधा एक पेड़ा लाते। गाँव का बनिया कभी-कभी पेड़ा बनाता था। मैं भी बहुधा उनके पास जाता। उनकी बगल में बैठ कर कहानी सुनता। पर दिलचस्पी मेरी उनकी मूछों में थी। बड़ी बड़ी गलगुच्छेदार उनकी मूछें थी। जब वह कहानी कहते, तो मूछें हिलती थीं। उन मूछों का हिलते डोलते देख मुझे बड़ा मजा आता था। कभी कभी मैं हाथों में पकड़ कर भी उनकी मूछों का आनन्द लेता था। हंस कर वह कहते—सुअर पाजी, यह क्या करता है। मेरा ख्याल है, मैं पिताजी से भी अधिक उनके ही पास रहने में खुश रहता था। जब कभी मैं उनके पास जाता, वे कुछ न कुछ मिठाई मुझे खिलाते थे। गाँवों देहातों में मिठाई सदैव नहीं मिलती, पर तायाजी मेरे लिए इसका बंदोबस्त रखते थे।

हमारे घर जो भगिन आती थी, वह बहुत बूढ़ी थी। हमारे घर में पायखाना सब स्त्री पुरुष जंगल में जाते थे। पर मेरे लिए पाखाने का स्थान घर में बना था। बुढ़िया भगिन आकर वही स्थान साफ करती, फिर घर के बाहर सहन को बुहारती। फिर झाड़ू टोकरा एक ओर रख, माता से बात करने देहलीज में बैठ जाती। माताजी उससे बातें करती, दूर से ही पैसा पल्ला करती, वह आसीस देती। मेरी बहुत बहुत बलैयां लेती। उसकी बात मुझे बहुत पसन्द थी। माता जी के साथ वह जब बातें करती थी, तब मैं बड़े चाव से उस की बात सुनता। फिर माताजी उसे मेरे हाथों से रोटी या अनाज दिलाती। उन चीजों को पाकर वह मुझे बहुत आशीर्वाद देती। दीर्घ जीवन की कामना करती। उससे मैं बहुत खुश होता था और आज अभी तक पचपन का होने पर भी तन्दुरुस्त और खुश शायद मैं उसी बुढ़िया भगिन के आशीर्वाद से हूँ।

गाँव के किनारे पर छोटी सी नहर थी। उसके किनारे पर बाग था। ये दोनों वस्तु भी मेरी स्मृति में हैं। नहर में लोग नहाते थे—तब मैं बड़े चाव से उन्हें देखता था। परन्तु एक दिन, कोई एक बालक था, हम दोनों ही खेलते २ उस नहर के किनारे पहुँच गए। उस समय वहाँ कोई भी आदमी न था। बालक ने मुझे बातों ही बातों में

ढकेल दिया, और भाग गया। उस [illegible]
पर हे, जसे अभी अभी मै डूब रहा [illegible]
आ गई और मै किसी तरह बच कर [illegible]
वही यदि जल समाधि ले लेता, तो यह [illegible]
कौन देखता ? नगरवधू, सोमनाथ और वयं रक्षाम [illegible]
फिर बहती नहर मे पाच वर्ष के [illegible]
चाहिए। सुन कर माता बहुत रोई थी।

गाव मे खाने पीने की चीजो [illegible]
पेडा और बताशा, वह भी सदैव नही मिलता [illegible]
बाजार तो था ही नही। मेरी प्रिय खाद्य [illegible]
रोटी का टुकडा। जब भी भूख लगती, माता [illegible]
का लोंदा रख कर खिलाती थी। पिताजी [illegible]
गोद मे बैठ कर नमकीन रोटी और घी खाना [illegible]
जरा सयाना होकर स्वय खाना खाने लगा [illegible]
शुरू के एक दो ग्रास मे ही खा जाता था, [illegible]
जीवन मे आज तक कायम है। समय [illegible]
फाके मस्त रहना। आगे की सोचना [illegible]
रोटी और ताजा घी आज भी मेरा [illegible]
ईयो की परवाह, न सब्जी तरकारियो की।

मेरा [illegible]

जिला बुलन्दशहर के अन्तर्गत [illegible]
और थाना है। कायस्थो और बनियो [illegible]
वर्षों मे बहुत कम उस कस्बे मे [illegible]
थे, अब बनिए है। कायस्थ [illegible]
था। उस मुहल्ले ही मे [illegible]
बसी हवेलिया कस्बे के दूसरे भाग मे [illegible]
सम्पन्न जाति है। लोग कहते है कि [illegible]
तो समझता हू कि सर्वोपरि जाति तो कायस्थ [illegible]
और आर्थिक एव सामाजिक स्तर मे उनके समान [illegible]
उनका उत्थान मुसलमानो के राज्य के उत्थान के साथ [illegible] अंग्रेजी राज्य मे
भी उन्हे विकास का पूरा अवसर मिला। कायस्थो मे [illegible]
युग के साथ चलते रहे। सदैव उन्होने आधुनिकता का प्रतिनिधि [illegible]

विजय के बाद मुसलमानों ने दाहर को पराजित कर जब भारत में प्रथम राज्य स्थापना की, तब नए और अपरिचित राज्य की व्यवस्था का भार उन पर पड़ा। आक्रमण करके राज्यों का जीतना और बात है किसी देश के भूभाग पर शासन करना दूसरी बात है। दाहर को विजय करने वाले अरब योद्धा थे, परन्तु विदेशी थे, न उस देश की भाषा जानते थे, न संस्कारों से परिचित थे। उन दिनों हिन्दू राजाओं के राज्य में सर्वोपरि राज्य कारभारी जन ब्राह्मण ही होते थे। राजा के बाद हिन्दू राज्य में ब्राह्मणों ही का मान होता था। इससे मुसलमान विजेताओं ने ब्राह्मणों से राज्य के कारोबार में सहयोग की मांग की। यद्यपि दाहर का पतन एक ब्राह्मण कुचमानी ही के कारण हुआ था। पर दाहर स्वयं ब्राह्मण था अतः मुसलमानों को ब्राह्मणों का सहयोग नहीं मिला। सहयोग मिला कायस्थों का। प्राचीन काल से कायस्थ भी राज्य कारभारी रहे हैं। संस्कृत नाटकों में कायस्थ का उल्लेख लेखक या करणिक के रूप में किया गया है। सो इस अधिकारी अवसर पर कायस्थों को ब्राह्मणों को पीछे फेंक कर आगे बढ़ने का अवसर मिला। बाद में अलाउद्दीन ने ब्राह्मणों के सामने प्रस्ताव रखा— कि वे फारसी पढ़ें और राज्य का कारोबार फारसी भाषा में करें, परन्तु ब्राह्मणों ने म्लेच्छ भाषा पढ़ना स्वीकार न किया, स्वीकार किया कायस्थों ने। तब से मुगल राज्य के अन्त तक हिन्दुओं में कायस्थ ही मुसलमानों के बाद सर्वोपरि राज्य कारबारी रहे और उनका बड़ा भारी सामाजिक उत्थान हुआ। वे फारसी के पूरे पण्डित बन, यहां तक, कि शिक्षा-संस्कृति के मामले में वे मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच की कड़ी बन गए। सभ्य-सम्पन्न मुसलमान राजवर्गी जनों के समान उनका रहन सहन, खान पान हो गया। केवल धर्म और जाति अवश्य हिन्दू रही।

अंग्रेजी अमलदारी में सबसे पहले बंगाल के कायस्थों को उत्थान का अवसर मिला। बंगाल में भी ब्राह्मणवाद बहुत प्रबल था। एक प्रकार से वहां दो ही हिन्दू वर्ण थे, ब्राह्मण और अब्राह्मण। वहां भी कट्टर ब्राह्मणों ने मलेच्छों की सेवा का विरोध किया, और अंग्रेजी पढ़ना धर्म विरुद्ध समझा। कायस्थों ने खूब उत्साह से अंग्रेजी पढ़ी, और ईस्ट इंडिया कम्पनी के बड़े बड़े ओहदेदार बन गए। अंग्रेजों ने उन्हें राजा और रायबहादुर के खिताब दे देकर उनके सामाजिक स्तर को भी उच्च कर दिया। बाद में ब्राह्मणों ने भी ब्रह्म समाज की शरण लेकर कट्टरता त्याग दी, और कायस्थों से होड़ ली, पर तब तक कायस्थ जाति बंगाल में सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से ब्राह्मणों के बराबर बड़ी जाति बन चुकी थी। केवल धार्मिक दृष्टि से ही वह ब्राह्मणों से नीचे थी। पर उसका कोई मूल्य ही नहीं रह गया था। इस प्रकार मुसलमानों और अंग्रेजों के राज्य में कायस्थों का पूरा उत्थान विकास हुआ।

फिर रायों में उन दिनों, अब से पचास वर्ष पूर्व कायस्थ खूब सम्पन्न थे।

वहाँ मेरे स्कूल के सहपाठी अनेक [illegible]
था। अत मैं रोज ही स्कूल आते जाते [illegible]
था। मैं तो एक मजूर पिता का बालक था। मेरे पिता [illegible]
छूट गई थी। एक छोटी सी दुकान मे बैठकर [illegible]
में धन सम्पन्नता का शायद कोई मापदण्ड न था। [illegible]
भली भाँति अपने को एक गरीब बालक समझने लगा था, [illegible]
छोटा सा मकान, शायद आठ आना महीना भाड़े पर [illegible]
अँधेरी कोठरी अच्छी तरह याद है, जहाँ मेरे [illegible]
दिन रात अधकार रहता था। कोठरी मे ऊपर [illegible]
कुछ किरणे दोपहर को आती थीं। उन किरणों मे [illegible]
उनको देखने का बड़ा चाव था। इससे उस कोठरी मे [illegible]
कोठरी सटर पटर सामानो से भरी रहती थी। पर [illegible]
थी। नवजात शिशु को देखने मैं वहीं जाता था। [illegible]
मे हम सब इकट्ठे सोते थे। वहा हमारे परिवार मे [illegible]
हुई थी। सब एक साथ उसी कोठरी मे सोते थे। [illegible]
सोता रहा। बाद में किसी एक भाई के साथ। [illegible]
मुझे बहुत दिन बाद मिला। उस मकान की कीमत ५००) [illegible]
सके। परन्तु वर्षों तक घर मे चर्चा होती रही—[illegible]
पच्चीस वर्ष बाद उसी गली मे मैंने एक मकान खरीदा।

मैं स्कूल मे जाता कुरता पायजामा पहनकर। [illegible]
दार गबरून का होता था। पैरों का जूता भी [illegible]
आते थे कोट पहनकर, विलायती जूता पहनकर, [illegible]
नौकर उनका बस्ता लेकर आते और ले जाते थे। [illegible]
थे। मेरा तो उनसे बात करने का भी साहस नहीं होता था। [illegible]
करते—अबे तबे करके। जब वे स्कूल से छुट्टी पाकर [illegible]
खडा खडा उन्हें देखता रहता। फिर धीरे धीरे अपने घर आता। [illegible]
खडा होकर खिडकियो से उनकी हवेलियों मे झाँकता। [illegible]
रहते, छत पर पखे लटके रहते। [illegible]
किसी कायस्थ सहपाठी के घर की ड्योढ़ी लाँघने की [illegible]
हुई ही नहीं। ताल मेल खाया ही नहीं। भला कहाँ राजा भोज और कहाँ [illegible]
बनियो के लडके भी मेरे सहपाठी थे। लेकिन सब भाडू। आज उनमे से मैं किसी एक
का भी नाम नहीं जानता हूँ। कायस्थ लडकों के बहुत नाम अब भी जानता हूँ। [illegible]

एक थे शान्तिस्वरूप, एक दरिद्र अनाथ बालक, जो आगे अपने जीवन में प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर एस० एस० भटनागर के नाम से प्रख्यात हुए। मेरे एक अन्य कायस्थ सहपाठी, जिनके पिता राजाजी कहाते थे—तथा जिस महल्ले में वे रहते थे—वह राजा जी का कूंचा कहाता था, उनके लड़के जो बग्घी में स्कूल आते, सदा अबे तबे करके मुझसे बोलते थे, कोई चालीस साल बाद न जाने कहां से मुझे तलाश करते आए—शराब के नशे में धुत्। दांत सब टूटे हुए थे। चेहरा पिचका, बाल सफेद, मैली कमीज, और गन्दा पायजामा। पुराना जूता। पुराना परिचय दिया—और कहा कि उनका पुत्र किसी चोरी या ऐसे ही अपराध में पकड़ा गया है। उसकी जमानत की आवश्यकता है। एक और कायस्थ सहपाठी हैं, जो बहुधा दिल्ली के गली-कूचों में आवारागर्दी करते दीख जाते हैं। कभी वे भी सिकन्द्राबाद में बड़े जमींदार के लड़के थे।

अब सिकन्दराबाद बहुत कम जाता हूँ। यद्यपि यहाँ शाहदरे से वह तीस मील ही है, और दो घण्टे से भी कम में वहाँ पहुँचा जा सकता है, भाई सेमसन वहाँ रहते हैं, पर मेरा जाना तो वहां बरसों में होता है। अब तो वहाँ बनियों का बोलबाला है। सट्टे में, व्यापार में, उन्होंने खूब रुपया कमाया है। बड़ी-बड़ी हवेलियाँ खड़ी की हैं। कायस्थवाड़ा उजड़ गया है। हवेलियाँ सूनी पड़ी हैं। कुछ ढह गई हैं। गलियोंमें सन्नाटा है। मगर बनियों की मण्डियाँ आबाद हैं। फिर भी उनमें वह शान नहीं है। सूद और सट्टे का व्यापार विचित्र है, सूदखोरों की रईसी में मनहूसियत है, कभी राजा कभी रंक।

हम लोग भी जिस मुहल्ले में रह रहे थे, वह बनियों का था। मुहल्ले में जो सबसे धनीका घर था, वह एक कोढ़ी बनियाँ था। एक आँख से कानाँ, नाम था बंसीराम। कस्बे भर में "काना बंसी" के नाम से प्रसिद्ध। बड़ा मनहूस आदमी था। उस की सूरत मुझे याद है। कभी मैंने उसे कपड़े पहिने नहीं देखा। एक मैली धोती कमर में लपेटे एक लाठी हाथ में लिए एक दो बार द्वार पर खड़ा देखा था। वह बहुत कम गृह द्वार से बाहर निकलता था। अपनी अंधेरी बैठक में, जिसमें रास्ते के रुख एक छोटी सी खिड़की थी, अकेला पड़ा रहता था। न सन्तान थी, न स्त्री। उसे इस बात का भय था, कि कहीं कोढ़ियों का दल उसे पकड़कर न ले जाय। एक दो बार मैंने देखा भी था, कोढ़ियों का दल उसके द्वार पर धरना देकर बैठा हुआ। वे कह रहे थे—निकल, हमारे साथ चल, भीख माँग और खा, भगवान ने तुझे कोढ़ी बनाया है। धन पर सांप बनकर क्या बैठा है। अब तो कोढ़ियों के दल कहीं भी देखने को नहीं मिलते, परन्तु उन दिनों तो पचास पचास कोढ़ियों की टोलियाँ निकलती थीं। मैंने सुना था बंसी हर बार कोढ़ियों को कुछ दे दिला कर बड़ी कठिनाई से टालता था। सुना था—उसके पास नकद एक लाख रुपया था, सूद पर लेन देन करता था। न मुनीम, न गुमाश्ता। प्रसिद्ध था जो कि उसके फंदेमें फँसगया, उसका तीन पीढ़ी तक निस्तार नहीं

होता था। कितने अनाथ [illegible]
बना था। इसकी बहुत बहुत [illegible]
पडोस ही मे था। जब वह मरा, तो [illegible]
बना। विमान की तयारी का सामान [illegible]
दराबाद से दिल्ली तक जान आने [illegible]
वे प्रतिदिन शाम को चलती थी। दोपहर [illegible]
मील चलकर। बनिए देहाती बहुधा [illegible]
थी। नीचे माल भरा रहता था, ऊपर मुसाफिर। [illegible]
हे। रजाई ओढकर जो सोए तो सुबह [illegible]
दम फस्ट क्लास सलून। हा रेल रात भर [illegible]
ऊँटगाडी ३०, ३२ मील काटती थी। [illegible]
आया था। इसी से तीन दिन लगे। [illegible]
उत्तराधिकारी बना था उसका बूढा भाई, और [illegible]
बगले बजा रहे थे। जब वह मरा, तो मै [illegible]
उस पर तब कविता लिखी थी। उसकी [illegible]

‘रे काने बसी, कसा विमान बनाया।
जब तक जीता रहा, नरक मे रहा, न भागा गाया।
मरने पर यारा ने तेरा पमा खूब लुटाया। [illegible]

खूब प्रसिद्ध हुआ यह मेरा गीत [illegible]
स्त्रिया थी, जो किराए पर घरो मे गाना [illegible]
मुडन नामकरण आदि अवसरो पर ये बुलाई [illegible]
शरीक होती थी। रात भर गाना [illegible]
बहुधा रतजगा होता था। [illegible]
मडन आदि सस्कार, [illegible]
खाना पीना यज्ञ हवन होता था। [illegible]
होता था। सबसे प्रथम यह गीत [illegible]
उन्ही को मैने यह गीत सिखाया। [illegible]
उन्होने यह गीत गाया—ना स्त्रियो मे [illegible]
फिर तो कस्बे मे स्त्रियो का कोई रतजगा [illegible]
तक काने बशी का यह गीत न गाया जाता [illegible]
घर ही मे कोई उत्सव था—तब [illegible]
यह गीत प्रचलित रहा। उस समय [illegible]

गहन म जो अन्तर था वह असाधारण था । तब मै इस की नापतोल नही जानता था ।

कायस्थवाडा कस्बे की उत्तरी सीमा पर था । दक्षिणी सीमा पर खत्रीवाडा था, जो सब उजाड वीरान पडा हुआ था । सत्तावन के विद्रोह के बाद मुगल सल्तनत की समाप्ति पर भारी भारी दौलत ला खत्रिया और अग्रवाला ने सचित की थी, उसे लेकर वे दिल्ली से पूरब मे मुर्शिदाबाद तक भाग कर बस गए थे । लखनऊ, कानपुर, बनारस म उनके बडे बडे घराने स्थापित हुए, तभी इस कस्बे मे खत्रीवाडा भी आबाद हुआ था । परन्तु शिक्षा, धन और आमदनी के अभाव से खत्रिया का क्षय होता गया और अब उनका यह मुहल्ला वीरान पडा था ।

हमारे घर के सामने मुकन्दा पकौडिया का घर था । सुबह ही से उसकी भट्टी सुलगती । पकौडिया बनाता, दही छानता और तीसरे पहर बेचने बाजार ले जाता । उसकी सारी क्रिया मैं बडे चाव से देखता । बहुधा मै उसका पहिला ग्राहक होता । कस्बे भर मे मशहूर थी उसकी पकौडियाँ । पैसे की आठ देता था । मुझे एक अधेला प्रतिदिन चाट खाने को मिलता था । जब भाई सेमसन बडे हुए, तो दोनो को एक पैसा । हम दोनो बडी देर तक प्रतिदिन उस पैसे का आधा आधा उपयोग करने का सलाह मशवरा करते, मै तो प्राय सदैव ही पकौडी खाने के पक्ष मे होता । पकौडिया कस्बे मे तो क्या, आस पास वैसी बढिया कही नही बनती थी । उसकी पकौडिया ऐसी बढिया बनती थी कि बाजार मे जाते ही घण्टे दो-घण्टे मे सब खत्म हो जाती थी । खालिस सरसो का तेल और बढिया भैस का दही । उन दिनो सपरेट का चलन भला कहा था । नित्य उसकी कारीगरी देखते रहने से मैं भी पकौडी बनाने म उस्ताद हो गया । अपने जीवन म मैने सारे हिन्दुस्तान के शहरो की पकौडिया खाई है, बचपन का शौक और रक्त म उसका मिश्रण । जहा दही की पकौडिया दीख पडी, कि जी मचल गया । बिना खाए रहा नही जाता । मगर वह चीज कहा ? वह स्वाद कहा ? मुझे जब कभी पकौडिया खानी होती है, घर म बनाता हूँ । वही मुकन्दा का नुसखा, वही स्वाद । बहुधा मित्रो को बनाकर खिला चुका हूँ । मुकन्दा के लडके ने मेरे देखते ही देखते ३।४ मकान उसी कमाई म खरीद लिए । म भी अपने को आज दही की पकौडिया बनाने म हिन्दुस्तान का एक उस्ताद आदमी समझता हूँ । मुकन्दा पकौडिया के कुटुम्ब के दूसरे आदमी भी यही धन्धा करते थे । जात के ये लोग सारस्वत ब्राह्मण थे । दूसरा आदमी था परसादी । मुकन्दा का भतीजा । वह ठाठ का खोमचा लगाता था । दही बडा, पकौडी, पापड, कचरी सोठ की पकौडी, पपडी, पानी के बताशे, परन्तु सब कुछ अद्वितीय । आज कही वैसे नही हो सकते । वैसे पापड न कहीं अब देखने को मिलते है न खाने को । पैसे के दो । थाली के बराबर बडे-बडे । रुई के समान हल्के, हाथ पर रखते ही गायब । जिनका नाम पापड । आज भी म उन पापडो का

स्वप्न देखता हूँ। न जाने क्या [illegible]
मगर था जनखा। जनखा तो जमा[illegible]
बिरादरी होती थी। वडिया दही क[illegible]
डडे मार मार कर रातत [illegible]
था। गुमल पूरा था। मा, बीवी और स्वय [illegible]
ही खोमचा तयार करने म जुटत थ। [illegible]
रबडी शायद पाच पैसे की [illegible]
स्वाद तो जुबान के सूक्ष्म तन्त्र म है। [illegible]
स्वय अपने हाथो बनाता हू। [illegible]
मे न सीखपाया। खासकर उसका [illegible]
चाची यत्न से मेरे लिए ले आती थी। [illegible]
कभी पापड भी। दही बडे पमे क चार [illegible]
का माल चाची मुफ्त दे जाती थी। [illegible]
वह बहुत प्यार करती था। उसका प्यार [illegible]
हूँ। सोते से जगाकर खिलाती थी।

इन दही की पकौडिया और पापड [illegible] और [illegible]
अद्वितीय बनती थी, रेवडी। [illegible]
भी हिदुस्तान के किसी शहर म नही [illegible]
नही है, परन्तु रेवडी अब भी वसी ही बनती है। [illegible]
था, सोठ छुहारा और जीरे हर का पा[illegible]
कुछ काल पूव तक सिकदराबाद जाता रहा, जब [illegible]
होकर मर नही गया। खेद है कि उसक [illegible]
लेकिन पिछले दिनो तो आठ-आठ आने का [illegible]
था। सर शातिस्वरूप भटनागर स [illegible]
पूछा—क्या कभी सिकदराबाद जात हो? [illegible]
डिया खाने की हुमक उठती है। [illegible] मर गया। [illegible]
कहाँ? तो बोले—हगिज तो है—वही मिला आता हूँ। [illegible]
घर आओ तो वैसी ही बनाकर खिलाऊ? [illegible]
आऊ। परन्तु अफसोस, उस [illegible] बाल मित्र को वह [illegible]
अकस्मात् ही स्वग से उनका बुलावा आ गया। [illegible]
बनती थी। अब तक भी, जव जब सिकन्दराबाद जाता हूँ—[illegible]
हू। परन्तु स्वाद उसम भी वह नही। शायद जुबान घिस गई है।

च ग बनिया भी मेरे लिए अविस्मरणीय है। पडौस में ही उसकी दुकान थी। आटा दाल तो वही से । बहुधा मैं उसकी दुकान से सौदा खरीदता। घी एक रुपए का एक सेर दस छटाक या पौने दो सेर आता था। सन् १९०० से पहिले की या लगभग १९०० की बात है। अब से पचपन वर्ष पूर्व की। आधी शताब्दी से भी अधिक पूर्व की। एक रुपए का घी घर में आता था। उसका एक बडा सा डला तो मैं बन्दर की भाति उचक ले जाता था। उसे रूखा ही खा जाता था। वाह, क्या मजेदार था उस का स्वाद। आज मृत्युञ्जय अणु युग में मुझे खाना पड रहा है—वनस्पति डालडा। राम राम। च दा बनिया ठूठ था। न जोरू न बच्चे। दुबला पतला, काला, काना, मनहूस और चिड चिडा। पत्थर की तरह आधी रात तक खडे पर जमा बैठा रहता। एक मैली धोती कमर में लपेटे। चिडचिडा कर बोलता था। मैं अधेले का भी सौदा खरीदता, तो लभाव लेना कभी चूकता न था। लभाव होता था—चने के बराबर गुड की एक डली। उसे मुह में डाल कर खुशी खुशी सौदा माता को ला देता था। चन्दा बनिया बहुत दिन बाद तक जिन्दा रहा। विद्यार्थी जीवन के बाद भी, जब मैं विदेश से फिर दरावाद आता—च दा से जरूर मिलता था। अपने जीवन में उसने रेल नहीं चढी, और दिल्ली नहीं देखी। नित्य की दाल रोटी के अतिरिक्त अधेले की कोई चीज नहीं खाई थी। मिठाई उन दिनों रुपए की ढाई सेर या पौने तीन सेर आती थी। बढिया घी की बनी। ऐसी ताजी और स्वादिष्ट कि क्या कहू। जलेबी तीन पैसे की आधा पाव। बहुधा बीमारी से उठने पर माता एक सप्ताह तक मुझे आध पाव जलेबिया खिलाती थी। कचौरी मिलती थी एक पैसे की एक। बहुत दिन बाद तक माता, —जब मैं अचानक घर पहुँचता—मेरे लिए चार पैसे की कचौरियाँ मगाती थी। सन १९१२ में जब मैं दिल्ली में रह रहा था, तब दिल्ली में भी पैसे की एक बेढवी मिलती थी।

भूरिया ब्राह्मण भी निराला खोंचा बनाता था। भूरिया शानदार बूढा ब्राह्मण था। ऊची उठान, गौरवर्ण, बडे बडे सफेद गलमुच्छे। रामलीला में रावण बनता था। सौदा घी का बनाता था। सोठ हर की टिकिया और हर का पाक तथा ऐसी ही स्वाग चीजें। अब वह चीज अब मैंने नहीं देखी भी नहीं, खाई भी नहीं, नाम भी नहीं जानता। उनके स्वाद को याद करता हूँ और तरस कर रह जाता हू।

[illegible]प्रसाद कम्पाउण्डर भी कस्बे के दिलचस्प फिगर थे। कायस्थ थे बूढे दुबले-पतले आदमी, तेज बोलते और तेज चलते थे। अंग्रेजी दवाइयों की दुकान थी। पर [illegible] बाबू थे। खूब चलती थी प्रैक्टिस। चिकित्सक बनने का शौक मुझे उन्हीं को देखकर हुआ। रोगी के घर पर आने की फीस नहीं लेते थे। सुनाया आया कि नाडी हाथ में लेकर चल दिए हुए, पदैन। रोगी देखा—और दवा भेजी। अब सुबह शाम दोनों वक्त जब उधर से गुजरेंगे, रोगी का हाल चाल लेंगे। उसे सम्हालेंगे। खूब

रुपया कमाते थे। रात को एक गाना गुजार, पर [illegible] तरकारिया खाने का शौक था। [illegible] थी। परन्तु जब कोई नई तरकारी आती [illegible] के लिए रखती थी। [illegible] माँगा दाम देते थे। [illegible] गबरून का कुरता पहिन, [illegible] के साथ आँख मिचौनी या [illegible] किया। शाम होते ही या तो मैं [illegible] के पास लेट कर कहानी सुनता था। [illegible] और आधा दमडी का भी। [illegible] मेन बहुधा खरीदी है। पिता जी [illegible] जब जरूरत होती—मैं जल्दी से [illegible] जाता। उनसे सौदा खरीदता था।

पिता जी प्यार मुझे बहुत करते थे। [illegible] के उत्पन्न होने पर भी मेरे प्रति उनका प्यार [illegible] थी। मुझे याद नहीं—कि मैं कभी माता पिता से [illegible] एक बार मास्टर ने मुझे मारा था—या [illegible] मेरा पायजामा खराब हो गया था और [illegible] उसके बाद मैं कभी स्कूल में नहीं पिटा। [illegible] मे कानों मे जडाऊ लौंग पहनता था। [illegible] पिताजी ने एक सलमसितारे की टोपी [illegible] पिताजी शादी सरकार में जब जाते, [illegible]

चटशाल की पढ़ाई

आरम्भ में मैं [illegible] हुआ। कस्बे के [illegible] और [illegible] दोनों में दो पण्डित [illegible] थी। पट के लिए खोली गई थी। [illegible] का शागिर्द बना था। शुरू में [illegible] रुपया [illegible], मिठाई और [illegible] गई थी। [illegible] आबाद था। ये सब पगडियाँ ही [illegible] और १०।२० गज या इस से भी अधिक लम्बी पगडी [illegible] पर कलाबत्तू लगता था। गलियारा में [illegible]

था। पण्डित जी पगड़ी सिर पर बाँधते तथा अंगरखा पहनते थे। हाथ में उनके एक डंडा रहता था, जिससे वह भी साथ ही जन्मा था। प्रत्येक बात वह बतलाते हुए करते थे। जोर जोर से पढ़ाई, पहाड़े पढ़ी और पुस्तक के वाक्य बोलो यही बारम्बार आदेश देते थे। पहिली बार पुस्तक मैंने यहीं खरीदी थी। लिखना था उसी भांति तख्ती पर खड़िया मिट्टी के बुरके से। तख्ती पर हिरमजी पोत कर धूप में सुखाता था। तख्ती घोटना भी एक कला थी। हिरमजी को दूध में घोल कर तख्ती पर पोता जाता था, फिर सुखा कर घोटा जाता था। सरकंडे की कलम बनाना दूसरी कला थी। बड़ी सावधानी से कलम तराशी जाती थी। सब से पहिला नया शब्द सीखा मैंने जो अब तक कहीं मेरे व्यवहार में नहीं आया—'कलम तराश' था। पण्डित जी चाकू को 'कलम तराश' कहते थे। हम लोग भी आपस में चाकू को 'कलम तराश' कहते थे। चाकू हमारी पठन सामग्री का एक आवश्यक अंग था। हमारी पाठशाला का अधिक समय तख्ती घोटने और कलम बनाने में लगता था। कलम भी बनाना खूब बढ़िया। यहां सरकंडे जंगल से नहीं लाने पड़ते थे। एक पंसार की दुकानी बाजार से खरीदी जाती थी। कलम का मुंह काटना और चीरना बड़ी कारीगरी की बात थी। जब हम तख्ती लिखते थे—तो बड़े यत्न से। लड़कों में तख्ती भरने की होड़ सी लग जाती थी। हिरमजी के बजाय हम काजल भी तख्ती पर पोतते थे, काजल सरसों के दिए का बनाते थे। उन दिनों घरों में हमारे सरसों के तेल के दिए ही जलते थे। दिए मिट्टी के होते थे। मिट्टी के तेल का प्रयोग उन दिनों घरों में नहीं होता था। कब उसने हमारे घर में प्रवेश किया—मुझे याद नहीं। माता मेरी नित्य रात को सोते समय फूल के कटोरे पर काजल पाड़ कर मेरी आंखों में लगाती थी—यह मुझे भली भांति याद है। काजल आंखों में लगा कर स्याही भरी उंगली का टीका माथे पर लगाती थी। नजर लगने से बचाने के लिए। किसी दिन किसी भी कारण यदि मेरी तबियत कुछ खराब होती तो नजर उतारी जाती थी। ... लाल मिरच और थोड़ी सी राई लेकर ... मुट्ठी में भर कर मेरे सिर और चारों ओर घुमा कर ... मिरचों की आग जलने ... थी। नजर उतर जाती थी। यह मुझे भलीभांति याद है। ... मैंने देखा था—कि उन मिरचों के जलने की गंध नहीं आती थी। मिरचों की गंध न आना ही नजर लगी थी और यह उतर गई इसका प्रमाण था। तख्ती ... हम एक रंग काजल से और दूसरा रंग हिरमजी से पोतते थे—फिर उसे घोट घोट कर चमकाते थे। ... घोटने के ... बाजार में मिलते थे। ... जाते थे।

... पण्डितों में लाग डांट और स्पर्द्धा खूब चलती थी। ... दूसरे की बुराई करते—एक दूसरे के लड़कों की तोड़ फोड़ करते, और कभी कभी गाली गुफ्ता भी

कर लेते थे । पर चटशाल ज्यादा आबाद थी [illegible]
पीट वे भी खत्र करते थे । बहुधा दोनों [illegible]
सीखने मे ज्यादा से ज्यादा शोर [illegible]
पण्डितो को प्रसन्नता होती थी । [illegible]
अपने को विजयी समझता था । चटशाल मे [illegible]
भाषा की अपेक्षा उन्हे पट्टी पहाडे पढाने पर [illegible]
सकता हू कि इन चटशालो मे [illegible]
कर बनिया के मुहल्ले मे बसे थे, कदाचित् [illegible]
शाल मे भरती किया था । एक यह भी क्रम होता [illegible]
किए जाते—वे मुहासी बोलते । एक [illegible]
स्वर से दुहराते । इसे ही मुहासी कहते थे । [illegible]
पौना सवाया ड्योढा—आदि हम यत्नपूर्वक याद [illegible]
याद करने मे कच्चा ही रहा, बोल से आगे [illegible]
पहाडे साङ्गोपाग तख्ती पर लिखे जाते थे । [illegible]
जो बोल कर नहीं लिखता था, उसे समझा जाता था [illegible]
उस पर बेत पडती थी । पहाडे [illegible]
वाक्य लिखे जाते थे । अक्षर लिखने को कलम [illegible]
होता था । मोटी कलम होने [illegible]
जाता था । शीघ्र आगे चलकर सुन्दर [illegible]
सफलता से सुन्दर मरोडदार अक्षर लिख सकता [illegible]
खराब है ।

चटशाल मे न बिछौना था, न मेज कुर्सी । [illegible]
के टुकडे पर बैठते थे, और हम सब [illegible]
झाडू भी हमें ही लगाना पड़ता था । [illegible]
आगे चलकर चिलम पिताजी [illegible]
सर्वथा नफरत ही । इसे मै अपमानपूर्ण समझता था ।

गणेशचतुर्थी की धूमधाम [illegible]
है । उन दिनो—भाद्रपद की [illegible]
तक बारी बारी से प्रत्येक लडके के घर पण्डित जी [illegible]
लेकर जाते थे । बालको के पास रंगीन [illegible]
थे । बहुधा हमारा जलूस—ढोल नाशे बजा कर [illegible]
बजाते थे । बहुधा तीन तीन चार चार की [illegible]

बालक के घर पहुँच कर उसके चौपाई गाते और डंडे बजाते थे। तब पण्डित जी को दक्षिणा मिलती थी- फिर दूसरे घर जाते थे। इस घर घर घूमने को चौपई लाना कहते थे। बालक अपने पूरा अपने घर चौपई ले जाते थे। पण्डित जी इस काम के लिए हमें उकसाते भी खूब थे। इस मामले में भी दोनों पण्डितों में होड़ लगी रहती थी। कभी कभी राह में दोनों दल मिल जाते तो आमने सामने डट कर डंडे बजाते, और चौपई गाते थे। ये चौपइयाँ पण्डित जी हमें सिखाते थे। खेद है—इस समय याद नहीं है।

एक घटना चटशाला की याद है—उस दिन शायद कोई त्यौहार था, कदाचित् सकट। पण्डित जी छुट्टी नहीं देते थे। कुछ लड़कों ने एक षडयन्त्र किया। चटशाल में एक कोठरी थी, कोठरी में हमारी तख्तियां आदि शाम को रख दी जाती थीं। दो लड़के कोठरी में गए, वहाँ किसी बहाने पण्डित जी को बुलाया और फिर बाहर से साकल चढ़ा कर उन्हें बन्द कर दिया और सब ने आ कर कहा—चलो छुट्टी है। और हम लोग अपने अपने घर भाग गए। पता नहीं पण्डित जी का उस दिन किस तरह उद्धार हुआ। पर अगले दिन पिटाई हुई बहुतों की। मैंने अपराधियों के नाम बता दिए। कई दिन उसके कारण इन दुष्ट बालकों ने मुझे सताया। अन्त में एक घटना ऐसी हुई कि यह चटशाल मुझे छोड़नी पड़ी।

जब चोरी करनी सीखी

मेरे सहपाठियों में एक लड़का था। आयु में मुझसे बड़ा था। सम्भवतः तब मैं आठ वर्ष का था, और वह पन्द्रह सोलह वर्ष का। रंग उसका गोरा था, पर आकृति बड़ी घिनौनी थी। हँसता था तो गन्दे दाँत मुझे बड़े बुरे लगते थे। पाठशाला का कोई काम नहीं करता था, न पढ़ता लिखता था। पिटता खूब था, परन्तु पिटता जाता था, और हँसता जाता था। गन्दी कहानियाँ कहने का शौक था। पान बहुत खाता था। बात बात में 'इलम् कसम' खाता था। वह मेरा गहरा दोस्त हो गया। दोस्ती का कारण यह हुआ कि उसका घर भी मेरे ही मुहल्ले में था। इससे, वह मुझे पान मुफ्त खिलाता था और कभी-कभी अपने पैसों से चाट पकौड़ी या खिलाता था। कभी वह चटशाल से पानी पीने या लघुशंका करने का बहाना करके रफूचक्कर हो जाता, फिर सड़क पर गालियाँ खेलता। बहुधा वह पाठशाला से बाहर जाकर इशारा करके मुझे बुलाता, परन्तु पाठशाला से भूखा रहना करके जाने का साहस मुझे न था। छुट्टी के बाद वह बहुधा बाजारों का चक्कर काट कर घर पहुँचता। तब बहुधा मैं उसके साथ होता। साथ में होता, कि वह कुछ मुझे खिलाये पिलायेगा। दो दुकानें पर उसने उधार खाता खोल रखा था। एक पंसारी की छोटी सी दुकान थी। दूसरी हलवाई की थी। पंसारी से वह अधेले या पैसे का चूरन खरीदता, और हलवाई से एक पैसे के बताशे। खरीद कर हम दोनों आधा आधा बाँट कर खाते पीते थे। कुछ दिन बाद उसने पैसा मुझे चमार दुकान-

दार से सौदा खरीदने को [illegible]। [illegible]
वह मुझ से सटकर [illegible]
फेर कर [illegible]
देते। पर एक दिन मैं उसका [illegible]
निकालने को मुह फेरा [illegible]
पैसे रेजगारी उठाकर [illegible]
कुछ मुझे नही मालूम [illegible]
कर कहा —तू भी सीख [illegible]
पसे लिये। तब से वह मुझे [illegible]
साहस न होता था। [illegible]
ले आया कर। पिताजी [illegible] रेजगारी [illegible]
कुछ [illegible] का मेरा साहस [illegible]
रही। अब जबसे मुझे [illegible]
था। बड़ी ही सफाई से [illegible]
लेता था। मुझे तो वह [illegible]
न थी। पिता जी तो शाम [illegible]
गारी के सामने [illegible]
लगा और दूसरा [illegible]
ज्यादा लेना चाहता है तो तू भी [illegible]
दोनो घूमते हुए [illegible]
ही दूकानदार [illegible]
हाथ मेरा वहा तक पहुँचा [illegible]
उलट गई, [illegible]
[illegible] कर रोना प्रारम्भ किया [illegible]
मेरी [illegible] पकड पिता जी के पास [illegible]
को तो खूब अच्छी [illegible]
ये दोनो कई दिन से [illegible]
क्षण मौन रहे। फिर [illegible]
अजी, मैं नुकसान की [illegible]
हटाओ। वह पक्का शैतान है। [illegible]

[illegible] तो मुझे [illegible]
सिसकिए लेता रहा। पिता जी ने [illegible]

रुक गया, तो कहा—नहीं जी, और रो कर लिया। वह भी ... गया। उस दिन से पाठशाला भी छूटी और उस लड़के की सोहबत भी। परन्तु उसका घर तो पड़ोस ही में था। कई बार वह रास्ते में बुलाता—पर फिर मैं उसके पास न फटका। पीछे सुना उसका बड़ा बुरा हाल हुआ। पढ़ना लिखना छूट गया। घर से कई कई दिन तक गैरहाजिर रहता। उसका बूढ़ा बाप बहुत खीझता। अन्त में उसे मृगी के दौरे होने लगे। वह पीला और अधिक घिनौना हो गया था। राह बाट में घर में वह दिन में कई बार जमीन पर गिर कर छटपटाने लगता। उसका वह भयानक रूप तो अब भी मैं याद करके काँप उठता हूँ और उस क्षण को भी याद करके—जब रुजगारी से भरी मेरी मुट्ठी को हलवाई ने अपने हाथ में कसकर पकड़ा था, और कहा था—क्यों रे बदमाश !! कुछ दिन बाद वह लड़का एकाएक घर से गायब हो गया और उसका कोई पता ठिकाना न लगा।

कस्बे में एक ही सरकारी स्कूल था। उसके हेडमास्टर श्री बालकराम यद्यपि मिडिल पास ही थे, परन्तु आज कल के डबल एम०ए० पासों से भी अधिक योग्य और निपुण। वे स्कूल से घर लौटते समय हमारी दुकान के आगे होकर और पिता जी को नमस्ते करके जाया करते थे। एक दिन उन्होंने मुझे दुकान पर बैठे तख्ती लिखते देखा तो मेरे पास चले आए और मेरी लिखी तख्ती देखने लगे। देखकर बोले—बड़ा सुन्दर लिखते हो? कहाँ पढ़ते हो?

पिता जी ने कहा—बनियों की चटशाला में पढ़ता था। परन्तु वहाँ की सोहबत खराब है, इसी से उठा लिया।

हेडमास्टर साहब ने मेरी पीठ थपथपा कर कहा—इसे मेरे स्कूल में दाखिल क्यों नहीं करा देते? कल ले आइए।

अगले दिन मैं सरकारी स्कूल में दाखिल हो गया। कुछ दिन तक पिता जी मुझे छोड़ने आते और स्कूल खत्म होने पर लेने भी चले जाते थे। फिर तो मैं अपने साथियों के साथ अकेला ही आने जाने लगा था। सन् १९०१ से १९०७ तक मैं वहाँ पढ़ता रहा।

यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि मेरे चोरी के कुकर्म से पिताजी को बहुत मानसिक कष्ट हुआ था। स्कूल में भरती कराने के बाद अगले मास ही उन्होंने आर्य समाज के पंडितों को बुलाकर मेरा यज्ञोपवीत करा दिया और मुझसे शुद्ध पवित्र एवं सत्य आचरण करने की प्रतिज्ञाएँ भी कराईं। यज्ञ की अग्नि इन प्रतिज्ञाओं की साक्षी है—यह मुझे भली भांति विश्वास दिला दिया गया।

इसी स्कूल में मुझे तीन अभिन्न साथी मिले—छोटेलाल, हरिश्चन्द्र, शान्तिस्वरूप। आगे चलकर छोटेलाल वकील बने, हरिश्चन्द्र सिविल इंजीनियर, और शान्तिस्वरूप भटनागर प्रसिद्ध जगद्विख्यात् वैज्ञानिक।

[illegible]

सिक द्राबाद के स्कूली जीवन [illegible]
के अतिरिक्त एक तीसरे बालक से भी मेरा [illegible]
मोहल्ले मे हमारा घर था। हमारे घर [illegible]
एव अच्छे ढग से दुमजिला बना हुआ था। [illegible]
और आलीशान था। परन्तु यह मकान [illegible]
रहता था और दरवाजे पर ताला लगा रहता था। [illegible]
द्वार मे पडे ताले को देखने का अभ्यस्त हो गया था। [illegible]
दिल्ली मे सरकारी नौकर थे, सपरिवार [illegible]
तीन मकान तथा बाजार मे भी [illegible]
हुई थी। उनकी मृत्यु के बाद उनके [illegible]
गए और वे सपरिवार वही रहते थे। [illegible]
थे, वह भी उन्ही की थी और उसका मासिक किराया [illegible]
मकान दुकानो के किराया का यही नियम था। [illegible]
उनका किराया भी तीन चार रुपया मासिक था। [illegible]
स्वय अथवा उनकी पत्नी [illegible]
रती और सबसे किराया वसूल कर लिया करती थी। [illegible]
की रसीद नही दी जाती थी। [illegible]
किरायेदार लिख कर मकान मालिक [illegible]
दार को देता और वह उसकी पुश्त पर [illegible]
किराया एकत्र करने पर जब [illegible]
कनस्तर, खाट, दान आदि सामान [illegible]
प्रवास मोहल्ले भर मे चहल पहल और [illegible]
उन्हे उनके नाम से नही [illegible]

परन्तु एक बार उनके [illegible]
स्कूल से लौट रहा था। देखा— [illegible] और [illegible]
प्राणी नही बल्कि पाँच सात व्यक्ति [illegible]
स्थ सुन्दर स्वस्थ बालक [illegible]
बालक की वेश भूषा सुचारित [illegible] और [illegible]
कोट उसे खूब फब रहा था और सिर पर [illegible]
जम गई। मैंने भी उसे गली मे घुसते ही देख लिया था और [illegible]
यह नव परिचित सुन्दर सुसस्कृत बालक कौन है। ज्यो ज्यो मै [illegible]

उसकी दृष्टि मेरी ओर से हटकर नीचे को झुकती गयी और मेरी आँखें उसके समीप पहुँचकर उस पर ही जमी रह गयीं। मैं घर की चहल पहल की एक झलक मात्र देखता हुआ अपना बस्ता बगल में दबाए आगे बढ़ गया और चलकर अपने मकान के द्वार पर पहुँच गया। द्वार में घुसने से पहिले मैंने एक बार फिर छिपी नजर से उस बालक को देखना चाहा। लगा कि वह मेरी ओर ही देख रहा है। उसकी दृष्टि मुझे बुलाने का जैसे आमन्त्रण दे रही है।

मकान में पहुँचते ही मैंने माता से पूछा—अम्मा आज 'दिल्ली वालों' के घर में कौन आया है?

तुम्हारी चाची आई है। उनके सब बच्चे भी आए हैं। बाबू जी भी हैं।

वह बालक उन्हीं का लड़का है?

हाँ उनके दो लड़के और दो लड़कियाँ हैं। सभी आए हैं।

मैंने बस्ता रख दिया। माता ने एक लड्डू और एक गिलास दूध मेरे आगे रख दिया। मैं लड्डू खाता जाता था और दूध का घूँट भरता जाता था। परन्तु गिलास में दूध का नाम ही रस था—वह मलाई और घी के तिलारों से भरा हुआ था। भैंस जो रहती थी।

खाकर मैंने माता से कहा—अम्मा, जाऊँ खेल आऊँ?

माता ने स्नेह से मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा—'जा चाची के घर जा कर उन्हें नमस्ते कर आ। आते ही तुम्हें पूछने आई थीं।

मैंने अपने घर के द्वार से पग बाहर रखते ही देखा—वे दो स्वच्छ आँखें मेरे द्वार की ओर उठी हुई थीं। मेरे पैर रुक गए। परन्तु मैंने साहस किया और मैं धीरे धीरे चलकर उस बालक के समीप आ गया। एक क्षण उसे देखा और फिर उसे नमस्ते करके मुस्कराता हुआ उनके घर में घुस गया। अन्दर आँगन में चाची और सब लोग बैठे हुए बातें कर रहे थे। चाची तरकारी काटती जा रही थीं और मोहल्ले की किसी स्त्री की बात सुन रही थीं। मैंने वहाँ पहुँचकर सबको नमस्कार किया।

चाची ने मुझे देखते ही पुकारकर कहा—आओ बेटे, तुम्हारी तो बड़ी देर से मैं बाट देख रही हूँ। अरे हरीश कहाँ गया, बुलाओ जरा।

वह बालक मेरे पीछे ही पीछे आ रहा था। अपना नाम सुनकर वह माता के सम्मुख खड़ा हो गया। माता ने उसे देखकर कहा—हरीश, यही चतुरसेन है, जिसकी मैं बड़ी तारीफ करती थी। अब इसके साथ तू खेल।

मैंने बालक का हाथ पकड़ लिया और बाहर चला आया।

बाहर आकर मैंने कहा—तुम्हारा नाम हरीश है।

उसने सलज्ज भाव से सिर हिलाकर कहा—हरिश्चन्द्र।

ओर मेरा नाम चतुरसेन है। [illegible]
इतने दिनो से चाची के साथ [illegible]

पढाई का नुकसान जो होता।

किस क्लास मे पढते हो ?

आठवी मे।

अच्छा, आओ खेल।

चलो।

हम दोनो एक दूसरे का हाथ थामे [illegible]
के हिस्से मे खेलने का खुला मदान था और [illegible]
की ठेक थी, जहा सायकाल को [illegible]

मदान के पास एक कुआ था। [illegible]
प्राय सूना ही रहता था। हम [illegible]
बैठ कर बाते करने लगे।

यही हमारी प्रथम भेट थी। फिर [illegible]
जादू के जोर से बीत गइ। दिन [illegible]

उन दिनो सिकन्दराबाद मे [illegible]
जाता था। बहुत दूर दूर से लोग [illegible]
देखने आते थे। वहाँ रामलीला [illegible]
सवारी सारे कस्बे मे घूमकर वाडे पहुँचती थी। [illegible]
रहती थी—वह थी 'घायल'। [illegible]
जाता और गलग रखा जाता था। [illegible]
के आर पार, पेट के आर पार, [illegible]
तलवारे 'लाग' लगाकर आर पार [illegible]
समय मुख्य मुख्य स्थानो पर [illegible]
व्यक्ति के हाथ मे दस बीस [illegible]
की बाह की नसो को बचाकर [illegible]
देता। सूआ आर पार हो जाता, परन्तु [illegible]
पडे। इस प्रकार वाडे पहुँचने [illegible]
और दशको की भीड घायलो [illegible]
लगा कर आकाश को गुजा डालती थी। [illegible]
युद्ध होता था कि आकाश तीरो से छा जाता था। [illegible]
रामचन्द्र जी की जय के नारो से कान के पर्दे [illegible]

रावण युद्ध होकर रावण मारा जाता था। मरने के बाद जब रावण की अर्थी निकलती थी, तब रावण उठकर ग्रामीण लोगों को हाथ से संकेत करके अपने पास बुलाने की वह चेष्टा करता था कि ग्रामीण हँसते हँसते लोट पोट हो जाते थे।

ऐसा ठाठदार दशहरा देखने चलने का निमन्त्रण मैंने हरीश को दिया। हरीश ने अपने घर से और मैंने अपने घर से वहा जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। मुझे वहा खर्च करने के लिए एक इकन्नी और हरीश को एक चवन्नी मिली। इन बीस दिनों मे ही हम इतना घुल मिल गए थे कि वाडे मे पहुँच कर हरीश ने कहा—चलो खेतो मे घूमे और बात करे। यहा भीड भाड मे क्या करेगे ?

विचित्र प्रकृति का था हरीश। उसे खेल तमाशो मे कोई दिलचस्पी न थी। वह प्राय अपने स्कूल की बात सुनाया करता था। गणित के सूत्रो और उनके हल करने की सरल विधियों की चर्चा उसका प्रिय विषय था। मैं गणित चर्चा को बिलकुल भी पसन्द नही करता था। मैं उसकी बाते सुनता तो सही पर शीघ्र ही वार्तालाप की धारा को अपनी कविता या कहानी सुनाने मे बदल देता था। वह थोडी देर सुनता और अवसर पाकर फिर अपनी बात शुरू कर देता और मेरी धारा रुक जाती।

हरीश ने अपनी चवन्नी की बहुत सी चीजें खरीदी। मिठाई, दही बडे, पकौडिया और मूगफली। और सबको रूमाल मे बाध कर हम दोनो वाडे से कुछ दूर एक तालाब के किनारे पैर लटका कर बैठ गए।

उसने रूमाल खोल कर कहा—लो खाओ।

मैने कहा—मेरे पास भी एक इकन्नी है। मै भी इसका कुछ खरीद लाऊ ?

उसने कहा—कहा है—देखू ?

इकन्नी मैंने जेब से निकालकर उसे देदी।

उसने इकन्नी अपनी जेब मे रखली और कहा—इसे बाद मे खर्च करेगे, पहले चवन्नी का खतम करो।'

मैं उसकी चीज खाने मे सकोच कर रहा था। परन्तु ज्योंही उसने मेरी ओर अपनी स्नेह दृष्टि उठाई, मैं रुक न सका। खाने लगा। हस हँस कर बात होती जाती थी और खाते भी जाते थे।

उसने कहा—ठाकुर, मैं कल चला जाऊगा। छुट्टियाँ खत्म हो गई है।

मै चौक पडा। मेरा कौर हाथ मे ही रह गया। मेरे मुख पर उदासी छा गई।

उसने स्वच्छ हास्य बखेर कर मेरा हाथ पकड कर कहा—उदास क्यो होते हो ? न तो तुम ही पसन्द करोगे कि मैं पढाई मे नागा करूँ, न मै ही पसन्द करूँगा कि तुम पढाई मे नागा करो। लम्बी छुट्टियो मे मै यही आता रहूगा और तुम्हे हमेशा याद करता रहूँगा।

हरीश चला गया और जीवन [illegible] होना चला गया। हरीश अपनी स्कूल [illegible] और कलिज मे पढकर [illegible] यद्यपि पास की और पास होते ही [illegible] गया। हरीश का और मेरा [illegible] मे ही मेरा भी विवाह हुआ और [illegible] हरीश की पत्नी का शांति। हम [illegible]

मे दिल्ली म बस गया था और [illegible] भोजन कर रहा था कि नौकर ने [illegible] हँस २ कर बात कर रहा था। तार [illegible] पट थाली छोड उठ खडा हुआ और [illegible] थी और होठ काप रहे थे। पत्नी [illegible] आखे भी भीग गई। हरीश [illegible] थी, यही उस तार म लिखा था। [illegible] था कि मे पन्द्रह दिन बाद दिल्ली पहुँच [illegible]

शांति अब भी जीवित है। [illegible] भी गीली हो जाती है। उसके मुख पर [illegible] और लाती है। उसे अपने [illegible] करना पडा। कर्तव्य पवित्रता और संयम [illegible] की संस्कृति की [illegible]।

हरीश के कुछ पत्र [illegible] चाहता हूँ, जिससे अब से पचास [illegible] झलक आप देख सके

[illegible]

प्रिय चतुर,

आज होली है और [illegible] मुझे यहाँ बहुत ही कम [illegible] नही होती है। परन्तु होली [illegible] इस मौके पर मिलेंगे। परन्तु मुझे [illegible] कुछ नही होगा। जब [illegible] परन्तु पिछली होली पर यद्यपि मेरा [illegible] मिन्नते और प्रार्थना जिससे कि 'फर्स्ट राज' [illegible]

होती न आनन्द आता नहीं, परन्तु इसके सिवाय उनकी याद के और कुछ बाकी नहीं है। जो उम्र इस नगर में रहा हूँ उसका ख्याल कर सरगरम हो उठता हूँ।

तुम्हारे साथ भी शायद होता यदि तुम ताउम्र रह जाता और यद्यपि अब तुम मेरी याद उस प्रकार से न कर सकते जैसे कि पहिले करते थे परन्तु तो भी मुझे आशा है, समझ ज्यादा तुम्हें मेरी भी याद न आवेगा।

मुझे सबसे ज्यादा इस बात का है कि मेरे पास इस समय गुलाल तक भी नहीं है जो कि होली के उपहार में भेज सकूँ। दुर्भाग्य से मुझे कभी भी ऐसा मौका नहीं मिल सका कि भाभी साहिबा श्रीमति तारावती से मैं कभी भी होली खेल सकता और न मुझे आशा है कि कभी भी मुझे ऐसा मौका मिलेगा, क्योंकि दोनों जगह सदा अलग रहा, कभी मेरा उनका सामना भी नहीं। सिवाय उसके कि उनकी शक्ल मैंने देखी हो और उसकी भी याद मुद्दत हुई। जो कुछ भी मैं उनके बारे में जानता हूँ—सब तुम्हारी कृपा का फल है। मैं तो अब भी उनसे डरता हूँ, क्योंकि वह मेरी बड़ी हैं और उनके सामने कुछ कहना गुस्ताखी समझा जाय। परन्तु और मुझे इस बात का है कि उन्होंने आज तक कभी याद भी नहीं किया और न कभी किसी पत्र में आशीर्वाद ही लिखवाया। बस मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि यह पत्र पढ़ने के बाद जब आप उनसे पहिली दफा मिलें तो उनका मुँह मेरी तरफ से अच्छी तरह से लाल कर दें और फिर शीशा दिखला दें। और बस फिर उसके बाद मेरी नमस्ते कह दें।

रुड़की २ मार्च १६

प्रिय चतुर,

जबसे कि मेरा गौना हुआ जब से कि मुझे ख्याल है मैं तुमसे पहिले की तरह से नहीं मिल सका हूँ। मिलने को वास्ते तो आप मुझे सिकन्दराबाद भी मिले थे और आगरे में भी परन्तु उन मुलाकातों में और पहिलियों में जमीन आसमान का फर्क है। पहिले तुम मेरे बारे में हरएक बात जानते थे। परन्तु उस जरा सी बात ने हममें बहुत भेद कर दिया है। तुम यह नहीं बता सकते कि मैं पढ़ने के लिए इलाहाबाद क्यों नहीं गया। जैसा कि मैंने आपसे कहा था, और बी० ए० को बगैर पूरा किए मैं क्यों क्या चला आया। यह दोनों सवाल आपने मुझसे पूछे थे, परन्तु मैंने कोई ठीक उत्तर नहीं दिया था। उसके लिए मैं आपको अपना संक्षिप्त सा इतिहास लिखता हूँ।

अपनी नई शान्ति के पास तीन महीने एकदम साथ रहने से जो मुझ में कमजोरी आई, उसने मेरा दिल दिमाग शरीर इत्यादि बुरी तरह से हिला दिया। मैं तन्दुरुस्ती की हालत में अपने आपको शहंशाह मराजा से बुरा समझता हूँ। जिस समय कि मैं मेरठ से एफ० ए० का इम्तिहान देकर आया था—मैं हमेशा से ज्यादा बलवान था। मेरठ में मैं बाकायदा दो वर्ष तक जिस तरह से पढ़ता रहता था, वैसे ही अपने शरीर

हरीश चला गया और जीवन डोरी को मजबूती से बांध गया। समय व्यतीत होता चला गया। हरीश अपनी स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके कालिज में भरती हुआ, और कलिज मे पढकर रुडकी इजीनियरिंग कालेज मे। उसने सम्मान से साथ इंजीनियरिंग पास की और पास होते ही उसे बर्मा मे सरकारी इंजीनियर बनाकर भेज दिया गया। हरीश का और मेरा घर एक ही परिवार का घर बन गया था। थोड़ा आगे पीछे मे ही मेरा भी विवाह हुआ और हरीश का भी। मेरी पत्नी का नाम था तारा और हरीश की पत्नी का शांति। हम दोनो एक दूसरे के विवाह मे सम्मिलित हुए थे।

मै दिल्ली मे बस गया था और हरीश रगून मे। एक दिन दोपहर को मैं भोजन कर रहा था कि नौकर ने एक तार लाकर मेरे हाथ मे थमा दिया। मै पत्नी से हँस २ कर बाते कर रहा था। तार मैंने खोला। पढते ही मेरी दृष्टि घूम गई। मै झटपट थाली छोड उठ खडा हुआ और फर्श पर गिरकर फफक उठा। आंखे मेरी गीली थी और होठ काप रहे थे। पत्नी ने मेरी मुट्ठी में से तार लेकर पढ लिया। उसकी आखे भी भीग गइ। हरीश की रगून मे एक पुल बनाते समय अकस्मात मृत्यु हो गई थी, यही उस तार मे लिखा था। हाय, एक सप्ताह पूर्व ही हरीश का पत्र मुझे मिला था कि मै पद्रह दिन बाद दिल्ली पहुँच रहा हूँ—शांति को लेने।

शांति अब भी जीवित है। उस तेजस्विनी वृद्धा को देखकर मेरी आखे अब भी गीली हो जाती है। उसके मुख पर कुछ झुर्रिया पडने लगी है, पर चेहरे पर तेज और लाली है। उसे अपने यौवन के प्रभात मे ही ब्रह्मचयव्रत रख कर वैधव्य का पालन करना पडा। वैधव्य पवित्रता और सयम की एक ज्योति रखा है, जिसने भारतीय नारी की सस्कृति की श्रेष्ठता को ससार मे अक्षुण्ण रखा है।

हरीश के कुछ पत्र मेरे पास सुरक्षित है जिन्हे मै आपको उपस्थित करना चाहता हूँ, जिससे अब से पचास वर्ष पूर्व के विद्यार्थी जीवन और प्रगाढ़ मैत्री की झलक आप देख सके—

रुड़की, होली, १८१६

प्रिय चतुर,

आज होली है और कल दुलहंडी। कब और कौन सा त्यौहार होता है यह मुझे यहा बहुत ही कम पता चलता है। कारण कि यहां पर मामूली त्योहारों की छुट्टी नही होती है। पर तु होली आई है, यह मुझे परचो से मालूम है। सब घर इस मौके पर मिलेगे। पर तु मुझे सिवाय उसके कि कुछ की याद आ जायगी और कुछ नही होगा। जब से कि मैने स्कूल छोडा है, दिवाली कभी भी घर नही की। परन्तु पिछली होली पर यद्यपि मेरा विचार घर जाने का नही था परन्तु क्या उसकी मिन्नते और प्राथना जिसको कि 'फेयरस्ट रोज' समझता हूँ, व्यर्थ जाती? घर पर मेरी

होली बडे आनन्द की कटी, परन्तु अबके सिवाय उनकी याद के और कुछ बाकी नही है। तीन वर्ष तक मै यहा कोई भी त्योहार सुखपूर्वक नही कर सकता हूँ।

तुम्हारे साथ भी शायद होली खेले तीसरा वर्ष होगा और यद्यपि अब तुम मेरी याद उस प्रकार से नही कर सकते जैसे कि पहिले करते थे, परन्तु तो भी मुझे आशा है, मुझसे ज्यादा तुम्हे कोई भी याद न आवेगा।

मुझे सबसे ज्यादा शोक इस बात का है कि मेरे पास इस समय गुलाल तक भी नही है जोकि होली के उपहार मे भेज सकू। दुर्भाग्य से मुझे कभी भी ऐसा मौका नही मिल सका कि भाभी साहिबा श्रीमति तारावती से मै कभी भी होली खेल सकता और न मुझे आशा है कि कभी भी मुझे ऐसा मौका मिलेगा, क्योकि होली वगैरा खेलना अलग रहा, कभी मुह तक से बोली भी नही। सिवाय इसके कि उनकी शक्ल मैने देखी हो और उसको भी बडी मुद्दत हुई। जो कुछ भी मै उनके बारे मे जानता हूँ—सब तुम्हारी कृपा का फल है। मै तो वैसे भी उनसे डरता हूँ, क्योकि वह मेरी बडी है और उनके सामने कुछ कहना शायद धृष्टता समझा जाय। परन्तु शोक मुझे इस बात का है कि उन्होने आज तक कभी याद भी नही किया और न कभी किसी पत्र मे आशीर्वाद ही लिखवाया। बस मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि यह पत्र पढने के बाद जब आप उनसे पहिली दफा मिले तो उनका मुह मेरी तरफ से अच्छी तरह से लाल करदे और फिर शीशा दिखला दे। और बस फिर उसके बाद मे मेरी नमस्ते कह दे।

रुडकी २ मार्च १६

प्रिय चतुर,

जबसे कि मेरा गौना हुआ जैसा कि मुझे ख्याल है मै तुमसे पहिले की तरह से नही मिल सका हू। मिलने के वास्ते तो आप मुझे सिकन्दराबाद भी मिले थे और आगरे मे भी परन्तु इन मुलाकातो मे और पहिलियो मे जमीन आसमान का फर्क है। पहिले तुम मेरे बारे मे हरएक बात जानते थे। परन्तु उस जरा सी बात ने हममे इतना भेद डाल दिया है कि तुम यह नही बता सकते कि मै पढने के लिए इलाहाबाद क्यो नही गया। जैसा कि मैने आपसे कहा था, और बी० ए० को बगैर पूरा किए मै रुडकी क्यो चला आया। यह दोनो सवाल आपने मुझसे पूछे थे, परन्तु मैने कोई ठीक उत्तर नही दिया था। इसके लिए मै आपको अपना संक्षिप्त सा इतिहास लिखता हूँ।

अपनी नई शान्ति के पास तीन महीने एकदम साथ रहने से जो मुझ मे कमज़ोरी आई, उसने मेरा दिल दिमाग शरीर इत्यादि बुरी तरह से हिला दिए। मै तन्दुरुस्ती की हालत मे अपने आपको सकडो मरीजो से बुरा समझता हू। जिस समय कि मै मेरठ से एफ० ए० का इम्तिहान देकर आया था—मै हमेशा से ज्यादा बलवान था। मेरठ मे मै बाकायदा दो वर्ष तक जिस तरह से पढता रहता था, वैसे ही अपने शरीर

का भी उतना ही ध्यान रखता था। परन्तु तीन [illegible]
हुआ है, उसने मुझे सवदा के लिए होशियार कर दिया है। [illegible]
यहा एफ० ए० मे फस्ट आया था। इसलिए जबकि [illegible]
मुश्किल से मिला। कारण कि मेरा इरादा इलाहाबाद [illegible]
वही बी० एस० सी० मे रखना चाहते थे। प्रिन्सिपल [illegible]
वजीफा देवेगे, तुम यहा पढो। परन्तु मैंने एक न सुनी और [illegible]

इलाहाबाद मे मेरी फीस वगरा सब रखवा दी। [illegible]
था कि मे वहा दाखिल हो जाऊँगा, परन्तु वहा जाकर मुझे [illegible]
पहिले वहा काफी अर्जिया आ गइ थी और इसलिए [illegible]
था। मेरी फीस वहा गलती से रख ली गई था। इलाहाबाद [illegible]
धक्के खाने पडे। इलाहाबाद मे एम० सी० कालिज मे बी० [illegible]
इम्तिहान हुआ करता था। वही सब कालिजो के [illegible]
वालो को इसमे बडा फायदा रहता था। इसलिए मै भी [illegible]

इलाहाबाद से टक्कर खाकर मै आगरा आया। [illegible]
किया। वहा पर मेरी जान पहिचान के बहुतरे निकल आए [illegible]
से भरती हो गया। मुझे कुछ भी तकलीफ नही उठानी पडी।

रुडकी आने का इरादा मेरा पहिले ही से था। [illegible]
जबरदस्त होता है। जितने इम्तिहान देने आते है, उनमे [illegible]
यहा पर आने के लिए पहिले से कोई न कोई परीक्षा [illegible]
कि यहा के सरक्यूलर मे है। बी० एस० सी० मे [illegible]
कल मे अच्छे अच्छे गिर जाते है। इस साल जो बी० [illegible]
पिछले साल फेल हो गया था। सन् १९१३ मे जितने भी [illegible]
पास हुए थे, उन बारहो के बारहो ने बी० एस० सी० [illegible]
सके। एफ० ए० मे जो दूसरे नम्बर पर था, यहाँ [illegible]
ज्यादा का कोई रुडकी कालिज मे नही आ सकता और १६ [illegible]
नही कर सकता। यानी २० से अवश्य आयु ज्यादा [illegible]
इम्तिहान दे। इन सब बातो को सोचते हुए मैने [illegible]
परीक्षा दिसम्बर मे पास की और फिर यहाँ आया, क्योंकि [illegible]
हो गया था। सौभाग्य से यहाँ पर मेरा दसवाँ नम्बर रहा। [illegible]
एक बढकर लडका मौजूद है। यहा बी० एस० सी० मे जो [illegible] पर
आए है, दोनो है। पंजाब यूनीवर्सिटी मे जो इस साल बी० ए० मे [illegible] आया
वह मौजूद है। जो पिछले साल फस्ट आया है—वह इस बार यहाँ [illegible]

मिलने वालो मे है। यहा हर साल ही ऐसे ऐसे लडके आते है, और यदि मै इस साल नाकिल म आ गया तो जरूरी नही कि अगले साल भी आ जाता। यह सब बात सोचते हुए म यहा आ गया हू।

यहा पर कालिज म काम बहुत रहता है और इसी कारण से किसी को भी फुरसत नही मिलती है। मुझ म भी इतना अन्तर आ गया है कि पहिले म पत्रो का उत्तर दे दिया करता था और घर को प्रति सप्ताह मे कम से कम एक पत्र अवश्य भेजता था। परन्तु अब जिसका पत्र आता है रखा रहता है, उत्तर लिखने के लिए समय मिलना कठिन होता है और घर १५ दिन म पत्र भेजने लगा हू।

उस पत्र को लिखे आज ७ दिन बीत गए होगे। परसो विचार किया था कि यह पत्र अवश्य डाल दूगा ताकि होली के दिन मिल जाता। परन्तु शोक कि तब भी नही डाल सका। तुम्हारे विवाह मे मै नही आ सकता हू। मुझे लिखना बहुत था परन्तु न समय है न पत्र म जगह। मेरा इम्तिहान यहा पर जून म होगा और कही १५ जुलाई से हमारी छुट्टी होगी। उन तीन महीनो की छुट्टियो म तुमसे पत्र व्यवहार बन्द रहेगा।

प्रियवर चतुर, रुडकी, ६ जून १६१६।

स्वप्न तो मैने बहुतरे देखे है पर उनमे से दो का मुझ पर बडा भारी असर हुआ है। पहिला स्वप्न उस दिन था जबकि मेरी आजादी छीनी गई थी और मुझ को आयु भर के लिए शान्ति का साथी बनाया गया था। फेरो से लौटकर मैं सवेरे ४ बजे आया था। आते ही म सो गया। सवेरे उठकर रात की सब बात याद आने लगी। उस समय सब कुछ स्वप्न सा मालूम होता था। मै अपने दिल ही दिल पछताने लगा क्योकि (१) मेरी स्वतन्त्रता छिन गई। (२) मैं इतनी जल्दी विवाह करना नही चाहता था। (३) मैं दिवाली विवाह कराना नही चाहता था और यही बात मैने माता जी से कही भी थी। सवेरे उठकर मेरी बडी अजब हालत थी और मै खयाल कर रहा था कि मैं रात को केवल स्वप्न ही देखा है और अभी मे स्वप्न म ही जकडा हुआ हूँ। यह स्वप्न का असर थोडे ही समय रहा, क्योकि फौरन ही उठकर मै तुम्हारे पास ऊपर गया और वहाँ जाकर सब कुछ भूल गया।

दूसरे स्वप्न के लिए यहा की अपनी थोडी सी तवारीख दे देना जरूरी है। इस कालिज म हमारी किस्मत का फैसला हमारी क्लास की पोजीशन पर है। पढने के बाद उसी के मुताबिक नौकरी मिलती है। यही कारण है कि यहाँ पर आते ही तन्दुरुस्ती वगैरा सब चीजो का ध्यान छोडकर काम करते है। यहाँ पर साल भर म दो इम्तिहान होते है। एक फर्स्ट टर्म का फरवरी म, दूसरा सेकेन्ड टर्म का जून म। फरवरी म जब परीक्षा हुई थी, मेरा नम्बर क्लास मे १० म १३ हो गया। इसका कारण यह था कि

मिलने वालो मे है। यहा हर साल ही ऐसे ऐसे लडके आते है, और यदि मैं इस साल दाखिले मे आ गया तो जरूरी नही कि अगले साल भी आ जाता। यह सब बाते सोचते हुए मै यहा आ गया हूँ।

यहा पर कालिज मे काम बहुत रहता है और इसी कारण से किसी को भी फुर्सत नही मिलती है। मुझ मे भी इतना अन्तर आ गया है कि पहिले मैं पत्रो का उत्तर दे दिया करता था और घर को प्रति सप्ताह मे कम से कम एक पत्र अवश्य भेजता था। परन्तु अब जिसका पत्र आता है, रखा रहता है, उत्तर लिखने के लिए समय मिलना कठिन होता हे और घर १५ दिन मे पत्र भेजने लगा हूँ।

इस पत्र को लिखे आज ७ दिन बीत गए होगे। परसो विचार किया था कि यह पत्र अवश्य डाल दूगा ताकि होली के दिन मिल जाता। परन्तु शोक कि तब भी नही डाल सका। देवेन्द्र के विवाह मे मै नही आ सकता हू। मुझे लिखना बहुत था परन्तु न समय है, न पत्र मे जगह। मेरा इम्तिहान यहा पर जून मे होगा और कही १५ जुलाई से हमारी छुट्टी होगी। उन तीन महीनो की छुट्टियो मे तुमसे पत्र व्यवहार बन्द रहेगा।

प्रियवर चतुर, रुडकी, ६ जून १६१६।

स्वप्न तो मैने बहुतेरे देखे हैं पर उनमे से दो का मुझ पर बडा भारी असर हुआ है। पहिला स्वप्न उस दिन था जबकि मेरी आज़ादी छीनी गई थी और मुझ को आयु भर के लिए शान्ति का साथी बनाया गया था। फेरो से लौटकर मैं सवेरे ४ बजे आया था। आते ही मे सो गया। सवेरे उठकर रात की सब बाते याद आने लगी। उस समय सब कुछ स्वप्न सा मालूम होता था। मैं अपने दिल ही दिल पछताने लगा क्योकि (१) मेरी स्वतन्त्रता छिन गई। (२) मैं इतनी जल्दी विवाह करना नही चाहता था। (३) मैं डिबाई विवाह कराना नही चाहता था और यही बात मैने माता जी से कही भी थी। सवेरे उठकर मेरी बडी अजब हालत थी और मै खयाल कर रहा था कि मैने रात को केवल स्वप्न ही देखा है और अभी मैं स्वप्न मे ही जनवासे मे बैठा हुआ हूँ। इस स्वप्न का असर थोडे ही समय रहा, क्योकि फौरन ही उठकर मै तुम्हारे पास ऊपर गया और वहा जाकर सब कुछ भूल गया।

दूसरे स्वप्न के लिए यहाँ की अपनी थोडी सी तवारीख दे देना जरूरी है। इस कालिज मे हमारी किस्मत का फैसला हमारी क्लास की पोजीशन पर है। पढने के बाद उसी के मुताबिक नौकरी मिलती है। यही कारण है कि यहाँ पर आते ही तन्दुरुस्ती वगैरा सब चीजो का ख्याल छोडकर काम करते है। यहा पर साल भर मे दो इम्तिहान होते हे। एक फर्स्ट टर्म का फरवरी मे, दूसरा सेकेन्ड टर्म का जून मे। फरवरी मे जब परीक्षा हुई थी, मेरा नम्बर क्लास मे १० से १३ हो गया। इसका कारण यह था कि

का भी उतना ही ध्यान रखता था। परन्तु तीन महीने की छुट्टी का जो मुझे तजुर्बा हुआ है, उसने मुझे सवदा के लिए होशियार कर दिया है। मेरठ कालिज से मै अपने यहा एफ० ए० मे फस्ट आया था। इसलिए जबकि मै मेरठ गया, मुझे सार्टिफिकेट बडी मुश्किल मे मिला। कारण कि मेरा इरादा इलाहाबाद जाने का था और वे लोग मुझे वही बी० एस० सी० मे रखना चाहते थे। प्रिन्सिपिल ने मुझसे कहा कि तुम्हे हम वजीफा देवेगे, तुम यही पढो। परन्तु मैंने एक न सुनी और मै वहा से चला आया।

इलाहाबाद मे मेरी फीस वगैरा सब रखली थी। इसलिए मुझे पूरा भरोसा था कि मै वहा दाखिल हो जाऊँगा, परन्तु वहा जाकर मुझे मालूम हुआ कि मुझसे पहिले वहा काफी अर्जिया आ गई थी और इसलिए मै वहा दाखिल नही हो सकता था। मेरी फीस वहा गलती से रख ली गई थी। इलाहाबाद जाकर मुझे बुरी तरह धक्के खाने पडे। इलाहाबाद मे एम० सी० कालिज मे बी० एस० सी० का प्रेक्टिकल इम्तिहान हुआ करता था। वही सब कालिजो के लडके जाया करते थे। इससे वहाँ वालो को इसमे बडा फायदा रहता था। इसलिए मैं भी वहा जाना चाहता था।

इलाहाबाद से टक्कर खाकर मै आगरे आया। जाकर आगरा कालिज तलाश किया। वहाँ पर मेरी जान पहिचान के बहुतेरे निकल आए। और इसलिए मै आसानी से भरती हो गया। मुझे कुछ भी तकलीफ नही उठानी पडी।

रुडकी आने का इरादा मेरा पहिले ही से था। यहा दाखिले का इम्तिहान जबरदस्त होता है। जितने इम्तिहान देने आते हे, उनम पहिले बीस ले लिए जाते हे। यहा पर आने के लिए पहिले से कोई न कोई परीक्षा उनमे से पास करनी चाहिए, जो कि यहा के सरक्यूलर मे हे। बी० एस० सी० मे पास होना मोके की बात हे। प्रेक्टिकल मे अच्छे अच्छे गिर जाते ह। इस साल जो बी० एस० सी० म फस्ट आया है, पिछले साल फेल हो गया था। सन् १९१३ मे जितने भी फर्स्ट डिवीजन मे एफ० ए० मे पास हुए थे, उन बारहो के बारहो ने बी० एस० सी० पढा, परन्तु केवल दो पास हो सके। एफ० ए० मे जो दूसरे नम्बर पर था, यहा फेल हो गया। इधर २१ वष से ज्यादा का कोई रुडकी कालिज मे नही आ सकता और १६ से कम का इन्ट्रेन्स पास नही कर सकता। यानी २० से अवश्य आयु ज्यादा होनी चाहिए जबकि बी० ए० का इम्तिहान दे। इन सब बातो को सोचते हुए मैने विलायत की सीनियर लोकल कम्ब्रिज परीक्षा दिसम्बर मे पास की और फिर यहाँ आया, क्योकि मैं उस परीक्षा म उत्तीर्ण हो गया था। सौभाग्य से यहा पर मेरा दसवा नम्बर रहा। हमारी क्लास मे एक से एक बढकर लडका मोजूद है। यहाँ बी० एस० सी० मे जो दूसरे और चौथे नम्बर पर आए है, दोनो हे। पजाब यूनीवर्सिटी मे जो इस साल बी० ए० मे चौथे नम्बर आया वह मौजूद है। जो पिछले साल फस्ट आया है–वह हमारे यहा अव्वल है और मेरे खास

मिलने वालो मे है । यहाँ हर साल ही ऐसे ऐसे लडके आते है, और यदि मैं इस साल दाखिले मे आ गया तो जरूरी नही कि अगले साल भी आ जाता । यह सब बाते सोचते हुए मै यहा आ गया हूँ ।

यहा पर कालिज मे काम बहुत रहता है और इसी कारण से किसी को भी फुरसत नही मिलती है । मुझ मे भी इतना अन्तर आ गया है कि पहिले म पत्रो का उत्तर दे दिया करता था और घर को प्रति सप्ताह मे कम से कम एक पत्र अवश्य भेजता था । परन्तु अब जिसका पत्र आता है रखा रहता है, उत्तर लिखने के लिए समय मिलना कठिन होता है और घर १५ दिन मे पत्र भेजन लगा हूँ ।

इस पत्र को लिखे आज ७ दिन बीत गए होगे । परसो विचार किया था कि यह पत्र अवश्य डाल दूगा ताकि होली के दिन मिल जाता । परन्तु शोक कि तब भी नही डाल सका । देवेन्द्र क विवाह मे मै नही आ सकता हूँ । मुझे लिखना बहुत था परन्तु न समय है, न पत्र मे जगह । मेरा इम्तिहान यहा पर जून मे होगा और कही १५ जुलाई से हमारी छुट्टी होगी । उन तीन महीनो की छुट्टियो म तुमसे पत्र व्यवहार बन्द रहेगा ।

प्रियवर चतुर, रुडकी, ९ जून १९१६ ।

स्वप्न तो मैंने बहुतेरे देखे हैं पर उनमे से दो का मुझ पर बडा भारी असर हुआ है । पहिला स्वप्न उस दिन था जबकि मेरी आजादी छीनी गई थी और मुझ को आयु भर के लिए शान्ति का साथी बनाया गया था । फेरो से लौटकर मैं सवेरे ४ बजे आया था । आते ही मे सो गया । सवेरे उठकर रात की सब बाते याद आने लगी । उस समय सब कुछ स्वप्न सा मालूम होता था । मैं अपने दिल ही दिल पछताने लगा क्योकि (१) मेरी स्वतन्त्रता छिन गई । (२) मैं इतनी जल्दी विवाह करना नही चाहता था । (३) मैं डिबाई विवाह कराना नही चाहता था और यही बात मैने माता जी से कही भी थी । सवेरे उठकर मेरी बडी अजब हालत थी और मै खयाल कर रहा था कि मैने रात को केवल स्वप्न ही देखा है और अभी मैं स्वप्न मे ही जनवासे मे बैठा हुआ हूँ । इस स्वप्न का असर थोडे ही समय रहा, क्योकि फौरन ही उठकर मैं तुम्हारे पास ऊपर गया और वहा जाकर सब कुछ भूल गया ।

दूसरे स्वप्न के लिए यहा की अपनी थोडी सी तवारीख दे देना जरूरी है । इस कालिज मे हमारी किस्मत का फसला हमारी क्लास की पोजीशन पर है । पढने के बाद उसी के मुताबिक नौकरी मिलती है । यही कारण है कि यहा पर आते ही तन्दुरुस्ती वगैरा सब चीजो का ख्याल छोडकर काम करते हे । यहाँ पर साल भर मे दो इम्तिहान होते हे । एक फस्ट टम का फरवरी मे, दूसरा सेकेन्ड टम का जून मे । फरवरी मे जब परीक्षा हुई थी, मेरा नम्बर क्लास मे १० से १३ हो गया । इसका कारण यह था कि

सब लोग घर से बहुत कुछ तैयार करके लाए थे। इसके अलावा मैंने कुछ मेहनत भी कम की थी। इम्तिहान का नतीजा निकलने पर मुझे यह खुशी थी कि घर जाने से पहिले दूसरा इम्तिहान भी हो जायगा—और तब क्लास मे कोई अच्छे नम्बर लेकर जाऊँगा। इसके लिए फरवरी से अब तक बडी महनत करता रहा हूँ। परीक्षा मे पहिले कुछ परचे मेरे बहुत अच्छे हुए। जबकि सब रोते आते थे, मे प्रसन्न होता आता था। शुक्रवार को आखरी परचा मेरा बुरी तरह बिगडा, परन्तु इसकी मेने कुछ भी परवा न की। शनिवार को प्रेक्टिकल फिजिक्स मे दो प्रेक्टिकल थे, जिनके १५० नम्बर हुए। प्रेक्टिकल दोना आसान थे। पर तु मै सवदा कठिन प्रश्न किया करता हूँ। मुझ से सहल सवाल नही होते हे। मेरा दिमाग मुश्किल चीजो मे चलता है। यदि परचा मुश्किल है, मै सबसे बढ जाता हूँ। और यदि सहल होता है तो मै पीछे हो जाता हूँ। नतीजा यह हुआ कि मेरी समझ मे कुछ भी नही आया। और किसी से पूछकर भी मै कुछ कर सकता था, परन्तु मै कभी भी बेईमानी और झूठ को अपने पास आने देना नही चाहता हूँ। उस समय मेरी तमाम इच्छाऐ कुचली जा रही थी। उन ५ घटो मे मुझे एक बन्द कमरे मे बठे रहना पडा, तव यह देख रहा था कि मै ऊपर से एकदम नीचे गिर रहा हूँ। यहा पर एक एक नम्बर पर लोग खून देते है, वहा मेने १५० नम्बर गवा दिए। इसका मुझे बडा भारी रज अब तक रहा और इसी कारण आज एक दो सप्ताह बाद तुम्हे पत्र लिख रहा हूँ। यह मेरा उन पाच घटो का स्वप्न है।

यहा पर आकर मने पत्र बहुत ही कम लिखे है, तो भी मेरे पास बहुत पत्र आ गए हे। क्योकि अब मेरे घर जाने के दिन करीब आ गए हे। मने उन पत्रो को भी ठिकाने लगाना पस द किया। इसलिए अभी उन सबको इकट्ठा करके जलाया है। मै चाहता था कि तुम्हारा एक या दो पत्र जो उनमे से सबसे अच्छा हो उसे बचाकर रख लू। पर तु पत्र सब एक से एक ज्यादा प्रेम से भरे और मनोहर थे। और मेरी समझ मे नही आया कि उनमे से सबसे अच्छा कौनसा है। आखिरकार आखरी उठाकर रख लिया, बाकी सब जला दिए।

मेरी छुट्टिऐ यहा पर १५ तक शुरू हो जावेगी। और शुरू होते ही मै दिल्ली चला जाऊँगा। वहाँ पर जाकर मे तुम्हे किसी पत्र का भी उत्तर न दूगा।

'हृदय की परख' आप मेरे पास तुर त भेज द तो अच्छा हो और यहाँ पर मै उसे खतम करके घर जाऊँगा। यदि आपको मिलना हो तो आप यही पर १० या १२ दिन तक आ जावे, क्योकि दिल्ली मे मुझे तुमसे मिलने मे डर लगेगा।

तुमस मिले हुए अब बहुत दिन हो गए हे। इम्तिहान स निबट कर तुम्हारी और   की बहुत याद आती है। परन्तु उसस तो मे जल्दी ही जा मिलूगा। रहे तुम। तुम से अब वैसा मिलना नही हो सकता जसा कि पहिले था। रस्मी म गाठे पड गई

है। पहिले मैं जब कभी भी तुम्हारे साथ होता था बिल्कुल बेफिकर रहता था। तुम्हारे होते हुए मुझे किसी की भी परवा नही थी क्योकि चतुर को सवदा मैं जान से भी ज्यादा प्यारा रहा हूँ। पर तु अब वह जमाना नही है। यद्यपि मुझे इस बात का पूरा भरोसा है कि यदि चतुर मुझे मारने के इरादे से भी आवे तो भी मेरी शक्ल देखते ही पिघल जायगा। परन्तु जमाना नाजुक है। नामुमकिन बात सच हो रही है। नही तो क्या मै इस बात का यकीन कर सकता था कि चतुर के दिल मे कभी मेरे मारने का ख्याल आवेगा। परन्तु वह सच है। इसके लिए चेष्टा भी की गई है परन्तु मुझ पर इतना विश्वास है कि मुझे उनमे से एक भी बात नही बताई गई है। बेहतर हो कि यहाँ पर एक दफा हो जाओ।

आपके द्विवेदी जी कैसे मनुष्य है ? आप उन्हे कसे जानते है और कुछ भी उनकी तारीफ लिखिए। गरमी के दिनो मे अँग्रेजी लिबास बहुत ही बुरा मालूम होता है। यहा पर कालिज मे नकटाई कालर बगर लगाए हम नही जा सक्त हैं। वरना नम्बर कटते है। इन सबसे फाँसी सी लग जाती है। उधर पतलून और कोट का कपडा भी बहुत भारी होता है। यह लिबास जाडो मे अच्छा लगता था परन्तु गरमी मे धोती और हल्की कमीज से बढकर और पोशाक भली नही मालूम होती।

रुडकी, ८ जुलाई १९,

प्रिय चतुर,

इस समय कालिज का समय निकट आ गया है और इसलिए मैं आपको इस समय लिखता तो नही परन्तु घर जाने से पहले एक प्रेम पत्र की बडी लालसा है, अत एव इस कुसमय पर लिख रहा हूँ।

आपकी 'हृदय की परख' मै कल से अब तक केवल आधी पढ सका हूँ। क्योकि कल क्लास का नतीजा निकलने के कारण मेरा बहुत समय उसी मे नष्ट हो गया। मै आशा करता हूँ कि सोमवार को उसे आपको अपनी समालोचना के साथ (जिस काम के काबिल मै किसी प्रकार से भी नही हूँ) भेज दूगा। परचो मे मेरे सबसे करीब २ अच्छे नम्बर आए है क्योकि तीन चौथाई परचो मे मेरे १०० मे से ८२ से अधिक नम्बर है। परचो मे मै मामूली तौर पर क्लास से ८० नम्बर बढ गया हूँ। परन्तु प्रेक्टिकल फिजिक्स मे मैने १०० नम्बर खोए है। इसलिए मैने २० नम्बर मामूली विद्यार्थी से इसमे कम लिए है।

कन्वोकेशन वृहस्पतिवार १३ जुलाई का है और उसी दिन मे २ बजे की गाडी से दिल्ली चला जाऊँगा और वहाँ रात के नौ बजे घर जा पहुँचूगा और आशा करता हूँ कि उसी दिन शांति के दर्शन करके नयनो को तृप्त करूँगा।

लापरवाही जाहिर करना कुछ मेरे साथ कुदरती सा बन गया है। लापरवाही

मैं उनके साथ भी करता हूँ जिनको कि प्राणो से ज्यादा प्यार करता हूँ। यहा पर पढने के लिए अपना चित्त, घर बार, स्त्री, बहिन भाई वगैरा सबसे ही मैने विरक्त किया था। वरञ्च जसा कि तुम मेरा रयाल शान्ति के बारे मे समझते हो बिल्कुल गलत है। घर पर मै जितने भी दिन रहा हूँ—सब प्रकार से मैने उसको प्रसन्न ही करने की कोशिश की है और अपनी प्रसन्नता को उसकी प्रसन्नता पर न्यौछावर करके फेक दिया है।

क्लास मे मेरा नम्बर इस समय १४ हो गया है। इसका मुझे अत्यन्त शोक है, क्योकि सबसे ज्यादा मैने उस मजमून को खोया है जोकि मुझ पर सबसे अच्छा आता है। फिजिक्स पहला ही मजमून था जिसने क्लास मे सबसे पहिले मेरी मौजूदगी बताई थी, क्याकि इसमे ही सबमे पहिले क्लास वक परीक्षा मे फस्ट था। यदि साइस के नम्बर न होते तो क्लास मे मेरा चौथा नम्बर होता। परन्तु साइन्स मुझ पर किसी से कम नही आती। सिफ किस्मत की बात है। परन्तु ऐसी नाकामियॉ मुझे बताती है कि छुट्टिया आराम से नही काटनी चाहिएँ। चतुर, मेरा उद्देश्य पूरा होकर रहेगा। मैं आखिर तक बराबर काम करता रहूँगा और पहिले साल मे अवश्य निकलूगा।

भाभी साहिबा को देखने के लिए मेरा जी बहुत चाहता है। परन्तु लज्जा और भय के कारण मैंने कभी भी ऐसा नही लिखा क्योकि ऐसी बात से लोगो को बहुत ही जल्दी शक जाता है। उनसे मेरी बहुत बहुत नमस्ते कहना। ईश्वर करे उन्हे परीक्षा मे सफलता प्राप्त हो। यहा से जाती बार आपको एक और पत्र लिखूगा।

पण्डित छोटेलाल

मेरे स्कूल जीवन को पचास साल बीत गए। परन्तु उसकी स्मृति दिन पर दिन नई होती जा रही है। ज्यो ज्यो जीवन भीड भाड और चहल पहल से निकलकर शून्य मे पहुँचता जा रहा है—वे दिन बहुत याद आते है। जी चाहता है कि एक बार वे दिन फिर आ जाएँ। सपने मे कभी कभी ऐसा हा भी जाता है। पर सपने की क्षणभगुरता को तो आप जानते ही है। इसी से सपने के सुख और भी दुखदाई हो जाते है। परन्तु इस सूने अस्त होते हुए जीवन मे कुछ चीजे शेष है, जो वास्तव मे प्राणो मे स्पर्श कर जाती है।

पचास वर्ष का समय थोडा नही होता। सौ मे से पचास ही आदमी पचास वर्ष की आयु तक पहुँच पाते है। पचास वर्षो मे इतिहास की कई पुनरावृत्तियाँ होती है, संस्कृति, विचार रहन सहन और जीवन के सभी पहलू बदल जाते है—नई दुनिया पुरानी हो जाती है, चमकते हुए जीवन मटमैले हो जाते है—गुलाब के फूल के समान सौरभ और सुषमा बखेरने वाले चेहरे मुझा जाते है। आनन्द की अनुभूति घिस जाती है और बहुधा ऐसा होता है कि कभी जिस जीवन मे प्रगति फुदकती थी और जिसका झरना झर झर झरता था, उसका बोझ कन्धे पर लादकर बडे ही कष्ट और असुविधा

एव विराग से मत्यु की ऊब जाने वाली प्रतीक्षा करनी पडती है ।

मै कस्बे के उस एक मात्र छोटे से स्कूल मे भरती हुआ। सील भरे कमरे की पतली तरती वाली लम्बी बन्चो पर हम सब बालक अपनी दुबली पतली टाग हिलाते हुए प्राय दो व्यक्तियो की बडी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा किया करते थे । एक मास्टर नौरंगी-लाल की—जो क्लास मे आते ही अपने हाथ की लपलपाती बत दो तीन बार मेज पर जोर जोर से मारकर हमारे कलेजो को धडका देते थे । फिर उसके बाद वही बत किसी की पीठ पर और किसी के कर कमलो पर शपाशप पडती थी । तब हम सब बालक अपनी ही वेदना और विरक्ति मे अपने सामने डेस्क पर पडी किताबो और कापियो को घृणा और क्रोध से आसूभरी आखो से घूरते हुए साथी सगिया के बीच मान भग की अनुभूति के कारण उस जालिम मास्टर नौरगीलाल का न जाने कितना कोसते थे और भगवान पर न जाने कितने अनापशनाप हुक्म चटाते थे ।

उसके बाद तो बहुत से दिन देखे । बहुत से खेल खेले । जेल के सीकचो की यातनाऐ भी भोगी, क्रूर वार्डर की साँसतें भी भुगती, और भेडियो से भी भयानक जेलरो की गुर्राहट देखी । पर स्कूल का वह गन्दा बेहूदा कमरा और मास्टर नौरंगीलाल हमारे पर जिस घृणा–विरक्ति और गुस्से की छाप छोड गए—वह तो सबसे निराली ही रही और अब पचास वष बीत जाने पर जब बहुत-सी बात घिस घिसा कर पुरानी पड गई हैं–वह वसी ही तरोताजा और दमदार है ।

परन्तु जिस दूसरे व्यक्ति की प्रतीक्षा सारी कक्षा के बालक करते रहते थे, वे थे पण्डित छोटलाल । क्लास मे उनके प्रवेश करते ही आनन्द की लहर उस मनहूस कमरे मे व्याप्त हो जाती थी । वह आनन्द तो बस—वही था । एक ही शब्द म कह दू–श्री नेहरू के साथ पालमेन्ट भवन मे बैठने पर भी आज वह आनन्द नही आता । आज भी जब पण्डित छोटेलाल के उस नित्य के अनायास प्रवेश की स्मृति जब भी हृदयपटल पर उदय होती है–हास्य की रेखाएँ–युग युग से सूखे हुए इन भाग्यहीन होठो पर फल ही जाती है । दु ख और वेदनाओ की काली रातो मे भी हास्य की वह रेखा हिली नही ।

उम्र मे क्लास भर के लडको मे सबसे बडे, मास्टर नौरगीलाल से कुछ ही कम, जिसे वे अपने सिर पर कसकर लपेट हुए भकाभक सफेद साफे की भारी भरकम ऊँचाई से पूरा कर लेते थे ।

स्कूल के काम या पढाई लिखाई की उन्होने कभी चिन्ता नही की । घर पर उन्हे फुसत ही कहा मिलती थी, तीन-तीन बच्चो की, और फिर उन बच्चो की मा की वे सार सम्हार करते या स्कूल की कापिया रँगते ? भला कहिए तो ।

हर साल लडके अगली श्रेणियो से खसकते जाते और पण्डित छोटलाल जहाँ के तहा मुकीम रहते । न जाने कितनी पीढियो से वे उसी छठी क्लास मे मुकीम थे ।

स्कूल मे आते ही वे अपनी कापिया, लडको को बाट दते, और लडके खुशी से उनका सब काम खत्म कर देते। इस बीच मे वे पेंसिल बनाते, कविता करते, दवात ठीक करते, या किसी लडके को कोई सत्परामश देते थे। मास्टर नौरगीलाल ने भी उन्हे छूट दे रखी थी। वे कहा करते थे—आप तो पीरोमुशद हे स्कूल की रौनक बढाने के लिए तशरीफ ले आते है। कभी कभी वे उनके बाल बच्चो की खैराफियत पूछ भी लिया करते थे। इन तमाम बातो के सिवा स्कूल का कोई लडका या मास्टर उ हे केवल नाम से नही पुकारता था—सभी उन्हे पण्डित छोटेलाल कहते थे।

स्कूल छूटने पर भाग्य न जाने कहा कहा निदयता से घसीटता फिरा और कहाँ गए पण्डित छोटेलाल। बीच बीच मे सुनता था—वे राजस्थान मे कही अध्यापक हो गए हे, फिर सुना मुख्तारी पास कर वकालत करते हे, पतलून पहनते हे, परन्तु मिलना नही हुआ—पत्र व्यवहार भी नही हुआ। केवल जब तब याद कर लेता था—इसी प्रकार पचास साल बीत गए। इस बार बहुत वर्षों बाद घर आया। लगातार लम्बे परदेश मे फँसा रहा, अकल्पित युद्ध विभीषिकाएँ आखो मे होकर व्यतीत हुइ। महाराज्यो के भाग्य निणय हुए। खून और सोने से लतपत मानव राष्ट्रो ने देखते ही देखते करवट बदली। सारे ससार की जन व्यवस्था बदल गई। कस्बे मे आकर देखा, जसे वह बहुत छोटा हो गया था। सगी साथी प्राय सभी काल कलवित हो चुके थे। कईयो की आकृतिया बदल गई थी। वे बूढे हो गए थे। उनकी कमर झुक गई थी। कुछ की आखे जाती रही थी। बहुतो को बहुत देर मे पहचाना, बहुतो को पहचाना ही नही।

भैंस अब पाच सौ मे आती थी, मुझे याद आया चालीस रुपयो मे पिताजी एक भैस लाए थे, तो सारा कस्बा उसे देखने आया था। दूध अब एक रुपए सेर मिलता था। हम तो एक आने का सेर पीते थे—वह घी के ढेले जिन्हे मै खेल ही खेल मे माता से झडप कर चट कर जाता था, अब नही थे—उनकी जगह वनस्पति जमाया हुआ तेल था—वे कौडिगो के गण्डे जिनसे हम पकौडियाँ खरीद कर खाते थे। और वह पैसा—जिसे सहेज कर गुल्लक मे रखते थे—कही न दीख पडते थे। पैसा तो अब कोई जिन्स नही खरीद सकता था। सब कुछ बदल गया था। सब कुछ नया—अपरिचित सा पराया सा लग रहा था। उस कस्बे मे, जहाँ बचपन के मीठे मीठे दिन व्यतीत किए थे, अब मेरा दमघुट रहा था। वहाँ मेरा कोई अपना न था परिचित न था, सब कुछ पराया ही पराया था।

अकस्मात् देखा—एक बूढा कमजोर सा आदमी तेजी से धुन बाँधकर चलाजा रहा है। एक मित्र ने हँसकर कहा—'पहचाना, पण्डित छोटेलाल है।

'अरे, और मेने लपककर उन्हे पकड लिया। अक मे भर लिया। परन्तु छोटेलाल ने निरुद्वग भाव से उसी पचास वष पुरानी भाव भगिमा और शालीनता से कहा—

कब आए ? मैंने जैसे सुनाही नही । हर्ष उल्लास मे फूला मैं बौखला रहा था । स्कूल के बीते हुए दिन आखो मे खेल रहे थे । मैने कहा—कहो, कैसे रह ?

उसी ठन्डे और निरुद्वेग भाव से—माथे पर बल डाल कर वे बोले–परेशान हूँ । उनके हाथ मे एक टूटा हुआ कलमदान था । उसी को हाथ ऊँचा करके दिखाते हुए वे कहने लगे—लडके ने शतानी की, तोड दिया । अब रशीद के पास गया था–कि दो कीले ठोक दे । उस दिन तीन दिन काम किया, शतान तीनो दिन काम के वक्त ही खाने मे बैठ जाता । खच होता एक घटा, फिर बीडी । पक्का बदमाश । पसे लेकर काम करना ही नही चाहते वे लोग, दो मिनिट का काम था । लेकिन बेमुरव्वती देखिए–साफ कह गया–कीले ले आइए । जाता हूँ, दो कीले ले आऊँ ।

और, पण्डित छोटेलाल उसी तरह चले गए, जिस तरह चल जा रह थे । यह क्षण भर का बीच का अटकाव जसे उनकी एक बाधा थी—जिसमे पचास वषकी आधी शताब्दी की–सतत उत्सुकता भरी थी । न जाने कब मेरा अङ्कपाश ढीला हुआ और मैं बडी देर तक उन्हे तेजी से जाते हुए खडा देखता रहा । उसी कलमदान के साथ—जिसमे इस समय उनका सपूर्ण मन उलझ रहा था । एक ठण्डी और निष्प्राण श्वास हृदय को छूकर बाहर आई । मैने समझा–ससार बदला हे, पर कुछ ऐसे सत्व भी हैं जो पचास साल भी वसे ही रहते है ।

अबसे पचास वर्ष पूव मेरे द्वारा जयपुर से लिखा गया छोटलाल को एक पत्र । छोटेलाल उन दिनो सिकन्दराबाद रहते थे और मे जयपुर मे पढने आया था—

प्रिय, जयपुर, १८-८ १०

चिट्ठीरसे की इन्तजार मे आखे पथरा गई तब कही आज आपका दया पत्र मिला । शायद मै नही बता सकता कि मुझे कितनी प्रसन्नता इसको देखकर हुई । इस का एक यह भी कारण था कि प्रियवर हरिश्चन्द्र की सुगन्ध से यह सुगन्धित हो रहा था । आज आतुर होकर आपको पत्र लिख ही रहा था और सम्भव था कि दो मिनिट मे पूरा हो जाता परन्तु उसी वक्त यह पत्र मिले । ईश्वर का धन्यवाद दो कि इस (लिखे गए पत्र के) तानो से आप बाल-बाल बच गए । मुझे आश्चय था कि सिकन्द्राबाद ही एक साथ नाराज हो गया । बाबा मै तो यो ही विचार सागर मे गोते लगा रहा था । परन्तु इस पत्र के देखने से मालूम हुआ कि मेरा पिछला पत्र आपको नही मिला । चलो ठीक हुआ । मैं आपकी शिकायत करूँ और आप मेरी शिकायत करले । यह भी मर्दो की झपट सही । परन्तु प० टीकाराम के विषय मे दिल से क्या कहकर उसे शान्त करूँ । यह कि उनकी टेढी नजर है । यदि यही कहने के लिए लाचारी है तो लो मौन ही साधे बैठते है । साधु पुरुषो के लिए ऐसे रूखे विचार मेरे दिल मे जगह नही पा सकते । दूसरे उन्हे स्कूल के काम के सिवाय बोर्डिंग के प्रबन्ध से ही छुट्टी नही मिलती

होगी, फिर मुझ जसे निठल्ले आदमी के लिए उनके पास वक्त ही कहाँ आया। और यह बात और है कि उनके कान तक कौन पहुँचावे कि तुम्हारे द्वारे के लिए इस तरह का हो रहा है। खर ईश्वर न करे कि मेरी तरफ एक टुकड़ा फेंकने में उन्हें अमूल्य समय का खून करना पडे। अच्छा अब उनसे कुछ न कहेंगे, परन्तु हमारा नमस्ते तो कह देना। यदि खबर नही लेते तो यह अभागा के भाग्य है परन्तु दयादृष्टि तो रहे। अब रहे हरिश्चन्द्र। सो वह तो हमारे सचालक ही ठहरे। शायद ईश्वर का हुक्म भी ठिठ-कता ठिठकता उनके पास आवे फिर हम तो हैं किस जगह की चिड़िया। उनसे कहना कि तुम्हारी जसी आकृति है वसे ही रहो, नही तो जनने इसी की नपट भुनगा डालेगी। बा० रघुबीरसरन तो बस बाल की खाल निकालने की उधेड़बुन मे मस्त होगे। उनसे क्या कहे। अगर श्यामसुन्दर से उनकी सटा होती तो फिर पातन् तलवार की तरह अगल बगल मे झाँकते फिरते। अब वे उधर क्यों गए। खर कोई बात नही। मेरा दिल मजबूत हड्डिया से रक्षित है सो ऐसी मामूली तक लीफो से फट जाता नही। हमारा दुख इतना नही बढ गया है जो आप लोगो तक पहुँच सके। सो आप बेफिक्र रह कर अपना काम करिए। किसी तरह हमारा दिन भी कट ही जाता है। उसे इस बात का विचार नही है कि किसकी परवाह है। खर ये बात तो बन्द करो परन्तु प० जी यह जयपुरी तो बडी बेतरह पिलाई? सचमुच इतने रोज मे भी नशा न उतरेगा? सच, कहाँ कहा बठ के सोचा था। प० ऊधाराम को अभी एक पत्र भी नही लिख सका हूँ। अब लिख दूगा और आपका मन्तव्य समझाने की चेष्टा करूँगा। सलूनो के विषय मे मै आपसे अधिक जान सकता हूँ परन्तु फिर भी आपके इस मान दान का धन्यवाद देता हुआ यथाशक्ति यह कहने को तयार हूँ कि प्राचीन समय मे जब वर्षा आरम्भ होती थी तो वनवासी ऋषिगण वहाँ अपनी रक्षा के हेतु नगर मे आकर रहा करते थे और उन्ही दिनो मे गृहस्थी लोग उनके उपदेश श्रवण किया करते थे। श्रावणी का बिगड कर सलूना बन गया है। उसका तात्पर्य यह है कि इस दिन गृहस्थी लोग उनके पास उपदेश श्रवण करने इकट्ठे होते थे। वे उपदेश किया करते थे कि विचार कर धर्मसम्मत काय करना उचित है। हर एक काम के लिए गुना गार न रखो कि जो मन मे आया सो किया। परन्तु मर्यादा से (हद बाध कर) काम करना चाहिए। दान देना अच्छा काम है। परन्तु मर्यादा से बाहर बलि ने किया, नतीजा यह हुआ कि बाँधकर पाताल मे भेजा गया। इस वास्ते धर्म सम्मत ही रायों मे बँधे साथ रहो रहना अच्छा है। अपना वित्त विचारकर काम करना चाहिए। पृथ्वी २४ घटे मे पहले अपना चक्कर लगा लेती है, तब कही ३६५ दिन मे सूर्य का चक्कर लगाती है। सो पहिले अपनी ओर देखना और फिर ऊपर नजर उठाना ही ससार सम्मत है। किसी के पास १ सेर अन्न है वह चाहे तो अपना और अपनी स्त्री का पेट भर सकता है। परन्तु यदि

वह कहे कि तमाम दुनिया का भला करू तो काम कैसे चले ? तमाम दुनिया के हिस्से मे तो एक जर्रा भी नही आवेगा और आप दोनो भूखे रहेगे । मतलब यह कि वे परिमाण काम करने से नाश ही होगा । हरेक काम हाथ बाधकर करना चाहिए । इस उपदेश की स्मृति के लिए वे महापुरुष रक्षाबन्धन बाँधते हुए यह भी उपदेश दिया करते थे कि आपस मे सबसे बँधे रहने ही से कल्याण है । फूट न करनी चाहिए । फिर देवोत्थान पर वे महापुरुष अपने अपने निवास को सिधार जाया करते थे । देव ऋषियो का नाम है । यह किसी जाति विशेष का नही हे । जो अपने को दे और कुछ न ले वही देव कहलाता है । अथवा जो कुछ ले तो हमारी ही भूति के लिए ले । जसे सूय जल देता है और १०० गुना करके वर्षा देता है बम यही इन त्यौहारो का अभिप्राय है । हो सकता है मेरे लिखने मे ठीक ठीक भाव न प्रकट न हुआ हो, पर तु मै इस समय जल्दी मे हूँ क्षमा कीजिए । अधिक क्या लिखू, पर तु कृपा करके उत्तर तो जल्दी जल्दी लिखते रहिए यहा तो सब खुशी का आधार तुम्हारे पत्रो पर ही है । शायद यह बात छिपी नही है । अधिक क्या ।

सर शान्तिस्वरूप

स्कूल की बचो पर पास बठे हुए दो बालक आपस मे झगड रहे थे । उनमे एक बालक ठिगना, दुबला पतला, एक साधारण पायजामा और धारीदार डोरिए का कुरता पहिने था । दूसरा उसकी अपेक्षा, तनिक हृष्ट पुष्ट था । दोनो बालक पाँचवी कक्षा मे पढते थे । हृष्ट पुष्ट बालक दूसरे को डाट रहा था, दूसरा शान्तिपूवक उसका प्रतिकार कर रहा था । झगडे का कारण यह था कि पहले बालक ने दूसरे बालक का चाकू माग कर लिया था और उसे खो दिया था । दूसरा बालक अपने चाकू की जबरदस्त माग कर रहा था । दुबला पतला बालक कह रहा था— भाई तुम्हारा चाकू मुझसे खो गया है । उसके बदले मे मै तुम्हे दूसरा नया चाकू ला दू गा । पर अभी पैसे मेरे पास नही हे । जब मुझे पैसे मिलेगे तभी मै तुम्हारे लिए नया चाकू खरीद दूगा । लेकिन दूसरा बालक अपना रौब जता रहा था । वह डाटकर कह रहा था— मै यह सब कुछ नही जानता । मेरा चाकू अभी लाओ । झगडा मास्टर साहब तक पहुँचा । मास्टर साहब के सामने भी उस बालक ने अपना वायदा दुहराया । मास्टर ने पूछा— तुम कब तक चाकू इसे खरीद दोगे ? दूसरे बालक ने कहा— यह मै वायदा नही कर सकता, मेरे हाथ म पसे आते ही मै चाकू खरीद कर इसे दे दूगा ।

बालको का झगडा थोडी धूमधाम के बाद खत्म हो गया । पर जो चाकू का स्वामी था, वह दूसरे पर अब तक धौस जमाता था और चाकू तलब करता था । दूसरा बिना झेपे जवाब देता था—"तुम्हारा मागना फजूल है । पसे हाथ मे आने पर मै खुद दे दूगा ।" और एक दिन उसने बहुत उम्दा विलायती नया चाकू अपने साथी के

हाथ पर रखकर कहा— लीजिए यह आपका चाकू। जो चाकू गुम हो गया था वह देशी और साधारण दो पसे वाला था। अब यह नया, बढिया, चमचमाता चाकू पाकर दूसरे बालक की आखे लोभ और खुशी से चमकने लगी और उसने चाकू जेब के हवाले किया। जिस बालक ने वह चाकू गुम किया था उसका नाम 'शाति' था। कालान्तर मे वही बालक भारत का विश्वविश्रुत वैज्ञानिक सर शातिस्वरूप के नाम से विख्यात हुआ, दूसरा बालक मै था।

बाल जीवन की देहरी से बाहर पर रखते ही स्कूल के वे सीलनभरे कमरे, तख्तो की लम्बी बचे, जिन पर बठकर हम लोग अपनी दुबली पतली टागो को हिलाते जाते और नजर किताब पर और ध्यान जालिम मास्टर नौरगीलाल की बेत पर रखते थे— हमसे छूट गए। कौन कहा गया, कौन क्या हुआ यह जानने का कोई उपाय ही न रहा। लेकिन मै जिन एक दो साथियो को न भूल सका—उनमे एक शाति था। रद्दी चाकू के बदले बढिया चाकू देकर उसने मुझे लज्जित और परास्त कर दिया था। वह एक दरिद्र, निधन, अनाथ बालक था। मामा के घर रहता था— सम्भवत स्कूल की फीस भी नही दे सकता था। क्लास मे सबसे छोटा और पढने मे सबसे तेज, क्लास का मानीटर, एकनिष्ठ और कमसखुन। वह हमसे छोटा है, गरीब है, फिर भी क्लास मे सबसे तेज है, क्यो न चाकू के बहाने उसे नीचा दिखाया जाय। चाकू वापस लेने का ऐसा कुछ सवाल नही था, मूल प्रश्न था नीचा दिखाना। क्लास मे एक और साथी थे। नाम था भूपसिह, गूजर थे और पास ही देहात मे रहते थे। कपडे लत्ते, डील डौल, बोल चाल एकदम देहाती गूजरो जैसी, उमर मे सबसे बडे, कद मे सबसे ऊचे। वह बठे और सब लडके खडे बराबर लगते थे। पढने मे फिसड्डी थे। 'शान्ति' से वे भी खार खाते थे। उसी ने मुझे एक दिन उभारा यह छोरा शाति हमारा चाचा बनता है। इसे भतीजा बनाकर छोडूगा। जा माग अपना चाकू।

यह भूपसिह कालान्तर मे मैनपुरी षड्यन्त्र केस मे तपकर, चिरकाल तक जमीदोज रहकर राजपूताने के प्रसिद्ध क्रातिकारी नेता, 'विजयसिह पथिक' के नाम से उदित हुए। आज वह भी इस नश्वर सृष्टि मे नही है।

जसे सब साथी भुला गए, वसे 'शान्ति, भी स्मृतिपटल से दूर हो गया। बहुत दिन बाद मैने सुना—काशी विश्वविद्यालय के यशस्वी विज्ञान के प्राध्यापक एस० एस० भटनागर काशी विश्वविद्यालय छोड लाहौर विश्वविद्यालय मे चले आए है। चलती बार अपने बक मे बची पूजी की कौडी पाई विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग के लिए दे आए है। तभी किसी ने कहा— अरे यह एस० एस० भटनागर वही 'शान्ति' है। सुनकर कलेजा धडकने लगा। पहले विश्वास नही हुआ। पीछे निश्चय हुआ तो चाकू की बात याद आ गई। और विश्वविद्यालय को अपना सवस्व दान ? शायद अस्सी हजार

रुपया था—इस दान मे आत्मा की उच्च सत्ता, मन की पवित्र त्याग भावना, चरित्र की विशद विशालता का खुला प्रदशन था—जिसका बीज बालक 'शान्ति' के उस चाकू मे निहित था।

बहुत दिन बाद एक बार मेरा लाहौर जाना हुआ। एक अपील थी जिसकी पैरवी श्री अछरूराम कर रहे थे, जो बाद को हाईकोट के चीफ जस्टिस और फिर कस्टोडियन जनरल बने। इच्छा हुई अपने 'शान्ति' से मिललू। सकोच भी था। अछरूराम जी के बगले के निकट ही रहते थे। दूसरे दिन सुबह ही पहुँच गया। पर ज्ञात हुआ—घर पर नही है। मे एक परचा लिखकर रख आया— एक भूला भटका पछी मिलने आया था, मिले नही, दोपहर बाद आएगा। पुरजे पर मैने नाम नही लिखा। परन्तु जब दुबारा गया, तब वह प्रशस्त लान मे सिर पर एक तौलिया डाले शीत की धूप खा रहे थे। दूर ही से दौडकर लिपट गए। यह घटना सम्भवत सन् १९४३ की होगी। यद्यपि यह चालीस वष बाद प्रथम मिलन था।

मैने हँसकर कहा— पहिचान लिया ? मै तो तुम्हारी कोठी मे कदम रखते डर रहा था। हसकर जवाब दिया—'वसा पुरजा तुम्हारे सिवा कौन लिख सकता था भला, मैने समझ लिया था तुम्ही हो।' बहुत देर बाते करते रहे। भव्य ड्राइग रूम मे बठे अपने जीवन के विवरण सुनाते रहे और दूसरे दिन लेबोरेटरी देखने का निमन्त्रण दिया।

कालेज की लेबोरेटरी के अधिष्ठाता वही थे। जाकर घूम-घूमकर सारी लेबोरेटरी देखी। वही इस ठिगने से वज्ञानिक का विश्वव्यापी महात्म्य मने देखा। लेबोरेटरी मे जापान, जमनी, फ्रास और भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तो के ज्ञानपिपासु छात्र—जिनमे बहुतो की सफेद दाढिया थी—इस छोटे से भारतीय जादूगर के चरणो मे बठकर भाति भाति की गवेषणाए कर रहे थे, और यह महाप्रज्ञ पुरुष सबकी गुत्थिया सुलझा रहा था।

वही मैने प्रथम बार इस वैज्ञानिक की शोध की हुई वे अदृश्य किरणे देखी, जिनमे अद्भुत करामात थी, तथा जिनके कारण इन्हे 'सर' की पदवी प्रदान हुई थी। और भी बहुत सी विचित्र वस्तुए थी। परन्तु जब मे सम्पूर्ण लेबोरेटरी को देखकर वापिस उनके पास आया, तब वह बोले—खुश भी हुए ? मैने विनोद मे कहा—कहा, ऐसी कोई खास बात तो देखी नही। क्षण भर इस वैज्ञानिक ने घूर कर मुझे देखा। वही पचास साल पुराना आत्मविश्वास और गवपूर्ण दृष्टि। फिर मेरा विनोद समझ, जरा नरम पडकर मेरी कलाई पकडते हुए बोले—'अच्छा, मेरे साथ आओ।' मेरे साथ मेरे एक मित्र एडवोकेट भी थे। क्षण भर उनकी ओर उन्होने अटकाव से देखा, फिर वह हमे अपने चेम्बर मे ले गए। भीतर से चाबी लगाकर द्वार बन्द कर लिया। चपरासी को इत्तला तक करने को निषेध कर दिया। तब इत्मीनान से बैठकर बोले— एक चीज दिखाता हूँ, तब शायद तुम खुश होगे।

वह उठकर सेफ तक गए। ताला खोला और सेफ से छोटी सी शीशी निकाल। शीशी मे एक तरल पदार्थ था। जल की भांति स्वच्छ। उसे जरा हाथ मे ऊंचा उठाकर बोले—यह एक चीज मैने बनाई है, जिसमे यह ताकत है कि इसकी एक बूंद पानी मे डालदो तो तमाम तरने वाली चीजें तत्काल डूब जाएगी।

वैज्ञानिक की वाणी अत्यन्त गम्भीर थी और उनके नेत्रो मे विचित्र चमक निकल रही थी। हम सास रोककर उसकी बात सुन रहे थे। उस समय द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। एक बार तो जसे यह बात सुनकर कपकपी सी चढ गई। परन्तु वैज्ञानिक का ध्यान हमारी ओर न था, वह अपनी गम्भीरतम गवेषणा का प्रदर्शन कर रहा था। उसने एक बडे बरतन मे नल से पानी भरा और बहुत सी रुई और कुछ काग पानी मे डाल दिए। वे सब पानी पर तरने लगे। उसके बाद एक सलाई उस द्रव मे डुबाकर उसने पानी मे छुआ दी। सलाई का पानी से छूना था कि वह रुई और वे काग उस तरह पानी मे डूब गए, मानो वे पत्थर या लोहे के टुकडे थे। हम लोगो के चेहरो पर हवाइया उडने लगी और मे एक प्रकार से घबराहट भरी नजर से उस विश्वविश्रुत वैज्ञानिक बाल सखा को देखने लगा। अपने स्थान पर बैठकर उन्होने जेब मे से एक पुरजा निकाला और उसे अगुलियो मे मरोडते हुए कहा 'मुझे शायद लाहौर छोडना पडे, सम्भवत युनिवर्सिटी भी। यह चीज गवर्नमेंट को बताई जा चुकी है और आज ही लार्ड वेवल का यह खत मिला है।' उन्होने खत मेरे आगे बढाया। कुल दो पत्तिया, स्वय वाइसराय की हस्तलिखित थी जिसमे उन्होने सम्बोधन करके हमारे बाल सखा को तुरन्त दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया था।

मेरा सारा शरीर भय से भर गया था और कदाचित यही दशा मेरे मित्र उन एडवोकेट की भी थी। मैने कहा— यदि यह आपकी चीज सफल हो गई तो दुश्मनो के सब जहाजो को, जो समुद्र मे है, डुबा देगा। यह तो गजब हो गया। गजब है।

वैज्ञानिक ने इसका कोई जवाब नही दिया। उनकी अगुलियां लार्ड वेवल के हस्ताक्षरित उस पुरजे को मोडमाड रही थी। उसके बाद हम लोग बातचीत करने की स्थिति मे न रहे। समय भी बहुत हो गया था। हम लोग विदा मांग कर चले आए।

शांतिस्वरूप दिल्ली आ गए। लेकिन मे बहुत कम उनसे मिलता था। कभी कभी फोन पर उनसे कुशल प्रश्न हो जाता था। जब भारत के स्वतन्त्र होने पर विज्ञान और निर्माण मे इस जादूगर ने भारत मे जीवन फूका तो मे आनन्द और उल्लास से उसकी स्मृति मे मग्न हो जाता था। हा, कभी कोई नई पुस्तक निकलती तो उसे भेट कर आता अवश्य जाता था।

वे उर्दू के मार्मिक कवि थे—यह सब जानते है। पर कविता वह हिन्दी मे भी करते थे। मुझे चिढाते हुए वह हिन्दी को सदा म्लेच्छ भाषा कहते थे।

एक दिन जब मै उन्हे अपनी 'नगर वधू' की एक प्रति देने गया तब शिकजवीन का गिलास देते हुए बोले—'म्लेच्छ भाषा तो तुम अच्छी लिखते ही हो, यह किताब भी जरूर बढिया लिखी होगी।' किन्तु इतने ही मे एक सम्भ्रात राजपुरुष आ गए—उनके समक्ष जो उन्होने मेरा लम्बा चौडा परिचय दिया तो मेरी आखे गीली हो गइ। मैने कहा— अब इनके सामने भी तो 'म्लेच्छ भाषा' की बात कहो। तब हसकर बोले— एक गिलास शिकजबीन इनकी खातिर और पिओ।

लखनऊ मे जो ड्रग रिसर्च सस्था स्थापित हुई, उसमे उन्होने चाहा था कि मै उन्हे सहयोग दू। कुछ बात चली भी, पर पत्र व्यवहार होकर ही रह गया। अब मै जिस साहित्यिक नशे मे डूब चुका हूँ, उससे उबरना मुश्किल था। कभी चिकित्सक था, यह भी प्राय भूल चुका हूँ। बात मैने उनसे कहदी थी।

उस दिन मै लखनऊ स्टेशन पर बनारस की गाडी की प्रतीक्षा कर रहा था। प्लेटफाम पर दिल्ली जाने वाली गाडी खडी थी। मै वेटिंग रूम के सामने बराण्डे मे टहल रहा था। एकाएक नजर पडी सर भटनागर फस्ट क्लास कम्पाटमेट से निकल कर एक ककडीवाले से मोल तोल कर रहे थे। लखनऊ की ककडिया लैला की ऊगलिया। मैने कदम बढा कर दुकानदार से कहा—'यह झाबा डिब्बे मे रखदो। उन्होने मुह उठाकर देखा—'अरे तुम, लेकिन इतना क्या होगा। नहीं नहीं।' मैने कहा—'रास्ते भर खाते जाइये और लैला मजनू पर शेर बनाते जाइये। प्लेटफाम पर बहुत लोग बिदा करने आए थे, उन सबसे उन्होने मेरा परिचय कराया।

फुरती और चुस्ती इस दरजे तक थी कि मै कई बार सोचता था कि यह वज्ञानिक कही पागल न हो जाय। नीद बहुत कम आती थी। भरपूर नीद नही सो सकते थे। मुझसे उपाय पूछा तो मैने कहा—रात को बाल्टी मे गरम पानी भरो। उसमे पैर डुबोकर दस मिनट बठो। फिर तौलिया से पर पोछकर सो जाओ।

इस प्रयोग से कुछ लाभ हुआ था। नीद आने लगी थी। आखिरी बार मिला तब कहते थे—'मै अब पशन लेना चाहता हूँ। बहुत थक गया हूँ।' पत्नी के देहान्त के बाद जीवन मे एक सूनापन वह अनुभव करने लगे थे। वह एक महान आत्मा थे, जो अपना जीवन सफल कर गए। उन्होने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण देश को उन्नत करने मे लगाया और अपना सारा जीवन तपस्वी की भाति व्यतीत किया।

गुरुकुल सिकन्दराबाद मे

सन् १९०६ के अन्त मे मेरी आयु पन्द्रह बष की थी। इस समय मै अग्रेजीस्कूल मे पढ रहा था। मेरे पिताजी, प० मुरारीलाल शर्मा और प० कृपाराम (पीछे स्वामी दशनानन्द) के सद्प्रयत्नो से सिकन्दराबाद से चार मील दूर दनकौर स्टशन के समीप एक विस्तत भूभाग मे गुरुकुल सिकन्द्राबाद की स्थापना हुई। कुल तीन रुपए चन्दे मे

आए। गुरुकुल कागडी की स्थापना इस गुरुकुल के बाद मे हुई थी।

गुरुकुल मे प्रमुख प्रविष्ट होनेवालो मे मेरा और प० मुरारीलाल शर्मा के ज्येष्ठ पुत्र देवेन्द्र का नाम था। पिताजी ने मेरा नाम स्कूल से कटवा दिया, इस प्रकार मेरा अंग्रेजी पढना छूट गया। फिर तो अंग्रेजी ज्ञान बढाने का कोई सुयोग ही मुझे नही मिला। उर्दू भाषा तो मैने छुई भी नही। गुरुकुल मे आते ही सस्कृत और साहित्य पठन की मेरी प्राकृत साध तीव्र गति से दौडने लगी। सस्कृत साहित्य और धर्मशास्त्र का कोई ग्रन्थ मुझे कठिन नही लगता था। हम दोनो की समान आयु थी और दोनो ही अपने परिवार की ज्येष्ठ सन्तान थे। देवेन्द्र ब्राह्मण थे और मै क्षत्रिय। जल्द ही तो गुरुकुल मे विद्यार्थियो की सख्या बढती गई और इसकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई। प० मुरारीलाल शर्मा गावो मे जा जाकर गुरुकुल के लिए अन्न सग्रह करते और किसानो से अनाज की गाडिया भरवा कर लाते थे। हमारे गुरु थे प० कृपाराम, प० श्यामलाल शास्त्री, प० जीवाराम आचार्य और प० भूमित्र शर्मा वगैरह। सस्कृत, व्याकरण, और वेद मन्त्रो की पढाई मे मेरा खूब मन लगता था।

यह तो मै पहले ही बता चुका हूँ कि जब मै कुल सात वर्ष की आयु का था तभी पिताजी ने मुझे कुछ भाषण, मन्त्र, कविताएँ, चौपाइयाँ रटवा दी थी। कुछ मै अपनी बुद्धि से भी जोड लेता था और दस बीस आदमियो के सामने भाषण दिया करता था। अब यहा गुरुकुल मे सस्कृत व्याकरण के साथ आर्यसमाजी सम्प्रदाय के ग्रन्थो के पठन पाठन ने मेरी वक्तृता शक्ति को और भी चमका दिया। सन्ध्या समय मै गुरुकुल के सह पाठियो को उद्यान मे एकत्र करके भाषण दिया करता था। एक दिन प० मुरारीलाल शर्मा ने मेरा पूरा भाषण छिप कर सुन लिया। फिर क्या था, मुझे पढने से छुट्टी दिला दी और कुछ विद्यार्थियो के साथ आस पास गुरुकुल के लिए चन्दा तथा अनाज एकत्र करने के लिए भेजना शुरू कर दिया। हम पीत वस्त्र पहिने, ब्रह्मचारी वेश मे ग्राम वासियो के लिए देवदूत की भाँति लगते थे। गाव मे हमारे पहुंचते ही ग्रामवासी अपना काम छोड कर हमे चौपाल पर ला बैठाते और हमे घेरकर बैठ जाते। पहिले हम सब विद्यार्थी हाथ मुह धोकर दो चार वेद मन्त्र पढकर ईश प्रार्थना करते। और फिर मै खडा होकर अपना रटा हुआ भाषण सुनाता। १५ वर्ष के बालक से धाराप्रवाही भाषण सुनना उनके लिए कौतूहल और चमत्कार की बात थी। भाषण के उपरान्त भिक्षा मागने पर हमे गुरुकुल के लिए बहुत सा अनाज देने के वचन प्राप्त होते थे। रुपए भी और वस्त्र भी।

सायकाल जब हमारी मडली लौटती, तो हमारी दिन भर की कमाई का लेखा जोखा देखकर गुरुकुल अधिकारी प्रसन्न होते और मुझे शाबाशी देकर बढावा देते। परन्तु मेरा मन विद्रोह से भर रहा था, मेरी शिक्षा मे बाधा पड रही थी और मुझे गाव

गाव घूम कर भिक्षा करना मेरे स्वभाव के विपरीत था।

पिताजी प्रति रविवार को मुझ से मिलने कस्बे से गुरुकुल आते रहते थे। जब आते माता द्वारा भेजी गई चीजे लड्डू घी, मिठाई कपडे, कुछ न कुछ अवश्य लाते। एक दिन मेने पिताजी स गुरुकुल की अपनी पढाई मे हानि होने की बात कह दी और यह भी कह दिया कि मै गुरुकुल के लिए भीख माग कर अन्न नही लाऊँगा, आप इन लोगो से कह दीजिए। उन्होने मुरारीलाल जी से कहा भी, पर उ होने पिताजी से मेरी ओर भी प्रशसा करके कहा कि आपका यह पुत्र इस गुरुकुल का यशस्वी वक्ता बनेगा।

पिताजी के उद्योग का कुछ परिणाम नही निकला। मेरा मन विद्रोह से भरता गया। मुझे सस्कृत के बडे ग्रन्थो के पढने की उत्कट अभिलाषा थी। मैने गुरुकुल के अपने दो सहपाठियो से काशी चल कर पढने की सलाह की। वे सहमत तो हो गए पर तु काशी तक पहुँचने का माग व्यय किसी के पास न था। न कोई अपने घर से काशी जाने की आज्ञा प्राप्त करने की आशा ही करता था।

अ तत एक दिन मैने उन दोनो को बता दिया कि मे आज रात को गुरुकुल से चुपचाप चला जाऊँगा। उन दोनो ने भी मेरा अनुगमन करने का वचन दिया। गुरुकुल के सामने ही दनकौर स्टेशन है। और हमे पता चल गया था कि दिन छिपने के बाद दिल्ली की ओर से जो ट्रेन आती हे, वही बनारस की दिशा को जाती है। हम तीनो विना कौडी पैसा और कपडा लत्ता साथ लिए उस रेल मे जा बठे। टिकट हमने नही लिए। रेलगाडी अलीगढ स्टेशन पर पहुँची। हमारे साथियो मे से एक अलीगढ का निवासी था। अलीगढ आते ही उसने कहा—यहा मेरा घर हे। आओ उतर पडे। मे अपने पिताजी से अनुमति भी ले लूगा और कुछ धन भी। उसकी बात का विश्वास कर के हम लोग उतर पडे और किसी प्रकार स्टेशन से बाहर आए। मे और दूसरा सहपाठी मुसाफिरखाने मे बैठ गए और तीसरा सहपाठी अपने घर चला गया। किन्तु वह फिर न लौटा। हम उसके लौटने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि हमारी आर दो तीन व्यक्ति आते दीख पडे। उ होने मुझसे पूछा—तुम्हारा नाम चतुरसेन हे ? मेने उन्हे हाथ जोडकर नमस्कार किया और कहा—'हाँ।'

हमारा जो साथी—अपने पिता से आज्ञा और धन लेने गया था—इनमे से एक उसके पिता थे, जो अलीगढ आयसमाज के मन्त्री थे और मेरे पिताजी के मित्र भी। लडके से सब वृत्तान्त सुन कर उन्होने उसे तो उसकी माता की देख रेख मे छोडा और दो साथियो को लेकर हमे देखने स्टेशन आ पहुँचे। वे हमे अपने घर ले गए, खाना खिलाया और डाट डपट भी की। कहा—तुम अब यहा से बाहर भी नही निकल सकते, हम तुम्हे तुम्हारे पिता के पास भेज देगे।

परन्तु रात्रि को हम दोनो युक्तिपूवक वहाँ से निकलकर स्टेशन पहुँचे। वहाँ

एक अपरिचित मारवाडी सेठ से हम दोनो की भेंट [illegible] कर हमे दो टिकट कानपुर तक के लिया दिए। [illegible] पडे। गाडी से उतरते ही एक वृद्ध चकर ने हमारा टिकट [illegible] हमे लोटा दिया।

उसने पूछा—कानपुर मे कहा जाओगे?

मेने कहा—हम काशी पढने के लिए जाना चाहते है पर [illegible]।

मेरी बात सुनकर टिकट चकर को कुछ जिज्ञासा [illegible] पूवक हमारा वृत्तान्त पूछ लिया। सुन कर वह हसा और [illegible] ठोकी। उसने भोजन खरीद कर हमे खाने को दिया और दो टिकट [illegible] लाकर हमे गाडी मे बठा दिया। इलाहाबाद हम एक धर्मशाला मे जा कर [illegible] और दो दिन मे हमने कुछ चदा इकट्ठा किया। तीसरे दिन [illegible] ट्रेन मे जा बठे। जब हमारी ट्रेन काशी स्टेशन पर पहुँची [illegible] ठिकाना न रहा।

काशी मे

काशी मे एक बगीचा था, वहा कुछ विद्यार्थी निवास [illegible] हम भी वही पहुँच गए और उन्ही के साथ हम भी रहने लगे। [illegible] भोजन करने जाते थे। हम भी भोजन करने गए। परन्तु [illegible] इए से खटक गई। उसने अपमानजनक रीति से [illegible] कहा—'तुम्हारे स्वामी पुण्याय क्षेत्र खोले हुए है और तुम [illegible] हो? इस पर उसने कुछ अपशब्द कहे। अनन्तर और [illegible] उसने देने की इच्छा ही नही की। फिर बहुत मागने पर दूर से अपमान [illegible] साथ डाली। मुझे क्रोध आ गया। मैने पत्तल उठाकर [illegible] मारी, जिससे वह हाय हाय करने लगा कि चौका खराब हो गया। मै अपने [illegible] हाथ पकड और जूते हाथ मे ले वहा से भाग गया। [illegible]।

इसके बाद हम लोग दशाश्वमेध घाट पर [illegible] कर बैठते रहे। वहा कोई न कोई यात्री भोजन करा देता। [illegible] ठहरे थे उसके मालिक ने मेरा सस्वर गगालहरी [illegible] और उससे प्रभावित हो कर अपने घर पर कथा करने के लिए बुलाया। [illegible] वहा भोजन मिला। इसके बाद उन्होने मुझे अपने बगीचे मे [illegible] निरीक्षक नियत कर दिया तथा ठहरने और भोजन की व्यवस्था [illegible] प्रकार पहिनने को मिल जाते थे।

मैं भिन्न भिन्न गुरुओ के पास घूम घूम कर भिन्न भिन्न विषयो का अध्ययन

करने लगा। एक दिन बगीचे के स्वामी सेठ ने मुझसे दुर्गा पाठ करने को कहा। मैने स्वीकार कर लिया। परन्तु दुर्गापाठ की जगह मै लघुकौमुदी घोखा करता था। पाठ आदि समाप्त हो जाने पर भोजन कर दक्षिणा फटकार अगोछे मे पेडो का दोना ले चला आता था। सेठजी को पता भी न चलता कि मैने किस का पाठ किया। इसके सिवा हम दोनो ने यात्रियो की सेवा का भी धन्धा किया। प्रत्येक प्रतिपदा और पूर्णमासी को (उस दिन अनाध्याय रहता था) हम बाजारो मे निकल पडते और अच्छी तरह किसी मोटे आसामी को भापकर उसे देवदर्शन कराने के लिए ले चलते। गली कूचो मे जहा आला दिवाला दीखता, एक कथा गढ कर यात्री को बता देते और पैसा चढवाते। मेरा साथी पीछे पीछे आता और चढावे का धन उठाता जाता। इस प्रकार कुछ पैसे एकत्र हो जाते। कुछ दक्षिणा मिलती। पुस्तक खरीदने का तथा भोजन का खर्च निकल आता। ऐसा करने मे गुण्डो और पण्डो से भी झगडे हो जाते थे। अब हमने क्षेत्रो का भोजन त्याग दिया था। हम आठ दिन के लिए मोटी मोटी रोटी बनाकर अगोछे मे बांधकर छाया मे टाग देते। नित्य प्रात गगा स्नान कर एक रोटी खा दिन भर घूम घूम कर पढते। इस प्रकार छ सात महीने व्यतीत हो गए।

इस बीच मे पिताजी को हमारे काशीवास का पता लग गया और वे एक दिन भोर मे ही अपना डडा लेकर हमारे बगीचे मे आ धमके। बहुत डाटा डपटा। परन्तु मेरी पढने की लगन देख कर तथा बगीचे के स्वामी से मेरी प्रशसा सुनकर मेरे निवास, भोजन तथा पढने की समुचित व्यवस्था करके लौट गए।

उन दिनो काशी नगरी मे भारतीय सस्कृति की झलक मिलती थी। काशी की पतली लम्बी गलियो मे परस्पर भीतो से सटी हुई बडी बडी अट्टालिकाओ से नगर भरा पडा है। वहा गलियो, चौराहो, बाजारो और स्थानो के नाम भी सस्कृतमय है। वहा के लोगो का गगा स्नान करके धोती बाधे नगे शरीर, मस्तक पर चदनलेप, सिर पर घनी लम्बी चोटी और गले मे पडे मोटे जनेऊओ ने मेरा ध्यान अनायास ही काशी की सस्कृति की ओर आकर्षित किया। दूसरा आकर्षण जिसे मे अभी तक भी नही भूला हूँ विद्यार्थियो का उच्चस्वर से सस्कृत पाठ करना था। किसी भी गली मे निकल जाता, वहा प्रत्येक अट्टालिका के किसी न किसी कक्ष अथवा कमरे से विद्यार्थियो के पाठ करने की सस्कृत ध्वनि मुझे सुनाई पडती। दस बीस विद्यार्थी नगे बदन धोती पहिने जनेऊ धारण किए मस्तक पर तिलक छाप लगाए अपने गुरू के सम्मुख चटाइयो पर पलोथी मारे बैठे रघुवश, हितोपदेश, पचतन्त्र, अष्टाध्यायी, लघुकौमुदी, अमरकोष, ज्योतिष-शास्त्र आदि सस्कृत पुस्तको का पाठ पढते दीखते थे। गुरु के प्रति उनकी आदरनिष्ठा देखने की ही वस्तु होती थी। इस समय काशी की वह झाकी देखने को नही मिलती।

काशी प्रवास मे ही मुझे चैत्र शुक्लपक्ष मे आरम्भ होने वाले नवरात्र व्रत रखने

की प्रेरणा मिली। वहा बगीचे मे गन विद्यार्थियो मे ग ग्रन्त । । र्गा ग । ग । । ग्र

चढकर सुना। मुझे यह भी बताया गया कि ग । । । र्गा । । ग ग्र । । । । । । ।

सब विद्याओं मे पारगत होकर परम यशस्वी होता है। उस ग र्ज । । । । ग्रौ । । । ।

प्राप्ति होती है। उसके लिए कोई कार्य कठिन नही रहता। ग । । । । । । ।,

प्राप्त हो जाती है इस महिमा से प्रभावित होकर मैंने । । । । । । । । आरम्भ

कर दिया। यद्यपि बगीचे के स्वामी सेठ ने बगीचे मे हमारे रहने । आरम्भ म ।

मुझे अपने घर पर दुर्गा पाठ करने के लिए नियत किया था, पर । । । । । । ।

दुर्गा पाठ पर विश्वास नही जमा था। न मुझे किसी विद्यार्थी । । । । । । पार

ङ्गत कराने का इसका महत्व समझाया था। अत अपने । । । । । । । । ।

करने का सकल्प किया। मेरा पहिला व्रत काशी मे ही प्रारम्भ हुआ और लगभग । ।

वर्ष तक नवरात्र व्रत का पालन नियमित रूप से निर्वाहित । । । । । । । ।

इस व्रत के आरम्भ होने से दो चार दिन प्रथम मे अपने । । । । । । । । ।

फारिग हो जाता था। मुझे प्रथम व्रत करने और नौ दिन । उसकी समाप्ति पर । । ।

की अनुभूति अच्छी तरह स्मरण है। व्रत के प्रथम दिन मैंने । । । । । । ।

किया, चदन का तिलक लगाया, नया जनेऊ बदला और । । । । । । । ।

बनारसी अगोछा डालकर बगीचे की ही एक शून्य और । । । । । । । । ।

बैठ गया था। पाच छ घण्टे तक मैंने दुर्गा पाठ का अत्यन्त उत्साह और । । ।

पाठ किया। दुर्गा की शक्ति मूर्ति की एक तस्वीर मैं बाजार से । । । । । । ।

था। उसे मैंने सामने रख ली थी। जब मैं पाठ । । उठा । । । । । । । ।

प्रादुर्भाव अनुभव किया। मैं नित्य पवित्र मन से दुर्गा पाठ । । । था और । । ।

अपनी शारीरिक शक्ति और बुद्धि वृद्धि का अनुभव करता था। । । । । । । ।

आहार केवल एक बार सन्ध्या समय फलो का होता था। । । । समाप्ति पर । ।

आने के बताशे लाकर विद्यार्थियो को प्रसाद । । । । । । । । । ।

जयपुर चले जाने पर भी इस व्रत का मेरा यही नियम रहा। । । । । । ।

कारण मे क्षात्र तेज और महान ज्ञान की उपलब्धि की स्पष्ट । । । । था। ।

व्रत से मेरा स्वास्थ्य और ज्ञान दोनो की ही वास्तव मे बहुत लाभ हुआ। । । ।

मै विशुद्ध ज्ञान और तेज वृद्धि की कामना रखकर किया करता था। फिर भी मैं । ।

मूर्ति उपासना करना नही समझा। मैं उसे शक्ति की उपासना करता था। । । । ।

मैं अपनी आर्य समाजी भावना को अपने हृदय मे अक्षुण्ण ही मानता था

इस प्रकार काशी मे लगभग १६ मास मैंने डा० । । । । शास्त्री तथा अन्य विद्वानो और पण्डितो से वेद, शास्त्र, एव सस्कृत ग्रन्थो को पढा। यहाँ की तत्कालीन सस्कृत शिक्षा प्रणाली मे समय का दुरुपयोग होते देख और एक सुयोग उपस्थित होने पर

सन १९०९ के अ त मे १९ वप की आयु मे मे जयपुर मे वहा के प्रसिद्ध सस्कृत कालेज मे पढने चला गया। मेरा साथी वही काशी मे रह गया। कालेज मे प्रविष्ट होकर सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित महामहोपाध्याय प० गगाधर चतुवदी का अतेवासी बना, जहा मे सस्कृत और वद्यक पढता था। कालेज मे फीस कुछ नही देनी होती थी। रहता था आय समाज मन्दिर मे। मेरे साथ एक और दक्षिणात्य विद्यार्थी वही रहते थे। वह हेदराबाद के निवासी थे, और महाराजा कालेज मे एफ० ए० श्रणी म पढते थे। बिना फीम की पढाई उ हे जयपुर खीच लाई थी। शीघ्र ही उनसे मेरा मत्री सम्बन्ध हो गया। मत्री सम्ब व के जड मे स्वाथ भी था। वह और मे दोनो ही ट्यूशन करके अपनी शिक्षा और रहन सहन तथा खाने पीने का खच चलाते थे। मुझे ट्यूशन के मिलते थे तीन रुपये मासिक। जागिडा ब्राह्मण की विश्वकर्मा पाठशाला मे रात को बालको को पढाना पडता था। पढाना क्या था, भेड बकरियो के बच्चो को दो तीन घण्टे घेरना था। बहुत बच्चे सो जाते थे, बहुत पाखाना पेशाब कर देते थे, लडते झगडते शोर करते थे। उन सबकी सार सम्हार करना और दो ढाई घण्टे वहा बिता आने के मुझे मिलते तीन रुपए चेहरेशाही। मेरे मित्र अग्रेजी के छात्र थे, इसलिए उ हे ट्यूशन के ग्यारह रुपए मिलते थे। कोई एक ठाकुर बच्चा छठी सातवी कक्षा मे पढता था। उसे ही हिलाते थे वह। इस प्रकार हम दोनो की आमदनी थी ग्यारह जमा तीन कुल चौदह रुपए। इ ही चौदह रुपयो मे हमारी दोनो की छात्र गृहस्थी चलती थी। खच का स्वामी मै था। दूसरे शब्दो मे बीबीगिरी मुझे ही करनी पडती थी। लेकिन रहते थे ठाठ से। खाना बनाती थी समाज क चपरासी की स्त्री। वेतन पाती थी दो रुपए माहवार। पर ब्राह्मण की बेटी महीने मे केवल पन्द्रह दिन खाना पकाती थी। शेष पन्द्रह दिन पक्वान्न और मिष्टान खिलाती थी उन्ही दो रुपयो मे। हम लोग गेहूँ नही खाते थे, जौ खाते थे। उन दिनो जयपुर मे जौ ही प्रमुख खाद्य था। एक रुपए के जौ लेकर एक मास चलाते थे। हर महीने की पूर्णमासी को जौ लाने का नियम था। यदि हम देखते कि महीना पूरा नही पडेगा तो एकादशी, रविवार आदि के दो चार उपवास कर डालते थे। सब्जी तरकारी दो चार पसो की हफ्तो चलती थी, बहुत सस्ती थी। एक पैसे की १०,१२ मूली और २ पैसे के एक सेर बगन। घी शायद पौने दो सेर। पर हम खुदा के बन्दे घी दूध के फेर मे न थे। खाते थे जौ के रूखे टिक्कड। कभी मिरच खटाई की चटनी से, कभी साग तरकारी तथा दाल के साथ। जयपुर मे व्याह-शादी और गमी की ज्योनारे बहुत होती रहती थी। उनकी परची विद्यार्थियो के लिए हमारे सस्कृत कालेज मे आती थी। बारी आने पर मुझे भी मिलती थी। भोजन भी मिलता था खूब तर माल और दक्षिणा घाते मे। कभी स्वय जाकर डटकर खाता था, कभी परची किसी दोस्त को इस शत पर दे देता था कि वह दक्षिणा के पैसे मुझे

दे दे। दक्षिणा दुअन्नी से अठन्नी और एक रुपया चढ़ ... ...
बढकर लाभ की वस्तु थी वह ब्राह्मणी ईश्वर उस ...
जो के टिक्कड नही पका पाती थी, ब्राह्मणी। बहुत यजमा ...
सा पक्वा न मिष्टान्न बटोर लाती थी, और हम ...
लगाते थे और ब्राह्मणी का जयजयकार करते थे।

आर्य समाज के बगल म रहते थे एक ...
बदार चेहरा, ठाठ की दाढी, कट्टर आर्यसमाजी, जबरदस्त ...
दोला मोला। हम दोनो ही कृष्ण क हैया उनके कृपा पात्र थे। ...
मिल जाता था अचार चटनी सब्जी तरकारी। गपशप और ...
वही आश्रय थे। परन्तु उनके अनुग्रह के मुख्य पात्र थे मेरे मित्र ...
द्यार्थी। मै उनकी छाया की भाति उनका अनुग्रह पाता था। मेरे मित्र पर ...
वार के अनुग्रह के मूल म एक स्वार्थ था जरा सा ...
दिलचस्प फिगर था। पर इस नाम से उसे पुकारने ...
हम असली नामोच्चार ही करते थे। अभी बताता हूँ ...
'छोट' की आयु थी बारह वष की और पढ ... म, और ...
मेरे मित्र के पास—फ्री। इसी के शुल्क म था यह अनुग्रह। मेरे मित्र ...
मास्टर साहब। सो आज तक भी कहते है। पढाई होती था ... कभी
तीन चार घ टो की। 'छोटे' मे उन मास्टर साहब ...
कहने से क्या फायदा। दिलचस्पी तो मेरी भी थी। 'छोटे' ...
ठिगना कद, गोल चेहरा, हँसती हुई मुद्रा, ...
पन। रईसजादे थे, तहसीलदार क बेटे, ...
मास्टर की और मेरी भी दिलचस्पी 'छोटे' के प्रति ...
विवाद का विषय बन गई। विवाद इसलिए ...
मिया' मास्टर का खा जाते थे। हमारी गपशप और ...
इससे सोचता था—यह छोटे न आया करे तो अच्छा। पर ...
बन गई कि उसके आने की हम प्रतीक्षा करते रहते, आते पर प्रस ...
पढाई कम होती, गपशप अधिक। अब हम तीन आदमियो ...
पार्टी। समझे आप? अजी, सिंघाडे के तीन ... है। हम ... और ...
इस सिंघाडा पार्टी की सबस दिलचस्प कारवाई थी ...
उसकी बात। उन दिनो जयपुर का ... बहुत ... था। ...
बढिया। आज उन बातो को पचास बरस बीतने पर भी ... और
नाम मे उसकी ग ध बस रही है और उन सरस बातो ...

की कारवाई की जान थी। रुपए का ढाई सेर मिलता था वह कलाक द। चकाचक। लेकिन रुपए का खरीदता कौन था। खरीद होती थी, दो आना चार आना मात्र की। दो आने का आता था सवा पाव।

मेरे उन दाक्षिगात्य मित्र का नाम था सूयप्रताप। अब मे उन्हे कप्टन कहकर सम्बोधित करता हूँ। कुछ काल पूव तक वह हैदराबाद राज्य के एक अधिकारी थे,अब अवकाश प्राप्त है। पर खत मे जो तब लिखता था–'प्यारे सूरज' सो आज भी लिखता हूँ, और वह लिखते थे प्यारे चतुर' सो आज भी लिखते है। यह पचास साल के अभ्यस्त सम्बोधन अब जीवन की अस्तगत घडियो मे भला क्यो छूटने लगे। पर वह 'छोटे' उ हे तब 'मास्टर साहब' कहता था, अब भी 'मास्टर साहब' कहता हे। हा, हा, ठहरिए 'छोटे' का भी असल नाम बताता हूँ।

मेरे मित्र को कलाकन्द खाने का बहुत शौक था। आमदनी तो हमारी काफी थी १४) माहवार। पर खच अनियमित था। मुद्दा यह कि कभी कभी रूमाल की कारवाई का खच कुल आमदनी का दो तिहाई बैठ जाता था और बहुधा उपवास की नौबत आ जाती थी। यो हम वास्तव मे किफायत के लिए—और कहने को सयम और स्वास्थ्य के लिए हर रविवार को उपवास करते थे। उस दिन रविवार था–उपवास का दिन। परन्तु शनिवार को भी उपवास करना पडा था, क्योकि रूपराम पास नही थे। सिघाडा पार्टी रुपए को रूपराम कहती थी। दो दिन के उपवास ने मेरे मस्तिष्क का सतुलन बिगाड दिया था। रविवार का तीसरा पहर हो रहा था। उपवास खुलने के कोई लक्षण नजर नही आते थे। मै भेडिए की भाति गुर्राता हुआ चक्कर लगा रहा था। उन दिनो कम्बख्त भूख भी ऐसी लगती थी कि तोबा तोबा। जैसे पेटमे भट्टी जल रही हो। बार-बार पानी पीता था, पर पानी तेल का काम दे रहा था। पानी पीने से भूख और भी तेज हो रही थी। क्षण भर बठ जाता था, फिर चक्कर लगाने लगता था। बीच बीच मे बकता था। कलाक द को कोसता था। कलाकन्द खाता मै भी सब के बराबर था। पर इस समय पूरा दोष मित्र को दे रहा था। उनकी फजूलखर्ची की फजीहत कर रहा था। मित्र हमारे चुपचाप शीतलप्रसाद बने चारपाई पर पडे सीटी बजा रहे थे।

एक था महादेव। मन्दिर के नीचे एक कोठरी मे मा के साथ रहता था। गाय के समान सीधा बालक। कही तीन चार रुपए की चपरासगिरी करता था। अग्रजी की प्राइमरी पढने हमारे पास आ वैठता था। उसके आने पर सिघाडा पार्टी 'चतुरग चमू' वन जाती थी। बातचीत के व्यग अलकार का केन्द्र होता था यही महादेव। आज महादेव भी पेन्शन पा रहा हे। हम लोगो की छोटी मोटी सेवाएँ महादेव कर देता था, उस दिन उसका पढना नही हुआ। सुबह से शाम हो गई उसे दौडते, किसी मित्र ने पैसे उधार नही दिए। ट्यूशनवालो ने भी अगूठा दिखा दिया। परन्तु महादेव जानता था कि

कृष्ण बलदेव दो दिन के भूखे बठे है । वह किसी तरह [illegible],
दुअन्नी उसकी मा ने किसी से उधार लाकर दी थी । [illegible]
दुअन्नी सामने रखकर कहा—यही मिली है ।

सूरज की तिरछी किरणो मे दुअन्नी चमक रही थी और [illegible]
बलदेव उस पर नजर डालते मन ही मन सोच रहे थे, [illegible]
जिससे यह दुअन्नी दोनो मूर्तियो का उदर पूर्ति कर सके और [illegible] ।

दुअन्नी को देखकर बोले—यह दुअन्नी कसी है मास्टर [illegible] ?

बहुत अच्छी है, नया सिक्का है ।

तो क्यो न इसका कलाकन्द मँगाया जाए ?

प्रस्ताव बुरा नही है ।

'छोटे' ने हँसकर दुअन्नी उठा ली । महादेव की ओर [illegible],
रूमाल की कारवाई ।

महादेव जड बना बठा रहा, वह कभी मेरी ओर देखता [illegible] ।

'छोटे' ने डपटकर कहा—जाता क्यो नही ?

तहसीलदार का बटा जो ठहरा । [illegible] दुअन्नी
तो उसकी नही । उस पर उसका अधिकार न था । पर [illegible] ।
महादेव मास्टर का सकेत पाकर उठा—रूमाल की कारवाई [illegible] ।

कलाकन्द आया । उसके तीन भाग हुए । मेरा जो [illegible] ।
मेने कहा—'मेरा व्रत है, मे नही खा सकता ।' मेरे मित्र [illegible]
टाल गया, और यह 'छोटा' शतान निहायत बतकल्लुफी से [illegible]
सफाचट कर यह जा, वह जा ।

झूठ नही कह रहा हूँ 'छोटे' की गवाही दिला सकता हूँ । आज 'छोटे' [illegible]
पक गए हे । शायद एकाध दात भी इधर उधर हो चुका है । [illegible] ।
नटखटपन अब भी उनमे है । आँखो पर चश्मा [illegible]
हुई मेरी पचास साल की पुरानी परिचित उनकी [illegible]
पण रखती है । आप उन्हे डाक्टर युद्धवीरसिंह के नाम से जानते है । [illegible]
महानगरी दिल्ली के नगरपिता थे और फिर दिल्ली राज्य के स्वास्थ्य मंत्री । [illegible]
रोगशय्या पर रहकर अभी उनका जर्जर शरीर पनपा भी नही था कि [illegible] और
झझटो से भरे वातावरण मे दिल्ली राज्य का भार कधे पर [illegible]
हस रहे है । अब मै इस जुगत मे हूँ कि एक बार [illegible]
और उसमे ठाठ से रूमाल की कारवाई की जाए ।

सत्य बात तो यह है कि जयपुर के ये दो मित्र सूर्यप्रताप और युद्धवीरसिंह मेरे

ज्येष्ठ और लघु भ्राता थे। अन्य मित्रो से मेरे सम्बन्ध अवश्य बने थे परन्तु बीच मे दूरी की रेखा वर्षो तक हम लोगो को एक दूसरे मे दूर बनाए रही। लेकिन सूयप्रताप और युद्धवीरसिह मेरे अत्यन्त निकट रहे। यद्यपि सूयप्रताप हैदराबाद दक्षिण चले गए थे, फिरभी प्रतिवर्ष हमसे मिलने वे दिल्ली आते रहते, कभी मै ही उधर चला जाता था। युद्धवीरसिह तो दिल्ली मे आकर बस ही गए थे। सूयप्रताप आयु मे मुझसे दो वष बडे थे और युद्धवीरसिह चार वष छोटे। सूयप्रताप हैदराबाद दक्षिण मे पहिले कैप्टिन और बाद मे अकाउन्ट जनरल जैसे उच्चपदो पर रहे, परन्तु उनके हृदय मे मेरे प्रति भ्रातृप्रेम तो अचल अडिग ही रहा। सूयप्रताप और युद्धवीरसिह दोनो ही आय समाज के बुनियादी स्तम्भ और सचालक रहे। अपनी राजनीति और राजकीय सेवाओ मे व्यस्त रहते हुए भी आयसमाज को जब आवश्यकता रही, उन्होने उसका पथ प्रदशन किया।

युद्धवीरसिह के बालक जीवन के नटखटपने की एक घटना का उल्लेख मै ऊपर कर चुका हूँ, अब सूयप्रताप की बुढौती की एक दूधधोयी बात भी सुनिए।

एक बार मेरी हैदराबाद यात्रा बडी दिलचस्प रही। इस बार मै सपत्नीक हेदराबाद गया था। नवाबो और बेगमो के अच्छे खासे तजुरबे हुए। हैदराबाद रईसो का शहर ठहरा—जहा हर मुसलमान नवाब और हर हिन्दू राजा है, जहा की महल हवेलिया ऐसी विशाल हे कि आप उनमे मोटरो मे बैठकर मजे मे घूम फिर सकते हे, जहा सडको पर चलते फिरते आदमी एक एक लाख रुपये की अगूठिया पहनते हे।

१९४८ की पुलिस कारवाही के बाद वहा बहुत उलट पुलट हो गई थी। नवाब, रईस, बेगमे बहुत सा जर जवाहर छोडकर भाग छिप गए थे। जब दुबारा गर निजामी इन्तजाम हेदराबाद मे स्थापित हुआ, तब वे राजा, रईस नवाब फिर लौट आए। उनको छोडी हुई सब सम्पत्ति एक सरकारी विभाग के सुपुद हो गई थी। अब वे वापिस आकर अपने दावे इस विभाग के सामने करने लगे।

हैदराबाद के खास रईसो का एक खास तबका 'पायगा' हे। इस तबके मे बडी बडी रियासते है। इस विभाग के अफसर मेरे मित्र कप्टन सूयप्रताप थे। कैप्टन साहब कोरे अफसर ही न थे, एक सहृदय और ईमानदार भद्र पुरुष थे। रईसो, नवाबो के जर-जवाहरातो के दावे सुनते जाचते और चुकाते थे। साथ ही इन रईसो के घरेलू मामले भी उनके सामने आ जाते थे, जो कभी कभी बडे मजेदार होते थे। ऐसे ही एक मामले की चर्चा मै यहा कर रहा हूँ।

यह सन् १९५३ की बात है—अब से दो साल पूर्व। जिन दिनो मैं अपने मित्र कैप्टन के पास ठहरा था, एक नवाब साहब और उनकी बेगम मे झडप हो गई। एक दावे मे कप्टन साहब को सरकारी हुक्म मिल गया कि एक लाख रुपया नवाब के हिसाब से निकालकर बेगम को दे दे। नवाब ने सुना तो बाल नोचते, सिर पीटते कप्टन के पास

आए और रुपया बेगम को न दिया जाय, [illegible] कप्तान ने उन्हें सलाह दी कि सरकारी हुक्म तो मैं टाल नहीं सकता। हां, आप बेगम [illegible] कर लें, खुशामद कर कराकर उन्हें पिघला न तो मुमकिन है [illegible] रुपया छोड़ दे। बात नवाब के मन में घर कर गई और जब [illegible] बेगम को देने के लिए चले, तब नवाब उनके साथ हो लिए। [illegible] मुझे भी साथ लिया।

बेगम काफी मालदार थी और ठाठ से रहती थी। [illegible] थी। दस बीस सिपाही फाटक पर पहरा देते थे। [illegible] रानियां महरियां—रात दिन दौड़ती थीं। हम लोग पहुँचे [illegible] तवाजा हुई। चाय नाश्ता पान इत्र की खातिर जब खत्म हो गई। तब [illegible] शुरू हुई। बेगम परदे में आ बैठीं परदे के सामने [illegible] मनौवल हुआ, गिले शिकवे हुए, व्यंग्यों के तीर तमंचे चले, [illegible] मिलाप का वातावरण पैदा हो गया। बात चीत शुरू हुई [illegible] नवाब ने पूरक का पाट अदा किया, मैं रहा श्रोता मात्र मौन।

बेगम परदे में जरूर थीं, मगर परदा था महज [illegible] कहे खुले से हो रहे थे। नवाब एक दिलचस्प आदमी थे, उनके [illegible] वातावरण को बहुत जल्द मौसम के अनुकूल बना दिया। बेगम [illegible] नफीस उर्दू बोलती थीं। उर्दू में हैदराबादी स्वर था। व्यंग्य [illegible] और गुस्सा गजब का था। मगर औरत की जात—सब तरह लाचार [illegible] बंधन में जकड़ी हुई। जब कप्तान ने यह संकेत किया कि [illegible] नवाब जैसा फर्माबरदार, खुशमिजाज, जानिसार [illegible] पड़ा, और जब नवाब ने कप्तान की उस दलील पर [illegible] बेगम [illegible] गाना गाकर, तलुए सहलाकर, सिनेमा दिखाकर, नजराने [illegible] और कब कब कैसी कैसी नाज बरदारी उठाई, [illegible] किया—और यह बतलाया कि किस तरह अब भी [illegible] बेगम ही उनके दिल में घर किए बैठी हैं तब [illegible] बादल फट गए और हंसी मजाक का वातावरण बन गया।

बेगम ने कप्तिन से कहा—[illegible] कीजिए कि ये रुपये [illegible] को। इनसे एक फिल्म बनाई जाए, फिल्म की [illegible] और ये दिल्ली वाले राजा (मैं) कहानी लिखें, [illegible] कप्तान रिटायर होने वाले थे, उन्होंने स्वीकार कर लिया। [illegible] बीस हजार की पुड़िया मिलने की आशा हो गई और नवाब [illegible] आ।

बेगम से मेल हो गया । फिल्म बनाने और उसमे पाट करने का पुराना इरादे सफल हुआ । एक लाख रुपये के वे नोट कैप्टन की जेब से निकलकर बेगम के दस्तखत होने के बाद फिर उनकी जेब मे जा पहुँचे । बेगम ने कहा—ये रुपये अभी अपने ही पास रखिए ।

आशा प्रसन्नता के वातावरण मे हम घर लौटे । मेरे दिमाग मे कहानी के प्लाट चक्कर काटने लगे । यह नही वह, वह नही यह । पर हकीकत यह थी कि मैने तो कभी फिल्म की कहानी लिखी नही, । सुनता था फिल्म वाले कहानी का दस बीस हजार देते हे । पर मेरा सौदा आज तक किसी फिल्म वाले से नही पटा, पत्र पत्रिकाओ मे जो कहानी लिखता हूँ, उसकी कीमत अधिक से अधिक पचास रुपए होती है । अब तो सब कुछ हमारे ही हाथ मे था । रुपए एक तरह से हमारी जेब मे थे, उसमे से जितना चाहे हम अपने लिए ले सकते थे । हम ही कहानी लिखनेवाले, हम ही पसन्द करने वाले थे । कहने को तेज तर्रार मगर वास्तव मे एक सीधी सादी भावुक, बेवस परदा-नशीन, दुनिया के जाल-फरेब से अपरिचित बेगम और बेवकूफ नवाब हमारे फदेमे पूरी तौर पर फस गए थे । हम हर तरह नवाब दम्पत्ति के विश्वास-भाजन थे। रुपयो की मुझे खाँस तौर पर सख्त जरूरत थी और चाहता था कि ज्यादा नही तो दस हजार रुपये तो अब मे डालकर घर लौट । फिल्म बनेगी बाद मे, मै कहानी तो आज ही लिख डालू । इस प्रकार आवश्यक कहानी लिखने का मैं अभ्यस्त हूँ । यो कोई कोई कहानी बरसो अधूरी पडी रहती है, पर जब कभी किसी पत्रिका का तार आता हे तब कहानी उसी दिन की डाक मे रवाना कर देता हूँ । फिर यह तो दस हजार की कहानी थी । घर लौटते ही हमने हिसाब लगाया कैसे कसे खच होगा फिल्म बनने मे ? उसमे पहला आइटम—मेने लिखा—कहानी के लिए दस हजार । लेकिन रात भर नीद खराब करने पर भी कहानी कुछ बनी नही । सकडो प्लाट आए और गए । पर आने जाते ही रहे, जमकर तो एक भी नही बठा । कहा से कसे शुरू करे यही समझ मे न आ रहा था । कप्टन इस सम्ब ध मे चुप रह । सुबह चाय पर बात हुई । कप्टन ने पूछा—लिखोगे कहानी तुम ? मुझे कहना पडा—समझ ही नही पड रहा है कि लिख भी सकूगा या नही ।

कैप्टन ने भी कहा—और मुझे भी समझ नही पड रहा है कि मे इस फिल्म का इन्तजाम कर सकूगा या नही ।

बहुत बातचीत, तक वितक हुए । कप्टन ने कहा—सुनो भाई, तुम तो दस हजार रुपए जेबमे डालकर दिल्ली भाग जाओगे, लेकिन फिल्म न बनी तो मेरी मौत ही समझो । जि दगी भर बडी मे बडी कुरबानी करके जो नाम और साख पैदा की हे, उसकी बदौलत बेगम ने एक लाख रुपया हमारे निर्णय पर झोक दिया हे । मेरी वह सारी इज्जत धूल मे मिल जाएगी । मे हेदराबाद मे मुह दिखाने योग्य न रह जाऊँगा । हमे रुपया

मिले यह तो ठीक है, परन्तु परमानन्दी और उनका रुपया है वह बरबाद न हो यह हमे देखना होगा।

बात ठीक थी, मेरी आशाए हवा मे उड रही थी। पर उस औरत का रुपया तो बरबाद हमारे हाथ से होना ही न चाहिए। मेरा मन बदल गया। पहिले मन था—कहानी लिखकर इनके सिर मारी जाए, और उससे जो रुपया मिले लिया जाए, आगे कप्तेन जाने और बेगम। और अब यह विचार पैदा हुआ कि उस औरत के रुपए की रक्षा की जिम्मेदारी हम पर है उसकी रक्षा करना हमारा सबसे प्रथम कर्त्तव्य है। अन्त मे एक निर्णय हुआ पृथ्वीराज कपूर मेरे मित्र है, वे सज्जन है, कलाकार के सब गुण उनमे है दोष एक भी नही है। उनसे सब हाल बताया जाए, उनसे सहयोग मागा जाए। वह यदि सहयोग करने को राजी हो जाते है तो फिर सब ठीक है। काम बन जाएगा। निर्णय की सूचना बेगम को दी गई। बेगम भी सहमत हो गइ। कहा—आज ही हवाई जहाज से बम्बई जाइए, मै रुपए भिजवा रही हूँ। परन्तु खर्च हमने नही लिया और हवा मे उडकर बम्बई। पहुँच कर फिल्म के उस कूचे मे गए, जहा लाखो हवा मे उडते है।

कपूर साहब से बातचीत हुई। उनका साराश यह निकला कि कपूर साहब कला पर फिदा है। कला के सामने रुपए को तुच्छ समझते है। यदि सब कुछ उन्हे सौप दिया जाए, हिसाब किताब की हानि लाभ की परवाह न की जाए और उनकी रुचि मे दखल न डाला जाए तो वह सहयोग देने को प्रस्तुत है। उन्होने अपना उदाहरण भी पेश किया कि वह कला के नाम पर मर मिटे है। फिर वह घाटा ही घाटा उठा रहे है, ऋणग्रस्त है। उन्होने यह भी बताया कि ... भारी भारी रकम उनके सुपुर्द कर रहे थे, पर हिसाब किताब के झमेले मे कपूर साहब नही पडना चाहते, इसलिए उन्होने मजूर नही किया। अन्त मे उन्होने यह भी ... कि एक लाख मे फिल्म नही बन सकती। ५-७ लाख अथवा १० लाख रुपए चाहिए।

सब बाते सुनकर हम लोग ठडे पड गए। गरम चाय के प्याले पर प्याले चढाने पर भी दिल मे गरमी न आई। कपूर साहब की बातो का ... था कि यह रुपया दो, और भी बटोर लाओ और अपना रास्ता नापो। ... स्वीकार करो। जैसे खुदाई कामो मे अक्ल को दखल नही, उसी प्रकार हमारे ... कामो मे आपको या किसी भी पैसा देनेवाले को दखल नही करना चाहिए।

हम सुश्री नरगिस से भी मिले, राजकपूर से भी मिले। औरो से भी मिले। किन्तु अब तो हमसे ही मिलने वालो का ताता लग गया। उस ... मे आग की तरह यह खबर फैल गई कि दो बेवकूफ एक लाख रुपए जेब मे लिए उस ... मे आ फसे है। कहानी लेखक आए, फिल्म निमाताओ के एजेण्ट दलाल आए। फिल्मिस्तान ...,

इलायची, सोठ, अदरक, लाल हरी मिच, कहा तक गिनाए । सबने अपनी कारगुजारी ईमानदारी, अक्लमन्दी की बडी बडी दुहाइया दी । यह भी कहा—आते यहा बहुत है, पर बात बनाकर चले जाते हे । तुम्हे कुछ करना हो तो निकालो रुपए हम पृथ्वी-राजकपूर को भी राजी कर लगे, नरगिस को भी, इनको भी, उनको भी । फिल्म हम एक लाख मे ही बना दगे, रुपए निकालो । कोरी बाते मत बनाओ । कहानी लेखको मे कुछ पुराने मुलाकाती मिले, कहने लगे—फस्ट क्लास स्टोरी देग । आधा तुम्हे देगे-पटाओ हमारा सौदा ।

नया तजुरबा था, नई दुनिया थी । ऐसा प्रतीत होता था, हम लोग भेडियो या पागल कुत्तो के झुण्ड मे आ घुसे है, और वे हमारे चीथडे उडा डालने पर आमादा हे । वहा हमने नए शहजादो और शहजादियो की नई पौध देखी, जो लाख रुपए माहवार कमाते हे । वहा हमने ऐसे बेमुल्क नवाब भी देखे–जिनके एक वक्त के खाने का बिल ६०–७० रुपया आ रहा हे । शराब की, झूठ की, दुराचार की, बेईमानी की, लूटखसोट की वह एक नई दुनिया थी, जिसमे हमने मनुष्यता का नामोनिशान भी नही पाया । बेहूदी कलाहीन और अनैतिक चेष्टाएँ करने के लिए ये कथित कलाकार और तारिकाए कट्रैक्ट करते है साठ हजार रुपयो का–पर रसीद देते है पद्रह हजार की । इकमटैक्स से बचने का यह पेटेट फरेब हमने उस कूचे मे आम देखा । एक मशहूर फिल्म अभिनेता के पास जाकर हमने कहा कि एक फिल्म मे काम कराने के लिए हम कट्रैक्ट करने आए हे । उसने नही पूछा कि फिल्म कैसी हे, कोन बनाएगा, क्या अभिनय करना होगा । दो टूक बात कही– म साठ हजार लेता हूँ । आप राजी हो तो लाइए कट्रैक्ट । पर रसीद १५ हजार की दूगा । यही हमारा दस्तूर हे ।

कुछ जीव दूसरी जाति के मिले । ये थे फाइनेन्सरो के दलाल । एक दूसरे की छाया से बच बचाकर यह साबित करते हुए कि वे युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र के सगे भतीजे हे, हम ले गए किसी शानदार बँगले मे, बढिया कार मे बठाकर, और फिर रस घोला हमारे कानो म हसकर रोकर आहिस्ता से, जोर से । इनका मतलब यह था—ये एक लाख रुपये तुम यहाँ जमा कर जाओ, बाकी रुपये हम कमायेगे । फिल्म हम बनवा देग । स्टोरी फिस्टोरी सब लिखा लेगे । तुम्हे कुछ नही करना होगा । सिफ टुकर-टुकर देखते रहना होगा ।

चार दिन हमने इस कूचे मे कम धक्के खाए । चार दिन तक भी जब किसी के दात हमारे कलेजे मे नही गढे, तब फिर लानत फटकार और तिरस्कार । जाओ, जाओ, हमारा वक्त खराब मत करो । तुम्हारे जसे बहुत आते हे । पहले अटी ढीली करो, पीछे और बात ।

चौथे दिन हम ठण्डे ठण्डे वहा से रवाना हुए । हमारे सब होसले पस्त हो चुके

थे। फिल्म बनाने का नशा उतर चुका था। [illegible]
यह स्पष्ट था कि इस बेहूदी यात्रा का खर्चा हम [illegible]
उन एक लाख रुपयों को छू सकते थे, जो [illegible]
जिनकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य हो गया था।

हैदराबाद लौटने पर और सभी बात सुनकर बेगम [illegible]
नहीं, रुपया जिस कदर लगेगा, मैं दूंगी, आप फिल्म बनाइए। [illegible]
पास रखिए। वे रुपए हमारे पास ही पड़े रहे, फिल्म [illegible]
ही चुके थे। एक संयोग ऐसा आया कि उस रकम में [illegible]
कर हमने नमक का कारोबार करना चाहा, जिसमें [illegible]
खोरों और मोटे पेटवाले मगरमच्छों के [illegible]
ईश्वर का धन्यवाद है कि इन मामलों में [illegible]
गांठ ही के खोए, बेगम के एक लाख जस के तस [illegible]

मेरा जयपुर का विद्यार्थी जीवन [illegible]
इन दो अभिन्न मित्रों के साथ हँसते खेलते दिन [illegible]
हुआ। युद्धवीर जब आठवीं कक्षा में आए तब [illegible]
विचार हुआ, जहां विद्यार्थी बैठकर वादविवाद करना, [illegible]
इस संस्था का नामकरण किया 'विद्यार्थी प्रीतिमण्डल'। [illegible]
का आरम्भ मैंने अपनी इस कविता से किया—

> आइए मिल बैठकर, एक सभा कायम कीजिए।
> नाम उसका 'प्रीति मण्डल', [illegible]
> यह उन्नति सोपान, जो [illegible]
> हम सबों को जोश में, [illegible]

जयपुर से चले जाने के बाद भी मैं प्रीतिमण्डल [illegible]
लिए विभिन्न लेख भेजता रहता था। इसके अतिरिक्त [illegible]
विद्वान श्री गणपति शर्मा के दर्शनों तथा श्री मधुसूदन [illegible]
धर्म शास्त्रों के विधिवत अध्ययन करने का सुयोग, [illegible]
प्राप्त हुआ, और मुझमें धर्म, दर्शन, साहित्य विषयों में [illegible]
पुष्ट हो गई। मैं कट्टर आर्यसमाजी बन गया। नित्य प्रात [illegible]
करने का मेरा नियम था। प्रति रविवार को वैदिक रीति से हवन भी किया [illegible]
इन दोनों ही बातों को आगे चलकर मैंने बन्द भी कर दिया था। [illegible], शुद्धि
और विधवा विवाह के समर्थन में मेरे विचार गुरुकुल सिकन्द्राबाद के विद्यार्थी जीवन
काल में ही दृढ़ हो चुके थे। काशी अध्ययनकाल में मैंने ब्राह्मणों के [illegible]

देखे, जिन्हे वे अब्राह्मणो (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रो) को तो करने की आज्ञा देते और स्वत उनसे मुक्त रहते । उनकी यह भेदपूण धम व्यवस्था मुझे बिल्कुल भी पस द नही थी । केवल इसलिए कि ब्राह्मण चारो वर्णो मे सबसे प्रथम है ओर शेष तीनो वण उसमे नीचे हे, ससार के शेष सब मनुष्यो पर वे मनमाना अत्याचार करे । अपराध और पापो का दोष उन्हे ही लगता है, ब्राह्मणो को नही लगता । ब्राह्मण शेष तीनो वर्णो को तो प्रायश्चित की दण्ड व्यवस्था बताकर अपनी जेब गरम करे, माल उडावे पर तु अपढ और गन्दा ब्राह्मण भी पठित और शुद्ध आचरण वाले अन्य वर्णीय से श्रेष्ठ समझा जाता रहे, ओर इन सब अनाचारो को वेद शास्त्रो की आज्ञा का नाम दिया जाय । इन सब बातो से मेरे हृदय मे ब्राह्मणो के प्रति विद्रोह और घृणा के भाव भर गए । मै ब्राह्मणो के साथ झडप हो जाने पर उनमे पूरी टक्कर लेता था और उन्हे अपने से बडा स्वीकार नही करता था । १६०७ से १९११ तक का काल मेरी पढाई का उत्कषकाल था । आयसमाज के दिग्गज वेदा त निष्णात पडित गणपतिशर्मा और वेद के महान् पडित मधुसूदनाचाय के अतिरिक्त मेरे भावी श्वसुर महामहोपाध्याय वैद्यराज कल्याणसिहजी, जो उन दिनो अजमेर मे धर्माथ पाठशाला एव हिन्दु औषधालय के प्राध्यापक और प्रधान चिकित्सक थे, चौथे पाँचवे महीने जयपुर आकर मेरी शिक्षा और पढाई की पूछ ताछ करते रहते थे । उन्होने मुझे आयुर्वेद पढकर चिकित्सक बनने की ही राय दी । चिकित्सक बनने की मेरे मन मे लालसा सिकन्दराबाद मे बद्रीप्रसाद कम्पाउन्डर को देखकर उदय हो ही चुकी थी ।

काशी मे भी और जयपुर मे भी मैने पिताजी से अपनी पढाई के लिए कभी कुछ नही मागा । पढाई की फीस थी नही, पुस्तको का काम मे आयसमाज का कुछ काय करके अजन करके चलाता था । खाने पीने की व्यवस्था पहले बता ही चुका हूँ, दो आदमियो का खाना कुल जमा चौदह रुपयो मे चलता था । पिताजी वष मे एक बार आते तो अम्मा मेरे लिए भैस का घी, बढिया लड्डू, मिठाई और वस्त्र उनके साथ बाँध देती थी, जिनपर हमारी सिघाडा पार्टी पिताजी के लौट जाने पर बडी बेतकुल्लफी से टूट पडती थी । रात को दो बजे उठकर पढने लिखने की आदत मेरी शुरू से ही रही हे । यद्यपि लिखने का ज्वार मै उतारता था दिन मे ही । रात को दो बजे आख खुल जाने पर तो मै पढने बैठ जाता था । कभी कभी रात को भी देर तक पढता रहता था । जब तक एक विषय पूरा पढ नही लेता था, तब तक मे सोने की इच्छा करता ही नही था । यदि नीद के झोके आ भी जाते तो मे कमरे मे जलते सरसो के तेल के दिए मे से उगली की पोर डुबो कर थोडा सा सरसो का तेल लेता और आखो पर मल लेता था । चिरमिर लगकर मेरी नीद भाग जाती थी और मै विषय की समाप्ति पर ही आखो को धोकर सोता था । काशी मे भी इसी प्रकार सरसो का तेल आखो मे लगा कर

बातचीत से निबटकर उन्होने कहा—'शाबास, बडे अच्छे।' उ होने पिताजी से कहा—बालक अत्य त कुशाग्र बुद्धि है इसे सस्कृत और आयुर्वेद पूरा पढाओ। एक सप्ताह वे हमारे घर रहे। चलते समय चादी के दो रुपए वे मुझे दे गए। मै लेता न था, परन्तु पिताजी ने कहा—जब दे रहे है तो ले लो बेटे।

बाद मे पिताजी की बातो से ज्ञात हुआ कि उन सद्पुरुष का नाम महामहोपाध्याय श्री कल्याणसिह वद्यराज है, अजमेर मे हिन्दू औपधालय नामक धर्माथ औपधालय मे वतनिक प्रधान वैद्य हे। घर इनका जिला बिजनौर मे एक गाव मे हे। अजमेर से प्रति मास अपने औषधालय के लिए कच्ची औषधिया खरीदने के लिए दिल्ली आते रहते हे। यहा यह बात बता देना आवश्यक हे कि दिल्ली का खारीबावली बाजार बहुत दिनो से सब प्रकार की कच्ची बनौषधियो की बडी भारी मण्डी रही है और अभी है। समस्त राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य तथा वि ध्य प्रदेश को मनो ऐसी बनोषधिया जगली जडी बूटियाँ तथा खनिज औषध दिल्ली से सप्लाई होती रही हे।

उनकी उक्त भेट के एक वष उपरा त १६०७ मे पिताजी मुझे अपने साथ गुरुकुल कागडी का वार्षिक उत्सव दिखाने ले गए। उन दिनो गुरुकुल कागडी ग्राम मे था। गगा के उस पार कनखल को गगा का नौका पुल पार करके कागडी के क्षेत्र मे पहुँचते थे। बडा सु दर स्थान था और गुरुकुल के ब्रह्मचारी और अध्यापको की चहल पहल और वार्षिकोत्सव मेले मे मेरा मन खूब लगा। उत्सव पर अजमेर से वैद्यराज भी आए थे। तीन दिन वहा ठहर कर वे मुझे और पिता जी को अपने गाव मुहम्मदपुर देवमल, (बिजनौर) ले गए। यह स्थान हरिद्वार से दक्षिण दिशा मे पच्चीस मील पर है।

उनके घर मे परिवार के अनेक परिजन थे। इस समय उन सब सम्ब धो का मुझे स्मरण नही हे। हा, इतना स्मरण हे कि हम तीन दिन उस ग्राम मे रहे और मुझे दोपहर को भोजन के उपरान्त चौपाल पर जाकर भाषण सुनाना पडता था। जहाँ तक मुझे स्मरण हे, मुझे वह लडकी भी दिखाई गई थी जिसके साथ मेरा विवाह होने वाला था। यह तो स्पष्ट ही था कि वैद्यराज अपने समस्त कौटम्बिक जनो को मुझे दिखाने के लिए ही हमे अपने गाव मे ले गए थे। लडकी की आयु बारह वष के लगभग थी और वह वही ग्राम स्कूल मे चौथे दर्जे मे पढ रही थी। लडकी से कुछ पूछने के लिए मुझसे कहा गया था। पर तु मैने उसकी सलज्ज मुद्रा देख कर कुछ नही पूछा। केवल उसकी पाठय पुस्तके उससे मगा कर मैने देखी थी और फिर उसे लौटा दी थी। इसके बाद मे उसके पास से उठकर बाहर पिताजी के पास चला गया था।

घर लौटने पर पिता जी ने माता जी को बताया कि इन लोगो ने सब सम्मति से लडका पस द कर लिया है और सगाई भेजने की तैयारिया वे कर रहे हे। एक सप्ताह बाद ही गाँव से एक नाई सगाई का दस्तूर लेकर आ गया और मेरे तिलक

लगा दिया गया।

मेरा विवाह विशुद्ध वदिक आडम्बरहीन रीतिया से ८ अप्रल १९१२ को मुहम्मदपुर देवमल (जिला बिजनोर) म सम्पन्न हुआ। उस समय मेरी आयु १८ वष और मेरी पत्नी तारादेवी की १७ वष की थी। ग्राम स्कूल की चौथी कक्षा पास करने के उपरा त वह अपने पिता जी के पास अजमेर चली आई थी और विवाह के समय तक उसने हिन्दी के साथ साथ सस्कृत मे भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली थी –जिसका श्रेय पण्डित भवानीप्रसाद गुप्त को था। एक दिन वे त्रिवेन्द्रम की छपी पाच पुस्तको का एक सेट बाजार से खरीद कर वैद्यराज के पास आए और कहा कि अपनी पुत्री को मुझे पढाने दो। उस दिन से वह उनकी शिष्या बन गई। इन पाँच पुस्तको के द्वारा सस्कृत के अक्षराभ्यास अकारादि वर्णमाला से लेकर हितोपदेश पचतन्त्रम् के ज्ञान के सस्कृत ज्ञान की प्राप्ति हो जाती थी। बहुत शीघ्र वह चल निकली और व्यावहारिक सस्कृत भाषा पर उसे अधिकार प्राप्त हो गया। वह टीका के सहारे स्वय भी काव्यो के श्लोको का अथ समझने और लगाने लगी। यहाँ तक कि विवाह काल तक उसने रघुवश और अभिज्ञान शाकुन्तल भी पढ डाला। विवाह के समय मै जयपुर म अध्ययन समाप्त करके घर लौट आया था। बाद मे आचाय परीक्षा पास करके जब मै दिल्ली म रहने लगा, तब मेने उसे आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद परीक्षा की तयारी कराई, जिसे उसने प्रथम श्रेणी मे पास की।

मेरा विवाह एक सास्कृतिक समारोह के समान था और उन दिनो एक विवाह उत्सव का सास्कृतिक समारोह रूप ग्रहण कर लेना बडे भारे कौतुहल की बात था।

विवाह के समय सारे गाव मे उल्लास भर गया था। प्रत्येक ग्रामवासी बारात और विवाह मे सम्मिलित महान् व्यक्तियो का आतिथ्य करना, उनकी आज्ञा बजा लाना और उनकी प्रत्येक सुख सुविधा का ध्यान रखना अपना कत्तव्य समझे हुए था। मेरे विवाह मे श्री पण्डित पद्मसिह शमा तथा आचाय नरदेव शास्त्री वेदतीथ भी सम्मिलित हुए थे। आय समाज के अनेक भजनीक एव उपदेशक भी आए थे, जिससे तीन दिन तक गाव भर के भिन्न भिन्न केन्द्रो मे भजन उपदेश तथा वादविवाद की धूम धाम मची रही। तीसरे दिन जब बारात बिदा होकर चलने लगी, तब सारा गाँव बिदाई का करुण भाव आखो मे भर कर हमारी बल गाडियो की ओर गाँव की सीमा पार कर लेने पर भी, खडा देखता रहा था। बिछुडने का आवेग बरातियोके हृदयो मे भी उमड रहा था। जब तक गाव की रुपरेखा हमे दीखती रही, तब तक किसी भी बाराती न अपनी प्यार भरी दृष्टि गाव की ओर से नही फेरी। गाडी के बल अपनी टुन टुन टान की ध्वनि बजाते हुए हमें रेलवे स्टेशन की ओर लिए जा रहे थे।

दिल्ली मे

विवाह के समय मै सिकन्द्राबाद मे ही था। अब मेरे सामने कही जमने का प्रश्न था। पिताजी की और मेरी राय दिल्ली मे जमने की थी। दिल्ली ही सिकन्द्राबाद के समीप सबसे बडा शहर था। इस समय तक हमारे परिवार मे हम चार भाई मैं, खेमसेन भद्रसेन, चन्द्रसेन और दो बहिने कलावती, सौभाग्यवती थे। मै सबसे ज्येष्ठ था और चन्द्रसेन सबसे कनिष्ठ। चन्द्रसेन के प्रसव काल मे माता बहुत रोगिणी हो गई थी और उस समय के रोगपुञ्जो ने मृत्यु पर्यन्त तक उनका साथ नही छोडा। माता की मृत्यु सन् १९२७ मे हुई थी। अब दिल्ली आते समय मै अपनी पत्नी को माता की सेवा मे छोड रहा था, परन्तु उन्होने हठ करके उसे मेरे साथ भेज दिया। उन्होने कहा—नही बेटे, बहू को अपने साथ ही रखो।

मैंने कहा—तब अम्मा, तुम भी मेरे साथ दिल्ली चल कर रहो।

'तब यहा भैंस और घर को कोन देखेगा? नही, तुम जाओ बेटे। मेरी चिन्ता न करो। मेरा रोग तो अब मेरा चिर अभ्यस्त हो गया है।' माता का हठ मुझे मानना पडा। यही नही, दिल्ली के बाद अजमेर, अजमेर के बाद बम्बई, बम्बई से दिल्ली जब मै रहने लगा, तब भी उन्होने मेरे प्रति अटूट स्नेह और मेरी सुख सुविधा का विचार करके उन्होने कभी भी अपनी बहू को अपनी सेवा मे नही रखा। उनका हठ अत्यन्त सशक्त और प्रेम से ओतप्रोत होता था। परन्तु वे इस हठ के कारण कितना दुख पाती थी, इसका एक सकेत मुझे उनके एक पत्र से प्राप्त हुआ जो उन्होने कुछ काल बाद एक बार एक त्यौहार पर अपनी छोटी पुत्री सौभाग्यवती को, जब वह सुसराल मे थी, लिखवाकर भेजा था। यह पत्र पुराने कागजो मे प्राप्त हुआ है। पत्र इस प्रकार हे—
'मेरी प्यारी पुत्री सौभाग्यवती खुश रहो।

हमारी चिट्ठी आई बेटी तुमपे, पर तुमने कोई जवाब नही दिया। तीजो पर सब बेटिया मा के घर आती खाती 'झूलती' सब नए कपडे पहनती। मै अभागन ऐसी जो त्यौहार पर बहू न बेटी दीखती हे। बीबी जिस विध परमेश्वर रखता है उसी विध रहना पडता है। मेरी तकलीफ की तो किसी बहू बेटी कू खबर ही नही है। तीजो से आठ दिन पहले तो मुझे तकलीफ हो गई थी एक दिन तीजो को आराम हुआ था फिर मेने खाने को अच्छी तरह करा। गर्मी जो लगी मुझे जी घबराने लगा और सिर फूटने लगा फिर बुखार आ गया। अब कहो इस तरह कैसे गुजर होय। मेरा तो शरीर भी अच्छा नही रहता। हाथो से रोटी पो पो कर खा रहे है। हमे इत्ता भी सुख न हुआ कोई बहू हमारे यहाँ रहे। बहू यहाँ घर न होय तो बेटियो को ही बुला ले। तुम तो ऐसे पक्के दीदे की हो गई हो जो छै महीने मे भी नही आती। बडी बहू की खबर लेने मैने चिठी डाली थी। मैंने उसको बुलाया था। वह नही आई। तुम ही आ जाओ।

मेरी तबियत तो ठीक नही रहती । दिन रात सिर दुखता रहता है । [illegible] आज से मेरा सब शरीर दुखता रहता है । मेरी हर वक्त तबियत [illegible] रहती है । तुम किसी बात का फिकर मत करना ।'

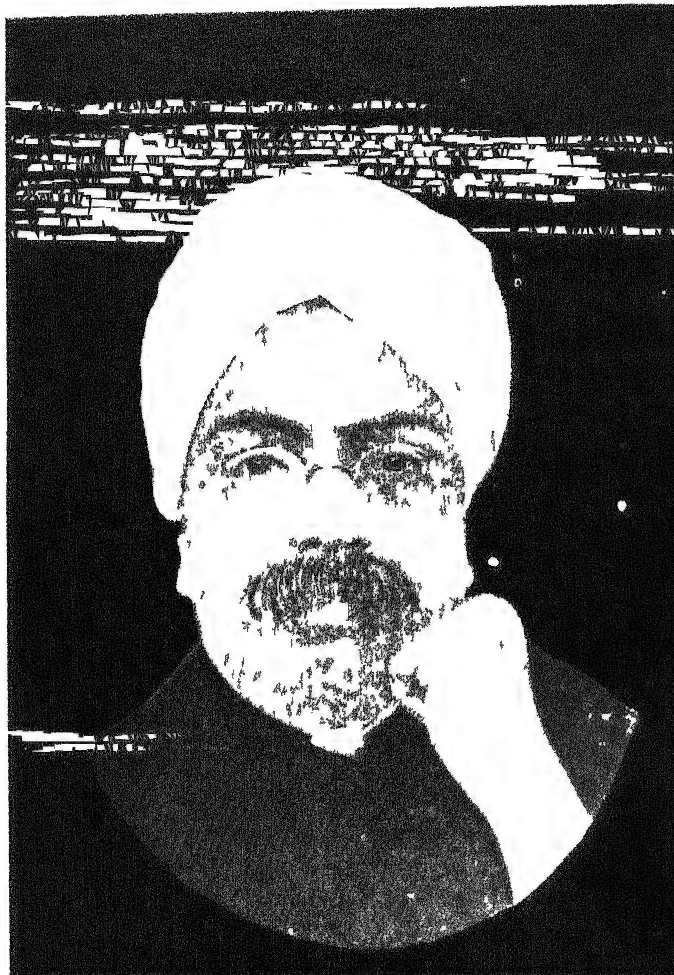
माता की बात मान कर मैने पत्नी को अपने साथ [illegible] लिए तैयार किया और भद्रसेन को भी अपने साथ रहने और शिक्षा [illegible] लिवा ले आया । कुछ वर्ष बाद तो मैं चन्द्रसेन को भी ले आया था । [illegible] मैंने अपने पुत्र की भांति पोषित, शिक्षित और विवाहित कर अपने साथ रखा ।

मैं दिल्ली चला आया और कुछ दिन तक मालीवाड़े में [illegible] खोला । पर चला नही । बाद मे खारीबावली में कटरा मेदगरान में [illegible] ली और वही रहने लगा । कटरा मेदगरान में एक सेठ सावलदास [illegible] रहते थे । उस मुहल्ले मे उन्होने एक बहुत बडी धर्मशाला भी बनवाई थी । मैंने उनको समझाया कि इस धर्मशाला मे विद्यार्थियो को पढाने की एक पाठशाला और एक [illegible] खोला जाय, जिसे उन्होंने स्वीकार किया और दोनो ही संस्थाओं का संचालन की व्यवस्था का भार मुझे सौंप दिया । विवाह से प्रथम मैं आयुर्वेद विशारद परीक्षा की तैयारियां कर रहा था, दिल्ली मे भी करता रहा । आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद विशारद परीक्षा मैने नवम्बर सन् १९१२ में दी और उसमें मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ, तथा स्वर्णपदक प्राप्त किया । परीक्षा से निबट कर मैं [illegible] द्वारा संचालित वैदिक विद्यालय एवं औषधालय को सुचारु रूप से चलाने लगा । [illegible] को मैं भी पढाता था और मेरी सहायता के लिए दो और पण्डित रख लिए गए थे । इन्ही दिनो दिल्ली मे एक ऐतिहासिक भयानक घटी जिसका मैं भी [illegible] हूँ । यह घटना थी लार्ड हार्डिंग पर चांदनी चौक में बम का फेंका जाना ।

बंग भङ्ग के कारण उन दिनो भारत का राजनैतिक वातावरण [illegible] था । इसके कारण होने वाले आन्दोलनों से भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार [illegible] ही घबरा रही थी । इसी समय एडवर्ड सप्तम का देहान्त हो गया और जार्ज पंचम गद्दी पर बैठे । दिसम्बर १९११ में जार्ज पंचम ने भारत में आकर [illegible] दरबार किया कि देश विदेशो मे इसकी धूम मच गई । इसी अवसर पर यह भी घोषणा की गई कि दोनो बंगाल पुनः मिलाकर एक प्रान्त बनाया जाता है । [illegible] दिल्ली को भारत की राजधानी बनाया गया । जार्ज पंचम ने लार्ड हार्डिंग को अपना वायसराय नियुक्त किया । दरबार के बाद देहली में नई राजधानी बनाने के लिए नई दिल्ली की आधारशिला रखी गई और पुरानी दिल्ली की सफील के उस पार [illegible] की ओर फैले हुए ग्यारह मील लम्बे भूभाग पर नई दिल्ली का नक्शा फैलाया जाने लगा । लार्ड हार्डिंग ने यह निश्चय किया कि वे धूमधाम से दिल्ली में प्रवेश करें । अतः उनका



૧૯૧૮



١٩٣١

जलूस निकालने की बडी भारी तयारी की गई। सारा दिल्ली शहर सजाया गया। दूर दूर से लाखो आदमी इस सवारी को देखने के लिए दिल्ली मे आकर एकत्रित हुए और दिल्ली १९११ की भाति फिर चहल पहल का केन्द्र बन गई। २३ दिसम्बर १९१२ को वायसराय लाड हार्डिंग हाथी के होदे पर शान से बैठकर चादनी चौक मे होकर निकल रहे थे। उनकी सवारी का जूलूस बहुत शानदार था। उनके आगे और पीछे सरकारी अमलो के झुड चल रहे थ। चाँदनीचौक ठसाठस आदमिया से भरा हुआ था। मकानो के छज्जे बरामदे झरोखे छते कही भी स्थान खाली न था। वायसराय का हाथी धीरे धीरे चादनीचौक के उस स्थान पर आया जहाँ मोती बाजार का चादनी चोक से प्रवेश द्वार है। मोती बाजार के सामने की पक्ति मे जरा पश्चिम कोण पर एक दो मजिला मकान है। वही से एक बम प्रबल वेग से वायसराय को लक्ष्य करता हुआ आया। परतु क्षण भर मे ही हाथी एक कदम आगे बढ चुका था। बम वायसराय के नही, उनके पीछे बठे अगरक्षक से टकरा कर फट गया। भयानक चीखो की लहर वायुमण्डल मे व्याप्त हो गई। क्षण भर तो किसी को ज्ञात ही नही हुआ कि यह धुआ, यह धमाका, यह विद्युत रेखा कहा से प्रकट हुए। परतु धुआ कम होने पर देखा गया कि वायसराय होदे पर मूर्छित हुए पडे है और उनके अगरक्षक के प्राण पखेरू उड चुके हे। उसका शरीर क्षत विक्षत होकर खून से भर गया है। तत्काल ही पुलिस और फौज ने चादनीचोक को घेर लिया। उस समय वहाँ एकत्रित लाखो व्यक्ति एक प्रकार से कैद कर लिए गए थे। किसी का भी बच कर भागना कठिन था। मै भी वही एक कमरे मे बैठा यह दृश्य देख रहा था। लोगो मे भगदड मच गई थी परतु भाग कर जाने की राह नही मिलती थी। मे बडी कठिनाई से एक गली मे दुबकता छिपता पीछे की राह होकर कम्पनी बाग मे जा निकला, वहा से स्टेशन की ओर। प्रत्येक नाके पर पुलिस ओर फोज तनात थी ओर छोटे बडे सबकी तलाशी ले रही थी, उनसे सब हालात पूछती थी, ओर सदिग्ध व्यक्तियो को रोक कर पुलिस के घेरे मे कर रही थी। मुझे भी पुलिस के प्रश्नो के उत्तर देन पडे। कभी किसी वृक्ष की आड मे छिपना पडा। उस गली मे होकर स्टेशन जाने का माग पाच मिनट का हे, परतु मुझे पूरे चार घटे वहा तक पहुचने मे लगे। स्टेशन से होकर मे फतहपुरी पहुँचा, वहाँ से खारीबावली मे मदगरो के कटरे मे अपने घर। मे जोश और उत्तजना मे उबल रहा था। घर पहुचते ही मैने घटना का सारा रत्ती हाल ८ १० पृष्ठो मे लिखकर अपने मित्र गुरुदत्तसिंह को डॉक से भेज दिया। यह मेरा भाग्य है कि देश कि दो भयानक घटनाए, एक यही २३ दिसम्बर सन् १९१२ की, और दूसरी सरदार भगतसिंह द्वारा असेम्बली मे बम फेंकने की ८ अप्रल १९२९ को, मेने अपनी इन आँखा से देखी और दोना बार ही पुलिस ने रोक कर अनेक प्रश्ना को पूछकर मुझे परेशान किया।

सेठ सावलदास के धर्मार्थ औषधालय से मुझे वेतन के पच्चीस रुपए माहवार मिलते थे। और दिन भर काम करना पडता था। सुबह शाम औषधालय में रोगी देखता, दोपहर को पाठशाला मे पढाता तथा रात को पाठशाला में रहना पडता था। इन्ही २५ रुपयो मे से मुझे अपने मकान का किराया आठ रुपया भी चुकाना पडता था। कभी कभी गृहव्यय के लिए मुझे पत्नी के जेवर भी बेचने पडे। पिताजी की स्थिति भी साधारण थी। और सत्य तो यह है कि अपने जीवन यापन के लिए किसी से सहायता लेने की मेरी प्रवृत्ति थी ही नही। इसलिए जसी भी व्यवस्था सम्भव होती मै अपनी गृहस्थी धकेल रहा था।

मै अब शास्त्री परीक्षा देने की भी तयारी कर रहा था। ऐसे ही करते कराते अप्रैल १६१५ मे मैने जयपुर सस्कृत कालेज की आयुर्वेद और सस्कृत शास्त्री की दोनो परीक्षाएं उत्तीर्ण की। इसके बाद दिसम्बर १६१५ मे मैने आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद मे आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की। विद्यापीठ का मै सर्वप्रथम आयुर्वेदाचार्य था।

इसी काल मे मैने अपनी सर्वप्रथम रचना 'हिन्दुओ की छाती पर जहरी छुरा' विधवा विवाह के समर्थन मे तथा दूसरी रचना 'शरीर तालिका' शरीर विज्ञान के सम्बध मे लिखी और स्वय प्रकाशित की।

२८ मार्च १६१५ को पिता जी के हाथ का लिखा एक पोस्टकार्ड मेरे पुराने कागजो मे अभी तक सुरक्षित है। यह पत्र उन्होने गुरुकुल काँगडी से मुझे लिखा था। पत्र इस प्रकार है—'पिरिये चतुरसेन, आज २८।३।१५ कुसलता से आ गये हैं हम भीड भाड के मारी चद्रसेन को नही लाये वो भी देख जाता मेला बहुत अच्छा होगा और हरदुआर मे भी अछी रोनक है हो सके तो किसी के साथ चद्रसेन को भेज दो और अजमेर जाओ तो तारावती को ना ले जाना जो तुम से कहै तो ये के देना कि पिताजी ने मना कर दीना कि इसे मत ले जाना विन से ही कहो और भद्रसेन को जरूर ले आना मेरे जाने का मौका नही है। केवलराम। पत्र भेजते रैना।

यद्यपि मेरा विद्यार्थी जीवन अनायास ही समाप्त हो गया था और मेरा विवाह हो चुका था, नौकरी भी करता था, परन्तु २५) मे महीने भर का खर्च चलाना मुझ जैसे व्यक्ति के लिए अत्यन्त सघर्षमय स्थिति थी। मेरी पत्नी परम विदुषी तो थी ही कर्मठ भी थी। घर का प्रत्येक कार्य उन्हे अपने हाथ से करना पडता था, न नौकर न विश्राम। और मेरे प्रात काल से लेकर रात्रि तक कार्य मे जुटे रहने के कारण पति प्रेम भी उनको पूर्णरूप से नही मिल पाता था। हा, पति द्वारा आदर और अपने दोनो छोटे देवरो की श्रद्धा उन्हे उस गरीबी और परिश्रम मे भी गौरव प्रदान करती थी। इसी गौरव से सम्पन्न होकर वे मेरी प्रत्येक सेवा मे सदैव तत्पर रहती और अपने हास्य से अपने दुःख को भुलाए रहती। परन्तु मुझे मन ही मन अत्यन्त खीज और दुःख होता।

ऐसी ही मन स्थिति मे नवम्बर १९१४ के एक दिन मै आगरे जा पहुँचा।

उन दिनो युद्धवीरसिह आगरा कॉलेज मे पढते थे। मै उनको ढूढता हुआ उनके बोर्डिग हाऊस मे पहुँच गया। इतवार का दिन था और मै भी कही दूर चलकर अपने मन का दु,ख निकाल देना चाहता था। मैने युद्धवीर से कहा—'चलो किसी उद्यान मे, वही बाते करेगे।' भोजन आदि से निबट कर वे मुझे एतमातउद्दौला ले गए। आगरे का यह स्थान मुझे बहुत पसन्द आया और वही पर वृक्षो की छाया मे मै अपने मित्र का हाथ पकडकर बैठ गया।

मैने मित्र को बताया कि मैं अपने कत्तव्य और धम का ठीक-ठीक पालन नही कर रहा हूँ। मेने जिस स्त्री का हाथ पकडा है उसे न अच्छा भोजन, न नए वस्त्र, न जेवर और न अन्य सुख दे सका हूँ। मै दरिद्र का दरिद्र ही अपने सघषमय जीवन मे दिन काट रहा हूँ। मेरी आखे भर आयी और उस समय 'दरिद्र क्रन्दन' नाम से कविता की कुछ पक्तिया मेरे मुह से निकल पडी—

सहसहू विधना के लाडिले, सुखद महलन मे सुख सो पडे॥
विगत ज्ञान भये सुख नीद मे, फल भोग रहे स्व सुकम को॥
सबहि भोग रहे सुख अमित हो, सुख साज सजे ससार मे॥
इकलो मे ही हत भाग्य हूँ, तरसतो फिर रह्यो एक टूक को॥
सुख सो पूरित ससार मे, दुख ही दुख देख पडे मुझे॥
भय दायिनी मूर्ति निरास की, तममयी दिशि व्याप्त लसे अहो॥

इन्ही दिनो मेरा परिचय साधुहृदय सेठ केदारनाथ गोयनका से भी हुआ। चाँदनी चोक के एक कटरे मे उनकी कपडो की बडी दुकान थी। विलायत से कपडो की गाठे सीधी उनकी आढत मे आती रहती थी। सेठ जी हिन्दी के अत्यन्त प्रेमी और उदार हृदय पुरुष थे। वे निधन विद्यार्थियो को अपने पास से फीस 'पुस्तके' अन्य वस्तुएँ आदि दिलाकर उन्हे उच्चशिक्षा पाने के लिए उत्साहित करते रहते थे। उनके अनेक पढाए हुए विद्यार्थी आगे चलकर हाईकोट के जज एव यशस्वी सजन डाक्टर बने।

केदारनाथजी ने मेरे परामश से १९१५ मे मारवाडी लायब्रेरी की स्थापना की। स्थापना समारोह का क्षण अत्यन्त भावुक था। डा युद्धवीरसिह भी इसमे उपस्थित थे। लायब्रेरी को उन्होने अत्यन्त दृढता के साथ खडा कर दिया। वे मारवाडी परिवार मे जन्म लेकर भी धन से मोह नही करते थे। एक बार अपने सत्य व्यवहार के कारण उन्हे लाखो रुपयो की हानि उठानी पडी। महात्मा गाधी का विदेशी वस्त्र वहिष्कार-आन्दोलन जोरो पर था। विदेशी वस्त्र विक्रेताओ से काग्रेस यह प्रतिज्ञा करा रही थी कि वे विदेश से वस्त्र नही मगायेगे। सेठ जी ने कहा कि मै इगलड की एक मिल को एक बहुत बडा आडर पहिले ही दे चुका हूँ। वह माल तो आरहा होगा। इसके बाद मै

और नही मँगाऊँगा । परन्तु कांग्रेस ने आग्रह किया कि [illegible]
नही करना चाहिए । सेठजी ने मिल का माल नहीं लिया । [illegible]
गाह पर पड़ा रहा । परन्तु उन्होंने मिल का [illegible]
दिया । यह बड़ी भारी आर्थिक चोट थी । [illegible] सेठजी का [illegible] गया,
अन्तत इस साधु सेठ को अपने अन्तिम दिन आर्थिक कठिनाइयों में [illegible] ।

सन १९१७ के अन्त में मुझे एक सुयोग मिला । [illegible]
ए० वी० कालिज के प्रिंसिपल के अनुरोध पर मैं आयुर्वेद [illegible]
लाहोर चला गया । पहिले मै अकेला ही रहा गया । [illegible]
एक सम्बन्धी को लिखा कि वे मेरी पत्नी को [illegible]
अपठित थे । वे बड़े ठाठ से मेरी पत्नी को लेकर लाहोर [illegible] ।
टिकट उन्होंने नही लिए । चेकर के आने पर वे बड़े [illegible]
को लाहोर पहुचाने जा रहा हू, चिट्ठी आई है । मेरी [illegible]
कर वे सरकारी हुक्मनामे की भांति प्रदर्शित करते । [illegible]
पत्नी ने रात भर रोकर और उस मूढ़ के साथ चल [illegible]
विधान समझ कर वह ट्रेन यात्रा समाप्त की । प्रात ट्रेन लाहोर [illegible]
मैं स्टेशन पर हाजिर था । मैंने उन्हे डिब्बे से उतारा परन्तु [illegible]
सब हाल सुनकर मैने उन्हे किराया दे दिया और उनकी मुक्ति कराई । [illegible]
कि उनके पास रुपए थे नहीं, और मेरी पत्नी से रुपए मांगना उन्होंने [illegible]
के खिलाफ समझा । मै बहुत दिनो तक अपनी उस [illegible] ।

उन दिनों डी० ए० वी० कालेज का आयुर्वेद विभाग अलग [illegible]
के नियम आयुर्वेद विभाग पर भी शासन करते थे । यद्यपि [illegible]
यर प्रोफेसर था, मेरा बहुत मान सम्मान था परन्तु [illegible]
न थी । अभी एक वर्ष भी नही व्यतीत हुआ था कि [illegible]
नियमो के एक विषय को लेकर खटक गई । प्रिंसिपल [illegible]
रजिस्टर पर दस्तखत करने पड़ते थे, और दो चार मिनिट [illegible]
होता था कि प्रिंसिपल सारे अंगो से मुझे देख रहे हैं । मैं अपना पद त्याग [illegible]
श्वसुर के पास अजमेर चला गया और वही [illegible] करने लगा । [illegible]
चन्द्रसेन को भी अपने साथ यहाँ ले आया था । लाहोर में [illegible]
वाचस्पति दुर्गादत्त तथा गुरुकुल चित्तौड़ के संस्थापक स्वामी [illegible]
ष्ठिर विद्यालंकार) भी रहे । प० आर्यमुनि, श्री राजाराम शास्त्री, [illegible]
विद्वानो से यही मेरा परिचय और स्नेह सम्बन्ध हुआ ।

अजमेर मे

अजमेर मे मेरे श्वसुर ने अपना स्वत त्र औषधालय 'कल्याण औषधालय' खोल रखा था। यद्यपि मै अपना पृथक ओषधालय खोलना चाहता था, परन्तु उनके आग्रह पर मे भी उसी औषधालय मे बैठने लगा। एक चिकित्सालय मे दो चिकित्सको की दो कुर्सिया हो गइ। एक प्रौढ, एक युवा। कुछ ही महीनो मे मेरी चिकित्सा का यश फल गया। अजमेर के आसपास मे राजपूताने की रियासतो के श्री मन्तो एव सरदारो मे भी मेरी पैठ हो गई। चिकित्सा करने का मेरा अलग ढग था। में वैज्ञानिक और मनो वैज्ञानिक दोनो ही पद्धतियो को रोग निदान मे प्रयोग करता था। मेरे मरीज मुझे अपना मित्र समझते थे। मे वहा खूब चमक उठा।

यह प्रथम जमन महायुद्ध के बाद का समय था। इस समय अजमेर मे भारी प्लेग फैला। नगर मे त्राहि-त्राहि मच गई। नगर के प्रमुख काय कत्ताओ कुवर चाद करण शारदा, आय समाज के मत्री पडित जीयालाल आदि ने एक स्वय सेवक दल सगठित किया और भारी लोक सेवा मे जुट गए। परन्तु प्लेग की महामारी की छूत से स्वय सेवक रोगी की परिचया से भयभीत रहते थे। मैने आयुर्वेद योग से एक नुस्खा तैयार किया। उसकी गोलिया बनाइ और स्वय सेवको तथा काय कर्ताओ की जेबो मे उनकी एक एक शीशी बाट दी। में स्वय भी रोगियो की सभाल मे जुट गया। हम उन गोलियो को पानी के साथ दिन मे चार बार खाते थे। एक गोली खाकर दो चार घूट पानी पी जाते थे। इस ओषध का प्रभाव यह था कि इसे खाकर प्लेग क्षेत्र मे प्लेग रोगिया के मलमूत्र मे कितना ही घूमो फिरो, पर तु उसके आक्रमण का शरीर पर कोई भय नही हो सकता था। ये गोलिया प्लेग म कवच का काय कर रही थी। दो मास के अथक सेवा काय से जब हम निवृत हुए और प्लेग महामारी का विनाश हो गया, तब भी हम तथा नगर के अधिकाश व्यक्ति उन गोलियो का सेवन करते रहे। मेरे ओषधालय म दो मास तक दो व्यक्ति उन गोलिया को कूटते, बनाते और मुफ्त वितरण करते रहे। इस प्लेग महामारी की कुछ अनुभूति करके इससे निवृत होते ही मैने अपना उपन्यास 'प्लेग विभाट' लिखा। इन्ही दिनो एक योगी ने मुझे तलवार चलाना सिखाया था।

अजमेर का १९१८ का वर्षान्त मेरे लिए अत्यन्त दुखद रहा। सिकन्दराबाद से पिता जी का तार मुझे मिला कि चन्द्रा बहुत बीमार है। चन्द्रा मेरी छोटी बहिन थी और मुझे अत्यन्त प्रिय थी। अत्यन्त कोमल तन्तुओ से भगवान ने उसे रचा था। वह परम विदुषी और सौन्दर्य की प्रतिमा पति परायणा स्त्री थी। उसका विवाह चार वर्ष प्रथम मैने ही दिल्ली निवासी एक होनहार युवक से किया था। परन्तु मैने उसका पति चुनने म भयानक भूल की। पति का परिवार भरापुरा था, सास ससुर देवर ननद सभी

थे । यद्यपि परिवार सम्पन्न नही था, परन्तु मैंने उस [illegible]
कर सम्पन्नता पर विचार नही किया । ससुराल में [illegible]
पडा । सभी की सेवा और आज्ञापालन में वह भोर से ही [illegible]
बारह बजे ही सो पाती । कुसुमकली मुरझा गई और [illegible]
होकर पड गई । फिर भी उसने हम लोगो से कभी भी अपनी [illegible]
किया । बीमारी की सुनकर पिताजी उसे देखने दिल्ली गए और [illegible]
बाद इलाज कराने ले आए । तार पाकर मेरा मन बुझ गया गया और मै [illegible]
बाद पहुँचा । कला का ढाँचा मात्र खाटपर पडा था । मेरी [illegible]
हास्यमूर्ति कला तो कभी की लुप्त हो चुकी थी । मुझे देखते ही उसके मुख पर और [illegible]
मे हास्य आ गया । उसने आदरपूर्ण शब्दो में [illegible]
इसी सम्बोधन से कहा करती थी । उसके पति, सास ससुर सभी [illegible]
क्रोध और घृणा से मैने उसके पति से कुछ कहना चाहा, पर [illegible]
व्याकुल दृष्टि से मुझे कुछ नही कहने दिया । उसने [illegible]
था ।' मैने बहुत प्रयत्न किया पर उसे नही बचा सका । मेरी [illegible] और
मेरा हाथ अपने हाथो में थामे वह भगवान के घर चली गई । पिताजी [illegible]
को कस कर पकड लिया और छाती पीटकर रो उठे छिन गया [illegible]
वह करुण विलाप असह्य था ।

कला को विदा करके जब मै अजमेर लौटा तो मै बहुत [illegible] था । गुमसुम था ।
कुछ दिन बाद मेरी पत्नी रुग्ण हुई और डाक्टरी उपचार किया गया । [illegible]
से कम्पाउन्डर ने पीने की दवा में मरफिया कम्पाउन्ड कर दिया [illegible]
की दशा बिगड गई और अब तब की स्थिति हो गई । [illegible]
आए । अनेक उपचार किए गए । सारे दिन सारी रात [illegible]
गया, ठण्डे पानी के छींटे और बीच बीच में टहलाना जारी [illegible]
उन्हे काला दस्त और वमन हुई । तब कही जाकर उनकी प्राण रक्षा हुई । [illegible]
घटनाओ ने मेरे मस्तिष्क का खून जमा दिया और [illegible]
गया । मेरा सारा टेम्प्रेचर मेरे मस्तिष्क में था, न मैं किसी को पहचानता था, [illegible]
सकता था । आँखे मेरी फटी रहती थी । लाल सुर्ख उनका रंग हो गया था । [illegible]
मास मैं भयानक रूप से बीमार रहा । लाल चन्दन की [illegible]
मेरे मस्तक पर रखी और बदली जाती थी । पाँच मिनिट में [illegible] गरम
हो कर सूख जाती थी । सिकन्द्राबाद से मेरे माता पिता भी आ गए थे । [illegible]
परिश्रम और प्राथनाओ के परिणाम स्वरूप मै स्वस्थ हुआ ।

चिकित्सालय में हम दोनो साथ ही बैठते थे, परन्तु मेरी [illegible]

मरीज मुझे ही अधिक घेरा करते थे। साहित्य की ओर रुचि होने के कारण लोगो का मे मित्र और प्रशसक बनता जा रहा था। श्रीमन्त राव साहब खरवा और श्रीमन्त गोपालसिंह जी ने मुझ से खूब काम लिया और मुझे अपने मित्र राज्य परिवारो मे भी प्रवेश कराया। उन दिनो अजमेर धनवान सेठो की नगरी थी। लोढा ढड्ढा परिवार तो बहुत विख्यात थे। ऐसे ही एक परिवार की एक सत्य घटना पर मैने 'बड नक्की' नामक कहानी भी लिखी है। अजमेर के सभी सेठ परिवारो मे मै चिकित्सा के लिए बुलाया जाता था। किसी भी अन्तपुर मे मेरे लिए परदा न था।

प्रसिद्ध पुरातत्व विद्वान रायबहादुर गौरीशकर हीराचन्द जी ओझा से मेरा यहीं परिचय हुआ। उनके पुत्र श्री रामेश्वर ओझा बीमार थे। कुछ दिनो वद्यराज जी ने उन्हे औषध दी, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। अन्तत वे मेरी चिकित्सा मे आए और उन्हे शीघ्र ही आरोग्य लाभ हुआ। इस चिकित्सा से गौरीशकर ओझा मेरे अन्यतम मित्र और प्रशसक बन गए। अब वे प्राय प्रति रविवार को मेरे साथ बठ कर साहित्य और इतिहास चर्चा किया करते थे। बम्बई की प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशन सस्था 'हरीप्रसाद भागीरथ जी' के स्वामी, सलेमाबाद किशनगढ निवासी, श्री पण्डित ब्रज वल्लभ की पत्नी कठिन रोग मे वर्षो से ग्रसित थी। अपनी पत्नी को दिखाने वे मुझे अपने गाव सलेमाबादपुर ऊट पर बठाकर ले गए। उनकी यह चतुथ पत्नी थी। भाग्य की बात कि मेरे द्वारा दी गई औषधि की दो मात्राओ ने ही उन्हे आश्चयजनक रीति से रोग के चगुल से छुडा दिया और वे एक मासमे पूरा स्वस्थ हो गईं। पण्डित ब्रज वल्लभ अपनी पत्नी के आरोग्य लाभ से बहुत प्रभावित हुए। उन्होने कहा—'आप जसे गुणी यहाँ क्यो पडे है, चलो मेरे साथ बम्बई जिस महालक्ष्मी की नगरी मे चादी सोने का समुद्र बहता हे।'

पण्डित व्रजवल्लभ शर्मा अनोखे जीव थे। ऐसे पुरुष अब पैदा नहीं होते। सौ रुपये रोज की कोनीन खाते थे, भाग का गोला और अफीम की गोली इससे पृथक। मुनाफे का नशा पानी था। सुबह ग्यारह बजे उनक जागने का समय नियत था। उनके जागने से प्रथम नौकर भाग का गोला और एक गिलास पानी उनके पलग के नीचे रख देता था। जगते ही उनका अभ्यस्त हाथ पलग के नीचे रक्खे गोले पर पडता, और उठते ही नारायण नारायण का पारायण करते हुए -वह गोला और एक गिलास जल उनके उदर मे पहुँच जाता। नौकर चाकर ताक मे चाकचौकन्द रहते, एक पाखाने मे ढाई सेर पानी का लोटा भरकर रखता, दो खिदमतगार गगासागर, गमछे पीली मिट्टी के डले, मजन, मिस्सी दातुन सम्हालने जुटाने मे व्यस्त हो जाते। पण्डित जी आवाज लगाते—'हम आए ?' और खिदमतगार कहता--'पधारो अन्नदाता।' और वह कान पर जनेऊ चढा, एक हाथ मे बीडियो का बण्डल, दूसरे मे दीयासलाई लिए झूमते हुए

पाखाने मे प्रवेश करते । वहा उन्हे दो घटे लगते थे । [illegible]
फूक डालते ।

पाखाने से निकलते ही एक चौकी पर पण्डित जी [illegible]
दोनो ओर दो खिदमतगार गगासागर लेकर और [illegible]
छोटे ढेले लेकर खडे होते । पण्डित जी दोनो घुटनो पर [illegible]
लन करते, जल की अनवरत धार हाथ पर पडती, [illegible]
पडती जाती—घुलती जाती ।

इन सब कामो मे दो बजते थे । दो बजे उनका भोजन का समय [illegible]
फुलके, जरा सी दाल, जरा सी तरकारी, चटनी, [illegible] भात । [illegible]
उनका भोजन । इसके बाद शयन । ६ बजे उठते । उठते ही [illegible]
मुह धो, गद्दी पर विराजमान होते । मुसाहिबो की सभा जुटती, [illegible]
पेचवान पीते, पान खाते, बाते करते, गप्प उडाते । बीच बीच मे [illegible]
कान के पास आकर काम काज की भी बात करते । घर [illegible]
चनाए होती । सब कुछ ठेठ मारवाडी भाषा मे, महत्वपूर्ण [illegible]
धीमा स्वर, मधुर वाक्य, आला से अदने तक प्रत्येक के नाम के साथ [illegible]
मे मुसाहिब जन इस समय तोहफे भी भेट करते । [illegible]
कर हथेली पर रख पेश किए । स्वाद और तारीफ हुई । [illegible]
खिला—किसी मुसाहिब ने हथियाया और अब अवसर [illegible]
का गजरा बना लाया । कहार ने दूधिया छानी, [illegible]
की ठहरी । कोई बम्बई कलकत्ता सी महानगरी नहा । [illegible]
पैदल हवाखोरी हुई । दो चार फलाग । दस बीस मुसाहिब साथ । [illegible]
रुककर हँसकर, मृदु स्वर मे कुशल मगल पूछना, और [illegible]

अब चिराग जल गए । मण्डली [illegible]
दौर चला । प्रत्येक पान मे कोकीन । फालतू मुसाहिब [illegible]
के पत्ते निकाले गए । मसनदे लग गई । [illegible]
लगाकर दे रहे है, और गुपचुप निरतर [illegible]
खेल चल रहा है । सन्नाटे का आलम है । बातचीत [illegible]
पान । मुह मे कोकीन का असर, सारे शरीर मे [illegible]
आनन्द । बस पत्ते फके जा रहे है, पान खाए जा रहे है, [illegible]
लिखता जा रहा है । बातचीत कतई बन्द है, कुछ हुई तो [illegible]
'हूँ' । फालतू नौकर भी गायब । केवल एक खिदमतगार [illegible]
चिलम ठण्डी हुई कि दूसरी तैयार । समय बढता जा रहा है और [illegible]

है। दो ढोली पान भी खत्म हो सकते हैं, तीन ढोली भी, अर्थात पाच सो पान।

कभी बारह बजे और कभी एक बजे मजलिस बरखास्त होती। इस समय पण्डित जी फिर भोजन करते। दो पूरी, दो तीन तरकारी, मलाई, एकाध टुकडा बरफी और फिर दो खिदमतगार हाथ का सहारा दे पलग पर ले जाते। बातचीत, बोलचाल, जो ताश का खेल शुरू होने पर बन्द हुई सो बन्द। ऐसा सन्नाटा कि सुई गिरे तो खटका हो। पण्डितजी जिन्दा हे यह इसीसे प्रतीत होता था कि उनका शरीर गतिमान है। वह धीरे धीरे पेचवान का कश खीचते खीचते सो जाते। कभी सोते सोते तीन भी बज जाते थे। यह थी पण्डित व्रजबल्लभ की दिनचर्या।

जिन दिनो की यह बात है तबसे कोई आधी शताब्दी पहले कुछ मारवाडके पुरुष कधे पर लोटा डोर रखकर पाव प्यादे बम्बई पहुँचे थे। उन्ही मे पण्डितजी के पिता श्री हरिप्रसाद भी थे। बम्बई पहुँचकर उन्होने पचाग छाप कर चार पैसे मे बेचना प्रारम्भ किया। पचाग बेचते बेचते और भी पुस्तके छापने लगे। तोता मना का किस्सा छापा, सिहासन बत्तीसी छापी, बैताल पचीसी छापी। प्राचीन वैद्यक और ज्योतिष की पोथी भी छापी। अपनी छापी हुई पुस्तके कधो पर रख आप ही गली कूँचो मे घूम घूमकर बेचते थे। जीवन भर वह यही करते रहे। धीरे धीरे उनका कारोबार बढता गया और एक दिन वह बम्बई के संस्कृत पुस्तको के प्रसिद्ध प्रकाशक बन गए। हरिप्रसाद भागीरथजी की फर्म देशभर मे विख्यात हो गई। बम्बई मे अनेक बिल्डिंग खडी हो गइ। मूल स्थान अजमेर के पास सलेमाबाद गाव था। सलेमाबाद गाव मे एक ज्योतिर्लिंग है। इस मन्दिर के कारण यह गाव बहुत प्रसिद्ध है। पर पण्डित ब्रजबल्लभ न सलेमाबाद रहते थे, न बम्बई। बहुत आवश्यकता होने पर आते जाते अवश्य रहते थे। इससे उनके आराम मे, दिनचर्या मे, नशे पानी के प्रोग्राम मे बाधा पडती थी। इसमे, मुकर्रर तौर पर रहते थे किशनगढ स्टेशन पर बनाए हुए मकान मे। यही उनका प्रिय आवास था। उस समय पण्डित व्रजबल्लभ हरिप्रसाद भागीरथजी की प्रसिद्ध फर्म के स्वामी थे। हजारो रुपये मासिक की आय थी। काम-काज मुनीम-गुमाश्ते देखते थे। खर्च के रुपये बराबर रूप से बम्बई से चले आते थे। विशेष आवश्यकता होने पर तार से मगाते थे। हिसाब किताब से उन्हे सरोकार न था। यह सब काम मुनीम-गुमाश्ते करते थे, जिन्हे नौकरी करते जिन्दगी बीत चुकी थी और यह नही कहा जा सकता था कि नौकर है या मालिक। मालिक को यह सब देखने भालने का अवकाश कहा था।

पण्डित व्रजबल्लभ से मेरी मुलाकात सन् १८ मे अजमेर प्रवासकाल मे हुई, तब से जो परिचय बढा तो वह मित्रता की सीमा तक पहुँच गया। जब तब पण्डितजी किसी न-किसी बहाने सौगाते भेजते रहते थे, जिनमे एक सौगात खास थी, जिसका अब केवल स्वप्न देखा जा सकता है। वह थी गुड की दो भेली। हर साल कार्तिक मास मे

भेलिया मेरे पास पहुच जाती थीं । [illegible]
उज्ज्वल और स्वाद सुग [illegible] वाह, वाह । [illegible]
उसी मे यह खास गुड होता था । [illegible]
गुड मे मेवा होती थी—केसर, कस्तूरी अम्बर भी [illegible]
थी । पूरे साल भर मे उस सौगात की प्रतीक्षा [illegible]
प्राप्त करता रहा । पण्डित जी का मधुर स्वभाव, [illegible]
करना तो दूर,कभी उन्हे जोरसे बोलते भी न [illegible]
कारण आख मे आसू भर आते थे । [illegible]
वाणी, आज भी मेरे मानस पटल पर [illegible]
इस महापुरुष से भी मेरा झगडा हो गया और [illegible]
अदालत तक पहुँची । हाइकोर्ट ने डिग्री [illegible]
मै डिग्री के रुपए पण्डितजी से न वसूल कर सका । [illegible]
रकम दस हजार के लगभग थी । परन्तु उसकी [illegible]
से मेरे ऊपर दस हजार का एक दावा ठोक दिया गया [illegible]
निस्स देह कतई झूठा था, जो मुनीम गुमाश्ता ने बनाया था । [illegible]
शायद सहमति मान ली गई थी । [illegible]
दज थी । उन दिनो मैं बम्बई मे रहता था । [illegible]
फर्म बिलकुल पास पास ही थी कालबादेवी रोड पर । [illegible]
व्यवसाय करने, पर सगे दोस्त [illegible]
साथी थे । उन दिनो हम लोग [illegible]
दिन थे वे,जबकि रात रात भर [illegible]
रुई की ऊपज हमारी उगलियो की पोर पर रहती थी । [illegible]
ही रुपया तन मन मे भरा था । [illegible]
दको और प्रकाशको से पारिश्रमिक और [illegible]
करनी पडती है । खैर छोडिए इस बात को ।

हा, तो मेरे ऊपर दावा ठोक दिया गया और [illegible]
पण्डितजी को । दोष सोलह आना मेरा था । [illegible]
काम कर डाला था । फिर जो प्रतिक्रिया हुई, वह [illegible]
राय न पूछी गई थी । यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक भी थी । [illegible]
पर उस फर्म के मुकाबले मेरी हैसियत कुछ न थी । मैं [illegible]
गया कि यदि पण्डितजी की डिग्री हो गई तो मेरी सारी [illegible]
बडी बेइज्जती होगी । पण्डित जी के मुनीम गुमाश्तो की [illegible]

डिग्री ले लेना बाए हाथ का खेल था। मे खीझ, क्षोभ और बेचैनी से मरा जा रहा था। रह रह कर पछतावा हो रहा था। बैठ ठाले मित्रता पर लात मार कर यह कहा का खराब काम जल्दबाजी मे कर डाला। लेकिन मुनीमो से खुशामद करना या सुलह करना या पण्डितजी का ही शरणापन्न होना मेरी गर्वीली प्रकृतिके सवथा प्रतिकूल था। झुकना और आधीन हाना मेने मीखा नही। परेशानी,बेचनी मे भीतर ही भीतर म घुलता रहा।

इसी बीच कायवश मुझे अजमेर जाना पडा। मने एक विचार किया ओर आदमी भेजकर पता लगाया कि पण्डितजी किशनगढ वाली हवेली मे हे या नही। जबाब आ गया—वही मुकीम थे। मेने एक योजना चुपचाप बनाई ओर उनसे जाकर मिलने का इरादा दिया। यह इरादा सुनकर कल्याणसिहजी ने इसका विरोध किया। वह भी बडे मान वनी हे। उन्हाने कहा—तुम्हे प्रथम तो मित्रता मे लडना ही न था। बुरा काम हुआ। आगे पीछे रुपया मिल ही जाता। न मिलता तो मित्रता कितनी अनमोल थी। पर अब जब लड लिए और झूठा मुकदमा तुम पर चलाया हे, तब उनके पास जाना मुनासिब नही हे। अब लडा,चाहे हार हो या जीत। दुश्मन के पैरो पर पडने अब क्यो जाते हो ? पर तु मेने उनकी इस नेक नमीहत पर कान नही दिया। वास्तव मे मेरी योजना का तो उ ह पता न था और मैं चल दिया। मे जानता था कि पण्डित जी से मिलने और बात करने का समय कौन सा हे। उनकी दिनचर्या जानता था।

मै जब पहुँचा, तब चिराग जल चुके थे और पण्डित जी का दरबार लगा हुआ था। मुझे देखते ही पण्डितजी सन्नाटे के आलम मे रह गए। वह लडखडाते हुए उठे। आगे बढकर मेरा हाथ पकड लिया और ले जाकर अपने साथ गद्दी पर बठाकर कुशल पूछी। औपचारिक शिष्टाचार हो चुकने के बाद मेने ही नाटकीय रीति से हाथ जोड कर कहा—एक कष्ट देने के लिए आया हूँ, साथ ही अपने एक कसूर की माफी मागने भी, यद्यपि कसूर बहुत भारी है तथापि आपका हृदय भी महान हे। फिर भी माफी न मिले ता म चाहूँगा कि इन उपस्थित सज्जनो के सम्मुख ही मुझे दण्ड भी दिया जाए।

पण्डितजी कुछ भी नही समझे। मेरी अकड ओर हठ को जानते थे। अब मेरा क्या अभिप्राय है यह उनकी समझ म नही आया। मैंने तुर त गोला दाग दिया। कहा—आप श्रीमानो का दम हजार रुपया लेकर मे खा गया, असल तो दूर व्याज भी न दे सका। जिससे आपको अदालत मे दावा दायर करने का कष्ट उठाना पडा। अब रुपया हाजिर है। असल और व्याज फलाकर जो निकलता हे, रुपया ले लीजिए और उसके बाद मेरे कसूर की जो मुनासिब सजा हो वह भी इन भद्र पुरुषो के समक्ष सुना दीजिए। यह कहकर मने शरवानी की भीतरी जेबसे भारी भरकम चमडे का पस निकालकर उनके सामने गद्दी पर शान के साथ फेक दिया।

पर तु मेरा कलेजा तेजी मे धडकने लगा। कही इन्होने पस उठा लिया, और

रुपए गिने तो क्या होगा ? क्योकि पम म कुल जमा [illegible] । शेष रद्दी कागजो, चिटिठयो, रसीदो का वजनी पुलिन्दा था, [illegible] बनाया गया था । मेरी नजर पम पर थी जो गद्दी पर [illegible] । परन्तु यह एक मनोवज्ञानिक खेल था, मुझे [illegible] भी नही । उनकी महान निष्ठा और गौरव पर मुझे [illegible] था ।

पण्डितजी की आखे जो नीचे झुका तो ऊपर न उठा । [illegible] भी नही फूटा । बडी दर तक वह उसी अचल मुद्रा म पत्थर [illegible] रहे । मुसाहिब भी सन्नाटे मे । इस प्रकार ३ ४ मिनट बीत गए । [illegible] मे हाथ जोडकर कहा—अधिक समय मेरे पास नही है क्योकि मै [illegible] से दिल्ली जा रहा हूँ । कृपा कर मुनीमजी को हुक्म दीजिए- [illegible] और रुपए गिन ले ।

पर तु पडितजी उसी प्रकार निश्चल बैठ रहे और मै [illegible] आखो से आँसू टपक रहे हैं । मुसाहिब लोगो को बडा आश्चर्य हुआ । [illegible] क्या बात है, यह रुपया लाए हैं तो ले देकर बेबाक कीजिए ।

इतने पर भी पडितजी बडी देर तक गुमचुप बैठे [illegible] । [illegible] गम्भीर से ऊपर उठी ही नही । मुसाहिबो ने फिर कहा यह [illegible] । यह कहते है तो आप हिसाब क्यो नही करते, रुपया [illegible] ?

अब पडितजी ने बडी दद भरी आवाज म, [illegible] कहा—कैसे ले लू ? मेरा तो कुछ इनकी तरफ [illegible] । [illegible] चकित होकर एक दूसरे का मह देखने लगे । [illegible] ?

मैंने कहा—'बात असल मे यह है कि [illegible] हजारो से देना लेना ठहरा । भूल गए है । [illegible] करते है, इसलिए लेना ही नही चाहते, पर तु मै [illegible] हूँ कि रुपया मैने लिया था । न ब्याज [illegible] नही । अब अदालत तक नौबत आई । बहुत लज्जित [illegible] अब असल रुपया मय सूद दो और दर्ज [illegible] पर मैं नही भूला हूँ ।' मने मुनीम [illegible] 'मुनीमजी, [illegible], आओ यहाँ ।'

परन्तु मुनीम को भी साप सूघ गया । [illegible] फुस होने लगी । दो तीन एक साथ बोल उठे यह तो अजीब [illegible] वाला कहता है रुपया लो, और लेनेवाला कहता है मेरा तो कुछ [illegible] ।

अब पडितजी की बोली फूटी । उन्होने सक्षेप म सारा [illegible] ।

भी अटका न रखा। कहा—रुपया तो इन्ही का चाहिए था—उसकी डिग्री हाईकोर्ट से हो गई है। बम्बई के मुनीम ने मेरा मुह काला कर दिया, इन पर बदले मे झूठा मुकद्दमा खडा कर दिया, यही रुपया देने यह मेरे द्वार पर आए है। इनके आने से ही मेरे बाप दादो का उद्धार हो गया। तुम लोगो ने भी देख लिया। पर अभी यह ब्रज वल्लभ जिन्दा है। ब्राह्मण का बेटा हूँ,—पतित हूँ, अधम हूँ, कीटपतग हूँ, पर इतनी बुद्धि रखता हू। ब्रजवल्लभ जान दे देगा, धर्म से नही डिगेगा। मुझसे बिना पूछे उन लोगो ने यह काम कर लिया। अब कहो, मैं इन्हे मुह दिखाने लायक कहा रहा ?

इतना कहते कहते ही ब्रजवल्लभ पण्डित बच्चे की भाति रोने लगे। मैने आहिस्ता से कहा—तो क्या आप यह ठीक सोच समझ कर कह रहे है कि आपका रुपया नही चाहिए।

नही चाहिए, नही चाहिए, नही चाहिए। भगवान को मुझे मुह दिखाना है।

मैने आहिस्ता से अपना पर्स उठाकर शेरवानी की भीतरी जेब मे रख लिया। दिल की धडकन रेग्यूलर हो गई। मामला फतह हो चुका था। दस हजार का मुकदमा खुद बुद हो रहा था, जिसके मारे महीनो नीद हेरान थी।

मै एकाएक उठ खडा हुआ। नमस्कार करके मैने कहा—बडा कष्ट दिया आप को, अब आज्ञा दीजिए, गाडी का समय हो गया है।

ब्रजबल्लभ पण्डित तडपकर उठ खडे हुए। कस कर मेरा हाथ पकड लिया। कहने लगे—जा कैसे सकते है आप। इस घर से इस तरह जाना होगा ? अब अपनी डिग्री का रुपया लेते जाइए।

मुझे नाटक का अन्तिम अभिनय पूरा करना था। मैने जरा शान और रुखाई से कहा—श्रीमान, निस्सदेह आप बहुत बडे आदमी है, फिर भी अपना रुपया माँगने को किसी के द्वार पर जाने का मैं आदी नही हू। यह मेरी मर्यादा का प्रश्न है। मुसाहिबो की आखे मेरी प्रशसा से फूल रही थी। वे आपस मे कह रहे थे—ऐसे सज्जन पुरुष के साथ ऐसा व्यवहार न होना चाहिए। और मै अपनी सज्जनता पर चमत्कृत हो रहा था।

ब्रजवल्लभ पडित ने हाथ जोडकर कहा—मुझसे चूक हो गई है। अज्ञानी जीव हू। परन्तु अभी आप बिना भोजन किए नही जा सकते।

मैने कहा- रुक नही सकता हू। मेल से दिल्ली जाना है, इसी रात को।

नही नही, आज रात को नही। कल सुबह मै अजमेर आकर आपके दर्शन करूगा, कल तक आप ठहरेगे, मुझे इतनी भिक्षा दीजिए।

खैर, मै कल चला जाऊँगा, परन्तु मुझे आज्ञा दीजिए।

क्षण भर पण्डित ब्रजबल्लभ चुपचाप मेरा हाथ पकडे खडे रहे। फिर उन्होने

अपने सेवक को सकेत किया और उसने [illegible] लपेट कर मेरे सामने रखी। व्रजवल्लभ [illegible] आपकी यह किश्त रुक गई। इस [illegible] उनके होठो पर लौट आया था।

दूसरे दिन भोर ही मे दो मुसाहिबों और [illegible] ने अजमेर मे आकर मुझे दर्शन दिए। ये [illegible] का समय था। इस समय भला वह किसी से [illegible] जीवन मे कितना व्याघात पहुचा होगा।

मैने अभ्यर्थना की और बिना बात [illegible] कागज टेबुल पर से खीचकर अपनी डिग्री की भरपाई [illegible] भी लगा दिया। रात ही को मै इसकी मुकम्मिल तयारी कर [illegible] होकर बडे तपाक से वह रसीद पण्डित व्रजवल्लभ [illegible] रसीद पर एक सरसरी नजर डालकर वे धीरे से [illegible] रसीद पहले ही कैसे दे दी ?

मैने कहा—आपका यहा पधारना [illegible] कभी हकीकत समझी नही। आप मेरे यहाँ आ [illegible] हो गई। रुपया मैं पा चुका। अब मुझे कुछ [illegible]।

ब्राह्मण की आखे फिर झर झर झरने लगी। [illegible] बैठे रहे। रसीद टेबुल पर वैसी ही पड़ी रही।

फिर धीरे से पडित व्रजवल्लभ ने उस [illegible] पर लिपटा था, और नोटो के तीन गट्ठर धीरे से मेज पर रख [illegible] रकम है, व्याज और खर्च नही है। गिन लीजिए।

मैने कहा—इस घर से तो [illegible] देते तो भी न लेता। परन्तु [illegible] लेते जाइए, मुझे खुशी होगी।

व्रजवल्लभ एकाएक उठ खड़े हुए। बोले [illegible] को जाने की तयारी करनी है। बम्बई [illegible] लिए। अगले मास आ रहा हूँ बम्बई। तब दर्शन [illegible]।

और पडित व्रजवल्लभ धीरे से [illegible]।

ऐसे थे व्रजवल्लभ शर्मा। बम्बई [illegible] रुपयो का ढेर लगाने को मेरी लालसा बढ़ रही थी। [illegible] रही थी, तभी मेरे अन्यतम मित्र सूर्यप्रताप सक्सेना [illegible] अजमेर आए और [illegible]

सम्बन्ध मे मेने उनसे सलाह ली । उ होने भी मुझसे वहा जाने के लिए कहा । दो सप्ताह वह मेरे साथ रहे । चादनी रात मे हम दोनो मित्र छत पर रात भर बैठे बाते करते रहते थे । कभी तारागढ पहाड पर मीलो घूमते रहते थे । बातो का छोर न था । इन दिनो 'अपत्यावतरण' नामक चिकित्सा और परिचया सम्बन्धी पुस्तक भी लिखी ।

बम्बई की बात मन मे चल ही रही थी कि मुझ पर इस साझे के चिकित्सा व्यवसाय के अप्रिय दु परिणाम भी प्रकट होने लगे । और मैं वैद्यराज जी से 'अपत्या वतरण' को बम्बई जाकर छपा लाने और कुछ औषधिया लाने की कह कर अकेला बम्बई चल दिया । असल मे मे बम्बई अपना ठीया ढूढने के लिए चल खडा हुआ था । केवल मेरी पत्नी इस दुरभिसन्धि को जानती थी ।

बम्बई मे एक मास बिता कर और वहा का रग ढग देखकर मे अजमेर लोट आया । 'अपत्यावतरण' भी छपा कर ले आया था । दस पाच दिन रह कर और सबसे प्रेमपूवक बिदा लेकर पत्नी सहित मे बम्बई चल दिया—अपने भाग्य के खेल खेलने । भद्रसेन को मेने साथ लिया, वह मेट्रिक पास कर चुका था, पर तु च द्रसेन अभी छोटा था, इसलिए उसे मेने सिकन्द्राबाद ७वी क्लास मे पढने के लिए भेज दिया ।

बम्बई मे

१६१६ के मध्यकाल के एक दिन प्रभात मे ही पत्नी और भद्रसेन को लेकर में बम्बई के विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन पर उतरा । उस समय मेरी जेब मे कुल जमा पसठ रुपए की राशि थी । मेरी पत्नी के शरीर पर एक भी आभूषण नही था । मैं केवल ईश्वर और आत्मशक्ति पर भरोसा रखकर इस महान नगरी मे चला आया था । पाच वष इस नगरी मे मेने व्यतीत किए । बम्बई का यह प्रवासकाल मेरे चरम उत्कष और ख्याति का काल था । यहा पहुँचते ही मै ब्रजबल्लभ शर्मा के मकान मे ठहरा और अपने योग्य मकान तलाश करता रहा । ब्रजबल्लभ शर्मा के कारिन्दो को भी मेने मकान तलाश करने के लिए कह दिया था । मेरी दृष्टि मे कालबादेवी रोड और बम्बई—बाजार का क्षेत्र ही उपयुक्त स्थान था जहा मै अपना चिकित्सालय चलाना चाहता था । यही बस्ती मारवाडी सेठो का व्यापार केन्द्र थी । कालबा देवी रोड पर बादाम झाड के पास एक नई बिल्डिग बन कर तयारी पर थी । मने उसी मे दो कमरे लेने की चेष्टा की । अन्त मे बडी दौड धूप के बाद उसी बिल्डिग मे दो कमरे पहिली मजिल पर तीन सौ रुपए मासिक पर मिल गए थे । अब तक मेने अपनी जमा पूजी पसठ रुपए बडे यत्न से बचा कर रखे थे—यहाँ तक कि कही जाना होता था तो पदल ही जाता था, ट्राम मे भी नही बठता था । मकान मिलने पर मै केवल फश बिछा कर ईश्वर का नाम लेकर बैठ गया । दस बीस रुपयो की कुछ औषधिया भी बनाकर तैयार कर ली । मने अपना साइनबोड लगाया—'अजमेरवाला वैद्यराज' ।

मुझे अपना औषधालय [illegible] शर्मा की बम्बई वाली पत्नी भी मेरी चिकित्सा [illegible] की चिकित्सा करके उन्हें आरोग्य कर दिया। [illegible] रुपए की प्राप्ति हुई। चिकित्सा व्यवसाय में मेरा [illegible] सेठ और श्रीमन्त मेरे चिकित्सालय में आने लगे। [illegible] और ठाठ से अपने घर को फर्निश्ड कर लिया। [illegible] नहीं इकट्ठी की। केवल १०–१५ शीशियां [illegible] कर उन्हीं में से पुड़िया बनाकर मरीजों को [illegible] मैं घर पर ही बनवा लिया करता था। [illegible] चल निकली। साथ ही मेरी कलम भी। [illegible] लय, के मालिक श्री नाथूराम प्रेमी जी से [illegible] प्रकाशनार्थ दिया। मैं फुटकर लेख भी लिखता था। [illegible] ये लेख मैं प्रताप, शारदा, प्रभा, कर्मवीर, [illegible] भेज दिया करता था। प्रताप ने मेरी कृतियां [illegible] कृतियां हिन्दी संसार में अत्यन्त पसन्द [illegible] और [illegible] की रचनाएं माना गया। उन दिनों में [illegible] मरीजों और दवाइयों के बनाने में [illegible] मेरी कलम सरपट दौड़ने लगी थी। मेरा [illegible] कागजों पर उतरता रहता था। [illegible] नैतिक विचारों से मेरी स्वतन्त्र विचार [illegible] लेखनी का अप्रतिम चमत्कार तूफानी ग्रन्थ 'सत्याग्रह और असहयोग' [illegible] गांधी हिन्दी पुस्तक भण्डार बम्बई से [illegible] योग के प्रकाशित होते ही राजनीति [illegible] विद्यार्थी ने उसे पढ़ कर [illegible] राजनीति की गीता है। उसका पाठ [illegible] मैं मैंने चार पांच मास बहुत परिश्रम किया और [illegible] सत्याग्रह और असहयोग की स्पष्ट व्याख्या और [illegible] से सुन्दर ग्रन्थ नहीं निकला था। कुछ मास बाद [illegible] जब्त कर ली गई थी, और इसका दूसरा संस्करण [illegible] प्रेस से लौटा लिया गया। बहुत छिपा कर गुजराती संस्करण [illegible] शित मेरे गद्यकाव्य जो राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत [illegible] थे। मेरे गद्यकाव्य होते थे देश प्रेममय। इस समय मेरी कलम [illegible], धर्म, राष्ट्र [illegible]

और समाज को अतिक्रान्त कर रही थी। परन्तु एक मुस्लिम युवक हाजी मुहम्मद अल्लारखिया शिवजी की मैत्री से टकरा कर मेरी साहित्य दिशा ने नया मोड लिया। मै अपने चारो ओर फैले हुए और जीवन को छूते हुए वातावरण और परिस्थितियो से प्रथक हो अपने युग के रेखाचित्र बनाना छोड मानव मन के चित्रण मे मग्न हो गया। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे गद्यकाव्य का प्रथम जन्म 'अन्तस्तल' की रचना कैसे हुई यह महत्त्वपूर्ण साहित्य रहस्य ही मै अब प्रकट कर रहा हूँ।

सम्भवत ग्रीष्म काल था। एक दिन भोर ही मै म हाजी के आफिस मे जा धमका। इरादा खूब अच्छी तरह लडने झगडने का था। हकीकत यह थी—कि उन्होने बिना मेरी अनुमति लिए मेरे तत्काल छपे उपन्यास 'हृदय की परख' का समूचा गुजराती अनुवाद पत्रिका 'बीसवी सदी' मे छाप डाला था। इस साहित्यिक अपहरण की खबर दी थी मुझे मेरे तरुण मित्र श्री महावीर प्रसाद दाधीच ने। श्री दाधीच आज बम्बई के नामाकित सॉलीसीटर है। उन दिनो वे कानून पढ रहे थे। वे हिन्दी और गुजराती के साहित्य प्रेमी थे। गुजराती कविता करते थे। वे शिष्य की भाति मेरे निकट आते और अपनी स्फुट रचनाएँ मुझे सुनाते तथा वाहवाही लेते थे। उन्होने मुझे यह सूचना दी थी, सूचना दी थी खुशखबरी के रूप मे। उस समय उनकी नजर मे किसी रचना का पत्रिका मे छप जाना लेखक का सबसे बडा मान माना जाता था। फिर 'बीसवी सदी' गुजराती की नामाकित पत्रिका थी। जिसके नाम का बम्बई मे डका बजता था। श्री दाधीच अपनी कोई रचना उस पत्रिका मे छपाने को छटपटा रहे थे। फिर समूचा उपन्यास धारावाही रूप से छपना तो बडी भारी बात थी, उसी की उन्होने मुझे सूचना दी। अब तक मैने गुजराती वर्णमाला पहचानली थी और निरन्तर गुजराती भद्र परिवारो मे चिकित्सा के नाते सम्पर्क होने से भली भाति गुजराती समझने पढने का अभ्यास हो गया था। बोल नही सकता था। अब भी बोल नही सकता हूँ। उपन्यास आधे से अधिक छप चुका था। ताजा अक श्री दाधीच ने दिया था। मै पढता था और खुश होता था। फिर भी खुशी को छिपाकर पत्रिका के सम्पादक से लडाई करने गया, अभिप्राय था—उसे धमकाकर कुछ पैसे झाँसने का।

बडी विकट गली कूचो मे उनका आफिस था। खयाल होता है, श्री दाधीच मेरे साथ थे। शायद पाचवी मजिल पर आफिस था। तग अन्धेरी लकडी की सीढिया। पुराने ढग की बेतुकी सी बिल्डिग। जाकर देखा, पूरा कमरा पुस्तको, अलमारियो, पत्रिकाओ से ठसाठस। बहुत सी पत्रिकाएँ, पुस्तके बेतरतीबी से इधर उधर पडी हुईं। नौकर चाकर कोई नही। वह अकेले ही अपनी घूमने वाली कुर्सी पर डैस्क के ऊपर झुके शायद प्रूफ पढ रहे थे। देखा तो खडे हो गए। लम्बा छरहरा बदन, गौर वर्ण, बडी बडी प्रसन्न आख, जिन पर छोटे अर्ध चन्द्र तालो का चश्मा। आधी नजर चश्मे

मे, और आधी चश्मे से बाहर। साफ [illegible] पाजामा, [illegible]
घुघराले बाल और मजेदार छोटी सी दाढ़ी। [illegible]
परिचय सुना तो हर्षोल्लास से चीख उठे। [illegible]
मना किया, मगर सुना नही। खुद उठे नहीं, कुर्सी [illegible]
ही साहित्य अर्चना का लेखा जोखा समझाने लगे। [illegible]
आलोचना भी, प्रत्यालोचना भी, और इधर उधर [illegible]
साहित्य के गहरे रस मे डूबी हुई। [illegible]
पत्रकार बैठा नही। खडा ही रहा, कुर्सी के पीछे झुका हुआ। [illegible]
मालिक को उसके कारोबार का लेखा जोखा देना हो। [illegible]
तीन घंटो की मुलाकात जैसे बीस वर्ष की प्रौढ़ मैत्री मे परिणत [illegible]
मे बडा कट्टर हिन्दू था। मुसलमान के घर मे न चाय पानी [illegible]
था। हिन्दू मित्रो की इस मनोवृत्ति से हाजी परिचित थे, [illegible]
खातिरदारी का प्रश्न ही नहीं उठाया, और हमारी [illegible]
कात सूखी ही खत्म हुई।

परन्तु ये मुलाकाते लम्बी होती गई। [illegible]
मेरे यहा आते, कभी मै उनके यहा जाता। [illegible]
कर पाता था। एक मुसलमान को खिलाने पिलाने [illegible]
झंझट करना होता। उन्ह फिर छूना नहीं, साफ [illegible]
की मुलाकाते, या तो मसनदो के सहारे उठते हुए, [illegible]
साहित्य वार्तालाप मे बीत जाती थी। [illegible]
और गुजराती के हाजी अच्छे पण्डित थे। [illegible]
सुनाते और मै उसी की जोड तोड निकालता [illegible] और
हॅसी के ठहाको से दीवार हिलने लगती।

मेरा सर्वप्रथम गद्य काव्य जो प्रताप मे छपा था, [illegible]
मे।' अजमेर से बम्बई आ रहा था, [illegible]
गया। वहा राजा कुम्भा के विजयस्तम्भ पर [illegible],
कि सामने बकरियो का एक झुण्ड आता नजर पड़ गया। [illegible]
लिख डाली, और प्रताप को भेजदी। उन दिनो [illegible]
करता था। इसमे दो लाभ होते थे, [illegible]
का भय न था। सम्पादक पारश्रमिक नहीं देते थे, [illegible]

हाजी को भी वे चित्तौर वाली पंक्तिया सुनाई, [illegible]
की, लेकिन जैसी मै चाहता था वैसी नहीं। फिर उसने गम्भीर [illegible]

ढग पर कलम चलाइए, रग रहेगा । बडी तीखी, कलम पाई हे ग्रापने । दूसरा ग्रौर गद्य काव्य जो मेने प्रताप के लिए लिखा था—वह था 'स्वदेश' । प्रताप में वह गद्य छपा, ग्रक के साथ विद्यार्थी जी का पत्र मिला । भूरि भूरि प्रशसा का । निरन्तर ऐसे लेख भेजने का ग्राग्रह था । फिर तो गद्य काव्यो का ताना तग गया । 'मा गगी' 'ग्रनूपशहर के घाट पर' के गद्य तभी लिखे गए । वह काल हिन्दी मे 'उठो जागो' का काल था । देशभक्ति खून मे लहरा रही थी । ग्रोर जब भी भीतर से विचार प्रवाह निकलता था—ज्वालामुखी के लावे की भाति धधकता हुग्रा ग्रौर सवग्रासी ।

गाधी जी की ग्रहिसा ग्रौर क्रान्तिकारियो की हिंसा मे द्वद्व चल रहा था । यह द्वद्व केवल राजनीति मे ही न था, हिन्दी साहित्य को भी छू गया था । खास बात यह थी कि गाधीजी की ग्रहिसा ग्रौर क्रान्तिकारियो की हिसा, दोनो ही मे उत्कृष्ट देश भक्ति थी, कम से-कम मे यही समझ पाया था ।

सत्याग्रह की शुद्ध व्याख्या ग्रभी गाँधीजी ने नही की थी । पर उनके दक्षिण ग्रफीका के सत्याग्रह के कारनामे देश मे चाव से पढे जा रहे थे । गाधी जी का ग्रभी राजनीति के गगन मे उदय ही हुग्रा था । तिलक खुल्लमखुल्ला उन पर सदेह कर रहे थे । परन्तु गाधीजी की ग्रहिंसा मीमासा जहा एक ग्रोर मेरी विचार सत्ता को ग्राहत कर रही थी, दूसरी ग्रोर खून की प्रत्येक बूद मे उग्र हिसा लबालब भरी हुई थी ।

यद्यपि मैने इसी समय ग्रपनी प्रसिद्ध पुस्तक सत्याग्रह ग्रौर ग्रसहयोग' लिखी थी । जिसकी उस काल मे धूम मची थी । पर मे न राजनतिक पुरुष था, न राजनैतिक लेखक था । देशभक्ति की प्रेरणा ने मेरी लेखनी को इस उगती हुई नई धारा की व्याख्या करने को प्रेरित किया था । पर भीतर ही भीतर उसका शुभ्र साहित्यिक रूप भी पनप रहा था, ग्रोर एक दिन वह फूट निकला—जब मैने 'खूनी' कहानी प्रताप मे भेजी । उन दिनो विद्यार्थी जी जेल मे थे, प्रताप का सम्पादन श्री माखनलाल चतुवदी करते थे । 'खूनी' उन्होने छापी ग्रौर एक काड मुझे लिखा—'खूनी' को पाकर प्रताप निहाल हो गया । कहना नही होगा कि ये पक्तिया पढकर निहाल मैं भी हो गया था ।

लेकिन 'चित्तौड के किले म 'स्वदेश' 'खूनी' ग्रौर दूसरे गद्य जो इस कदर पसन्द किए गए थे, जब हाजी को मेने सुनाए, तो उसने तारीफ तो बहुत बहुत की, पर वह रही कोरी तारीफ । न तो उस तारीफ म उसका ग्रानन्द मिश्रित था, न ग्रात्मीयता । तारीफ सुनकर मुझे ग्रानन्द नही ग्राया, ग्रौर हठात् एक बात मेरे मन म उदय हुई—कि हाजी मुसलमान है ग्रौर मे हिन्दू हूँ । हिन्दू ग्रौर मुसलमानो का जसे धम भिन्न है, राजनैतिक–राष्ट्रीय विचार धारा भी भिन्न भिन्न है । इन पक्तिया मे शुद्ध हिन्दू राष्ट्रीयता भरी थी । इसी से वह हाजी के हृदय को नही छू पाई है । इसी से हाजी को ये उतनी नही रुची । चित्तौड का ध्वस हिन्दुग्रो का ध्वस ग्रौर मुसलमानो की विजय है ।

उसे देखकर हिन्दू 'गाट' कहेगा, किन्तु मुसलमान 'ग [illegible]' [illegible]
भाषा ही मे सही, मुसलमानो का अत्याचार [illegible]
इसलिए हाजी के मन मे इन [illegible]
इस द्वन्द्व को अपनी कलम से दूर रखने का [illegible]
सदी' का दीपावली अंक निकाल रहा था । [illegible]
केवल पाच सात पंक्ति । परन्तु ऐसी, कि [illegible]
मिले ।' हाजी इसी तरह ठाठ की बात करते थे ।

बडी भारी चुनौती थी । पर हाजी को [illegible]
मगरूर नहीं । मैंने वादा किया—'अच्छा ।' और [illegible] गुजराती
अनुवाद उसने स्वयं किया । उसकी [illegible]
पहला अवसर था, जब मेरी कलम [illegible]
अनुवाद को चुपचाप बैठा ताकता रहा, [illegible]
चौंक उठा । बोला, रावन के पास चलना होगा [illegible]
दूसरा कोई न बना सकेगा । इस प्रकार 'दिवाली' [illegible]
बीसवी सदी मे छपी, बाद मे हिन्दी मे [illegible] के प्रताप मे ।

परन्तु 'दिवाली' मे भी देशभक्ति की [illegible] थी । 'स्वदेश' [illegible]
को सुनाई थी, तो उन्हे सुनकर जो उद्‌गार हाजी के [illegible]
मे चौकन्ना तो था ही । एकाएक एक नई बात मेरे मन मे [illegible] और
मुसलमान एक देश मे तो रहते है, कहने को भाई भाई [illegible]
लगी थी । कांग्रेस के मतानुसार हिन्दू मुसलमान [illegible]
परन्तु हाजी के सान्निध्य मे मैंने एक सत्य [illegible]
राष्ट्रीय ऐक्य मुलम्मा है । मैंने तत्काल यह जान लिया, कि राष्ट्र [illegible]
'देश भक्ति' केवल हिन्दू ही मे हैं, मुसलमान [illegible]
भूमि' समझते, माता के समान उसे पूज्य मानते [illegible]
लौंडी भोग्यावस्तु समझते है । इसी से, जब 'स्वदेश' [illegible]
का गजब हाजी के कानो मे गया तो, इन शब्दो ने [illegible]
भाव पैदा किया । गोरी के भारत विजय को, और [illegible]
हम क्रूर आक्रमण, भारी अत्याचार कह सकते है, परन्तु [illegible]
वे उसकी राष्ट्रीय शानदार विजय हैं । वह [illegible]
है, कि हाजी कट्टर मुसलमान था । वह, कहना [illegible] फिर
भी उसकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया ने मुझे शुद्ध साहित्य [illegible] । '[illegible]'
की पंक्तियाँ हाजी के सुनाने से प्रथम मैंने श्री नाथूराम प्रेमी [illegible] सुनाई थी । [illegible]

नाथूराम प्रेमी ने भूरि भूरि प्रशंसा की थी। इसी से मैं बड़े चाव से वे पंक्तियाँ हाजी को सुनाने गया था, पर जब लौटा तो दिल बुझा हुआ था। हाजी ने प्रशंसा की थी जरूर। पर उन पंक्तियों ने हाजी के दिल की कली न खिलाई थी। एक मित्र को आनन्द मे झकझोरा नही, रस मे गोते लगवाए नही, तो साहित्य क्या बना।

ओह, कैसे चमत्कार की बात है, कि हाजी को प्रसन्न करने की भावना ने मेरी विचारधारा का प्रवाह पलट दिया। साहित्यकार को देशभक्ति और राष्ट्रीयता से पृथक उस संसार मे रहना चाहिए, जहाँ मानव आत्मा स्वच्छन्द विचरण करती है। जहाँ देश धर्म जाति समाज काल का कोई भी व्यवधान नहीं है। जहाँ मानव मन बुद्धि और भावना का सहारा लेकर मानव मन से मिलता है। जहाँ एक मन से दूसरे मन मे, एक काल से दूसरे काल मे देश काल धर्म का कुछ भी विचार न कर मनुष्य का हृदय मनुष्य के हृदय मे अखण्ड ऐक्य की प्रतिष्ठा करता है।

अब देशभक्ति और राष्ट्रीयता की रचनाएँ हाजी के सामने रखते हुए मै बगले झाकता था। जैसे मैं कोई चोरी कर रहा हूँ। मेरा मन अब ऐसी रचना प्रस्तुत करने को आकुल व्याकुल हो उठा, कि जिसे सुनकर मेरा यह मुसलमान दोस्त आनन्द से पागल हो उठे, और इसी भावना ने 'अन्तस्तल' की ऐतिहासिक रचना करने की प्रेरणा मुझे दी। मैंने सबसे पहिले लिखा 'अनुताप', पर बहुत दिन उसे योही डाल रखा, फिर 'रूप' और इसके बाद 'दुःख'।

मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया। उसने जब इन्हे सुना, तो हास्य उसके होठो पर फैल गया, और आँखो मे मोती सज गए। उसने टेबुल के कागज एक ओर फेंक दिए, और लम्बी लम्बी श्वास लेने लगा। आप सोच सकते है कि मुझे मेरा प्राप्तव्य मिल रहा था। अपने एक मुसलमान दोस्त का दिल मैंने जीत लिया था, और फिर तो एक के बाद दूसरी रचनाएँ आती ही गईं। 'अन्तस्तल' किसी अज्ञात शक्ति ने मेरे हाथों लिखा दिया, जो हिन्दी साहित्य के इतिहास मे पहला गद्य काव्य था। उसके भिन्न भिन्न स्थानो से अनेक संस्करण निकले। श्रीपद्मसिंह शर्मा ने उस पर भूमिका लिखी, और वह काफी वर्षों तक विश्वविद्यालयो मे एम० ए० मे पाठ्य पुस्तक रही।

बहुत कम इस साहित्य मित्र का सहवास मुझे मिला। साहित्य इसे खा गया, और मेरी आँखो के सामने ही वह मर गया। बडी बडी तीन हवेलियाँ, पास का ५०-६० हजार रुपया हवा मे उडाकर, और ४० हजार का कर्जा अपने जनाजे पर लादकर यह मस्ताना साहित्यकार संसार से चल खडा हुआ। भरी जवानी मे। केवल एक मासिक पत्रिका पर लाखो फूक दिए। जब तक जिया, कला, सौन्दर्य, साहित्य के संसार मे आँसू और हास्य बखेरता रहा।

साहित्य के इस दीवाने की बहुत बाते आज भी याद कर लेता हूँ। कुछ सुन

लीजिए। एक दिन जाकर देखा - [illegible]
तैयार। देखा तो जोर से अट्टहास [illegible]
एक खोजा महिला है, उनसे मिलने। [illegible]
भी मे महिला मित्रो से मिलना बहुत [illegible]
न साथ छोड सकता था, न अनुरोध। [illegible]
बेतकल्लुफी की मुलाकात। परिचय देकर मेरा मित्र [illegible]
करने लगा। बीच मे दोनो मेरी खातिर [illegible]
कोई दस ग्यारह बरस की, किन्तु स्वप्न की परी [illegible]
लेकर धीर गति से आई। प्रथम सम्मान [illegible]
वह मेरी ओर बढी। मै मन ही मन घबरा उठा। [illegible]
पानी पीऊ ? मै 'ना' करने ही को था, कि [illegible]
वे नही पिएँगे तेरे हाथ का छुआ।' और [illegible]
है, वहाँ से आपके लिए मगाती हू। उसने नौकर [illegible]

और लडकी का हँसता हुआ मुह सूख गया। [illegible]
ओर देखा। उसका स्पष्ट अभिप्राय था कि वह मुझसे पूछ रही [illegible]
छुआ न पीकर उस गदे नौकर के हाथ का क्योकर [illegible]
ने मुझसे बिना पूछे ही कह दिया— नही [illegible]
तब वह अप्सरा आनन्द बगारती हुई मेरे निकट आ, [illegible]
लियो मे गिलास उठा मेरे हाथ मे दिया। हाजी [illegible]
उसने खडे होकर अनुताप के स्वर मे कहा—'[illegible]
है, छुआछूत का खयाल रखते होगे—[illegible] मे कभी मैने [illegible]
ही नही। आप ऐसे दरियादिल है। और [illegible]
पहली बार कुछ तोडा है। ऐसी सुन्दर [illegible]
और फिर सब विषय बातचीत [illegible]
हुई, हम तीनो मित्रो की। वह महिला बाद मे मेरी भी परम [illegible]
रही। जब तक मै बम्बई मे रहा मिलता रहा।

एक दिन गया तो छूटते ही बोला [illegible]
अभी मिले है मनीआर्डर से। कुछ देर भी यहा रहे [illegible]
सा जूता पहिना जाय। जूते एक दम दांत दिखा गए है।

और हम दोनो दोस्त जूता खरीदने बाहर [illegible]
ही तीन चार देहाती गुजराती जनो का एक ग्रुप मिल गया। [illegible]
हाजी लम्बे लम्बे डग भरता हुआ उन तक जा पहुँचा। [illegible] और

फिर इधर उधर देखकर कहा—आइए। सबको लेकर वह सामने रेस्टोरेण्ट मे घुस गया। पीछे परिचय दिया—कभी कभी पत्रिका मे लेख लिखते है देहाती साहित्यकार है। और जब रेस्ट्रा से बाहर आए, तो वे पन्द्रह रुपये उड चुके थे। मेहमानो के बिदा होने पर मैने कहा— लेकिन जूता' ?

'जूता अब फिर कभी देखा जायेगा। चलिए अभी सिनेमा देखा जाय।'

'नही भाई, घर जाऊंगा।' और मैने घर की राह ली।

एक दिन जाकर देखा—'रूप' का गुजराती अनुवाद कर रहे है। देखते ही बोले—'खूब आए, चलिए जरा रावल के यहाँ चले। इस पर दो एक चित्र बनाए जाये, नीचे आकर हम ट्राम की प्रतीक्षा मे खडे थे, कि 'आओ, आओ' कहकर वह लपकते हुए एक चलती हुई ट्रेन मे चढ गए। मै भारी आदमी भाग न सका, रह गया। पीछे दूसरी टाम आ रही थी। हाथसे इशारा किया—इस पर आओ। मे पीछे वाली पर चढ गया। अब मजा देखिए, हर स्टाप पर वे खिडकी से सिर निकालकर चिल्लाते है कि आओ। और ज्यो ही मै उतरता हूँ, कि ट्राम चल देती है और मै फिर दौड कर उसी गाडी मे चढ जाता हूँ। दो चार दस बार यह तमाशा हुआ। ट्राम के सहयात्रियो ने समझा, कोई खब्ती है। कुछ ने तो डाट दिया—आप बैठते क्यो नही, नाच क्यो रहे है। परतु क्या किया जाय, दोस्त तो दिल की बागडोर पकडे अगली गाडी मे खीच रहा था। हर बार वह आओ आओ पुकारता था। और अन्त मे एक मोड पर अगली ट्राम उन्हे लेकर गई दूसरी दिशा मे, और मै मुड गया दूसरी दिशा को। जय सीताराम। तीन घण्टा झक मारकर थक थकाकर शाम को घर लौटा। दुबारा जब मिले, तो पूछा-यह क्या हिमाकत थी ? तो हसकर बोले—दो आखे थी, आखे। ठीक वसी ही, जैसी आपने लिखी है, अफसोस आप न देख सके।

लाला लाजपतराय बहुत दिन बाद अमरीका से लौटे थे। उनके आगमन के समाचार से बम्बई हिल गई थी। प्रथम युद्ध समाप्त हो चुका था। समुद्र तट पर आकर देखा— प्रशस्त बालू पर नरमुण्डो का समुद्र लहरा रहा है। लालाजी जिस जहाज मे थे वह तट मे दूर ही समुद्र मे रोक दिया गया था। प्रतीक्षा करने वाले अधीर हो रहे थे। पुलिस सवार डण्डो से व्यवस्था कर रहे थे। उस दिन न भूलने वाले कुछ दृश्य मैने देखे। एक स्थान पर तिलक और एनीबीसेण्ट पास पास कुर्सी पर बठे थे। नर-नारियो का समूह उन्हे घेरे खडा था। श्री तिलक को तो म निकट से देख चुका था। एनीबीसेण्ट को उसी दिन देखा। सगमरमर की निश्चल मूर्ति की भाति घण्टो से वे अचल बैठी थी। कभी कभी उनके होठ हिल उठते थे। तिलक की मूछ नीचे झुककर ओठो को ढाप गई थी। वही सफेद मिरजई और दुपट्टा, लाल पगडी। तिलक कभी कभी विनोद का शब्द कह उठते थे। पर एनीबीसेण्ट की अचल मूर्ति वसी ही बैठी थी। देर तक मै वह

लीजिए। एक दिन जाकर देखा—किसी मित्र [illegible] तयार। देखा तो जोर से अट्टहास करके कहा [illegible] एक खोजा महिला है, उनसे मिलने। साहित्य [illegible] भी मैं महिला मित्रो से मिलना बहुत सकोच [illegible] न साथ छोड सकता था, न अनुराग। [illegible] बेतकल्लुफी की मुलाकात। परिचय देकर मेरा मित्र [illegible] करने लगा। बीच में दोनो मेरी खातिर हिन्दी भी [illegible] कोई दस ग्यारह बरस की, किन्तु स्वप्न की परी [illegible] नेड लेकर धीर गति से आई। प्रथम सम्मान मुझे [illegible] वह मेरी ओर बढी। मै मन ही मन घबरा उठा। [illegible] पानी पीऊ ? मै 'ना' करने ही का था, कि उसकी [illegible] वे नही पिएँगे तेरे हाथ का छुआ।' और [illegible] है, वहा से आपके लिए मगाती हू। उसने नौकर [illegible]

और लडकी का हसता हुआ मन सूख गया। [illegible] ओर देखा। उसका स्पष्ट अभिप्राय था कि वह मुझसे [illegible] छुआ न पीकर उस गदे नौकर के हाथ का [illegible] ने मुझसे बिना पूछे ही कह दिया– नही नही, मै [illegible] तब वह अप्सरा आनन्द बखेरती हुई मेरे निकट आई, [illegible] लियो से गिलास उठा मेरे हाथ मे दिया। हाजी [illegible] उसने खडे होकर अनुताप के स्वर मे कहा—'[illegible] है, छुआछूत का ख्याल रखते होगे [illegible] ही नही। आप ऐसे दरियादिल [illegible] पहली बार कुफ्र तोडा है। [illegible] और फिर सब विषय बातचीत [illegible] हुई, हम तीनो मित्रो की। वह महिला बाद मे मेरी भी परम [illegible] रही। जब तक मै बम्बई मे रहा मिलता रहा।

एक दिन गया तो छूटते ही बोला [illegible] अभी मिले है मनीआर्डर से। कुछ देर भी यहाँ रहे [illegible] सा जूता पहिना जाय। जूते एक दम दात दिखा गए है।

और हम दोनो दोस्त जूता खरीदने भारी बाजार पहुँचे। परन्तु [illegible] ही तीन चार देहाती गुजराती जनो का एक ग्रुप मिल गया। [illegible] हाजी लम्बे लम्बे डग भरता हुआ उन तक जा पहुँचा। [illegible] और

फिर इधर उधर देखकर कहा—आइए। सबको लेकर वह सामने रेस्टोरेण्ट मे घुस गया। पीछे परिचय दिया—कभी कभी पत्रिका मे लेख लिखते है देहाती साहित्यकार है। और जब रेस्ट्रा से बाहर आए, तो वे पन्द्रह रुपये उड चुके थे। मेहमानो के बिदा होने पर मैने कहा— लेकिन जूता' ?

'जूता अब फिर कभी देखा जायेगा। चलिए अभी सिनेमा देखा जाय।'

'नही भाई, घर जाऊ गा।' और मैने घर की राह ली।

एक दिन जाकर देखा—'रूप' का गुजराती अनुवाद कर रहे है। देखते ही बोले—'खूब आए, चलिए जरा रावल के यहाँ चले। इस पर दो एक चित्र बनाए जाये, नीचे आकर हम ट्राम की प्रतीक्षा मे खडे थे, कि 'आओ, आओ' कहकर वह लपकते हुए एक चलती हुई ट्रेन म चढ गए। मै भारी आदमी भाग न सका, रह गया। पीछे दूसरी ट्राम आ रही थी। हाथसे इशारा किया—इस पर आओ। मे पीछे वाली पर चढ गया। अब मजा देखिए, हर स्टॉप पर वे खिडकी से सिर निकालकर चिल्लाते है कि आओ। और ज्यो ही मै उतरता हूँ, कि ट्राम चल देती है और मै फिर दौड कर उसी गाडी मे चढ जाता हूँ। दो चार दस बार यह तमाशा हुआ। ट्राम के सहयात्रियो ने समझा, कोई खप्ती है। कुछ ने तो डाट दिया—आप बैठते क्यो नही, नाच क्यो रहे है। परतु क्या किया जाय, दोस्त तो दिल की बागडोर पकडे अगली गाडी मे खीच रहा था। हर बार वह आओ आओ पुकारता था। और अन्त मे एक मोड पर अगली ट्राम उन्हे लेकर गई दूसरी दिशा मे, और मै मुड गया दूसरी दिशा को। जय सीताराम। तीन घण्टा झक मारकर थक थकाकर शाम को घर लौटा। दुबारा जब मिले, तो पूछा-यह क्या हिमाकत थी ? तो हसकर बोले—दो आखे थी, आखे। ठीक वसी ही, जैसी आपने लिखी है, अफसोस आप न देख सके।

लाला लाजपतराय बहुत दिन बाद अमरीका से लोटे थे। उनके आगमन के समाचार से बम्बई हिल गई थी। प्रथम युद्ध समाप्त हो चुका था। समुद्र तट पर आकर देखा— प्रशस्त बालू पर नरमुण्डो का समुद्र लहरा रहा है। लालाजी जिस जहाज मे थे वह तट से दूर ही समुद्र मे रोक दिया गया था। प्रतीक्षा करने वाले अधीर हो रहे थे। पुलिस सवार डडा से व्यवस्था कर रहे थे। उस दिन न भूलने वाले कुछ दृश्य मैने देखे। एक स्थान पर तिलक और एनीबीसेण्ट पास पास कुर्सी पर बठे थे। नर-नारियो का समूह उन्हे घेरे खडा था। श्री तिलक का तो मे निकट से देख चुका था। एनीबीसेण्ट को उसी दिन देखा। सगमरमर की निश्चल मूर्ति की भाति घण्टो से वे अचल बैठी थी। कभी कभी उनके होठ हिल उठते थे। तिलक की मूछ नीचे झुककर ओठो को ढाप गई थी। वही सफेद मिरजई और दुपट्टा, लाल पगडी। तिलक कभी कभी विनोद का शब्द कह उठते थे। पर एनीबीसेण्ट की अचल मूर्ति वैसी ही बैठी थी। देर तक मैं वह

युगल मूर्ति देखता रहा। न कभी भूला [illegible]। आज [illegible]
देखा, न वसी स्त्री।

वहा से हटकर देखा बीच [illegible]
यह बाजीगर का तमाशा हो रहा है? [illegible]
सी सुन्दरी। छरहरा बदन, मोती की आभा सा रग [illegible]
मे फरफराती हुई। और चादी के समान [illegible]
से बधे बाल, कुछ बिखरे से। मानिया [illegible]
हसकर साथ खडे कुछ तरुणो से बात कर रही थी। [illegible]
पखुडिया हिल रही हो। [illegible]। आज [illegible]
रहे होगे, पर वह सुन्दरी जो आखो मे बसी [illegible]
मे अम्बपाली की अवतारणा उसी के [illegible]
कौन है, तो जवाब मिला—मिसेस जिन्ना। [illegible]
कि एक अग्रेज पुलिस [illegible]
सुन्दरी चाबुक लेकर उनके सामने आयी थी, और [illegible]
जाता है, उस तरह चाबुक दिखाकर उसने उस अग्रेज [illegible]
था। तब यही है वह तेज दर्प और सौन्दर्य [illegible]
जिन्ना उन दिनो हाईकोर्ट मे प्रक्टिस करते थे। [illegible]
खोजा थे, और उनकी यह पत्नी पारसी। [illegible]
कि मिया बीबी मे मेल नही है। बीबी [illegible]
मिया का उन पर बस नही है, इसी से [illegible]
भी आँखो की प्यास न मिटी। वहाँ से लौटा [illegible]
एक ईच्छा है—एक बार जी भर कर मिसेज जिन्ना [illegible]
बहुत देर ठठाकर हसते रहे हाजी। [illegible]
जिन्ना पर लेख था, लेख के साथ जिन्ना के [illegible]
हाईकोर्ट मे चल रहा था। उस पर [illegible]
चित्र भी दिए गए थे। कहने लगे—'[illegible]
सिलसिले मे। और उस मास बीबी मे होगी। [illegible]
आजाता। खट से एक लैटर पेपर लिया, दो पक्तियाँ लिखी और [illegible]
छुडवा दी। कहने की आवश्यकता नही। [illegible]
जिन्ना के साथ धूमधाम से व्यतीत की। बहुत हास्य विनोद हुए। [illegible]
की विद्या मे हाजी बेजोड थे।

एक दिन फोन आया—'[illegible] आया।'

कालबादेवी के उस ओर नारापोरवालो का प्रसिद्ध स्टुडियो था। बम्बई के नामी गरामी फोटोग्राफर थे। जाकर देखता हू—तो हाजी महामना मालवीय को नाच नचा रहे है। ८ १० पोज ले चुके थे—पर मन न भरता था। मालवीय जी जसै निधि निषेध सब भूले हुए थे। करामात ही थी। जब मालवीयजी बिदा हो गए, तो मेने पूछा—कैसे मालवीय जी आपके हत्थे चढे, तो हँस कर कहा—किसी की तलाश मे फोट मे भटक रहे थे। इत्तफाक से जा निकला। इनके मित्र से मुलाकात कराई, और यहा खीच लाया। बस, इस अक मे मालवीय ही चमकेगे, लेकिन आज कागज के लिए रक्खे हुए सब रुपए खच होगए। कुछ परवाह नही। और खीचकर जा बठे एक शानदार रेस्टोरा मे।

रूप की एक एक पक्ति पर चित्र बनाने की उसने तैयारिया की। एक चित्रकार 'रूप' पर कुछ चित्र बनाकर लाया भी था—पर वे उसे पसन्द न आए। उसने कहा—लेखक जो कुछ कह नही सकता है—चित्रकार उसी कमी को पूरा करता हे। उत्तम चित्रकार वही है। इन चित्रो ने तो इस अवगुण्ठनवती रचना सुन्दरी को पशु की तरह नगी कर दिया हे। उसने वे चित्र रद्दी की टोकरी मे डाल दिए थे।

ऐसा फक्कड वह साहित्य का देवता था। बहुत कम ऐसे पुरुष पैदा होते है। फिर साहित्यक और पत्रकार। आज के युग मे, जब साहित्यकार परमुखापेक्षी और पत्रकार मालिक का नौकर है, सब काम मशीन की भाति एक नपी तुली गति से होता है। ये आत्मयज्ञ करने वाले महापुरुष सदैव प्यार और आदर के साथ याद किए जाएँगे।

वह एकाएक मर गया। अ तस्तल के भाग्य फूट गए। अब इस रचना को क्या अलकार मुयस्सर होगा ? हिन्दी के प्रकाशको की दृष्टि निराली है। बहुत कम उनमे साहित्य के सौन्दय को परख सकते हे। उनकी दृष्टि बुर्दाफरोशो की सी है। गुलामी के जमाने म जब कोई खूबसूरत जवान लडकी बाजार मे बिकने आती थी, तो बुर्दाफरोश उसके सौन्दय को इस दृष्टि स निरखता था कि बाजार मे इसके कितने दाम उठेगे। हिन्दी के प्रकाशको की यही दृष्टि है। लेखक अभागे इतने पतित और आत्माभिमान-शून्य हो गए हे कि अपनी अपनी रचना सुन्दरियो का हाथ थामे इन्ही बुर्दाफरोशो के द्वार पर झक मारते फिरते हे और कहते ग्लानि होती हे—उसके एक एक सौन्दय स्थल को उघाडकर दिखाते है। यह मोल भाव का महत्त्व है। यह कमीने पैसे की अमलदारी है। म भी वसा ही अभागा लेखक हूँ। अतएव मुझे यह आशा करने की इच्छा नही है, कि मेरी यह रचना, जिसमे मेरे हृदय का समस्त रस जसा भी कुछ हो, भरा है—प्रकाशको के घर यह न कुलवधू का आदर पाएगी, न उसके अलकार।

इस रचना मे कुछ अभाव रह गए। कुछ नए निबध बनाने थे, और कुछ सशोधन करना था, पर हाजी मुहम्मद के मरने पर जी बैठ गया—कितनी बार चेष्टा की, पर न नया लिख सका—न पिछलो को सुधार सका। अब तक भी तबियत हाजिर ही नही

हुई। अ तस्तल की प्रशसा मे रवी द्रनाथ ठाकुर [illegible]
को पाकर मुझे साहित्य का पुरस्कार मिल गया। [illegible]

हाजी मुहम्मद के मरने के बाद प्र [illegible]
कुल ६१) पारिश्रमिक दिया था, एक प्रकार [illegible]
समय इस 'बावले की बड' का अपना [illegible]
मुहम्मद जिसने देश भक्ति और राष्ट्रीयता स ऊपर [illegible]
पर केन्द्रित किया था, उसे मै न भूल सका। पारिश्रमिक [illegible]
नहीं हुआ।

मेरे समय मे बम्बई मे अ य दो वद्य भी [illegible]
जी त्रिविक्रमजी, दूसरे पडित हरिप्रपन्न जी। [illegible]
प्रक्टिस कर रहे थे। चिकित्सा के [illegible]
और उन्हे प्रकाशित किया। यादवजी त्रिविक्रम [illegible]
ही मैंने अपना चिकित्सालय खोला था। वे मुझ [illegible]
दशन करने जाया करता था। बहुत शीघ्र ही [illegible]
सम्मान करने लगे और मे उन्ही की [illegible]
लोकमा य तिलक जब मृत्युशय्या पर पडे थे तब [illegible]
का यथेष्ठ अवसर प्राप्त हुआ था। लोकमा य [illegible]

वह दिन मेरे जीवन का एक महान दिन था। [illegible]
जुलाई १९२० के अतिम दिन थे। नित्य [illegible]
बम्बई के दनिको मे मुख्य रूप से दो ही [illegible]
के आरम्भ होने वाले असहयोग सग्राम की [illegible]
और दूसरे लोकमा य तिलक की, जो [illegible]
तीन दिन से लोकमा य की हालत [illegible]
वार डाक्टरो के बुलेटिन निकलते रहते थे। [illegible]
इस महापुरुष के जीवन की अतिम [illegible]

बम्बई मे लोकमा य सरदार 'सरदार गृह' [illegible]
महाराष्ट्र खाणावल (अतिथि और भोजन गृह) था। [illegible]
यात्रा की तैयारी भी लोकमा य अपने [illegible]
कर रहे थे। एक चिकित्सक के नाते मे प्राय [illegible]
चिकित्सा एलोपथिक चलती थी। पर [illegible] और या [illegible]
देखने और परामश देने अवश्य जाते थे। ३१ जुलाई की [illegible]
जा सकती। सरदार गृह के कमरे म एक शैया पर लोकमा य पडे थे। [illegible]

तक श्वेत वस्त्र से ढके भारी भारी पलको ने नेत्रो को ढाप रखा था, मोटी मोटी भौहे नीचे को झुकी हुई थी। बडी बडी श्वेत मूछे नीचे झुककर होठो पर छा गई थी। एक दो निकट सम्बन्धी सिरहाने और इधर उधर खडे उनके आदेशो का पालन और क्षण क्षण पर बिगडती दशा को देख रहे थे। कभी कभी लोकमा य बिना पलक उठाए मन्द स्वर से कुछ कहते और पासवाले झुककर सुनते। चिकित्सक अब इलाज नही कर रहे थे। केवल उन्हे कष्ट न हो, यही चेष्टा कर रहे थे। मै बहुत देर से कभी भीतर आता कभी बाहर जाता,कभी उनके एकाध वाक्य को सुनने की चेष्टा करता, कभी एक तरफ जाकर रो लेता था। मेरा खयाल है, और भी कुछ लोग यही कर रहे थे। बात कोई किसी से न करता था। कमरे मे गहरा सन्नाटा था। लोकमा य को बीच बीच मे झपकी लग जाती थी तब उनके कण्ठ से खरखराहट की आवाज आती थी, जो कमरे के बाहर से भी सुनाई देती थी। बहुत बार श्वास ब द होने का सदेह हुआ, लोग दौडे। पर लोकमा य ने नेत्र खोल दिए। आने वाले प्रभात मे ही—पहली अगस्त का ही गाधीजी असहयोग आ दोलन आरम्भ करने की घोषणा कर चुके थे। जालियावाला हत्याकाण्ड और रोलेट ऐक्ट का वार हो चुका था। गाधी जी और उनके सत्याग्रह और असहयोग को लोग समझ न पाए थे। खादी का जन्म भी अभी हुआ ही था। विदेशी वस्तु बहिष्कार पर लोगो का मन ठहरा न था। गाधी जी ने असहयोग का विवरण अमृतसर काग्रेस म पहले पहल दिया था। गाधीजी भी तब तक उसके पूर भाव से अनभिज्ञ थे। फौजी कानून ने पजाब की ओर देश का ध्यान खीचा। इस अ याय के विरुद्ध चारो ओर से ऊँची आवाज उठ रही थी। मोतीलाल नेहरू और स्वामी श्रद्धानन्द लोकमा य, मदनमोहन मालवीय, चितरजनदास, लाजपतराय पर सब की नजर थी। गाधी जी का विरोध सवत्र था। विरोधिया म लोकमा य अग्रगण्य थे। केवल जिन्ना और मालवीय नरम थे। लोकमा य और देशब धु उस समय दो चोटी के नेता थे। देशब धु का दिल असहयोग की तरफ था। लाला लाजपतराय पशोपेश मे थे। पर मोतीलाल नेहरू आगे कदम बढाने को तयार थ।

लोकमान्य का मस्तिष्क इस मुमूर्ष अवस्था मे भी इस राजनीतिक गुत्थी के सुलझान म अटक रहा था। मुझे याद आता है कि ठीक बारह का घटा बजते ही कोई एक असाधारण व्यक्ति कमरे मे आए। सम्भवत वह केलकर थे, परन्तु ठीक ठीक नही कह सकता। उनके आने की सूचना पाकर लोकमा य ने नेत्र खोल दिए। उन्होने कहा—गाधी देश को कहाँ ले जाएगा। ऐसा ही कुछ वाक्य मने सुना। वाक्य मराठी भाषा मे था। बहुत धीमे स्वर मे आगन्तुक महाशय ने बहस न करके बात टालने की ही चेष्टा की। परन्तु सम्भवत वह कुछ सदेश लाए थे। सत्याग्रह और असहयोग पर मे उन दिनो एक पुस्तक लिख रहा था। लोकमान्य के विरोध से म परिचित था इससे

मुझे वह वाक्य याद रहा ।

इसके बाद ही मैं वहाँ से धीरे धीरे चला आया । [illegible]
करते थे और पद शब्द न हो इस प्रकार आते जाते थे । [illegible]
पद वन्दना की थी । सोचता जा रहा था—अब दर्शन न होंगे ।

घर पहुँचते ही सुना कि लोकमान्य नहीं रहे । [illegible]
ने टेलीफोन पर सूचना दी थी । कालबादेवी से [illegible]
एक विक्टोरिया ले उसमें निढाल होकर पड़ गया । [illegible]
इतनी भीड़ हो गई थी कि भीतर जाना सम्भव न रहा । [illegible]
निरुपाय, मैं सामने क्राफर्ड मार्केट के [illegible]
वहाँ आ गए थे । आजकल तो वहाँ और [illegible]
गई है, बाजार बन गए हैं, पर तब यह स्थान [illegible]
मैदान था । इस सारे मैदान में नरमुण्ड ही नरमुण्ड [illegible]
में नंगे सिर लोग कम रहते हैं । मैं [illegible]
चक्कर लगा आता था । पर भीड़ इतनी हो गई कि [illegible]
धीरे धीरे भीड़ में जहाँ तहाँ मृदंग की ध्वनि और [illegible]
लगा । यह गूँज और स्वर बढ़ता ही गया । कुछ लोग तो [illegible]
हो गाने नाचने लगे । पर यह सब गान कीर्तन मराठी में हो रहा था ।

धीरे धीरे दिन निकला और लोगों ने देखा कि [illegible]
मान्य को बैठाया गया है, पुष्पों से आकण्ठ सजाकर । [illegible]
होठों पर छाई हुई मूँछें—जैसे ध्यानस्थ ऋषि हों । [illegible]
लिया सम्मुख आ-आकर मृदंग उफ बजाकर [illegible]
ही रही थी । अब तो नरमुण्डों का समुद्र था । [illegible]
नहीं देखी थी । लोग ऋषि के दर्शन से तृप्त नहीं होते थे । [illegible]
धकेल देता था । बहुत लोग कुचले जाकर बेहोश हो गए ।

कोई दस बजे अर्थी की यात्रा चली चौपाटी की ओर । [illegible]
का खास प्रबन्ध किया गया था । बम्बई के इतिहास में यह प्रथम अवसर था [illegible]
का शवदाह चौपाटी पर हो । जहाँ इस समय लोकमान्य की [illegible]
स्थान पर दाह हुआ था । शवयात्रा को चौपाटी [illegible]
चौपाटी कुछ ही दूर रह गई थी कि पंजाब से लाला लाजपतराय और [illegible]
ने एक स्पेशल ट्रेन से आ अर्थी में कंधा दिया । तब तक [illegible]
पंजाब केसरी एक स्पेशल ट्रेन से ताबड़तोड़ आए थे । तमाम रात चौपाटी पर [illegible]
मेला सा रहा । दूसरे दिन सुबह मैंने जाकर देखा तो दूसरा ही समा बंधा था । [illegible]

बल्लिया बाधकर उस स्थान पर एक घेरा सा बना दिया गया था। सकडो स्त्री पुरुष आबाल वृद्ध आते, फूल फल पसा टका दूध मिष्टान चढाते, माथा टेकते और वहा की एक चुटकी राख यत्न से पल्ले मे बाँधकर ले जाते। बहुत लोग भजन गाते, कीतन करते उस स्थान की परिक्रमा कर रहे थे। बहुत लोग रो रहे थे। बहुत लोग देर तक स्तब्ध भूमि पर सिर टेके निश्चल पडे थे। उन दिनो इसी स्थान पर कुछ मछिहारो की झोपडिया भी थी। वर्षा से बचने के लिए इन झोपडियो मे ठसाठस स्त्री पुरुष भरे खडे थे। इन लोगो की चादी थी। जहा आज लोकमान्य का भव्य स्मारक है–उसके सम्मुख अब तो ऊँचे ऊँचे महलो की एक लम्बी कतार मेरीन-ड्राइव तक बन गई है। उन दिनो ये महल नही बने थे। समुद्र तट भी खुला था। उसी दिन सायकाल एक असाधारण सभा जुडी थी। लाला लाजपतराय की दहाड पहली बार मैंने वही सुनी थी। छोटी छोटी आखो और बडी बडी मूछोवाला वह ठिगना सा आदमी उस दिन उस सभा मे लाखो मनुष्या का केन्द्र बना हुआ था। वह अविरल वाग्धारा वषा रहा था और लोग हिलकिया ले रहे थे। कई दिन तक मे लगातार उस स्थान पर जाता रहा। बहुधा उन बल्लियो को मै स्पश करता, उनके इर्द गिद घूमता—मूक मौन—अपने मानव नेत्रो मे ताजा-ताजा लोप हुई मूर्ति को जसे वहाँ उसी प्रकार समाधिस्थ देखता–वे ही भारी, भारी झुकी हुई पलके सफेद मू छो से ढके हुए होठ, और पीला ऋषियो के समान मुख, आहिस्ता से कह रह थे—गाधी देश को कहा लिए जा रहा है।

सम्भवत रात को बारह बजकर ४० मिनट पर लोकमान्य ने नश्वर शरीर त्यागा और उसी क्षण भारत मे असहयोग यज्ञ का अग्न्याधान हुआ, भारत की महान राजनीति मे नए युग का आरम्भ हुआ। तिलक का उग्र विद्रोह असहयोग की तरलाग्नि मे बदल गया। मुझे याद आता हे तभी मैंने कुछ पक्तिया लिखी थी—

पुण्य पूना मे ध्रुव दशन हुआ, तिलक सुशोभित हुआ देश के भाल पर।
पृथ्वी ने गाम्भीय दिया गरिमाभरा, जल ने हृदय बनाया अपने हाथ से।
विविध विषय व्यापकता दी आकाश ने, चण्डातप ने तेज दिया दुधष अति।
बालारुण ने लाल किया निज रश्मि से, और शारदा हार बनी उस कण्ठ का।
रमा दुपट्टे की आ बठी कोरपर, यम ने पट्टा दिया उसे अमरत्व का।

'सत्याग्रह और असहयोग' की पसिद्धि के कारण मेरा परिचय देश के नेताओ से होने लगा। कहा गया था कि आजके हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद भी उसे गीता की भाति पढते थ। उस पुस्तक के लिखने के कारण मुझे लोग गाँधीवादी समझने लगे थे। गाधीवाद और गाधी दशन का तब नया ही निर्माण हुआ था और मेरी पुस्तक का गाँधीवाद स कोई सम्पक ही न था। मैने तो उसमे सत्याग्रह और असहयोग की स्वेच्छा से अपने निश्चयो के अनुसार व्याख्या की थी। अलबत्ता ये दो शब्द अवश्य गाँधी जी से ही मैने

ग्रहण किए थे। खबर गाधी जी तक पहुची। [illegible]
पूव कथित पुस्तक जिस सस्था से प्रकाशित [illegible]
से था। इस परिचय से एक दिन जमनालाल [illegible]
मारवाडी अग्रवाल सम्मेलन हो रहा है आप [illegible]
उन्होने देना चाहा। मैने कहा—आप आए [illegible]
रुपए देने की जो बात आपने कही है, उसके [illegible]
दिए और हसकर कहा—लिखकर या जुबानी? [illegible]
तय हुआ कि माफी माग लगा, पर उसका [illegible] और
इस प्रकार उस वणिक पुत्र से मिलना [illegible]
मे मैने उन्हे बहुत सताया, बहुत तग किया। [illegible]
उन दिनो नवजीवन का हिन्दी सस्करण [illegible]
शायद बहुत बडा परिचय दिया था। [illegible]
के सम्पादक का प्रस्ताव किया। [illegible]
गई। गाधीजी कहते थे सम्पादक की जगह [illegible]
जब मै सम्पादन करूँगा तो मेरा नाम होना चाहिए। [illegible]
फिर मै गाधीजी से कभी मिला भी नही। परन्तु [illegible]
सभा काग्रेस दोनो ही गाधी के प्रभाव मे आ [illegible]
उसके अगले ही दिन गाधी ने असहयोग [illegible]

देखते ही देखते गाधीवाद भारत पर छा गया। [illegible]
साहित्य पर पडा। अपने कार्यकाल के प्रारम्भ मे [illegible]
का श्री गणेश कर दिया। उस समय [illegible]
मे था। उठो जागो की आवाज सब सुनाई [illegible]
और रात बीत चुकी थी। उसी उद्बोधन [illegible]
राष्ट्र का सूत्र ग्रहण किया। यह [illegible]
द्वारा प्रचारित मातृभूमि व देश [illegible]
भारत राष्ट्रीय सूत्र मे बधता गया, [illegible]
गया। इसकी जो तत्कालीन बडी प्रतिक्रियाए [illegible]
पत्रो का प्रकाशन भी था।

जमनालाल बजाज यद्यपि वर्धा मे रहते थे, [illegible]
परन्तु बम्बई मे भी उनकी गद्दी थी और वे कभी कभी वहाँ आते [illegible]
जब उनका दर्शन लाभ मुझे हुआ तो उन्होने अपने पूज्य पिताजी [illegible]
का निमन्त्रण मुझे दिया। चिकित्सा मैने की। उसके बाद [illegible] मुझे [illegible]

कुछ केस तो ऐसे थे जो न उनके परिवार के थे, न मित्र थे। कोई भी जरूरतमंद गरीब गम्भीर रोगी उनसे आकर कहदे कि मेरे पास चिकित्सा के लिए पैसा नही है—मेरी चिकित्सा आप करा दीजिए तो वे उसकी चिकित्साकी व्यवस्था कर दिया करते थे। ऐसे ही दो चार व्यक्तियो की चिकित्सा का भार मुझे भी सौंपा गया था। उनके चिकित्सा व्यय मे हजारो रुपयो के हमारे बिलो का पेमेंट उनकी गद्दी से होता रहता था। चिकित्सा के लिए मुझे वर्धा भी जाना पडता था। जमनालाल बजाज का घर उन दिनो भारत की पालियामेंट हाऊस कहा जाता था। देश भर के राजनैतिक नेता वहा एकत्र होकर देश के भविष्य का निर्णय करते थे। उनका चौका सबके लिए खुला हुआ था। भोजन के समय सब एक साथ बैठ कर एक समान भोजन किया करते थे। एक बार जब एक रोगी की चिकित्सा के लिए मै उनके यहा ठहरा हुआ था तो मुझे भी उन्होने भोजन के लिए वहीं बुला भेजा। मैं चला गया। आसन बिछे हुए थे और सामने छोटी छोटी चौकिया थाली रखने के लिए रखी हुई थी। सब लोग भोजन के लिए बैठ गए। मै भी बैठ गया। बजाज जी मेरे बराबर ही बैठे थे। भोजन परसा जाने लगा। यद्यपि चौकी और भोजन स्थान अत्यन्त स्वच्छ था परन्तु परोसने वाला व्यक्ति स्वच्छ नहीं था। वह व्यक्ति जब मेरे सामने भी परोसने लगा तब मैने हाथ रोक कर कहा—मै नही खाऊँगा।

परोसने वाला आगे बढ गया। बजाज जी ने आश्चर्य से मेरी ओर देख कर प्रश्न किया—क्यो ?

मै इस व्यक्ति के हाथ का छुआ भोजन नही खाऊगा ?

पर, यह तो गौड ब्राह्मण है ?

तब तो और भी नहीं खाऊँगा।

उन्हे कौतुहल हुआ। और लोगो की भी जिज्ञासा बढ चली। उन्होने फिर प्रश्न किया—पर कारण क्या है ?

मैने कहा – यह व्यक्ति अस्वच्छ है। इसके वस्त्र गन्दे है, इसकी हजामत के बाल बढकर खिचडी हो गए है उसके दातो पर वर्षो का मल जमा हुआ है। यह ब्राह्मण होते हुए भी अस्वच्छ है। मै नही खाऊगा।

मैने भोजन नहीं किया। सब भोजन कर रहे थे, पर मै बैठा सब को अपनी साहित्य चर्चा मे लगाए हुए था। मै एक सप्ताह वहा चिकित्सार्थ रहा, मेरे भोजन का अलग प्रबन्ध कर दिया गया था। एक दिन जमनालाल जी कुछ प्रसन्न थे। मै भी उनके पास बैठा था। उन्होने मुझसे फिर भोजन के सम्बन्ध मे प्रश्न किया—

आपको हमारे भोजन का नियम कैसा लगा ?

मैने उत्तर दिया—बिल्कुल नापसन्द।

क्यो ?

मे हँस दिया। मेने कहा—सेठजी, [illegible]
भोजन किया हे कि ये आपके नोकर क्या [illegible]
बनाती ओर खिलाती हे, वह स्नेह ही [illegible]
एक एक फुलका [illegible]
लो, एक ओर, अभी खाया ही क्या हे, का मधुर आग्रह [illegible]
माता से प्रथक होकर अब मे अपनी पत्नी के [illegible]
से प्राप्त करता हूँ। माता ओर पत्नी दानो ही आत्मा [illegible]
अन्न प्राण हे ओर प्राणो से प्राणो का साथ है। [illegible]
कितना अच्छा है। मेरी बात सुनकर वे गम्भीर हो गए। [illegible]
कहते हे। पर अब मेरा जीवन सावजनिक हो गया है, मेरा [illegible]
दायरे से बाहर की बात है।

उनकी गम्भीरता मे सचमुच ही भोजन [illegible]

इतना कमा कर भी मै कुछ बचा न पाता था। मेरा [illegible]
कि मे अपनी कमाई से एक एक मकान [illegible]
भाइयो को दे दू। जिस मकान मे पिता जी किराया [illegible]
की आय से प्रथम वष म ही खरीदकर उ[illegible] दिया था। [illegible]
खच भी वसे ही थे।

कालबादेवी ओर बम्बइ बाजार म शेयर मार्केट [illegible]
खरीद फरोक्त होती रहती थी। सेठ ओर [illegible]
रहते ओर शयरो के कारबार का मम भी [illegible]
आते ओर जाते हे। गीता प्रसके श्री [illegible]
चय शयर मार्केट के द्वारा ही हुआ। मेरा [illegible]
मे भर लेने को मचल रहा था। [illegible]
जालान के साथ शेयरो की खरीद फरोख्त [illegible]
ऐसे ही सघष ओर उत्कष के दिन बम्बई म [illegible]

परन्तु भद्रसेन को बम्बई का पानी [illegible]
का भी तयार नही हुआ। परिणाम यह हुआ कि उस [illegible]
गई। उसे दिन भर मे सौ डेढ सौ दस्त होने, [illegible]
कर हड्डियो का ढाँचा रह गया। मने पिता जी को [illegible]
कठिनाई से वे उसे सिकन्द्राबाद चलने को राजी कर सके। [illegible]
सिकन्द्राबाद चले गए। पण्डित होमनिधि शमा वद्य उन दिनो [illegible]
करते थे। सिकन्द्राबादसे बुलन्दशहर ११ मीलके अतर पर है। [illegible]

भद्र की चिकित्सा करने का अनुरोध किया। भद्रसेन बुलन्दशहर रह कर उनकी चिकित्सा कराने लगा। मै बराबर पत्र द्वारा उसके हाल चाल मगाता रहता था, परन्तु दो मास तक इलाज करने पर भी कोई विशेष लाभ नही हुआ। मेरे श्वसुर वैद्यराज जी अजमेर से मुझे लिख रहे थे कि भद्रसेन को उनके पास अजमेर भेज दिया जाए। अजमेर का जलवायु बहुत अच्छा था। पडित होमनिधि से निराश होकर दो मास बाद मैने पिताजी को लिखा कि वे भद्रसेन को अजमेर छोड आए। सो वह अजमेर आ पहुँचा। वहा उसकी चिकित्सा की गई। पर कोई लाभ नही हुआ। इसी समय मुझे बम्बई मे यह ज्ञात हुआ कि पूना के एक वयोवृद्ध वैद्य प्रति पूर्णिमा को बम्बई मे एक दिन के लिए आकर केवल सग्रहणी के रोगियो को देखते और पुडिया देते हे। आज तक कोई रोगी उनसे निराशा नही हुआ है। उनकी अमोघ औषधि की प्रशसा सुनकर मैने पिताजी को लिखा कि भद्र को अजमेर से लेकर बम्बई चले आए।

बम्बई आने पर पूर्णिमा के दिन मैं भद्र को लेकर पूना के वैद्यराज के डेरे पर गया। देखा, एक झूले पर बठे एक वृद्ध महाराष्ट्र वैद्य धीरे धीरे झूल रहे हे। उनके चारो ओर कुर्सियो पर सग्रहणी के मरीज बठे हे। बारी बारी से एक २ मरीज उनके सामने रखी कुर्सी पर आता हे हाल कहता है और वे क्षण भर नाडी और पैर देखकर अपनी मुलाकात खत्म कर देते हे। उनके समीप ही एक और सज्जन बैठे थे। उनके सामने लकडी के दो छोटे बक्स रखे थे। जिनमे पुडियाँ भरी हुई थी। एक पेटी पर न० १ लिखा था दूसरी पर न० २। मुलाकात समाप्त करके वे अपने सहयोगी को आज्ञा देते—न० १ अथवा न० २। जिस नम्बर का आदेश होता उसी बक्स मे से ६० पुडिया गिनकर वह मरीज को दे देता और ६०) औषध शुल्क उससे प्राप्त करता। एक छपा हुआ पथ्य औषध सेवन विधि, रहन सहन आदि के सम्बन्ध मे विवरण पत्र भी पुडियो के साथ मिलता था। कहने सुनने की कोई बात नही थी। सब इस नियम को जानते और पालन करते थे। एक दिन मे तीन पुडिया चार चार घटेके अ तर से दूध के साथ लेनी होती थी। १ मास की ६० पुडिया प्रत्येक मरीज को लेनी होती थी क्याकि फिर अगली पूर्णिमा को ही औषध मिल सकती थी।

भद्र की बारी आने पर भी उन्होने उसे उसी प्रकार देखा। मेरा परिचय जानकर उन्होने मुझे सान्त्वना की और मुझसे औषध मूल्य नही लिया। मेरे बहुत कहने पर भी नही लिया। भद्र को न०१ की ६० पुडिया मिली और पथ्य पत्र भी। घर पहुँचकर पथ्य पत्र के अनुसार मैने पहली पुडिया भद्र को २॥ तोले उबले हुए फीके दूध के साथ दी। चार घटे के अन्तर स तीना पुडिया इसी प्रकार दी गइ। पुडियाँ फकाकर २॥ तोला दूध पिला देता था। बीचमे उसे प्यास भूख लगे तो कुछ भी न देने की हिदायत उस पथ्य-पत्र मे थी। केवल अगली पुडिया देने के मध्यकाल मे दो घटे बाद २॥

तोला और दूर मरीज की इच्छा [illegible]
चलती रही और पनि तीन [illegible]
बढा दी गई अर्थात् पहले तीन [illegible]
तीसरे तीन दिन [illegible] चार [illegible]
बढता गया। चमत्कार ही [illegible]
दस्तो म कमी होती गई, पेट का फूलना, [illegible]
सफेद रग, मब कुछ दूर होता गया। [illegible]
जी से औषध लेने गए तो उन्होने [illegible]
पर भी नही माने। कहने लगे--ऐसा विद्वान् और [illegible]
आयु म मुझ से कम होने पर भी [illegible]
बहुत खुश हुए और न० ८ की ६० पुडिया उन [illegible]

परन्तु बिना मृत्य की औषध [illegible]
म एक बात सूझी। मने उस औषध की एक पुडिया [illegible]
औषध मे तीन पाउडर और दो बहुत छोटी [illegible]
से पीसकर पाउडरम मिलाकर रोगो को [illegible]
पृथक पृथक पृथक किया और उनकी जाच की। [illegible]
रहा और उनका मिश्रण अनुमान करता रहा। [illegible]
मुझे दो तीन दिन म ही हो गया था, [illegible]
छटे दिन मेने गोलिया का अनुमानित मिश्रण [illegible]
दवाइया मगाकर गोलिया तयार कर [illegible]
तयार कर लिया। चारो औषधिया [illegible]
रख ली। अब मे अपनी पुडिया [illegible]
लेता था। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा [illegible]
भी उसी प्रकार उसके रोग को दूर कर रहा [illegible]
नही हुआ। [illegible] पूछा तो बताया [illegible]
मेने अभी किसी को बताया नही था। [illegible]
वैद्यराज को भी दी।

तीसरे मास के आरम्भ म [illegible]
खोलकर देखा तो गोलिया की सख्या [illegible]
बढाया गया था। गोलिया तो म बना ही चुका था, [illegible]
लगा। शीघ्र ही वह भी मुझ पर प्रकट हो गया। [illegible]
अमोघ नुस्खे मेरे हाथ म आ चुके थे, और [illegible]

की भाति आरोग्य लाभ कर रही थी। तीसरे महीने के अन्त मे भद्र दिन भर मे ८ सेर दूध, चार पपीते और दो दजन मुसम्मी का रस पीकर हजम कर जाता था और फिर भी भूख भूख चिल्लाता रहता था। नित्य प द्रह बीस रुपए का भोजन उसका होता था।

अब मैने अपने साइनबोर्ड के नीचे एक पंक्ति और लिखवा दी थी—"सग्रहणी के विशेषज्ञ।" फिर क्या था। सग्रहणी के मरीज भी मेरे पास आने लगे और मै वही वैद्यराज की भाति एक महीन की पुडिया उन्हे ६०) मे देने लगा। सभी मरीज आराम होने लगे। सग्रहणी की चिकित्सा म जो व्यवधान बीच बीच मे रोगी को आक्रान्त करते है, उनकी पूरी सावधानी मे रखता था और नवीन वैज्ञानिक चिकित्सा दृष्टिकोण से कभी पानी का एनीमा, कभी मिट्टी की पुल्टिस का प्रयोग भी करा देता था। औषध सेवनकाल से प्रथम दो मास म दूध ही एक मात्र भोजन और पेय था। पपीता और मुसम्मी तो तीसरे चौथे मास रोग कीटाणु नष्ट होने पर धीरे-धीरे दिए जाते थे। जब तक औषध चलती रहती, पानी का सेवन वर्जित था। चाहे जितनी भी प्यास लगने पर पानी नही दिया जाता था। दूध ही पानी का काम देता था। और रोगी धीरे धीरे प्यास और पानी की बात को भूल जाता था। भद्र की चिकित्सा पाच मास तक चली। वह अस्थिपजर का मुर्दाशरीर सम्पूर्ण स्वस्थ मासपेशियो से पुष्ट होकर और भी गोरा और सुन्दर हो गया था। उसके लाल चेहरे पर तेज बरसने लगा था। वह प्रात चार पाच मील समुद्र तट पर घूमकर आने के बाद दिन भर खाने के लिए अपनी भाभी से झगडता रहता था। पिताजी सिकन्द्राबाद लौट गए थे। अब मैने उसे एक्सपोर्ट इम्पोर्ट की एक फर्म मे मनेजरी का पद दिलवा दिया। उसे नया काम मिल गया। उसका ध्यान उस ओर बॅट गया। प्रतिमास तीन सौ रुपए लाकर खुशी खुशी भाभी के चरणो म डाल देता था। भद्र को बचाने का श्रेय औषध को तो था, परन्तु यदि उसकी भाभी उसकी सुश्रुषा मे दिनरात एक न करती तो वह आरोग्य नही होता। उसके मलमूत्र के वस्त्रो को दिन भर धोते धोते वह थकती न थी। उसी की सेवा और तपस्या ने उसे जीवन दिया। कहिए उसने अपने प्राण भद्र को दिए। भद्र इस लोक म लौट आया और उसने उस लोक की ओर मुह किया। अथक सेवा कार्य और बम्बई के पानी ने उसे भी आक्रान्त किया और वह भी सग्रहणी की भाति के एक रोग से ग्रसित हुई।

पत्नी को भी मैने पूने वाले वैद्यराज को दिखलाया। उन्होने उसे देखकर कहा—'चिन्ता की बात नही है। वही औषध इन्हे भी दीजिए।'

मैने कहा—'ठीक है, तब दीजिए औषध।'

उन्होने हसकर मेरी ओर देखा और कहा—'क्या अब आपने मेरी पुडिया बनानी बद करदी है?'

मैने आख नीची करली। परन्तु उन्होने बात को और भी मधुर बनाकर अपने

सहयोगी से कहा—नं० १ की ६० पुड़ि[illegible]

पुड़िया लेकर मैं लौट आया। पर [illegible]
मेरा मन मुझे धिक्कार रहा था कि तूने [illegible]
अधम किया है।'

परन्तु पत्नी को उन पुड़ियाओं से लाभ न [illegible]
उनसे भी लाभ नहीं हुआ। यह तो मुझे [illegible]
को पिला देती थी, सिर्फ [illegible]
बिना औषध की अग्नि से उनका शरीर भस्म होता गया।

एक महीने पीछे भद्र के साथ मैंने उ[illegible]
इलाज करने के लिए भेज दिया। उन दिनों [illegible]
चिकित्सा के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उसी समय मुझे [illegible]
मिला। हम दो पाटनर थे। उसमें प्रत्ये[illegible]
इस राशि का शीघ्र भुगतान मार्फत में हमें करना था। [illegible]
अपने भाग्य पर विचारने लगा। पर[illegible]
उदय हो जाता है। मैंने अपनी जमा पूंजी [illegible]

सिकन्द्राबाद जाकर भद्र ने मुझे पत्र लिखा कि [illegible]
बताया है। भाभी की दशा बहुत गिर गई है। [illegible]
की ट्रेन से सिकन्द्राबाद चल दिया। [illegible]
में हकीम को मन ही मन गालियाँ दिए जा रहा था कि [illegible]
करना नहीं जानता है। मेरी स्त्री का [illegible]
देखकर मेरा मुंह सूख गया। सचमुच [illegible]
माता और भद्र उसकी सुश्रुषा में दिनरात [illegible]
मेरे पास केवल दो सौ रुपए थे। [illegible]
ली। ज्येष्ठ का महीना था। दिन भर [illegible]
स्थान में रखने के विचार से [illegible]
में ले जाकर उन्हें रखा। खस के पर्दे भी लगा [illegible]
तर रखता था। कुएं से पानी खींच कर [illegible]
प्रकार के शारीरिक परिश्रम का मैं अभ्यस्त नहीं [illegible]
दो चार पत्र रुपए मँगाने के लिए लिखे, परन्तु [illegible]
रुपए भी मुझे नहीं मिले जो उस [illegible] पर [illegible] जाता। अम्बई में [illegible]
में राजसिंहासन पर बैठा रुपए को पत्थर के [illegible] समझ [illegible] था, और [illegible]
रुपए की असल कीमत मुझे ज्ञात हो रही थी। [illegible]

दूर बहुत दूर जाने की जल्दी जल्दी तयारी कर रही थी। खस के पर्दे को तर रखने का भी कोई परिणाम नहीं हुआ। उसका अ त समय देख मैं उसे कमरे से घर ले आया। केवल दो मास बीमार रहकर ज्जेष्ठ अमावस १४ जून १९२३ को दिन म १२ बजे भुनसती दोपहरी मे उस देवी ने मेरी गोद मे प्राण त्यागे। दम तोडने से पहिले उसकी वाणी अटक गई थी, पर उसने दृष्टि घुमाकर मुझे देखना चाहा। मै एक तरफ खडा उसके लिए गगाजल मे शहद घोल रहा था। अपना सिर मेरी गोद मे रखने का उसने सकेत किया। मै चम्मच से गगाजल उसे पिलाने लगा, पर वह बाहर निकल आया। मै चम्मच फेक उसके सिरहाने जा बैठा और उसका सिर गोद मे रख लिया। सिर उठाते ही उसे अ तिम श्वास आया। वह तकिया जिसपर उसका सिर रखा था, मैने वर्षो सुरक्षित रख छोडा, और उसी पर सिर रखकर प्राण देने की मेरी दृढ इच्छा थी।

भद्र की लग्न इसी मास तय हुई थी। जब लडकी वाले भद्र को रुपया देने लगे तब हमने उनसे कुछ और दिन रुकने को कहा। ये दिन क्या लग्न विवाह सूझने के थे। परन्तु स्वर्गवासिनी नही मानी। रुपया ले लिया गया और लग्न भी एक सप्ताह मे भिजवाने का उन्होने कन्या के पिता से आग्रह किया। मृत्यु के दिन प्रात ही भद्र की लग्न लेकर नाई आया था। विचार था कि लग्न वापिस करदे। परन्तु उसने नही माना। अपने सामने वस्त्र सजवाए, भद्र की गोद भरी, टीका दिया। मानो अपने इस पुत्र का विवाह करने का उन्हे ही अधिकार है और जल्दी भी है। लग्न की कार्यवाही बहुत सक्षेप मे मैने निबटाई थी, क्योकि स्वर्गवासिनी की तयारिया बहुत तीव्र थी। लग्न के एक डेढ घण्टे बाद ही तो वह भद्र को और हम सबको त्याग कर चल दी !!!

भद्र का व्याह

अपनी सहधर्मिणी का दाह करके लौटने के बाद से मै अपनी पुरानी कोठरी मे शीतलपाटी पर चुपचाप औंधा पडा रहता था। शरीर नगा रहता, और सिर पर खद्दर का एक मोटा अगोछा गीला करके डाले रहता था। मै सोता रहता था या जागता, रोता रहता था या कुछ सोचता, इसका ज्ञान मुझे नही था। पानी की बालटिया खीच खीच कर जो खस के पर्दे मैं तर रखे थे, उसकी थकान मेरे हाथो को अब अनुभव हो रही थी। हाथो मे छाले पडकर गाठे पड गई थी—मुटठी बाधते समय उगलिया दर्द करती थी, सारा शरीर टूटा पडता था, मानसिक और शारीरिक कष्ट और वेदना उस अधेरी कोठरी मे साकार बन कर मुझे आक्रान्त करती रहती थी। मै किसी का अपने समीप आना सहन नही कर सकता था। परन्तु मेरी माता ने तीसरे दिन धीरे से कोठरी का द्वार खोल कर बिना आहट किए भीतर प्रवेश किया और चुपचाप मेरे पास बैठकर मेरे शरीर पर हाथ फेरने लगी। हम दोनो ही विदीर्ण होते हुए हृदयो को सभाल रहे थे। दोनो ही उमडते आसुओ और अवरुद्ध कण्ठ के कारण बोलने मे

देर तक असमर्थ रहे।

अन्त में माता ने कम्पित कण्ठ से [illegible]

चुन लाओ और अनूपशहर गंगा में प्रवाह कर आना। [illegible]

हाथ होना चाहिए बेटे।

इतना कह कर माता चुप हो गई। मैं [illegible]

को एकाएक चुप देख और हाथों की गति [illegible]

देखा, वे धीरे धीरे बेहोश हो रही थीं। जब तक मैं [illegible]

जा गिरी।

कैसा भयानक क्षण था वह। मैं माता [illegible]

उन्हें उठाकर बाहर खुली हवा में लाया। [illegible]

नेत्र खोले। मैं उनसे कुछ भी नहीं कह सका। [illegible]

गोद में लिए बैठा रहा। कुछ देर बाद मैंने देखा कि [illegible]

है और मेरे चलने की प्रतीक्षा में मेरी ओर देख रहे हैं। [illegible]

कपड़े पहिन चुपचाप घर से निकल आया। [illegible]

अस्थियों की एक वस्त्र में पोटली बांधी, और उसे [illegible]

भांति यत्न से छिपा कर अनूपशहर के लिए [illegible]

करने पर भी मैंने किसी को अपने साथ नहीं लिया।

दिन छिप रहा था जब मैं अनूपशहर [illegible]

दबाए पहुंचा। घाट से टूटती हुई गंगा अबाध गति से [illegible]

की ओर धकेलती हुई वहीं जा रही थी। [illegible]

वहां आकर खड़े हो गए। [illegible]

मैं चुपचाप गंगा की गहराई नाप रहा था। [illegible]

कर रही थी। मैंने पंडों का कोई उत्तर नहीं दिया। [illegible]

सावधानी से गंगा की धार में उतर गया। [illegible]

आगे बहुत गहरा है। वे अपनी अपनी धोतियां [illegible]

में घुस कर मेरे सामने खड़े हो गए। मैं रुक गया। [illegible]

भस्म राशि को धीरे धीरे गंगा में बहा दिया। [illegible]

लगा लिए। पंडे कुछ मंत्र बोलते रहे, पर मेरा ध्यान दूर [illegible]

ओर था। पंडे मेरा हाथ पकड़ कर मुझे किनारे ले आए। [illegible]

बहुत देर बैठा रोता रहा। मेरा आत्म [illegible]

बहुत देर तक मैं बैठा रहा, पत्नी की स्मृतियां मेरे सामने आ [illegible]

होने पर एक पंडे ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बलपूर्वक वहां से उठाया। [illegible]

'बाबू मरने वाले के साथ मरा थोड़े ही जाता है। उसका तुम्हारा इतना ही संयोग था।'

उन्होंने लाकर मुझे धर्मशाला मे ठहरा दिया। खाट लाकर मुझे दे दी। बहुत प्रयत्न करने पर भी उनकी लाई पूरिया मै नही खा सका। सब कुत्तो को बाट दी। प्रातःकाल उठ कर मै फिर गगा के उसी तट पर आकर बैठ गया जहा से मेने पत्नी को चिरविदा दी थी। दिन चढते चढते इक्के वाला भी आ पहुचा। उसने मुझे बहुत सात्वना दी। पडो को कुछ रुपए दे मै इक्के मे बैठकर घर लौट आया। पत्नी की अब केवल याद ही मेरे पास थी।

मेने अपने हृदय पर पत्थर रखा, वाणी पर सयम किया, आखो के आसू सुखा डाले और माता की दृष्टि मे अपने को ठीक रख पाचवे दिन पत्नी के सब कर्म निबटा दिए। छठे दिन से भद्र के ब्याह की तैयारी शुरू कर दी। पत्नी का आदेश था कि मेरे बाद भी भद्र का ब्याह टलने नही, ठीक तिथि पर सम्पन्न हो। मै और माता अपने आवेगो को अन्दर कोठरी मे जाकर शान्त कर आते थे और शीघ्र ही बाहर आकर फिर व्यस्त हो जाते थे। मैने ब्याह टालने की इच्छा की तब माता ने नही माना, माता ने जब ब्याह टालने की इच्छा की तब मैने नही माना। एक आख मे आसू और दूसरी मे ब्याह रखकर पत्नी की मृत्यु के १० दिन बाद ही २३ जून १९२३ को भद्र का ब्याह हो गया। एक सप्ताह बाद मै भद्र को लेकर बम्बई चला आया और भद्र की बहू अपने पीहर चली गई।

भाग्य की रेख

बम्बई पहुचकर मैने अपना कारबार समेटना आरम्भ किया। अब बम्बई से मुझे अरुचि हो गई थी। मैने भद्र को आदेश दिया कि सब फानूस फर्नीचर तथा सामान बेच डाला जाय और मकान खाली कर दिया जाय। यह सब तैयारिया हो ही रही थी कि वर्धा से सेठ जमनालाल बजाज का एक पत्र मुझे वहा कुछ दिन चिकित्सार्थ आकर रहने के लिए मिला। उसी दिन मैने बम्बई को नमस्कार किया और वर्धा के लिए रवाना हो गया। मैने भद्र पर ही यहा का भार छोड़ दिया।

मै वर्धा तीन मास रहा। दो रोगी थे। उन्हे देखकर औषध की व्यवस्था मैने करदी और सुबह शाम उन्हे देख लेने के बाद दिन भर मे खाली ही रहता था। यह अच्छा ही हुआ कि मुझे तीन मास तक वर्धा का एकान्त वास प्राप्त हुआ। इससे मै अपने मन को वहा कुछ स्वस्थ कर सका।

एक दिन सध्या समय अपने आवास के उद्यान मे बैठा मै मृत्यु के विषय मे गहन विचारो मे डूबा हुआ था, कि मन्दसौर (मेवाड) से एक परिचित मित्र का तार एक आवश्यक मरीज को आकर देखने का मुझे मिला। सेठ जी से आज्ञा लेकर रात की ट्रेन से मै मन्दसौर के लिए चल दिया। स्टेशन पर मित्र उपस्थित थे। उनके साथ

मे उनके घर पहुचा।

स्नान आदि से निवृत होकर जब मै मरीज [illegible]
तब वे हसने लगे। इसी समय दस लोग और [illegible]
एक युवती बाला भी थी।

मेरे मित्र का सकेत पाकर [illegible]
और कहा—मरीज का नाम लेकर बुलाना [illegible]
निधन से हम सभी को दुख है। पर यह [illegible]
लगन आपसे करना चाहता हू। आप [illegible]
कम पढे लिखे आदमी है, पर तु मेरी बहिन [illegible]

उसने सामने बठी उस युवती [illegible]
बहन—'प्रियम्वदा'।

मै आश्चय से उस युवक को देखता रह गया। [illegible]
सामने कितने व्यक्ति बठ है, उन [illegible]
मेरे आसू उमडे पड रहे थ। मेर [illegible]
बैठा रहा। म चाहता था कि सब जितनी जल्द [illegible]
और म अकेले मे बठकर रुदन करू।

मुझे चुप देख आग तुको मे [illegible]
यह बात तो आप को स्वीकार करनी ही पड़गी, आखिर [illegible]
सेवा करने का है।'

बडी कठिनाई मे म कुछ बोल सका। [illegible]
आपको पत्र द्वारा सूचित कर दूगा, [illegible]

पर मुझे आज्ञा नही मिली। [illegible]
लोग आते और जाते रहे। म अपने मित्र पर [illegible]
क्रोधित था। पर इस समय [illegible]
सरोसामान का। मेरे मित्र ने सब तयारिया [illegible]
पिताजी को तार द दिया कि इस प्रकार [illegible] आप [illegible]
करके आ जाइए। लीजिए, चौथ दिन [illegible]
वालो ने कसर पूरी करदी और उस पुण्य तिथि [illegible]
म्बर १९२३ को मेरा दूसरा विवाह हो गया। [illegible]
आयु १९ वष थी। म नही कह सकता कि उन [illegible]
मिट्टी का ढेला था। मै समझता हूँ म सोता रहा था। [illegible]
देखा कि एक दूसरी नारी की मने अपने आँचल स गाँठ बाँध [illegible]।

बम्बई वापिस फिर मै नही गया। भद्र ने कुछ सामान वही बेच दिया, कुछ दिल्ली ले आया। विवाह के बाद पत्नी सहित कुछ दिन मै सिकन्द्राबाद रहा और फिर वर्धा चला आया। पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी ने मेरी इस पत्नी को मेरे योग्य बनने मे बहुत प्रेरणा दी। चतुर्वेदी जी ही पहिले बाहरी व्यक्ति थे जिन्होने उसके मनमे सस्कृति की भावना का प्रादुर्भाव किया। वर्धा मे चले आनेके बादभी कुछ काल तक चतुर्वेदीजी अपने पत्रो मे उसे खूब पढने और विदूषी बनने की प्रेरणा देते रहे। वर्धा मे एक मास रहा। मेरे दोनो मरीज अच्छे हो गए थे। मै चलने की तयारिया ही कर रहा था कि भागलपुर से एक तार मुझे बुलाने का आ गया और मै पत्नी को मन्दसौर भेज स्वय भागलपुर चला गया।

भागलपुर मे एक सम्मेलन का मुझे सभापतित्व करना था। चार पाच दिन तक सम्मेलन का बडा कार्यभार मुझे उठाना पडा। दूसरे मेरी मानसिक धारा दो विभिन्न दिशाओ मे [illegible] रहती थी। इन्ही कारणो से सम्मेलन की समाप्ति पर मै साधारण रूप से मानसिक ज्वर से आक्रान्त होकर वही भागलपुर मे ही बीमार हो गया। पहले दिन से ही मेरी सज्ञा जाती रही। मै वहा एक बहुत बडे परिवार मे अतिथि था। उन्होने तथा सम्मेलन के सयोजको ने मेरी चिकित्सा मे रात दिन एक कर दिया। भागलपुर के अलावा पटना तथा कलकत्ता से चिकित्सको को बुलाकर कनसल्ट किया गया। [illegible] और मन्दसौर मेरी बीमारी के तार दे दिए गए और पच्चीस ब्राह्मण मेरी प्राण रक्षा के निमित्त पाठ करने लगे।

असल मे मेरे मानसिक घात प्रतिघातो ने मेरे मस्तिष्क के रक्त प्रवाह मे उग्रता उत्पन्न कर दी थी और मेरे मस्तिष्क का समस्त रक्त एक ही स्थान पर एकत्र होकर जम सा गया था। मुझे मस्तिष्क ज्वर का प्रबल वेग हुआ था। मै नही कह सकता कि उस काल मे मेरी किस किस ने क्या क्या चिकित्सा की होगी। क्योकि पूरे २१ दिन तक मेरी [illegible] हुई थी।

[illegible] दिन प्रात काल जब मेरी आख खुली, तो मुझे ठीक ठीक सज्ञा थी। मैने देखा [illegible] मेरी शैया पर कोई लाल दुशाला ओढे बैठा बैठा ही सो गया है। उसका हाथ मेरे माथे पर है। तब तक भी मेरा दिमाग चकरा रहा था, किन्तु मै कुछ विचार सकता था। मै बडी देर तक उस दुशाले पर कढा सुनहरा काम ध्यान से देखता रहा। फिर मुझे नींद आ गई। उसके बाद जब मै पूर्ण रूप से जाग गया तो मेरी प्रकृति ठीक थी और मै सोच विचार सकता था। घडी ने आठ बजाए। घडी का शब्द सुनकर लाल दुशाला हिला और उठ बैठा। मैने देखा मेरी पत्नी है—पीला और उदास मुख। उसने मुझे अपनी ओर देखा तो उसे विश्वास ही नही हुआ कि मैं सचमुच जाग गया हूँ और उसे देख रहा हूँ। दूसरे ही क्षण उसे पहचान कर जब मैने क्षीण वार

मे कहा—तुम कब आ[illegible] ? तो वह [illegible] कर दिया। इसी समय डाक्टर तथा अ[illegible] उनकी तरफ देखकर उन्हे पहचान सका। [illegible] था पर उठ न सका, बडबडाकर रह गया।

डाक्टर मुझे देखने लगे। देखकर [illegible] बिल्कुल नही है। हालत सब तरह अच्छी है। [illegible] हफ्ते मे बिल्कुल ठीक हो जाएगे।

डाक्टर के यह कहने पर सबकी आख [illegible] हास्य खेलने लगा। मैंने उन सब को हाथ जोडकर नमस्कार [illegible] घर भर मे हलचल मच गइ। स्त्रिया मेरी प[illegible] और [illegible] शृङ्गार कराकर मेरे कमरे मे आ[illegible] दिया।

[illegible] और पत्नी ने तो जो अथक सेवा मेरी [illegible] हूँ, परन्तु भागलपुर के अ[illegible] पचासो व्यक्तियो ने मेरी [illegible] भागीरथ प्रयत्न किया उसे सुनकर मे दङ्ग रह गया। [illegible] का इतना प्रिय व्यक्ति हूँ। उन्होने [illegible] हजारो रुपया [illegible] डाला था। पूरे डेढ मास मुझे भागलपुर रुकना प[illegible] स्वस्थ होते ही मैने उन सब से विदा लेनी चाही, पर [illegible] मत नही थे। पर मने उन्हे बताया कि आपकी [illegible] हो गई है, अब कोई शका नही है। चिकित्सको [illegible] सबने अश्रुपूर्ण नेत्रो से मुझे विदा किया। मैं [illegible] निभाकर अहसान करने आया था, पर अब [illegible] पर लादकर जा रहा था। भाग्य भी [illegible]।

कुछ सप्ताह सिकन्दराबाद व्यतीत हुए। [illegible] मन्त का अनुरोधपूर्ण बुलावा आ गया। [illegible] चिकित्सा पर विश्वास था। उनके यहाँ और फिर [illegible] पडा। मेरा स्वास्थ्य ठीक होता जा रहा था और मैं [illegible] था। कुछ दिन बाद मेरी पत्नी भी वही पहुँच गई था।

अन्त मे मध्य प्रदेश का केस पूरा [illegible] को लेकर फिर दिल्ली मे आकर बस गया।

मेरी द्वितीय पत्नी स्त्रीत्व का कोमल अवतरण था। [illegible] अपने स्वर्ण शरीरमे छिपाए पूज्य पूजन निष्ठा से [illegible] की रुग्णावस्था काल मे अपने स्वामी से उसका परिचय और [illegible]।

प्यार के सदैव ही दो रुख हे। हृदय भी, जो प्यार का य त्र है, दो प्रकार का है। एक हृदय वह है जो शरीर ह। वह लगभग चार पाच छटाक का मास पिण्ड हे। वह प्रति क्षण शरीर को जीवन दान करता हे, प्रगति का अविष्ठाता हे। पर तु दूसरा रूप जो हृदय का है, वह आध्यात्मिक है। उसकी कोई रूपरेखा नही। वह भावनाओ की लहरा का एक अदृश्य समुद्र है। प्यार हृदय का मुख्य व्यापार है। पर तु चूकि हृदय के दो अस्तित्व है एक शरीर, दूसरा अ यात्म, इसलिए उसके प्यार के भी दो रूप हे। शरीर प्यार तो शरीर का केन्द्र चाहता ही हे,परन्तु अध्यात्म प्यार आत्मा से सीधा सम्ब ध रखता है। यह सच है कि अध्यात्म प्रेम ही यथार्थ प्यार हे। पर प्रकृति का स्वरूप ही यह हे कि अध्यात्म प्यारके लिए शरीर प्यार का अवलम्ब चाहिए ही। चिर काल से लोग ईश्वर को अध्यात्म वस्तु समझते हे पर तु लागो ने स तुष्ट न होकर उसकी सकडो शरीर और पार्थिव मूर्तिया बनाली हे। उनम ईश्वरकी कल्पना करत हे।

पति और पत्नि मे दो सम्बन्ध, जगत म, खासकर मानव समाज मे अप्रतिम हे। यह कहा जा सकता है कि स्त्रीत्व और पुरुषत्व इन्ही दो के द्रो पर वहअपनी पूर्ण कलाओ का विस्तार करता हे। स्त्री यद्यपि प्रसव करके स्त्रीतत्व की एक प्रबल प्रतिष्ठा रखती है, परन्तु पुरुषत्व की कसौटी तो एक मात्र पत्नीत्त्व ही ह। इसलिए ये सम्बन्ध और सब सम्बन्धो की अपेक्षा वैज्ञानिक है। कहना चाहिए कि स्त्री पुरुष का अस्तित्व ही इन्ही के लिए है। इस सम्ब ध का प्राण प्यार हे जो हृदय का व्यापार है और वह पार्थिव और अध्यात्म दो स्वरूप वाला है। इस साधारण तथा और सम्ब धो म खास तौर पर पति पत्नित्व सम्ब धोमे वह अपने दोना प्रकार का पूरा विस्तार और विकास चाहता है। प्यार के पूर्णोदय के लिए शरीरसे शरीर और आत्मा से आत्मा का सम्मिलन होना ही चाहिए।

पति पत्नी के बाद माता और सन्तान के प्यार का सम्ब ध है। पर तु माता से सन्तान एक बार प्रगट होकर प्रथ क होती है और वह प्रति क्षण प्रथक होती ही जाती है, परन्तु पति पत्नी परस्पर प्रथक म सम्मिलित होते रहते हे और प्रति क्षण एकत्र होत जात है। उनका शरीर और आत्मा परस्पर म प्रविष्ठ होता हे और उस सन्निकटत्व की चरम सीमा यह है कि दोना से एक नया शरीर प्रगट होता है जिसका शरीर और आत्मा, दोना के शरीर और आत्मा के अश से सयुक्त होकर बना है।

मरी प्रथम पत्नी और मैं दोना ऐसे दम्पत्ति थ जो पूर्णाश म परस्पर तृप्त थ। जिस प्रकार अनुकूल ऋतु और जलवायु पाकर पौधा पनपता है, उसी भाति अनुकूल प्रकृति स्वभाव और भावना से दोनो के शरीर और आत्मा घुलमिल कर एक हो गए थे। प्यार वहाँ सफल था। परन्तु अब ता बात भिन्न थी। पहली पत्नी का शरीर तो नष्ट हो गया था। मेरे साथ उसका केवल आ यात्मिक सम्ब ध ही रह गया था। मेरे

आध्यात्मिक हृदय मे पूव पत्नी ही पत्नी थी। वह रूप रेखा और छायाहीन पत्नी जब तब सोते जागते मेरे भीतर बाहर घूमती रहती थी। कभी न मिटने वाली स्मृतियो ने उस अध्यात्मकार को शरीर प्यार के निकटतम ला रखा था। इसलिए स्मृतियो के उदय होते ही उनका पार्थिव हृदय पत्नी के पार्थिव प्यार के लिए हाहाकार कर उठता था, परन्तु शरीर के अवयव से मैं केवल पूव पत्नी को आध्यात्मिक प्यार ही कर सकता था। इसलिए प्यार के प्राणस्वरूप उत्साह, आनन्द, किल्लोल, उल्लास जो होना चाहिए, वह गम्भीर शोक और विकलता मे परिणत हो गया था। पूव पत्नी का प्यार अब मुझे उल्लसित नही करता था, मुझे अति अचिन्त्य गम्भीर शोक मे डुबा देता था।

फिर भी इस मे एक स्थिति तो थी। मै निर्विघ्न भाव से पार्थिव प्यार को सयम से विसजन करके अध्यात्म प्यार को अलक्ष्य पत्नी को देकर गहन आनन्द के आंसू बहाया करता था। मुझ मे एक उत्साह भर गया था, जिसने मानो मुझे विदेह बना दिया था। मेरी जीवन शक्ति पार्थिव शरीर से दूर हट कर मेरी आत्मा म प्रविष्ट हो गई थी और म पूव पत्नी के लिए धीरे धीरे आध्यात्मिक बन रहा था।

परन्तु पत्नी की जगह, कहना चाहिए पूव पत्नी के पार्थिव प्यार के सिहासन पर द्वितीय पत्नी आ बैठी। मेरी आत्मा ने उसका विरोध किया। म सोचने लगा कि कोई भी स्त्री क्या पूव पत्नी के अधिकार को लेगी। म इसी विद्रोह के प्रभाव मे, मानसिक रोग से आक्रान्त हुआ था। पर धीरे धीरे मैं सोचने लगा कि द्वितीय पत्नी केवल कोई स्त्री ही नही, मेरी पत्नी है। यह पत्नीत्व क्या चीज है ? कुछ प्रक्रियाओ के बाद क्या कोई भी स्त्री किसी पुरुष की पत्नी बन सकती है—पत्नी ? इस पत्नी शब्द ने मस्तिष्क मे खूब उपद्रव मचाया। अन्त मे मुझे स्वीकार करना पडा कि द्वितीय स्त्री पत्नी ता है, पर पूव पत्नी का अध्यात्म आकषण मुझे विदेह बना रहा था। मे द्वितीय पत्नी से भय खाता था। परन्तु शरीर, सूक्ष्म अध्यात्म और स्थूल पार्थिव का माध्यम है। मेरा हृदय मुझे जगत से दूर पूव पत्नी के निकट ले जाना चाहता था, पर शरीर रहते मैं पूणतया पूव पत्नी के पीछे न दौड सका। मुझे द्वितीय पत्नी को अपना पार्थिव हृदय समर्पित करना पडा। इससे मुझे बहुत सुख मिला। मानो नवीन जीवन पाया, शरीर पल्लवित हो गया। मै विभोर होकर नवपत्नी के पार्थिव प्यार को प्यासे की भाति पीने लगा।

परन्तु बडी कठिन समस्या आई। यह कसे हो सकता है कि पार्थिव प्यार नव-पत्नी को और आध्यात्मिक प्यार मृतपत्नी को अबाध रूप स मिलता रहे। एक ही ता हृदय है और पत्नीत्व मे जो दो प्रकार का प्यार है उसके केवल दो प्रकार मात्र है, वह वस्तु तो अन्तत एक ही है। नव पत्नी और मृतपत्नी के प्यार मे, कहना चाहिए मेरे पार्थिव और आध्यात्मिक हृदय मे अब घनघोर द्वन्द छिड गया। मे कभी आध्यात्म प्रेम

ने साथ होकर पार्थिव प्रेम से भागने की चेष्टा करता और कभी पार्थिव प्रेम मे सराबोर हो, दीन दुनिया को भूल जाता।

जिस किसी के साथ जीवन की यह दुस्सह कठिनाई चली हो, वही मेरे इस अन्तर्द्वन्द को समझ सकता है। भाग्य ने इस अन्तर्द्वन्द का आभास मुझे इसी बार नही, इससे आगे दो बार और भी दिखाया जब मेरी द्वितीय और तृतीय पत्नी भी पहिली पत्नी की भाति मुझे इस लोक म छोडकर परलोक गत होती गइ। मेरे चचल व्यग्र, आतुर अधीर और असहनशील भावो और मेरे स्वभाव परिवर्त्तन को देख परिजन और मित्रगण परेशान थे।

दिल्ली मे नया जीवन

१९२४ के मध्य मे मैने फिर दिल्ली चादनी चौक मे अपना चिकित्सालय खोला। कहिए मेरा नया जीवन आरम्भ हुआ। मुझे ठीक स्मरण है कि अपना काम जमाने के बाद मे पहिले दिन अपनी कुर्सी पर बैठा ही था कि मेरे हाथ मे जो सबसे प्रथम रोगी आया, वह एक महीने से बिल्कुल बेहोश था और उसके अतिम श्वास चल रहे थे। रोगी के अभिभावक जब मुझे अपने घर उसे दिखाने ले गए तो मुझे रोगी को देखकर बडी निराशा हुई। पर मने उन्हे आशा दिलाई और सोलह रुपए फीस के जेब मे डाल कर अपने औषधालय मे लौट आया। बहुत देर तक म औषध देने के विषय मे विचार करता रहा। अन्त मे मैने भद्र को कुछ औषध दे और सब व्यवस्था समझाकर रोगी के घर भेज दिया और यह भी कह दिया कि पूरा दिन और पूरी रात रोगी के सिरहाने से हटना नही। ईश्वर कृपा से पहिली ही मात्रा ने रोगी को जीवन श्वास प्रदान किया। उसके अव्यवस्थाम सुधर गए। भद्र चौबीसो घटे उसके पास बैठा मेरे आदेशानुसार दवा देता और उपचार करता रहा। अगले दिन प्रात जब मैं रोगी को देखने गया तो गृह स्त्रिया मेरे चरणो मे लिपट गई। मुझे ज्ञात हुआ कि सात परिवारो मे अकेला यही नवयुवक 'रोशन चिराग' है, और मेरी औषध ने उसे मृत्यु मुखसे बचा लिया है। एक मास तक वह युवक मेरी चिकित्सा मे रहा और पूर्ण स्वस्थ हो गया। वह एक सम्भ्रान्त परिवार का प्राणी था इसलिए उसके आरोग्य लाभ ने दिल्ली मे मेरा यश फैला दिया।

बम्बई के प्रवास काल म मैंने 'अन्तस्तल', 'सत्याग्रह और असहयोग' नामक दो कृतिया लिखकर प्रकाशित करायी थी। 'हृदय की परख और 'सत्याग्रह और असहयोग' के गुजराती सस्करण भी प्रकाशित हो चुके थे, अन्तस्तल का मराठी अनुवाद प्रकाशित हो चुका था। पत्र पत्रिकाओ म भी मेरी रचनाओ ने ख्याति प्राप्त की थी। इसी से मे भद्र को अपने साहित्य का प्रकाशन व्यवसाय दे देना चाहता था। बम्बई प्रवास मे मैंने समाज और स्वास्थ्यविषय पर एक क्रातिकारी पुस्तक 'व्यभिचार' लिखी थी, जिसे मेने भद्र के लिए स्वय ही छपाई थी। जब भद्र बम्बई कारबार समेट कर

सिकन्द्राबाद आ गया तो 'सजीवन ग्रन्थमाला' के नाम से उसने अपना [illegible] साथ वहा स्थापित किया। जिसकी प्रथम पुस्तक यही 'व्यभिचार' थी। 'व्यभिचार' का प्रथम प्रकाशन १९२३ मे हुआ था, जिसकी चर्चा कुछ ही दिनो मे [illegible] और उसके धडाधड आर्डर आनेलगे थे। इस पुस्तक की [illegible] मे। परन्तु मेरे भागलपुर जाकर बीमार हो जाने तथा मेरे दिल्ली आकर [illegible] कारण मै भद्र को अपने से दूर नही रख सका। उस [illegible] सजीवन ग्रन्थमाला [illegible] उठालाने का आदेश देकर उसे वही बुला लिया। अपनी स्वर्गवासिनी पत्नी की स्मृति मे मैने एक नया नाम 'तारा साहित्य ग्रन्थमाला' भी प्रचलित किया, [illegible] प्रथम पुस्तक 'बनाम स्वदेश' १९२५ मे प्रकाशित हुई।

मेरा चिकित्सालय आधुनिक ढग से व्यवस्थित था, जिसमे [illegible] कमरा था। मै अपने कमरे मे मरीजो की भीड एकत्र नहीं करता था। [illegible] रुपए फीस लेता था और एक एक मरीज को अन्दर बुलाकर तसल्ली से [illegible] पास प्राय बिगडे हुए केस आते थे। नए सरदी बुखार का कोई मरीज मेरे पास आता ही न था। इसलिए फुरसत मिलते ही मै अपने साहित्य सृजन मे लग जाता था। नीचे मेरा चिकित्सालय था और उसी बिल्डिंग मे ऊपर की मजिल मे मै रहता था। भोजन से निबट कर मै फिर अपने काम मे जुट जाता था। जून [illegible] स्थ्य सम्बन्धी एक मासिक पत्र 'सजीवन' भी निकालना आरम्भ किया [illegible] यह अर्जुन प्रेस दिल्ली मे छपता था, परन्तु शीघ्र ही मैने अपना [illegible] 'सजीवन प्रेस' नाम से खोल लिया था और ६ अक अर्जुन प्रेस मे [illegible] अक से सजीवन' अपने निजू प्रेस सजीवन प्रेस मे ही छपने लगा था। [illegible] कि दिल्ली मे भी मेरी चिकित्सा आय खूब बढ गई थी और उस [illegible] प्रेस और प्रकाशन मे लगा दिया करता था। भद्र [illegible] चाहता था। चिकित्सा व्यवसाय के साथ साथ मैने फार्मेसी विभाग [illegible] जहा समस्त आयुर्वेदीय औषधियो का विधिवत निर्माण होता था और [illegible] मासिक पत्र मे विज्ञापित होकर खूब बिकती थी। पैसा आया [illegible] बात मे सोचने लगता था। पैसा सचय करने की ओर [illegible] यद्यपि इतनी भारी आय मेरी ही अर्जित थी परन्तु मै [illegible] भद्र ही सब देखता भालता और सभालता था। [illegible] पालन होना आवश्यक था। एक दिन सब्जीमण्डी [illegible] बिडला का सदेश आया कि मोटर आती है—आप जरा आइए। [illegible] मनस्वी मदनमोहन मालवीय जी की तबियत ठीक नही है। उनकी [illegible] पर दर्द है। दो चार मिनट बैठने पर ही मालवीय जी ने मुझे बुला भेजा।

रात्रि के नौ बजे का समय था । वे एक आराम कुर्सी पर अनिश्चित भाव से बैठे थे कुछ कागजों को ध्यान से देख रहे थे । मुझे देखते ही उन्होंने कागज रख दिए और अपने रोग का संक्षिप्त वर्णन कर दिया । मैंने कहा—आप जरा पलंग पर लेट जायँ तो पीड़ा स्थान की परीक्षा कर लूँ । वे कुर्सी से उतर कर धरती पर औंधे लेट गए और अपने हाथ में मेरा हाथ लेकर दर्द के स्थान को टटोल टटोल कर बताने लगे । पीड़ा बहुत ज्यादा थी, परन्तु उनकी वर्णनशक्ति और व्यवहार ऐसा था कि मानो किसी दूसरे मनुष्य के दर्द के स्थान को दिखा रहे हैं । मैंने धीरे धीरे कुल पीठ का वस्त्र हटा कर शरीर को देखा । देखते देखते मेरा हृदय भर आया । शरीर में हड्डियों पर सिर्फ चमड़ी मढ़ी हुई थी । मांस का तो नाम भी नहीं था । मैंने मन में क्षुभित होकर कहा—कैसा निर्मम ब्राह्मण है शरीर पर दया जरा नहीं करता । मैंने कहा—महाराज, इस समय विश्राम कीजिएगा ।

उन्होंने तत्काल जवाब दिया—'विश्राम ही तो कर रहा हूँ । ऐसा काम ही क्या है । पर आप इतनी व्यवस्था कर दीजिए कि कल में बाहर आ जा सकूँ । असेम्ब्ली में भी मुझे अवश्य शरीक होना है और दो तीन मिटिंग में भी जाना है । इतने में एक व्यक्ति ने आकर कहा—'हिन्दू सभा से फोन आया है कि क्या आप कृपाकर पाँच मिनट को कल किसी समय एक मीटिंग को एड्रेस कर सकेंगे ?'

मालवीय जी ने कुछ रुक कर कहा—हाँ, मैं जाऊँगा'

सर्दी ज्यादा थी । मैंने कहा—मैं कल बाहर जाने की सम्मति नहीं दे सकता । दर्द के बढ़ जाने का पूरा अन्देशा है ।

उन्होंने बड़े ही लाचार भाव से उत्तर दिया—वह तो है, परन्तु बिना जाए काम भी तो नहीं चल सकता । रात्रि भर का विश्राम मैं अवश्य करूँगा ।

मैंने मन में हँसकर कहा— बड़ी कृपा, रात्रि भर का विश्राम यदि आप करें ।

उन्होंने मुझसे प्रश्न किया—आप क्या औषध भेजेंगे ?

मुझे यह प्रश्न जरा बुरा लगा, परन्तु जब मैंने नुस्खा बताया तो उन्होंने उसके गुण दोषों का ऐसी खूबी से बखान किया कि मैं तो दंग रह गया । मैं चला आया और औषधि भेज दी ।

प्रातःकाल जाकर देखता हूँ कि वे फर्श पर घुटनों के बल पड़े कागजों में डूबे हुए हैं, बदलना शायद सम्भव न था । तबियत का हाल पूछने पर बोले—दर्द बहुत कम है । रात को नींद भी बहुत अच्छी आई । रात तेल की मालिश की थी, अभी फिर कराता हूँ । तेल में क्या क्या औषध है ?'

मैंने तेल का नुस्खा भी बता दिया । कहने लगे—बहुत सुन्दर वस्तु है । धन्यवाद । भोजन क्या करूँ ?

मने पूछा—नित्य क्या खाते हैं ?

कहने लगे—सिफ चावल और धुली हुई मूग की दाल ।

मने कहा—परन्तु आप चावल अभी चार पाच दिन न खा सकेगे ? वे बोले—म चावलो के सिवा कुछ खा ही नही सकता। मेरी पाचनशक्ति और कुछ हज्म ही नही कर सकती । वसे चावल मुझे पस द नही है पर क्या करूँ ।

मने कई खाद्य बताए परन्तु एक भी ठीक नही बैठा ।

मैंने कहा—तब लाचारी हैं । पर तु इससे आपको स्वस्थ होने म देर लगेगी ।

इसी समय एक व्यक्ति उसी गाडी से काशी विश्वविद्यालय के कागज ले आया था । उ होने सब कुछ भूलकर कागजो को देखना शुरू किया । मे बडी देर तक चुप चाप बैठा इस कठोर तपस्वी को देखता रहा । बिल्कुल आवश्यक हड्डियो का यह शरीर जिसके जीवन निर्वाह की स्वाभाविक आकाक्षाएे अतिशय सक्षिप्त हे, जो प्रतिक्षण एक चिन्ता समुद्र मे डूबा रहता है, जिसकी भ्रकुटी मुद्रा सदैव सकुचित और व्यग्र रहती है ? यह सब किसलिए ? एक आत्मत्याग की भावना को लिए हुए कितनी तेजी से इस दीपक का स्नेह जल रहा है, और हम जो इसके प्रकाश मे कुछ देख रहे है कसे निश्चि त बठे है । जो व्यक्ति केवल पाच घटे सोता है, आहार म घी दूध मलाई आदि पुष्टिकर भोजन को न पचा सकने पर सिफ चावल और मूग की दाल पर निभर रहता हे और चोदह घ टे मानसिक परिश्रम जिसका नित्य व्यवसाय है, वह व्यक्ति ५५ से ऊपर अवस्था को प्राप्त करने के कारण प्राकृत रीति से शरीर पोषण करता है । शरीर की स्वाभाविक क्रियाऐ क्षीण हो रही हे । उनका वजन उस समय १२० पाउण्ड से भी कम था ।

एक बार सेठ घनश्यामदास बिडला का बुलावा पाकर मैं उन्हे देखने गया । जाकर देखा—कोठी के बरामदे मे सर्दी की प्रात कालीन सुनहरी धूप मे एक कुर्सी पर बैठा एक सु दर युवक हजामत बना रहा हे । सामने लगभग एक दजन उस्तरे रखे रखे हे और दो तीन आदमी खडे उनकी धार ठीक कर रहे है पर हजामत फिर भी ठीक नही बन रही है । मैने देखकर मन मे कहा - यह देखने योग्य अमीरी हजामत है ।

बिडला ब धुओ ने पतितोद्धार और शिक्षा म अनवरत दान देकर नागा लोगो के हृदय म बडा मान पाया हे । पर इस दान पर मेरा मन मोहित न था । अमीरो के दान दरिद्रो के प्रति प्रेम प्रकट नही करते, दया प्रकट करते है । म पीढियो का दरिद्र व्यक्ति इतना मगरूर हूँ कि अमीरो की दया मुझसे सही नही जाती, वह चाहे कितनी ही सात्विक हो, मेरा मन उसकी प्रशसा नही करता । म प्यार का राजी हूँ, पर प्राय धनवानो के हृदय मे अपने स्त्री पुत्रो के लिए भी वह प्यार नही होता जो गरीबो के हृदय मे होता हे । इसका कारण शायद यही हे कि गरीब परिवार परस्पर त्याग और



١٩٢٢



बलिदान से जीवन व्यतीत करते हे, ओर अमीर सुख और आराम से। मे विश्वास नही कर सकता कि धनिक समाज रूढियो का तिरस्कार करने वाले पुरुषो को पैदाकर सकता हे। मेरे सम्मुख सेठ जमनालाल बजाज का एक आदर्श था पर महीनो निकट रहने से उनकी कमजोरिया मुझ पर प्रकट हो गइ थी।

इस सु दर युवक सेठ के नेत्र ओर होठो पर एक अनथक उल्लास और रईसी की मस्ती थी। त दुरस्ती की लाली और यौवन का तरगित रक्त प्रत्येक चेष्टा मे प्रकट था। देखकर तबियत खुश हो गई। शिष्टाचार के बाद हजामत बनाते बनाते ही बात-चीत शुरू की। बोले—'सुना है, आप योग्य वद्य है। लिखते भी हे। आपके लेख मैं पढता हूँ। पडित नेकीराम शर्मा ने आपकी बहुत प्रशसा की है।' शब्द सरल और मधुर थे। इधर उधर की बातचीतके बाद अपनी धमपत्नी के विषय म कुछ परामश किया। वे क्षय राग से पीडित थी। सुनकर हृदय पर चोट लगी।

इसके बाद उन्होने अपनी शरीर व्यवस्था कह सुनाई। कहा—'और सब ठीक हे, पर गतमास मे ज्वर और सधिवायु हो गया था। क्या कुछ भस्म सेवन करना ठीक होगा।' भस्म सेवन की सम्मति मैने नही दी। क्योकि अकारण नवीन अवस्था म भस्मो के सेवन से शरीर के स्नायु मण्डल की सूक्ष्म ग्रहण शक्ति जाती रहती है। उनकी अल्प मात्रा ओर उग्र प्रभाव भी शरीर की सौम्यता पर आघात करता हे। इसलिए मैने सम्मति दी कि वे कोई मृदु प्रभावयुक्त पाक आदि का सेवन करे, जिससे शरीर यन्त्र अपनी स्वाभाविक शक्ति द्वारा पोषणतत्त्व साधारण खाद्य की अपेक्षा अधिक मात्रा मे ले सके। मैंने बादाम पाक के सेवन की भी सलाह दी। उसी का सवन उ होने किया।

सेठ रामेश्वरदास जी न एक दिन बडी रात को मुझे बुला भेजा। मस्तिष्क चौडा, आगे का भाग उभरा हुआ, ठुड्डी की हड्डी चौडी और सिरका पिछला भाग कुछ ऊचाई लिए हुए। मस्तिष्क शास्त्रवेत्ता की दृष्टि से म जान गया कि वे एक धुन और मिजाज म मस्त व्यक्ति है। बात करने की शैली धीमी, अभिप्राय और सारयुक्त। केवल आवश्यक बात धीरे धीरे होठो स निकलती थी। देखा—कमरा परिजन, दास दासिया से भरा है। सब चिन्तित है और व पलग पर बेचनी से इधर उधर करवट बदल रहे थे। अपनी तबियत का हाल बताते हुए उ होने कहा कि म इधर तीन महीने से दही पर निभर हूँ। सग्रहणी हो गई थी। कईयो की चिकित्सा की, लाभ नही हुआ। आखिर एक अताई का इलाज किया। वह वैद्य नही है - पर पूरा लाभ हुआ है। अब पाचन शक्ति ठीक है। वजन भी बढा है। कल तक का उनका वायदा था। कल वे चले गए है। रात म व गोभी खाली थी सो बडे जोर का पेट म शूल है। उनकी पत्नी भी अत्यन्त व्याकुल थी। उ होने घघट म से कहा— 'गोभी को इत्तीक सो टुकडो हो, वा नेई गजब कर दियो।'

मने पूछा—दस्त हुआ ?

नही, द तीन उल्टिया हुइ है।

मने गम पानी का एनीमा लगाया। दो घटे के उपचार से वे स्वस्थ हुए।

दो दिन बाद मुझे रामेश्वरजी की माता को भी देखने जाने पडा। उन्हे तीव्र शिर शूल था। म सब भूल कर मजे मे गप्प लडाने बठ गया। भरा हुआ शरीर, अवस्था ६० के लगभग। सौम्य मूर्त्ति, अत्यन्त गम्भीर और स्निग्ध वाणी, स्त्री सुलभ विश्वासी हृदय और मातृसुलभ मधुर व्यवहार।

एक दिन प्रात काल एक लम्बे तगडे श्वेतवर्दीधारी सनिक ने चिकित्सालय म आकर मेरा अभिवादन किया। अभिवादन करके उसने अटपटी हिन्दी भाषा म विनय पूवक शब्दा मे कहा—नपाल के राजदूत धर्मविक्रम बहादुर राणा सी० आई० ई० कमाण्डर राणासाहेब का म निजू ड्राइवर हूँ। राणा साहेब डाक्टरी चिकित्सा ही पसन्द करते है परन्तु अब दिल्ली म कोई डाक्टर नहीं बचा जिसे उन्होने ट्राई न किया हो। निराश होकर मने आपकी ख्याति की चर्चा उनसे की। आप हिन्दी के ख्याति प्राप्त लेखक भी है, यह भी उन्ह मने बताया। वद्यो पर उनका विश्वास जमता नही था। मेरे बहुत कहने पर उन्होने आपका लेने मोटर भेजी है। आप तकलीफ करके चलिए।

म चल दिया। अलीपुर रोड पर कमिश्नर लेन मे उस समय नपाल राज्य का दूतावास था। सडक के एक कोने पर छोटा सा मनोरम बगला था। बगला भीतर स बहुत ही सादा ढग से सजा था। उपर जाकर देखा कोई ३८ वष की अवस्था के उज्ज्वल वर्ण तेजस्वी पुरुष साधारण चादर ओढे आराम कुर्सी पर बठे कोई अग्रजी अखबार पढ रहे है। मेरे भीतर कदम रखते ही वे खडे हो गए। मधुर हास्य और अतिशय विनय युक्त शिष्टाचार देखकर हृदय पर प्रभाव पडा। चेहरा सेव के समान रगीन था। आखे छोटी परन्तु अत्यन्त रसपूर्ण, नाक कुछ चपटी, होट उत्फुल्ल और ठोडी की हड्डी जरा फली हुई थी। उन्होने बठते ही मिजाज पूछा।

म हँसकर कहा—मने हमेशा दूसरो के मिजाज की मरम्मत करने का धधा करता हूँ, फिर अपना मिजाज कसे बिगडने द सकता हूँ। आपकी तबियत कसी है, यह फर्माइए ?

यहा की सर्दी तो ऐसी है कि चाहे जितने कपड़े पहिनने पर भी शरीर गर्म ही नही होता।

मैने पूछा—तब क्या वहा न्यूमानिया और टाइफाइड ज्वर नही होते, और गठियाबाय की बीमारिया कम होती है ?

उन्होने कहा—बहुत कम। ये रोग वहा ज्यादा नही होते। हमारे यहा रोग बहुत कम है।

मैने हसकर कहा—तब डाक्टर वैद्य नपाल मे पेट किस तरह भरते है ? इस पर खूब हसी हुई। इसके बाद मैने कहा—आइए, थोडा कष्ट दू। मै जरा आपके फेफड़ो की परीक्षा किया चाहता हूँ, आप जरा लेट जाइए।

वस्त्र खोलकर वे लेट गए। मुझे यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि हृदय और फफड़े जितनी सुन्दर और दृढ अवस्था मे थे, वैसे यहा खूब मजबूत मनुष्य के भी नही होते। छाती और पेट पर एक भी बाल न था। कुल शरीर सगमरमर के समान चिकना और साफ था।

मैने परीक्षा खत्म करके कहा—आप नित्य क्या आहार करते है ?

उन्होने जल्दी से उत्तर दिया--चावल, यही हम लोगो का मुख्य भोजन है।

मैने कहा—आश्चर्य की बात है। हम लोग खूब दाल गेहूँ और तर माल खाने वाले एसे ढीले गुलाम और निस्तेज है और आप नित्य चावल खाकर ऐसी वीर जाति की आन को बनाए योग्य है, जिस पर भारत अभिमान कर सकता है।

इस पर उन्होने हिन्दू नीति के सम्बन्ध मे नेपाल की परिस्थिति वर्णन करते हुए कहा—यह बडी भूल है कि माँसाहार या अन्य पुष्टिकर भोजन करने से शरीर पुष्ट होता है। वीरता, साहस और शक्ति ये चीजे आदर्श और अभ्यास से पैदा होती है। हम अपने देश मे स्वाधीनता प्रेमी है। हमारे कानून भी ऐसे है। यही कारण है कि नपाली वीर है।

मैने कहा—परन्तु यह देखकर दुख होता है कि नपाली बच्चे अग्रेज सरकार के सिपाही होकर सिपाही है। शायद नैपाल उसके बदले मे अग्रेज सरकार से कुछ रुपया लेता है ?

इस पर उन्होने जरा तीखे स्वर मे कहा—नेपाल राज्य प्रतिवर्ष पहली जनवरी को दस लाख रुपए नकद अग्रेज सरकार से लेता है। वे रुपये मै ही दस दस हजार के नोटो के रूप मे लाकर भेजता हूँ। पर यह समझना बडी भूल है कि नैपाल उसके बदले कुछ करता है। जो गोरखा अग्रेजो के सिपाही है - वे नैपाल की तराई मे भारत के निकट ही रहने वाली छोटी जाति के आदमी है, जिनमे बहुत से अस्पृश्य है। ये पेट के नौकर है। नेपाल राज्य इस बीच मे नही है। नैपाल राज्य अग्रेजो का मित्र बना रहने मात्र की प्रतिज्ञा पूरा करने और सीमा निश्चित रखने के बदले यह रकम पाता है।

इसके बाद और एकाध बात कर मै बिदा माग चला आया। वीर जाति के वीर पुरुष की इस मुलाकात पर मन मे बहुत श्रद्धा हुई। इसके तीन दिन बाद राणा साहब स्वय मेरे अस्पताल मे पधारे।

बातचीत मे उन्होने कहा—हम कुछ विद्यार्थी आयुर्वेद सीखने को भारतवर्ष भेजना चाहते है। आप कहे कि कहा भेजे ? हमने जयपुर सरकृत कालेज और दिल्ली के तिब्बिया कालेज मे कुछ विद्यार्थी भेजे थे, पर वे योग्य न बने।

यह बात सुनकर मन मे दुख हुआ। जहा नालन्दा और काशी के विद्यालयो मे पृथ्वी भर के छात्र आकर ज्ञान सुधा पीते थे, वहा आज भारत के युवक योरोप की विद्यापीठो पर दृष्टि जमाए बठे है। परन्तु स्वतन्त्र हिन्दू राज्य अब भी भारत पर वैसी श्रद्धा रखता है। मैने कहा—इतने बडे राज्य के लिए क्या आप यहा से कुछ विद्वानो को ले जाकर अपने यहाँ विद्यालय स्थापित नही कर सकते ? यदि आप ऐसा करे तो चार पाच सौ रुपये मासिक मे दो उत्कृष्ट विद्वान और डेढ दो सौ मे सहायक अध्यापक मिल सकते हैं, जो पाच वर्ष मे कम से कम पचास ऐसे सुयोग्य छात्र तयार कर सकते है, जो समस्त नेपाल राज्य की बहुत कुछ सेवा कर सकते है।

मेरी यह योजना उन्हे बहुत पसन्द आई और उन्होने नेपाल शासन की सेवा मे यह प्रस्ताव भेजने की इच्छा प्रकट की।

राणा साहेब को गजो लम्बी उच्च कोटि की फौजी उपाधियाँ प्राप्त थी। उन्हे अठारह वर्ष से अम्लपित्त का रोग था। जो कुछ खाते, तत्काल खट्टा होकर छाती मे जलने लगता। अन्तत वह उन्हे वमन द्वारा निकालना पडता। वमन के बाद कुछ शान्ति होती। इस प्रकार दस पन्द्रह मिनटमे जितना खाद्य शरीर ग्रहण कर लेता, उसी से उनका वह फौजी शरीर चल रहा था। इनका नकद चार करोड रुपया बैंक आफ इगलैंड मे जमा था और एक लाख रुपया वार्षिक आय की भूसम्पत्ति थी। वतन अलग था। अपने रोग का वर्णन बहुत विस्तार से सुनाते थे—पाखाना कितना आया, कैसा रग था, कितना लम्बा टुकडा था। पेशाब हुआ चार। पहिली बार सुबह ६ बजे चार आउन्स, फिर दस बजे तीन आउन्स, दो बजे साढे तीन आउन्स, ६ बजे चार आउन्स। खाया इतना आउन्स चावल, आधा आऊस दाल, उसमे इतना इतना ग्रेन मसाला। गरज खाना पीना वो लोग हीरे मोती की भाति तोल तोल कर पेट मे ले जाते थे। पथ्य और व्यवस्था की इतनी पाबदी कि दूध मेजर ग्लासमे नापकर लेते। क्या मजाल एक बूंद भी कम हो या ज्यादा। समय का इतना ख्याल कि वायसराय से मुलाकात हो रही है और दूध का समय हो गया, झट नौकर थरमस और मेजर ग्लास लिए हाजिर। तीन चार मील घूमने जाते थे।

मैने तीन वर्ष लगातार उनकी चिकित्सा की। चिकित्सा शुरू करनेमे प्रथम उनके केस का अध्ययन करने के बाद मैंने उनसे कहा कि आपको केवल दूध ही मै पिलाऊगा।

सुनकर वे आश्चर्य मे आ गए। बोले—दूध तो मै चार आउस भी हज्म नही कर सकता।

मैने कहा-चिन्ता न कीजिए। फिर उनसे अच्छी नस्ल की हरियाणा से चालीस गाय खरीदने के लिए कहा।

मेरे कहने पर उन्होंने आदमी भेजकर श्याम वर्ण की चालीस गाये ताजी व्याही खरीदकर मगाई। चालीसो गायो की सानी मे अपनी औषध मिला कर गायो को खिला देता था। दस गायो का दूध दुहकर उसमे अन्य औषध मिलाकर दूसरी दस गायो को पिलाता था। फिर उनका दूध दुहकर उसमे औषध मिलाकर तीसरी दस गायो को पिलाता था। फिर उनका दूध दुहकर उसमे औषध मिलाकर चौथी नौ गायो को पिलाता था। उन नौ गायो का दूध दुहकर उसमे औषध मिला चालीसवी गाय को, जो बिलकुल काली चमडी की थी, पिलाता था। इस चालीसवी गाय का दूध केवल एक उबाल देकर मै राणा साहब को पीने के लिए देता था। औषध प्रारम्भ करने पर मैने भद्र की सारे दिन की ड्यूटी उनके पास लगा दी थी। वह गायो के दूध और औषध देने की पूरी व्यवस्था रखता था और उसने अधिकाश समय उनकी व्यवस्था मे व्यतीत किया। उससे वे भद्र को बहुत प्यार करने लगे थे। पहले दिन उन्होने दो आउस दूध ही सारे दिन मे पिया। वमन नही हुई,हज्म हो गया। दूसरे दिन एक-एक आस बढता गया, हज्म होता गया। अन्त मे वे दिन भर मे अस्सी औस दूध हज्म करने लगे। अस्सी औस दूध हज्म करके वे उछल पडे थे, कहने लगे—२॥ सेर दूध, बापरे!!! आपकी दवा गजब की है।

धीरे धीरे वे भोजन भी हज्म करने लगे। वे परम निरोग हो गए। मै उनका एक आत्मीय सा बन चुका था। परन्तु उनका वजन पच्चीस पौन्ड से अधिक नही बढ सका। उनके शरीर की प्रकृति भी कुछ ऐसी ही थी। अस्सी औस दूध और दोनो समय का भोजन पचाकर उनकी प्रसन्नता का पार न था। उन्होने मेरी प्रशसा नैपालके राज्य परिवार और राणा परिवार मे भी अनेक बार की। उन्ही के अनुरोध पर तत्कालीन नेपाल के प्रधान मन्त्री राणा ने भी मुझे अपनी चिकित्सार्थ कलकत्ता बुलाया था।

दिसम्बर के दिन थे। मुझे नैपाल से पत्र मिला कि प्रधान मन्त्री राणा अपना रोग दिखाने के लिए कलकत्ता पधार रहे है, आप कृपा कर कलकत्ता आइए। मै कलकत्ता गया। प्रधान मन्त्री एक आलीशान महलमे खूब ठाठ बाट से ठहरे हुए थे। गोरखा सैनिकों की पक्तियाँ चारो ओर खडी हुई थी। नौकर चाकरो की भीड इधर उधर व्यस्त भाव से भागादौडी बजा रही थी। ज्योही मेरी कार पोर्टिको मे पहुँची, दिल्ली के कर्नल साहेब और महाराज के पुत्र ने मेरा स्वागत किया। मै ऊपर एक विशाल कमरे मे पहुँचाया गया। सब प्रकार की साजसज्जा से वह कमरा सुसज्जित था। उसमे इक्यावन

कीमती कुर्सिया बिछी हुई थी। जिनमे से पचास पर सम्भ्रान्त व्यक्ति बैठे हुए किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। ५१वीं खाली कुर्सी पर ले जाकर मुझे बैठा दिया गया। मुझे बताया गया कि ये पचास प्रसिद्ध डाक्टर भारत के सब शहरो से महाराज की शरीर परीक्षा के लिए बडी बडी दैनिक फीस पर बुलाए गए है। केवल आप अकेले ही वैद्य राज है जिन्हे कर्नल साहेब के विशेष अनुरोध से बुलाया गया है। कमरे के बीचो बीच एक मखमली राजसिंहासन और उसके समीप ही एक सुनहरी वस्त्र आच्छादित पलग बिछा हुआ था।

इसी समय बन्दूको का गर्जन हुआ और सेवको ने पुकार लगाई—सावधान! महाराज पधार रहे है। द्वार का रेशमी परदा सरका और महाराज दो सेवको का सहारा लिए कमरे मे आते दिखाई पडे। पचासो डाक्टर एक साथ ही उठ खडे हुए और अभिवादन के लिए आधे झुक गए। मुझे क्षण भर कुछ सोचना पडा क्योंकि इस अभिवादन नियम का मै अभ्यस्त नही था। मैने राजपूताने के कुछ विशिष्ट हिज हाइनेसो के महलो मे जाकर उन्हे देखा और उनकी चिकित्सा की है। पर सदैव ही मेरे पहुचने पर उन्होने ही उठ कर मुझे अभिवादन किया था। मै अपनी विचार धारा के कारण अपनी कुर्सी से उठ भी नही सका। मेरी ५१वीं कुर्सी सबके अन्त मे थी। महाराज ने अपने सिंहासन पर पहुँचकर क्षण भर मे ही मुझे कुर्सी पर बैठा देख लिया। उन्होने अपने समीप खडे कर्नल से और अपने ज्येष्ठ पुत्र से प्रश्न किया— यह कौन है?

दिल्ली के शास्त्रीजी है?

ओह, तेजस्वी पुरुष है। पहिले वे ही हमे देखे।

कर्नल मेरे समीप आए। मैंने समझ लिया कि मेरी तन्दुरुस्ती और [illegible] का परवाना मुझे मिलने वाला है। मै अपनी छडी उठाकर [illegible] के लिए उठ खडा हुआ। कर्नल ने मेरे समीप पहुँच कर मेरा पुन अभिवादन किया और कहा—श्री महाराज ने आपही को सबसे प्रथम शरीर परीक्षा का हुक्म दिया है।

मैं मन्त्र मुग्ध की भाति उनके साथ चलकर महाराज के समीप पहुचा। महाराज ने झुक कर मुझ से हाथ मिलाया। उन्होने कहा—आपने मेरे बुलाने पर आ गये [illegible] अच्छा किया है, मेरे लिए कुछ हो सकेगा?

मैंने देखा महाराज की आयु ६० को पार कर रही है। शरीर [illegible] प्रतिक्षण खाँसते है। लुआबदार बलगम निकलता है, [illegible] लिए खडे है। उसमे कष्ट से कफ गिराते है। मैंने कहा—देखता हूँ, श्रीमान [illegible] ही कष्ट हो रहा है। आज्ञा हो तो शरीर की परीक्षा करलू।

सेवको ने उन्हे सहारा देकर पलग पर लिटा दिया। मैने [illegible] लगभग तीस मिनट तक उनकी शरीर परीक्षा की। तमाम छाती [illegible], कफ [illegible] गया,

पेडू पर स नाभि तक फुंसियां उनम पाक और पीप दद और जलन।

आप क्या भोजन करते है ?

केवल सान्द सिका दूध !

कितना ?

चौबीस घ टे म बारह औंस।

दस्त होता है ?

एनीमा से होता है तीन साल से।

और कुछ खाने से क्या होता है ?

तत्काल वमन !

नींद आती है ?

नहीं, कभी आई तो भयानक स्वप्न।

मूत्र ?

एक एक बूंद जल कर उतरता है, खून । सा ।

कफ ?

यह कफ प्राण लेगा। निकलता ही नहीं बहुत चुभाव है।

हाय रे ठाठ !! उस शान और जलाल के भीतर क्या ही भाग्यहीन दुखी घोर मृत्यु का बदी शरीर छिपा बैठा था ! यह प्रतापी पुरुष करोड़ो रुपया और प्राणों का अधीश्वर एक श्वास सुख श्वास लेने, एक कौर अन्न खाने का अधिकारी नहीं।

सब कुछ देख भाल कर मैने अपना निदान, अपनी सम्मति और अपनी चिकित्सा उन्हें विस्तार से बताया। मैंने उनसे कहा कि चालीस काली गायों के पीछे एक गाय का दूध आपको मैं पिलाऊंगा और कण्ठ मे हर वक्त पहिने रहने के लिए बारह पन्नो का हार। पन्ने बड़े से-बड़े एक समान रंग और आकार के होने चाहिए। महाराज को मेरी चिकित्सा पद्धति पसन्द आ गई। उन्होंने हुक्म दिया कि अन्य सब डाक्टरों को फीस और मार्ग व्यय देकर विदाकर दिया जाए और शास्त्रीजी की बताई चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाय। मेरे रहने और मेरी प्रत्येक आज्ञा पालन करने का आदेश दे वे चले गए।

कहना न होगा, दो दो तीन तीन हजार रुपया फीस और मार्ग व्यय का देकर सब डाक्टरों को विदा कर दिया गया। सब डाक्टर चकित और मुझसे नाराज थे। केस मिला तो केवल मुझी को। एक आयुर्वेद के चिकित्सक वैद्य को। उसी दिन कलकत्ते के जौहरियों को एक रंग और एक ही आकार के बाहर पन्नो को जुटाने के लिए आर्डर दे दिया गया। जब जौहरियों को यह ज्ञात हुआ कि दिल्ली के एक वैद्यराज ने चिकित्सा के लिए बारह पन्नो का हार पहनने के लिए श्री महाराज को कहा है तो उन्होंने कीमत ऊंची कर दी। कुछ मेरे पास भी पहुँचे कि आप अपनी पसन्द के पन्ने

खरीदिए, इसमे आपका लाभाश भी रख लिया जायगा। मेने उ ह भगा दिया। गगने दिन बारह पन्नो का हार महाराज के गले म सुशोभित हो गया। भाग्य की बात देखिए कि हार के धारण करत ही रोगी का खामी कष्ट और बतागम थूकने की पीडा बहुत कुछ कम हो गई। उस रात्रि उ ह रातभर स्वस्थ नीद आ.। एक सप्ताह म वहा ठहरा। औषध मेरे पास वहा तयार न थी। अ त म सा व्यवस्था उ ह समझा कर औषध दिल्ली से बनाकर भेजने को कह मैन महाराज से विदा ली।

इसके बाद महाराज जब तक जीवित रहे बराबर वह हार धारण किए रहे। दवी शक्ति ही समझिए कि उनका रोग धीरे धीरे घट कर बहुत कम रह गया था।

राजपुरुषो मे, जो मेरी चिकित्सा म आए, उनमे खरवा नरेश को म कभी विस्मरण नही कर सकता। उनमे राष्ट्र भक्ति भी कूट कूट कर भरी हुई थी। एक बार नरेन्द्र मण्डल के अवसर पर वे दिल्ली आए। दिल्ली पहुँचने पर जब मिलने गया तो देखा एक भारी सा रूईदार काले खद्दर का लवादा ओढे एक वीर पुरुष बठे अखबार पढ रहे है। पहुँचते ही वे खडे होगए। हाथ मिलाया और बातो का तार लग गया। कुछ मिनट मे ही यह बात भूल गई कि किसी राजा के सम्मुख बठकर बात कर रहा हूँ। यह उनकी सादगी और सरल चित्त की करामात थी। कुछ देर बात करके यह बात प्रकट हो जाती थी कि इस व्यक्ति को देशोन्माद है। देशो माद के कारण ही ब्रिटिश सरकार उनसे नाराज भी हुई, पर तु उनकी मस्ती मे जरा भी अ तर नही आया। आयु ४५ वष, शरीर का रग पक्का, आख गूढ आरक्त, म छ घनी, भौं टेढी, चेहरे की तराश मे एक राजपूती बाकपन। जल्दी जल्दी बात करने, हि दी अग्रजी और मारवाडी समान सरलता से बोल सकते थे। शरीर का हाल पूछने पर बताया- गत वर्षों से निर तर कष्ट सहन करते करते शरीर चूर चूर हो गया है। पर अब इस शरीर की चि ता करने की मुझे फुसत नही है। मेरे चि तनीय विषयो का ओर छोर नहा है। मुझे बहुधा ज्वर हो जाता हे। सरदी ज्यादा लगती है। दस्त कई बार जाना पडता है। पाचन शक्ति भी ठीक नही हे। पर मे इधर ज्यादा ध्यान नही देता। आपने क्या कानपुर वाली मेरी स्पीच पढी हे ?

मेने कहा– स्पीच तो मेने नही पढी, पर मौलाना शौकतअली ने अपनी तलवार का जो उपहास किया हे, वह पढा हे।

उन्होने उत्सुकता स पूछा—कसा उपहास ? मौलाना तो अपने प्यारे भाई है, उन्होने क्या कहा है ?

मेने कहा—उ होने कहा है कि राव साहेब राणा प्रताप की जग लगी तलवार को व्यथ चमकाते हे। पर इससे कुछ होगा नही।

बोले—कुछ होगा या नही यह बात कौन जानता है। पर मेरे पास जब एक

वह तलवार है उसे चमकाना मेरे लिए प्रतिष्ठा का कारण है और यह तो मैं सोच ही नहीं सकता कि उसमें जंग लग सकता है।

मैंने बात टालने की गरज से कहा—शायद आपको बोलने में कष्ट हो रहा है, कुछ ज्वरांश तो अभी भी आपको है।

नहीं, कुछ कष्ट नहीं। ऐसा तो सदा रहता है। आप कुछ औषध भेजिए। पर देखना थोड़ी मात्रा से काम न चलेगा, डबल मात्रा भेजना, और भोजन क्या मैं कुछ भी न करूँ। सिर्फ मांस का शोरबा ले लूँ?

मैंने कहा—महाराज सिर्फ दूध और फलों पर ही निर्भर रहें तो उत्तम है।

उसे उन्होंने स्वीकार किया। उन्होंने मुझे साथ एक बात और भी बताई। कहने लगे—उत्तर प्रदेश में मेरा लड़का ब्याहा है। ब्याह के दिन एक स्मरणीय घटना हो गई। लड़के घोड़ों पर सवार शिकार खेलने जंगल में गए। मार्ग भूल गए। विश्राम के लिए जिस ग्राम में गए—गांव का गांव मकान भीतर से बंद करके बैठ गया। सबने समझा कि डाकू हैं। कुल गांव मुसलमान ताल्लुकेदार ही का था। लड़के कुल छः सात थे। जहां के लोग डाकुओं से इस प्रकार भयभीत रहें, वहां के मनुष्यों को कहां तक वीर कहें। उदयपुर राज्य की एक अनसुनी हुई घटना उन्होंने उसी भेंट में मुझे सुनाई थी—जिसके आधार पर मैंने प्रसिद्ध राजपूती कहानी 'दही की हांडी' लिखी है।

उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध साधु बाबा रामनाथ जी काली कमलीवालों को भी मैं नहीं भूल सकता। वे दिल्ली आए। कुछ शरीर पीड़ा हो गई तो मुझे बुलाया। पूरा कद, चौड़ी छाती, तीखी दृष्टि ऐसी कि याद बनी रहती थी। आयु ६५ वर्ष। खूब खाते थे। मृत्यु से सात दिन पूर्व तक तीन पाव अन्न खाते रहे। क्षेत्र में साधुओं के लिए जो भोजन बनता था वही खाते थे। वही बड़े का बड़ा शौक था। कोई खोंचेवाला मिला तो सफाचट ही हुआ रखा था। विना पढ़े थे। शिवाजी के समान केवल अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से विशाल सम्पत्ति के अधिकारी हुए। बड़े निरभिमानी थे। सभा में जाकर जूतियों में बैठते थे और वहीं अपनी नियामतें खाते थे। उनकी नकद सम्पत्ति सात लाख रुपए और जायदाद जमीन कुल बीस लाख थी। वार्षिक आय ७½ लाख थी जो प्राय सभी व्यय हो जाती थी। ४½ लाख रुपए साल तो क्षेत्रों का खर्च था। ९२ जिलों में क्षेत्र थे। २५ हजार रुपए आयुर्वेद विद्यालय और औषधालयों पर प्रति वर्ष व्यय होते थे। ५० हजार रुपए का व्यय सार्वजनिक संस्था जैसे प्याऊ, धर्मशाला आदि पर था। कटारपुर केस में ६० हजार रुपया खर्च किया। गढ़वाल अकाल के समय ४ हजार मनुष्य नित्य भोजन पाते थे। जन्म से खत्री अरोड़े थे। बीस वर्ष की आयु तक खौंचा बेचते थे। जन्मभूमि पंजाब थी। अन्त समय में महामना मालवीयजी का नामोच्चारण करते रहे।

एक अन्य श्रीमन्त की धर्मपत्नी की चिकित्सार्थ दो महीने उनके महलसरा में

रहने का एक बार अवसर हुआ। धमपत्नी चौथी थी या पाचवी, यह अब याद नही रहा। पर वे यथार्थ नाम धमपत्नी ही थी—क्योकि न केवल घर म हिफाजत म रखी ही रहती थी—और किसी इस्तेमाल मे नही आती थी। पत्नी जो खूब त दुरुस्त, मोटी ताजी, लाल सुख कोई २५ साल की युवती थी और उनका रोग केवल यही था कि उनके दिमाग मे कोई ऐसा कीडा घुस बठा था कि वे रईस साहेब से न मीठा बोलती न उन्हे पास फटकने देती थी, वे उनसे घोर घृणा करती थी। उत्तेजित होने पर पीट भी देती थी। पहिले पहल मेरे सामने यह अद्भुत घटना इस भाति हुई कि ज्यो ही मै उनके पलङ्ग के पास रईस साहेब के साथ जा खडा हुआ, और रईस साहब ने पलङ्ग पर पत्नी के पास बठकर मेरा परिचय देकर नब्ज दिखाने को कहा तो पत्नी जी ने तडाक से एक तमाचा रईस साहेब के मुह पर जडा और फिर हसकर मुझसे कहा—देखा, यह बेशर्म बुडढा मेरा हाथ पकडता है। तमाचे का तडाका होते ही मै तो कोठरी से बाहर आ खडा हुआ और इरादा खिसक जाने का था, पर रईस साहेब पर पत्नी के व्यवहार का कुछ भी बुरा प्रभाव न था। वे हसते हुए बोले—देखा, इसका सिर फिर गया है, हमेशा बुडढा कहती है, इसे इलाज के साथ कुछ धमशिक्षा भी होनी चाहिए—पतिव्रत धर्म की। मैंने रईस साहेब के धीरज, खुश अखलाकी और भाग्य को सराहा, और मन ही मन कहा—निस्सन्देह—पत्नी के लिए 'धरम' शिक्षा बहुत ही आवश्यक है।

इन रईस साहेब की आयु ५५ वष के लगभग थी, पर एकदम वृद्ध हो गए थे। दातो की बत्तीसी बिल्कुल बनावटी थी। बाल सफेद, कमर कुछ झुकी हुई, चश्मा पत्नी बार लगाते थे। आठ वष तक सो रुपए रोजकी कोकीन खाकर पुरुषत्वहीन बन गए थे।

इन रईस मे एक गुण यह देखा कि कभी क्रोध न करते थे। [illegible] पत्नी महोदया को नीरोग करने की व्यर्थ चेष्टा की। पत्नी जी का कथन था कि रईस साहब को तुरन्त बम्बई भेज दिया जाय—यहा रहने का कोई काम नही, [illegible] हो जाऊँगी, मुझे कोई बीमारी नही, सिफ इनसे चिढ है। रईस साहब [illegible]—इसका सिर फिर गया है, सिफ मुझे सामने बठा रहने दे और कुछ [illegible]।

एक और राजा साहेब का हाल सुनिए—छोटे से राजा थे, पर [illegible] शहशाह से दो अगुल ज्यादा। रानी साहिबा से [illegible] सिलसिला शुरू हुआ, पहिली मुलाकात दिल्ली के एक होटल मे हुई। दिल्ली मे रानी साहिबा खूब अप-टु-डेट लेडी बनी बेपर्द सबसे मिलती, बाजार मे घूमती और सैर सपाटे करती, परन्तु जब रियासत मे जाकर देखा तो एक और ही नजारा नजर आया। प्रात काल उठकर देखता क्या हूँ कि एक शामियाने को १०–१५ आदमी हाथो हाथ उठाए लिए जा रहे हैं। मैंने पूछा—भाई यह क्या बला है? शामियाना जमीन तक लटक रहा था। नौकरो ने कहा—रानी साहिबा हवाखोरी को निकली है, पर्दे मे जा रही है। ऐसा बेढब पर्दा कही देखा

गया। दोपहर को जब म उनसे मिलने गया, तो पर्दे की चचा चली। कुछ हँसी, कुछ झुझलाई। बोली—ये नही मानते। यहा पद के मारे नाक मे दम है, पराए शहर मे तो ट ह कुछ बुरा नही लगता, पर यहा पद मे निकालते झेपते है। मने कहा—यह हवाखोरी न हुई पदाखोरी ठहरी। राजा साहब फस्टक्लास ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। बाहर के बैठकखाने म कचहरी सजी थी, दिन भर अपराधी और फरियादी टक्कर खाते थे, पर सरकार कचहरी करने की फुसत पाते थे कही शाम को ६ बजे। उसम भी यह कफियत—कि दो मिनट बैठे, पेशकार ने आवाज दी और वे गप से भीतर। दो बाते रानीजी से की और गप से बाहर। पेशकार को हुक्म दिया—मुनासिब हुक्म लिख दो या तारीख बता दो। बस कचहरी खतम। राजा साहेब की उम्र २८ वष की थी, खूब चुस्त तगडे, मूछ सुई की भाति खडी रहती। हर साल २—३ गाव बेच देते थे और तब मौज मजे का खच चलता था। मोटर हाकने का शौक था, पर चलानी आती नही थी, कई बार पेडो म अडा दी। हमेशा हसकर बोलते थे। मगर आसामियो से रुपए वसूल करने का ढग भयानक था। मुहमे भगीसे मुतवाना, मछ उखाडना, कुछ काम इससे भी भयानक और बीभत्स थ, जि ह न कहना ही अच्छा है। खाने की कफियत सुनिए। पहली बार रात्रि को जब खाना मेरे सामने आया तो मे घबरा गया। इतना बडा थाल कि बिना कुर्सी से खडे हुए थाल के दूसरे छोर पर रखी कटोरिया छुई नही जा सकती थी। कटोरिया तो गिनकर देखा ४८ थी। उनमे क्या था यह तो आज तक जान न पाया, यद्यपि थोडा थोडा सभी को चख देखा। मेरे लिए सबसे बडी मुश्किल तो यह आकर पडी कि पता तो था नही कि किसमे क्या है और किस भाति क्या खाना चाहिए। पीछे एक नौकर पखा लिए खडा था, दूसरा बगल म पानी का पात्र लिए खडा था, जो यमदूत यह देखने का खडा था कि कुछ कमी हो तो और लावे। अ त मे साहस करके मैने अट शट खाना शुरू किया, एक पूरी का टुकडा लिया और आख मीच किसी भी कटोरी म डुबा कर मुखदेव के हवाले किया। अजब दिल्लगी थी, कभी तो कोई खट्टा सा टकडा मुह म आ जाता, कभी अचार का, कभी किसी मिठाई या पकवान्न का और कभी तरकारी का। स्वाद खाक भी नही आया—भक मार कर उठ बठे।

दोपहर के खाने म और भी दिल्लगी हुई। मरीजा को देखने महल म गया तो राजा साहेब बोले खाना यही खाइयेगा या वही भिजवाया जाय। मेने सोचा—वहा भिजवाने म शायद कष्ट हो, कह दिया— यही खा लिया जाएगा। बस मेरा यह कहना था कि तूफान बर्पा हो गया—वह दौड धूप मची जैसे भूचाल आ गया हो। सबसे प्रथम ५ ६ नौकरो न मिलकर सामने का विशाल दालान धो डाला। फिर १० १२ आदमी दौडकर खस के बडे बडे पर्दे उठा लाए और विशाल महरावो मे लगा दिए। इसके बाद भिश्तियो की एक बारात आई और उ हे तर कर गई। फिर ५ ६ आदमी कमर

कस, लगे पङ्खा खींचने। तब कहीं राजा साहेब ने उधर चलने के लिए कहा। थाल में उतनी ही कटोरी थी। दिन था सब कुछ दीखता था— पर किस में क्या था यह भी समझ न पडा। राजा साहेब सामने बैठे बात करते चले। बोले—शायद खाना पसन्द नहीं आया। मैने हंसकर कहा—पसन्द क्या, समझ ही नहीं पडता कि किस में क्या है? हम लोग तो दो तीन शाक सब्जी, एकाध दाल खाने के आदी है, आपने इतनी खटपट की, इसे देखकर तो मेरा दिल घबरा गया। राजा साहेब ने इसे तारीफ समझा तो बाँछ खिल गई। बोले—अजी, मैं देहाती रईस हूँ—यहां जगल में मिलता ही क्या है, जो मिला बना दिया गया। मैंने कहा—मगर राजा साहेब, यदि आप मेरे हाथ की बनी एकाध सब्जी खा लें तो मैं शर्त बाँधकर कह सकता हूँ कि फिर आप दूसरी कटोरी पर हाथ न दें। हँसकर बोले—सच? आप यह फन भी जानते हैं? फिर आपने कैफियत दी—४ रसोइए है। एक सिर्फ सब्जी बनाता है, दस रुपए और रोटी कपड़ा पाता है, फी आदमी पीछे एक पाव के हिसाब से सब्जियों में डालने को घी उसे दिया जाता है। मगर देखिए, आप खा ही चुके, स्वाद एक भी नहीं। मिठाइयां बनाने वाला पचास रुपए पाता है, खैर वह कुछ अच्छा है, रात आपने कुछ चीजें खाई होंगी।

पीछे मालूम हुआ, राजा साहेब को उन रसोइयों से कोई मतलब नहीं, उनका तो बावर्चीखाना अलग ही है और वहां की जिन्सों की लज्जत उनके मुसलमान और अंग्रेज यार दोस्त ले सकते हैं, हम जैसे पतली दाल खाने वाले नहीं।

एक रईस साहब से एक यात्रा में ससंग हो गया। बहुत आग्रह से उन्होंने अपने ही साथ भोजन करने का प्रबन्ध किया। सब सामान साथ था, रईस साहेब १० बजे सोकर उठते, १ बजे तक नहाते और २ बजे खाना खाते। रसोइया महाराज तब तक मक्खी मारते बैठे रहते, रोटी क्या होती जैसे कागज पानी में भिगोकर गला दिया हो। दो बजे तक झख मार कर यह खाना मिलता। रईस साहेब बडे तपाक से दो फुल्के खाते, यहां ताबपच खाकर भूखों ही उठ जाते। जल्दी जल्दी जो दो चार फुल्के ज्यादा लेने शुरू किए, तो रसोइए से लेकर कहार तक गोगा मच गया कि क्या देहातों की भांति खाते है, आखिर वहां से खिसक कर जान बचाई।

अब एक और अभूतपूर्व बात सुनिए। एक रानी साहेबा को देखने गया। देख भालकर बैठक में आकर राजा साहब को हालत समझा रहा था। नौकर ने कान में कहा—राणा साहेब (राजा साहेब के श्वसुर) आपसे मिलना चाहते हैं। मैने तुरन्त उठने का उपक्रम किया तो राजा साहेब घबरा कर नौकर से बोले— उन्हें यहीं भेज दो तब तक हम बात भी कर लेंगे। राजा साहेब का यह व्यवहार मुझे कुछ अशिष्ट सा प्रतीत हुआ। राणा साहेब आए। खूब लम्बे, तगडे, गोरे, कोई पचास साला जवान। बाल सब काले। आते ही बोले—'मैने सुना कि आप आए है तो सोचा जरा आपसे समझ ल

कि मुझे क्या बीमारी है, यह किसी के समझ ही मे नही आती ।' म जानता था कि उनकी इच्छा एकान्त मे कुछ कहने की थी, तभी उन्होने बुलाया था । मने कहा–'बहुत अच्छा, दूसरे कमरे मे पधारे, मे देख लेता हू ।' एकान्त होने पर उन्होने जोर से मेरा हाथ पकड लिया और मिन्नत करके बोले—मेरी जान बचाइए, मे आप से किसी भाति बाहर नही हूँ । पूछने पर दास्तान कह सुनाई कि लडकी और दामाद मेरी जान के गाहक हे, मुझे कैद कर रक्खा हे कहते हे सारी स्टेट हमारे नाम लिख दो । एक डाक्टर से परीक्षा करा कर मुझे डरा दिया हे कि तुम्हे दिल की बीमारी है जल्द मर जाओगे । मगर मैं फिकर से मर जाऊँगा–यह समझ नही पडता । म तो शादी करूगा, आप जरा दिल देख दीजिए क्या इसम कोई खराबी हे ? मने देखा और कहा–तन्दुरुस्ती की दृष्टि से आपको कोई रोग नही, आप शादी कर सकते हे । पर यदि आयु और औचित्य को देखे तो इस प्रपच म न फसे, भगवत् स्मरण करे । कहने लगे—शादी करने से क्या भगवत स्मरण नही हो सकता ?

अस्तु, बातचीत करके जब बाहर आया, तो राजा साहेब को परेशान पाया । जाने लगा तो रानी साहिबा ने फिर अन्दर बुलाया और पूछा कि राजा साहेब से क्या क्या बात हुई । मेने बताने से इन्कार किया तो बिगडने लगी । म उठकर चला आया–तो राजा साहेब ने समझाया कि मैं उन्हे विश्वास दिला दू कि वे जल्द मर जावेगे—झटपट स्टेट सम्पत्ति उनके नाम करदे ।

राजपूताने के एक प्रसिद्ध करोडपति सेठ, जो रेलवे के खजान्ची और दीवान बहादुर पदवी धारी थे, उन्होने ६५ वर्ष की आयु म १२ वर्ष की एक कन्या से ५५ हजार रुपए देकर विवाह पक्का किया । यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि कन्या राजपूताने भर मे अद्वितीय सुन्दरी है । उस पर पचो ने विरोध किया तो पाच हजार लागत का एक मकान पचायत को दे दिया । कुछ लोगो ने कानूनी कार्यवाही करनी चाही तो दो लाख के वार बौण्ड खरीद कर अधिकारियो को अनुकूल कर लिया । अन्तत बहुत बखेडा के बाद विवाह हुआ, सेठ जी को गुर्दे का पुराना रोग था । दिल की भी बीमारी थी । मने उन्हे स्पष्ट राय दी थी कि विवाहित जीवन म आपकी जान को जोखिम हे । अन्तत विवाह के पाँच मास बाद सेठजी मर गए । सेठजी के मर जाने के दो ही तीन महीने बाद एक दिन रात्रि को दो बजे बुलाहट पाकर जाकर देखा कि वही बालिका मृत्युशय्या पर दम तोड रही थी, उसे विष दिया गया था ।

एकबार एक बहुत बडे रईस साहेब से उनके बताए हुए समय पर मिलने को गया । उन्हे राजा बहादुर का खिताब था । जाकर सुना—पूजा मे बैठे है । मैं बहुत झल्लाया, फिर यह वक्त ही क्यो दिया था ? मै लौटने को था कि सेवक ने कहा–आप को वही भेज देने का हुक्म है । जाकर देखा एक चाँदी की चौकी पर रेशमी साडी

पहने बठ हे, जरी के काम की गोमुखी हाथ म हे। मामने दजा चादी के पात्र फल रहे हे। उनमे सोने और जवाहरात की जडी मूर्त्तिया हे। मामने कोई खुला पत्रा या पुस्तक खुली धरी हे। धूप का सुगधि वत धुआ उठ रहा हे। सामन की कुर्सी पर बठन का सकेत कर मुझसे बातचीत छेड दी। बातचीत कोई खास न थी, गपशप थी। मने कहा भी कि फिर आजाऊँगा, पर बोले—नही, बठिए। निदान गपशप और सध्या व दन साथ साथ चलने लगे। बीच बीच मे वे नाक पकड कर प्राणायाम कर लेते। कभी आच मनी से जल पी लेत। फिर इधर उधर की बात भी कर लेते और फिर स्तोत्र बडबडाने लगते। गरज घण्टे भर तक यही कलियुगी सन्ध्या देख कर मे चला आया।

एक बार दिल्ली से अजमेर जा रहा था। झझट और व्याघात से बचने की गरज से ऊपर की सीट पर बिस्तर जमा कर रेल मे सो गया। जब गाडी चलने लगी ता दो आदमा डिब्ब मे घुस आए। मै मुह फेरे सोता रहा। अब जो उन दोनो म फूहड बकवाद, गाली गलोज हाथापाई चलती हे तो नाक मे दम आ गया। बोतल खुली और चढाई जाने लगी। म रजाई मे झखाबावल सुन रहा हूँ और कुढ रहा हूँ कि कोन बहूदे लफगे आ गए। अबे तबे—गाली गुफ्तार तो साधारण बात थी। एसा फोश बकते थ कि क्या कहा जाय। तीसरा कोई भलामानस सो रहा हे— इसका उन्हे जरा भी ख्याल न था। सुबह हुई तो म उठकर नीचे की सीट पर आ बठा, और घूर घूर कर उन दोनो गुण्डा को देखने लगा। एक ने सिगरेट पेश किया और नाम पूछा। मन धन्य वाद सहित अस्वीकार कर परिचय पूछा। देखने म खासे सम्पन्न ठाठ बाट कपडेलत्तो से लस। परिचय पूछा तो मालूम हुआ कि एक अमुक राज्य के प्राईम मिनिस्टर हे और दूसर उसी राज्य के कमाडिग जनरल। मन हँसकर कहा—आप दोना ही सज्जन मरी बद गुमानी को क्षमा करे। आपकी रात भर की धूम धाम से तो मने कुछ और ही अनुमान लगाया था। इस पर झप कर बोले—अजी, हम जिगरी दोस्त हे। दूसरा झट पहले की जाघ पर हाथ मार कर बोला—जनाब, यह मेरा साला होता हे।

एक मित्र राजा साहब की एक मजेदार बात भी सुनिए— रात का राजा साहब के बराबर के कमरे मे ही सोना हुआ। सुनता क्या ह—किसी ने कहा अब राजू, एक उतार। थोडी देर म —राजू, दो डाल। फिर थोडी दर म एक उतार। कुछ देर बाद—दो डाल।

मे परेशान। यह 'एक उतार दो डाल' क्या माने? रात भर यही होता रहा। नीद हराम हो गई। सुबह पूछा— उस कमरे म कौन था? बोला—राजा साहब थे। राजू किसका नाम हे? मेरा। यह 'एक उतार दो डाल' का क्या मामला था? तब उसने भेद खोला। कहा—राजा साहेब को जुकाम हो गया था—जब गर्मी लगती तब व रजाइया उतरवाते, सर्दी लगती तो डलवाते थे। इस भाति रजाइया डाल उतरवा रहे

थे। मैने हसकर कहा--यह खूब रही।

एक बार बिहार के एक भारी अमीर महाशय के यहा जाना हुआ। पत्नी साथ थी। मार्ग से तार दिया था कि सपत्नीक आ रहा हू। स्टेशन पर देखा—अमीर महोदय, उनके कामदार और ८-१० आदमी हाजिर है। फीनस मे पत्नी बैठी, मोटर मे हम लोग और गाडी मे सामान यद्यपि हमलोग मय सामान के इतने थे कि एक इक्के मे समा सकते थे। कोठी पर पहुच कर देखते है तो फाटक से कोठी तक कनात खडी है। बरकन्दाज और सिपाही वर्दी पहने कनात की तरफ मुह और रास्ते की तरफ पीठ किए खडे है। कोठी के कई कमरे अनावश्यक सामग्री से ठसे पडे है। पत्नी ने कहा—मैने आपके साथ आकर इनको व्यर्थ ही इतना कष्ट दिया—कहा हम दो प्राणी, सीधे सादे, जो जरूरत होने पर बिना नौकर सेवक महीना गुजार दे और कहा यह दर्जनो आदमियो की दौड धूप। चार दिन रहना हुआ। खाने पीने की चीजो की गिनती नही, वह दौड धूप कि नाक मे दम आ गया--और फिर भागते ही बना। बनारस मे दो दिन रह—दशाश्वमेध पर स्वच्छन्द स्नान किया तो मन हल्का हुआ। उन रईस साहेब की तीन पत्निया थी एक धर्म पत्नी, जो अलग रहती थी—वे चिररोगिणी थी दूसरी अंग्रेज महिला, तीसरी—एक और रमणी, सन्तान कन्या मात्र। रईस महाशय अतिशय मिलनसार देशभक्त और सुजान। परन्तु वैयक्तिक जीवन यह।

'सजीवन' मासिक पत्र के पाठको की जानकारी के लिए महात्मा गाधी के स्वास्थ्य के विषय मे मैने गाधी जी को एक पत्र लिखा। उस पत्र का अभिप्राय यह था—

'आप शरीर से आवश्यकता से अधिक दुबले है, तिस पर आप बार बार लम्बे उपवास करते है। आपका भोजन भी उतना है कि जिससे किसी तरह जीवन धारण मात्र हो सके। ऐसी दशा मे पोषक तत्त्व आपके शरीर मे बहुत ही कम पहुचता है। फिर हद से ज्यादा काम आपके मस्तिष्क और शरीर को करना पडता है। खासकर रेल की और निरन्तर यात्राओ मे सब तरह की अशान्ति और असुविधाओ एव जल वायु के बिल्कुल अनियमित परिवर्तन के होते रहने पर भी शरीर और मन निरन्तर कार्यभार से दबा रहता है। ऐसी दशा मे आयुर्वेद विज्ञान की दृष्टि से इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया जा सकता है कि आपको अच्छी नीद किस तरह आती है और आपका स्वभाव चिडचिडा और क्रोधी क्यो नही होगया है। क्या आप यह लिखनेका कष्ट करेगे कि आपको नित्य कैसी नीद आती है और आपके स्वभाव मे क्रोध या चिडचिडा पन बढ रहा है या नही इसके सिवा आप यह भी लिखे कि मूगफली जैसी निकम्मी और तमोगुणी वस्तु खाकर आप किस तरह सतोवृत्तियुक्त, शान्त और अध्यवसायी रह सके है। मूगफली तो बहुत ही उग्रवीर्य, विरोधक चित्त को भडकाने वाली और दिमाग मे खुश्की करने वाली है।

सेठ जमनालाल बजाज जी के पास वर्धा मे चार पाच मास रहने के अवसर म विनोबा भावे को मे नजदीकसे देख चुका था । उनका उदाहरण मैने महात्मा जी को यहा दिया कि वे मूगफली खूब खाते हे और उ हे मैने क्रोधी और तत्काल उत्तजित होने वाला पाया हे ।

उक्त पत्र के उत्तर मे महात्मा जी ने लिखा था—'अपने स्वास्थ का हाल लिखने के लिए कई घटे चाहिए । यदि आप यग इण्डिया और नवजीवन पढते हो तो उसमे 'उपवास का शरीर पर असर' नामक मेरा लेख पढिए । इसी लेख मे मेने अपने आरोग्य का इतिहास भी दिया है । चार साल से मे केवल दूध फल और रोटी खाता हूँ । विनोबा जसे सात्विक प्रकृति के लोग मने बहुत कम देखे हे । जठर के लिए दुष्पाच्य होने क कारण मेंने अब मू गफली खाना छोड दिया हे । पर जब मे उसे खाता था तब आजमे ज्यादा क्रोधी था, ऐसा नही हे ।

महात्मा जी का लिखा वह लेख मेने नवजीवन मे ढूढकर पढा था, पर मुझे अपनी बात का पूरा उत्तर उसमे भी नही मिला । यह सब बाते १९२५ २६ की है ।

जोधपुर के कनल प्रतापसिह अद्भुत तेजस्वी पुरुष थे । उनकी चिकित्सा करन का भी मुझे अवसर मिला था । उनका शरीर अत्य त दृढ था । उनकी मृत्यु ८४ वष की आयु मे हुई थी । वे जोधपुर राज्य के ४ पीडी तक सरक्षक रहे और उन्ह वतमान युग का भीष्म कहा जाता था । वे जबदस्त योद्धा, पोलो क पृथ्वीजयी खिला ी और प्रबल राजपूत थे । इस शताब्दी मे वे समस्त जोधपुर राज्य मे अपने शरीर त्रन म ए थे । राज्य के राजा और प्रजा उ हे 'बाबूजी' कह कर पुकारते थे । वे अग्रेजो क अन्धभक्त और चरम मित्र थे । यूरोप के महायुद्धमे साम्राज्य के तीन वीरोम एक व भी थे । जीवन मे उ हाने समस्त ससार भर की मुख्य मुख्य कोई ३५ लडा ्या मे लोहा बजाया था । हमारा ख्याल हे यह राठौर वशका अतिम योद्धा था जो परमायु पाकर मरा ।

महाराज तरतसिहजी के पाच पुत्र थे जसव त सिहजी जोरावरसिहजी, कि शोर सिहजी, प्रतापसिहजी और जालिमसिहजी । जोरावरसिहजी बचपन म ही मर गए थे । जसव तसिहजी वही प्रसिद्ध जसव तसिहजी हे, जि ह महर्षि दयान द सरस्वती क चरणा मे बठने का सोभाग्य पास हुआ था और जिनकी पासवान नन्हीजानका ऋषि न कुतिया कहा था एव जिसके षडय त्र से ऋषि का जहर दिया गया था । प्रतापसिहजी का जागीर बालोतरा जमाल आदि ६० सत्तर गाव का ठिकाना दिया गया था । जयपुर म उनकी बुआ थी, कुछ दिन महाराज से अनबन होन से वहा जा कर रहे थे । ८ ाष वहा रहे । पीछे महाराज के देहा त के बाद जोधपुर आए । और उ हे तमाम काम सौप दिया गया, जिसे इ होने खूब सम्हाला । इसी समय इलाका मालानी जो ३ नाख की तहसील थी और अभी तक गवनमट के कब्जे म थी, वह गवनमेट को खुश करके उ होन ल ली ।

बाद म तख्तसिंह के भाई केशरीसिंह मरे ईडर का इलाका उन्ही के आधीन था। उन्होने गवर्नमेंट से गाठ गाठ लगाकर उसके हकदार को हटाकर इलाका अपने कब्जे मे किया। सन् १८९७ मे व अली की मसजिद पर अंग्रेजो की ओर से सरहद्दी पठानो से लडने गए और खूब नामवरी पाई, यहा उनकी एक उगली मे गोली लग गई थी। इसके बाद चीन की प्रसिद्ध लडाई म जिसम ७ बादशाहते मिलकर चढी थी, अपना रिसाला लेकर गए। वही स जर्मन लोगो के प्रति उनके मन म द्वेषभाव हो गया था, वे इन्हे गुलाम कह कर चिढाया करते थे। उन्होने राठौरो को वीरता की अच्छी शिक्षा दी। ईडर जाने से जोधपुर का सम्बध छूट गया था— पर महाराज जसवन्तसिंहजी के पुत्र सरदारसिह जी के गद्दी पर बैठने पर मालूम हुआ कि उनका चरित्र अच्छा नही था। फलत उन्हे पचवटी भेज दिया गया और रायबहादुर सरसुखदेवप्रसाद जी के हाथ मे राज्य की बागडोर आई। इस समय राज्य-प्रबध म बडी गडबडी फैली थी। उन्होने वाइसराय तक दौडधूप करके मुठमर्दी से जोधपुर की रीजसी प्राप्त की। टूटी हुई कौंसिल बनाई। प्रबन्ध ठीक किया। फिर नाबालिग महाराज सुमेरसिंह को लेकर इगलैंड गए और उन की शिक्षा का प्रबध किया। फिर वापस आते ही महायुद्ध छिड गया, अतएव वे महा राज के साथ युद्धक्षेत्र म पहुचे और खूब काम किया।

सन् १९०७ के लगभग एक बार सूअर के शिकार को एक अंग्रेज के साथ गए, उन्होने सूअरके पीछे घोडा डाल दिया और अकेले रह गए। सूअर के बर्छा मारा। सूअर बिगड कर उन पर झपटा—और वे घोडे स गिर गए। सूअर ने उनकी जाघ को चीर डाला। अन्त म छोटी छुरी से उसे मार डाला। इस घाव मे १३ टाके आये थे।

सन् १८९७ के लगभग एक बार विलायत जा रहे थे, जहाज रास्ते मे डूब गया। वे एक किश्ती पर एक अंग्रेज को लेकर समुद्र म दो दिन दो रात भटकते रहे और तब सहायता पाकर किनारे पहुँचे। एक बार उनको रेल मे हैजा होगया। डिब्बे म दो अंग्रेज भी थे। दो चार के दस्त होने पर अंग्रेजो ने कहा कि महाराज, कै दस्त से आप कमजोर हो जाएगे। उन्होने कहा— अच्छा, स्टेशन आने तक के दस्त न होने देगे। और ऐसा ही किया। एक होली पर नरसिंहगढ से भाग की माजून आई थी। नरसिंहगढ दरबार की सुगात थी। जब सब खाने लगे तो वर्तमान करौलीनरेश राव गोपालसिहजी ने कहा कि खाओ। उन्होने नम्रतापूर्वक इन्कार किया और कहा कि मै नशा नही खाना चाहता। तब उन्होने कहा— नशा बिना इच्छा नही चढ सकता। इस पर बहस बढ गई। उन्होने उसी समय माजून खाना शुरू कर दिया, और देखते-देखते तीन थाल माजून खा गये। सब लोग हैरान हुए, सिविल सर्जन बुलाये गए। परन्तु उन्होने पोलो की तैयारी का हुक्म दिया और डटकर शराब पीकर पोलो खेलने लगे। क्षण क्षण म लोग उनके घोडे से गिरने की आशका करने लगे। परन्तु

नशे का कुछ भी प्रभाव नही देखा गया। छोटे बाघ या चीते को कभी ब दूा रा नही मारते थे। गुफामे हाथ डाल और पूछ पकड खीच लाते और धरती पर पटक पट ा ार मार डालते थ। उनके ३ विवाह हुए। स तान नही हुई। १४ वष की अवस्था म गद्दी पर बठे। तब तक हि दी भी नही जानते थ। पर अग्रजी बाल सकते थ क्यािक उनके गार्डियन अग्रज थे। अग्रजीपन उनकी घुट्टी म था। देशी खाना खा। से उ ह जुकाम लग जाता था। एक बार जयपुर से जोधपुर एक दिनम ही घोडेकी पीठ पर पहुच। उन दिना रेल नही थी—माग मे ३ घोडे मारे। उस समय जाधपुर रियासत जिस कदर अग्रजा के आधीन थी वह उ ही का प्रभाव था। अँग्रजो की भक्ति के कारण बहुत देशभक्त उनके प्रति तिरस्कार बुद्धि रखते थे। पर तु इसमे शक नही कि उनका व्यक्तित्व बना ही अनोखा और बाका था।

स्वामी श्रद्धान द एक महापुरुष थे। उनके जीवन से मे अत्य त प्रभावित था। वे मुझसे और म उनसे दूर ही दूर रहे। पर तु दोनो एक दूसरे के अत्य त निकट थ। कुछ ऐसे कारण थे कि उनसे मिलते हुए मै हिचकता था। लेकिन डा० युद्धवीरसिंह उस दिन मुझे उन के पास घसीट ले गए। किसी सावजनिक सस्था को कुछ रुपयो की आवश्यकता थी। प्रात काल का समय था ओर स्वामीजी स्नान करके स्वस्थ चित्त ब० े। प्रसन्न मुद्रा म थे, हमने सक्षेप म अपना अभिप्राय कह सुनाया। उ होने चुपचाप सुना। एक एक गिलास ताजा दूध आग्रहपूवक पिलाया। इधर उधर की बाते पूछी और एक हजार का चेक हस्ताक्षर करके हमारे हवाले किया। आश्चय और प्रस नता से हम लोग अभिभूत हो गए। लखपति, करोडपति साहूकार भी इतनी आसानी से अटी ढीली नही कर सकते। क्षण भर के लिए स्वामीजी का ध्यान दूसरी ओर गया, तब मेने डाक्टर साहब की बगल मे टहोका मार कर आहिस्ते से कहा—यह तो बडा मालदार साधु है। कुछ और ज्यादा क्यो न वसूला जाए? कि त्योही वह वज्र दृष्टि मेरी ओर घूमी। एक गूढ मुसकान ओठो मे भर कर वह बोले—आज आप कसे निकल पडे? आप तो कही आते जाते नही।

जिस बातसे डर रहा था वही सामने आई। समझ गया अब खैरियत नही। ये हजार रुपए ओर उनका सूद अभी वसूल लिया जायगा। मन धीरे से कहा—डाक्टर साहब खीच लाए।

'यही मेरा खयाल है, परन्तु आप एक उदीयमान साहित्यकार हे और साहित्यकार एका तप्रिय होते हे। पर तु एका त मे यह दोष है कि उसकी दृष्टि म कल्पना प्रधान हो जाती हे, सत्य पीछे छूट जाता हे। जहा तक भावना का प्रश्न हे, उसम उतनी हानि नही होती, पर जब घटनाओ का प्रश्न आता है और उनसे किसी व्यक्ति का सम्बन्ध स्थापित होता है ओर दुभाग्य से वह व्यक्ति यदि सावजनिक होता है तब कभी कभी

बहुत भरी भूल हो जाती है, जो पीछे किसी मूल्य पर परिमार्जित नही की जा सकती।

मतलब मै स्पष्ट ही समझ रहा था। पर स्वामीजी कोई बात अधूरी छोडते न थे, वे बात उठाकर गाते नही थे। उन्होने बिना किसी बात की परवा किए तनिक कठोर भाषा मे कहा—अब आप उस कहानी की बात लीजिए जिसमे मुझे और मेरे पुत्र को आपने एक पात्र बनाया है एक बहुत गम्भीर आरोप आपने उसमे मेरे ऊपर लगाया है। मै नही जानता कहा से ये तथ्य आप को मिले और उनमे आपने कितना कल्पना का सहारा लिया। परन्तु मै तो अभी जीवित था, यही इसी नगर मे रहता था, आप यदि मेरे पास आते तो आपको मेरे पास तो सत्य की ही उपलब्धि होती और तब शायद आपकी यह कहानी ('बीरजमृत') कुछ दूसरा ही रूप धारण कर लेती

मुझ मे शक्ति नही थी कि उस महापुरुष से विवाद करता या जवाब देता। असल बात यह थी। इस कहानी मे कुछ अत्यन्त गुप्त रहस्यो का उद्घाटन हुआ था, जिनके कुछ आधारो के सम्बन्ध मे मै एक शब्द भी कह नही सकता। वह एक अति भयानक राजनीतिक कहानी थी और उसमे भारत मे घटित एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी घटना का संकेत था जिस का सम्बन्ध दिल्ली के कुछ फासी-प्राप्त क्रान्तिकारियो से भी था। कहानी 'चांद' मे छपी थी और उसके कारण 'चाद' की तीन हजार की जमानत जब्त हो चुकी थी। स्वामीजी उस कहानी को बरदाश्त नही यह मै जानता था और इसी कारण उनकी आखो के आगे आने के सब अवसरो से बचता रहता था। पर अब तो आमना-सामना हो चुका था। मै नीचे सिर झुकाए निरुत्तर बैठा रहा। एक शब्द भी मै बोल न सका।

स्वामीजी बोले—अभी आप नवयुवक है। स्वप्न आपका धर्म है। पर कभी आप मेरी उम्र को भी पहुंचेगे, किन्तु कदाचित आप का जीवन उस भयानक बवडर मे न फसे, जिसमे मुझे फसना पडा, क्योकि आप तो साहित्यिक है, सामाजिक कार्यकर्ता नही। किसी भी समस्या के गहरे अनुभव का कदाचित आपको अवसर मिले ही नही। ऐसी अवस्था मे आप अपनी भूल को कभी समझ न सकेगे। परन्तु मै तो यह समझता हू कि ... समाज के ... को उसी प्रकार ठीक ठीक जान लेना आवश्यक है जिस प्रकार ... की शरीर की भीतरी बाहरी पचीली बनावट के साथ ... को जान लेना आवश्यक है। इसके लिए साहित्यकार ही रहना चाहिए।

मैने इस पर भी कोई उत्तर नही दिया। जब हम चले, तब वह चेक और ... दूर वहा ... रहा था और जीने से नीचे उतरते हुए मेरे पैर लडखडा रहे थे। परन्तु ... वाक्य तो जैसे ... मे मेरे हृदय पटल पर लिख दिए गए। आज चालीस वर्ष बीतने पर भी वे ज्यो के त्यो मेरे अन्तस्तल पर अंकित है।

इस घटना के थोड़े ही दिनो बाद मुझे फिर अप्रत्याशित रूप मे जल्दी जल्दी उस जीने की सीढियो पर चढना पडा। अच्छी तरह मुझे उस दिन की प्रत्येक बात याद आती है—खारीबावली मे मैं दाल चावल खरीद रहा था। एक आदमी दौड़ता हुआ जा रहा था और जोर जोर से चिल्ला रहा था—स्वामीजी कत्ल हो गए, स्वामीजी कत्ल हो गए। बाजार मे हलचल मच गई और मै तत्काल ही लपकता हुआ नए बाजार की ओर दौडा। कुछ आदमी सडक पर भीड बना कर खडे थे, कुछ जीने पर चढ रहे थे। भीड चीर कर जब मै जीने पर पहुँचा, तब देखा सेवक धर्मसिंह की जांघ से रक्त बह रहा था, पर वह दीवार का सहारा लिए खडा था। पलग पर स्वामीजी लहूलोहान पडे थे। तीन गोलियाँ उनके सीने के पार हो चुकी थी। स्नातक धर्मपाल ने कातिल को अपनी बलिष्ठ बाहो मे दबोच लिया था और वह भाग निकलने को छटपटा रहा था। रिवाल्वर अब भी उसके हाथ मे था। स्वामीजी का प्राणान्त हो चुका था। उनका मुह और उनकी आखे आधी खुली थी, और इन्द्रजी उनके ऊपर झुके हुए थे। नीचे और ऊपर अब भीड बढ गई थी। शोर भी बहुत हो रहा था। कोई एक व्यक्ति चाकू हाथ मे लेकर कातिल को कत्ल कर डालने को जोर कर रहा था और लोग उसे पकड रहे थे। पुलिस आई और उसने कातिल को कब्जे मे किया। लाला दीवानचन्द आए और आखो मे आसू भर कर स्वामीजी का सिर गोद मे लेकर बैठ गए। डाक्टर अन्सारी और डा० अब्दुलरहमान भी आगए थे। पर अब क्या हो सकता था। डा० अन्सारी की आख गीली थी। कातिल अधेड उम्र का मुशी जैसा आदमी था। जब पुलिस ने उसे हथकडी पहना कर खडा किया तब मुसकरा दिया और कहा—डाक्टर साहब, आदाबअर्ज। इससे भीड मे उत्तेजना फैल गई और डा० अन्सारी पुलिस के सरक्षण मे वहा से गए।

दिल्ली के इतिहास मे उनकी अभूतपूर्व शव यात्रा हुई। दिल्ली और पजाब के तरुणो का उछलता हुआ रक्त जोश मार रहा था। अनगिनत भजन मडलियाँ भजन गाती थी। उनमे से एक मे मै भी सम्मिलित था। आप कदाचित विश्वास न करेगे, मै स्वय चीख चीख कर गा रहा था, कुछ अपने ही द्वारा रची हुई पक्तियो को। उसके बाद एक सभा कम्पनी बाग मे हुई, जहाँ लोगो के सिर ही सिर नजर आते थे। उस सभा की एक बडी घटना मुझे याद है—लाला लाजपतराय का भाषण। लाला जी भाषण नही दे रहे थे, वह तड़प रहे थे। कह रहे थे—श्रद्धानन्द, तुम्हारे जीवन पर भी मैने सदा रश्क किया और मौत पर भी रश्क करता हूँ। भगवान मुझे भी ऐसी ही मौत दे तो में इतना समझू कि मैं तुम से आगे न बढ सका तो पीछे भी न रहा। और झर झर आसू उस नर शार्दूल की आँखो से बह रहे थे। उन्नीसवी शताब्दी के अपरान्ह मे पजाब मे चार महापुरुष ऋषि दयानन्द के उत्तराधिकारी के रूप मे पक्ति मे आ खडे हुए, इन मे एक थे महात्मा हसराज, दूसरे थे महात्मा मुन्शीराम (पीछे स्वामी श्रद्धानन्द)

तीसरे थे लाला देवराज और चौथे थे लाला लाजपतराय। जिन दिनों ये चार मगल मूर्तियाँ एक पवित्र भावना लेकर आई थीं उन दिनों पजाब की हालत अत्यन्त शोचनीय थी। सत्तावन के विद्रोह के बाद जब अग्रेजी अमल जम कर भारत पर बैठ गया तब विक्टोरिया रानी की घोषणा से विचार स्वातन्त्र्य की भावना भारत मे जागृत हुई। उस समय देश मे ईसाइयो ने जगह जगह प्रचार के अड्डे कायम कर रखे थे। उधर राजा राममोहन राय, [illegible] और स्वामी दयानन्द अपनी ऊँची आवाज उठा रहे थे। दुर्भाग्य से राजा राममोहन राय सस्कृत के पडित न थे, उन्होने ब्रह्म समाज की स्थापना आर्य भावनामूलक किन्तु पाश्चात्य जीवन प्रणाली पर कर डाली। लोग नवजीवन के अभिलाषी थे, वह उन्हे भा गई। स्वामी दयानन्द वेदो के असाधारण ज्ञान के साथ वह भावना लेकर मैदान मे उतरे कि सम्पूर्ण नए सुधार प्राचीन वैदिक सभ्यता और आर्य सस्कृति से ओतप्रोत किए जाए। इसी से उन्होने समाज के ब्रह्मरूप मे ऐसी भारी क्रांति करदी जैसी शकराचार्य के बाद दूसरा कोई न कर सका था। इसी आधार पर उन्होने आर्य समाज की स्थापना की। अपने जन्म के बाद ५० वर्षों मे आर्य समाज ने बहुत भारी काम किया। नवीन हिन्दू धर्म की आधुनिक जागृति का प्राय सारा ही श्रेय आर्य समाज को है। लाखो मनुष्य आर्य समाज के झडे के नीचे आए। पजाब, राजपूताना, युक्तप्रान्त, मध्यदेश, और बम्बई मे आर्य समाज ने अपना व्यापक प्रभाव प्रकट किया। पजाब आर्य समाज का सास्कृतिक केन्द्र बना। महात्मा हसराज ने लाहौर मे डी० ए० वी० कालेज, महात्मा मुन्शीराम ने कॉगडी गुरुकुल और लाला देवराज ने जालन्धर मे कन्या महाविद्यालय की स्थापना की, तथा लाला लाजपतराय ने देश मे स्वतन्त्रता की धूम मचाई। इन तीनो सस्थाओ का तथा इन चार मगल मूर्तियो का उत्तर भारत मे ऐसा सास्कृतिक प्रभाव पडा कि उसका मूल्य किन्ही भी शब्दो मे नही आका जा सकता।

जैसा कि मैने अभी कहा, जिस समय ये चार मगल मूर्तियाँ उठी, वह समय पजाब के अन्धकार का था। चिर काल तक विदेशी दासता भोगने के बाद पजाब मे जो किंचित समय के लिए अपना राज स्थापित हुआ था, वह तत्क्षण ही स्वप्न राज्यके समान भग हो चुका था और अब एक नई सत्ता अपना प्रभाव जमा रही थी। उन दिनो सारा पजाब घोर अज्ञान मे, जातपात बिरादरी आदि के टुकडो मे बटा हुआ था और प्रत्येक टुकडा एक दूसरेका बैरी हो रहा था। सामाजिक कुरीतियो और रूढिवादिताने हिन्दुओ के हृदयो को खोखला कर दिया था। मौलवियो के कुत्सित प्रचार से यह मानसिक दासता और बढ गई थी। उन्होने समूचे समाज को मूढ और अपने धर्म तथा सस्कृति का विद्रोही बना दिया था। उनका उद्देश्य सारे राष्ट्र को निकम्मा बनाकर हिन्दुत्व को समाप्त कर देना था। सारा हिन्दू राष्ट्र हिल रहा था और इस सफलता को देख कर पादरी लोग खुश होकर कहने लगे थे कि पचास वर्षमे सारा भारत ईसाई हो जाएगा।

उन दिनो तक भी अग्रजी का अधिक प्रचार न हुआ था। बहुत कम नवयुवक एम० ए०, बी० ए० होते थे। उ ह तुर त सरकारी नौकरी मिलती थी। पर तु देशके पुरान लोग उ ह विद्वान नही समझते थे। विद्वान व ही समझे जाते थे जो अरबी, फारसी व पडित होते थे। बहुत से हि दू बुजुग मुस्लिम रीतिया को मानते थे। लाला लाजपत-राय के पिता मु शी राधाकिशन नमाज पढा करते थे और रोजा रखा करते थे।

महात्मा हसराज और लाला लाजपतरायने जब लाहौरमे डी० ए० वी० कालेज की स्थापना की तब देखते ही देखते यह कालिज आधुनिक पद्धति पर सहस्र सहस्र युवको को ज्ञान दान देने लगा और उनके हृदय म आय सस्कृति तथा व दिक सभ्यता का बीजारोपण करने लगा। इन दिनो स्त्रियो को पढाना लिखाना पाप समझा जाता था और लोगो मे यह विश्वास था कि पढी लिखी लडकिया जल्दी विधवा हो जाती है। स्त्री शिक्षा के हिमायतियो को लाठी खानी पडती थी। ऐसी ही अवस्था म लाला देव राज ने जाल धर मे क या महाविद्यालय की स्थापना की, जिसने पजाब म स्त्रिया के जीवन की कायापलट कर दी। पर तु उत्तर भारत म जो सबसे महत्वपूण काय हुआ वह हुआ स्वामी श्रद्धान द के द्वारा गुरुकुल कागडी की स्थापना के रूप म। यह एक ऐसा विद्या म दिर था जहा यूनिवर्सिटियो और पाश्चात्य शैलियो का सवथा त्याग किया गया। वैदिक सस्कृति और वदिक धम का भारत मे प्रचार करना इस विद्या मदिर का मूल मत्र था। यहा के विद्यार्थियो को प्राचीन भारतीय गुरुकुल प्रणाली पर ब्रह्मचारी वेश मे अनागरिक वृत्ति से रहना पडता था। वह एक नवीन परिपाटी थी, जिसने बडी शीघ्रतामे समस्त उत्तर भारतका ध्यान अपनी ओर खीच लिया। सम्पूण उत्तर भारत मे स्वामी श्रद्धान द के इस सदुद्योग का सुफल अकुरित हुआ। लोगो के हृदयो म स्वप्न से जागे हुओ की भाति अपनी भाषा, अपनी सस्कृति और अपने देश के प्रति श्रद्धा के भाव उत्पन्न हुए। इस विद्या के द्र के स्नातक प्रथम श्रेणी के लेखक सिद्ध हुए जि होने साहित्य को विचार, विज्ञान और प्रगति से आन दोलित कर दिया। आज के जाग्रत उत्तर भारत के मूल प्रेरक स्वामी श्रद्धान द थे।

अप्रल १९२६ म अखिल भारतीय वैद्य महासम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन जयपुर मे हुआ। मेरे मन म आयुवद चिकित्सा पद्धति को उन्नत करने के लिए तीव्र अभिलाषा थी। मै अधिवेशन म सम्मिलित हुआ। इच्छा थी कि अपने जीवन का कुछ भाग इस लोकोपयोगी सस्था को दस वार दूँगा। पर तु जाकर देखा तो निराश हुआ। यद्यपि इस सम्मेलन के सभापति मालवीय जी थ और बहुत से वैद्यगण उसम सम्मिलित हुए थे। जिस प्रकार माता पिता अपने लडके लडकिया की योग्यता, स्वास्थ्य और सौ दय की जरा भी पर्वा न कर धूमधाम और शान को ही विवाह की सफलता समझते है, उसी प्रकार इस समारोह को भी बहुत से विद्वानो तथा पत्रो ने भी सफल समझा।

परन्तु मेरी दृष्टि म यह अधिवेशन निराशाजनक और व्यथ था । चील झपट्टे की तरह चुनाव और अधिकारो पर भीतर ही भीतर लोग टूट रह थे । सम्मेलन के महामन्त्री कानपुर के एक डाक्टर थे, न मालूम विचार कैसे अपनी कालर टाई छोडकर इस धोती सम्प्रदाय मे फस गए थे । तीन दिन तक उनकी आवाज मीठी है कि खट्टी, यह जाननेकी लालसा मनमे ही रह गई । अत्यन्त निकट बैठने पर भी नही सुन सका । वे कुछ बोल रहे है इसका अनुमान इसी बात से होता था कि वे जरूरत से बहुत ज्यादा मह आकाश की ओर उठाकर कुछ होठ हिला देते थे । गतवर्ष की रिपोर्ट बिना पढे पास हो गई ।

सात वर्ष पूर्व जब बम्बई मे सम्मेलन हुआ था, म उसमे सम्मिलित हुआ था, उन दिनो मे बम्बई मे ही रहता था । वहा मेने वैद्यो के प्रति सरकारी उपेक्षा का तीव्र विरोध किया था । उस पर बम्बई के प्रख्यात चिकित्सक डा० सर देसाई बोले थे कि सरकार आपका मान अवश्य करेगी । आप योग्य बनिए, कालिज खोलिए ।

मने जवाब दिया— आप श्रीमान ने जो एम० डी० की डिग्री जिस कालेज से पाई है वह क्या आपके पिताश्री ने खोला था । क्या कारण है कि अप्राकृत हमारे धर्म जीवन और स्वभाव से विरुद्ध चिकित्सा पद्धति के प्रचार के लिए सरकार करोडो रुपया खर्च करती है, कालेज खोलती है, शिक्षा देती है, योग्य डाक्टर तयार करती है, परन्तु हम से कहा जाता है कि हम स्वयं कालेज खोले और योग्य बने, तब कही सरकार हम योग्य कहेगी । मानो हम उस सरकार की प्रजा नही है ।

जयपुर सम्मेलन मे मने अपने भाषण मे कहा था—आयुर्वेद की विद्यापीठ योग्य वैद्य नही बना सकती । विद्यापीठ का एक अन्याय तो यह है कि उसकी पठन शैली तो पुरानी प्रथा है । विषय नए ढग से चुने गए है, पर तु ग्रन्थ वही पुराने है । विद्यापीठ का दूसरा अन्याय यह है कि विद्यार्थियो को पढाने का कुछ प्रबन्ध ही उसके पास नही है । मुझसे यदि पूछा जाय तो मै एक अन्याय यह भी समझता हू कि आयुर्वेद की शिक्षा संस्कृत भाषा द्वारा हो । संस्कृत एक भाषा है और आयुर्वेद एक विद्या है । संस्कृत सीखने म विद्यार्थी के दस वर्ष लगते है । अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने मे जो आपत्ति है, वही आपत्ति संस्कृत के माध्यम से शिक्षा देने मे भी है । मातृ भाषा से भिन्न किसी भाषा मे कोई भी भाव उतना हृदयगम नही होता, जितना मातृभाषा मे ।

मुझे इस बात का बडा खेद है कि सम्माननीय कविराज, गणनाथसेन जी ने शरीर शास्त्र जैसे दुरूह विषय को संस्कृत मे लिखकर और भी दुरूह कर दिया है । विषय को अकारण दुरूह बना कर विद्यार्थियो के सम्मुख पेश करना निर्दयता है । यदि कोई यह कहे कि हिन्दी भाषा जटिल विषयो की माध्यम नही हो सकती तो मे इस बात को स्वीकार नही करूगा । हिन्दी के अन्दर विज्ञान की पुस्तके रची जा रही है, उनके पारिभाषिक शब्द बनाए जा रहे है । तब वैद्यक शास्त्र जिसके पारिवारिक शब्द बने बनाए

है, क्यो न हिन्दी का माध्यम ग्रहण करे ? वर्तमान चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थ गलित ग्रन्थ है। विषयानुक्रमणिका बहुधा अस्तव्यस्त हो गई है। परिभाषा गुणा नहीं तो प्राचीन है। चरक मे जुलाब के लिए चालीस तोला ऐरंडी का तेल और पाच सेर कच्ची जिना जीत एव भिलावे खाने का प्रसग है। यह खुराक किस युग के लिए है ? सुश्रुत के प्रयोग ऐसे है जिन पर निभर रहकर कोई चिकित्सक बीसवी शताब्दी म सफल नही हो सकता। सुश्रुत का शरीर वर्णन कुछ अशो मे भ्रान्त है, शस्त्र प्रकरण पुरातत्त्व विभाग की वस्तु है। क्या हमे यही उचित है कि हम पुरानी लकीर के फकीर बने रहे, और आधुनिक उच्च कोटि के आविष्कारो की निन्दा करते रहे और उन्हे अछूत मानकर उनका तिरस्कार करते रहे। यह तो हमारा मृत्यु मार्ग है, इस मार्ग पर चलकर हम जी नही सकते।

इसमे कोई सन्देह नही कि चीरफाड का प्रक्रिया काय चिकित्सा से भिन्न वस्तु है, पर जब तक वद्य इस विषय से मूख है, वे बडी बडी मार्के की बाजी नही ले सकते। हम श्लोक पढकर या शास्त्राथ करके रोगी को आराम नही कर सकते। हमे चाहिए कि सामने पडे हुए रोगी को जसे बने आराम कर। हम इस बात को भूल जाय कि कौन वस्तु और क्रिया विदेशी है और कौनसी पवित्र ऋषि प्रणीत। हम प्राच्य और प्रतीच्य दोनो सिद्धान्तो को मथन करके खूब सरल ढग से विस्तृत स्पष्ट सचित्र नवीन ग्रन्थ निर्माण करने चाहिए।

मेरी दो बहिने मुझसे छोटी थी। दोनो दिल्ली व्याही थी। बडी मुझसे ६ वर्ष, और छोटी १६ वष छोटी थी। दोनो बहिने और तीनो भाइयो के विवाह मेरी आयस से हुए। पिता के समान अविकृत व्यक्ति मै ही अपने घर म माना जाता था। बडी बहिन कला परम विदुषी और कोमल भावनाओ की अत्यन्त भावुक प्रतिमा थी। अपनी छोटी आयु से ही वह मुझे गुरू की भाँति मानकर मेरी बुद्धि और विद्या से प्रभावित थी। जब मैं १९१६ मे प्रथम बार दिल्ली मे नौकरी करता था, तब जब कभी सिकन्द्राबाद आता वह मुझे अत्यन्त आदर से 'वद्यजी आगए' कहा करती थी। उसका समस्त प्रेम, श्रद्धा और आदर इस 'वद्य जी' शब्द मे निहित था। मैं मानो यही शब्द कला के मुख से सुनने के लिए सिकन्द्राबाद आता था। अपनी इस बहिन का मै अत्यन्त सत्पात्र के हाथो मे देना चाहता था। किन्तु विवाह के कुछ वर्षों बाद ही मुझे अपनी भूल ज्ञात हो गई और मैं कला के लिए पश्चाताप करने लगा। कला का पति कुछ ऐसे व्यक्तियो के ससग मे पड गया जहाँ सोलहो आना अपराध वृत्ति से धन अजन करना ही ध्येय था। भरे पुरे परिवार की अथक सेवा और फिर पति की अपराध वृत्ति से कमाया हुआ धन, इन सब बातो से कला की मृत्यु हुई। भरी युवावस्था मे कला की मृत्यु ने मुझे अत्यन्त विकल कर दिया। अपने 'हृदय की परख' उपन्यास को उसे समर्पित करते हुए

मैने लिखा था

"बहिन, उस पुस्तक को पढ़ कर तुम बहुत रोई थी। एक दिन भोजन भी नही किया था। तुमने कहा था कि इसे जल्दी बहुत सुन्दर छप जाने पर मुझे देना, मैं नित्य पढ़ा करूंगी। पर तुम इसके छपने तक ठहरी नही। देवयानी शर्मिष्ठा से तुम्हें बड़ा स्नेह और सहानुभूति थी। तुम उसे भगवान की गोद में जाते देख हुलस कर उसके साथ ही चल खड़ी हुई। अच्छा, अपनी उस परम आदर और प्यार की वस्तु को लेती जाओ, जल्दी मे इसे यहीं भूल गई थी, यह तुम्हें समर्पित है। बहिन तुम्हारी एक मूर्ति इस पुस्तक में रखने की बड़ी लालसा थी, पर अपने नेत्रो की तृप्ति के लिए हमारे पास तुम्हारी कोई प्रतिमूर्ति नही है। हमारे हृदय को छोड़ कर वह अब इस संसार में कही किसी भाव नहीं मिल सकती। जो वस्तु कहीं नही मिल सकती, उसकी अभिलाषा त्याग देना ही अच्छा है। अस्तु, तुम हमारे हृदयो में ही सदा वास करो हमारी स्नेह की कला।

तुम्हारे आदर के शब्दों में तुम्हारा त्यक्त ज्येष्ठ भ्राता "वद्यजी"

कला के पति के आचरण और व्यवहार से मैं बहुत नाराज था। कला को यह बात ज्ञात थी, परन्तु अपनी मृत्यु के एक दिन पूर्व उसने मुझसे आग्रह किया था कि मैं उन्हें क्षमा करदू और उसके बाद उन्हे सत्पथ पर लाने का प्रयत्न करूं। कला की मृत्यु के बहुत दिन तक मैंने उसके पति की प्रतीक्षा की, पर वह मेरे पास नहीं आया। मैंने भी खोज खबर लेनी छोड़ दी। एक प्रकार से मैंने उसे अपने हृदय से त्याग ही दिया। परन्तु कला की मृत्यु के छः सात वर्ष बाद एक दिन अकस्मात वह मेरे चांदनी चौक के चिकित्सालय में आ गया। उसने नीची दृष्टि किए ही मेरे चरण छूकर मुझे प्रणाम किया। उस समय तो मेरी घृणा और क्रोध क्षण भर में ही नष्ट हो गया। मैंने कुर्सी से खड़े होकर उसे हृदय से लगा लिया। वह रो रहा था और जैसी कि मेरी प्रवृत्ति है, मैं मन ही मन हृदय में उमगता का उथल पुथल करता हुआ अन्दर ही अन्दर रो रहा था। शांत होने पर उसने पच्चीस हजार रुपया की गड्डियां अपनी अटेची में से निकाल कर मेरे आगे रख दी और कहा—'मुझे अब गुमराह होने से बचा लो मैं बहुत खेल खेल चुका। मैं पशु बन गया था—अब फिर मुझे इन्सान बना लो। आपके सिवा मुझे कोई सत्पथ नही दिखा सकता।'

मैंने कहा—'पर इस ढेरी का क्या प्रयोजन है ?'

उसने नोटों पर घृणा की दृष्टि डालते हुए कहा—इन्हें किसी धन्धे में लगा लो। आपने प्रेस खोला है। उसमें मशीन छोटी और कम है। इस रुपए को प्रेस में लगा लो। बड़ी मशीनें खरीद लो। मुनाफे में से कुछ हिस्सा मुझे दे दिया करना।

बहुत बाते हुए पर वह नही माना। मुझे उसकी बात मानी पड़ी। मैने उस रुपए को प्रेस मे लगाकर उसे भी आधे का हिस्सेदार बना दिया। प्रेस की नई मशीने खरीद ली स्टाफ बढा लिया चादनी चौक मे वह स्थान भी हटाकर फतहपुरी की एक बडी बिल्डिंग मे ले गया। स्थानान्तर मे मेरा हजारो रुपया व्यय हुआ। इन्ही दिनो सम्भवत १९२६ २७ मे जैनेन्द्रकुमार मेरे सम्पर्क मे आए और मुझे अपना साहित्यिक गुरु बना कर उन्होने कलम सीखी की।

परन्तु प्रेस तो एक शैतानी व्यवसाय है। शैतान की तरह हरवक्त रुपए के लिए मुह फाडे खडा रहता है। उसके खर्चों का न अन्त न हिसाब। फिर मेरे जैसे अनाडी आदमी के लिए तो उसका सही सही सचालन करना सर्वथा अशक्य था। जब तक वह मेरी निजू सम्पत्ति थी—मै अपनी मासिक आय का अधिकांश दो ढाई हजार रुपए उसके सामान और वेतन मे झोक दिया करता था और निश्चिन्त रहता था। परन्तु जब से कला के पति का रुपया उसमे मैने लगा दिया मेरी चिन्ताए बढ गईं और मै प्रेस की आय के वृद्धि का ध्यान रखने लगा। इसकी व्यवस्था सुचारुरूप से चलाने के लिए मैने एक मित्र व्यक्ति को इसका मैनेजर रख दिया। उन्होने इसका इतना सुन्दर मैनेज्मेन्ट किया कि प्रेस पर दस हजार का घाटा हो गया। उन्होने कला के पति के भाव भी मेरे प्रति बदल दिए। उसने उन्हे यह सुझाया कि आप सोलहो आना पैसा अपने हाथ मे कर लीजिए तब मै बहुत सुगमता से हजार पाचसौ रुपया प्रेस से बचाकर आपको दे सकता हूँ। उसके मन मे मैनेजर साहेब की सत्यवाणी जम गई और उन्होने एक दिन मेरे सामने प्रेस के नफे नुकसान के हिसाब के कागज फैलाए। अन्त मे उसी रात को मैने दस हजार की देन की अदायगी मे अपना सारा हिस्सा उन्हे लिखकर दे दिया। यह कहिए कि मेरा जमाया हुआ सजीवन प्रेस जिसमे मै अब तक लगभग पतीस हजार रुपया फूक चुका था, अब मेरे हाथ से निकल कर कला के पति के हाथो मे चला गया था। एक पैसा पूजी भी मुझे उससे प्राप्त नही हुई। कहने को वे ही अब उसके मालिक थे, परन्तु वास्तविकता तो यह थी कि इसके पतन की ओर पूर्णरूप से अब उन मित्र मैनेजर के हाथो मे चली गई थी। और इसके पूरे दो वर्ष पश्चात वह चालीस हजार का सजीवन प्रेस कौडियो के मोल खुद बुद हो गया। उसका अस्तित्व समाप्त हो गया।

प्रेस के हाथ से निकल जाने के बाद मैने सजीवन मासिक पत्र का प्रकाशन बन्द कर दिया। कला के पति के दुष्कार्य ने तो मेरे हृदय को अभी आक्रान्त किया ही था कि मेरी माता अपना मृत्यु सदेश लेकर पिताजी के साथ सिकन्द्राबाद से दिल्ली आई।

जैसाकि मै पहिले कह चुका हूँ कि चन्द्रसेन जन्म के बाद मेरी माता रोगिणी रहने लगी थी। महीने मे बीस पच्चीस दिन वे बीमार रहती और पाच सात दिन अच्छी रहती। परन्तु उन्होने खाट पर पडकर कभी आराम नही किया। वे घर का सारा काम

और भग के नीद्रा का सारा काम प्रात पाच बजे से रात्रि के नो दस बजे तक करती रहती थी। पन्द्रह सोलह वर्ष निरन्तर रोग मे सताप करते करते उनका शरीर शक्ति-हीन हो गया था। अपनी सेवा और सहायता के लिए उन्होंने न मेरी, न भद्र की पत्नी को अपने पास कभी आराम रहने दिया। मै जब जब अपनी पत्नी को एकाध महीने के लिए भी माता के पास छोड़ना चाहता था वे सदा यही कहती—ना, भय्या, अपनी बहू को साथ रखो। परन्तु माता के हृदय का भेद तो अब खुला, यह सब उनका स्नेह था जिसे उन्होंने बडे यत्न से सदा छिपा कर रखा था। उन्होंने आत्म बलिदान के इस अभ्यास को बहुत बढ़ा लिया था।

माता की अवस्था देखकर मै रो पडा। उनकी बिमारी की वृद्धि की सूचना पिताजी के पत्रो से मुझे मिलती रहती थी परन्तु प्रेस के झझटो के कारण मै सिकन्द्राबाद नही जा सकता था। मैने अन्तिम पत्र मे पिता जी को लिखा था कि माता को लेकर दिल्ली आ जाय तो चिकित्सा का ठीक प्रबन्ध हो जाय। परन्तु उन्हें माता को दिल्ली आने के लिए राजी करने मे बहुत श्रम करना पडा। अन्त मे वे दिल्ली आई भी तो बिल्कुल मरणासन्न स्थिति मे। उनकी इस आसन्न मृत्यु का कारण वास्तव मे उनका वह स्त्री धर्म था जिसमे वे आकण्ठ डूबी हुई थी। मैने तत्काल बडे डाक्टर को बुलाकर उन्हें दिखाया। दिल्ली के दो तीन वैद्यो को भी बुलाकर दिखाया। डाक्टर युद्धवीरसिह उन दिनो दिल्ली मे ही जम कर प्रैक्टिस करने लगे थे। उन्होने भी उनके लिए बहुत प्रयत्न किए। परन्तु उनकी अवस्था नही सुधरी।

१९२७ के उतरते चैत्र के दिन थे। उस दिन रामनवमी का पवित्र दिन था। माता की दशा प्रात काल से बहुत सुधार पर थी। उन्होंने हम सबको अपने पास बुलाया और सबकी ओर मुस्कराकर देखा। परन्तु मेरी दृष्टि से उनकी जीवन लो की अंतिम ज्योति छिपी नही रही। मैने चन्द्रसेन को तुरन्त औषध लाने के लिए भेजा। हम सब वहा उपस्थित थे। पिताजी बार बार माता से कुछ पूछ रहे थे, पर माता बोल नही सकती थी केवल सकेत द्वारा उत्तर दे रही थी। दस पन्द्रह मिनट तक हम सबको अपनी शय्या के समीप एकत्र करके उन्होंने नेत्र मूद लिए। उस समय नौ बज रहे थे। पिताजी एकटक माता की सज्ञा को देख रहे थे। मैने लपक कर नाडी देखी, नाडी नही थी। हृदय देखा। हृदय पर हाथ रखते ही उनका अन्तिम श्वास आया और वे अनन्त गहरी निद्रा मे लीन हो गई!!! पिताजी ने आर्त्तनाद किया—'छिन गया जीवन धन मेरा!' वे बार बार उसी पक्ति को रट कर अपना वेग रोक रहे थे। घर के सब आदमियो का रुदन उस कमरे मे फैल गया। मेरी पत्नी ने चौधार आसुओ से अपनी सास के चरणो को धो डाला। किसी ने किसी को नही रोका, सब के आवेग फूट पड रहे थे। उनकी मृत्यु के दस मिनट बाद चन्द्रसेन औषध लेकर लोटा। उसके सामने दृश्य

ही दूसरा था। क्षणभर वह कुछ समझ ही नहीं सका कि क्या हो गया है। पिताजी ने उससे कहा—बेटा, माता के अन्तिम दर्शन करलो। उन्होंने शव के मुह का कपड़ा हटा दिया। चन्द्रसेन अपनी भाभी के समीप जा माता के चरणों को अपनी गोद में लेकर बैठ गया। इस समय घर भर में यदि किसी के आसू नहीं थे तो वह चन्द्रसेन था। उसके आसू तो माता की चितादाह के पीछे ही हम लोगों ने देखे। वह बहुत दिन उसी स्थान पर बैठ कर रोता रहा, जहा माता की रोग शय्या बिछी रहती थी। किन्तु किसी के वहाँ पहुँचते ही वह आसुओं को पी जाता था।

माता का अभी तक हमने कोई फोटो नहीं लिया था। मैंने अपनी पत्नी के साथ मिलकर उन्हें भलीभांति स्नान कराकर स्वच्छ किया, वस्त्र पहिनाए और फूलों से सजा कर उन्हें एक आरामकुर्सी पर लिटा कर फोटोग्राफर बुलाकर फोटो खिचवाया। माता के इसी फोटो की मैं प्रति वर्ष रामनवमी के दिन पूजा करता रहा हूं। मेरे पास माता की यही एक प्रतिमूर्त्ति है।

दिल्ली में आने के बाद एक बार बकराईद का मुस्लिम त्यौहार पड़ा। मेरा चिकित्सालय और निवास स्थान चाँदनी चौक में सड़क के किनारे पर था, वहां से खड़ा होकर मैं भेड़ बकरियों के उन मूक झुण्डों को देखा करता था, जो मेरी आखों के आगे बिल्लीमारान बाजार और फतहपुरी मसजिद के सामने सुबह से शाम तक सिर झुकाए निर्जीव बने खड़े रहते थे। ग्राहक आकर उनका अंग अंग हाथ से टटोल कर उनके मांस का अन्दाजा लगाकर मोलतोल किया करते थे। इन मूकों की ऐसी दुर्दशा देख मुझसे न रहा गया। मानो वे मेरे सामने ही नित्य कत्ल होते और छटपटाते और उनकी में में की करुण चीत्कार दो तीन मिनट में ही शान्त होकर उनका शव ठण्डा पड़ जाता था। इससे रोषित होकर मैंने एक बहुत ही कटु लेख लिखकर पहिले अर्जुन को प्रकाशनार्थ भेजा। परन्तु अर्जुन ने उसे अत्यन्त तेज और कटु बताकर प्रकाशित करने से इन्कार कर दिया। वह लेख फिर मैंने प्रताप को भेज दिया। प्रताप में वह छपा। उस लेख का शीर्षक था 'व्यभिचारिणी दिल्ली।' उस लेख को पढकर मेरे शाक नागरी मित्रों ने मुझे नाराजी के पत्र लिखे थे। परन्तु उस लेख की प्रशंसा से ओतप्रोत जो पत्र मुझे प्राप्त हुआ वह था चांद इलाहाबाद के मालिक रामरखसिंह सहगल का। वे मेरे इस लेख से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। कहिए, मुझे उनके चाँद के कालमों में खींच ले गया। फिर तो उन्होंने मुझे बहुत कम कहीं अन्यत्र अपनी रचना भेजने की छूट दी थी। उन्होंने मुझसे बड़ी आत्मीयता और दृढता से यह कह दिया था कि आपकी प्रत्येक रचना प्रथम चांद में आनी चाहिए। चांद सामाजिक क्रान्ति का पत्र था। मेरे उनके विचार समाज सुधार के दृष्टिकोण से परस्पर में मिल रहे थे। इसलिए चाँद के पृष्ठ के पृष्ठ मेरी लेखनी से लिखे जाने लगे।

उन दिनों चाँद में प० नन्दकिशोर तिवारी सम्पादकीय विभाग में थे। उनकी प्रेम और श्रद्धा ने भी मुझे चाँद की ओर हमारे बाँधे रखा। चाँद के पत्राक और अछूताक दो विशेषाक उन्होंने आयोजित किए थे। मेरी कहानियाँ चाँद और सुधा दोनों में छपा करती थी। सुधा के दुलारेलाल भी दिल्ली आकर मुझसे मिले और मुझे अपने सुधा परिवार में सम्मिलित किया। इसी भेंट में वे मेरा नवीन उपन्यास 'हृदय की प्यास' प्रकाशित करने के लिए ले गए थे।

परन्तु समाज की अन्ध रूढियों पर चाँद के प्रहार मुझे अत्यन्त प्रिय थे। मेरी लेखनकला का उबरता हुआ रंग दो ही पत्रों का प्राप्त हुआ, एक प्रताप कानपुर और दूसरा 'चाँद' इलाहाबाद। सहगल जी के साथ योजना बनी और अन्त में चाँद के ६ विशेषांक निकालने का भार सहगल जी ने मुझे सौंपा। उन दिनों राजनैतिक वातावरण अत्यन्त गर्म था। बम पार्टी और कांग्रेस पार्टी दोनों ही सक्रिय हो रही थीं। मैंने चाँद का प्रथम विशेषांक फाँसी अंक निकालने की घोषणा की। फाँसी अंक की आवश्यकता बताते हुए मैंने जो मत प्रकट किया था वह इस प्रकार था —

'मनुष्य के द्वारा मनुष्य की हत्या जगत का अत्यन्त जघन्य काम है, पर यदि यह कार्य न्याय और शान्ति रक्षा के नाम पर किया जाय तो मनुष्य समाज को मनुष्य जीवन के उत्कर्ष से गिराने वाला भीषण पाप है। इस पातक का जितनी तीव्रता से उन्मूलन किया जाय, मनुष्य जाति का उतना ही कल्याण है। इतिहास के निष्कलङ्क और अमर एवं श्रद्धास्पद पृष्ठ यदि किसी विषय में कलङ्कित समझे जा सकते हैं तो वह यही भीषण पाप है। घोर और पाशविक प्रवाह में आकर जीवित मनुष्यों को मनुष्यों ने समय समय पर हत्याएं की हैं और आज तक उनकी सन्तान अपने पूर्व पुरुषों के इस पाप के लिए रो रही है। संसार के अतीत पृष्ठों पर से काल की काली धूल झाड़ने के बाद भिन्न भिन्न देश के महान पुरुषों को सूली, फाँसी, कत्ल, अग्निदाह या दारुण मृत्यु यन्त्रों से बिना कारण तड़प तड़प कर प्राण देते देखकर, सहसा मन में मनुष्य समाज के प्रति तिरस्कार का तीव्र भाव उत्पन्न होता है। महापुरुष सुकरात, जो मिट्टी के बर्तन बनाकर गरीब पुरुष की तरह अपना पेट भरता था, परन्तु जो गन्दे विश्वास और रूढियों के स्थान पर मस्तिष्क में ज्ञान की निर्मल ज्योति को धारण किए था, केवल इसी कारण विष पान पर विवश किया गया। उसने महाज्ञानी की तरह विष पिया और मरा। आज हजारों वर्ष से संसार उसकी इस महानता को अनुभव करके रो रहा है, पर उस पर आह नहीं। मसीह, जो सत्यधर्म और रूढियों का विच्छेदक पुरुष था, इससे भी कष्टदायिनी मृत्यु से मारा गया। प्राण निकलने के अन्तिम क्षण तक वह अत्याचारियों के लिए "क्षमा-क्षमा" पुकारता रहा। स्त्रियाँ तक इस अत्याचार से नहीं बचीं। जोन आफ आर्क को जीता जलाए जाने के लिए समस्त अंग्रेज लज्जित हैं। उसी प्रकार इङ्ग-

लण्ड पर स्काटलण्ड की दुखिया रानी मेरी का रक्त सवार है। यूनान और रोम के इतिहास इस रक्तपात के वातावरण से ओतप्रोत हो रहे है। भारत के पुराणो, जन ग्र थो, बौद्ध कालीन ग्र थो मे ऐसे असख्य प्राण दण्डो की भरमार है, जि हे पढते पढते मन मे मनुष्य जाति पर क्रोध उत्पन्न होता है। भारत मे अगरेजो के द्वारा सबसे प्रथम नन्दकुमार को निरपराध फासी दी गई थी। विचारक व्यक्ति के विषय मे विद्वानो का मत है कि इससे प्रथम किसी भी व्यक्ति ने यायासन को इस प्रकार कलङ्कित नही किया था। फासी के कुछ काल बाद उच्च अधिकारियो से उ हे छोड दने का परवाना आ गया था। सन् १८५७ के गदर के नेता नानासाहब की कुमारी निरपराध बालिका को कान पुर मे जीवित जलाया जाना—न भूलनेवाली रोमाञ्चकारी घटना है। आज अतीत काल के बबर जीवन शा त हो रहे है, राज्य शक्तिया एक शासक मस्तिष्क से पतित होकर जन समूह मे रम रही है। प्रजा जवान हो गई है और अब वह एक बार फिर जजर होने तक स्वाधीन, स्वावलम्बी एव आत्म शासन की अभिलाषा रखती है। ऐसी दशा मे हम सारे ससार के सामने यह प्रस्ताव रखना चाहते ह कि अब याय और शा ति के नाम पर मनुष्य वध करने की पाशविक प्रथा उडा दी जाय। कोई गवनमेट कोई सरकार, किसी भी हालत म, किसी भी पुरुष की हत्या न कर सके। कानून क्या कहता है, यह बात सुनने की हमे फुरसत नही है। अगर वह ऐसी पाप कथा का, एसी जघ य बात का समथन करेगा, तो हम उसका नाश कर डालगे, हम इस बात पर तुले हुए है। हमारा यह दावा है कि जब मनुष्य एक कीडे मकोडे को भी पदा नही कर सकता तो किसी मनुष्य को मारने का उसे क्या अधिकार है? राजा प्रसन होने पर किसी को धन मान दे सकता है, तो वह अप्रसन्न होने पर उसे छीनता। परन्तु जब वह प्राण नही दे सकता, तब प्राण लने का उसको क्या अधिकार है? केवल एक ही युक्ति है, जो प्राण दण्ड के पक्ष मे कही जाती है। वह यह है कि प्राण दण्ड यदि कम हो जाय गे तो भयङ्कर अपराध बढ जायेगे। हम यह कहते है कि यह बात झूठ और अप्रमाणिक है। प्राचीन काल मे सारे ससार मे प्राण दण्ड की ऐसी रीतिया प्रचलित थी, जिनसे अधिक से अधिक कष्ट अपराधी को दिया जाता था। महाराष्ट्र कवि समथगुरू रामदास ने ऐसे दण्ड देखे थे कि गम चिमटो से जीवित खाल खीची गई, आधा शरीर धरती म गाडकर, शरीर पर दही डालकर, शिकारी कुत्ते छोड दिए गए। यह सजा प्राय स्त्रिया को मिलती थी, नाखूनो मे गम सूइया घुसेड दी गइ, शरीर के जोड जोड अलग कर दिए गए। यूरोप म गम तवे पर जीवित मनुष्य भून जाते थ, शिकजा म हड्डिया तोडी जाती थी। हजारो दशको के सामने कई दिन तक मनुष्य क्षत विक्षत, अधमरा, नग्न पडा तडपता रहता था। ऐसे सु दर प्रम और सामाजिक आदश म रहने वाला मनुष्य ऐसे नीच निदय दृश्य देख सका होगा, इस पर सहसा विश्वास नही होता। परन्तु ये

घटनाए भिन्न भिन्न हैं । रोम के इतिहास में शेरों के आगे मनुष्यों को बांध करके डाला जाना, एक हृदय को हिला देने वाला दृश्य उपस्थित करता था ।

क्या हमें इस बात पर विचार नहीं करना चाहिए कि एक मनुष्य, जो किसी भी घटना से अत्यन्त उत्तेजित होकर पशु बनकर क्रोध मे किसी को मार डालता है वह कहा तक क्षमा का अधिकारी है ? परन्तु जब उसके अपराध की सजा मौत है, तब जो व्यक्ति शान्ति भाव से न्याय और विचार का अधिष्ठाता बनकर किसी को मार डालने की आज्ञा देता है, तो उसको क्या दण्ड होना चाहिए ? मनुष्य से मनुष्य का वध, आवेश और क्रोध मे तो क्षम्य होभी सकता है, परन्तु विचार शक्ति रहते तो किसी भी दशा में नही ।

हम इस बात पर भी विश्वास नही करते कि प्राण दण्ड के भय से अपराधो मे कमी होती है, जैसाकि कहा जाता है । जब प्राण दण्ड अत्यन्त कष्ट से दिया जाता था, तब भी ऐसे अपराध होते थे, और अब भी होते ही है । सच पूछिए, तो अपराधो की सख्या दिनोदिन बढती जा रही है । वास्तव मे वे पुरुष, जो न्याय विचार से प्राण दण्ड के अधिकारी होते है अपराध करते समय उस परिस्थिति को पहुच जाते है, जहा किसी भी दशा मे विवेक और विचार का होना सम्भव नही है । ऐसी दशा मे कानून या दण्ड का भय उनके लिए व्यर्थ है । दण्डित व्यक्ति का तो प्राण दण्ड से कुछ सुधार होने की सम्भावना है ही नही, जोकि दण्ड का मुख्य उद्देश्य है ।

दण्ड का अर्थ है सुधार । अपराधी व्यक्ति को भविष्य मे ऐसा परिवर्त्तित कर दिया जाय कि वह उस प्रकार का अपराध न कर सके, राजदण्ड का यह सबसे उत्तम स्वरूप है । किन्तु मृत्यु दण्ड से अपराधी का जरा भी सुधार नही होता, न उसे प्रायश्चित का अवसर ही मिलता है । मृत्यु दण्ड देना उस मूर्ख और नीच वैद्य की चिकित्सा के समान है जो रोगी को आरोग्य करने की चेष्टा न करके, उसे मारकर उसके रोग को आराम होना समझता है ।

कितने ही पुरुष आज प्राण दण्ड से प्राण खोने के बाद निरपराध प्रमाणित हुए है । कितने पुरुष प्राण दण्ड से रक्षा पाकर देश के सुधारक और युगान्तरकारी सिद्ध हुए है । इसलिए, अपराधी भले ही मनुष्य अपने वर्तमान कानून के बल पर, किसी भी कारण से किसी जीवित पुरुष की हत्या न कर सके — इस सम्बन्ध में खूब जोर से पुकार उठाने का दिन आ गया है और मैं यह आवाज उठाने का साहस करता हूँ । मैं ऊची से ऊची इस आवाज को यूरोप, एशिया और अमेरिका तक के वातावरण मे गुजायमान कर देना चाहता हू । मनुष्य जाति के कलकरूप इस जगली प्रथा के विरुद्ध आवाज बुलन्द करने का सूत्रपात करता हूँ ।

नवम्बर १९२८ का अङ्क चाँद का तूफानी विशेषाङ्क 'फासी अङ्क' था । मेरे

कहने और विश्वास पर चाद का यह विशेषाक बहुत अधिक सख्या म छापा गया था। इस अक के प्रकाशित होते ही समस्त भारत मे भूचाल का एक झटका सा लगा था। सजीवन प्रेस मे मेरे पास कुछ युवक कम्पोजीटर बन कर काम किया करते थे, तब मुझे यह गुमान भी नही हुआ था कि ये युवक विप्लववादी देश के नौनिहाल है। पर तु जब फासी अककी सूचना पढकर ये लोग मुझे विप्लववाद का मटर दने आए तो मै उनका परिचय पाकर दग रह गया। भगतसिह के अलावा अ य क्रातिकारियो के भी प्रत्यक्ष दर्शन मुझे उस काल मे हुए। वे उन दिनो मेरे मकान पर गुप्त रूप से रहकर मैटर लिखा करते थे। मेरी पत्नी अत्य त प्रेम और उमग लेकर उनके खाने पीने और आवास का ध्यान रखती थी। पर उन युवको का चरित्र और जीवन भी विचित्र और कल्पनातीत था। न उ हे खाने की सुध थी, न सुख आराम की अभिलाषा। पलक मारते ही मेरे सामने और पलक मारते ही कई कई दिन गायब। आने का कोई टाइम नही। रातको दो दो बजे दरवाजे पर उनकी टिक टिक सुना करता था।

फासी अक की धूमधाम देश भर मे मच गई थी और वह सर्वत्र चर्चा का विषय था। चाद के पाठको ने उसकी कई कई प्रतिया रिजर्व करा ली थी। अग्रज सरकार ने भी फासी अक की विज्ञप्ति और विषय सूचि पढकर अपने हथियार उडे सभाल लिए थे। फलत प्रकाशित होते ही इसकी जब्ती का हुक्म हो गया, और फासी अक छिपे तौर पर हजारो की सख्या मे दस दस रुपयो मे बिका।

दिल्ली आवास के आरम्भिक काल मे रामरखसिह सहगल से पहिली बार मेरी भेट हुई। रहने का ठाठ-बाट खूब शाही था। कपडे खद्दर के, ढीला पाजामा और कुर्ता पहिनते थे। खूब रुआब से रहते थे। देखकर तबियत खुश हो गई। यही स्प्रिट थी, जो मेरे अ दर काम करती थी। वही समाज और राजनीति की क्राति कारी भावनाए थी, जिन्हे मै विचार करता था। फल यह हुआ कि दोनो की पट गई। उनके आदर सत्कार ने मुझे मोह लिया और फिर हम अधिक निकट होते चले गए।

पर तु चाद की आर्थिक दशा उन दिनो अच्छी न थी। प्रतिया भी शायद तीन हजार ही छपती थी। खर्च शाही थे। पुस्तक अच्छी बिकती थी पर खर्च की तगी बनी रहती थी। एक दिन बैठे बैठे विचार हुआ कि कम 'चाद' का उन्नत किया जाए। मैने छ विशेषाको की स्कीम बनाई। जिनमे पहिला 'फासी अक' था। बहुत भारी शका समाधान के बाद श्रीसहगल फासी अक की उपयोगिता पर सहमत हुए। यह भार उन्होने मुझी पर दिया और मैने उसके लिए कलम पकडी। मेरी अभिलाषा थी कि उसमे फाँसी के दण्ड के प्रति तिरस्कार तो प्रकट ही किया जाय, साथ ही मनोरजन की दृष्टि से ससार के प्राण दण्डो को व्यक्त किया जाय। दूसरे इसी बहाने बीसवी शताब्दी मे राजनैतिक कारणो से फासी पाए जाने का एक रिकार्ड भी एकत्र कर लिया जाय।

इसके विज्ञापन की भी सारी योजना मैंने ही बनाई, विज्ञापन के ड्राफ्ट भी मैंने किए। भारत के अनेक पत्रों में फांसी अंक का विज्ञापन छपते ही तहलका मच गया। धडाधड आर्डर आने लगे। उधर सरकार भी चिंतित हो गई। भला सरकार साहित्य में ऐसी उग्र राजनीति और क्रांति कहां देख सकती थी। परन्तु हमारा काम चलता गया और मेरे पास लेखों का ढेर लग गया। परन्तु राजनैतिक फांसी प्राप्त जनों का प्रामाणिक वृत्त मुझे कहीं मिलता ही न था। इसी समय अकस्मात मेरे पास सरदार भगतसिंह ने आकर कुछ आर्थिक सहायता चाही और मैंने वह कठिन काम उन्हें सौंपा। उन दिनों वे सांडर्स को मार चुके थे और पुलिस उनके पीछे थी। वे छद्मवेश में रहते थे तथा नाम बदलकर परिचय देते थे। मैं भी, जब तक कि असेम्बली में बम-धडाका नहीं हुआ, उनका असल परिचय न जान पाया। उन दिनों सहारनपुर और दिल्ली क्रांतिकारियों का अड्डा हो रहा था। उन्होंने घर घर घूम कर क्रांतिकारियों के ७० से ऊपर प्रामाणिक चरित्र और चित्र मुझे दिए, जिसके बदले सिर्फ शायद ७००) उन्हें चांद की ओर से मिले थे। भगतसिंह ने आरम्भ में अपना नाम बतलाया था—बलवन्तसिंह।

चांद का फांसी अंक चांद के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। जब सब मैटर तैयार हो चुका और अपने प्रेस में गया तो सहगल ने तार से पूछा कितना छपेगा। मैंने तार ही से जवाब दिया दस हजार। लेकिन इतनी भारी जोखिम उठाने को सहगल तैयार न थे। इतनी प्रतियां न बिकीं तो? उन दिनों दस हजार किसी मासिक पत्र का छपना आशातीत बात थी। परन्तु मैंने भी हठ ठान ली और तार दिया कि जो प्रति न बिके वह सब मैं खरीद लूंगा, पर दस हजार छापो। निदान फांसी अंक दस हजार छपा।

परन्तु देखने वाले कहते हैं कि कम्पोजीटर मैटर कम्पोज करते करते पागल की भांति कपड़े फाड़ने लगे थे, उन्मत्त होकर छाती पीटने और रोने लगे थे। बडी कठिनाई से सहगल ने व्यवस्था की। उधर सरकार भी बेखबर न थी। अंक निकलते ही उसे जब्त करने की पूरी तैयारी सरकार कर चुकी थी तथा सहगलके प्रेस के चारों ओर काफी पहरा बैठा हुआ था। अन्तत: जब तीन चार दिन होने पर भी पत्र को डिस्पैच करने का साहस उन्हें न हुआ तो मुझे तारद्वारा बुलाया। जाकर देखा सहगल परेशान थे। कहने लगे – कागज सब उधार आया है। स्टाफ को दो मास का वेतन नहीं दिया गया। यदि वी० पी० वसूल न हुए तो मैं तबाह हो जाऊंगा और तब सबसे पहिले आपका खून करूंगा, आप ही ने मुझे इस मुसीबत में डाला है। मैं दस हजार छापना नहीं चाह रहा था।

मैं यही समझता था कि ऐसे मामलों में एक आर्थिक रुख भी है और सचमुच मैंने सहगल को जिस अर्थ संकट में डाला था —यदि पत्र जब्त हो जाता तो उन का निस्तार नहीं था। हमने एक तिकडम सोची। रात के ८ बजे हम पोस्ट मास्टर के मकान पर गए और उसे खरीदकर इस बात पर राजी किया कि वह कोठी पर चलकर सब

पत्रो पर मुहर लगा दे, तथा रजिस्ट्री करदे और यह भारी काम होने पर हमने युक्ति से सारी प्रतिया स्टेशन भेजकर गाडियो मे लदवादी। रात के आठ दस बजे के मध्य यहा से इलाहाबाद से उन दिनो चारो तरफ रेलगाडिया छूटती थी। इस तरह ही दिनमे अङ्क कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, लाहोर आदि देशके भिन्न भिन्न भागोमे जा बिखर गए। हम ने और दो दिन चुप्पी लगाई। तब डिप्टी कमिश्नर के पास दो प्रतिया भेजी गई। पुलिसको आवश्यक कार्यवाही मे दो दिन और लग गए और हमे पूरे पाच दिनका समय मिल गया। सहगल की मेज पर रुपयो का मेह बरस रहा था। चालीस नए क्लर्क स्टाफ मे बढाए गए। नई मशीने खरीदी गइ और चाद दिग्दिगन्त मे प्रसिद्ध हो गया।

इस अक से यथेष्ठ आर्थिक लाभ श्री सहगल को हुआ। तथा हजार स्थायी ग्राहक बन गए। इसी समय भगतसिंह असेम्बली मे बम फेकते हुए गिरफ्तार हुए। पुलिस को सन्देह हुआ कि चाद के इस अङ्क से इस पार्टी का कुछ सम्बन्ध अवश्य है।

पुलिस को चाद कार्यालय से उन लेखको के वास्तविक लेखक का नाम मिल गया जो फर्जी नाम से छपे थे। इस बात से मेरा मन श्री सहगल से खिन्न हो गया।

अब चाद के दूसरे विशेषाङ्क की बारी आई। इस बार मारवाडी अङ्क के द्वारा मै मारवाड को उद्बोधन देना चाहता था। मारवाड की कुरीति पर आक्षेप चाहता था, परन्तु इस अङ्क का सम्पादक यद्यपि मै था, परन्तु सहगलने कुछ ऐसे लेख छाप दिए जो मैने नही चुने थे। उन्होने मेरे चुने लेख भी निकाल दिए। पहिले मैने इस बात को कुछ महत्वपूर्ण नही समझा। पर पत्र ज्योही प्रकाशित हुआ, एक तूफान खडा हो गया। खेतान बन्धुओ ने कलकत्ते के मारवाडी बाजार को उकसाकर एक मुकदमा खडा कर दिया। उसी दौरान मे श्री सहगल पर जूता भी फेका गया और तभी मुझे ज्ञान हुआ कि मारवाडी अङ्क जसे साधनो से दबाव डालकर कुछ लाभान्वित भावना श्री सहगल मे थी। इन सब कारणो से मुझे उनसे एक बारगी ही पृथक हो जाना पडा और यह ठीक ही हुआ। क्योकि भारत मे अगरजी राज्य को लेकर जो मुकदमेबाजी पण्डित सुन्दरलाल मे चली, तथा श्री निरजनलाल भार्गव और श्री सेठ रामगोपाल जी मोहता से जो आर्थिक विवाद उठ खडे हुए, तब यह असम्भव न था कि मुझे भी किसी खराब परिणाम पर पहुँचना पडता। मैने तो आगे सहयोग से सर्वथा ही इन्कार कर दिया था, पर पीछे उन्होने एक दो वैसे ही और विशेषाङ्क निकाले पर उनमे उन्हे सफलता नही मिली। इसके बाद ही शायद उन्हे लीक्वीडेशन मे आना और फिर वाद सस्था से हाथ धोना पडा। बहुत दिन बाद फिर एक दिन मुलाकात हुई। उन दिनो वे लखनऊ रहते थे। जाकर देखा कि वे अपने कुत्ते को बेत से पीट रहे थे। कुत्ता जजीर से बधा था और छोटी ही जात का था। उसने शायद उनकी आज्ञा का उल्लघन किया था। वह पिटकर बुरी तरह छटपटा रहा था। उसकी आखे करुणामयी थी। बडी कठनाई से म

उ ह वहा स ग्गीत गाया । जर वे फूल पौदा से भरे बरांडे म—जिनका उन्हे बेहद शोक था, चाय पीने बठ तो ऐसे प्रगन और निराकार चित्त से बात करने लगे कि म हेरान रह गया और जितना शीघ्र हो सका वहा स भाग निकला ।

फासी अक म जो क्रान्तिवाद का मटर छपा था उसके लेखको की तलाश मे, और बाद म भगतसिंह न जो ८ अप्रल १९२९ को असेम्बली म बम फेका, उसमे सूत्र ढूढते हुए पुलिस न मुझे भी पकड लिया । उस घटना का शुरू स कहता हूँ । एकदिन म भोजन पर बठा हो था कि बलवतसिंह न झपटते हुए आकर कहा—झटपट तयार होजाइए, म टक्सी लाया ह ।

वहा, लाल अगारा म ह दूज के चन्द्रमा क समान पतली और बाकी मूछे, मूछो के नीचे वैसी ही बाकी मुस्कुराहट, सिर पर अग्रजी हेट, टन कालर की शट और निकर, छोटी और तेज आख ।

मैने हसकर कहा । ऐसा क्या अर्जेण्ट आडर ?

जी हा, परन्तु समय नही है । आप जल्दी कीजिए, और माताजी ? उसन मेरी पत्नी की ओर देखकर कुछ होठा ही होठो म कहा ।

परन्तु कहा ? मैने प्रश्न किया ।

एसेम्बली मे । भूल गए कल कहा न था कि आज वहा खास दिन है, स्पीकर पटेल स्तीफा दगे । स्वराज्य पार्टी वाक आउट करगी । और भी न जाने क्या कुछ न हो जाय । उसके स्वर म तेजी थी, आख न जाने क्या सदेश दे रही थी और उसके पैर जसे तपते तवे पर थ ।

मैने कहा - आज जाना नही हो सकेगा बलवन्त, मुझे एक बहुत ही जरूरी काम हे । फिर कभी ।

फिर कभी नही, आज ही । उसने झझला कर कहा । फिर पत्नी की ओर देख कर कहा आप बहुत देर लगायगी, जरा जल्दी कीजिए, दस बज ही रहे है पहुचने म १०–१५ मिनट लग जायगे ।

पत्नी ने मेरी ओर देखा । गाहेबगाहे यह युवक बाब त मेरे पास आ जाता है । विचित्र आदमी है । कभी बच्चो की तरह बसिर पर की बात करता हे कभी खूब गम्भीर हो जाता हे, और कभी गुस्से म आता है, तो छोटे बडे किसी को नही बख्शता । मै उस प्यार करता ह । चाहता हूँ, जब आए, उसे दुलार करूँ, कुछ खिलाऊँ-पिलाऊ । पर बहुत कम ऐसा कर पाता ह । एक तो वह कब आएगा, और कब चल खडा होगा, इसका ठीक ठिकाना ही नही, दूसरे शिष्टाचार की भी उसे परवाह नही, और खाने पहनन का तो कभी शौक ही नही । मुँहफट ऐसा कि कभी कभी मुझे ही फटकार बठता हे । लकिन मुझसे बात ऐसे करता है, जसे सगे पिता से । 'बाबूजी' कह

कर सम्बोधन करता है—गुस्से मे भी और खुश रहने पर भी। कभी कभी जबतक चाय पानी मगाऊँ, बात करते करते भाग खडा होता है। बिल्कुल सनकी। पर आज कमीज निकर नई है। हट छज्जेदार बडी बाकी है। कमीज के खुले गले से पुष्ट गर्दन भली लग रही है। लाल सुख स्वस्थ्य चेहरे पर खूब लाल पतले होठ रग दिखा रहे है। अभी उम्र ही क्या है। शायद २४ को पार कर रहा हो। अपना अता पता कभी बताता नही। अर्जुन अखबार के सम्पादकीय विभाग मे अनुवादक है। मेरे पास सिर्फ दो कारण से आता है, या तो फटकारने के लिए या रुपया मागने के लिए। दोनो ही मामलो मे सकोच और झिझक से रहित। एकदम दो टूक। फटकारता है मुझे कायर कह कर। इतने बडे साहित्यिक होकर आप कुछ नही करते, यही उसका कहना है। रुपए मागता है, तो कहता है, कुछ रुपए दीजिए बाबूजी।

मै हुज्जत नही करता। होते है तो दे देता हू। नही तो पत्नी के पास भेज देता हूँ। पत्नी कभी उसे छूछ हाथ नही लौटाती। रुपया हाथ मे न हो, तो भी नही। कही से बन्दोबस्त कर देती है। हम लोग उससे यह नही पूछते–'रुपया करोगे क्या।' रुपया वह कभी वापस देता भी नही। वापस करने की चर्चा कभी करता भी नही।

उसने गुस्से मे कहा—सारा वक्त आप यही बर्बाद कर देगे बाबूजी।

मैने कहा—मगर पास कहा है ?

ये है, उसने जेबसे निकाल कर दिखा दिए।

मैने कहा—देखू ?

देख लीजिएगा रास्ते मे, अब आप हाथ धोइए।

क्या खाना भी न खाऊँ ?

अब लौटकर खाइएगा। कुल एक घण्टा ही तो लगेगा। मैने और हुज्जत नही की। उठ खडा हुआ। पत्नी बिना खाए तैयार हो गई। चन्द्रसेन भी हमारे साथ था। हम लोग जब एसेम्बली भवन मे घुस रहे थे, तब दस बजकर १५ मिनट हो चुके थे।

एसेम्बली भवन मे आज बेशुमार भीड थी। दर्शक गलरी मे तिल धरने को जगह न थी। मुझे दर्शको की गलेरी के द्वार पर छोडकर बलवन्त न जाने कहा गायब हो गया था। पत्नी को लेडीज गलरी मे बैठाकर मै अपने बैठने को जुगत सोच रहा था। बैठने को जगह नही मिल रही थी। बहुत लोग मेरी ही भाँति खडे या इधर उधर भटक रहे थे। मै बीच बीच मे लोगो के कन्धो पर से उचक कर वक्ता के भाषण के एकाध शब्द सुन लेता था। उस दिन 'पब्लिक सेफ्टी बिल' पर बहस हो रही थी। बहस खूब गर्मा-गर्म थी। पर मुझे कुछ आनन्द नही आ रहा था, आराम से बैठने का शौक ही नही लग रहा था। मै भीड से उचक कर आगे देखने लगा। मोतीलाल नेहरू अपने स्थान से उठकर किसी दूसरे सदस्य के पास जा उसके कान मे फुसफुसा रहे थे। उधर ही मेरा

ध्यान था। ण ह ा गा ा ा गा र पी ठ स्या–गानी मण्नी गडी थी। म मुह खोल कर उागे क ु ा ा ी ाह र ा था, ण न ा पा न सामने युवक पर हठात् मेरी नजर प ग ई। म गो ा ा नगा, म ा ही स्या है। उसने मेरी तरफ देखा–मुझे मालूम हुआ, मुझे दग ा र स्या ाठ ा ऊ ति पर दुगर ी ागग वह प्राया स ओझल हो गया। थोडी दर सान ा ा ार याद गाया स यक्ति ने भी चाद के फासी ग्रक क लिए राजनीतिक फागी प्राप्त प्र िया क ा वहुत सा दुष्प्राप्य मसा ा दिया था, परन्तु यह भाग क्या गया? ग्रा ा क्या न ही? म नजी से उसी ओर को लपका जिस ओर वह गया था–पर उसका पता नहीं चला।

म उधर इधर नजर दौ ा ही रहा था कि सहसा तीर की भाति तेजी से चलता हुआ ा ा त र र ग गुजरा। वह एक प्रकार से मुझे धक्का देता हुआ सा निकल गया। मने उस पुकारा और ए क ा म उसके पीछे लपका, पर तु उसने इस पर ध्यान नही दिया। कु छ र ा स्या–या ही अ तर पर वह उसी सामने युवक से कुछ धीरे धीरे बात कर रहा है। म जी से– कहना चाहिए दौडकर उसके पास पहुँच गया, पर तु मुझे उधर आता देख वे दोनो ही भिन्न दिशाओ की ओर जाकर एकदम भीड मे गायब हो गए।

म इस अद्भुत मामले से चमत्कृत सा खडा कुछ सोच ही रहा था कि घण्टी बजी। सब लोग आगे ब ा र कायवाही देखने लगे। बहस खत्म हो चली थी और सदस्यगण शिकार के पाशो की भाँति इधर से उधर वोट देने को उठ रहे थे। मनो रजक ह य था। सब ोग ध्यान से देख रहे थे। म भी और सब बात भूल कर यही देखने लगा।

म ा ी ग ा ग ा ा ि ा र ा खडा था। स्पीकर पटेल न स्थिर गभीर स्वर मे बिल पर अपना निणय दि या, और एक क्षण रुके। बगल के सज्जन बोले–तो, स्पीकर अब स्तीफा भी ग, मेरा ध्यान स्पीकर की हिलती हुई दाढी पर था। एकाएक भया न ध ा ा स भवन ि ा गया और कोई दो गज विद्युत् प्रकाश ठीक उसी स्थान पर चमका, जहाँ सर हारी सदस्य ब ठ थ। साथ ही ऊपर स खिडकियो के काच के टुकडो, और धुए ा एक धौ ार इस पर बरस गई।

क्षणभर ह विमू ट सा गया। किसी ने कहा–'बम बम।' परमाणु और काँच के टु ा ा ा ा ा ऊपर ा रही थी। भवन धुए से भर गया था। चारो ओर भगदड मच ग ई थी। सारे सा न सबस पहले उडनछू हो गए थे। लेडोज गैलरी मे अग्रज स्त्रियाँ चीख रही थी। एक बुढिया मेम अपने ही साए मे उलझ कर छाता हाथ मे लिए औधे मुह गिर गई थी, शेष स्त्रियाँ उसे कुचलती हुई बदहवास भाग रही थी।

अँग्रेज स्त्रियो को निरीह भारतीय स्त्रियो की भाति रोते देखना मेरे लिए यह पहिला ही अवसर था। विचित्र दृश्य था। मैने पत्नी का हाथ पकडा और एक प्रकार से उन्हे घसीटता हुआ सीढियो तक ले गया। मेरा ख्याल था- यह बिल्डिंग गिर रही है। परन्तु कई क्षण बीतने पर भी बिल्डिंग ढही नही। जी पर जाकर मै खडा हो गया। मैने सोचा—जीवन मे फिर यह कब देखने का मिलेगा। पत्नी और चन्द्रगन को वही खडे रहने का सकेत कर मै भीतर को लपका। लोग भागे आ रहे थे और मै भीतर जा रहा था। मै सीधा घटना स्थल की ओर दौडा। तभी और एक धमाका हुआ। धुएँ और अन्धकार मे कुछ भी नही दीख रहा था। उसी समय जहा मै था, वहा से ४ ५ गज के फासले पर अचल खडा बलवन्त और उसके साथी दनादन गोलिया चला रहे थे। मेरे बदन का खून जम गया। मैने चाहा कि मै उन्हे पुकारू या उनके निकट पहुँच जाऊँ। इसी क्षण बलवन्त ने गरज कर कहा—'लाग लिव रेवोल्यूशन!' और बहुत से पर्चे निकालकर हवा मे उडाने लगे। उसके साथी ने भी यही किया।

धुआ कम हो रहा था। नीचे झाक कर देखा —सन्नाटा था। केवल दो व्यक्ति वहा बैठे थे। एक श्री क्रेरार, सरकार के गृह मन्त्री और दूसरे प० मोतीलाल नेहरू। कुछ व्यक्ति जो श्री क्रेरार के स्थान पर आक्रान्त हुए थे पडे कराह रहे थे, ऊपर दोनो ही युवक अचल खडे थे। कुछ समय तक पुलिस को उन दोनो युवको के पास जाने का साहस नही हुआ। अन्त मे पुलिस की दुविधा समझ उन्होने अपने अपने रिवाल्वर फेक दिए और अफसरो को पास आने का इशारा किया।

बरामदे मे शस्त्रो की खडक और भारी भारी बूटो की धमक सुनाई दी। दोनो ही कण्ठो ने नारा बुलन्द किया, 'लाग लिव रेवोल्यूशन' और इसी समय किसी ने चीख कर कहा—'पकडो इन्हे।'

गोरे सार्जेन्ट सगीने ले लेकर दौडते दिखाई दिए। मैने भीड मे घुसकर देखा, दोनो युवको को दो दो सार्जन्टो ने भुजपाश मे पीछे से कस रखा है। दोनो युवको की छाती उभरी हुई थी और उनके होठोपर हास्य की रेखाए भारतीय क्रान्ति के इतिहास का नया अध्याय लिख रही थी। लोग भाति भाति की बाते कर रहे थे। मै अकेला खडा उन दोनो युवको को देख रहा था। जिनका असली भेद वर्षो के सम्पर्क मे भी मै न जान पाया था। मै वहा से हटकर पत्नी के पास आ खडा हुआ। जब दोनो पास से गुजरे—बलवन्त की आखो ने एक चोर नजर से हमारी ओर देखा, उसकी आखे हस रही थी। पत्नी की आखो मे आसू भर आए, जिन्हे उन चार नजरो ने देख लिया। उन्होने मुह फेरा, सीना ताना और क्रान्ति पथ का जैसे शिलान्यास करते हुए पुलिस के घेरे मे आगे बढ गए। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, भूचाल आया है, विश्व जल रहा है, प्रलय भूलोक को निगलने की तयारी मे है।

देखते ही देखते ामम्बली भवन सारी खाकी पुलिस से भर गया। उसके सब द्वार बन्द कर दिये गए और एक प्रकार से भीतर के सभी लोग कैद होगए। मैने धीरे धीरे भवन का एक चक्कर लगाया। चाहता था, कोई परिचित पुरुष मिल जाय, तो बात करूँ, बाहर जाने की राह निकालूँ। पत्नी बहुत परेशान थी। अब बलवन्त का क्या होगा? क्या कुछ ले दे कर मामला साफ नहीं किया जा सकता? यह इन्होने क्या किया? क्या किया? बम होता क्या है? वह नही जानती थी कि क्रातिकारी कैसे जीव होते हैं। उनके क्रियाकलाप की भावना और उद्देश्य क्या है? और यह तो मैं भी नहीं समझ पाया था कि यह युवक, जो सदैव अस्थिर और अस्तव्यस्त मेरे पास आता रहा है, क्रान्तिकारी दल का अग्रदूत है। सच पूछा जाय तो क्रातिकारी मामलो पर मैने कभी गहराई से विचार ही नहीं किया था, यद्यपि चाद के फासी अक मे मैने उसकी बहुत उहापोह की थी।

परन्तु अब तो मुझे यहाँ पाठको को भी भारतीय क्राति के सम्बन्ध मे दो शब्द लिखना उचित प्रतीत होता है। ईस्वी सन् १९१६ भारतीय क्रातिकारियो के नवयुग का प्रभात काल था। इसी वर्ष लार्ड चेम्सफोर्ड भारत के वायसराय होकर आए थे और तब से १९२१ तक उनका शासनकाल रहा। उनके इस पचवर्षीय शासनकाल मे बडे बडे महत्वपूर्ण कार्य हुए। 'माण्टग्यू चेम्सफोर्ड रिफार्म्स बिल' पास हुआ, जिसके फलस्वरूप भारत की शासनप्रणाली मे रद्दोबदल हुए। लेजिस्लेटिव कौंसिल के स्थान पर कौंसिल आफ स्टेट और लेजिस्लेटिव एसेम्बली दो विभिन्न चेम्बर्स स्थापित हुए। प्रत्येक प्रान्त की व्यवस्थापिका सभाएं बनी और उनमे ७० प्रतिशत लोक निर्वाचित सदस्य आसीन हुए। सर्वप्रथम भारतीय लार्ड सिन्हा बिहार उडीसा के गवर्नर बनाए गए और इस प्रकार डायरकी (द्वैत शासन) व्यवस्था स्थापित हुई। परन्तु शीघ्र ही इस प्रणाली के दोषो को देखकर देश मे असन्तोष उत्पन्न होने लगा, जिसके कारणो की जाच के लिए 'साइमन कमीशन' की नियुक्ति हुई। परन्तु इस कमीशन मे एक भी लोक निर्वाचित सदस्य न था। इसलिये भारत ने इस कमीशन का तीव्र बहिष्कार किया। लाहौर मे जब यह कमीशन पहुचा तो वहा की जनता ने सिंह विक्रम लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे कमीशन का काले झण्डो से तिरस्कार किया। फलस्वरूप सरकार से सघर्ष हुआ और सिंह विक्रम लाजपतराय पुलिस की लाठी की चोट से आहत होकर स्वर्गगत हुए। परन्तु मरने से प्रथम वे कह गए कि मेरी छाती पर पडी हुई एक एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कीलें होगी।

सिंह विक्रम लाजपतराय की इस मृत्यु से देश भर क्रोध मे जल उठा और प्रतिहिंसा की एक ऐसी प्रबल भावना जाग्रत हो गई कि जिसने सरकार को चिंतित कर दिया। देश का यौवन हुकार करने लगा और उसने क्रातिकारी दल का सगठन किया।

१७ नवम्बर १६२८ को लाला लाजपतराय का देहा त हुआ। उसके ठीक एक मास बाद सत्रह ही दिसम्बर को सध्या के कोइ पौने पाच बजे दिन दहाडे लाहौर के पुलिस अफसर साण्डस को इन तरुण क्राति दूतो ने गोलियो से ढेर कर दिया। यह उन लाठिया का पुरस्कार था जो देश पूज्य लाजपतराय की छाती पर घातक रूप मे पडी थी।

पुलिस के दल के दल अपराधियो की खोज मे देशभर म धूम मचाने लगे, पर तु अपराधियो का कोई भी सुराग न लगा। बहुत से अपराधियो को जेल और पुलिस की यत्रणा अवश्य सहनी पडी। इसके चार मास बाद आठवी अप्रल को भारत को जगाने और अग्रजो के बहरे काना मे चेतना उत्पन्न करने के लिए असेम्बली मे यह हुआ।

सकडो गोरे और काले पुलिस के कमचारी भारी भारी कदमो से भवन को दहलाते हुए तेजी मे इधर से उधर घूम रहे थे। मेरी ही भाँति और भी अनेक दशक वहा बद हो गये थे। एक मजिस्ट्रेट द्वार पर एक एक की छानबीन करता जाता था और एक-एक को छोडता जाता था। सदेहास्पद जनो को रोकता भी जाता था। भीड बहुत थी और हम एक बार अपने उस प्रिय युवक को देखने को आतुर थ। सभ वत कोई सहायता पहुँचा सके। भाँति भाँति के लोग भाँति भाँति की बात कर रहे थे और यह तो हम समझ ही गए थे कि आधा पागल और जिद्दी सा वह सु दर युवक एक जबदस्त क्रातिकारी था। उसके प्रति स्नेह के स्थान पर श्रद्धा और आश्चय के भाव मेरे मन मे भर रहे थे।

तीन घण्टे व्यतीत हो गए। अब पुलिस कमचारियो के मह पर चिता और घबराहट के चिह्न न थे। साहब लोगो के चाय पानी का समय हो गया था। बरा लोग चाय, टोस्ट, अडे ट्र मे सजाए तत्परता से इधर से उधर ले जा रहे थ। उन्ह देख कर पत्नी ने धीरे से कहा—ये हत्यारे क्या उ ह भी कुछ खिलायगे पिलायगे। मैं जवाब नही दे पाया था। मैंने सोचा—उन्हे अब खाना, पीना, सोना, हँसना कहा नसीब! कुछ पुलिस के अफसर तेजी से आते नजर आए। उनमे कुछ हँसकर बात कर रहे थ। उनमे यूरोपियन भी थे। थानेदार लोग आसपास मे खडे लोगो को सख्त से बगल म हटाते जाते थे। अकस्मात् हमने देखा—वे दोना युवक हथकडियो मे जकडे हुए सामने से चले आ रहे है। वही गज, एठ की चाल, वही निर्भीक दृष्टि, वही तिरछी मुस्कुराहट। मेरी जेब मे एक सतरा पडा था, ज्योही व मेरे पास से गुजरे—मैने चाहा, यह सतरा मैं उस प्यारे युवक को भेट कर दू। परन्तु मैं साहस न कर सका, वह चला गया। हमारी ओर उसने आखे तिरछी करके भी नही देखा।

अब हमने बाहर जाने की सोची। मै पत्नी को आगे करके द्वार पर आया, भीड अब भी बहुत थी। बारी आने पर मैंने अपना पास मजिस्ट्रेट के आगे बढाया। खुदा की मार, उस पर मेरे नाम के आगे प्रोफेसर लिखा था। उन दिनो मैं ग्यासराह

अपने को प्रोफेसर लिखा करता था। मजिस्ट्रेट ने पूछा—'आप कहा के प्रोफेसर हे ?'

'अब ता नही, परतु कुछ वर्ष पूर्व लाहोर डी० ए० वी० कालेज मे प्रोफेसर था।' डी० ए० वी० कालेज का नाम सुनते ही उसने आखे फाड फाड कर मेरी तरफ देखा। फिर कहा—'अच्छा, अच्छा, जरा ठहरिए, मे आप से कुछ प्रश्न करूँगा। परन्तु श्रीमती जी जा सकती है।'

मैने मुस्करा कर कहा —'खेद हे, हम लोगो ने विवाह के समय सुख दुख मे साथ रहने का वचन दिया हे। वे मुझे अकेला छोडकर शायद न जा सकेगी।'

मजिस्ट्रेट ने मुस्कराकर हमे देखा, हम लोग हटकर एक बगलमे खडे हो गए।

लेकिन चन्द्रसेन के पास मे भयकर बाधा आ खडी हुई। उसके नाम का पास तो बनवाया गया नही था। वह हमारे साथ साथ जब असेम्बली भवन के द्वार पर पहुचा ता हिन्दुस्तान टाइम्स के रिपोटर चमनलाल उसे दीख पडे। उसने लपक कर उनसे कहा कि एक पास दिलवाइए। चमनलाल के हाथ मे ईसाई मित्र के नाम का पास था, जिसे वे देने के लिए ढूढ रहे थे। पर वह मिल नही रहा था। असेम्बली की कायवाही शुरू होने का समय हो चुका था। उन्होने अपने उस मित्र की आशा छाड दी ओर वह पास चन्द्रसेन को दे दिया। मजिस्ट्रेट ने जब नाम पूछा तो चन्द्रसेन ने अपना सही नाम ही बताया ओर यह भी कह दिया कि मै शास्त्रीजी का छोटा भाई हू। अब फर्जी नाम का पास बनवाने के अपराध मे उसे सदेहास्पद लोगो के घेरे मे रखने की आज्ञा मजिस्ट्रेट ने गोरे सार्जेट को दी। पत्नी इससे ओर घबडा गई, परन्तु मैने उन्हे शान्ति ओर धैर्य रखने का सकेत किया। मै चुपचाप चन्द्रसेन को बचाने का उपाय सोच रहा था।

थोडी देर बाद मजिस्ट्रेट मेरे पास आया, कुछ प्रश्न किए, पता लिखा, ओर मुझे चले जाने की अनुमति दे दी। मैने मजिस्ट्रेट से चन्द्रसेन के पास प्राप्ति की असली हकीकत बयान कर दी। चमनलाल पास ही घूम रहे थे। उन्हे बुलाकर अपनी बात का समर्थन भी करा लिया। मेरे ओर चमनलाल के कथन पर विश्वास करके चन्द्रसेन को छोड दिया। इस आकस्मिक काल मे पत्नी का चेहरा पीला पड गया था। चन्द्रसेन का हाथ पकडकर तो उनकी जान मे जान आई। असेम्बली भवन से बाहर आकर भी हम लोग गए नहीं। भवन का एक चक्कर लगाया। बहुत लोगो ने बहुत सी बाते पूछी। परन्तु मैं स्वय ही भारी भारी जिज्ञासाओ से भरा हुआ था। अन्तत मै द्वार के सामने भीड के साथ आ खडा हुआ। लोग इस बात से बडे निराश हो रहे थे कि बम मे न कोई मरा, न घायल भवन ही टूट फूट कर ढेर हुआ। थोडी देर बाद एक लारी आ खडी हुई। लारी खुली थी। उस पर आठ कान्स्टेबुल सशस्त्र चढ गए। इसके बाद दोनो अभियुक्त गोरे सार्जेटो के पहरे मे हथकडियो से जकड कर बन्दी बना कर लाए गए। दोनो लारी पर खडे हो गए। साथ मे आ रहे थे श्री चमनलाल—प्रेस रिपोटर। युवको ने

एकबार, 'क्राति चिरजीवी हो' के नारे लगाए, लारी चल दी। ठीक उसी समय 'ट्रिब्यून' दैनिक के कार्यालय के सदर दरवाजे पर एक पहलवान जैसा भारी भरकम व्यक्ति आया जो साधारण मजदूरों जैसे कपडे पहने था, एक बन्द सा लिफाफा चपरासी को दे गया। लिफाफा सम्पादक के नाम था। सम्पादक ने जब उसे खोला तो उसमें एक फोटो और अग्रेजी मे टाइप किए कुछ पेज उनके हाथो मे आ गए। सम्पादक के हाथ कापने लगे। उनके सकेत से धडधडाती मशीने बन्द हो गई। प्रेस के दरवाजे बन्द कर दिए गए—पर्चे कम्पोज होने लगे। यह चित्र और चरित्र प्रसिद्ध क्रातिकारी सरदार भगतसिह का था, जिसने आज अग्रेजी सरकार को इस प्रकार सलामी दी थी। रातो रात पत्र छाप कर प्रभात से पहले ही उस तेजस्वी युवक का चरित्र और चित्र घर घर पहुच गया। और भगतसिह का नाम एक बार विश्व की राजनीति मे गूज उठा। इस दिन से साम्यवादी जवाहरलाल नेहरू, प्रजातन्त्री मोतीलाल, और अहिंसावादी गाधीजी ने इस कृत्य की निन्दा की, परन्तु अभियुक्तो ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक शान्त रह कर पुलिस के सम्मुख अपराध की स्वीकृति दी। और कुछ कहने से इन्कार कर दिया। उन्होने कहा—'हमे जो कुछ कहना है, अदालत ही मे कहेगे।'

बडी ही धूमधाम और गर्म वातावरण मे एक ट्रिब्यूनल के सम्मुख यह केस चला। इसका नाम हुआ 'लाहोर षडयन्त्र केस।' यह केवल असेम्बली मे बम काण्ड ही मे सम्बन्धित नही था, साण्डर्स हत्या, बम बनाना राजद्रोह आदि के सगीन जुर्म भी साथ थे। इकतीस व्यक्तियो को इस अपराध का सगी साथी बनाया गया था, पर पकडे गए थे केवल चोबीस ही।

अदालत के सम्मुख भगतसिह के नेतृत्व मे अभियुक्तो ने निम्नलिखित बयान दिया—'हम लोग सगीन मुजरिमो की हैसियत से यहा उपस्थित है। हम मनुष्य जीवन को पवित्र समझते है। हम न पागल है, न कलकित हत्यारे। हम इतिहास के विद्यार्थी है और अपने देश की हालत को ठीक ठीक देख रहे है। हम मक्कारी और पाखण्ड से घृणा करते है। हमारा यह व्यावहारिक प्रदर्शन एक ऐसी सस्था के विरुद्ध था जो प्रारम्भ ही से अयोग्य और शैतान है। यह तानाशाही और गैर जिम्मेदार सस्था दुनिया के सामने भारत को बेबस और अपमानित स्थिति मे बनाए हुए है। यह सरकार जनता के प्रतिनिधियो की राष्ट्रीय मागो को सदा ठुकराती रही, असेम्बली द्वारा स्वीकृत प्रस्तावो को दमनकारी और निरकुश ढग से नवाबाना हिकारत के साथ कलम के एक शोशे से रद्द करती रही है। बावजूद इस तमाम शानो शौकत और तडक भडक के जो करोडो मेहनतकशो के बल पर कायम रखी जाती है, यह शैतानी सरकार एक ढोल—की पोल है। यह सस्था सब कुछ हडप जाने वालो की गलाघोट ताकत का स्मारक और असहाय मेहनतकशो की गुलामी का चिह्न है। इसने देश के आदरणीय प्रतिनि

विया के सिर पर लात रखकर उस ने एक ऐसा कानून बनाए है, जिससे देश के करोडो भूख जन अपनी जानत स उदरन क उपाया स वचित कर दिए गए हैं। हम अपनी आत्मा क क्रन्दन को न रोक सकते। इसलिए हमने अग्रजो को सुख स्वप्नो से जगाने के लिए असम्बली फर्श पर बम फेंके हैं। जिसमें हम अपनी हृदय को चीरनेवाली वेदना को प्रकट कर और दरिद्र का हाल जानें और बेपरवाहा, अन्यमनस्को को समय पर चेता दें। बाद में हमने जानबूझ कर आत्मसमर्पण किया है और हम अपने कृत्यो का फल भोगने में प्रसन्न हैं।

देश भर में इस मुकदमे की धूम मच गई। समाचार पत्र ही नही, छोटे बडे प्रत्येक की जुबान पर उन तरुण क्रान्तिकारियो का नाम छा गया। पकड धकड, और तलाशियो का तो कहना ही क्या? देश में सर्वत्र आशंका व्याप्त हो गई।

एक दिन भोर के तडके ही पुलिस के दल बादल ने मेरा घर घेर लिया। दिल्ली और लाहौर के कोई दर्जन भर पुलिस के उच्च अधिकारी और इससे तिगुने सशस्त्र सिपाही। इसके अतिरिक्त एक दस्ता घुडसवार सिपाही। सब गली कूचा के नाके, रास्ते मकान के द्वार पुलिस ने अपने कब्जे में कर लिए। पत्नी की घबराहट का ठिकाना न था। पर मुझे तो मुस्कराकर इन मेहमानो का स्वागत करना ही था। दल के नेता थे, लाहौर पुलिस के ठाठदार डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट खानबहादुर। उनके साथ मेरी शतरंजी चाल प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ में मैं समझ गया था कि पुलिस के मेहमानो जनो ने चाँद के फाँसी अंक से इन क्रान्तिकारियो के सम्बन्ध की सम्भावना से ही यह धावा किया है। यद्यपि मुझे उक्त अंक के लिए बीसवी शताब्दी के राजनीतिक हुतात्माओ के सम्पूर्ण चित्र और चरित्र भी इन लोगो से प्राप्त हुए थे। परन्तु यह भी सत्य है कि मैं इन युवको के सम्बन्ध में तथा उनके क्रान्तिकारी कार्यों के सम्बन्ध मे बहुत कम जानता था। इन लोगो द्वारा जो मैटर मुझे मिला था, उसके मैंने खण्ड खण्ड कर डाले थे। एक एक चरित्र को पृथक करके उसके नीचे लेखक का कोई एक काल्पनिक नाम दे डाला था। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध के कागज का एक पुर्जा भी मैंने अपने घर में शेष नही छोडा था। असेम्बली भवन से लौटते ही मैंने बडी तत्परता से सबसे पहिले यही कार्य किया था। परन्तु मुझे यह नही मालूम था कि चाँद के मालिक ने जो फोटो ब्लाक दिए थे उसकी सूचना उन्होने तत्काल पुलिस को दिया दिए थे। ठाठदार खानबहादुर ने बडे तपाक से बातचीत शुरू की। बडी मिठास से बोले—'आपके आराम मे खलल दिया, माफ कीजिए। मगर हम लोग भी अपने फर्ज से लाचार है। हम आपको ज्यादा तकलीफ नही देगे। चन्द मिनिट की ही तो बात है। महज कुछ बाते आपसे जाननी है।'

मैंने स्थिर शान्त स्वर मे कहा—कहिए?

खानबहादुर ने एक सबइन्सपेक्टर को पास आने का सकेत किया और उसने

'चाद' का फासी अक उनके सम्मुख रखा। उसके पन्ने उलटते हुए खानबहादुर बोले-इन मजामीन के लेखको को तो आप जानते ही होगे ?

कुछ को जानता हूँ—मैंने सक्षेप मे कहा।

उन्होने एक एक लेख का शीषक देखना शुरू किया। मै सक्षिप्त उत्तर देता गया। अन्त मे वह स्थल आया जहा म्याऊ का ठोर था—बोले, ये लेख किसके है ?

भिन्न भिन्न लोगो के।

लेखको के नाम यही है, जो लेख के नीचे छपे है ?

जी नही, वे सब फर्जी नाम है।

खानबहादुर की आखे चमकने लगी। बोले—'फर्जी ?'

जी हा।

क्यो ?

ऐसा हम अक्सर करते है, कुछ लेखक अपना नाम जाहिर करना नही चाहते, तो हम फर्जी नाम लिख देते है।

लेकिन यह तो गैरकानूनी है।

हो सकता है, कानून तो मै जानता नही।

लेकिन यह कहने ही से आप कानूनी जिम्मेदारी से बरी नही हो सकते।

शायद।

खैर, तो आप इन मजामीन के असली लेखको के नाम बताइए।

वह तो मै नही जानता।

'क्यो ? क्या उन्होने अपने नाम लिखे नही थे ?

जी हाँ, लिखे थे। पर वे सब तो जला डाले गए।

खानबहादुर की वाणी धीरे धीरे सख्त होती जाती थी। बोले— 'जला भी डाले गए ?

चूकि मै निकम्मा कबाडा अपने घर मे नही रखता।

कुछ देर वे अपना होठ चबाते रहे। फिर बोले—'आपको रेफरेन्स के लिए उन्हे रखना जरूरी था।

इस बात पर मैने विचार नही किया।

फिर भी आपको कुछ नाम याद होगे ?

जी नही, मुझे कोई नाम याद नही।

तो आप नाम नही बतायेगे ?

जो बात मै जानता ही नही, वह कैसे बताई जा सकती है ?

तो जनाब सुनिए। हमे सरकारी हिदायत है कि आप यदि पुलिस की मदद

नही करो, तो आपको भी केस में मुलजिम गदान लिया जायगा।

सुनकर प्रसन्न हुआ। आपने किस तरीके पर मुलजिम जुटाए है, समझ गया।

लेकिन हम अपनी तरफ से आप पर सख्ती करना नही चाहते। हम जानते है कि आप शरीफ आदमी है।

आपको बड़ी कृपा है।

तो बताइए फिर ?

नाम तो बताए नहीं जा सकते।

खानबहादुर ने तिरछी नजर से मेरी ओर देखा, एक कुटिल मुस्कान उनके होठो पर आई, फिर बोले—हजरत, कुछ कुछ हम मालूम भी है।

यह तो बहुत अच्छा है।

तो जनाब, आप हमारे साथ शतरंज की चाल मत चलिए, सीधी बात कीजिए।

बात सीधी ही है आगे आप जैसा समझे।

तो इधर देखिए, यह क्या है। उन्होने इलाहाबाद के 'चाद' कार्यालय के बही खाते में एक रकम पर हुए दस्तखत मुझे दिखाए। फिर कहा—अब कहिए, आप क्या अब भी इकरार करेगे कि आप उस शख्स को नही जानते ?

मेरे बदन से पसीना छूट गया, और मेरी आखो मे अधेरा छा गया। हे राम, क्या सहगलजी ने पुलिस को यह प्रमाण दे दिया। मैने उन्हे एक खत लिखा था जिसमे ऐसे सब कागज नष्ट करने का सकेत था। वह खत भी यदि पुलिस के हाथ मे है तो बस अब लदे।

मै चुपचाप सोचता रहा। परन्तु शीघ्र ही मैने अपने को सयत कर लिया।

अब आप क्या सोच रहे है ?

यही, कि ये दस्तखत किसके हो सकते है।

क्या उस नाम के किसी आदमी को आप नही जानते ?

जी नही।

अच्छी बात है, तो पहिले तलाशी ली जायगी, पीछे और बात।

तलाशी शुरू हुई। प्रेस की, दवाखाने की, घर की और घर से सम्बन्धित सब कमरो की। दिनभर तलाशी होती रही। दोपहर हुआ, शाम हुई। रात हो गई। सडक पर घुडसवार सिपाही घूम रहे थे। ठठ के ठठ लोग जुडे थे। हमारा खाना पीना, चूल्हा जलाना उस दिन नही हुआ। तलाशी मे एक पुर्जा भी मतलब का नही मिला। पर पुलिस मेरे बहुतसे जरूरी और अधूरे लेख उठाकर ले गई। उन दिनो मै दो हजार पृष्ठो का एक सास्कृतिक और राजनतिक महान ग्रथ 'तब अब क्यो और फिर' लिख रहा था। उसका बहुत सा मैटर 'बगभग' अश उन दिनो मेरी मेज पर फैला था। भद्रसेन से उस

पढवा पढवाकर खानबहादुर 'तब अब क्यो और फिर' की लगभग गमस्ती पाण्डुलिपि उठा कर ले गए। बहुत थोडा अश ही मे उनसे बचा सका था। तलाशी लेने के बाद पुलिस मुझे कोतवाली ले चली। जहा बहुत सी गीदड भभकियां के बाद रात के दस बजे मुझे घर आने की अनुमति दे दी गई। जान बची, लाखो पाए। परन्तु शका का भूत मन मे बठा रहा। पता नही यह खूनी जमात अब कब किस बहाने से गला आ दबोचे। खानबहादुर की वह धमकी और उसकी वे खूनी आख रह रह कर याद आ रही थी। मेरा हृदय धडक रहा था, पर हँस हँस कर पत्नी का भय दूर कर रहा था। परन्तु एक दिन जब मै अपने रोगियो मे उलझ रहा था, पुलिस के एक ठाट से दल ने फिर अपने शुभदर्शन दिए। ये लोग लाहोर से आए थे। इन्सपेक्टर ने शालीनता से कहा—आप इत्मीनान से काम से फारिग हो ल, हमे जल्दी नहीं है। यह वाक्य सुनते ही मनमे चोर बैठ गया। लो आए न ससुराल वाले बिदा कराने, अब तो डोला जायगा—फिर जायगा। झटपट काम निबटा कर, भीड भाड को बिदा करके, मेने इन्सपेक्टर के निकट आकर कहा—फरमाइए।

इन्सपेक्टर भी शालीनता मे कम न थे। शान से बोले—माफ कीजिए, आपको एक तकलीफ करनी होगी। एक जमानत का बन्दोबस्त कर दीजिए।

कसी जमानत ?

सिर्फ ५००) रुपयो की। एक वारन्ट है। लाहौर कोर्ट का, आपको लाहौर चलना होगा। उन्होने कागज उलट पलट कर वारन्ट सामने ला धरा।

लेकिन वारन्ट है कसा साहब ?

जमानती है, मजिस्ट्रेट के इजलास मे हाजिर होने के लिए ?

मे कुछ समझा, कुछ नही। दो पडोसियो को बुला जमानत की खानापूरी करादी।

इन्सपेक्टर ने धीरे से कहा—आज ही रात की गाडी से, समझते है न आप ? गाडी साढे आठ पर छूटती है।

लेकिन । मैने इन्सपेक्टर का मतलब समझना चाहा।

जी, आज ही चलना पडेगा। आप शरीफ आदमी है मुझे खासतौर पर हिदायत है कि आप को तकलीफ न दी जाए। आप वायदा कीजिए कि स्टेशन पर आप पहुँच जायेगे, या फिर अभी तशरीफ ले चलिए।

उसका स्वर काफी रूखा हो गया। जमानत का मै मतलब ही न समझा। मेने कहा—तो आप मुझे गिरफ्तार करते हे ?

इसकी क्या जरूरत है, मेने जमानत ले ली है, आप स्टेशन पर पहुँच जाएँ। टिकट मे खरीद लूगा।

झझट करना बेसूद था। मेने स्वीकार किया और उनके बिदा होने पर मैने

दरवाजा ... दिया। घर ... । और परमान द की ... का नजारा नजरों में घूम गया। ... उठाकर फासी के तख्ते तक और वहां से उठाकर ... गया था। ... वास्तव में ऐसा काम किया भी न था। पर मुझे ऐसा ... अब ... आना नहीं होगा। उसदिन मैंने खूब स्नान किया, डटकर भोजन किया और पत्नी से ... गप्प लडाई। चार बज गए। पत्नी ने कहा—क्या कहीं दूसरी जगह जाना है?

मैं हसा, तो वह ... मेरे ... मे ... लगी।

पत्नी ने कहा—कहा?

तुम्हीं बताओ सोचकर।

वाह, मैं भला क्या बताऊं?

कुछ देर मैं हसता रहा। फिर कहा—एक बारात मे जाना है, अमृतसर।

किसकी बारात है?

... एक जबरदस्ती की बारात है। ...कार करते नहीं बना।

... —एक ... उनकी आखों मे छा गई।

अभी ...।

... और मन की चचलता को नेत्रों द्वारा पत्नी न पढले, इस लिए मैं ... और हसता हुआ तयारी की धूमधाम करने लगा।

परन्तु मन ... तयारी कैसी रे? बिस्तर, कपडे, टिफन, और यह सब ... जायगा? कौन जाने किस राह जाना है। सब छोड यहीं। उसी तरह ... साथ ... जाना होता है।

उस समय ... आगे देखती, तो सत्य फूट जाता। परन्तु मैं टाल गया। ... । मैं तयार हुआ।

... ?

... भी है।

... ?

... ।

... ?

... , ... है।

... ?

... , ... है।

वाह, ऐसा भी ... है, ... जल्दी ... मे साबुन, तेल, सेविंग केस भरने लगी।

मेने तिनक कर कहा—यह सब मे नही लादने का । रात भर रत्ग म, फिर ब्याह और फिर रातभर रेल । सुबह खटसे यहा । यह मत्र कहा लादगा ? गभी यार दोस्त ही है ।

वह कहती ही रही और मे चल दिया । सीधा जैनेन्द्रकुमार के पास आया। सारा कच्चा चिटठा कह सुनाया । फिर कहा—भई, परसो सुबह आए तो ठीक, वरना और एक दिन प्रतीक्षा करना, फिर सब हाल खोलकर घर कह देना तथा जसे ठीक समझो करना । मैने घर बारात मे जाने का बहाना किया है ।

और मे चला । स्टेशन पर इसपेक्टर मौजूद था । एक थर्डक्लास का टिकट देकर कहा—गाडी मे अभी वक्त है ।

परन्तु मं थर्ड क्लास मे सफर नहीं करूगा ?

लेकिन हमे तो यही किराया दिया गया है आप अपने खर्च से मेने सभ्य नम्र कदम बढाये । टिकट को सेकेड का कराया, और जाकर बर्थ पर बदहवास पड रहा । नेत्रो मे फासी और कालेपानी के काल्पनिक चित्र बनने बिगडने लगे ।

लाहौर स्टेशन पुलिस की पगडियो से लाल हो रहा था । गाडी खडी होते ही उसे पुलिस ने घेर लिया । तुरत उन्होने मुझे एक बद गाडी मे बठाया और सीधे किले ले चले । सुबह की सुनहरी धूप किले के विस्तृत मदानमे फल रही थी । बिल्कुल सन्नाटा था । दूर तक आदमी न दीख रहा था । जसे हमारी वह मनहूस कार शून्य मे धसी जा रही थी । अन्तत एक छोटे से बरामदे मे हम पहुचे । खानबहादुर ने ही उस अतिथि का सत्कार किया । तत्परता से ठीक ठीक इन्तजाम करो का आदेश दिया । और तब एक सिपाही मुझे पेच पेचीले रास्तो से ले चला । हम लोग एक बहुत विशाल दालान मे पहुँचे, जहा फर्श पर अनगिनत चबूतरे बने थे जसे बहुत सी कब्रे क्रमश बना दी गई हो और उनके नीचे सिसकती हुई जिन्दा लाश दम तोड रही हो । एक चारपाई मेरे सुपुर्द कर, और सुराही पानी से भरी पास रखकर सिपाहीराम अन्तर्धान हो गए । रह गया मे अकेला, उस कब्रगाह मे—भय, शका और भूत भविष्य के ताने बाने बुनता हुआ । उस समय जसे जन्म जन्म की कायरता उमड घुमड कर मेरे रक्त की एक एक बूद मे समा गई । घटे पर घटे बीते । दोपहर हुआ और ढल चला । न आदमी न आदमजात । भूख, प्यास, नीद सब गायब । ढलते हुए सूरज की पीली छाया जहा तहा उस मनहूस सून दालान मे पड रही थी । मै कभी चारपाई पर लेट जाता, कभी उठकर टहलने लगता, कभी बैठकर गहरी चिन्तना मे लग जाता, चैन न था, जसे दहकते अङ्गारो पर बठा हू । में ऐसा अनुभव करने लगा था जसे आज ही मुझे फासी पर चढना होगा । पर मन कह रहा था, जो होना है, झटपट हो जाय । यह प्रतीक्षा और सूनापन तो सहा नही जा रहा । चार बजे के बाद एक छोटा सा दल मेरी ओर आता

नजर पड़ा। वे चार चार थे। दो पुलिस के सिपाही। उनके बीच हथकड़ी बेड़ी से जकड़ा हुआ एक व्यक्ति था, साथ में एक मुसलमान पुलिस इन्स्पेक्टर। इस बारात को देखते ही मैं सन्न हो गया, जैसे शरीर में रक्त जम गया हो। एक सिपाही कहीं से एक चारपाई खींच लाया। उस पर दो के बीच में उठाकर पुलिस वाले बैठे। मैं देखते ही पहचान गया, वह सरकारी गवाह हो गया था, और जिसने दल का सारा कच्चा चिठ्ठा खोल दिया था, सबका भण्डाफोड़ किया था। मैं घृणा और भय से उस घृणित व्यक्ति को घूर घूर कर देखने लगा। न जाने कहा से साहस न रहा — उस कमीने से ता मरने तक ही भय।

परन्तु उसने मेरी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा। मुंह उसका वस्त्र से ढँका था। वह सिर झुकाए बैठा था। मैंने देखा, उसकी आंखों से झर झर आँसुओं की धार बह निकली। इन्स्पेक्टर ने पूछा—क्या इन्हें जानते हो?

मैं सांस रोककर सुनने लगा। उसने सिर हिलाकर धीरे से कहा—नहीं।

उसका वह एक शब्द 'नहीं' जैसे मेरे प्राणों के मूल्य का था। पर मैं निश्चल बैठा रहा। फिर प्रश्न हुआ—इनका नाम कभी सुना है?

'नहीं।'

मशहूर साहित्यकार है, इनकी कोई पुस्तक पढ़ी है?

'नहीं।' उसने अपना आगा पीछा डाल और दृढ़ता से होंठ भींच लिए। मैंने मन में कहा—गोह, शायद भी साहसी होते हैं। इसको एक 'हां' मेरे जीवन को समाप्त कर देने को काफी थी। यह निस्सन्देह मुझे जानता है। मेरे सामने एम०ए० का विद्यार्थी रहा है। इस पतित ने देश के अनेक तरुणों को फांसी तक ले जाने की कार्यवाही की है, पर मेरे लिए आज मुक्तिदूत बन कर आया है। पुलिस वालों ने और दो चार प्रश्न किए, और फिर वह मनहूस बारात जिधर से आई थी, उधर ही की ओर चली गई। मैंने अघाकर सांस ली। साहस लौट आया, दुनिया दीखने लगी। मैंने इधर उधर नजर दौड़ाई। पास था। मैं दो सीढ़ियां पार कर उसी आफिस में पहुँचा। वहां था। मैं मोटा चिक उठाकर खानबहादुर के सामने जा खड़ा हुआ। हाथ मिलाया, कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। मैंने तपाक से कहा—जनाब, मैं सुबह से बिना खाये पिए बैठा हूं। आपका इरादा क्या है?

मुझे बहुत अफसोस है। दो काम थे। आपकी शिनाख्त, और आपसे मुलजिमों की शिनाख्त। एक काम खतम हुआ, दूसरा अब कल होगा।

लेकिन, जनाब, मैं ठहर नहीं सकता।

मजबूरी है, तकलीफ करनी ही होगी। आज मजिस्ट्रेट बीमार पड़ गये हैं, कल तक रुकना पड़ेगा। इसके बाद उन्होंने पास खड़े एक सब इन्स्पेक्टर से कहा—

एक फस्ट क्लास तागा ले लो और शहर के बेहतरीन होटल म आपकी पसन्द के कमरे मे आपको ठहरा दो तथा आपकी हरेक जरूरत खान पीन का सब इन्तजाम कर दो। खचा सरकारी होगा।

भाई वाह यह तो तस्वीर का रुख ही पलट गया। म इन्स्पेक्टर के साथ उस फस्ट क्लास तागे मे बठकर चला। उसने पूछा—आपका सामान ?

मुझे क्या मालूम था कि आपमेरी यह खातिरदारी करगे, सामान मं लाया नही।

कुछ परवाह नही। होटल मे सब इन्तजाम हो जायगा। उसने राह के स्थानीय स्थानो को बताना शुरू किया, यह शाही मस्जिद, यह रणजीतसिंह की छतरी, यह बुज। हम लोग अनारकली की चहल पहल मे चले जा रहे थे। सुबह का वह मनहूस दिन मजेदार सन्ध्या मे बदल गया था। फासी के तख्ते और जेल की स्मृतिया गायब हो चुकी थी। सब इन्स्पेक्टर न एक दो होटल दिखाए। पर वे मन नापसन्द कर दिए। मेने कहा—जनाब, फस्ट क्लास होटल का हुक्म हुआ हे।

लेकिन यह सन् १९२८ का लाहौर था। सब इन्स्पेक्टर न कहा—साहब लाहौर मे तो ऐसे ही होटल हे। जहा मर्जी हो ठहर सकते हे।

अन्तत एक होटल का सबसे बड़ा कमरा मने पसन्द कर लिया। थानेदार ने होटल के मनेजर को कह दिया—साहब जो चीज माग दो, बिल आफिस से चुकता होगा। वे चले गए और मेने चाय, टास्ट, मक्खन, दो दजन आम, बफ और जाने क्या क्या अगलम शगलम का आडर दे डाला। चाय पीकर बैठा ही था कि इन्स्पेक्टर ने आकर कहा—तबियत हो तो सैर कर आइए। लोगो से मिल मिला आइए, तागा हाजिर है। मने क्षणभर सोचा। दिनभर की थकान अब अच्छी हो गई थी। मौसम अच्छा था। बालकनी मे आकर देखा—नाके नाके पर पुलिस का खास इन्तजाम है। दूर तक लाल पगडिया दीख रही हे। म मन ही मन मुस्कराया। मतलब म समझ चुका था। कमरे म आकर न कहा—जनाब, मे सोऊगा। कोई खास दोस्त मेरा यहा नही जिससे मिलने जाऊ। आप भी तशरीफ ले जाय। थानेदार चले गए।

दूसरे दिन म दस बजे से पहले ही खा पीकर तयार हो गया। इन्स्पेक्टर ठीक दस बजे आया। हम लोग फिर उसी मनहूस किले म पहुचे। वही विशाल बरामदे मे एक मजिस्ट्रेट की मेज लगी थी। सामने कतार मे कोई तीस आदमी एकसी पोशाक मे। हथकडी बेडी किसी को नही थी। उस कतार म मुस्करा मुस्करा कर अपने साथी से बात करते मने अपने प्रिय उस युवक को पहचान लिया।

शिनाख्त प्रारम्भ हुई। और भी कुछ लोग आये थे। मेरी बारी आई, तो मुझ से पूछा गया—क्या आप इन लोगो म से किसी आदमी को पहचानते है ?

मैने एक बार बारी बारी से सब पर सरसरी नजर डाली, फिर नीचे कर कहा—

जी नही, मै किसी को नही पहचानता।

[illegible] पास आए। मै समझ गया। उनकी सारी खातिर दारी [illegible]। मै [illegible] कदम [illegible] मजिस्ट्रेट की बडी मेज के पास जा खडा हुआ। खानबहादुर [illegible] ठीक ठीक [illegible]।

मैने कहा [illegible] आप [illegible] कीजिए—किस [illegible]?

मजिस्ट्रेट [illegible]। [illegible] इशारा कैसा? आप किसे पहचानते है?

जी नही, मै उनमे किसी को नही पहचानता।

मजिस्ट्रेट ने [illegible] और कहा—आप जा सकते है।

लेकिन मेरा [illegible]? मैने मजिस्ट्रेट से कहा।

[illegible] दीजिये।

[illegible] बताया—जो [illegible], नही। बहुत बढा-चढाकर, काफी रकम [illegible]। मजिस्ट्रेट ने [illegible] सही कर दी। मै उसे हाथ मे लिए आफिस की ओर [illegible]। बिना [illegible] रुपये मिल गये। मै अभी रुपये गिन ही रहा था कि कुछ आदमियो [illegible] आते देखा। वे सब क्रातिकारी कैदी थे, जो [illegible] हथकडी बेडियो से जकड दिये गये थे। कुल बीस बाईस थे। [illegible] पुलिस के सिपाही और अफसर, सबके आगे खान बहादुर। [illegible] आ रहे थे।

[illegible] मेरे पास आकर हसते हुए नमस्ते कहा।

दूसरे युवक [illegible] बाबूजी, कमाल किया आपने, हमे पहचाना तक नही।

[illegible] कहा—'पहचानते कैसे? उन दिनो हम एक मुट्ठी चना [illegible] और चोरो की तरह छुपते छिपते फिरते थे। अब तो [illegible] खिलाते, पियर्स साबुन से नहलाते है। रग भी तो हमारा [illegible] है। [illegible] की पीठ पर [illegible] जमाते हुए कहा—कितना मोटा हो गया तू यार।

[illegible] जिन्दगी कर रहा था। मै दग था। आज इनमे नई उमग थी, [illegible] था। मेरे [illegible] जीवन मे तो ऐसा कार्य सभव ही न था। मै तो [illegible] हो गया था। [illegible] और मै सीधा तीर की तरह [illegible]। अब खातिरदारी की जरूरत न थी। मेहमानदारी खत्म हो चुकी थी। [illegible] झुलस रहे थे। नोटो का वह छोटा सा पुलिन्दा [illegible] था। मैने तागा पकडा और सीधा स्टेशन की राह ली। [illegible] को छूती थी। अभी काफी दिन था। अमृतसर एक [illegible] जा रही थी। मैं झपटकर उसीमे जा बैठा। दरबार साहब का एक चक्कर

लगाया। इन वीर युवकों की मुक्ति की अरदास की। बाजार म न्मा पूरी और हलुए से आत्म श्राद्ध किया। अमृतसर की बडिया, पापड और कुछ फल खरीद और स्टेशन रवाना हुआ। फ्रंटियर मेल आ रहा था। और जब म गाडी की आरामदेह गद्दी पर आख ब द किये पडगया, ता सब कुछ स्वप्नवत् दीख पडा। अब निचाराम फासी गार कालापानी के नजारे नही थ। ये वे ठहाके, जो य मौत म खाने बान मजनू लगाते हुए फासीके निकट जारहे थे। पापड और बडिया पाकर पत्नी बहुत खुश हुई। बारात की एका ब बात पूछी। कुछ दिन बाद उनपर असल भेद भी खुल गया। सुनकर कई दिन तक रोना धोना मचाया। मुझसे कहा—तुम विश्वासघाती हो, तुम झूठे हा। व लाल लाल और फूली हुई आख, अब भी स्मरण कर लेता हू। तब उ ह देखकर जसे हसा था, अब भी हँसी आ जाती है, पर आखे अब गीली हो जाती है। ये बिछुडे हुए साथी भी कसा घाव कर जाते है।

बिजनौर प्रा त के एक सद्गृहस्थ मेरे बडे सज्जन थे। उनकी मातृहीना भांजी उनके घर ही मे पली थी। उ होने उसका वाग्दान एक योग्य घराने म योग्यवर से कर दिया। लडकी का पिता प्रसिद्ध बदमाश था। उसने सुना और लडकी को जबदस्ती उसके मामा से छीनकर ले गया और अ य स्थान पर रुपए लेकर सम्बन्ध करना निश्चय कर दिया। लडकी को उसका पिता लेगया है, यह सूचना मामाके द्वारा वर पक्षको मिल चुकी थी, परन्तु और किसी बात का स देह न था। एकाएक उस क या के हाथ का लिखा एक पत्र मेरे नाम आया। उसमे लिखा था—आप मेरे धम और मेरे पतिकी रक्षा कर सकते है। विपत्ति मे लज्जा त्यागकर लिखती हूँ कि मेरे पिता ने अन्यत्र सम्बन्ध करना विचारा है। मेने जो शिक्षा पाई है, उससे मेन जाना है कि मेरा जो सम्ब ध प्रथम हो गया वह अटूट है। अगर आपने रक्षा न की तो अमुक तारीख को मेरी नई सगाई चढने की खबर है, उसी दिन मे प्राण त्याग दगी।

उस कम पढी लिखी बालिका के टेढे मेढे अक्षर और उतने साहसपूर्ण विचार आज भी चित्तसे नही उतरते है। दुघटना की सभावना मुझे नही थी। अगले दिन ही भगतसिह केसमे पुलिस मुझे लाहौर ले गई। लाहोर से लौटते ही सगाई चढने के दिन मै उसके शहर पहुच कर उसके पिता से मिलने पहुँचा। परन्तु वह प्रात दस बजे ही—कुए मे कूद पडी थी और उसका पिता पुलिस की हिरासत म ब द था।

सिकन्द्राबाद मे मेरे एक अत्यन्त निकट के मित्र की भतीजी की आयु चौदह वष की थी। उसे उसके दुष्ट पिता ने नीलाम पर चढा दिया था। नित्य बढा चढा कर बोलिया बोली जा रही थी और वह पिता पशु सबसे अधिक बोली बोलने वाले को पुत्री बेच देने को उत्सुक था। दैवयोग से मे उ ही दिनो सपत्नीक सिकन्द्राबाद गया। मालूम हुआ एक पचपन साल का वर सबसे अधिक मूल्य दे रहा है और इसलिए वह

स्वीकृत हो गया है। उस घर की स्त्री मौजूद थी। तीन लडकियां भी थी। पुत्र की कामनासे एक ग्रोर तरह ग्रादमी का महान गरीब रहाथा। सुयोग पाकर उस बालिका ने मेरी स्त्री की शरण ली। वह उनके साथ मेरे पास आइ ग्रोर मेरे पर पकडकर लोट गई। उफ, मैं उस करुण विलाप का वर्णन करने की शक्ति नही रखता। मुझे मालूम हुआ कि मेरे ग्रागमन की प्रतीक्षा मे उसने दो दिन से ग्रन्न-जल नही किया है। ग्रौर मै निश्चित उसकी रक्षा कर सकूंगा इसका उसे पूरा विश्वास था। मै बडी कठिनाई मे पडा ग्रौर ग्रन्त मैने उसे वचन दिया कि उसकी रक्षा हो जाएगी। उसकी पसन्द की जगह ही उसका विवाह हो जायगा। परन्तु वचन देकर मै बडी विपत्ति मे फसा। सब प्रकार के नम गम प्रलोभन ग्रोर भय व्यर्थ हुए। निरुपाय मुझे उस पापी को उस का मागा हुआ मूल्य देना पडा ग्रोर लडकी को दिल्ली लाकर उसकी रुचि के ग्रनुसार विवाह कर दिया गया।

५५ वर्षीय ग्रौर ६ बच्चो का बाप साधारण पढा लिखा एक राक्षस मनुष्य एक दिन मेरे सामने ग्रा खडा हुग्रा। यह राक्षस दूर से रिश्ते म मेरे पिता का कोई सम्बन्धी था। ग्रपनी तगदस्ती ग्रौर कर्ज का हाल बता कर वह कहने लगा कि मेरी कुछ मदद कर दीजए, नही तो मै लडकी पर रुपए लूगा। इस पर मेरी ग्राखोमे खून उतर ग्राया ग्रौर मैंने उस नीच से कहा—मदद मागना ग्रौर बात है, ग्रौर लडकी को बेचने की धमकी देना ग्रौर बात है। जो ग्राज लडकी बचता है वह कल ग्रौरत को भी बेचेगा। इससे उत्तम यही है कि मुझसे जहर माग। मै खुशी से दूगा। तेरे जसे ग्रधम कीडे—जो ग्रपने ही बच्चो का सौदा करते हैं—जितनी जल्दी ससार से दूर हो ग्रच्छा है।

मैने कहा 'मै ग्रापकी मदद कर चुका हू, उससे तुमने ग्रपनी क्या हालत सुधारी है? जो मनुष्य ईमानदार नही, धर्म से जिसे भय नही, वह कैसे सुखी होगा?' मुझसे जवाब पा कर उसने ... किया। वह चला गया। पर उसने ग्रपनी सात वर्ष की लडकी को सौ रुपया म बचने का सौदा कर लिया। लडका ग्रनाथ विधवा का पुत्र था। विधवा ने ग्रपना गहना ग्रौर ... बेचकर डेढ सौ रुपया तयार किया था। पर जब बारात द्वार पर ग्राई, तो दुष्ट ने निलज्जता से कहा कि नौसो से एक पाई भी कम न लगा। रुपए न गमागे ग्रनाथ ग्रबला के पास थे ग्रौर न बारातियो के। बहुत खुशामद की गई, पर पशुपर जरा भी ग्रसर नही हुग्रा। उसने न तो बारात को ठहरनेको जगह दी ग्रौर न भोजन। विवश बारातिया ने ग्रगले दिन ग्रपने पास के बटन ग्रगूठी ग्रौर फालतू सामान बेचकर रुपयोका प्रबन्ध किया। बारात वाले दिन मे भी एक ग्रावश्यक काय स सपत्नीक मै बाहर गया था। घर मे पहुँचते ही स्त्रियो के द्वारा पत्नी को इस नीच कम की सूचना मिली। उन्होने मुझसे कहा। मैने विश्राम नही किया—तुरन्त थाने गया ग्रौर थानदार से सारी बात कहकर इस ग्रन्याय को रोकने को

कहा। थानेदार सज्जन पुरुष थे। मेरी बात सुनते ही चार पाच सिपाहियों को साथ लेकर मेरे साथ उस दुष्ट के घर पहुचे। बाराती वहा जमा थे और स्वागत की तैयारियां हो रही थी। वह दुष्ट मान किए अपने द्वार पर खड़ा बारातियों और लड़के को कुछ अपशब्द कह रहा था।

मुझे देखते ही वह भय से पीला पड गया और परम अस्थिर घुमने लगा। थानेदार को मैने सकेत किया। उन्होने लपककर उसकी कलाई पकड़ली। पिताजी वहा उपस्थित थे और वे लडकी को वहासे ले जाने की जुगत मे थे। उन्होने भी मुझे वहा अनायास आया देख आश्चर्य किया, पर तुरन्त ही सब बात समझ गए। उन्होने अपने पैर मे से जूता निकालकर उस नीच के सिर पर मारने शुरू किए और बारातियो से कहा—बारी बारी से सब भाई इस पर नौसौ स्वागत इसी तरह करना है।

वह मेरे पैरो पर लोट गया। मै शेर की तरह गुर्रा रहा था। मैंने उसपर घृणा की नजर डालकर थानेदार से कहा—'आप इन सब बारातियो के और इनके भी बयान कलमबन्द कीजिए।' सब को सच सच कहना पडा और उस राक्षस को पुलिस थाने मे ले जाकर बद कर दिया गया।

१९२९ के मई मास मे मुझे एक ऐसी स्त्री की अन्त्येष्टि मे शरीक होने का अवसर मिला जिसे मै कभी नही भूल सकता। मरने वाली की आयु ७५ वर्ष से भी अधिक थी। तीन मास से वह वृद्धा बीमार थी। एक बार वह मर गई थी। रात भर मुर्दा पडी रही। परन्तु प्रातःकाल जब कफन काठी आ गया तब स्नान कराने के समय श्वास चलने लगा। उसके बाद नौ दिन तक जीवित रही। यह नौ दिन उसने कैसे काटे, यह मैने बहुत अच्छी तरह देखा। मै प्राय नित्य उसे देखने जाता था। उस दिन थोडी चेष्टा से उसे चैतन्य हुआ। मैंने औषध पीने को कहा —उसने हाथ जोडकर जवाब दिया—मेरा धर्म मत बिगाडो, मै रामजी के यहा जा रही हू। एक दो दिन मे यह चोला छूट जायगा। मैने सबको दुःख दिया, अब सब दुःख दूर होगे। यह अभागिनी नारी अपने विवाह के ढाई वर्ष बाद विधवा हुई थी, तब उसकी आयु पन्द्रह वर्ष की थी। विधवा होते समय चार मास का गर्भ था, वह गर्भ पूरा उतरा। कन्या हुई। अतिम समय उसे अपनी पुत्री की बहुत स्मृति थी। लडकी बुलाई गई। उसकी आयु भी साठ के लगभग थी। उसे पाकर वृद्धा ने फिर प्राण त्यागे। विधवा होने के बाद वह अपने भाई के घर रही। उसके बाद भाई के पुत्र के। उसके भी मरने पर भाई के छोटे पुत्र के। सब जगह चौका बासन करना, घर झाडना, बच्चो के मलमूत्र उठाना प्रत्येक की थाली मे बचे हुए झूठे टुकडे खाना या बासी सडा गला अन्न खाना। सबकी गाली और धमकी सहना। बच्चो से खूब तग की जाना, फिर भी मधुर वचन, अकपट प्रेम और शान्ति तथा सहनशीलता बनाए रखना उसका जीवन था।

[illegible] प्रथम वह जवान [illegible] सब तूफान, सब तरंग, जीवन के सब उतार चढ़ाव [illegible] यह भाग्यहीन रूपहीन सौभाग्यहीन [illegible] और [illegible] अपवित्र जीवन में पवित्र बनी रही [illegible] तटस्थ अवस्था में उसे प्राय [illegible] कैसा मधुर भाषण। कैसा उदार प्रेम और [illegible] अपनी पत्नी से कहता था अपना थोड़ा रूप इस [illegible] और [illegible] मधुर वाणी थोड़ा भी अपने लिए लेता। मरते वक्त [illegible] सुगंधित द्रव्य के साथ वह [illegible] समय ही उसे नई चुनरी और नए वस्त्र पहिनाए [illegible] फिर रंगीन चुनरी पहिन कर सुहागिन [illegible]।

[illegible] द्वितीय विशेषांक मारवाड़ी अङ्क सन् १९२९ में सम्पादन किया, यह [illegible] सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया और इस पर कलकत्ते [illegible] तीन चार केस की पैरवी में कलकत्ते दौड़ धूप करनी पड़ी। [illegible] उस समय बिल्कुल खाली थे और मुझे तीनसो रुपया [illegible] कठिनाई प्रतीत हो रही थी। भद्र को अलग [illegible] प्रयत्न में मैं नए सिरे से जुट गया। परन्तु [illegible] बीमार पड़ गया और दस बारह दिन बीमार रह कर [illegible] और माता [illegible] दुखनाक चला गया। हमारे वर्तमान [illegible]।

[illegible] मैट्रिक पास करके हिंदू कालेज में बी० ए० [illegible] मित्र कालेज की पढ़ाई छोड़ कर [illegible] भी अपने साथ चलने का भूठा प्रलोभन [illegible] हमसे कुछ न कहकर उस मित्र के साथ [illegible] चला गया, पर चन्द्रसेन को [illegible] कालेज छोड़ा, हम से आज्ञा नहीं ली, हमें [illegible] विचार कर वह एक महीने तक बम्बई में जानकी [illegible] अपने अपराध का प्रायश्चित करता रहा। उसने हमें अपने रहने की सूचना भी [illegible]।

मैं उसके इस पलायन से सख्त नाराज था। पिता, पत्नी, भाई भावज सभी चिंतित और दुखी थे। मैंने कुछ मित्रों को पत्र लिखे कि चन्द्रसेन यदि उधर पहुंचे तो

उसे मार्गव्यय देकर दिल्ली भेज दिया जाए। पूरे एक मास बाद चन्द्रसेन का ही एक क्षमाप्रार्थना पत्र मेरी पत्नी के नाम आया। उसे पाकर मैने बम्बई मित्र को तार दिया कि उसे वहा से ढूढकर किराया देकर समझा बुझाकर वापिस भेज दो। इसके एक सप्ताह बाद वह दिल्ली आकर अपनी भाभी के परो मे पड गया। मेरे या पिताजी के सामने तो वह ३ ४ दिन तक भी नही आ सका। अब उसने कालिज मे तो जाना स्वीकार नही किया। अ तत प्रेस और प्रकाशन का काय सीखने के लिए मैने उसे स्टटस मैन मे कलकत्ता भेज दिया। जहा वह दो वष रहा। माता की मृत्यु के उपरान्त भद्र की बहू दिल्ली हमारेही पास आकर रहने लगी थी। पर तु उसकी मेरी स्नेहशील हृदया पत्नी से नही पटी। कुछ दिन तक तो दोनो स्त्रिया स्वय निबटती रही परन्तु भद्र की पत्नी घोर कुसस्कारा मे पली थी। घमण्ड ईर्ष्या और चुगली ये तीनो बात अविकसित स्त्रियो मे जो होती है, उसम खूब थी। भद्रसेन का मन धीरे धीरे मेरी पत्नी की ओर से फिर गया और वह उसकी अवज्ञा करने लगा। इतना ही नही—मेरी भी अवज्ञा करने लगा। प्रेस से मुझे हजारो रुपयो की हानि हो ही चुकी थी। माता की मृत्यु से घर की पारिवारिक एकता छिन्नभिन्न हो रही थी। मेरे बिल्कुल स्वतन्त्र उच्च विचार थे, मेरा जीवन घर भर से पृथक था। इसलिए म भद्र को अपने व्यवसाय का एक अश देकर प्रथक कर देने की सोच रहा था। प्रेस और प्रकाशन खत्म हो चुका था। मने फार्मेसी विभाग उसे दने की व्यवस्था की। अब तक दो भाइयो और दोना बहिनो के विवाह मे कर चुका था, चन्द्रसेन के विवाह के लिए भी लोग पिताजी के पास आ रहे थे। पिताजी की इच्छा थी कि इसके विवाह से भी निबट लिया जाए। मने भी यह उचित समझा कि तीनो भाइयो और दोनो बहिनाका विवाह करके म अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर दूगा। पर तु मेरे दिल की भावनाए बदल रही थी। मेरी द्वितीय पत्नी मे प्रेम सौजन्य और सेवा भाव बहुत था, तुच्छता नही थी। भद्र को वह सदा प्यार करती रही पर भद्र की स्त्री के विचार उसकी तरफ से शुद्ध न रहे। उसने सदा उनका तिरस्कार किया। भद्र भी उनके विरुद्ध रहा। वह समझने लगा था कि उनके सिखाने से मै भी उसे गर समझता हूँ। ये दोनो ही पिता जी स मेरी स्त्री के विपरीत निरन्तर कहते रहे। फल यह हुआ कि माता जी के मरते ही भद्र मेरी पारिवारिक मर्यादा भग करके पृथक रहने लगा। कुछ दिन लगभग आठ मास बिना बोले चाले रहा। मेरी स्त्री ने बडी चेष्टा की, उसकी स्त्री की खुशामद भी की पर कुछ न हुआ। वह तुच्छ विचारा वाली कुसस्कारी और मूर्ख स्त्री निकली। उसके पितृपक्ष के लाग भी स्वार्थी और घमण्डी थे। मे इसमे स तुष्ट था कि य दोनो स्त्री पुरुष सुखी है यही काफी था। पिछले दिनो मेरे सभी कामो की आलोचना करना भद्र का काम हो गया था। मैने सदा उसे प्यार किया। अपना पराया तनिक न समझा। अलबत्ता अपनी स्त्री पर मैंने विशेप

ध्यान दिया था। मेरी इच्छा थी कि उस कुछ दान करना चाहिए, पर सिवा एक दो सोने की चीजो के कुछ न कर सका।

भद्र के जो विचार मेरे विपरीत हुए थे, उससे मुझे बडी मार्मिक पीडा हुई। मै रोगी पडा और मृत्यु की इच्छा करने लगा। पर अच्छा हो गया। मेरा चित्त सदा दुखी रहता था। मैं समझता था कि भद्र मेरी प्रतिष्ठा नही करता। मने चिकित्सालय मे जाना भी छोड दिया। चिकित्सालय की दशा बिगड गई। खर्च अधिक और आमद कम।

उसकी एक कन्या हुई। मैने इच्छा की थी कि उसका प्रसव मेरे घर हो, पर उसकी स्त्री ने अस्वीकार कर दिया। फिर मैने कन्या का नाम रखा—शरद् कुमारी। पिता जी ने कहा—नही, शक्ति देवी। उसकी स्त्री ने हठपूर्वक मेरा नाम नापसन्द किया। इस अवज्ञा से मै बडा दुखी हुआ। परन्तु फिर भी वह मेरी स्त्री की अपेक्षा मेरा आदर करती थी। विश्वास से बच्ची को खिलौने देती थी। अन्त मे बच्ची बीमार पडी। इससे प्रथम मै कलकत्ते गया था—मारवाडी अंक का मुकदमा था। भद्र और उसकी स्त्री को घर पर छोड गया था। उस घमण्डी स्त्री ने मेरी स्त्री से लडाई कर डाली। यह भी कह दिया कि तुम मेरी लडकी से जलती हो। वह खूब रोई थी।

यह सुनकर मुझे बडा दुख हुआ और मैने उस प्यारी बच्ची का मोह मन मे छिपा रखा। बहुत कम उसे खिलाता था पर इसके बाद ही वह रोगिणी होने लगी। मुझे स्मरण है एक बार मैने मन मे कहा था—कैसी सोने की पुतली के समान यह बच्ची है। सम्भव है नजर लग गई है। उसे टीका दिया गया, तभी से गडबडी हुई। चन्द्रसेन के व्याह मे मैने देखा था। रग पीला पड गया था। दुबली भी हो गई थी, आखो के नीचे सूजन आ गई थी। मैने कहा—यह बहुत बीमार है इसका जिगर खराब हो गया है। यह बात उसकी स्त्री को बुरी लगी। उसने मुझे सुनाकर कहा—ये तो ऐसे ही कहा करते है। मै चुप हो गया, पर उपचार किया जाने लगा। दिल्ली मे भी दवा चलती रही। अन्त मे उसे डबल निमोनिया और सरसाम हो गया था। वह शान्ति से मेरी गोद मे मरी। मै उन दिनो शाहदरे मे रहता था। मै उसे दो तीन घण्टे गोद मे लिए बैठा रहा—जब तक मेरी स्त्री शाहदरे से न आ गई। मेरी इच्छा थी कि इस मरी कन्या पर अब मेरा ही अधिकार है, उसकी माँ का नही। मै अपनी स्त्री से कहूँ—लो निश्शक होकर गोद मे ले लो। पर न कह सका। वह मरने पर भी सुन्दर थी, बहुत सुन्दर। हमने उसका दाह किया। भद्र का दिल उस घटना से टूट गया। वह बहुत नाजुक तबियत का था। मैने इसकी कभी परवाह न की थी। मैने बचपन से उसे पाला, पर सदा सख्ती के साथ रखा। मीठा कभी नही बोला। पर यह चाहता था कि जब मे बकू झकू वह उधर मुह करके हँस दे, जैसे स्वर्गवासिनी के सामने करता था। पर अब वह बुरा मानने लगा था। मै अपकष्ट और अपने मानसिक कष्टो से, जिनके कारण

गम्भीर हे चिडचिडा ही रहता था ।

मेने उसे असहाय अवस्था मे चिकित्सालय की एक अलग ब्राच खोलने के लिए अबोहर भेजा । इसलिए कि वह पृथक रहे तो दिल्ली के चिकित्सालय की आमदनी तो मुझे मिले । पर आमदनी कुछ थी ही नही । वह अबोहर दो मास रहा । कुछ लाभ नही हुआ, पर वह खुश और त दुरुस्त था । मुझे सुख था । फिर मन सोचा कि फार्मेसी विभाग उठाकर सिकन्द्राबाद ले जाया जाय । भद्र वही रहे । हम भी उसे सम्भालते रहेगे । भद्र सिकन्द्राबाद आया, दो दिन रहा और चला गया । वहा मकान लेकर उसने मुझे पत्र लिखा । पत्र पाकर मे गया । मकान मुझे पसन्द नही आया । वह सामने से आ रहा था, मुझे वह सु दर लगा । मने मन मे कहा—भद्र की चाल मे कितनी गम्भीरता है । वह खडा हुआ और चलता हुआ कैसा सजता है । मे मन मे हँसा । पर जब पास आकर उसने नमस्ते की तो में झट बिगड बैठा । खूब नाराज हुआ । क्या बिना पूछे ऐसा मकान लिया ? क्यो सलाह नही ली ? वह चुपचाप बच्चे की तरह सुनकर चुप बैठा रहा । उसके पास एकभी पैसा नही था । पैसेकी वह बडा प्रतीक्षाम था । आशा थी कि मे कुछ दे जाऊँगा, पर मेरे पास भी नही थे । मैं बारह रुपए मनीआडर द्वारा पहिले भेज चुका था । मैने कहा—रुपये कल मिल जाएँगे । वह अधीर हो गया, पर चुप रहा ।

म दिल्ली लौट आया । भद्र को और रुपये भेजने की सोच रहा था । पच्चीस तीस रुपये आ भी गए थे, पर मोह मे पडा हुआ था । उसका खत आया, मने उसे पढा, फाड दिया । उसमे लिखा था—मुझे ज्वर है, भारी सिर दद है । एक पैसा भी नही है, रुपये भेजो । मने दस रुपये भेजे । एक काड भी भेजा । काड म कम खर्च की हिदायत थी । दूसरे दिन सुबह बीमारी बढ जाने का तार मिला । म चिन्तित तो था, तिलमिला उठा । उस दिन दिल्ली कोट म एक केस था, पर म चला गया । अपने मित्र डा० भीमसेन को भी मने अपने साथ ले लिया । जाकर देखा भद्र भयानक ज्वर मे ग्रस्त था, आखे लाल थी । उसने क्रोध से देखा, फिर हाथ पकड कर रो उठा । मने तसल्ली दी हाल सुना । डाक्टर भीमसेन से सलाह की । हमने समझा टाइफाइड है । म समझता हूँ, हमने भयानक भूलकी । उस समय यदि उचित प्रबन्ध होता तो भद्र बच जाता । मने दवा तो प्राय उस दिन और रात भर कुछ दी ही नही । ठडे पानी का कपडा सिर मे लपेट दिया, दूध, फल खाने को दिए । असल मे उसे सन्निपात था । वायु प्रबल वेग से बढ रही थी । मुझे सिर पर माला बधवाना, तीक्ष्ण नस्य, अजन देना, हवा से बचाना, खूब औटाया जल देना और त्रिदोष नाशक क्वाथ देना था । यह सब कुछ बाद मे दिल्ली आकर समझा । उसने बात की । वह प्राय होशमे था । उसे अपने रोग और हमारा भी ज्ञान था । पर मने कुछ नही किया, न रोग पर ध्यान दिया, न कुछ चेष्टा की । तमाम दिन डाक्टर भीमसेन की खातिर मे बीता, रात सोने मे । प्रात काल

देखा—मज्जा दूर थी। पर मैं तब भी रोग की असलियत को नहीं समझा। कहा—दिल्ली ले चलो। बस छूटने का समय था। मैंने यह विचार किया कि दिल्ली ठीक उपचार हो सकेगा, यहां न जाने कब तक आराम हो। दिल्ली में अन्य चिकित्सकों की भी सहायता ली जा सकेगी। मैंने बस में ले जाने का निश्चय किया। पर मैं अब समझता हूँ यह भारी भूल हुई। वायु उसके शरीर में हजार बचाव करने पर भी भर गई। दिल्ली आकर नन्हेजी वैद्य को बुलाया। भद्र ने दिल्ली आते ही खूब नाराजी प्रकट की। कहा—मुझे गंगा ले चलो, यहां मैं मर जाऊंगा। पर फिर हँसने लगा। अपनी भाभी से मशीन चलाने को मांगी। कागज पेंसिल मांगा। खत लिखने लगा। मैं व्याकुल था। पर नन्हे वैद्य की तजवीज पर भरोसा था। सिकन्द्राबाद से चलती बार जब हम उसे हाथों पर ला रहे थे, वह हंसकर सबसे 'नमस्ते' कर रहा था और कह रहा था—'अभी हम मरे नहीं हैं।'

चार बजे नन्हे वैद्य आए। देखा, नस्य दिया। १० १२ छींक आईं। कुछ दवा पी। रात बीती। मेरे ख्याल में उन्होंने भी रोग के वेग को बहुत अल्प समझा और चिकित्सा में ढील की। पहिला दिन और रात बीती, वह उठ उठकर बैठता था। हाथपैर चलाता था। उसके पैर अकड़ गए थे। दूसरा दिन बीता, रात भी बीती। उस दिन सलाई से पेशाब उतारा। बहुत लाल। रात भर बकता, उठता, चिल्लाता रहा। दवा वही रही, दूध भी जारी रहा, तीसरे दिन नन्हे वैद्य फिर आए। उन्होंने हिरण्यगर्भरस दिया। उससे कुछ वायु का शमन हुआ। अगले दिन दिवाली थी। खमीरा दिया उसदिन दूध भी दिया। ज्वर अभी १०० और १०१ के बीच रहता था। दस बजते बजते ज्वर १०३ हो गया। श्वास भी बढ़ गया। बकना भी बढ़ गया। मन बेचैन था। मैंने चन्द्रसेन का पोटा, स्त्री से लड़ा, दिवाली पूजा भी नहीं की। स्त्री मेरे भाव को नहीं समझी, और रूठ गई। अत्यन्त आवश्यक कार्यवश बाजार जाना पड़ा। लौटने पर देखा—भद्रकी हालत ठीक नहीं है। फिर तो वह सारीरात घबराहट बकवाद और न भूलने योग्य कष्ट में ही व्यतीत हुई। उसे खाट पर रस्सी से बाँध दिया था, पर वह एक क्षण को भी शान्त न था। सांप के फन की भांति उसकी गर्दन अधर रहती थी। वह अदृष्ट जगत में कुछ देखता था। प्रथम बड़बड़ाता, फिर हंसता। यही उसका उन्माद था।

पत्नी वेदनाभरी दृष्टि से मुझसे कहती भय्या को किसी तरह बचा लीजिए। वह रेलगाड़ी का नाम लेकर चिल्लाता, मुझ को पुकारता। अपना नाम लेकर पुकारता, बीच बीच में चिकित्सालय में जाने और उठने की चेष्टा की। पेशाब बेखबरी में किया। अभी आँखें खुली थीं। मगर उस भयानक चिल्लाने से आश्चर्य है—उसका दिमाग क्यों न फट गया। ओफ, कैसा भयानक कष्ट, वेदना, श्रम, और जीवन। ईश्वर हमें क्षमा करे। मेरा दिल क्षण क्षण पर टूट रहा था, पर और सभी आशान्वित थे। प्रातःकाल

मनोहरलाल वैद्यराज भी आए। देखा, तो घबरा गए। कमेटी के नगाली वैद्य शिवराज जी को भी बुलाया। उन्होंने दवा भेजी। ग्यारह डाक्टरों से भी परामर्श किया, पर कुछ नही हुआ। दिन बीत गया। वह शिथिल और दूर होता गया। रात होते होते हाथ पर ठंडे होते गए। अब खाट से बंधे बंधन खोल दिए गए, उसका सब दुख घरा रहा था। कभी कभी वह बडबडाता भी था। आंखे नग्न हो गई। पसीना आ रहा था। नस्य भी दिया, पर शोक ये सब बहुत प्रथम देनी चाहिए थी। बीच बीच मे सोने के समान सास चलती, जिससे उसके सोने का भ्रम होता था। नब्ज धीरे धीरे जाने लगी, दिल भी बन्द होने लगा। टम्प्रेचर १०४ हो गया और बढता ही रहा। शरीर ठण्डा किन्तु टेम्प्रेचर १०६, १०७ तक था। शरीर गर्म करने की सभी चेष्टा व्यर्थ गई। फिर भी उद्योग जारी थे। चार बजते बजते निराशा हो गई। पाच बजे उर्ध्व श्वास चलने लगे। जल सटकने मे कष्ट होता था, पाच बजे नीचे ले लिया गया और नवम्बर १९३० म दिवाली बाद भैया दूज को प्रातःकाल के लगभग उसने प्राण त्यागे।

उसकी अभागिनी बहू के कष्ट क्या कहू। मेरी स्त्री भी बहुत दुखी थी, पर चन्द्रसेन की स्त्री उतना नही अनुभव करती थी। जबतक उसे जगाया नही गया, वह नही जागी। छोटी बहिन सौभाग्यवती आई—द्वार पर गिर पडी। उसे बहुत शोक था। पिताजी दीवार से सिर टकराने लगे। चन्द्रसेन स्तब्ध था। मैं जैसा प्राय रहता आया हूँ, रहा। लोग आए। डा० युद्धवीर और कृष्ण भी आए। मैंने स्नान कराया और आंचल से मुह पोछा। पैसा हाथ मे नही था। मैने पत्नी की चूडियाँ गिरवी रखकर सौ रुपए सस्कार के लिए मगाए। सस्कार पचकुईयो पर हुआ। सिकन्द्राबाद से गेमसन नही आ पहुँचे थे। भद्रकी स्त्री बेहोश काप रही थी, सफेद हो गई थी। पर शोक है स्वार्थ और तुच्छ विचार उसके हृदय मे थे। उसने उसी समय भद्र की कलाई म बधी सोने की घडी निकाल कर अपने बक्स मे रख ली। ईश्वर उसे क्षमा करे। तीसरे दिन प्रातःकाल म चुपचाप उठकर श्मशान घाट पहुचा। भस्म की ढेरी बनाई, अपनी चादर मे बांधी और तागे मे बैठ गगा की ओर चला। एक मित्र ने मार्ग म हसकर पूछा—आज इस वेशमे सुबह सुबह कहा ?

मैने कहा—भद्र को गगा स्नान कराने ले जा रहा हूँ।

'भद्र को ?' मित्र ने शकित चित्त से पूछा। मैने अपने रुदन को होठो पर रोक कर गोद की पोटली दिखा दी। मित्र रोते हुए मुझसे लिपट गए और मेरे साथ ही मेरे निषेध करने पर भी गढगगा तक गए। गगा मे भस्मी विसर्जन करके जब मै घर लौटा तो घर शोकपूर्ण परिजन स्त्रियो और पुरुषो से परिपूर्ण था। सब भाँति भाँति की बाते कह रहे थे, पर मै किसी ओर ही विचित्र जगत मे विचरण कर रहा था।

मैने सोचा था कि सिकन्द्राबाद वाला मकान भद्र की स्त्री को देदू। वह पढे

और फामसी को सम्भाल। मेरी छोटी बहिन का लडका गोद लेले। पर वह मेरे आधीन रहना नहीं चाहती थी। मेरी स्त्री स उसे डाह थी। शोक है, उसके पिता भी मूख थे। वे मेरी स्त्री का अपमान भी कर गए थे। भद्र की मृत्यु के एक सप्ताह बाद वह सिकन्द्राबाद पिताजी के साथ चली गई थी, वहा खेमसेन की स्त्री से भी नही पटती थी उसने अपने व्यवहार स मेरी सहानुभूति शिथिल कर दी।

भद्र चला गया, अब मै क्या करू ? मै उसके साथ कितना कठोर व्यवहार करता रहा। हाय, वह भरी जवानी मे मर गया। उसने जगत को एकबार भी आख उठा कर नही देखा। उसके वियोग म निम्नपक्तिया मैने अपनी डायरी मे लिखी थी—'अरे भद्र, अब तू कहा मिलेगा ? वहा यदि कोई लोक है तो तू बडा भाग्यवान है। अम्मा और स्वर्गगामिनी वहा नरदकुमारी को हस हसकर खिला रही होगी। तू धीरे धीरे अपनी चाल से चलकर हसते-हसते वहा पहुँचना और हमारे लिए एक सुन्दर स्थान वहाँ बनाए रखना। अब हम भी वहा आते ही है। शोक है कि स्त्रियो के लिए कुछ भी प्रबन्ध नही है। वरना मै शीघ्र आने की कोई न कोई तरकीब निकाल लेता।

मुझे लगता है कि भद्र रात को मेरे पास आकर सोता है। दिनमे मेरे पास आकर बैठ भी गया था। बम्बई के समान रुग्ण अवस्था मे भी दीखा था। अरे भद्र, क्या तू अचानक किसी दिन यहा आ जाएगा ?

मेरी दरिद्रता मेरे सिर पर सवार है। यह मुझे तेरा ध्यान तक करने का अवसर नही देती। मै काम करने को विवश हूँ। पर मेरी भूख कहा गई। १०—१५ दिन बीत गए, भूख नही। हर समय ज्वर रहता है मन नही लगता। नीद तो मुद्दतसे नही आती। मेरे प्यारे भद्र, तुम मुझे क्षमा करो। मेरे कटुवचन क्षमा करो। उनका ध्यान न करना। मैने सदा तुम्हे प्यार किया। इधर मै मुद्दत से तुम्हारी शिकायत करता रहा अब मै कम्बख्त क्या करू ? ओह भद्र, अब तुम कहा हो ? क्या तुम कभी भूले जा सकोगे ? यह तुम्हारे लिए मेरा लिखा हुआ अन्तिम पत्र है, जिसे लिखते लिखते तुम्हारा तार पा कर मै सिकन्द्राबाद चला गया था—उसमे भी यही है—

प्रिय भद्र, मकान किराया हमारी पसन्द न लेना। मकान ऐसा हो जो बस्ती के बीच, बडा प्रतिष्ठा के योग्य हो। जिसमे सब काम हो सके। रुपए आज भेज दिए है—मिलेगे। मकान की जल्दी न करो, कुछ अटका नही है। सेठने अपना मकान क्या नही दिया खुलासा लिखो। २—४ रुपए किराए की परवा करना नही था और न मिले तो सगुआ का ले लो। किराया बढा कर। कायस्थवाडा ठीक जगह नही है। इधर उधर ही देख भाल करो। हमने यह प्रोग्राम बनाया है कि इस सीजन मे दफ्तर यहाँ रहेगा। माल वहा से जायगा। तुम गौष्टिका का चूरा दससेर तैयार करने की चेष्टा करो। खूब बारीक। राजा बाजार दिल्ली। १७ १० ३०'

भद्र की मृत्यु ने मेरी नस नस को तोड डाला। म किंकर्तव्य विमूढ हो गया। मेरे हाथ खाली थे। अपना चिकित्सालय मने उठा दिया था। मन अत्यन्त उदास और सगी साथी हीन था। इन दिनो म नई दिल्ली म राजा बाजार ने एक छोटे से मकान मे रहता था। पर तु दिल्ली मे मेरा दम घुट रहा था, म दिल्ली स बाहर जाकर अपना मनस्ताप कम करना चाहता था।

मुझे एक माग सूझा। सुधा सचालक दुलारेलाल भागव पर पुस्तको की रायल्टी बाकी थी। बहुत मागने पर भी टाल टूल कर रहे थे। मेरे पास स्वास्थ्य विषयक महान ग्रन्थ 'आरोग्यशास्त्र' लिख कर तैयार हो चुका था। मने दुलारेलाल को लिखा कि रायल्टी के बदले मे मेरी यह पुस्तक अपने गगा फाइन आर्ट प्रेस मे छापदे। उन्होन इसे स्वीकार कर लिया। पर तु उन्होने कहा कि इतना बडा ग्रन्थ आप दिल्ली मे बैठ कर नही छपा सकेगे—यहा लखनऊ मे आकर कुछ मास तक बैठना होगा। म उनकी इस राय से सहमत हो गया। मने सेठ रामगोपाल मेहता को बीकानेर लिखा कि आरोग्यशास्त्र के लिए कागज खरीदने के लिए कुछ रुपया उधार दे दीजिए। उ होने भी रुपए का प्रब ध कर दिया। अ त मे आरोग्यशास्त्र की पाण्डुलिपि लेकर कुछ औषधिया साथ मे रख पत्नी और च द्रसेन सहित म लखनऊ चल दिया। लखनऊ मने अलग मकान लिया और आरोग्यशास्त्र छपाने लगा। यह सन् १९३१ ३२ की बात है। लखनऊ म लगभग एक वष रहा। अमीनुद्दौला पाक के सामने मन एक मकान किराए पर ले लिया था, वही चिकित्सालय भी खोल दिया। मेरा नाम सुनकर वहा के कुछ सम्भ्रान्त परिवार मेरी चिकित्सा मे आए। इसी प्रवास काल म मुझे इलाहाबाद के कीटगॅज के एक प्रख्यात रईस के एकमात्र पुत्र की चिकित्साथ कुछ दिनो के लिए इलाहाबाद जाना आना पडा। इससे मेरी गाडी चल निकली।

इलाहाबाद के कीटगज प्रवास काल मे इलाहाबाद के एडवोकेट मशी जी कन्हैयालालजी से मेरा परिचय प्रगाढ हो गया। उनसे मेरा प्रथम परिचय चाद के फासी अक के कारण हुआ था। मेरे वे दिन इलाहाबाद म बहुत अच्छी तरह स व्यतीत हुए। मुशी कन्हैयालाल जी कहानियो के बडे भारी आशिक थे। उनके घर म ऊपर वाले लम्बे से कमरे मे जब म घुसा तो म उनकी कहानी प्रियता को देखकर आश्चय म डूब गया। वहा पृथ्वी भर की भाषाओ की कहानियो के सग्रह उनके पास थे। वे उनका नमूना सुनाते, आलोचना सुनाते, अनुवाद करते। उनका कहानी सम्बन्धी ज्ञान और लगन अद्भुत थी। मुझे तो वे कहानी के अवतार ही प्रतीत हुए।

कीटगॅज के रईस साहेब की कोठी म ही म ठहरा था। उनके रुग्ण पुत्र को म प्रात काल और तीसरे पहर देख लिया करता और औषध पथ्य की व्यवस्था बता देता था। शेष मेरा सब समय खाली रहता था। दिन का समय तो म अपने अध्ययन और

लेखन मे बिता देता था, परन्तु सायकाल हानेपर सेठ की बग्घी जुतवा 'कृष्णनिकुज' क हेयालालजी के निवास स्थान पर जा पहुँचता। दो तीन घटे तक हमारी बठक जमती थी, कहानियो की चर्चाए होती रहती। कभी कभी म रात्रि का भोजन वही करता था। कृष्णनिकुज पहुच कर म रईसी बग्घी को वापिस कर देता था और रातको लौटता था कन्हैयालाल जी की फिटन मे। आज वसी शानदार बग्घी और फिटन कहा, न वैसे पानीदार घोडे ही रईस पाल सकते है। अब तो मोटरकारो की होड लग गई है। एक दिन सध्या समय म कन्हैयालालजी म कहानियो की बहस मे उलझा हुआ था कि एक विनयी युवक ने आकर मुझे प्रणाम किया। युवक मे एक मस्ती थी। म उसकी ओर आकर्षित हुआ। यह युवक हरिवशराय बच्चन थे। फिर तो हम दो से तीन होगए। और हमारी त्रिगुटी गोष्ठी ठाठ से जमने लगी। कभी कभी बच्चन रात को मेरे स्थान तक मुझे छोडने मेरे साथ फिटन मे आते थे।

इसी प्रवास म मने पृथ्वीराज रासो का अध्ययन किया और उसी पर आधारित 'खवास का व्याह' नामक उपन्यास लिखा। इन्ही दिनो मुझे सूचना मिली कि हिदी साहित्य सम्मेलन भागी का सभापतित्व कर श्री किशोरीलाल गोस्वामी इलाहाबादमे आकर निरजनलाल भागवकी कोठी मे ठहरे है। इन वयोवृद्ध साहित्यकारके प्रति मेरे मन मे आदर भावना थी। उनका साहित्य भी पढा था, दशन नही किए थे। बस हमारी त्रिमण्डली म या समय उनके डेरे पर पहुची। कमरे मे पहुच कर देखा—वे पलग पर तकिए के सहारे बैठे है। नेत्रदृष्टि उस समय उनकी जाती रही थी। मने उनके समीप पहुच कर उनके चरण छुए। चरण स्पश होते ही उन्होने प्रश्न किया—कौन ?

मने उत्तर दिया चतुरसेन

सुनते ही पलग स उतर कर उन्होने मुझे अपनी बाहो मे भर लिया। मेरी कहानी 'अम्बपाली' वा उन्होने पढवा कर अनेक बार सुना था। उसीकी प्रशसा करते-करते व मरी पीठ ठोकते रहे।

उन्होने मुझसे आग्रह किया कि अम्बपाली को मै स्वय पढकर उन्हे सुनाऊँ। मेने स्वीकार किया। सगले दिन हम सब वहा पहुँचे। निरजनलाल भागव तथा उनके परिजन मित्रजन भी वहा उपस्थित थ। मैने अम्बपाली पढकर सुनाई। गोस्वामी जी ने अपने दुपट्टे से अपना सिर ढाक लिया और बोले— आपने मुझे और ही लोक मे पहुँचा दिया। आपकी लेखनी ने कहानी म कितना जीवन कितनी रगीनी भरदी है।

मैने उत्तर दिया म आपही की कलम का विद्यार्थी हूँ।

इसी प्रवास म मैने बच्चन स उनका प्रथम कविता पाठ सुना। उस समय बच्चन बहुत नही खुले थ। इसके दो वष बाद उन्हे फिर एक कवि सम्मेलन मे मधुशाला सुनाते और मस्ती म भूमते देखा। मैंने उनकी प्रशसा की। १६३८ मे मैने उन्ह

तीसरी बार फिर एक कवि सम्मेलन म देखा । उस समय उनकी प त्नी का वियोग उन्हे दग्ध किए हुए था । उन्हे ऐसा देखकर मुझे कष्ट हुआ । मैंने उन्हें आज्ञा दी कि मेरे पास शाहदरा आकर कुछ दिन रहो— मैं तुम्हारी चिकित्सा करूंगा । शरीर और मन की अलग सत्ताऐ नही है । मेरे कहने पर १९४० म वे मेरे पास आकर रहे । मैने उनकी शरीर परीक्षा की । अवसाद विषाद की सारहीनता को समझाया । पुन विवाह करो वैवाहिक जीवन ही से तुम शात और सुखी हो सकते हो—यह समझाया । औषध भी दी । छ महीने तक उन्होने मेरी औषध ली । विवाह किया । उनमे फिर वही मस्ती देख मुझे बहुत खुशी हुई ।

जिन दिनो लखनऊ मे आरोग्य शास्त्र छप रहा था, उन्ही दिनो की बात है । महाप्राण जवाहरलाल नेहरू आज विश्व के मध्य बिन्दु और एशिया के महापति-निधि है । वे भारत के धन है । आज वायु की गति से वे दुनिया म दौडते, रात दिन व्यस्त रहते और मकडी के जाल मे फसी मक्खी की भाति भूत भविष्य की राजनीति के जाल मे उलझे हुए है । वे जसे व्यस्त अब है–वसे ही पहिले भी थे । स्वनाम धन्य प० मोतीलाल नेहरू का बहुत दिन बीमार रह कर देहान्त हो चुका था । श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने मुझे लिखा—'मोतीलाल जी पर एक सस्मरण लिख दो । जवाहर लखनऊ आ रहे हे । आपके निकट ही ठहरेगे । उनसे मैन कह दिया है, सो उनसे मिलकर आवश्यक प्रश्न करके काम की बातो की जानकारी प्राप्त कर लेना ।' मै श्री जवाहरलाल जी की प्रतीक्षा करने लगा । शायद दूसरे या तीसरे दिन वे लखनऊ आ गए और मै श्री दुलारे-लाल भागव को साथ लेकर उनके डेरे पर उनसे मिलने गया । वे पडोस ही मे उतरे थे । पर जिस घर मे वे उतरे थे उसकी बात तो दूर, उस गली म भी घुसना मुझे सम्भव नही प्रतीत हुआ । अवकाश के विचार से मैने देर करदी थी, काफी रात बीत गयी थी, पर भीड भाड का उस समय भी वही हाल था । बहुत कोशिश करने पर भी मुझे श्री जवाहरलाल तक पहुचना असम्भव सा ही लगा । परेशान होकर तब मैने श्री दुलारेलाल से सलाह की कि क्या करना चाहिए । श्री दुलारेलाल लखनऊ का पानी पीकर पले थे । झट उन्होने तिकडम भिडाई । बोले—वह सामने वाला घर मेरे एक परिचित मित्र का है, उसकी छत पर चलकर पुकारे तो कुछ हो जायगा । हम लोग उस मकान की छत पर चढ गए । छत एक मजिल अधिक ऊची थी । पृष्ठ भाग मे वह घर था जहाँ श्री जवाहरलाल ठहरे थे । हजारो आदमी सहनमे भरे थे । हमने ऊपर बहुत आवाजे दी,— पर किसी ने हमारी बात पर कान नही दिये । अत म हमने ढेले मारने शुरू किये । जिनके ढेले लगते, वह कुछ कहते, ऊपर देखते, पर हम कुछ कह न पाते । उनको अपनी ओर देखते देख हम चिल्ला चिल्ला कर अपना अभिप्राय कहते, पर उसे भी कोई माई का लाल सुन समझ न पाता । अन्त मे हम थक गए । उधर ढेले पर ढेले फेकने से कई

आदमी हम लोगो की ओर देखने लगे। एक दो स्वयं सेवक भी आ जुटे। आखिर हमने एक पुर्जे पर अपना अभिप्राय लिखकर और उसे ढेले में लपेट कर नीचे फेका। ईश्वर का धन्यवाद कि उसे एक स्वयंसेवक ने उठाकर हमारी ओर देखा और हमारा अभिप्राय समझ पुर्जा श्री जवाहरलाल जी को पहुँचा दिया। पुर्जा पाते ही जवाहरलाल तुरंत बाहर निकल आए और कान पर हाथ धर कर खूब जोर से पुकार कर कहा—टण्डन जी ने मुझे कहा तो था, पर इस समय तो बात करना असम्भव है। क्या आप परसों इलाहाबाद नहीं आ सकते ?

मैंने कहा - 'अच्छी बात है, मैं इलाहाबाद आ जाऊंगा।' बस वह साठ गज लम्बी छत की दूरी की मुलाकात यहीं खत्म हो गयी। वे भीतर चले गये और हम अपने घर।

तीसरे दिन मैं इलाहाबाद पहुँचा। वहां मेरे मित्र श्री निरंजनलाल भार्गव है, वहीं मैं ठहरा। जाते ही आनन्दभवन फोन करके मैंने जवाहरलालजी से पुछवाया—मैं इलाहाबाद आ गया हूँ, समय दीजिए कब आऊं ? जवाब मे कृष्णाजी बोलीं। उन्होंने नाम और काम पूछा। फिर कुछ रुककर कहा—रात को बारह बजे के बाद आइए। सुनकर मिजाज गुनगुना हो गया। रात को बारह बजे ? यह भी कोई मुलाकात का समय है ? पर टण्डनजी की बात थी, टाली नहीं जा सकती थी। श्री निरंजनलाल जी की कार लेकर ठीक समय पर आनन्द भवन जा पहुँचा। बारह बज चुके थे। मैं सीधा कृष्णाजी के पास पहुँचा। जरा और विस्तार से अपना अभिप्राय कह सुनाया। सुनकर बोलीं— भाई अभी तक आए ही नहीं, खाना भी नहीं खाया है। आज ८–१० मीटिंगोंमें उन्हें शरीक होना था। लेकिन आप बैठिए, आते ही मैं पहले आपसे ही मुलाकात करा दूंगी। मैंने धन्यवाद दिया और बाहर आकर बरांडे में टहलने लगा। उस समय भी वहाँ बहुत मुलाकाती उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई बैठा था, कोई टहल रहा था, कोई धीरे धीरे साथी से बातें कर रहा था। आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद एक मोटर भीतर घुसी और प्रत्येक व्यक्ति बेचैनीसे 'आगए, आगए' कहकर उठ खड़ा हुआ। श्री जवाहरलाल गाड़ी से उतरे और तीर की भांति सीधे बँगले में घुस गए। मैं बहुत ऊब गया था। सोच ही रहा था कि एकबार कृष्णाजी को याद दिला दूं।

कृष्णा जी झपटती हुई आईं। उन्होंने कहा आइए, जल्दी आइए।

मैं साथ हो लिया। भीतर जाने पर वे मुझे उस कमरे में ले गईं, जिसमें श्री जवाहरलाल बैठे थे। वे एक कोच की पीठ पर दोनों हाथों के बीच सिर थामे आँखें बंद किए झुके पड़े थे। मेरी तरफ उन्होंने आंख उठाकर भी न देखा। उसी भांति आँखें बंद किए किए बोले, 'कहिए आप क्या चाहते हैं ?

मैंने कृष्णाजी की ओर देखा। वे आंखों ही में जैसे कह रही थीं—जल्दी बात खतम कीजिए—देर मत कीजिए।

मेने कहा—मे यह चाहता हू, आप जाकर खाना खाइए और आराम कीजिए। म अब जाता हूँ।

श्री जवाहरलाल ने हडबडा कर सिर उठाया, बोले—नही नही, अधिक नही तो कुछ थोडी बाते हो जायेगी।

मैंने कहा—-मुझे कोई बात ही नही करनी हे, परन्तु यदि आप कह तो सुबह मै फिर आ सकता हूँ।'

सुबह तो साढे छै बजे की गाडी से बम्बई जा रहा हूँ।

तो म कानपुर तक साथ चलू गा। ट्रेन मे बाते हो जावेगी।

नेहरूजी ने लाचारीके स्वरमे कहा—मगर टेन मे तो काग्रेस वर्किंग कमेटी की

म एकदम उठ खडा हुआ। मने कहा— 'तो फिर सही। हा, किन्तु आप आज्ञा दे तो मेरा काम माता जी से भी हो सकता हे।' इसपर जसे दुखता हुआ फोडा छू गया हो उस भाँति कराह कर श्री जवाहरलाल बोले— 'नही, नही, माताजी से पिता जी के विषय मे एक शब्द भी न कहना—वे सह न सकेगी, बेहोश हो जावेगी।'

म धीरे धीरे कमरे से बाहर चला आया।

लखनऊ के प्रवास मे प्रेमच द जी मेरे अधिक निकट आए। सम्पादन और प्रेस से सायकाल को जब अवकाश मिलता तो प्रेमचन्द आ बठते। उन दिनो प्राय नित्य ही वे मेरे पास आकर एक दो घटे बठते थे। उनके साथ गप्पशप्प लगा कर मेरे मस्तिष्क की थकान दूर हो जाती थी। साहित्य चर्चा चलने पर वे यही एक बात कहते कि लिखते तो आप हे, म तो कलम रगडता हूँ। वास्तव मे प्रमच द को उन दिना अपनी रोजी कमाने मे बहुत परिश्रम करना पडता था। उनका स्वास्थ भी बहत अच्छा नही था। पर उनकी बाते ओर उनके कहकहे चिन्ता और दुख से दूर होते थे, निश्चल ओर प्रेम से ओतप्रोत। कभी कभी दुलारेलाल के भी लतीफ मेरे मनको बद लने मे सहायक होते थे। उन दिनो म 'सुधा' के सम्पादकीय भी लिख देता था और उसके कुछ विशेषाको का सम्पादन भी मने किया था। लखनऊ मे रहते रहते अवध के अनेक तालुकेदारो से भी मेरा परिचय हुआ और मुझे अपने नवजीवन पर विश्वास हो गया। वास्तव मे पत्नी के साथ ओर उसके सहारे का महत्त्व तो मुझे उन्ही दिना अनुभव हुआ।

आरोग्यशास्त्र छपते छपते मने उसकी बिक्री का पूरा प्रबन्ध कर लिया था। सुधा द्वारा सैकडो अग्रिम ग्राहक बन गए थे। अन्त मे १९३३ के आरम्भ म आरोग्य शास्त्र छपकर तैयार हो गया। यह ग्र थ मने अपने पिताजी को समर्पित किया था और भद्र की स्मृति से पल्लवित।

आरोग्यशास्त्र की भूमिका मे मैंने लिखा था—'यह ग्रन्थ मेरे दस वष के कठि

परिश्रम का फल है। इसे सब साधारण को प्रदान करके मैं अत्यंत सुखी हुआ हूँ, और इसके निर्विघ्न समाप्त होनेपर सर्वशक्तिमान परमेश्वर को बारम्बार धन्यवाद देता हूँ। इस ग्रंथ में मेरा बहुतसा अध्ययन सचय और अनुभव केन्द्रीभूत है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सभी स्त्री पुरुष युवा वृद्ध सद्गृहस्थ इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे।

इस ग्रंथ को छपाने और प्रकाशित करने में पूरा एक वर्ष का समय खर्च हुआ है, जिसमें मुझे सोलह से बीस घंटे तक काम करना पड़ा है। यह परिश्रम ग्रंथ लेखन के परिश्रम से पृथक है। कठिन और दुरूह विषयों को सरल और सुगम रीति से पेश करने की चेष्टा में मैंने कुछ उठा नहीं रखा है, इसलिए मुझे आशा है कि पाठक आसानी से ग्रंथ के सभी तत्वों को समझ और उससे कुछ लाभ उठा सकेंगे। प्रारब्धवश ज्योंही मैंने ग्रंथ को छापने का उपक्रम किया, मैं अयाचित विपत्तियों में होकर गुजरा। यदि मैं यह कहूँ कि मेरा गत वर्ष अब तक के जीवन में सर्वाधिक दुखपूर्ण रहा तो तनिक भी अत्युक्ति नहीं। मेरी अनगिनत विपत्तियों में सर्वोपरि विपत्ति मेरे पवित्रजीवी और परम आज्ञाकारी पुत्राधिक भाई भद्रसेन का अविकसित यौवन काल में ही अनायास निधन है जिसने मेरे साहस और जीवन की मधुरता की नस नस तोड़ डाली। फिर भी मैंने ग्रंथ का प्रकाशन रोका नहीं। इसी विचार से कि क्षणभंगुर जीवन का भरोसा नहीं, जो कार्य हो जाय, अच्छा है। मुझे बहुत भय है कि मेरी मानसिक विकलता और अस्थिरता से ग्रंथ में बहुतसी त्रुटियाँ रह गई होंगी जिसके लिए मैं अपनी उपयुक्त करुण दशा की ओर विज्ञ पाठकों का ध्यान आकर्षित करके दया और क्षमा की आशा करता हूँ और इच्छा करता हूँ कि यदि जीवित रहा और ग्रंथके दूसरे संस्करण का सुअवसर आया तो मैं उसे ऐसे रूप में आपकी भेंट करूँगा जिसकी मुझे चिरकाल से इच्छा थी।'

आरोग्य शास्त्र पर सोने के वर्कों से बेलबूटेदार डाई प्रिंट कराकर मैं उसकी बहुत सुन्दर जिल्द बनवाना चाहता था। उन दिनों १९३२ में उसकी जिल्द पर प्रति कापी डेढ़ रुपया पड़ता था। दो हजार प्रतियों के लिए तीन हजार रुपया मेरे पास उस समय नहीं था। मैंने पाँच सौ प्रतियों की जिल्द बँधवा कर अपने साथ लीं और शेष दुलारेलाल के पास जिल्द बाँधने को छोड़ दीं। इनमें से सौ ही पुस्तकें मुझे और प्राप्त हुईं। शेष १८०० प्रतियाँ दुलारेलाल ने हजम कीं और उन्हें बेच लिया। अन्त में जब पुस्तक की ख्याति बढ़ी और स्टाक समाप्त प्राय हो गया तो उन्होंने बचे फार्मों में से छाँटकर एकत्र करके कुछ प्रतियाँ तैयार कराईं और पन्द्रह, बीस, पच्चीस रुपए तक प्रति पुस्तक बेचीं। मुझे न उनकी बिक्री दी, न पुस्तकें दीं न मेरी पुस्तकों की आगे की रायल्टी दी। जब हिसाब माँगा प्रेस वालों को बुला बुला कर डाँट फटकार दिया। जिस आर्थिक लाभ के लिए मैंने एक वर्ष लखनऊ में रहकर यह ग्रंथ प्रकाशित कराया था उसका लाभ उठाया दुलारेलाल भार्गव ने, मित्रता के नाम पर।

ग्रन्थ का लेकर म फिर दिल्ली लौट आया। और त्रादनी चौक फव्वारे म प्रटे वाले हलवाई के पास एक स्थान किराए पर लेकर मन अपने दिल्ला जीवन का पुन श्रीगणेश किया और च द्रसेन को भद्र की कुर्सी पर आरूढ़ किया।

जिस दिन म वहा अपनी कुर्सी पर बठा, मेरी पत्नी और छोटी बहिन न नारियल मेरी गोद मे डालकर टीका किया था। उ होने मेरे लिए शुभ कामनाएँ मागी थी।

१९३३ के प्रारम्भिक दिनाम अपना दुखमय भूतकाल भुलाकरमै अपने धन्धे म फिर जुट गया। आरोग्यशास्त्र की जितनी प्रतिया मै लखनऊ स लाया था, उन सबकी वी० पी० ग्राहका के पास मन भेज दी थी, जिनका रुपया आने लगा था। कुछ धनी परिवार भी मेरी चिकित्सा मे आन लगे।

एक दिन पत्नी ने मुझसे कहा–आरोग्यशास्त्र की वी० पी० का जितना रुपया आता जाय, उसे अन्य किसी काम मे खच न करके एक मकान खरीद लिया जाय।

पिता जी सिकन्द्राबाद से कभी कभी मेरे पास आकर रहते थे। उनसे तथा मित्रोसे भी पत्नी ने यह बात मुझे कहलाई। उन दिनो मेरी चिकित्सा म एक ऐसे धन पति थे जिनकी बहुत सी खाली जमीन लालकिले के सामने पडी हुई थी। आरोग्य होने पर वे मुझे एक घोडा गाडी मय घोडे के और लालकिले के सामने जमीन का पाँच सौ गज का एक टुकडा देने लगे। घोडा गाडी तथा घोडा तो मने स्थान न होने के कारण वापिस कर दिया और भूमि म अधिक चाहता था। इसी समय यमुना पार शाहदरे के एक आचल मे सवा एकड का एक एकान्त टुकडा जमीन का मुझे मिल गया, जिसे मने आरोग्यशास्त्र के एकत्र किए रुपयो से खरीद लिया,कुछ कमी पडी तो पत्नीने जिद्द करके अपने ठोस सोने के कडे, चूडियां तथा जजीर बचकर रकम पूरी करदी। १९३४ के प्रारम्भ मे शाहदरा की यह भूमि मने खरीदी थी। सत्य बात तो यह थी कि मेरा मन चिकित्सा की ओर कम लगता था और साहित्य रचना की ओर प्रवृति अधिक सक्रिय हो उठी थी। साहित्य रचना के लिए म जसा एका त कोलाहलरहित शा त स्थान दिल्ली के नजदीक चाहता था, वैसा ही यह स्थान था। परन्तु नीरव स्थान के खतरा की ओर मेरा ध्यान नही गया,जिसका शिकार मुझे निरन्तर ८ १०वर्षो तक होते रहना पडा।

जगह को खरीद कर मने उसकी ऊबड खाबड भूमि को भरवाकर ठीक किया और दो तीन छोटे कमरे टीन की छत डाल कर रहने योग्य बना कर वहीं रहने लगा। उन दिनो शाहदरा का यह क्षेत्र सवथा उपेक्षित और म्युनिसिपिल सुविधाओ से वचित था, न वहा रातको रोशनी का प्रब ध था, न पुलिसके पहरेका ही। दो तीन महीन पीछे ही एक रात को चोर दीवार फोडकर घुस आए और राई-रत्ती सब ले गए। चोरो का यह सिलसिला चलता ही रहा और ८ १० वष तक मेरा राई रत्ती वे ले जाते रहे। मने म्युनिसिपिल कमेटी, पुलिस तथा शासन अधिकारियो को बहुत लिखा। मेरे बहुत बार

लिखने तथा दौडधूप करता ग पुलिस की गश्त रात को उधर लगने लगी थी। अब तो मेरे इस मकान के उद गिर्द चारो ओर बहुत मकान बन गए हे, आबादी बढ गई है, नागरिक सुविधाए प्राप्त हो गई हे, पर तु प्रारम्भिक काल म १९३४ ३५ मे दिन छिपते ही यह स्थान भयानक हो जाया करता था। उन दिनो तक भी यमुना पुल पार करके शाहदरे के माग मे पैदल और साइकिल सवार दिन छिपने के बाद आने का दुस्साहस करते भय खाते थे। चकि मुझे रात्रि के दो बजे से प्रात ७–८ बजे तक लिखने की आदत है, इसलिए दो बजसे तो मे जाग ही जाता था। दो बजे तक चौकीदार तथा नोकर चाकर जागते और पहरा देते रहते थ। एक बार चोर से मेरी बहुत भयानक मुठभेड हुई। रात को दो बजे मेरी आख खुल गइ और मे उठ बठा। गरमी के दिन थे, हम बाहर आगन म सोए थे। नियमानुसार उठकर मेन देखा कि कमरे की बत्ती जल रही हे और एक आदमी व्यस्त भाव से कुछ उठा धराई कर रहा है। म ने देखा सब लोग अपनी अपनी खाटो पर सोए थे, तब यह कौन हो सकता हे। म खडा हो गया। मेरे खडे होने का शब्द सुनकर चोर ने मेरी ओर देखा। मने गज कर कहा— कोन है?

इसके उत्तर मे उसने एक लम्बा छुरा मेरी ओर फककर मारा। म तेजी से हट गया और छुरा दीवार से टकरा कर झन्न करके गिर पडा। म बाल बाल बच गया। हो हुल्ला सुन कर घर के सब आदमी जाग पडे थे। मौका पाकर चोर भाग गए। पीछा करने पर बहुत दूर खेतो म खाली बक्से पडे मिले। कपडे लत्ते गहना सब गायब था। इन निरन्तर चोरियो म मुझे बीस हजार रुपयो की हानि सहनी पडी थी।

मेरी आय के दो ही जरिए थे। चिकित्सा और लेखन। चिकित्सा के कारण म राजा था और लेखन के कारण तगदस्त। पर तु जीवन म अनेक झझावात आने पर भी म गाडी को खीचे लिए जा रहा था। चिंतित होना मने जाना नही। भविष्य की ओर उन्मुख होकर बढे चले जाना ही मेरी प्रवृत्ति मे है, सो म वत्तमान को समेट कर चलता रहता था। अब तक मने लाखो कमाए थे और लाखो ही खच थे, पर म चिर दरिद्र था दरिद्र ही हो जाता था। उस काल म भी मेरी चिकित्सा बहुत अच्छी चल निकली और म दो चार लाख रुपया बचा सकता था, पर तु मुझे ऐसी बुद्धि हुई ही नही। यह बुद्धि हुई मुझे जब ही आयुकी अढसठवी देहरी पर पहुँचकर, जब मेरा शरीर थक कर रोगो की ओर जाने लगा और मुझे अपनी स्वय की चिकित्सा के लिए डाक्टरो के नुस्खे लेने अनिवाय हो गए।

१९३३ म मेरे हाथ म एक बालक का केस आया। बालक के पिता चाँद के मारवाडी अक से प्रभावित होकर मेरे परिचय मे आए थे और उन्होने मेरा साहित्य पढा भी था। उनके एकमात्र पुत्र हरिसिंह की चिकित्सा करने से जब बडे २ डाक्टरोने जवाब दे दिया, तब उन्होने अपने मुनीम जी को भेजकर मुझे चूरू (बीकानेर) बुलाया। हरीसिह

को जब मैने पहली बार देखा तो मुझे असीम दु ख हुआ । उसके चिररोग जर्जर शरीर की भलीभाति परीक्षा करने के बाद निराशा की एक लम्बी सास छोडकर जैसे ही मैने उसके पिता की ओर दृष्टि की, तो देखा—वे अत्यन्त उत्साह और आशाभरे नेत्रो से मेरी ओर देख रहे है । मैं बडी कठिनाई मे पडा,अन्तत बालक मेरी चिकित्सा मे आया किन्तु कुछ दिन बाद ही उसका जीवन प्रदीप बुझ गया !!!

इस अति अल्पकालीन परिचय ही मे मै दो बातो मे अत्यन्त प्रभावित हुआ,एक उस बालक की असाधारण प्रतिभा और कष्ट सहिष्णुता, दूसरे उसके पिता की अद्भुत सुश्रुषा । मुझे सदैव ही असाधारण रोगियो से वास्ता रहता है, पर ऐसा उदाहरण मैने हजारो मे नही देखा । उस बालक का जन्म चूरू के विख्यात सुराणा परिवार मे हुआ था । बालक के पिता श्री सेठ शुभकरण जी सुराणा एक उदार, विद्वान् और राज्य के प्रतिष्ठित नागरिक थे । कलकत्ते की प्रसिद्ध फर्म मेसर्स तेजपाल वृद्धिचन्द्र के अधिपति थे । उनका वंश यद्यपि प्राचीन कालसे वीरता के लिए प्रख्यात है,पर उस घराने के पास एक ऐसी सम्पत्ति है,जो न केवल राजपूताना, प्रत्युत् भारत भरके लिए गर्व की वस्तु है । यह एक दुर्लभ पुस्तको का विशाल सग्रह है,जिसकी हस्तलिखित पुस्तके सातवी शताब्दी तक की है और जिसका मूल्य एक लाख के अनुमान का है ।

ऐसे विद्याव्यसनी परिवार मे ऐसे प्रतिभासम्पन्न बालक का जन्म लेना आश्चर्य की बात नही । बालक की प्रतिभा के सम्बन्ध मे मैने कुछ असाधारण बाते सुनी, जिन मे से कुछ का यहा जिक्र करना असगत न होगा । बालक मे अपने वंश की वीरता का अंश आश्चर्यजनक था । वह शस्त्रो का भारी शौकीन और निर्भयचित्त था । एक बार कलकत्ते मे नववर्ष की परेड के समय वह तोपोके अति निकट खडा होकर उनकी गर्जना सुनकर हँसता रहा । उसने अपने सग्रह मे बहुत सी पिस्तौलें, बन्दूके, तलवारे रख छोडी थी । एक गेडे की ढाल पर तो उसका बहुतही मन था । जब वह बाहर घोडे पर सवार होकर घूमने जाता,तब हाथ मे छोटा सा बर्छा ले दो चार सशस्त्र मनुष्यो को आगे पीछे कर ठाठ से निकलता था । अल्पावस्था ही मे वह निर्भय हो हवाई जहाज मे चढकर घूमा । वह अतिकोमल चित्त और उदार था । दीन दुखियो को बहुत कुछ दे डालता था ।

उन्ही दिनो माघ मास मे श्री बीकानेर दरबार के कनिष्ठ पुत्र महाराजकुमार श्रीविजयसिंह जी का दुर्भाग्यवश स्वर्गवास हो गया । बालक उस समय इतना रुग्ण था कि एक क्षण पिता को आखो से पृथक न करता था । पर उस अवसर पर उसने तुरन्त ही पिता को सहानुभूति प्रकट करने दर्बार की सेवा मे हठ करके भेज दिया । वह गायन सुनने का भी बहुत शौकीन था । इस विषय मे उसकी सस्कृति और अभिरुचि भी अत्यन्त शुद्ध थी । वह जैनधर्म के नवकार मन्त्र का बहुधा गम्भीरतापूर्वक पाठ करता देखा गया । वह बालक बम्बई की 'यग फोक्स लीग' का सदस्य था । ऐसा होनहार और अद्भुत

प्रतिभासम्पन्न बालक ८ वर्ष की आयु मे ही अपने पिता, विमाता और एक छोटी बहिन को अपार शोक सागर मे छोड कर चल बसा। उन ८ वर्षो मे भी ७ वर्ष उसने जीवन और मृत्यु से युद्ध किया, जननी का दुग्ध पान भी वह न कर पाया। कहने योग्य यदि कुछ उसने पाया तो पिता का असाधारण प्रेम और सेवा। अंतिम बार मे जब उसे देखने चूक गया था तो उसने पथ्यपानी और औषध की व्यवस्था का सुनकर जिस दृष्टि से मेरी ओर ताका, उसे मै जीवनभर भूल नही सकता। उसमे कितनी वेदना, कितना धीरज और कितनी निराशा थी ? यह कोई दैवीप्रेरणा ही थी कि इतना अल्पवयस्क बालक इस भांति मृत्यु से युद्ध करे। इतने ही अल्प परिचय से मेरे हृदयमे उसका असीम प्यार था।

मेरी एक राजनैतिक कृति '२१ बनाम ३०' सन् १९३० मे छपी थी, जिसे मैने १९३० के प्रथम प्रभात-आलोक की प्रथम किरण को समर्पित किया था। इस ग्रंथ का प्रारम्भ मैने इन पंक्तियो से किया—गत वर्ष की भीष्म प्रतिज्ञा के आधार पर महात्मा गांधी ने सन् १९२९ के अन्तिम क्षण व्यतीत होने पर रात्रि के १२ बजकर ३ मिनट पर अपनी पूर्णस्वाधीनता की घोषणा लाहोर की राष्ट्रीय महासभाकी वेदी परसे करदी है।

इसकी भूमिका मे मैने लिखा था—१९२१ का महायोग आया और चला गया। भारत के दुर्धर्ष दुर्भाग्य ने उसे हमारे जाग्रत होने से प्रथम ही मार भगाया। तब से अब तक दस वर्ष का समय हमने जागृति और आत्मबोध की चेष्टा मे व्यतीत किया। आत्म बोध हमे हुआ और आज जब सन् ३० का प्रथम प्रभात उदय हुआ तो हम जाग्रत हो कर सच्चे युवक की भांति अपनी उस सामूहिक अभिलाषा को धैर्य और वीरता से प्रकट कर सके जो हमारे चरम आत्मबलिदान से ओतप्रोत है।

सहस्रो वर्ष बाद हमारी आत्मा मे सन् ३० के प्रथम क्षणमे वह भाव, तेज त्याग और साहस आया है, जो प्राचीन आर्य संस्कृति के लिए महा जातियो के इस नव्य उत्थान के युग मे असाधारण है। यदि इसी त्याग की भावना के ऊपर चलकर हमारा सर्वनाश भी हो तो भी हम पृथ्वी की समस्त जातियो मे अपने को महाभाग्यशाली समझेंगे।

ग्रन्थ की समाप्ति इन पंक्तियो से हुई है—ऐसी दशामे हमारा यह धर्म है, बल्कि संकट काल कर्त्तव्य है कि सब स्वार्थ सब प्रलोभन सब दुर्बलताऐं सबद्वेष ईर्ष्या फूट भूल कर एक मन एक वचन एक प्राण से इस युद्ध मे जूझ मरे। दिगन्त को कम्पायमान करती हुई हमारी आवाज निकले—'कार्य वा साधयाम शरीर वा पातयाम।'

३१मे मे बम्बई कांग्रेस अधिवेशन हुआ। यह अधिवेशन कई कारणो से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। उस अवसर के लिए मैने एक पुस्तक 'पराजित गांधी' नामक लिखी। यह पुस्तक मैने सन् १९३१ ई० की २७ अगस्त की शाम को सात बजकर दो मिनट के मनहूस क्षण को समर्पित की थी। असल मे इस पुस्तक मे मेरा सारा क्रोध इसी मनहूस क्षण के ऊपर था जबकि महात्मा जी राउन्डटेबिल कान्फ्रेंस मे सम्मिलित होने के लिए

शिमने से लदन के लिए एकाएक रवाना हो गए । उस समय ब्रिटिश अग्रेजों ने भारत सरकारका मस्ट काट दिया था । वहाम निराश होकर विदा होते समय महात्मा जी ने स्वय कहा था —'मुझे फिरसे अपने आप को कट्टर असहयोगी और पत्रिनय अवज्ञाकारी घोषित करना पडेगा । मुझे वहा के करोडो मनुष्यो को असहयोग और आज्ञा भग का सदेश फिर से देना होगा । भले ही भारत पर फिर कितने ही वायुयान क्यो न मडराये और भारत मे कितनी ही सनिक मोटर क्यो न भेज दी जाए ।' इस पुस्तक मे महात्मा गाधी की बुराई नही की गई थी, अपितु उनके सहयोगियों की स्वार्थ भावना की आलोचना थी, जिनके कारण कांग्रेस के महान काय म कालिमा आती थी । इस पुस्तक का आरम्भ करते हुए मने लिखा था—'२५ वर्ष हुए, भारतकी राजनीति मे एक शक्तिशाली आधी का प्रवेश हुआ था । यह आधी गाधी थी, अथवा वह एक उग्र ज्वालामुखी था, जिसकी प्रशान्त भव्यमूर्ति, उन्नत ललाट, अचल स्थय, अप्रतिम सहिष्णुता बीसवी शताब्दी के लिए देखने की वस्तु थी । इसके छोटेसे मुख मे जो उज्ज्वल ज्योतिमय लौ निकलती थी वह देखने मे सवथा हृदयहारी थी । परन्तु वास्तव म वह भीतर ही भीतर धधकती हुई महाग्नि समुद्र की बोछार थी । यह नसर्गिक पाताल तक गहरी थी और उसी क्षुद्र मुख से आकाश तक एक बार उठी । यह ज्वाला, करुणा से द्रवित होकर, बहने वाले पाप को भस्म करने वाली द्रवित अग्नि थी । यह पुस्तक जब बम्बई अधिवेशन मे बिक्री के लिए पहुँची तो गुजराती कांग्रेस जनो ने इस पुस्तक को गाधीजी के विपरीत समझ कर इसकी सब प्रतिया खरीद कर ढेर करके जला डाली । चन्द्रसेन यह पुस्तक लेकर बम्बई गए थे । उन्होने जब यह काण्ड देखा तब उन्होने बहुत रात व्यतीत होने पर महात्माजी से उनके डेरे म भेट की और पुस्तक की एक प्रति देकर सब हकीकत बयान की । यद्यपि महात्मा जी ने गुजराती भाइयो से उस पुस्तक के प्रति रोष न करने के लिए कहा—परन्तु उन्होंने पुस्तक को वहा न बिकने दिया और अगले दिन दूसरे लोगो से पुस्तक खरीदवा खरीदवा कर सबको ढेर करके जला डाला । इस प्रकार उस पुस्तक की तीन हजार प्रतिया जला कर राख कर डाली गई ।

१६३२ के अन्तिम दिनो मे नाथद्वारेके युवक उत्तराधिकारी टिकैतलाल जी श्री दामोदरलाल जी ने हमा नामक एक वेश्या से विवाह किया । इस विवाह को लेकर समाचार पत्रो मे खूब चर्चा रही । परन्तु मेने उनके इस काय को समाज सुधारकी दृष्टि से देखा और उसे उचित समझकर कलकत्ते के साप्ताहिक विश्वमित्र मे एक गम्भीर लेख 'पाप और पुण्य' छपाया । वह लेख यह है—

श्रीनाथद्वारे के टिकैत लालजी श्री दामोदरलाल जी ने हाल ही मे जो विवाह किया है, उसे लेकर इधर कुछ दिनो से हिन्दू समाज मे बहुत भारी हलचल मच गयी है । इसी हलचल के फलस्वरूप उस साहसी युवक धर्माधिकारी को लक्षावधि भक्तो और

सेवकों का विरक्ति भाजन बनना पडा है। यही नही, गद्दीका उत्तराधिकार त्याग श्रीनाथ द्वारे से भी पृथक होना पडा है। जहा तक मुझे विश्वास है, प्राय सभी पत्रो ने इस प्रश्न को लेकर उसकी घपणा की है।

इस सारे अनर्थ की जड यह है कि जिस बहन से इस धमगुरु ने विवाह किया है, वह जन्म से उन भाग्यहीना बहिनो मे से एक है, जिस जाति की प्रत्येक पुत्री को वेश्या वृत्ति करना इस कमीनी हिन्दू जाति ने सकडो वर्षों से अनिवाय बना दिया है, जिस जाति मे वेश्या वृत्ति एक धम, एक प्रारब्धरेख, एक साधारण स्त्री कत्तव्य समझा जाता है, जिस जाति की प्रत्येक बालिका अपने शुभ्र ललाट मे 'वेश्या' शब्द की मुहर विधाता के हाथ से लगी समझती है और जिसने विवाह करना, सद्गृहस्थ बनकर रहना, पवित्र पतिव्रत धम की दीक्षा लेना शताब्दियो से त्याग दिया है, जिस जाति की आज लक्षावधि सुन्दर, सुशील और रूपगुणो मे रानिया के समान बालिकाए इस घृणास्पद, नीच और गर्हित पाप को ठीक उसी प्रकार कर रही है, जिस प्रकार लाखो भगी बहिने दिन भर मलमूत्र के टोकरे सिर पर लादना अपना कत्तव्य समझती है। इन बहिनो के चारो ओर मयादा (?) की रेखा है, जो हिन्दू धमने खीची हुई है, वह इस भाति नरकाग्नि की भाति तप्त है कि इस जाति की किसी भी बालिका के लिये उसका उल्लघन करके समाज के हरे भरे स्वच्छन्द बाग मे स्वतन्त्रता से विहार करना उचित नही, फिर वह चाहे भी जैसी रूप, और गुण मे श्रेष्ठ हो।

इस युवक धमाधिकारी का भी केवल एक ही गुरुतर अपराध है कि उसने इस बहिन से विवाह क्या किया? उसे उस पतित जीवन और धिक्कार योग्य परिस्थिति से उबारा क्यो? उसे धम और अग्नि की साक्षी देकर पत्नी क्यो बनाया? उसे इस लोक और परलोक मे यश, प्रतिष्ठा, गौरव, सुख और पवित्रता की अधिकारिणी क्यो बनाया? उसकी सतान को गौरव से सिर उठाने का अवसर क्यो दिया? उसे उचित था कि वह चुपचाप उससे व्यभिचार सेवाण करता, समाजको इसमे न कभी उज्र हुआ है न होता। हजारो धमाचाय, राजा और महाराजा नित्य ऐसा करते है, पर कौन उन्हे रोकता है? अखबार वाले अलबत्ता कुछ शोर मचाया करते है, पर ज्योही उन्हे कुछ टुकडे फके गये कि उन्होने चुप्पी साधी, बस, यही तक मामला खतम था। यदि यह बहिन गभवती होती, तो उसे उचित था कि किसी चिकित्सक चूडामणि को मुट्ठीभर चादी देकर गभपात करा देता, और जब वह वृद्धा हो जाती या उसका रग सूख जाता, उससे मन भर जाता, तब उसे त्यागकर उसे किसी और यौवन का रस लेना चाहिये था। इससे धम मे तनिक भी आच न आने पाती। श्री दामोदरलालजी मन्दिर मे रह सकते थे, गद्दी के अधिकार पर भी आपत्ति न थी, वैष्णव भक्तो को भी इसमे हानि नही दीखती और हिन्दू समाज को भी एतराज न होता।

अब गम्भीरतासे विचारनेकी बात तो यह है कि टिकैत श्रीरामगोपालजी नाथ-द्वारे की जिस गद्दी के उत्तराधिकारी है, वह साधारण नही, वल्लभ सम्प्रदाय की भारत मे एक प्रधान गद्दी है। उसकी सम्पत्ति करोडो की है और आर्थिक महत्त्व की दृष्टि से इस गद्दी की कीमत किसी राज्य की गद्दी से कम नही। दूसरी तरफ मंदिर के भक्त जनो मे समस्त दक्षिण, गुजरात और बहुत सा वश उत्तर भारत का परिपूर्ण है। नाथ द्वारेके मंदिरकी सम्पदा देखकर अनायास ही प्रभावित होना पडता है। कुछ वर्ष पूर्व जब मुझे प्रथम बार नाथद्वारे जाना पडा, तब वहा के मंदिर का प्रभाव और भक्तजनो की भक्ति, जिसे मै अंधश्रद्धा कहा करता हूँ, देखकर मुझे दंग होजाना पडा और मैने अनायास ही यह समझ लिया कि इन दुर्गम पहाडियो मे इस मंदिरने सुरक्षित रहकर मुगल कालमे हिंदुत्व की भावना को रक्षित रखने मे कितनी सहायता की होगी। मै जिसने अपने जीवन मे कभी भी प्रतिमा पूजन नही किया, वहा उस विशाल प्रांगण मे श्रद्धा और भक्ति से ओतप्रोत शरीर और प्राणो मे अवनत, दरिद्र और धनाढ्य, मूर्ख और विद्वान सभी को आत्म विस्मृत उस मंदिर मे स्थित देवमूर्ति मे केंद्रित देखकर गहन विचारो मे डूबता उतराता रहा, तब मेरे मन मे यह विचार आया कि यदि ये धर्म गुरु राष्ट्र के उद्धारमे हाथ बटावे, यदि इन लाखो नर नारियो को, जो यहा अपने वैभव, अधिकार, विद्वत्ता सबको भूलकर श्रद्धामूर्ति बने खडे है, ये धर्म गुरु 'उठो, जागो और वर प्राप्त करो' का गुरुमन्त्र दे, उनमे एकता, समानता, विश्वमैत्री जीवन और उत्थान की भावना भर दे, तो आज ही भारत का भाग्य जाग उठे। इस स्थान पर न किसी को शंका है न सन्देह, सभी एक रसमय है। मुझे यह कल्पना भी न थी कि उस मंदिर के वातावरण को भेदकर इस मंदिर का कोई धर्माधिकारी ऐसा साहस कर गुजरेगा कि कि वह अपने उस निश्चयके सामने इस विशाल सम्पतिके प्रभुत्व और धार्मिक सम्मान को ठोकर मार देगा।

मै समस्त हिन्दू जाति से यह प्रश्न करता हू कि वह इस बात पर विचार करे कि इस धर्माधिकारी ने कौन सा अनैतिक कर्म किया है? फिर मै समस्त हिंदू युवको से यह भी जोरदार अपील किया चाहता हूँ कि वे बिना विलम्ब इस युवक धर्मगुरु का अनुकरण करे, वे लाखो बहिनो को इस लज्जा और धिक्कार से परिपूर्ण जीवन से उबारे, उन्हे कर्त्तव्यनिष्ठ सुगृहणिया बना दे, उन्हे ज्ञान ददायिनी बहूएँ बनावे, उन्हे चतुर और पवित्र पत्निया बनावे। वे समाज की जड से इस पाप के पौदे को खोदकर फेंक दे। वे अपवित्र को पवित्र, अधर्म को धर्म, अशुभ को शुभ बना दे। यह भारत की धर्म-क्रांति का सबसे उन्नत, सबसे उत्कृष्ट कार्य होगा।

क्या आपको मालूम है कि भारत मे पांच लाख से ऊपर ये अभागिनी बहिने है, जो अवश्य ही किसी माता की पुत्री और किसी भाई की बहिन है। वे अपने वाञ्छनीय

व्यवसाय से प्रति वर्ष साठ करोड रुपया भारत के असंयमी युवकों से कमाती है जिसका जोड बारह वर्षों में बहत्तर अरब होता है जिसका सिर्फ सूद पाँच करोड है। धन के इस भयानक असद्व्यय के साथ मानसिक मलिनता और घृणित रोगों की रोमांचकारी वृद्धि का हिसाब पृथक है।

मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि इन बहिनों की संस्कृति खूब उन्नत, स्फूर्तिपूर्ण है, पर स्त्री के स्वाभाविक गुण उनमें हैं। यदि वे विवाही जाकर इस पाशविक भावना से दूर रखी जायँ, उन्हें प्रतिष्ठा और सम्मान, मानसिक उन्नति, कर्तव्य और सामाजिक दायित्व की शिक्षा दी जाय तो ये बहिनें समाज की सभ्य स्त्रियों से एक ही पीढ़ी में बराबरी की टक्कर ले सकती हैं। आज भी इस जाति की सैकड़ों बहिनों को बहुत से राजा महाराजा और रईसों ने घरों में डाला हुआ है, यदि मुझसे उनकी फेहरिस्त माँगी जाय और मैं उसे प्रकाशित कर दूँ, तो कदाचित सभ्य समाज में तहलका मच जाय। उनमें से किसी ने भी श्री दामोदरलालजी की भाँति सत्साहस नहीं किया कि वे उसे अग्नि और ब्राह्मण की साक्षी देकर 'धर्मपत्नी' का रूप दे दें, उन्होंने उन्हें रखनी बना रखा है। वे तन मन से उनके दास हैं, उन्होंने अपनी रियासतें इन पर लुटा दी हैं उन्होंने अपनी इज्जत आबरू भी तो खो दी है। कोई भी मनुष्य किसी रूप पर इतना नहीं कर सकता। अवश्य ही इन बहिनों ने अपने गुणों की भी करामात दिखायी है। आप रूप की अवहेलना करके अपने को संयमी कहने का ढोंग रच सकते हैं, पर यदि आप किसी रंगीन गणिका की भी केवल इसलिए अवहेलना करें कि समाज में उसका अमुक स्थान है तो मैं डंके की चोट कहूँगा कि आप मर्द नहीं, कायर हैं।

मैं आपका ध्यान विवाह के सम्बन्ध में प्राचीन हिन्दू परिपाटी की ओर आकर्षित किया चाहता हूँ। वेद जो आर्यों की अति प्राचीन धर्म पुस्तक है, उसमें विवाह के सम्बन्ध में जातपात का भेदभाव बिल्कुल न था। वहाँ अबोध बालिकाएँ माता पिता द्वारा नहीं ब्याही जाती थीं। ऋग्वेद की विवाह सम्बन्धी ऋचाएँ अत्यन्त मनोरम हैं, जिनका भाव हम यहाँ संक्षेप में देते हैं।

हे कुमारी, सूर्य ने तुझे बन्धन में बाँधा है, अब हम तुझे उससे मुक्त करके तुझे तेरे पति के साथ उस स्थान पर रखते हैं, जो सचाई और पुण्य का घर है (ऋ०मं०१०। सूक्त ८५ ऋचा २४)

तुझे सन्तान हो और तुझे आशीर्वाद मिले। अपने घर का काम प्रसन्नतासे कर, अपना शरीर इस पतिके साथ एक कर और बुढ़ापे तक उस घरमें प्रभुत्वकर, (ऋचा २७)

सब देवता हमारे (वरवधू के) हृदयों को एक करें, जैसे दो पात्रोंके जल संयुक्त हो जाते हैं। (१०।८५)

यदि किसी स्त्री के दस पति जो ब्राह्मण नहीं हो चुके हों और यदि उसने उप-

रा त कोई ब्राह्मण उससे विवाह किया चाहे, तो केवल वही उसका पति है। (अथर्व वेद ५। १७।८)

इससे पता चलता है कि स्त्रियो की विवाह सम्बन्धी स्वाधीनता कहा तक थी।

ब्राह्मणकाल मे बहुभार्या होने लगी थी,तथा स्त्रिया अपने पतिया के सिवा अन्य पुरुषोसे भी सम्बन्ध रखती थीं। यह सम्बन्ध विशेप अवस्थाओमे नियोग कहाते तथा वध रीतिसे किए जाते थे और कभी कभी गुप्त भी होते थे। उदाहरण के लिए याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियो का उल्लेख काफी है। ऋषि भी जब अनेक पत्नी रख सकते थे तब औरो की तो बात ही निराली है। ऐतरेय ब्राह्मण ३,२३ म स्पष्ट लिखा है कि—एक मनुष्यके कई स्त्रिया हो सकती है, परन्तु एक स्त्री के साथ कई पति नही हो सकते। शतपथ ब्राह्मण मे एक ऐसी घटना का उल्लेख है, जिससे इस बात का पता चलता है कि स्त्रियो के गुप्तप्रेमी होते थे।

शतपथ ब्राह्मण २।५।२।२० मे यज्ञ के प्रसग मे लिखा है, 'इस पर पतिस्थात् वहा जाता है, जहा यज्ञ करानेवाले की स्त्री बैठती है। जब वह उस स्त्री को ले जाना (?) चाहता है, तब उससे पूछता है कि तू किससे ससग रखती है? अब यदि किसी की स्त्री किसी दूसरे मनुष्य से ससग रखती है, तो वह निस्सन्देह वरुण की अपराधिनि होती है। इसलिए वह उससे पूछता है कि जिसमे वह मन ही मन मे वेदना के साथ यज्ञ न करे, क्योकि पाप कह देने से कम हो जाता है, क्योकि वह सत्य हो जाता है, इसीलिए वह उससे इस प्रकार पूछता है, और जो वह ससग नही कबूलती तो उसके सम्बन्धियो के लिए हानिकर होगा।'

उपनिषद् मे जो जहा तहा उदाहरण पाए जाते है, उनसे पता चलता है कि उस काल मे भी स्त्रियो की स्वतन्त्रता के प्रति लोगो की काई विरक्ति या तिरस्कार का भाव न था। सत्यकाम जावाल का उदाहरण ही इसका बहुत पुष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण (११।६।२।१) और ऐतरेय ब्रा० (२।१९) इलूपा के पुत्र कवष का वृत्तान्त है, जिसने उसे यह कहकर यज्ञ से निकाल दिया था कि यह दासी का पुत्र है, परन्तु वह देवता और ब्राह्मण दोनो ही से परिचित था, वह ऋषि ही गिना गया।

बहु विवाह की प्रथा न उस समय न केवल भारतवर्ष ही मे, प्रत्युत अन्य देशो मे भी थी। सिकन्दर महान, और उसके उत्तराधिकारी फिलीमकस, सिल्युकस, एन्टिगोनस, डेमीट्रियस, पिहस आदि सभी अनेक पत्नी रखनेवाले थे। द्रौपदी, कुन्ती, तारा, मन्दोदरी के उदाहरण भी तत्कालीन विवाह सम्बन्धी उस स्वाधीनता पर प्रकाश डालते है।

स्मृति मे यदि 'पुत्र' शब्द की व्याख्या देखी जाय तो उससे प्राचीन स्मृतिकाल के विवाह बन्धनो पर भी काफी प्रकाश पडेगा।

गौतम, जो सवप्राचीन स्मृतिकार है, इतने प्रकार के पुत्र मानता है—

१—औरस (अपने वीय से अपनी धमपत्नी मे) २—क्षेत्रज्ञ (अपनी स्त्री मे दूसरे पुरुष के वीय से उत्पन्न) ३—दत्तक (गोद लिया हुआ) ४—कृत्रिम (माना हुआ) ५—गूढ़ज (गुप्त रीति से उत्पन्न किया हुआ अर्थात् गुप्त प्रेम के परिणामस्वरूप) ६—अपविद्ध (त्यागा हुआ) ७—कानीन (अपनी स्त्री का कुमारी अवस्था मे उत्पन्न पुत्र) ८—सहोढ (गर्भवती दुहिता का पुत्र) ९—पौनर्भव (दुबारा विवाहिता अर्थात् विधवा द्वारा उत्पन्न) १०—पुत्रिका पुत्र (नियुक्ता कन्या का पुत्र) ११—स्वयदत्त (स्वय दिया हुआ पुत्र) १२—क्रीत (मोल लिया हुआ पुत्र)।

बोधायन और वशिष्ठ गौतम के बाद के स्मृतिकार हे। उनकी सम्मति गोतम से कुछ भिन्न है—उनके मत से स्वजाति की पत्नी मे उत्पन्न पुत्र ही 'औरस' माना गया है। किसी मृत व्यक्ति की या हीजडे की, या रोगी की स्त्री से यदि कोई व्यक्ति उसके पति की अनुमति लेकर पुत्र उत्पन्न करे, तो वह क्षेत्रज्ञ कहाएगा। इस प्रकार इन स्मृतिकारो ने जाति के बन्धन तथा कुछ विशेष नियम बना दिए थे तथा 'निषाद' नामक एक नए पुत्रकी सृष्टिकी। निषाद वह पुत्र हे, जो द्विज जातिके पुरुष और शूद्रा स्त्रीसे उत्पन्न हो।

इन उद्धरणो से यह भली भाति समझा जा सकता हे कि स्त्रियोके विवाह के सम्बन्ध म किस प्रकार की स्वाधीनता थी और उन सब विषम अवस्थाओ मे जिन्हे धीरे धीरे हिन्दू समाज ने रोक दिया हे, जिससे गुप्त पापाचार बढ गए हे, जो सतान होती थी, उन सबके दायभाग नियत किए गए हे। आज विवाह सम्बन्धी कठोरताओ के कारण प्राय ये सभी उत्पन्न पुत्र जन्मते ही मार डाले जाते हे या इनके गर्भ गिरा दिए जाते हे।

आपस्तम्ब जो बोधायन से एक शताब्दी पीछे हुआ है, विवाह सम्बन्ध मे स्त्रियो की स्वाधीनता का बहुत अश तक बाधा देता हे। वह कहता है—

'पूर्वजो को उनके प्रताप के कारण पाप नही लगता था, अब जो उनका अनुकरण करेगा, पाप का भागी होगा। (आप० १०)' किसी पति को अपनी स्त्री, अपने कुटुम्ब को छोडकर, दूसरे को अपने लिए पुत्र उत्पादनके अभिप्राय से नही देनी चाहिए।'

यहा हम यह कह देना ठीक समझते हे कि वेद और ब्राह्मणकाल मे जबकि वर्ग विभाग हो गए थे, विवाह के सम्बन्ध म केवल गोत्रो का बचाव था। जातिभेद न था। सब जाति के स्त्री पुरुष परस्पर विवाह करते थे। केवल आपस्तम्ब ने सर्वप्रथम अनुलोम और प्रतिलोम विवाह की रीतिया विभक्त की। जहा भिन्न भिन्न प्रकार के विवाह सम्बन्धो के आधार पर पुत्रो म केवल वैयक्तिक नामभेद था, और जो केवल दायभाग के उपयोग के लिए था, उन पुत्रो की पृथक जातिया विभक्त कर दी। जैसे—

१—शूद्र पति और ब्राह्मण पत्नी से उत्पन्न पुत्र 'चाण्डाल'।

२—क्षत्रिय स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न पुत्र 'वैन'।

३—वश्य स्त्री और शूद्र पुरुष स उत्पन्न पुत्र 'अग यानमाहिन' ।

४—ब्राह्मण स्त्री और वश्य पति स उत्पन्न पुत्र 'रामक' ।

५—क्षत्रिय स्त्री और वश्य पति स उत्पन्न पुत्र 'पोनशक' ।

६ ब्राह्मण स्त्री और क्षत्रिय पति स उत्पन्न पुत्र 'सूत' ।

इसी प्रकार निषाद, अम्बष्ठ आदि जातिया का भी उल्लेख है। इस जातिभेद को पीछे के स्मृतिकारो ने बहुत विस्तार द दिया है और यह भी कहा जा सकता है कि उनकी कोई गिनती ही नही रह गयी है।

जब हम वशिष्ठ स्मृति मे विवाहो का उल्लेख देखते है, तब छ प्रकार के विवाह हम दृष्टिगोचर होते है। आपस्तम्ब भी इन्ही छ विवाहो को मानता है। परन्तु गोतम और बोद्धायन ने विवाह की आठ रीतिया लिखी है। इन सभी विवाहो म जाति या वर्ग का कोई भी ब धन नही है। केवल गोत्र और प्रवरका ही विचार है। वशिष्ठ और आप स्तम्भ और बोधायन भी गोत्रो, प्रवरो और पीढियो के बचाव को ही देखते है। आज भी विवाह के नियमो मे वही बाते सावधानी से देखी जाती है, पर तु अपनी ही जाति की तग दायरो मे और एक ही जाति मे अनक गोत्रो का मिलना असम्भव था, इस लिए असख्य गोत्रो की लोगो ने कल्पना कर ली है कि जिसे सुनकर हसी आता है।

यह हुई पोराणिक काल से प्रथम की बात। अब पोराणिक काल का हाल सुनिए। वतमान मनुस्मृति जो श्लोकबद्ध है और जिसे आप लोग मनुकृत समझ कर अति पुरानी स्मृति ख्याल करते है, पोराणिक काल की स्मृति है। पर तु जब भारत मे बोद्ध धर्म का जोर था तभी वह सकलित की गयी थी। इस स्मृतिम तीन प्रथम श्रेणी की जाति के अथात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य के ससग से नीच जाति की स्त्रिया से जो पुत्र हो उसे पिता की जाति का ही माना गया है, नवीन जाति का नही। प्राचीन स्मृति कारो की अपेक्षा इसने वह नवीन विभाग किया था और उच्चजाति की स्त्रियाम नीच जाति के पुरुषो से उत्पन्न सन्तान को वर्णशकर कहा था। यह कहकर उच्च जाति की स्त्रिया की स्वतन्त्रता रोकने की चेष्टा की गई थी। इसका अथ यहा है कि उच्च जाति के पुरुष अन्य नीच जाति की स्त्रियो को अपने घर ला सकते तथा उनसे विवाह कर सकते थे, पर तु उच्चजाति की स्त्रियो की वह स्वतन्त्रता छिन गयी थी और यदि कोई एसा करे तो उसके सामाजिक अधिकार और उसके पुत्र के दायभाग के अधिकार छिन जाते थे। मनु ने विवाहो का उल्लेख किया है, व वही प्राचीन है, सिर्फ थोडा नियम परि वतन कर दिया है। इन विवाहो मे सबसे बडी बात यह है कि कन्या की समस्त स्वत न्त्रता छिन जाती है और वह पिता के दान की वस्तु बन जाती है।

मनु ने ८वे अध्याय के २०४ श्लोक म एक अद्भुत बात लिखी है कि यदि वर को कन्या दिखायी जाय और विवाह दूसरो से किया जाय तो वह एक ही मूल्य म दोनो

से विवाह कर सकता हे। मनु ने पुनर्विवाह करने का भी अधिकार स्त्रियो से छीनने की चेष्टा की हे। एक स्थान पर वह १२ वर्ष की कन्या को ३० वर्ष के मनुष्य से विवाह करने की सम्मति देता हे (१०।९४)। वह यह भी कहता हे कि पिता को चाहिए कि वह अपनी कन्या किसी प्रसिद्ध सुन्दर पुरुष को देदे भले ही वह उचित अवस्था को न भी प्राप्त हुई हो। वह विधवा या सधवा सभी स्त्रियो को अन्य पुरुष के ससर्ग से बचाना भी चाहता हे। वह उन्हे आजीवन पुरुषो के आधीन बना रखना चाहता हे, वह बल पूर्वक पति के प्रति उनमे श्रद्धाभाव उत्पन्न किया चाहता हे। वह उन्हे बताना चाहता हे कि पति पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ हे।

मनु ने उच्च जाति के पुरुष को नीच जाति की स्त्री से विवाह करने की स्वतन्त्रता दी थी। परन्तु याज्ञवल्क्य ने इसका विरोध किया हे। वह विधवाओ को मृत पति के साथ जीवित भस्म होने का आदेश देता है। पाराशर स्मृति की भी यही सम्मति हे।

पुराणो मे इन सब आधुनिक स्मृतियो की छाप पडी है। अलबरूनी ने भारत मे देखा था कि विधवा फिर विवाह नही कर सकती थी। वह या तो जीवन भर वैधव्य भोगती या जल मरती थी। उच्च जातिया अपनी ही जाति मे विवाह करती थी।

इस प्रकार हम देखते हे कि प्राचीन हिन्दू जाति की विवाह पद्धति धीरे धीरे सकुचित होते होते अन्तत यहा तक सकुचित हो गयी।

यह सब धर्मशास्त्रो का विवाह सम्बन्धी अनुशीलन मुझे इसलिए करना पडा कि श्री दामोदरलाल जी एक प्रमुख धर्माधिकारी हे और उनके आचार का प्रभाव हिंदूस्तान की अन्तर्भावना पर पडेगा। पाठक यह समझ गये होगे कि धर्मशास्त्रो की मर्यादा के विपरीत तो उनका यह कार्य नही हो सकता। अब केवल तीन बाते विचारने योग्य रह जाती हे—

१—एक पत्नी के रहते उन्होने विवाह क्यो किया। मे यह स्वीकार करूगा कि मे यह एक निन्दनीय और नीतिहीन कार्य मानता हूँ कि एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह किया जाय, परन्तु विचारने की बात तो यह हे कि यदि वे इस अभागिनी बहिन से विवाह न कर किसी स्वजातीया कुमारी से विवाह कर लेते तो कदाचित् किसी को भी इसमे आपत्ति न होती। मे ऐसे आर्यसमाजी, सनातनी, कांग्रेसी और अन्य कई प्रमुख व्यक्तियो को जानता हू, जिन्होने एक पत्नी रहते दूसरे तीसरे विवाह किए हे और वे समाज के शिकार नही। मै अपने उग्र विचारो के कारण इस प्रश्न को अनुचित समझ सकता हूँ परन्तु दामोदरलालजी जसी परिस्थिति के व्यक्ति के सामने यह उतना महत्त्वपूर्ण प्रश्न नही है। राजपूताने के साधारण राजा रईसो के यहा भी दजनो स्त्रिया होती है। सर्वसाधारण भी मारवाड मे बहुधा अनेक पत्नी रखते है। वह दोष तो तब तक दूर नही हो सकता, जब तक कि स्त्रिया अपने उत्तरदायित्व को न समझे और

अपने अधिकारो की रक्षा करने का बल पुरुषो की भांति उनमे न आ जाय।

२—दूसरा प्रश्न यह है कि उन्होने इस समाज के शिरोभूत स्त्री को ही क्या ग्रहण किया और उसे यह सम्मान दिया। मेरे पास इस बात का यह उत्तर है कि जो कोई किसी स्त्री या पुरुषसे यह प्रश्न करे कि तुम क्यो परस्पर एक दूसरेको प्यार करती हो, अमुक को क्यो नही करते, वह प्रश्नकर्ता ही गँवार है। विज्ञान ने ऐसा कोई यंत्र नही बनाया कि कोई किसी के प्रति प्रेम या आकर्षण के कारणो को नाप तोलकर बता सके, न समाज का ही यह अधिकार है कि वह इस बात का प्रतिबन्ध रखे। इस सम्बन्ध मे समाज का तो कर्त्तव्य यही है कि यदि दो प्रेमी स्त्री और पुरुष है, तो उनके प्रेम के बीच विवाह की मर्यादा होनी चाहिये, जिससे समाज मे इस प्रेम के बुरे बीज न उगे, और अव्यवस्था न फैले। एक साधारण पिता यदि अपनी कन्याके प्रति किसीभी युवक का आकर्षण देख पाता है तो उसे अपनी भयानक अप्रतिष्ठा समझता है, परन्तु विवाह की रीति पूरी होने पर उसी युवक को उस कन्या पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। वास्तव मे पुरुषत्व स्त्रीत्व के लिये और स्त्रीत्व पुरुषत्व के लिये है। यह दोनो का नैसर्गिक आदान-प्रदान है। समाज को मर्यादा चाहिये, वह मर्यादा 'विवाह' शब्दमे है।

३—क्या यह पाप है? मै कहता हू कि यदि यह केवल इंद्रिय परायणता है यदि इसमे विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम और त्याग नही है, तो निस्सन्देह यह पाप है। पर, यदि इसमे विवेक है, त्याग है, गुणग्राहिता है, पुरुषत्व है कर्त्तव्य का ज्ञान है तो यह पुण्य है। किसी भी पुरुष के मन मे पत्नी के प्रति और पत्नी मे पति के प्रति जो भाव होने चाहिएँ, वे यदि दोनो मे है तो यह अवश्य ही पुण्य है। खासकर जब कि पुरुष एक परम प्रतिष्ठित अति सम्पन्न सवसाधन से युक्त धर्मगुरु है और स्त्री एक भाग्यहीन वंश की असहाय समाज तिरस्कृत अबला है।'

उक्त लेख प्रकाशित होने केलिए भेजनेके बाद मुझे ज्ञात हुआ कि श्री दामोदर लाल जी अपनी नव विवाहिता पत्नी सहित दिल्ली पधारे हुए है और पृथ्वीराज रोड पर एक आलीशान कोठी लेकर रहने लगे है। मै उनसे बराबर तीन चार मिला। और उनका मत जाननेकी चेष्टाकी। बीचमे पत्रव्यवहार भी हुआ। मैने उन्हे ये दो पत्र लिखे—

प्रिय लालजी महाराज,

उस दिन आपकी इच्छानुसार खुले अधिवेशन मे अछूतता के सम्बन्ध मे आपके उदार विचार प्रकट करने की सब उचित सुविधाएं करदी गई थी, परन्तु यह जानकर खेद हुआ कि ठीक समय पर आप कही किसी सिनेमा आदि मे पधार गये थे। मनोरंजन जीवन का एक प्रधान अंग तो है, पर उसका अपना एक सीमित स्थान ही रहना चाहिए, खास कर आप जैसे विशिष्ट व्यक्तियो के लिये इस खास अवसर पर, जबकि हजारो हृदय आपके ऊपर चरित्र की दुर्बलता का सन्देह कर रहे है।

मने आपसे दो मुलाकात की, दोनो म मे समझता हू मेरा और आपका समय व्यय ही नष्ट हुआ। मर्यादा और सकोच की दीवार ने हम न खुलकर बात करने दी और न हम एक दूसरे को ठीक ठीक समझ ही पाए। यह सभी जानते हैं कि मै एक अति उग्र समाज क्रान्तिकारी और अत्यन्त कटु और नग्न लेखक हू और आप जैसे व्यक्तियो के शरीर, आत्मा और सम्पत्ति को समाज की ही धरोहर समझता हू, और आप जिस भांति ईश्वर के सामने अपने धर्म बन्धनो से बधे हैं, उसी भांति समाज के सामने कर्तव्य के बन्धनो से बधे है। आपके पूर्वजो ने देवता की उपासना करके, जहा आज भी करोडो हिन्दुओ के प्राण केन्द्रीभूत हैं, समस्त मनुष्यो से उच्च आसन प्राप्त किया है और इसलिए प्रत्येक मनुष्य को, जो आपका सर्वापेक्षा उच्च समझने को बाध्य है, यह इच्छा करने का अधिकार है कि वह आपको वास्तव मे हर तरह साधारण व्यक्तियो मे उच्च देखे। यह उच्चता जन्म अथवा शिक्षण से नही प्राप्त हो सकती। खासकर भविष्य के नवीन हिन्दू राष्ट्र मे, जिसमे आपको अपने पूज्य पिता के बाद वही गौरवान्वित पद प्राप्त है जो उन्होने पिछली अर्ध शताब्दी के विश्वासी भक्तो मे पाया है।

इस समय आपके चरित्र पर ऐसा आरोप किया गया है कि यदि वह सत्य हो तो आपको अति साधारण व्यक्तियो से भी नीचे गिराता है। इस प्रकार के भ्रष्ट चरित्र, बहुत से रईसो और राजाओ के आए दिन प्रकट होते रहते हैं और आमतौर पर लोगो की यह धारणा बनना कि आप भी उसी प्रकार ऐयाशी और इन्द्रिय वासना मे फस गये है, स्वाभाविक ही है।

राजाओ और रईसो की सम्पत्ति भी जन साधारण की सम्पत्ति है, परन्तु आप जैसे एक धर्माधिकारी की सम्पत्ति तो सोलह आना जनता की है और मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति की दृष्टि मे तो किसी धर्माधिकारी को भिक्षा करके आधा पेट भोजन करना तथा समस्त आय जनसेवा मे लगाना उसका धर्म एव कर्तव्य है फिर वह सम्पत्ति भले ही करोडो की हो। सब लोगो के विचार मेरे जैसे उग्र नही, इसलिए जनता आपके शाही ढँग के रहन सहन को सहनशीलता से देख सकती है, परन्तु चरित्रदोष को नही।

इन समस्त बातो पर विचार करते हुए आपके प्रति जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, उसका मर्यादा से निराकरण करना ही आपकी प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा कर सकता है। मै तो यह समझता हू कि आप प्राचीन अन्धविश्वासो के भीतर पल कर भी, जिन्होने हिन्दुओ को तहस नहस कर दिया है, विचारशील, साहसी, समाज क्रान्ति के लिए अधीर हिन्दुओ के भविष्य राष्ट्र के उपयुक्त युवक धर्मगुरू हैं—जो उद-ग्रीव हिन्दु युवको को रूढ़ियो को कुचलने का आदर्श स्थापित किया चाहते है। आपके इस विवाह को मै इस भावना का एक उदाहरण समझता हूँ। अब यह आपका काम है कि आप मेरी यह भावना दृढ करें, अथवा सहस्रो युवको की यह धारणा कि आप इन्द्रिय-

अपने अधिकारो की रक्षा करने का बल पुरुषो की भांति उनमे न आ जाय ।

२—दूसरा प्रश्न यह है कि उन्होने मे समाज के शिरोभूत स्त्री को ही क्यो ग्रहण किया और उसे यह सम्मान दिया । मेरे पास इस बात का यह उत्तर है कि जो कोई किसी स्त्री या पुरुषसे यह प्रश्न करे कि तुम क्या परस्पर एक दूसरको प्यार करती हो, अमुक को क्यो नही करते, वह प्रश्नकर्ता ही गॅवार है । विज्ञान ने ऐसा कोई यन्त्र नही बनाया कि कोई किसी के प्रति प्रेम या आकर्षण के कारणो को नाप तोलकर बता सके, न समाज का ही यह अधिकार है कि वह इस बात का प्रतिबन्ध रखे । इस सम्बन्ध मे समाज का तो कर्त्तव्य यही है कि यदि दो प्रेमी स्त्री और पुरुष है, तो उनके प्रेम के बीच विवाह की मर्यादा होनी चाहिये, जिससे समाज मे इस प्रेम के बुरे बीज न उगे, और अव्यवस्था न फैले । एक साधारण पिता यदि अपनी कन्याके प्रति किसीभी युवक का आकर्षण देख पाता है तो उसे अपनी भयानक अप्रतिष्ठा समझता है, परन्तु विवाह की रीति पूरी होने पर उसी युवक को उस कन्या पर पूर्ण अधिकार हो जाता है । वास्तव मे पुरुषत्व स्त्रीत्व के लिये और स्त्रीत्व पुरुषत्व के लिये है । यह दोनो का नैसर्गिक आदान प्रदान है । समाज को मर्यादा चाहिये, वह मर्यादा 'विवाह' शब्दमे है ।

३—क्या यह पाप है ? मै कहता हू कि यदि यह केवल इन्द्रिय परायणता है यदि इसमे विशुद्ध दाम्पत्य प्रेम और त्याग नही है, तो निस्सन्देह यह पाप है । पर, यदि इसमे विवेक है, त्याग है, गुणग्राहिता है, पुरुषत्व है कर्त्तव्य का ज्ञान है तो यह पुण्य है । किसी भी पुरुष के मन मे पत्नी के प्रति और पत्नी मे पति के प्रति जो भाव होने चाहिएँ, वे यदि दोनो मे है तो यह अवश्य ही पुण्य है । खासकर जब कि पुरुष एक परम प्रतिष्ठित अति सम्पन्न सर्वमान्य जन से युक्त धर्मगुरु है और स्त्री एक भाग्यहीन वंश की असहाय समाज तिरस्कृत अबला है ।'

उक्त लेख प्रकाशित होने केलिए भेजनेके बाद मुझे ज्ञात हुआ कि श्री दामोदर लाल जी अपनी नव विवाहिता पत्नी सहित दिल्ली पधारे हुए है और पृथ्वीराज रोड पर एक आलीशान कोठी लेकर रहने लगे है । मै उनसे बराबर तीन चार मिला । और उनका मत जाननेकी चेष्टाकी । बीचमे पत्रव्यवहार भी हुआ । मेने उन्हे ये दो पत्र लिखे—

प्रिय लालजी महाराज,

उस दिन आपकी इच्छानुसार खुले अधिवेशन मे अछूतता के सम्बन्ध मे आपके उदार विचार प्रकट करने की सब उचित सुविधाए करदी गई थी, परन्तु यह जानकर खेद हुआ कि ठीक समय पर आप कही किसी सिनेमा आदि मे पधार गये थे । मनोरंजन जीवन का एक प्रधान अंग तो है, पर उसका अपना एक सीमित स्थान ही रहना चाहिए, खास कर आप जैसे विशिष्ट व्यक्तियो के लिये इस खास अवसर पर, जबकि हजारो हृदय आपके ऊपर चरित्र की दुर्बलता का सन्देह कर रहे है ।

मैने आपसे दो मुलाकाते की, दोनो म मै समभता ह मेरा और आपका समय व्यथ ही नष्ट हुआ। मर्यादा और सकोच की दीवार ने हम न खुलकर बाते करने दी और न हम एक दूसरे को ठीक ठीक समझ ही पाए। यह सभी जानते है कि मै एक अति उग्र समाज क्रातिकारी और अत्यन्त कटु और नग्न लेखक हूँ और आप जैसे व्यक्तियो के शरीर, आत्मा और सम्पत्ति को समाज की ही धरोहर समझता हू, और आप जिस भाति ईश्वर के सामने अपने धर्म बन्धनो से जकडे है, उसी भाति समाज के सामने कर्तव्य के बन्धनो मे बधे है। आपके पूर्वजो ने देवता की उपासना करके, जहा आज भी करोडो हिन्दुओ के प्राण केन्द्रीभूत है, समस्त मनुष्यो से उच्च आसन प्राप्त किया है और इसलिए प्रत्येक मनुष्य को, जो आपको सर्वापेक्षा उच्च समझने को बाध्य है, यह इच्छा करने का अधिकार है कि वह आपको वास्तव मे हर तरह साधारण व्यक्तियो मे उच्च देखे। यह उच्चता जन्म अथवा शिक्षण से नही प्राप्त हो सकती। खासकर भविष्य के नवीन हिन्दू राष्ट्र मे, जिसमे आपको अपने पूज्य पिता के बाद वही गौरवान्वित पद प्राप्त है जो उन्होने पिछली अर्ध शताब्दी के विश्वासी भक्तो मे पाया है।

इस समय आपके चरित्र पर ऐसा आरोप किया गया है कि यदि वह सत्य हो तो आपको अति साधारण व्यक्तियो से भी नीचे गिराता है। इस प्रकार के भ्रष्ट चरित्र, बहुत से रईसो और राजाओ के आए दिन प्रकट होते रहते है और आमतौर पर लोगो की यह धारणा बनना कि आप भी उसी प्रकार ऐयाशी और इन्द्रिय वासना मे फस गये है, स्वाभाविक ही है।

राजाओ और रईसो की सम्पत्ति भी जन साधारण की सम्पत्ति है, परन्तु आप जैसे एक धर्माधिकारी की सम्पत्ति तो सोलह आना जनता की है और मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति की दृष्टि मे तो किसी धर्माधिकारी को भिक्षा करके आधा पेट भोजन करना तथा समस्त आय जनसेवा मे लगाना उसका धर्म एवं कर्तव्य है फिर वह सम्पत्ति भले ही करोडो की हो। सब लोगो के विचार मेरे जैसे उग्र नही, इसलिए जनता आपके शाही ढँग के रहन सहन को सहनशीलता से देख सकती है, परन्तु चरित्रदोष को नही।

इन समस्त बातो पर विचार करते हुए आपके प्रति जो आन्दोलन उठ खडा हुआ है, उसका मुस्तैदी से निराकरण करना ही आपकी प्रतिष्ठा और मर्यादा की रक्षा कर सकता है। मै तो यह समझता हू कि आप प्राचीन अन्धविश्वासो के भीतर पल कर भी, जिन्होने हिन्दुओ को तहस नहस कर दिया है, विचारशील, साहसी, समाज क्राति के लिए अधीर हिन्दुओ के भविष्य राष्ट्र के उपयुक्त युवक धर्मगुरु है—जो उदग्रीव हिन्दु युवको को रूढियो को कुचलने का आदर्श स्थापित किया चाहते है। आपके इस विवाह को मै इसी भावना का एक उदाहरण समझता हूँ। अब यह आपका काम है कि आप मेरी यह भावना दृढ करे, अथवा सहस्रो युवकोकी यह धारणा कि आप इन्द्रिय

वासना के चरित्रहीन शिकार हे। आपके इस विवाह की जड़ मे य दो ही बाते हो सकती हे, तीसरी नही। ओर मे ओर मेरे जस विचार वाले मेरे गहरे मित्र प्रथम भावना का समर्थन करने पर आपकी जी जान से सहायता करने का ओर विपरीत होने पर भयानक विरोधपूर्ण आ दोलन करने को तयार हे। जिनके साथ हजारो लाखो साधारण भावुक हि दू हे।

हम लोग इस बात को सहन नही कर सकते कि इस विषय परिवर्तन मे पड़कर आप एक धनी विलासी पुरुष की भाति खेल तमाशो म अपना समय ओर हमारे पवित्र दान का धन व्यय करते रहे। हम यह चाहते हे कि आप नव्य युवक दल के साथ क धे से क धा भिडाकर खडे हो। आप उनके धर्मगुरू बने।

आपको स्मरण होगा कि आपके सम्प्रदाय के आदि पुरुष, जब दक्षिण भारत मे उत्तर प्रदेश मे आए थे, तब इसी प्रकार की लाछन युक्त घटना ने उ हे विचलित किया था। पर वे ऐसे तेजपूर्ण महापुरुष थे कि उ होने उत्तर भारतम अपना वह स्थान बनाया कि जिसकी प्रशसा व्यर्थ हे। आज बीसवी शताब्दी के इस नवीन युग म हम चाहते हे कि आपभी ऐसी ही कोई बडी भारी बात कीजिए। सूय जिस प्रकार उदय ओर अस्त होते समय लाल रहता है, तेजस्वी पुरुष भी उसी भाति उदय अस्त म एकरस रहते हे। मै तो आपको यह सम्मति दगा कि आप उत्तर भारतम एक करोड रुपयोकी सम्पत्ति से एक नवीन म दिरकी स्थापना करे, जो छूत अछूत सबके लिए समान भाव से खुला हो। वह म दिर नव्य जाति के नव युवको के हृदय का केन्द्र हो। यदि यह आप करेगे, तो देखते ही देखते आप पर लाखो रुपयो का मेह बरस जाएगा, ओर हजारो तपस्वी युवक जि हे आज भारत पदा कर रहा हे, आप की सेवा मे खडे रहेगे। आप सकडो वर्षो तक अमर हो जायेगे।

मे यह भी चाहूँगा कि आप अपनी नव विवाहिता पत्नी को पर्दे के पाप से मुक्त करे। खेल तमाशो के लिए नही, प्रत्युत उस सम्माननीय स्थान पर बठने के लिए, जिस पर बैठने का—आपसे विवाह करने के कारण उनका अधिकार हे। उ हे यह अवसर दीजिए की वह धरती आसमान को कम्पायमान करने वाली आवाज मे अपनी पतित बहिनो के रोमाचकारी हाल बताकर पत्थर हृदय पुरुष को करुणा विगलित कर। वे उन धृष्ट पुरुषो को भी धिक्कारदे जो वसी असहाय बहिनोको कमीन ताबेके टुकडो का लालच देकर पतित करते ओर उनके पतन के अपराधपूर्ण जीवन का निर्लज्जतापूर्वक बैठे देखते ओर हसते रहते हे, परन्तु विवाह की वेदी पर धर्म ओर ईश्वर की साक्षी देकर स्त्रीधर्म की मर्यादा पालन की बात सुनना पाप समझते हे। आपने यदि उ हे विवाहा हे, तो उनके प्रति आपका कर्तव्य केवल यही तक नही समाप्त होता कि आप उनके लिए सर्वस्व त्यागदे, प्रत्युत एक मर्द के नाते आपको उचित हे कि आप उ हे समाज

मे व० स्थान दिलाव तो अपनी प्रसन्नता का मिलाना चाहिए और इसके लिए प्राणभी त्यागने पड़े तो त्यागे।

आपके इन कार्यों के सहायक आपको बहुत मिलेंगे। जिनमें एक व्यक्ति मैं भी हूँ। अब आप विचार कर मुझे लिखें कि क्या आप मेरी योजना पर विचार करने को उद्यत हैं? या हम लोग अत्यन्त दुःख से यह समझें कि आपके सम्बन्ध में हमारी धारणा बिल्कुल ही गलत है।

प्रिय लालजी महाराज,

इस तीसरी मुलाकात में भी मैं आपकी मनोवृत्ति को ठीक ठीक नहीं जान पाया। हाँ, यह मैं भलीभाँति समझ गया कि आपके मस्तिष्क में कोई महत्त्वपूर्ण योजना नहीं है, और किसी भी योजना की पूर्ति बिना योग्य साहस और अध्यवसाय नहीं होती। मुझे भय है कि आपके विषय में मैंने जो उच्च धारणा मनमें बनाई है, वह कहीं गलत न साबित हो। मैं स्पष्ट रीति से नीचे लिखी बातें जानना चाहता हूँ।

१—क्या आपने यह विवाह करके प्राचीन रूढ़ियों के तिरस्कार का उदाहरण समाज के सामने रखने के लिए इतनी बड़ी जोखिम उठाई है या यह यौवनोन्माद और इन्द्रिय परायणता के खेल हैं?

२—क्या इस विवाहसे वास्तव में नाथद्वारा मन्दिर के मूलतः उत्तराधिकार से आपको वंचित होना पड़ा है, और सचमुच आपके पिताजी ने आपको बहिष्कृत किया है, या यह सिर्फ जनता का झूठा भ्रम है। क्या आपने प्रथम ही में इन सब बातों पर विचार कर लिया था?

३—क्या यह सत्य है कि आप लाखों रुपयों के जवाहरात मन्दिर की सम्पत्ति में से लेकर आए हैं, और उन्हें दिल्ली के जौहरियों के हाथ एकमुश्त बेचने का प्रबन्ध दलालों की मार्फत कर रहे हैं?

४—क्या यह सच है, कि आप अपनी नवविवाहिता पत्नी सहित योरोप जाना चाहते हैं, और जवाहरातों को फ्रांस के बाजारों में बेचना चाहते हैं?

५—क्या यह सत्य है कि आपकी प्रेमवती ने ही यह विवाह आप पर जोर डालकर कराया है। यदि हाँ, तो किस अभिप्राय से?

६—आप अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ एकत्र भोजन करते हैं या नहीं, और आप जातीय दृष्टि से उसे नीच तो नहीं समझते?

७—यह विवाह करने से पूर्व क्या आपको मालूम था कि अमुक २ हिन्दू और मुसलमान व्यक्तियोंसे आपकी प्रेयसी का सम्बन्ध रहा है। उनमें से तीन भी प्रसव की है। वे मुसलमान पुरुषों के साथ मुसलमानी धर्म और मुसलमानी नाम के साथ रह चुकी है। क्या इन सब बातों को जानते हुए ही आपने यह विवाह किया है?

८—क्या आप सिद्धा त रूप मे यह मानते है कि छूत अछूत प्रत्येक हिदू को मन्दिर प्रवेश का अधिकार है। क्या आप अपने तत्वावधान म एस एक मदिर की स्थापना करने का प्रयत्न कर सकते है ?

मै आशा करता हूँ कि इन प्रश्नो के स्पष्ट उत्तर आप अतिशीघ्र लिख भेजन का कष्ट करगे। फिरम आपके सावजनिक व्याख्याना का प्रबन्ध करूगा जिनम आप उपयुक्त घोषणाएँ कर सक ।

आपने मेरा विश्वमित्रमे प्रकाशित 'पाप या पुण्य' शीषक, लख पढा होगा। न पढा हो तो उसकी एक प्रति आपके पास भेज रहा हूँ। इससे आप समझ जायेगे कि म और इस पत्र के सम्पादक भी कहा तक आपके मित्र और आपके इस काय के समथक है।

पर तु मे आप पर प्रकट कर देना चाहता हूँ कि हमारी यह मैत्री और समथन तभी हे जब कि आपने शुद्ध अ त भावना से यह विवाह किया हे। म दखता हू कि अभी तक समाचार पत्रो मे इतना आन्दोलन उठने पर भी आपने उसकी कोई सफाई जनता को नही दी। आपने मुझसे कहा था, कि आप मन्दिर का धन लेकर आए है, यह बात असत्य हे। परतु न तो अपने पवित्र आचरण से और न और ही किसी प्रकार से आपने इस सत्य पर प्रकाश डाला है। यह तो सच हे कि आप शाही ठाठ स दिल्ली म रह रहे हे। आपने कभी किसी सभा सोसाइटी मे प्रवेश होने की चेष्टा नही की। आपका समय किस प्रकार व्यतीत होता हे, यह हम नही जान सकते। परन्तु इस मे काई शक नही कि आप देश और हिन्दू जाति के लिए कुछ कर नही रहे है। हम लोग, भारत के युवक यह भी चाहते हे कि आपकी नवीन पत्नी महोदया का भी अपनी बहिनो के सुधार मे तुरन्त जुट जाना चाहिए था।

और इस काम के लिए आपको भारत के नगर नगर म फिरकर सावजनिक भाषण देने थे। आपकी पत्नी को भी पर्दे को चीर कर कलकसे धुला हुआ मुख दिखाना चहिए था, जबकि उनका कालिमापूरण मुख लोग दख चुके हे। पर तु आप यह सब नही कर रहे। मेरी तीनो मुलाकातोमे आपने सिफ मौखिक सहानुभूति के सिवाय कोई महत्वपूरण काम नही बताया।

मे आपको बता देना चाहता हू कि हम लोग इस प्रकार आरामसे आपको मौज बहार नही उडाने दगे। आपने जो काम किया है, वह साधारण नही। या तो वह घोर पाप है, या भारी पुण्य। हम उसे पुण्य समझ कर उसकी प्रशसा करते हे, पर यदि वह पाप हे,तो हम आपके लिए लाखो जनता को धोखा देते है। इसलिए या तो हम आपका समथन करेगे, या इतना भयानक आन्दोलन खडा करगे कि काई शक्ति आपकी प्रतिष्ठा की रक्षा नही कर सकती। अ तमे म यह सूचित कर देना भी आवश्यक समझता हूँ,कि यदि उपयुक्त समय मे मेरे इस पत्र का उत्तर न मिला तो म अपना वह

पहला और यह पत्र भी समाचार पत्रों मे छपा दगा।

आपके इस विवाह के सम्बन्ध म आपके पिता जी एव बम्बई तथा अन्यत्र के आपके सम्प्रदाय के आचार्यों का क्या मत है, इसके लिए म शीघ्र ही यात्रा कर रहा हूँ, और आशा करता हूँ कि अगले सप्ताह आपके पिता जी का मत म ले लूगा। तब म शक्ति भर आपके सबध मे लोगो की भ्राति मिटाने का उद्योग करूँगा।

इन पत्रो के उत्तर मे उन्होने मुझे यह पत्र लिखा—

श्री हरि। आचाय श्री चतुरसेन जी शास्त्री आशीर्वाद,

आपका पत्र ता० २०-१ ३३ का प्राप्त हुआ। उत्तर मे देरी हुई क्षमा कीजिए। मनुष्य की मनोवृत्ति जानना अत्यन्त दुस्तर है। महत्त्वपूर्ण योजना ईश्वरेच्छानुसार समय पर सफल होती है। पहिले प्रकट होने देना बुद्धिमानी नही। छोटा आदमी सफल होता है, कभी बडा। ईश्वरेच्छा व परिस्थिति ही सबका कारण है। आपके प्रश्नो का उत्तर निचे लिखता हूँ।

१ (क) यह विवाह मा धार्मिक रूढियो के सुधार के उदाहरणार्थ समाज मे प्रचलित हो इसलिए—

(ख) यह विवाह शब्द से ही उत्तर होता है, अन्यथा अन्य प्रकार से भी इष्टसिद्धि हो सकती थी।

२ इस विवाह से मेरा नाथद्वाराके उत्तराधिकार वचित नही हो सकता, क्योकि वह परसनल है और जनता पर भी अभी ज्यादा असर पढ सकता है। जब किसी स्थान पर स्थित होकर अपने उत्पथ का प्रचार किया जाए। परन्तु कट्टर जाती वालो से बहुत सभव है कि अलग होना पडे। पिता जी भी शायद बहिष्कृत करे, इसकी मुझे अभी तक कोई सुचना नही। यह सब होगा यह मुझे पहले से निश्चय था।

३ असत्य है।

४ इस समय तक यारोप जाने का विचार नही है ना जवाहरात बेचने का है।

५ यह विवाह मने अपनी स्त्री धर्मपत्नी के कहने से किया है,क्योकि वह प्राय रुग्ण रहती है।

६ एकत्र भोजन करते है, जातीय दृष्टि से नीच नही समझता। शास्त्रत

७ हा, इन बातो को जानते हुए विवाह किया। अभी तक कोई सन्तति नही हुई और तीन साल हुए मुसलमानी धर्म छोडकर अपना पहला हिन्दु धर्म को शुद्ध होकर ग्रहण कर लिया और बाद म पद चर्या से वैष्णव दिक्षा भी ले चुकी।

८—छूआछूत हिन्दु मुसलमान या ईसाई कोई भी धर्म का हो ईश्वर के सामने समान है। श्रद्धा भक्ती ही अधिकारी अनाधिकारी बनाती है। इसलिए ईश्वर मन्दिर मे सभी ईश्वर सेवन कर सकते है। प्रन्तु दुनिया मे पबलिक व जातिगत मन्दिरो का सवाल

होता है। वहा कानून के मवाफिक अमल होना चाहिए और जीग मन्दिर म सभी धर्म के मनुष्य मात्र ही जा सके बलकी जिव मात्र भी जा सके एसे मन्दिर की स्थापना। इस का मै समर्थक हू। पर मे स्वय आधुनिक प्रणाली का इसने इन राय गार ग्रहण करन मे असमर्थ हू। तटस्थतया मुझसे जो सहायता हो सकेगी वह करूगा।

'विश्वमित्र' का पढा और समझा। मैने यह विवाह गपना शु. गत करण की भावनाओ मे किया है, क्योकि यह मेरा परमनत्र काय व्यक्तिगत जन।। व समाचार पत्रो को सफाई देने की आवश्यकता नही समझी। मन्दिर का धन नहर अगा नहीं आया। पर श्रीनाथजी का मदिर पबलिक नही है। अपन मात्र सफर का सामना गामान जाता हूँ जसे वनिक लाग आया करत हे। आपन जा स्मरण व्यक्तिगत क बा म व दूसरी बाता के लिए लिखा हे यह जातिगत है। हा इतना सच है कि म पि ।। गार ।। का विरोधी हूँ। परतु प्रवृति धम भ स्वास्थ्य के ऊपर निर्णय नहीं करता। श्रार त व जाती जब काम करने योग्य समझ कर जब सेवा लेना चाहेगी उस व। जहा तक हो सकेगा सहर्ष स्वीकार करूगा। द्वितिय पत्नी भी मेरी तरह काय करने का तैयार है। यह ही नही बलके बडी पत्नी वगैरह भी।

यह काय जो मैने किया है वह साधारण नहीं बल्कि उदाहरण होकर ये ही क्रांति हो और सब पहिले के नास्त्राव माफिक ग्रातय का उदाहरण य का आगारे हो, न के मोज बहार के लिय। इस विवाह के सम्बन्ध म मे पिता जी गार हमारे सम्प्रदाय के लागो का मत खिलाफ ही है एसा मै मानता हू। आप का मेरे लिए कष्ट करने की आवश्यकता नही है। अस्तु आप अपनी दृष्टि म इसमे जनता का कोई लाभ समझते हो तो जरूर कष्ट स्विकारिये।

ह०—हिज हाईनेस श्रीमान गोस्वामी चि० श्री० १०५ श्री दामोदरलाल राजा साहेब ओफ नाथद्वारा ह० गो० दामोदरलाल।'

परंतु मुझे अत्यत दुःख से यह लिखना पडता है कि ब्रजके धर्माधिकारी के सम्बन्ध म मैने अपने लेख म जो आशा की थी वह सर्वथा भ्रमपूर्ण थी। श्रीमान दामोदरलाल एक निस्तेज, दब्बू, और आत्माके अति साधारण से आत्मा निकले। उन की बात चीत का कोई भी प्रभाव मुझ पर नही पडा। सम्भव है कि वे कुछ साधारण पढे-लिखे भी रहे हो, परन्तु अधिक विद्वान भी नही प्रतीत हुए। उनकी बातचीतसे इस बात का भी पता लगा कि मन्दिर मे उनका कोई भी सम्बन्ध विच्छेद नही हुआ है और न उनके पिताजीसे ही कोई दुभाव है। वे केवल मदिरको हानि से बचाने और भक्तजनो मे उठ खडी हुई नई अशाति के दूर होने तक, साथ ही सब झगडे झंझटो के दूर होने तक दिल्ली की एक शानदार कोठी मे रह रहे थे उनका कोई प्रोग्राम नही, कोई काय नही, कोई योजना नही। वे अपना समय खेल तमाशो म और सैरसपाटा (?) म व्यतीत

करते थ । उनकी जुबानी बातचीत सुनकर और जो मुकद्दमा उनकी नवपत्नी के पूव पति न दायर किया, उसके समझौते के रहस्य को (बीस हजार रुपया पूतपति खासाहेब को दिया गया) जानकर मैंन समझ लिया कि वास्तव मे उनके विषय म मेरा जो अनु कूल पक्ष है वह ठीक नही । मैंन अपनी यात्रा म मन्दसोर स ही एक विस्तृत पत्र 'विश्वमित्र' कलकत्ता का यह भेजा—

मे नाथद्वारा काकरौली, उदयपुर आदि का दौरा करके अभी यहा आया हूँ । वहा श्री दामोदरलालजी का केस भयानक रीति से चचा का विषय हो रहा है । मे नाथद्वारे म महाराज श्री गोवर्धनलालजी स मिला । व रोने पीटने लगे । गाव म बिजली की भाति मेरे आने की खबर फल गई और ज्योही म मदिर से निकला, सकडो आदमियो न घेर लिया । भाति भाति के प्रश्न पूछने लगे । विश्वमित्र के लेख के कारण लोगो का मेरे ऊपर खुला रोष था । छोटे स बडे तक लोग श्री दामोदरलालजी पर खूब रूप म क्रुद्ध है और मुझे व उनका समथक समझकर मेरे लेख के विषय म कहने लगे—या तो आप रिश्वत खा गए है या आप भ्रम म है । आपके लेख म जिन कारणो की युक्ति दी है, श्री दामोदरलालजी म उसका कोई सम्बन्ध ही नही है । गहरी छान बीन स मुझे पता लगा है कि प्रथम ही स श्रीदामोदरलालजी का चाल-चलन बहुत खराब रहा है । उन्होने गरीब ब्राह्मण और अन्य जातियो की सकडो कन्याओ और स्त्रियो को भ्रष्ट किया है और उनके मित्र आदि धन और प्रसाद आदि के लालच मे इस कुकम म उनकी सहायता करते रहे है । मैंन कुछ ऐसे व्यक्तियो के बयान कलमबद किए है और व खुले तौर पर य भेद खोलने को तयार है । मुझे यह भी प्रतीत हुआ है कि वे इस बार यहा से मथुरा जी म बालक का मुण्डन आदि कराने के बहाने वहा से आए है और इस काम म मदिर के अधिकारी श्री रणछोडलाल जी न एक मोटी रकम प्राप्त करके उन्हे जाने म मदद दी है । म अधिकारी जी से मिला और वह मेरी जिरह से घबरा गए । मैंन उनसे सब ढग से बात की तो वे कुछ भेद खोल बठे । उन्होने श्री दामोदरलालजी के प्रति प्रेम विवशता दिखाई ।

इसी का यहा मुजरे के लिए आना और श्री दामोदरलालजी तक उसका पहुचना इसके सम्बन्ध म भी कुछ अद्भुत बाते प्रकट हुई है । इस चेष्टा म इस स्त्री ने कुछ व्य क्तियो को यहा आत्मसमपण भी किया था । श्री दामोदरलालजी जिन कारणो से उसकी ओर इतने आकर्षित हुए है, वह अतिशय कुत्सित है ।

यहा सवत्र यह प्रसिद्ध है कि व करोडो रुपए के जवाहरात ले गए है । यह बात सवथा गलत है कि व चोर डाकू है और धन लेकर नही गए है । उदयपुर जाकर मैंने श्री दरबार से मुलाकात की और मदिर के जवाहरात, जिनके बेचे जाने की चचा बाजार मे है, मैंने की । और भी कई बाते हुइ । दरबार उनसे बहुत क्रुद्ध है । वे क्या

होना है। वहा कानून के मवाफिक अमल होना चाहिए और लोग मन्दिर में सभी धर्म के मनुष्य मात्र ही जा सके बल्कि जिव मात्र भी जा सके ऐसे मत का मै समर्थक हूँ। पर मै स्वयं आधुनिक परिस्थिति को देखते मै स्वयं भार ग्रहण करने मे असमर्थ हूं। तटस्थतया मुझसे जो सहायता हो सकेगी वह करुंगा।

'विश्वमित्र' को पढा और समझा। मैने यह विचार अपने शुद्ध अंतःकरण की भावनाओ से किया है, क्योकि यह मेरा परमतत्व कार्य मानिए जनता व समाचार पत्रो को सफाई देने की आवश्यकता नही समझी। मंदिर का धन मेरे पास नहीं आया। पर श्रीनाथजी का मंदिर पबलिक नही है। अपने साथ सफर का सामान लाया हूँ जिसे वनिक लोग आया करते है। आपने जो स्वास्थ्य सम्बन्धी व दूसरी बातो के लिए लिखा है वह जातिगत है। हा इतना सच है कि मै शिक्षा की दृष्टि से निराश्री हूं। परन्तु प्रवृत्ति धर्म मे स्वास्थ्य के ऊपर विशेष ध्यान रखता हूं और जब जानी जब काम करने योग्य समझ कर जनता देगा तो जहा तक हो सकेगा सहर्ष स्वीकार करूंगा। द्वितिय पत्नी भी मेरी तरह कार्य करने को तैयार है। यह ही नही बल्के बडी पत्नी वगैरह भी।

यह कार्य जो मैने किया है वह साधारण नहीं बल्कि उन्नति करना चाहता हूं जो क्रांति हो और सब पद्धति के शास्त्रानुसार माफिक आनंद का उपभोग कर आनन्द हो जन के मोज बहार के लिये। इस विचार के सम्बन्ध मे पिता जी और हमारे सम्प्रदाय के लोगो का मत खिलाफ ही है ऐसा मै मानता हूं। आप को मेरे लिए कष्ट करने की आवश्यकता नही है। अस्तु आप अपनी दृष्टि मे इससे जनता का लाभ समझते हो तो जरूर कष्ट स्विकारये।

ह०—हिज होलीनेस श्रीमान गोस्वामी चि० श्री० १०८ श्री दामोदरलाल बावा साहब ओफ नाथद्वारा द० गो० दामोदरलाल।'

परन्तु मुझे अत्यन्त दुःख से यह लिखना पडता है कि युवक धर्माधिकारी के सम्बन्ध मे मैने अपने लेख मे जो आशा की थी वह अधिकांश मे भ्रमपूर्ण थी। युवक दामोदरलाल एक निस्तेज, दब्बू, और आत्माके प्रति साधारण से आदमी निकले। उन की बात चीत का कोई भी प्रभाव मुझ पर नहीं पडा। सम्भव है कि वे कुछ साधारण पढे लिखे भी रहे हो, परन्तु अधिक विद्वान भी नहीं प्रतीत हुए। उनकी बातचीतसे इस बात का भी पता लगा कि मन्दिर से उनका कोई भी सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ है और न उनके पिताजीसे ही कोई दुभाव है। वे केवल मंदिरको हानि से बचाने और भक्तजनो मे उठ खडी हुई नई अशांति के दूर होने तक, साथ ही सब झगडे झंझटो के दूर होने तक दिल्ली की एक शानदार कोठी मे रह रहे थे उनका कोई प्रोग्राम नहीं, कोई कार्य नही, कोई योजना नहीं। वे अपना समय खेल तमाशो मे और सहनसरो (?) मे व्यतीत

करते थे। उनकी जुबानी बातचीत सुनकर और जो मुकदमा उनकी नवपत्नी के पूर्व पति ने दायर किया, उसके समझौते के रहस्य को (बीस हजार रुपया पूर्वपति साहब को दिया गया) जानकर मैंने समझ लिया कि वास्तव में उनके विषय में मेरा जो अनुकूल पक्ष है वह ठीक नहीं। मैंने अपनी यात्रा में मंदसौर से ही एक विस्तृत पत्र 'विश्वमित्र' कलकत्ता को यह भेजा—

मैं नाथद्वारा, कांकरोली, उदयपुर आदि का दौरा करके अभी यहां आया हूँ। वहां श्री दामोदरलालजी का केस भयानक रीति से चर्चा का विषय हो रहा है। मैं नाथद्वारे में महाराज श्री गोवर्धनलालजी से मिला। वे रोने पीटने लगे। गांव में बिजली की भांति मेरे आने की खबर फैल गई और ज्योंही मैं मंदिर से निकला, सैकड़ों आदमियों ने घेर लिया। भांति भांति के प्रश्न पूछने लगे। 'विश्वमित्र' के लेख के कारण लोगों का मेरे ऊपर दूना रोष था। छोटे से बड़े तक लोग श्री दामोदरलालजी पर खुले रूप से क्रुद्ध हैं और मुझे उनका समर्थक समझकर मेरे लेख के विषय में कहने लगे—या तो आप रिश्वत खा गए हैं या आप भ्रम में हैं। आपके लेख में जिन कारणों की युक्ति दी है श्री दामोदरलालजी से उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। गहरी छानबीन से मुझे पता लगा है कि प्रथम ही से श्रीदामोदरलालजी का चाल चलन बहुत खराब रहा है। उन्होंने गरीब ब्राह्मण और अन्य जातियों की सैकड़ों कन्याओं और स्त्रियों को भ्रष्ट किया है और उनके मित्र आदि धन और प्रसाद आदि के लालच में इस कुकर्म में उनकी सहायता करते रहे हैं। मैंने कुछ ऐसे व्यक्तियों के बयान कलमबन्द किए हैं और वे खुले तौर पर ये भेद खोलने को तैयार हैं। मुझे यह भी प्रतीत हुआ है कि वे इस बार यहां से मथुरा जो में बालक का मुण्डन आदि कराने के बहाने वहां से आए हैं और उस काम में मन्दिर के अधिकारी श्री रणछोड़लालजी ने एक मोटी रकम प्राप्त करके उन्हें जाने में मदद दी है। मैं अधिकारी जी से मिला और वह मेरी जिरह से घबरा गए। मैंने उनसे सब प्रकार से बात की तो वे कुछ भेद खोल बैठे। उन्होंने श्री दामोदरलालजी के प्रति प्रेम दिखलाया।

इस स्त्री का यहां मुजरे के लिए आना और श्री दामोदरलालजी तक उसका पहुँचना इसके सम्बन्ध में भी कुछ अद्भुत बातें प्रकट हुई हैं। इस चेष्टा में इस स्त्री ने कुछ व्यक्तियों का यहां आत्मसमर्पण भी लिया था। श्री दामोदरलालजी जिन कारणों से उसकी ओर इतने आकर्षित हुए हैं, वह अतिशय कुत्सित है।

यहां सर्वत्र यह प्रसिद्ध है कि वे करोड़ों रुपए के जवाहरात ले गए हैं। यह बात सर्वथा गलत है कि वे खाली हाथ हैं और धन लेकर नहीं गए हैं। उदयपुर जाकर मैंने श्री दरबार से मुलाकात की और मंदिर के जवाहरात, जिनके बेचे जाने की चर्चा बाजार में है, मैंने की। और भी कई बातें हुई। दरबार उनसे बहुत क्रुद्ध हैं। वे क्या

किया चाहते है, यह बातचीत मे मुझपर कुछ प्रकट हो गया। वे शीघ्र ही दिल्ली पधार कर इस सम्बन्ध मे वायसराय से कुछ बातचीत किया चाहते है, परन्तु वे क्या किया चाहते है, इसे गोपनीय रखने की उन्होने मुझे आज्ञा दी है। उनका अनुरोध है कि हम लोग कलकत्ता और दिल्ली के बाजारो मे देखभाल रखे और जवाहरातो की बिक्री की प्रत्येक हरकत से दरबार को सूचित करे। एक बार एक हीरा बम्बई मे बेचने की चेष्टा की गई थी, इसपर स्वर्गीय श्रीमान ने उन्हे बहुत फटकारा था। मन्दिर को खालसा करने के सम्बन्ध मे जनता के आन्दोलन को देखकर वे विचार कर सकते है। गुजराती पत्रो के आन्दोलन से वे पूरे पूरे वाकिफ है। दरबार का रुख है कि मै बम्बई मे प्रमुख वैष्णवो से मिलकर मन्दिर के सम्बन्ध मे उनका मत ग्रहण करूँ और उनका डेपुटेशन महाराणा की सेवा मे लाऊ।

सरणवाड के ठाकुर साहेब श्री जोरावरसिह जी से भी बहुत कुछ बातचीत हुई। वे भी श्रीदामोदरलालजी की चरित्र सम्बन्धी बहुत सी बातो के जानकार है। श्रीदामोदरलालजी की सब बाते सत्य रूप मे प्रकाशित करनी जाय, लाखो मनुष्यो को अधेरे मे रखना अनुचित है। मै विश्वमित्र, केसरी, प्रताप और अर्जुन के लिए नये लेख तयार कर रहा हूँ। अर्जुन सम्पादक और मिस्टर गाडगील से सब बात कहकर उनका मत लूगा कि वे क्या कहते है। दीवान बहादुर शारदा एसेम्बली मे इसप्रश्न को उठा सकते है, आप सब कागजात एसामिण्टेन पेस को दे सकते है। मेरे प्रश्नो के उत्तर मे जो पत्र श्री दामोदरलालजी ने मुझे लिखा है, उससे मुझे तनिक भी सन्तोष नही हुआ।

दिल्ली लौटने पर मैने अपने लिए कुछ भ्रमपूर्ण बाते सुनी। जिन्हे सुनकर मैने फिर एक पत्र श्री दामोदरलालजी को लिखा —

प्रिय गो० श्री दामोदरलालजी महाराज, १६ ३ ३३

मुझे मालूम हुआ है कि नगर मे और पत्रो मे लोगो ने यह अपवाद फैलाया है कि आपने अपने पक्षमे प्रचार करने के लिए मुझे एक रकम घूस मे दी है। मै अभी दो मास की यात्रा से लौटा हू और मैने पत्र आदि नही देखे,सुना ही है। आप भी भाति जानते है कि यह अपवाद सर्वथा झूठ और नीचतापूर्ण है। इसका आधार सम्भवत वह लेख है जो मैने कुछ दिन पूर्व विश्वमित्र मे आपके विवाह के समर्थन मे छपाया था।

मै चाहता हू कि जनता के भ्रम निवारणार्थ आप धर्मपूर्वक सत्य सत्य मुझे सूचित करे कि इस सम्बन्ध मे आपका कहा तक ज्ञान है और यह बात कहा से उठी है। आपके कानो तक पहुँची है या नही ? आपने मुझे क्या दिया है या क्या देने का वायदा किया है। मै आशा करता हूँ कि आप मेरी और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के विचार से लौटती डाकसे इस पत्र का स्पष्ट उत्तर भेजने का कष्ट करेगे जिससे मै प्रत्य

शित कर सकूं।

इसके उत्तर में उनके प्राइवेट सेक्रटरी ने आकर मेरे चिकित्सालय में मुझसे भेट की। उन्होंने कहा—श्री महाराज बहुत खिन्न और दुखी है। उन्होने मुझे कहलाया है कि आप उनके सम्बन्ध मे अब कुछ न लिखे।

सेक्रटरी चले गए परन्तु मेरा मन धर्मकी आड मे इन कुकर्मोंकी ओर से घृणा से भर गया। मै और कर ही क्या सकता था। मै अपनी कलम लेकर बैठ गया और एक दिन और दो रात की केवल तीन सिटिंग मे मैंने 'धर्म के नाम पर' पुस्तक को लिख डाला। धर्म के नाम पर होने वाले सभी कुकर्मों का इसमे भण्डाफोड था। तीसरे दिन ही पुस्तक प्रेसमे छपने के लिए दे दी गई। भाग्य की बात कि इस पुस्तक का प्रथम संस्करण दो मास मे ही बिक गया। यह पुस्तक मेरे अपार क्रोध का परिणाम थी। 'धर्म के नाम पर' की भूमिका में मैंने लिखा—

'इस पुस्तक को पढकर मेरे बहुत से मित्र और बुजुर्ग मुझपर हद दर्जे तक नाराज होंगे। सम्भव है कि मुझे उनकी मित्रता से भी हाथ धोना पडे, क्योंकि उनमे से बहुतो की आजीविका पीढियो से इस पुस्तक मे वर्णित पाखण्डो के द्वारा ही चल रही है। मै यह सत्य कहता हूँ कि पुस्तक न तो किसी व्यक्ति को लक्ष्य करके लिखी गई है और न इसे लिखकर मै किसी भी मित्र या अमित्र का अमंगल किया चाहता हूँ। इस पुस्तक को लिखने का मेरा उद्देश्य सिर्फ यही है, कि मेरे देश के नवयुवको के दिमाग पाखण्डपूर्ण धर्म से आजाद होजाएँ, और जैसे वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने सुसंस्कृत और सुशिक्षित मस्तिष्कमे अपने भले बुरे की और बहुत सी बाते सोचतेहै वैसे ही इस विषय पर भी सोचे। क्योंकि मेरी राय मे हिन्दुओं की भविष्य नस्ल को—जो इन नवयुवको की सन्तति होगी, मनुष्य बनाने का एकमात्र यही उपाय है। मैने यह राय संसार की महान जातियो के नाश के इतिहासो का गम्भीरतापूर्वक मनन करके ही कायम की है। इस लिए मेरे जिन भाइयो का दिल इस पुस्तक को पढ कर दुखे, उनके चरणो मे शीश नवाकर मै प्रथम ही क्षमा माग लेता हूं। क्योंकि इन पाखण्डो के बीच मे जीवित रह कर मुझे उनसे कहीं अति अधिक दुख हो रहा है।

मेरा सर्वप्रथम ब्राडकास्ट

मारकोनी ने सन्देश भेजने में श्री जगदीशचन्द्र बोस ने १८९५ मे सफलता प्राप्त की थी, १९२४ में रेडियो क्लबो द्वारा प्रसारण कार्य शुरू किया गया। १९२६ मे इण्डियन ब्राडकास्टिंग कम्पनी बनी और भारत सरकार के साथ हुए समझौते के अन्तर्गत कलकत्ता और बम्बई मे दो प्रसारण केन्द्र स्थापित किए गए। पहली मार्च १९३० को कम्पनी दिवालिया हो गई और इसी साल सरकार ने 'इण्डियन स्टेट ब्राडकास्टिंग सर्विस' के नाम से यह कार्य शुरू किया।

उस समय अलीपुर रोड पर दिल्ली ब्राडकास्टिग सर्विस स्टेशन था। स्टेशन का स्टूडियो अत्यन्त साधारण था। तख्ते के फर्श पर दरियाँ बिछी हुई थी जिनसे कभी कभी कलाकार उलझ जाते और गिर भी पडते थे।

यह वह समय था जब नाटकोके लिए आवश्यक ध्वनि प्रभाव पदा करना जटिल काय था। कितनी मजबूरियाँ थीं। रगमच की ही तरह रेडियो नाटको मे भी स्त्री की भूमिका पुरुष पात्र ही अदा करता था। नाटक कम प्रसारित होते थे, लेकिन उनके अभ्यास मे आज की अपेक्षा कई गुना अधिक शक्ति और समय लगता था।

आठ जून १९३६ को कुछ निजी प्रसारण केन्द्रो को एक सगठन के अन्तगत शामिल कर ब्रिटिश शासन ने 'आल इण्डिया रेडियो' की नीव डाली।

उस समय दिल्लीमे 'इण्डियन स्टेट ब्राडकास्टिग कम्पनी' का ब्राडकास्टिंग स्टेशन खुले केवल कुछ ही मास हुए थे। बुखारी बन्धु ही इस समय स्टेशन के सवसवा थे। दोनो भाइयो की आकृति मे बडा अन्तर था। बडे गोरे, गम्भीर, तथा शान्त शिष्ट पुरुष थे, छोटे लम्बे चचल आग्रही स्वभाव के तथा खटपटी आदमी थे। उनके सिर के बाल उनकी विशेषता थी। छल्लेदार बालो का झुरमुट उनके मुख की शोभा बढाता था। दोनो ही बन्धु उन दिनो रेडियो विकास के काम मे जीजान से जुट रहते थे। परन्तु बाहरी लोगो से अधिक सम्पक छोटे बुखारी से ही रहता था।

कोई भारी सूयग्रहण का सवग्रासी योग था, जिसके कारण कुरुक्षेत्र म बडा भारी मेला लगने वाला था। मुझसे अनुरोध किया गया कि मैं कुरुक्षेत्र और सूयग्रहण पर एक टॉक तयार करूँ। बुखारी बन्धुओ ने कुरुक्षेत्र से रिले करने की भी व्यवस्था की थी। जहाँ तक मै समझता हूँ यह सवप्रथम रिले था। मुझे लेकर छोटे बुखारी कुरुक्षेत्र गए। वहा के सब महत्त्वपूण स्थान और तालाब देखे। तब मुझे कहा गया कि मे पन्द्रह मिनिट का टाक तयार करूँ। मै तो उन दिनो लम्बे लम्बे भाषण देता तथा लेख लिखता था। मै समझ ही न सका कि पन्द्रह मिनिट के भाषण मे क्या कहा जा सकता है। मैने बहुत इसरार किया कि पन्द्रह मिनिट क्या—घण्टे आध घण्ट का टाक तो होना चाहिए। इस पर बडे बुखारी साहब ने हँसकर कहा—एक मिनिट, एक सेकिण्ड भी अधिक नही, बस पन्द्रह मिनिट मे अपनी टाक पढकर समाप्त कीजिए।

और जब मैं टाक लिखने बैठा तो जीवन मे पहिली ही बार गागर म सागर भरने का प्रयत्न किया। मन मे ठाना कि पन्द्रह मिनटमे सब कुछ कह दगा, एक शब्द एक मात्रा भी व्यथ न होगी। परन्तु जब लिखना आरम्भ किया तो दाँतो म पसीना आ गया। विचारणीय विषय दो थे, एक कुरुक्षेत्र का सूयग्रहण से क्या सम्बन्ध है—कि जिसके कारण सूयग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र मे इतनी भीड जुडती है। दूसरे—इसका नाम कुरुक्षेत्र क्यो पडा। इन दोनो प्रश्नो पर कभी गहराई से विचार नही किया

था—ख्याल था कि पाण्डव कौरवो का युद्ध स्थान होने से कुरुक्षेत्र नाम पडा होगा। परतु महाभारत की छानबीन से पता लगा कि महाभारत काल मे भी इसका नाम कुरुक्षेत्र था, तथा सूयग्रहण पर कुण्ड स्नान का उस समय भी महत्त्व था। यहा तक कि एक बार सूयग्रहण के अवसर पर कौरव पाण्डव दोनो ने ही कुरुक्षेत्र कुण्ड मे स्नान किया था। बस गाडी रुक गई। छानबीन आरम्भ हुई। इतिहास देखा, महाभारत देखा, और ज्योतिष शास्त्र पर नजर गई। काशी, कलकत्ता, जयपुर, आदि विद्वानो को पत्र लिखे, पर कही से भी स तोषजनक उत्तर नही मिला। अ त मे मेरा ध्यान काशी के ज्ञान मण्डल द्वारा प्रकाशित सौर पचाग पर गया और सोर वष का मैंने अध्ययन किया। तब बहुत छानबीन के बाद मे इस निणय पर पहुँचा कि कुरुक्षेत्र भूमि भूमध्य रेखा को स्पश करती हुई हे, और प्राचीन काल मे दिन मान तथा सूर्यादय तथा सूर्यास्त की सही घटक गणना कुरुक्षेत्र के ही मध्यबि दु से होती थी तथा कुरुक्षेत्र ही उन दिनो एशिया का ग्रीनविच था। इस प्रकार ज्योतिष गणित, भूगोल, इतिहास,तीथ विवरण, धम भाव और महाभारत का पूरा अध्ययन करने के बाद वह पन्द्रह मिनिट का टॉक फुलस्केप के छै पृष्ठोमे समाप्त किया गया, पर लिखे गए लगभग ३० ४० पृष्ठ—जो रद्द कर दिए गए। और इस प्रकार मेरी लेखन पद्धति को एक नया मोड मिला। बात का व्यथ विस्तार न करके सक्षेप मे केवल मुद्दे की बात सप्रमाण कहना।

बुखारी बन्धु मेरे परिश्रम को जानते थे और उन्होने बडी उत्सुकता से मेरा वह प्रथम टॉक सुना। छोटे बुखारी तो मेरे सामने ही खडे रहे। माइक्रोफोन का ठीक अ तर, बठने और बोलने का ढग, तथा आवाज का उतार चढाव बताते समझाते रहे। भाषण समाप्त करके ज्यो ही मे बाहर निकला—बडे बुखारी और महामहोपाध्याय प० लक्ष्मीधर शास्त्री हसते हुए सामने दिखाई दिए। बड बुखारी दोडकर लिपट गए और कहने न कहने योग्य बहुत सी बात कह डाली। उन दिनो दो बातो से मे बहुत प्रभा वित हुआ। एक बडे बुखारी के शुद्ध हिन्दी भाषण से। जब मेने पूछा, क्या आप हि दी जानते हे ? तो हसकर कहा—सीख रहा हूँ, क्या कही कुछ गलती हुई हे। दूसरी बात जिसने मुझे प्रभावित किया—तत्कालीन रेडियो विभाग के प्रत्येक छोटे बडे कमचारी का व्यवहार। जब जाता, बडी ही खातिर तवाजा, चाय पानी और पानो से पाहुनाई होती, जसे किसी घनिष्ठ मित्रके घर आया होऊँ। बातचीन मैत्रीपूण प्रेम और सम्मान सहित। उस समय तक सरकारी सस्थाओ मे सिफ अदालत कचहरी के वातावरण का मुझे अनुभव था, जहा हाकिमोसे लेकर चपरासी तक बडो बडो को धक्के देते हे। एक सरकारी सस्था का यह सत्कारपूवक सद्व्यवहार ऐसा चमत्कारिक था कि जिसने मुझे आरम्भ ही मे रेडियो विभाग के प्रति अनुरक्त बना दिया। फिर तो मेने कई नई व्यव स्थाओ मे सहयोग दिया। कॉकरोली महाराज से कह सुनकर मथुरा के श्री द्वारिका

धीश के मन्दिर से जन्माष्टमी पर रिले किया, कई साल तक मैं हर जन्माष्टमी पर जाता रहा। अनेक साहित्यिक दिन मनाने की परिपाटी भी चलाई, जो आगे चलकर बहुत विकसित हुई।

कुछ दिन बाद एक ध्वन्यात्मक एकाकी 'राधा कृष्ण' रेडियो के लिए लिखवाया गया। इसमें राधा और कृष्णके ध्वन्यात्मक अत्यन्त लघु वार्तालाप मात्र थे। बड़े बुखारी को यह नाटक इतना पसन्द आया था कि उन्होंने इसमें स्वयं कृष्णका पाट किया था।

एक बार वे रेडियो स्टेशन के अहाते में खड़े हुए एक कुएँ की सफाई का आदेश दे रहे थे। कुएँ का किनारा उनके पैरोंके पास ही था। उनके आदेश के अनुसार मजदूर लोग अपने काम में लगने ही वाले थे कि उनका पैर फिसल गया और वे कुएँ में सीधे खड़े ही गिर पड़े। कुएँ में झाड़ झखाड़ बहुत उग रहे थे। वे उसकी तह में दलदल में समूचे समा गए। सिर भी दीखना बन्द हो गया। सारा स्टाफ दौड़ पड़ा और रस्सी डालकर तीन चार आदमी बल्लियों को पकड़कर दलदलमें घुस गए। बहुत नीचे जाकर बुखारी का सिर उनकी पकड़ में आया और उन्हें खींचकर ऊपर लाए। बहुत शीघ्रता से दलदल उनके शरीर से साफ की गई और डाक्टरी उपचार के लिए मोटरमें डालकर ले गए। वे बिल्कुल बेहोश और मृतप्राय थे। भाग्य से पास में ही एक डाक्टर रहते थे। उनकी तत्पर बुद्धि ने बुखारी के प्राण लौटा दिए और वे पुनः जीवित हो गए। पूर्ण स्वस्थ होने में उन्हें महीनों लग गए, परन्तु मस्तिष्क में कुछ दोष उत्पन्न हो गया था। वे बात भूल जाते और झल्ला उठते थे। स्वस्थ होने पर उन्होंने बताया कि मैं जब कुँए की दलदल में तेजी से नीचे धसता चला गया तब मैंने समझ लिया कि मेरा अन्तकाल आ पहुँचा। मैंने क्षण भर में ही यह विचारा कि मेरे बीमे की किश्त अदा हो गई है या नहीं। याद आया कि किश्त अदा हो गई थी और बीमा त्रुटिहीन है। दूसरे क्षण मैंने अपने बीवी बच्चों की मूर्ति अपने मानस में उतारी और तीसरे क्षण मैंने कलमा पढ़ा। तीन क्षण ही मैं जीवित रहा और चौथे क्षण मृत।

उनकी बात रोमांचकारी थी। मैंने उनका मानसिक दोष दूर करने के लिए ब्राह्मीरसायन बनाया और उन्हें दिया। औषधि की शीशी हाथ में लेकर वे अपने कमरे में चारों ओर घूमघूमकर नाच गए और कहने लगे—अब मैं अच्छा हो जाऊँगा, अब मैं अच्छा हो जाऊँगा।

दिल्ली की दक्षिण दिशा में महरौली के मार्ग में निजामुद्दीन औलिया की दरगाह है। यह दरगाह बहुत पुरानी है। यहीं पर इस्लाम धर्म के प्रचारक ख्वाजा हसन निजामी रहते थे। सन् १९२५-३० में उनका यह आवास इस्लाम धर्म का गढ़ था। देश भर के इस्लामी कार्यों का वहाँ लेखा जोखा होता था और वहीं से सब आदेश दिये जाते थे। ख्वाजा हसननिजामी उर्दू के प्रामाणिक लेखक थे। पुस्तकों के अतिरिक्त वे

इस्लाम धम के उर्दू पत्रो मे भी धूआधार लिखते रहते थे । उनके अपने भी समाचार पत्र दिल्ली से प्रकाशित होते थ । सन् १९२४ २५ के मध्यकाल म जब चादनी चौक मे मेरा चिकित्सालय और सजीवन प्रस था, उ ही दिनो एकदिन वे मेरे कायालय मे आए। इससे पहिले मेने उन्हे देखा नही था, केवल उनका नाम ही सुना था और इस्लामधम के उनके गुरुपद की बात भी सुनी थी । लम्बा, छरहरा शरीर, कुछ लम्बी सुखदाढी, आखो पर काला चश्मा, हाथ मे छडी, लम्बा काला चोगा परो तक लटकता हुआ, सिर पर गोल नोक वाला टोपा, यही उनका वेश था । उनके साथ दो तीन उनके शागिद भी थे जो अदब से उनके पीछे आ रहे थे । निजामी साहब ने आकर मुझसे तस्लीम की और हाथ मिलाया । बठने पर उ होने कहा—'मेरा नाम हसननिजामी है । मेने कुरान शरीफ का हि दी तजुमा किया है । सुना है, आप भी बहुत बडे लेखक हे इसलिए मेने सोचा कि यह आपकी देखरेख मे आपके प्रेस म छप तो ज्यादा अच्छी छपेगी । छपाई जो कुछ आप कहग दूगा ।'

यह कह कर उ होने एक शागिद को इशारा किया और उसने अदब से झुककर रेशमी वस्त्र म लिपटी हुई कुरान शरीफ की पाण्डुलिपि मेरे सामने रखदी ।

मे अपने सामने बठा उस मुस्लिम बुजुग को गहरी आखो से देखने लगा । यही हे वह देशभर म प्रसिद्ध इस्लामधम का गुरु जिसके अनेक चेले शागिद सवत्र घूमते और इस्लामी आदेश प्रचारित करते है । मैन अपने कागजात समेट कर एक ओर रख दिए ओर उनके साथ बातोमे लग गया । मेने भद्रसेन को बुलाकर पुस्तक के छपाने की व्यवस्था करने का आदश दे दिया और इ मिनान से उनके साथ बातो मे लग गया । उस पहिली ही मुलाकात मे वे मुझसे बहुत ही हिलमिल गए । उनकी पुस्तक मेरे प्रेस मे छपी ओर उस सिलसिले मे वे बहुत बार मुझसे मिलते रहे, और अन्त मे मै उनका एक श्रद्धास्पद मुरब्बी बन गया । उनके स्थान पर भी गया । बातो का जो तार लगता तो गदर की बहुत सी सच्ची तवारीख वे मुझे सुनाते, शाही परिवार की दास्तान कहते, पर उन्होने कभी भी इस्लाम धम की चचा नही की, न हिन्दुधम की । उनके डेरे पर जब मै जाता—वे सौ पचास लोगो से घिरे रहते । कोई उनसे दुआ लेने आता, कोई मिन्नते मनाने । मेर पहुँचने पर वे अपने शागिर्दों को इशारा करते और भीड वहाँ से छट जाती । फिर तो हम घन्टे दो घ टे अकेले जमे रहते थे । एक बार उनकी सदारत मे निजामुद्दीन औलिया की दरगाह पर मुशायरा हुआ । उन्होने मुझे भी निमन्त्रित किया । जब मै पहुँचा तो उन्होने मुझे अपने पास ही मसनद के सहारे बैठा लिया । मुशायरे मे बडे २ शुअरा अपनी गजले, नआते, नजमे सुनानेके लिए वहाँ उपस्थित थे। सब करीने से बठे हुए थे । उन्ही मे, बेगम वली जो उस समय दिल्लीमे प्रसिद्ध शायरा थी, भी बठी हुई थी । उनके ठाठ निराले थे । निजामी साहब ने उन्हे दिखाते हुए मुझ

से धीरे से कहा—दुल्हन साहिबा हे।

मुशायरा शुरू हुआ। शायरा की शायरी ने वाह वाह की धूम मचा दी। बेगम वली की बारी आने पर सदर ने उनका नाम लेकर कहा— अब बेगम वली। सदर का सकेत पाकर मैने ठाठदार मजाक किया—'आइए, आइए, दुल्हन साहिबा।' मेरा मजाक सुनकर बेगम वली ने ठहरी हुई निगाहो से मुझे देखा। लोगो के कहकहो ने उन्हे विचलित कर दिया था। पर क्षणभर बाद ही मद मुस्कान होठो पर लाकर वे स्टेज पर आ खडी हुइ। उम्र उनकी पचास से भी ऊपर थी।

गजल इन्होने नही पढी। नाज नखरो से उन्होने चुन्नी के छोर से घूघट काढा, दुल्हन के हाव भाव किए और मेरी ओर रुख करके घूघट उघाड दिया।

मैने कहा—'इरशाद हो बेगम साहिबा।''

वे हँस पडी। उन्होने कहा—'वही कहिए देवरजी।' हसन निजामी बहुत कम कहकहे लगाते थे, परतु उस वक्त जो कहकहा का समा बधा तो बहुत देर तक कह कहो की गूज होती रही। हसन निजामी ने मुझे अपनी बाहो मे भर लिया। कहकहे उनके रुकते न थे।

पुत्र-पत्नी की विदा

१९३३ के मध्यकाल मे मेरी पत्नी ने मुझे एक सकेत किया। उनके पैर भारी हो रहे थे। इस समय मेरी आयु ४२ वर्ष की थी और मुझे अब तक के अपने वैवाहिक जीवन के इक्कीस वर्षो मे एक बार भी अपनी सतान होने का चिह्न नही दीखा था। अब जो पत्नी ने बताया तो पाठक मेरी खुशी का आभास अनायास ही लगा सकते है। मेरे अब तक बच्चे नही हुए, सो इसके लिए मै चिंतित अथवा प्रयत्नशील नही था, न मुझे इस ओर ध्यान देने का अपने व्यस्त जीवन मे कभी अवसर ही मिला, फिर भी सन्तान की एक सुखद कल्पना तो मनुष्य के जीवन मे व्याप्त रहती ही है। पत्नी को पुत्र की बडी लालसा थी, मुझे भी कम न थी। हम लोग एक दूसरे को प्यार करते थे और उस प्यार को समझते भी रहे। मानसिक चचलता और अर्थकष्ट ने मन को चिड चिडा बना दिया था। पिछले वर्ष वह बडी दुखी रही। वस्त्र और सामग्री भी ठीक-ठीक न मिलती थी, पर उसके प्रेम का थाह न था।

एक दो वर्ष पूर्व १९३१ मे मेरा सर्वप्रथम कहानी सग्रह 'अक्षत' प्रकाशित हुआ था। सत्य पूछा जाय तो मेरी रचनाए ही मेरी सन्तान थी। अपनी कहानियो के पात्रो के साथ मै बहुत दिनो तक रहता हूँ, इसलिए कहानियाँ मेरी सर्वप्रिय सतति है। मैने इस कहानी सग्रह का नाम 'अक्षत' इसीलिए पसद किया कि उस शब्दमे एक अति पवित्र भावना निहित थी। अक्षत की भूमिकामे मैने सतति प्रेम का इस प्रकार सकेत कियाथा

'अक्षत' शब्दमे एक पवित्र आशीर्वाद की भावना है। इन अपदार्थ कहानियो के

साधारण सग्रह का ऐसा महत्त्वपूर्ण नाम रखते हुए सचमुच मैं लजाता ग्रोर भय भी करता हू, पर ग्रपनी ग्रसुन्दर सतति को भी प्यार करना ग्रोर उसका सुन्दर नाम रखना मनुष्य स्वभाव की क्षम्य दुर्बलता है। मै सतति हीन, मित्र, बन्धु, बान्धव ग्रौर सगे सम्बन्धियो से हीन एक दुखी शापग्रस्त व्यक्ति हूँ। मेरे लिए इसके सिवा कोई चारा ही नही कि मै ग्रपनी रचनाग्रो को प्यार करूँ। ग्रब इसके लिए बढियासा नाम चुनही लिया, तो मै समझता हूँ—इसके लिए सहृदय पाठक मुझे ग्रति ग्रसहाय ग्रोर दयनीय समझकर मुझ पर क्रोध न करेगे।

पत्नी का सदेश पाकर मै कल्पनाग्रो के समुद्र मे गोते लगाने लगा। मेरी माता मेरे पुत्र को ग्रपनी गोद मे खिलाने के लिए ग्रत्यन्त व्याकुल रही। यद्यपि मुझसे छोटे दो भाई खेमसेन ग्रौर भद्रसेन के विवाह भी उनके सामने बहुत पूर्व हो चुके थे, परन्तु किसी को भी कोई सतति उनके जीवनकाल मे नही हुई। भद्र की पुत्री शरद् भी उन की मृत्यु के बाद हुई थी। इसलिए इस सुखद सवाद के साथ साथ माता की स्मृति भी ग्राती रहती थी।

दिन बीतते चले गए ग्रौर भविष्य ग्रपने खेल के तानेबाने तैयार करने लगा। मै शाहदरे तो रहता ही था। जगल ही था। वर्षाऋतु समाप्त होकर चुकी थी। मच्छरो ने मेरे घर को घेर रखा था। एक दिन मेरी पत्नी को मलेरिया ने धर दबाया। तीन दिन तक तेज बुखार चढता ग्रौर उतर जाता। डाक्टर को दिखाया, दवा दी। दवा कुछ गर्म थी या तेज बुखार का ही कुछ परिणाम था, कि गर्भस्थशिशु गर्भ से च्युत हो गया। रक्त स्राव बहुत होने लगा। लेडी डाक्टर ग्राइ, परन्तु केस नही सभला। चौथे दिन विजयादशमी के दिन १८ ग्रक्टूबर १९३३ का सध्या समय ६ बजे वह भी मुझे छोड कर चली गई!!

मेरी बदनसीबी का ग्रन्त नही था। जिसके सहारे जीवन चला रहा था, एक उत्साहवर्धक सदेश जो उसने मुझे दिया था, एक स्वप्न का स्वर्ण महल जो मैने मन मे निर्माण किया था, केवल एक घटे की मूर्छाकाल मे ही वे सब बाते समाप्त हो गइ। मै हाय करके रह गया। मेरे मित्रो ने ग्राकर सहारा न दिया होता, तो मेरे लिए यमुना निगमबोध घाट तक जाना सम्भव नही था। मेरे प्राण चारो ग्रोर से खीचकर निकाले जा रहे थे। मेरी ग्राखे खुली हुई थी ग्रौर श्वासे चल रही थी।

ज्ञान का ग्राचल

दिन धीरे धीरे बीतने लगे। त्योहारो के ग्रानन्द उल्लास का प्रवाह मेरे सामने बहता रहता, परन्तु मै एक शून्य लोक मे बैठा उल्लास की नगरी को देखता रहता। ग्रब तक जीवनके बडे बडे पन्ने उलटे गए। वह भी गई जिसके सहारे जी रहा था। यह ग्रकल्पित घटना इस प्रकार हो गई कि जिसका स्वप्नमे भी गुमान न था। ग्रन्तमे मरने

की अपेक्षा जीवित रहना ही मैंने स्थिर किया और फिर भाग्य के नाम पर गय के आलोक में जीवनसंगिनी की खोज की। यह खोज कितनी बीभत्स लज्जाकर और दुखदायी थी, यह मैं हृदय के बाहर प्रकट नहीं कर सकता। अपने परिवार सभी रुष्ट थे। मनुष्य मात्र से घृणा हो गई। सबने मुझे तिरस्कृत किया। मैं माना सूखी डाल पर एक पत्ता था, अब गिरा कि अब गिरा। अन्तमें भाग्य ने जो संयोग रच रखा था, वह अकस्मात ही हो गया। उस दिन एकाएक मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और मैंने अन्त चक्षु खोल कर देखा—हे ईश्वर मैं पत्नीहीन नहीं हूँ। हे परमेश्वर, मेरे शरीर और आत्मा की वह स्वामिनी जहां हो सुखी रहे। वह आनन्द की मूर्ति जब सुख से जीवित रही और मरी, उस लोक में भी सुखी रहे और मुझ अधम निर्लज्ज को क्षमा करे।

मेरे एक मित्र इंजीनियर बनारस रहते थे, उनका तार पाकर मैं वहां गया और ३ मई १९३४को वहीं तभी मेरा तीसरा विवाह हो गया। वह एक अतिकोमल मानिनी २१ वर्ष की नाजों में पली बड़े परिवार की तेजस्वी युवती थी। तीजुआ वर पाकर खिन्न हुई थी, परन्तु उसने मेरे साहित्य को पढ़ा था और साथ उसमें भी साहित्य रचना की प्रवृत्ति और अध्ययन पठनकी लगन थी तीव्र बुद्धि थी। अतः मेरी आयु का क्षण भर में ही भुलाकर मेरी ओर उन्मुख हो गई थी। जब तक उसने स्वीकार नहीं किया मैंने विवाह की हां नहीं भरी। इस विवाह के उपरान्त कन्या के भाई ने एक पत्र मेरे पिता जी को दिल्ली भेजा था। पत्र इस प्रकार था—

पूज्य पिता जी। प्रणाम। ९ मई, ३४

बतौर एक कसूरवार के आपके पास क्षमायाचना पत्र लिखने का साहस कर रहा हूँ। शास्त्री जी तारके मुताबिक बनारस आए। दो दिन तक बातचीत होती रही। ३ मई के दिन यह निश्चय हुआ कि विवाह होगा। परन्तु कुछ लोग पीछे पड़ गए और कहने लगे कि विवाह जब निहायत सादगी ही से होने वाला है, लेनदेन कुछ नहीं है तो आजही क्यो नहीं कर डालते। शास्त्रीजी और हम दोनों उसके खिलाफ थे। परन्तु मित्र लोगो ने इतनी जिद्द शुरू की कि हम भी उस प्रवाह में बह गए। फिर तो हमने भी शास्त्री जी से अनुरोध करना शुरू कर दिया और शास्त्री जी को भी मंजूरी देनी पड़ी। इस मोके पर आपके और चन्द्रसेनजी के न होनेका हम पश्चात्ताप है, लेकिन क्या किया जाय। हम इसलिए आपको यह पत्र लिखकर क्षमा मांगते हैं, कि आप कृपा कर हम लोगों की स्वतन्त्र ज्यादती से यह अर्थ न निकालें कि आपकी गैरहाजिरी को हम लोगो ने महसूस ही नहीं किया। शुरूसे आखिर तक हम लोगों को यह ख्याल बना रहा कि पिता जी यदि मौजूद होते तो यह उत्सव कहीं ज्यादा शोभायमान हो जाता। इसलिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। आशा है कि हमारी गलती को भूलकर मेरी बहिन 'ज्ञान' को हृदय से बहू की तरह ग्रहण करके उसे हार्दिक आशीर्वाद देकर उसके जीवन को

सुखमय वनाने की प्रार्थना ईश्वर से करेंगे। मै आपके पत्र की प्रतीक्षा करूँगा और जब तक पत्र न आयगा तब तक मे दुखी रहूँगा।'

दुख की स्मृतियो को मनाने योग्य अब मेरा हृदय नही रह गया था। उन्हे भुलाना ही मैने ठीक समझा। मैने सोचा कि जीवन के पार जाने तक का साहस सचय करना चाहिए और जिसे मरा है उसे विजय करना चाहिए। मेरी स्थिति मुर्दों से भी गई बीती थी। फिर भी मैने भूत को भुला कर वर्त्तमान का ग्रहण किया और भविष्य की ओर दृष्टि फेरी।

ज्ञान ने मेरी गृहस्थी को अत्यन्त सरलता से सँभाल लिया। उसे इस प्रकार अनायास ही गृहस्थी सभालते देख, मेरा वेदना और निराशामे डूबा हुआ मन उभार पा गया। मेरी प्रसुप्त इन्द्रिया और विचारधारा चैतन्य हो गई। एक गम्भीर तत्वदर्शी की भाति मैने पूर्व पत्नी की अमूर्त मूर्ति और प्यार को श्रद्धा मन्दिरमे स्थापित कर दिया। प्यार के शून्य स्थान म ज्ञान स्वय ही आसीन हो गई। परन्तु मेरे सोचने का एक गहन विषय था। मै सोचता था क्या यह अधम एक पाप नही? मै पूर्व पत्नी को इतना शीघ्र भूल गया? स्वर्गवासिनी क्या कहती होगी? यही न कि यह अधम पुरुष, जिसकी मैने तन मन से प्राणान्त सेवा की, अब दूसरी स्त्री का दास बना वैसे ही सुख से अपनी गृहस्थी चला रहा है मानो कुछ हुआ ही नही। यह प्रश्न मेरे हृदय मे लहराती हुई भावना नद की तरङ्गो म थपेड खाता था, परन्तु सदैव विवेक ही विचारो को परिमार्जित करता है। मैने भावना से उठा कर यह प्रश्न विवेक ही के सुपुर्द किया। मेरा यह अन्तर्द्वन्द कभी तीव्र, कभी धीमा चलता ही रहा और अन्त मे विवेक ने निर्णय किया कि गृहस्थ के राज्य म पत्नी राजा है और पति मन्त्री। राजा सदैव अमर है। राजगद्दी सूनी नही रह सकती। यह बात ही वीभत्स तक है, परन्तु राजगद्दी का क्षण भर भी शून्य रहना और भी अधिक वीभत्स है।

कोई स्त्री और कोई पुरुष उस समय तक गृहस्थ पदका अधिकारी नही, जबतक कि वह पति या पत्नी से सयुक्त न हो और ऐसे व्यक्ति, जो विपत्नीक है, या पतिहीन सद्गृहस्थ नही, यदि वे उसी अवस्था मे गृहस्थ ही बने रहना चाहते है, तो कहना चाहिए—गृहस्थाश्रम की मर्यादा भग होती है। चकि गृहस्थ राज्य म पुरुष मन्त्री है, इस लिए स्त्रीत्व वहा प्रधान है। बिना स्त्री के पुरुष गृहस्थ नही रह सकता।

मै गृहस्थाश्रम म दीक्षित था। मैने आश्रमो की मर्यादा पर बहुत विचार किया था। विरक्ति और त्याग के उन प्रकारो का, जो आश्रमो की परिपाटी पर वर्णित है, मै विरोधी था। वानप्रस्थ और सन्यास, भेष और स्थान बदलकर नही, गृहस्थ मे ही होने चाहिए, और पति पत्नी दोनो ही इनके अधिकारी होने चाहिये। परन्तु वानप्रस्थ का अर्थ बन मे रहना नही। आज बीसवी शताब्दी मे जो नागरिकता का युग है, वान

प्रस्थ का वह प्राचीन अनुकरण युगधम की चीज नही। पति पत्नी का शरीर सम्ब ध सयम के बन्धनो मे सीमित होकर अध्यात्म सम्ब ध स्थापित होना ही सच्चा वानप्रस्थ है और मन वचन-कम से सब प्रकार की स्वाथ भावना निमा त्यागकर समाज सेवा म जीवन लगाना सच्चा सन्यास है। मै उपनिषद् काल के उन ऋषियो की चचा पर भी विचार करता था, जो आदशत्यागी, तपस्वी एव साथ ही साथ सद्गृहस्थ भी थे। एक तरफ वे ऋषि बनवासी—जिन्होने त्याग तप और दमन से परम अध्यात्म का ज्ञान लिया है—दूसरी तरफ व गृहस्थ, जो पत्नी युक्त और स तान उत्पन्न करने वाले है।

इन उदाहरणो से म ठीक ठीक अर्थो मे गृहस्थ धम के तथ्य को समझ गया था। और ज्ञान को पत्नी का अधिकार और स्थान देने म सकोच रहित होता जाता था। पूव पत्नी एक क्षण को भी मेरे हृदय से दूर न हुई थी, पर अब वह मेरी पत्नी नही—आध्यात्मिक देवी थी। वह मानो अपन शरीर के बन्धन से उ मुक्त हो मेरे शरीर म रम गई थी। ज्ञान पूव पत्नी के पदपर मेरी गृहस्थी और हृदय की अधिष्ठात्री थी, उसके व्यक्तित्व ने मेरे हृदय मे स्थान बना लिया था।

फिर भी मेरे मन मे एक बात थी, जो शूल की भाति चुभती थी। वह यह कि ज्ञान जसी अल्पवयस्का कुमारी के साथ विवाह करके मैने उसका एक अधिकार हरण किया है, मने उसे उसी के समान नवीन उत्साह से परिपूण मुग्ध हृदय पाने के अवसर से वचित कर दिया है, और उसके स्थान पर उसे घायल और वेदनापूण हृदय दिया है। ज्ञान यद्यपि अपने इस अधिकार से अनभिज्ञ थी, परन्तु इसमे मेरा अन्याय कम नही हो जाताथा। इसी बात को सोचते सोचते मे बहुधा उदास हो जाता, कभी रोने लगता। एक दिन प्रात काल का समय था। मै अपने कमरे मे मेज पर झुका दोनो हाथो से मुह ढापकर चुपचाप आसू बहा रहा था। ये आसू पूव पत्नी के लिए न थे, ज्ञान के लिए थे। ज्ञान ने समझा मै अपनी मेज पर बैठा लिख रहा हूँ। वह नाश्ते की तश्तरी लेकर वही आ पहुँची। उसने जब मुझे रोते देखा तो घबरा गई और आकर मेरे पीछे खडी हो गई। उसने मेरे सिर पर हाथ रखा और साथ भी रोने लगी। मैने चमककर देखा और रोना रोककर हँस दिया—परन्तु मेरी आखे लाल हो रही थी। ज्ञान को रोता देख, मे कुर्सी से उठ खडा हुआ। वह मेरे पैरो मे धरती पर बैठ गई। उसका आँचल पकडकर मैने कठिनाई से उसे बैठाकर कहा—ज्ञान, मे तुम्हारी वेदना को समझता हूँ। म तुमपर किये अन्याय को समझता हूँ। परन्तु, तुम मुझे क्षमा करो। म तुम्हे प्राण देकर भी सुखी करूगा। कहो—तुम्हे क्या दुख है ?

ज्ञान अपनी फूली हुई आँखो से मुझे देखती रही। उसने गद्गद कण्ठ से कहा—आप अकेले मे बठकर रोते है ? मै मूखा क्या आपको सुखी नही कर सकती? कुछ ठहर कर वह बोली—यदि म आपको सुखी न कर सकी तो समझूगी, मेरा जीवन ही व्यथ

हुआ।'

मने ज्ञान का हाथ पकड़कर कहा—

यह कैसी बात ज्ञान, मेरे सुख की तुम कहती हो ? पर मने जो तुम्हे दुख दिया है अन्याय किया है, उसी पर मुझे दुख है।

क्या दुख दिया, कौन अन्याय किया ह ?

मने तुम्हे अपनी पत्नी बनाकर तुम्हारे स्वाभाविक अधिकारो को छीना है।

कौन से अधिकारो का ? यह म नही जानती, म तो यही जानती हूँ कि आपने मुझे अपनाकर सुखी किया है। यदि म आपको हसता देखूँ तो दुनिया मे मेरे समान सुखी और सौभाग्यशीला कौन है ?

अभी म पूरी तरह सभला भी नही था कि पिताजी को ज्वर आ गया। मेरे पिताजी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। लोहे की भाति उनका शरीर था। बहुत कम उन्ह कभी किसी रोग ने घेरा होगा। उनका नियमित सयमित सात्विक जीवन प्राकृतिक गति से ठीक ठीक चल रहा था। फिर यह तो साधारण ज्वर मात्र था। ज्वर दो तीन घटे आकर उतर गया, पर फिर चढ गया। मलेरिया समझकर औषध दी गई। ज्वर उतरा और फिर चढा। तीसरे दिन उन्होने थोडी खिचडी खाई। रात्रि को तबियत अकस्मात बहुत खराब हो गई। दौड धूप शुरू हुई, डाक्टरो के आने से प्रथम ही उनकी ऊर्ध्व श्वास चलने लगी। मेरे उपचार चल रहे थे पर उनका कुछ भी प्रभाव नही दीख रहा था। डाक्टरो ने उनकी अवस्था देखकर कहा—अब तो कुछ नहीं हो सकता। हमारे देखते देखते ही उनके प्राण निकल गए। ८ जून १९३४ को उनका प्राणान्त हुआ। इस समय उनकी मृत्यु शय्या के निकट मैं और मेरी पत्नी केवल दो ही परिजन व्यक्ति उपस्थित थे। चन्द्रसेन कार्यवश कलकत्ते गए थे। पूज्य पिताजी ने हमसे कोई सेवा नही कराई। बात करते करतेही उन्होने मुझ मातृहीन को पितृहीन भी कर दिया। अब मै ४३ वर्ष का अनाथ बालक मात्र रह गया था। मेरे और मेरी पत्नी के रूदन की कोई सीमा नहीं थी। मै इतना किकर्त्तव्य विमूढ हो गया था कि मुझे दाह क्रिया के लिए लोगो को सूचना भेजने का भी ध्यान नही आया। उनकी मृत्यु के दो तीन घटे पीछे डाक्टर युद्धवीर उनकी तबियत का हाल पूछने आए, तब उन्होने लोगो को सूचना भेजी। उस समय मेरे पास दस पाच ही रुपए थ। मेरी पत्नी ने मुझसे छिपाकर नौकर को एक जेवर दिया और उसे बाजार मे बिकवा दिया। रोते रोते उनकी आँखे सूज गई थी, उन्होने नोट मेरे हाथ मे रख दिए। उनकी सूझी आखे और आसुओ से भीगे पलक देखकर मुझे कुछ भी पूछने का साहस नही हुआ। मने वे रुपए एक मित्र को देकर दाह क्रिया का सामान लाने को कहा।

अब मैं भाग्य के अनेक खेल देख चुका था। जीवन के दुख सुखो की एक रूपता

प्रस्थ का वह प्राचीन अनुकरण युगधम की चीज नही। पति प नी का शरीर सम्ब ध सयम के ब धनो मे सीमित होकर अध्यात्म सम्ब ध स्थापित होना ही अच्छा वानप्रस्थ है और मन वचन कम से सब प्रकार की स्वाथ भावना निष्मा त्यागकर समाज सेवा म जीवन लगाना सच्चा सन्यास है। मै उपनिषद् काल क उन ऋषियो की चर्चा पर भी विचार करता था, जो आदशत्यागी, तपस्वी एव साथ ही साथ सद्गृहस्थ भी थ। एक तरफ वे ऋषि बनवासी—जि होन त्याग तप और दमन से परम अध्यात्म का जान लिया है—दूसरी तरफ वे गृहस्थ, जो पत्नी युक्त और स ताना उत्पन्न करने वाने हे।

इन उदाहरणो से म ठीक ठीक अर्थों मे गृहस्थ धम क तथ्य को समझ गया था। और ज्ञान को पत्नी का अधिकार और स्थान देने मे सकोच रहित होता जाता था। पूव पत्नी एक क्षण को भी मेरे हृदय से दूर न हुई थी, पर अब वह मेरी पत्नी नही—आध्यात्मिक देवी थी। वह मानो अपने शरीर के ब धन से उ मुक्त हो मेरे शरीर म रम गई थी। ज्ञान पूव पत्नी के पदपर मेरी गृहस्थी और हृदय की अधिष्ठात्री थी, उसके व्यक्तित्व ने मेरे हृदय मे स्थान बना लिया था।

फिर भी मेरे मन मे एक बात थी, जो शूल की भाति चुभती थी। वह यह कि ज्ञान जसी अल्पवयस्का कुमारी के साथ विवाह करके मने उसका एक अधिकार हरण किया है, मने उसे उसी के समान नवीन उत्साह से परिपूण मुग्ध हृदय पाने के अवसर से व चित कर दिया है, और उसके स्थान पर उसे घायल और वेदनापूण हृदय दिया हे। ज्ञान यद्यपि अपने इस अधिकार से अनभिज्ञ थी, पर तु इसमे मेरा अ याय कम नही हो जाताथा। इसी बात को सोचते सोचते मे बहुधा उदास हो जाता, कभी रोने लगता। एक दिन प्रात काल का समय था। मै अपने कमरे मे मेज पर झुका दोनो हाथो से मुह ढापकर चुपचाप आसू बहा रहा था। ये आसू पूव पत्नी के लिए न थे, ज्ञान के लिए थे। ज्ञान ने समझा मे अपनी मेज पर बैठा लिख रहा हू। वह नाश्ते की तश्तरी लेकर वही आ पहुँची। उसने जब मुझे रोते देखा तो घबरा गई और आकर मेरे पीछे खडी हो गई। उसने मेरे सिर पर हाथ रखा और स्वय भी रोने लगी। मैंने चमककर देखा और रोना रोककर हँस दिया—पर तु मेरी आखे लाल हो रही थी। ज्ञान को रोता देख, मे कुर्सी से उठ खडा हुआ। वह मेरे पैरो मे धरती पर बैठ गई। उसका आंचल पकडकर मेने कठिनाई से उसे बैठाकर कहा–ज्ञान, मै तुम्हारी वेदना को समझता हूँ। म तुमपर किये अ याय को समझता हूँ। पर तु, तुम मुझे क्षमा करो। म तुम्हे प्राण देकर भी सुखी करूगा। कहो—तुम्हे क्या दुख है ?

ज्ञान अपनी फूली हुई आँखो से मुझे देखती रही। उसने गद्गद कण्ठ से कहा—आप अकेले मे बठकर रोते है ? मै मूर्खा क्या आपको सुखी नही कर सकती? कुछ ठहर कर वह बोली—यदि म आपको सुखी न कर सकी तो समझूगी, मेरा जीवन ही व्यथ

हुआ।'

मने ज्ञान का हाथ पकड़कर कहा—

यह कैसी बात ज्ञान, मेरे सुख की तुम कहती हो ? पर मने जो तुम्हे दुख दिया है, अन्याय किया है, उसी पर मुझे दुख है।

क्या दुख दिया, कौन अन्याय किया है ?

मने तुम्हे अपनी पत्नी बनाकर तुम्हारे स्वाभाविक अधिकारो को छीना है।

कौन से अधिकारो को ? यह म नही जानती, म तो यही जानती हूँ कि आपने मुझे अपनाकर सुखी किया है। यदि म आपको हसता देख तो दुनिया म मेरे समान सुखी और सौभाग्यशीला कौन है ?

अभी मे पूरी तरह सभला भी नही था कि पिताजी को ज्वर आ गया। मेरे पिताजी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। लोहे की भाति उनका शरीर था। बहुत कम उन्हे कभी किसी रोग ने घेरा होगा। उनका नियमित सयमित सात्विक जीवन प्राकृतिक गति से ठीक ठीक चल रहा था। फिर यह तो साधारण ज्वर मात्र था। ज्वर दो तीन घटे आकर उतर गया, पर फिर चढ गया। मलेरिया समझकर औषध दी गई। ज्वर उतरा और फिर चढा। तीसरे दिन उन्होने थोडी खिचडी खाई। रात्रि को तबियत अकस्मात बहुत खराब हो गई। दौड धूप शुरू हुई, डाक्टरो के आने से प्रथम ही उनकी ऊर्ध्व श्वास चलने लगी। मेरे उपचार चल रहे थे पर उनका कुछ भी प्रभाव नही दीख रहा था। डाक्टरो ने उनकी अवस्था देखकर कहा—अब तो कुछ नहीं हो सकता। हमारे देखते देखते ही उनके प्राण निकल गए। ८ जून १९३४ को उनका प्राणान्त हुआ। इस समय उनकी मृत्यु शय्या के निकट मै और मेरी पत्नी केवल दो ही परिजन व्यक्ति उपस्थित थे। चन्द्रसेन कार्यवश कलकत्ते गए थे। पूज्य पिताजी ने हमसे कोई सेवा नही कराई। बात करते करतेही उन्होने मुझ मातृहीन को पितृहीन भी कर दिया। अब मे ४३ वर्ष का अनाथ बालक मात्र रह गया था। मेरे और मेरी पत्नी के रुदन की कोई सीमा नही थी। मै इतना किकर्तव्य विमूढ हो गया था कि मुझे दाह क्रिया के लिए लोगो को सूचना भेजने का भी ध्यान नही आया। उनकी मृत्यु के दो तीन घटे पीछे डाक्टर युद्धवीर उनकी तबियत का हाल पूछने आए, तब उन्होने लोगो को सूचना भेजी। इस समय मेरे पास दस पाच ही रुपए थे। मेरी पत्नी ने मुझसे छिपाकर नौकर को एक जेवर दिया और उसे बाजार मे बिकवा दिया। रोते रोते उनकी आँखे सूज गई थी, उन्होने नोट मेरे हाथ म रख दिए। उनकी सूझी आखे और आँसुओ से भीगे पलक देखकर मुझे कुछ भी पूछने का साहस नही हुआ। मने वे रुपए एक मित्र को देकर दाह क्रिया का सामान लाने को कहा।

अब मैं भाग्य के अनेक खेल देख चुका था। जीवन के दु ख सुखो की एक रूपता

को मे समझने लगा था । मेरी प्रकृति भी चिकित्सा की ओर से हटकर साहित्य रचना की ओर बढ गई थी । अपने मरीजो पर मे बहुत कम समय दे पाता था । वे घण्टो मेरे सामने बठे रहते परन्तु मेरी कलम कागजो को काला करनेमे लगी रहती । कभी कभी पूरे एक घण्टे बाद मैं कलम को विश्राम देकर तब उनका हालचाल पूछता ।

इसी समय मेरी द्वितीय पत्नी के पिता ने मुझे एक आवश्यक कार्य से मन्दसौर बुलाया । मन्दसोर मे एक वनिक युवक के पिता बीमार थे । युवक मंदसौर मे रहते थे और उनके पिता बम्बईमे बीमार थे । पिता बम्बई से मदसौर आने को तयार नही थे । युवक मेरे साहित्य को पढ पढ कर मेरे प्रति असीम श्रद्धा और विश्वास रखते थे, इसीसे उन्होने मुझसे अनुरोध किया कि मै बम्बई जाकर उनके पिताकी चिकित्सा करू । मे बम्बई जाना नही चाहता था, परन्तु मै अधिक विरोध न कर सका । मुझे उनकी बात मानकर उनके साथ बम्बई जाना पडा । बम्बई जाकर रोगी को देखकर बडी निराशा हुई । उनके स्वास्थ्य लाभ की आशा बहुत ही कम थी । मैने उनके पुत्र को सब बात स्पष्ट कहदी । फिर भी उन्होने यथासम्भव चेष्टा करने का अनुरोध किया । मै रोग से उलझ गया । कभी रोग कम होता दीखता, कभी उभार पर । मैने बड़ा परिश्रम उस केस पर किया । धीरे धीरे मुझे दो मास बम्बई मे लग गए पर मे मरीज को छोड कर जा भी नही सकता था । दिल्ली से मेरी पत्नी भी बम्बई पहुच गई थी । पूरे साढे चार मास मुझे बम्बई मे रहना पडा । मरीज की दशा धीरे धीरे सुधार पर आ रही थी । मे उनकी जीवन रक्षा करके प्रसन्न था । अन्त मे साढे चार मास के बाद मरीज को पथ्य दिलाकर मे दिल्ली लौट आया ।

बम्बई से लोटने पर मे चादनीचौक से अपना चिकित्सालय उठाकर शाहदरे अपने निवास स्थान पर ही ले गया । अब मेरा सारा समय साहित्यरचना मे ही व्यतीत होने लगा । इस समय मेरे हाथमे कुछ नाटक, कुछ कहानिया और अन्य पुस्तके फंसी हुइ थी । मेरा यह स्थान धीरे धीरे साहित्य स्थल बनता जा रहा था । अब मेरे पास दूर दूर से साहित्यिक एव साहित्य के विद्यार्थी आकर साहित्य चर्चा किया करते थे और अनेक प्रश्नो का समाधान किया करते थे । मैने सायकाल का समय इसी कार्य के लिए रख छोडा था । इससे मुझे दो लाभ होते थे, मेरा दिन भरका थका मस्तिष्क तरोताजा हो जाता था, और मुझे अनेक साहित्यजनोका घर बठे दर्शन लाभ होकर उनके आतिथ्य करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता था । अतिथि सत्कार का मै सदैव ही अभिलाषी और अभ्यस्त रहा हूँ । जहातक मुझे स्मरण है कोई दिन ही ऐसा शून्य रहा होगा जब मै अपने साथ किसी अतिथि को भोजन की मेज पर साथ लेकर न बैठा होऊँगा । मेरे घर की व्यवस्था ही ऐसी थी कि दो चार बाहरी व्यक्ति भोजन करे, कुछ आगत महमान मित्रगण चाय पानी पिएँ । जिस दिन कोई नही आता था, मेरा मन उदास रहता

था और मेरी पत्नी को कोई काय नही रहना था।

मरी ये तृतीय पत्नी बनारम की थी। इनके परिवार म इनके साथ केवल इनकी सगी माता और सगी छोटी बहिन भी थी शेष सब चचा ताऊ के परिजन लोग थे। इनकी पारिवारिक कठिनाइया भी कुछ ऐसी थी कि बनारस मे बहुत भारी पैतक जमीदारी होते हुए भी वे वहा रह नही सकती थी और उसकी आय का कुछ भी अश उनके हाथ नही लगता था।

मेरी अपनी माता का अवसान होते ही मरा शशव मानो सो गया था। आयु के साथ और वेदनामय परिस्थितियो के साथ जो गम्भीरता और एकाग्रता मुझमे आ गई थी, वह सब माता के सामने खो जाती थी। जितने क्षण मै माता के सामने रहता एक अबोध शिशु के समान। उन क्षणोमे मुझे जो अनिवचनीय सुख मिलता, वह तो था ही, साथ ही मुझे एक आत्मिक भोजन भी मिलता था। माता ही के बल पर मे अपनी प्रथम पत्नी का अभाव इस भाति सह गया था।

अब माता की मुझे नितान्त आवश्यकता थी, माता के बिना में रह नही सकता था। एक दिन मैंने पत्नी से कहा—अम्माको यही दिल्ली बुला लिया जाय तो कसा ?

पत्नी अवाक् मेरे शब्दो को तोलने लगी। मैंने फिर कहा— अम्मा को वहा रहने म बहुत असुविधाएँ है। फिर उनके कोई पुत्र भी नही है। तुम ही उनकी पुत्री और पुत्र हो। तुम्ही को अब अपनी माता और छोटी बहिन का जीवनभर ध्यान रखना है। मरा घर तुम्हारा ही घर है। तुम्हारी माता मेरी माता है। मुझे भी माता की सख्त जरूरत है। उन्हे तुम पत्र लिखो और बुला लो।

पर क्या वे यहा रहना स्वीकार करेगी ?'

बाधा क्या है ?

'वे शायद ही इतना साहस कर। मे पत्र लिखगी।' अन्त उन्होने पत्र लिखा। मने भी लिखा और हमारे बहुत अनुरोध करने पर वे अपनी छोटी पुत्री को लेकर दिल्ली आगइ। धीरे धीरे मरी गृहस्थी फिर हरीभरी होगई। मरे पास पत्नी थी, माता थी, भाई था, इष्टमित्र और साहित्यिक जन थे। म अपने नवीन ससारमे पूणत रम गया।

सन् १९३५ के लगभग अलवर म राजा जयसिह द्वारा एक निमन्त्रण, वहा पर होने वाले सस्कृत साहित्य सम्मेलन के सभापतित्व के लिए मुझे मिला। इसी अवसर पर हिन्दी कवि सम्मेलनका भी आयोजन किया गया था। इस सस्कृत साहित्य सम्मेलन मे राजस्थान के प्रमुख विद्वान आए थे और यह सम्मलन बहुत अधिक सफल रहा था। पहले दिन सस्कृत साहित्य पर विद्वानो के भाषण हुए और उसी दिन आरम्भ मे मुझे भी अपना अध्यक्षीय भाषण सस्कृत मे देना पडा। परन्तु मुख्य कठिनाई का सामना

मुझे अगले दिन करना पडा। उस दिन सस्कृत मे कवि सम्मनन था। सभी कवियो ने अपनी अपनी रचनाएँ सुनायी। अन्त मे महाराज की ओर से मेरे समक्ष चार समस्या पूर्तियो का प्रस्ताव आया। मै सस्कृत का इतना विद्वान नही था, महाराज का आदेश, अध्यक्ष पद का उत्तरदायित्व और उपस्थित विद्वानो की उत्सुक निगाहो ने मुझे शक्ति दी, और मे उन सभी समस्याओकी पूर्ति कर सका। मेरी सस्कृत कविताओ को सुनकर सभी ने मुझे साधुवाद दिया।

१९३६ मे मुझे अपने निजी काम से कलकत्ते जाना पडा। आठ दस रोज मुझे वहा रहना पडा, तो जरूरी व्यवसाय सबधी दौड धूप के अलावा मैने कलकत्ते के दर्श नीय स्थानो को भी देखा। यद्यपि ये सब स्थान मेरे देखे हुए थे, और उसके प्रति कोई कुतूहल मन मे नही था, लेकिन सपरिवार जाने के कारण बहुत काफी समय उन सब चीजो मे लगाना पडा। लौटने के एक दिन पहले एक ऐसी घटना घट गई, जिसके कारण मैने यह समझ लिया कि मेरी इस बारकी कलकत्ता यात्रा पूर्णतया सफल होगई।

हम लोग जिस वक्त बिस्तर बाध रहे थे और रवाना होने की तयारियाँ कर रहे थे कि एक मदरासी युवक मेरे पास आए। यह बहुत ही सीधे सादे वेश मे और प्रभावहीन ढग से आए, और बठ गए। स्वय ही परिचय दिया, और बातचीत करनी शुरू की। दक्षिण भारत सबधी बहुत सी बातचीत हुई। इस युवक की हिंदी की लगन, राष्ट्र भाषा का प्रेम और उत्कृष्ट प्रतिभा देखकर चित्त को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होने मुझे एक बार दक्षिण भारत की यात्रा करने के लिये उत्तेजित किया। कई वर्षों से इस यात्रा की मन मे भावना थी ही, उनकी बातचीत से वह उत्सुकता और भी बढ गई। चलते समय उन्होने मुझसे 'नाहर सग्रहालय' देखने का अनुरोध किया। इस सग्रहालय की चर्चा मे पहले भी सुन चुका था, और जब जब मै कलकत्ते आया, मैने इसे देखने की अभिलाषा की थी। परतु एक तो समय न मिलनेके कारण और दूसरे किसी ऐसे व्यक्ति से परिचय न होने के कारण, जो नाहरजी से व्यक्तिगत परिचय करा दे, मे इस उत्तम सस्था को देखने से वचित रह गया। इस युवक ने नाहरजी की सस्था देखने का मुझ से बहुत अनुरोध किया। हम लोग आधे बधे हुए बिस्तर और सामान छोडकर, उनके साथ, बिना कपडो से चाक चौबद हुए ही, जसे बठे थे, उठकर चल दिए। साथ मे पत्नी और मित्र भी थे।

नाहरजी अपने कमरे मे, भारतीय ढग से सजे हुए गद्दे पर मसनद के सहारे बैठे, कुछ कागजात देख रहे थे। एक रफल का कुरता उनके बदन पर था, और एक चश्मा उसकी कमजोर आँखो पर। देखते ही उन्होने खडे होकर बडी आव भगत और सत्कार के साथ हम लोगो को बैठाया। कुछ ही क्षणो की बातचीत से उनके सौजन्य, विनयशीलता और प्रेम ने हमे विमोहित कर लिया। मेरा वह सकोच भी दूर हो गया,

जैसा पहले मैं समझता था कि हम एक दूसरे से बिलकुल अपरिचित होंगे। मुझे मालूम हुआ कि वह बराबर मेरे ग्रथो और लेखो को पढते रहे हैं, और उनके तृतीय पुत्र बाबू विजयसिंहजी नाहर बी० ए०, जो कलकत्ता कॉरपोरेशन के कौसिलर भी है, मेरे साहित्य से बहुत आकर्षित है। उन्होने तत्काल ही हम लोगो को अपने सग्रहालय के सबध मे बहुत से आवश्यक कागजात दिखलाने शुरू कर दिए। उन्होने सक्षेप से यह भी बतला दिया कि वह इस समय अर्श रोग से कितने पीडित और दुबल है। और एक चिकित्सक की हैसियत से मैंने उनके कष्ट और दुबलता को ठीक तोर से समझ लिया। मैंने इस समय उन्हे इतना परिश्रम करने से रोका, लेकिन नारहजी ने इस पर कान तक न दिया। वह बराबर फाइलो पर फाइल उठा उठाकर मेरे सामने ढेर करते रहे, और मुझे दिखाते गए। मालूम होता था, वह उस समय अपने शारीरिक कष्ट को बिलकुल भूल गए थे। साहित्य के प्रति उनकी अभिरुचि, गहनशीलता, अद्भुत लगन तथा सग्रह सबधी अपरिमित ज्ञान और साथ ही उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा आश्चयजनक विनम्रता देखकर चित्त गद्‌गद् हो गया!

थोडी ही देर बाद वह हमे अपना सग्रहालय दिखाने ले गए। सग्रहालय की पुस्तके देखकर हमारे आनन्द का पारावार न रहा। इसके बाद उन्होने अपने बहुमूल्य और आकषक सग्रहालय की भिन्न भिन्न वस्तुओ को दिखलाया, जिनमे बहुतसी महत्त्वपूर्ण और दुलभ मूर्तिया भी थी, और उन सबका परिचय दिया। इस तमाम सग्रहालय को देखकर मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि ऐसा पुरुष धन्य है, जो इस प्रकार की लगन अपने मन मे रखता है, और अपने धन तथा शक्तियो का इतना अच्छा उपयोग करता है। वह एक व्यक्ति होते हुए भी एक सस्था है, जिसने अपने जीवन को समाज के लिए प्रदान कर दिया है।

यह सब कुछ देख चुकने के बाद मै इस प्रलोभन को नही रोक सका कि हिन्दी पाठको को नाहरजी के परिवार से, उनके इस बहुमूल्य सग्रहालय से परिचित कराऊँ। इसलिए इस सबध मे एक परिचयात्मक लेख मैने सुधा मे प्रकाशित कराया।

नाहर वश पँवार राजपूतोकी एक शाखा है। यह किम्वदन्ती प्रचलित है कि इनके पूवजो मे आसधर बडे प्रतापी पुरुष हुए है। उन्हे उनकी माता की गोद से एक बाघनी चुरा ले गई थी, और उनका पालन उसके दूध को पीकर हुआ। उन्ही आसधर जी ने, स० ७१७ मे, जनाचाय श्रीमानदेव और सूरिजी के उपदेश से जन धम ग्रहण किया।

उनकी ८७वी पीढी मे अजयसिंह जी हुए जो पारिवारिक स्थितियो के कारण मारवाड मे आकर बसे। फिर कुछ ही पीढियो बाद तेजकरण जी बीकानेर स्टेट के डेगा नामक गाँव मे जाकर बसे। डेगाँ गाव मे यह परिवार बहुत सम्पन्न हो गया। इस परिवार मे बाबू खड्‌गसिंहजी का जन्म हुआ, जिनका विवाह उसी गाँव की एक कन्या के

साथ हुआ। विवाह के समय उन्होंने घोडे पर चढ़कर तोरण मारा था, जिससे क्रुद्ध होकर उस गाव के ठाकुर ने उनका सिर काटने का हुक्म दे दिया। इसलिए खडगसिंह जी को वहा से अपनी नववधू के साथ रातोरात आगरे भाग जाना पड़ा। आगरे मे उन्होने अपनी दूरदर्शिता से ख्याति प्राप्त कर ली। इस समय मुर्शिदाबाद के जगत सेठ दिल्ली जाते हुए किसी काम से आगरे ठहरे। वह भी खड्गसिंहजी के सजातीय और सहधर्मी थे। उन्होने खडगसिंहजी को मुर्शिदाबाद आने को निमत्रित किया। इसके फल स्वरूप खडगसिंहजी बगाल गए, और वहा अजीमगज मे बस गए। फिर जगत सेठ के आग्रह से उन्होने दीनाजपुर मे एक कोठी खोली, और कारबार मे वृद्धि हो जाने पर उसकी एक शाखा कलकत्ते मे भी खोल दी। उन्होने दीनाजपुर मे एक सुदर मदिर और धर्मशाला बनवाई थी।

पवित्र धर्मगुरु

१९३७ के दिसम्बरके अतिम सप्ताहमे काकरोली विद्या विभागके दशाब्दी महोत्सव के अवसर पर एक विशाल हिदी कविसम्मेलन काकरोली (मेवाड) मे हुआ। इस के सयोजक थे लखनऊ के दुलारेलाल भार्गव। दुलारेलाल जी ने मुझे भी वहा जाने के लिए तैयार किया। निमत्रण मेरे पास आ ही चुका था। मेरी एक पुस्तक व्यभिचार १९२३ मे छपी थी। उस पुस्तक मे पुष्टि सम्प्रदाय के विरोध मे बहुत कुछ लिखा गया था। इसके लिए मेरे ऊपर केस भी चलाया गया और मेरी पुस्तक के विरुद्ध प्रदर्शन भी किया गया। नाथद्वारा और काकरोली दोनो ही मेरे लिए अनुकूल स्थान नही थे। परतु काकरोली पहुचकर जब मेरा साक्षात् वहाके युवक धर्माचार्य गोस्वामी श्रीव्रज भूषणलालजी से हुआ तो उनके प्रेममे मै फसकर बध गया। सम्मेलनमे सवश्री 'सरस्वती' सम्पादक—श्री नाथसिह ठाकुर, हास्यावतार जगन्नाथ चतुर्वेदी, 'सुकवि' सम्पादक स्नेही जी, हितषी 'प्रणयेश, सिरस, वचनेश, आदि—३७ कवियोने भाग लिया। इस निमन्त्रण को स्वीकार करने मे मेरी एक अभिलाषा पुष्टिमार्ग की आतरिक झाँकी लेना था। मेरे वहा पहुचते ही वैष्णव समाज के दकियानूसी तत्वो मे एक हलचल मच गयी। रात्रि को कविसम्मेलन के प्रारम्भ मे काकरोली महाराज श्री व्रजभूषणलाल जी का पुष्टिमार्ग की 'हिदी सेवा' विषय पर व्याख्यान हुआ, जिसे सुन कर मै इन तरुण धर्माचार्य के व्यवहार, सौजन्य और विद्वता से प्रभावित हुआ और मेरे मन मे उसी क्षण से उनके प्रति सद्भावना अकुरित हुई। महाराजश्री के भाषण के बाद जगन्नाथप्रसाद जी के सभापतित्व मे कवि सम्मेलन हुआ। दो दिन तक काव्यरस का मधुर श्रोत प्रवाहित होता रहा। इसी अवसर पर मेरा भाषण 'कविता और रस' पर हुआ। मेरे भाषण मे 'रस' की स्वतत्र परिभाषा सुनकर ठाकुर श्रीनाथसिह भड़क उठे थे और उन्होने अपने भाषण मे मेरे वक्तव्य पर कटाक्ष किया था। हास्यावतार जगन्ननाथप्रसाद जी ने बडे

कौशल से हम दोनो का समन्वय किया।

सम्मलन का अगला दिन मेरे लिए एक कसौटीका दिन था। उस दिन मेरा नाम सुनकर वैष्णव समाज के अनेक व्यक्ति रोषावेशित हो मुझसे अनेक प्रश्न पूछने और मेरी भर्त्सना करने के लिए बड़ी सख्या मे उपस्थित हुए। मेरे भाषण का विषय था—'वैष्णव धर्म की उदात्तता और स्त्री शिक्षा'। मेरा यह भाषण एक घण्टे से अधिक समय तक चलता रहा और स्वभावत अपने क्षात्र तेज के कारण मै ओजस्वी भाषा की सीमा को भी पार कर चुका था, परन्तु अपने भाषण के अ त मे मेने अपने श्रोताओ के मुख पर आश्चर्य के भाव देखे। वे मौन थे और उनके चेहरो से यह प्रकट होता था कि मै अभी और बोलता रहू।

मेरी दोनो पुस्तको 'व्यभिचार' और 'धर्म के नाम पर' मे शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग पर कटु आक्षेप थे, जिसे लेकर धर्माधिकारी और उनके भक्तो मे मेरे प्रति तीव्र असन्तोष उत्प न हो गया था। पर तु जब हम लोगो का प्रथम साक्षात हुआ, तो दोनो ही के हृदयो मे परिवर्तन हुए। जब मुझसे उन दोना पुस्तको के सम्बन्ध मे प्रश्न किया गया तो मेने सहज स्वभाव उत्तर दिया कि पुष्टिमार्ग के ग्र थो और सिद्धान्तो का हि दी मे प्रचाराभाव ही इसका मूल कारण है। राष्ट्रभाषा के साहित्य मे इसके सद्गुणो पर प्रकाश डालने वाला कोई ग्रन्थ न लिखा गया है, न प्रकाशित हुआ हे। मेरी बात सुनकर फिर किसी ने मुझसे खुलकर प्रतिवाद नही किया।

हिन्दी कवि सम्मेलन तो तीन चार दिन मे समाप्त हो गया, परन्तु मेरा काक रोली का अटूट सम्बन्ध हो गया। श्री महाराज सग्रहणी से पीडित थे। इसलिए सम्मेलन के बाद वे मेरी चिकित्सा मे आए। उनके आरोग्य लाभ होने पर उनकी पत्नी तथा परिजनो की चिकित्सा भी मैने समय समय पर की। उनको पुत्र की प्राप्ति भी मेरी चिकित्सा स हुई।

काकरोली मेवाड की पहाडियो के मध्य एक विशाल झील के किनारे बसा हुआ बहुत सुन्दर स्थान है। एक पहाडी के ऊपर मदिर है और पास मे ही महाराज श्री के महल। ठाकुरजी के नित्य भोग मे मनो मिठाई पूरी बनती थी। सेरो केसर चादी सोने के पात्रो द्वारा पीसी जाती है। वहा के भण्डार मे शुद्ध घी के कनस्तर पर कनस्तर भरे रहते थे। असली केसर के डिब्बे के डिब्बे भण्डार मे रहते थे। देश भर के भिन्न भिन्न भागो से भक्तगण ठाकुर जी के भोग के लिए घी, केसर, रेशमी वस्त्र, अनाज, रुपया, मणि मुक्ता ढेर की ढेर भेजते रहते थे। भोग लगने के बाद वह सारा देवभोग प्रसाद ब्राह्मणो को बँटता था, जिसे वे यात्रियो को बेच दिया करते थे।

मै जब वहा चिकित्सार्थ ठहरता तो श्री महाराज मेरे लिए भी ढेरो भोग भेजा करते थे। प्रथम दिन कलेवे मे जो भोग मुझे मिला उसका परिणाम भी सुनिए।

प्रात काल ही मेरे सामने दारोगा ने आकर मुझसे कलेवा और भोजन की व्यवस्था के सम्बन्ध मे पूछा ।

उसने प्रश्न किया—कलेवे मे पेडा कितना भेजा जाय ?

मेने मन मे सोचा दो तो चाहिऐ, इसलिए उत्तर दिया —दो ।

साथ मे मक्खन भी ?

मैने सोचा वाह, मक्खन के साथ पेडा बहुत स्वाद लगेगा । उत्तर दिया-'हाँ' ।

भोग का लड्डू भी ?

हाँ, एक वह भी ।

प्रसाद की पूरनपूरी भी ?

हा, एक दो वह भी ?

दूध ?

चाय न हो तो दूध ही सही ।

यह तो हुआ कलेवा, अब दोपहर के भोजन के लिए उसने प्रश्न किए—

दोपहर के भोजन मे दाल किसकी ?

मूग की धुली हुई ।

चावल भी ?

हा ।

फुलका ?

हा ।

सब्जी ?

दो सब्जी भी ।

चटनी, अचार ?

हा, थोडा थोडा ।

अब उसने रात्रिके भोजनके लिए पूछा—पूरिया बनेगी, आपको अनुकूल होगा ?

ठीक है, पूरी ही सही ।

शाक सब्जी के साथ दही भी ?

हा, दही हो तो अच्छा है ?

कुछ मिष्ठान्न ?

मावे का कुछ ।

मेरी फेहरिस्त बनाकर रसोई घर के दरोगा चले गए । परन्तु जब मेरे सामने कलेवा आया और जिस प्रकार दिन भर उस लिस्ट की खानापूर्ति मुझे करनी पडी उसे मै ही भुक्तभागी जान सकता हूँ । भोजन सामग्री देखते ही मै समझ गया कि मैने

ये जि`म सतयुग की मात्रा मे बताकर भूल की है। कलेवे का थाल जब मैंने उघाड कर देखा तो वाह ! एक एक पाव के दो पेडे। शुद्ध मावे और केसर के बने हुए। आधा सेर का एक लड्डू जिसमे केसर मेवेजात और शुद्ध घी की प्रचुरता दूर से ही दीख रही थी। पूरन पूरी पूरी एक फुट गोल केसर और मदा मावा और मेवाजात मे भरी हुई।

मक्खन का एक पाव का गोला और एक सेर पक्का चादी के लोटे मे केसर पडा हुआ दूध। मै देर तक इस नाश्ते को देखता रहा। मैने साहस करके पेडे को तोडा और मक्खन लगाकर खाने लगा। दो चार कौर खाते ही तबियत भर गई। लड्डू का टुकडा तोडकर खाया, पर एक दो कौर से ज्यादा वह भी नही सरका। पूरनपूरी तोडकर चक्खी, वाह बडी मजेदार थी, पर एक दो कौर से ज्यादा वह भी नही चली। मक्खन और पेडे ने पहले ही तबियत भर दी थी। अब दूध और आकर्षित कर रहा था। मैंने प्याले मे करके थोडा दूध पिया। दूध क्या था रबडी थी, दो घूट पीते ही सब इच्छाऐ तृप्त हो गई। केसर की महक मुझे मस्त बना रही थी सब चीजो की ओर मे दयनीय दृष्टि से देख रहा था, पर अब और कुछ भी खा नही सका। तबियत भारी हो गई। नाश्ते के थाल को मैने ढककर रख दिया कि थोडी देर मे खाऊँगा। कमरे मे इधर उधर चहल कदमी की, पेट को बहुत हिलाया डुलाया पर नाश्ते के जो आठ दस कौर कलेजे मे ठसे थे सो ठसे ही रहे। भूख नही लगी। दोपहर हो गया। बारह बजे ब्राह्मण ने आकर सूचना दी रसोई तयार हे। मैने पेट को हिला डुला कर देखा, बिल्कुल खाली नही था। मैन उससे कहा—थोडा ठहरो।

एक घण्टे बाद वह फिर आ हाजिर हुआ कहा—रसोई ठण्डी हो रही है।

मै हिम्मत करके उठा और रसोई म जा बठा। वहा उसने जो एक एक कटोरी और तश्तरी रखनी शुरू की तो तबियत वहा मे भाग जाने को हुई। पर सब रसोइए और नोकर लोग हाथ बाधे मेरी चाकरी बजाने को खडे थे और मेरी ओर ही सब की नजर गडी थी। मुझे वहा से भागने का साहस नही हुआ। मैने चुपचाप खाना शुरू किया। चिडिया के चुग्गे की तरह कभी चावल, कभी फुलके का टुकडा, कभी चटनी, कभी अचार, कभी दाल,कभी शाक सब्जी पर मेरी उँगलिया फुदकने लगी। घी की भर मार थी। दो चार कौर अन्दर जाते ही फिर सवेरे वाला ठसाठस मामला हो गया और मै भरा थाल छोडकर उठ खडा हुआ। इतना सामान उसमे परोसा गया था कि चार व्यक्ति उस थाल मे जीम सकते थे। सब कुछ छोड जब मैं उठ बैठा तो ब्राह्मण ने हाथ बाध मेरे सामने आकर दुहाई दी—सरकार को रसोइ पस द नही आई। श्री महा राज सुनेगे तो हमसे जवाब तलब होगा ?

मेने हँसकर उससे कहा—नही भाई, रसोई बहुत बढिया बनी हे, पर सवेरे के नाश्ते के कारण भूख ही नही लगी।

मैं जल्दी से अपने डेरे पर आकर पलंग पर लेट गया। मैंने गोली चूरन आदि की शीशियां टटोली, परन्तु किसी में भी पाचक चूर्ण नहीं था। मैं व्याकुल होकर झील के किनारे घूमने निकल गया। खूब घूमा। ... परन्तु हल्का हुआ। परन्तु पेडे और मठरी की डलियां अब भी मेरे दिमाग पर लटकी थीं। मैंने निश्चय किया कि मैं भोजन नहीं करूंगा। परन्तु ठीक समय पर जब ब्राह्मण ने आकर मुझसे भोजन करनेका आग्रह किया तो मैं फिसल गया, उसके साथ हो लिया और फिर बैठ गया मजेरे के आसन पर। जिसे परोस परोस कर मेरे सामने ढेर कर दी गई। मैं उन्हें रोक नहीं सका। अब जो खाना शुरू किया तो चार पांच ग्रास के बाद तबियत ठप्प। मिष्ठान्न की दो चार बरफियां खाकर तो यही सूझा कि अब चल दिया जाय। सामने देखा तो दोपहर की तरह सब सेवकों की दृष्टि मेरी तरफ है। पर अब एक कौर भी खाना कठिन था। मैं सब संकोच त्याग उठ खड़ा हुआ और अपने डेरे पर ही आकर सांस ली।

कलेवे और भोजन का यह मेरा प्रथम अनुभव था। मुझे पीछे पता लगा कि काकरोली का पानी भारी है, सुपाच्य नहीं है। फिर तो दो तीन दिन तक मेरा कलेवा और भोजन हुआ ही नहीं। बड़ी तरकीबों से मैंने अपनी स्वाभाविक भूख फिर से जाग्रत की। मैं जब घर लौटा तो ढेरों भोग का मिष्टान्न महाराजश्री टोकरों में भरकर मेरे साथ रख देते थे, जिसे मैं शाहदरेमें लाकर अपने मित्रोंको सौगात कहकर बांटता था।

सन् १९४१ के दिसम्बर में सूरत में बालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा का पंचदश वार्षिकोत्सव मनाया गया। इसीके साथ एक हिन्दी साहित्यिक समारोह का भी आयोजन हुआ। जिसमें सर्वश्री गुलाबराय जी, सत्येन्द्रजी, दीनदयालुजी आदि विद्वानों के साथ मुझे भी निमन्त्रित किया गया। इस समारोह के संयोजक कांकरोली विद्या विभाग के अध्यक्ष पण्डित कण्ठमणि शास्त्री थे। वैष्णव समाज की मेरे प्रति विरोध भावना देखते हुए भी उन्होंने मुझे निमन्त्रित करके साहस किया, क्योंकि मैं धार्मिक रूढ़ियों का आलोचक था और पुष्टिमार्ग में तो मैं विरोध रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका था। श्रोता गुजराती थे, मैं गुजरातीमें भाषण दे नहीं सकता था और हिन्दी भाषणको वे समझ नहीं सकते थे, फिर भी कण्ठमणि शास्त्री के आग्रह पर मुझे अपना भाषण देने के लिए मंच पर आना पड़ा। मेरे भाषण का विषय था—'वल्लभाचार्य और अष्टछाप'। मेरे मंच पर पहुँचते ही और संयोजक द्वारा मेरा परिचय देने और मेरे भाषण का विषय बताने पर समस्त उपस्थित वैष्णव समाज में, जिनमें अनेक सेठ साहूकार और विद्वान् भी थे, एक शंका की लहर दौड़ गयी। जिसका आभास उनकी ऊपर उठी हुई और मेरी ओर ताकती हुई आँखोंमें मुझे मिल गया। मैंने अभी अपना भाषण आरम्भ भी नहीं किया था कि मेरे एक मित्र ने उठकर मुझसे कान में कहा—'सम्हल कर बोलिए।' कण्ठ

मणि शास्त्री का संकेत भी मैंने देखा। परन्तु मैंने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और मुस्कराकर अपने श्रोतागोंकी ओर अभिमुख हुआ। पुष्टिमार्ग पर श्री वल्लभाचार्य के त्याग और तपस्या पर मैं एक घंटे तक धाराप्रवाह बोलता चला गया। मेरा भाषण हिन्दी में था और श्रोतागण गुजराती समाज, परन्तु मंत्रमुग्ध की भांति सब सुनते रहे। भाषण के अन्त में जब मैंने हिन्दी साहित्य में अष्टछाप की सम्पत्ति को पुष्टिमार्ग का देन बताकर सूर की तल्लीनता पर प्रकाश डाला, तब समस्त पुरुष और महिला समाज की तालियों की गड़गड़ाहट के बीच मैं अपने स्थान पर आ बैठा।

तीसरे दिन हमारे विदा होने का दिन था और हम लोग ताप्ती नदी पर भ्रमण कर रहे थे। एक पाठक ने मुझसे 'व्यभिचार' नामक पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न किए। मैंने उन्हें बतलाया कि मैं पहले एक चिकित्सक हूं और बाद में एक साहित्यिक। समाज की विकृति का निदान करना मेरे लिए परमावश्यक हो जाता है।

श्रीमद् वल्लभाचार्य के पुत्र गो० श्री विट्ठलनाथ जी ने अपने सम्प्रदाय की सात पीठ स्थापित किए थे। सं० १६४१ में तृतीय पीठ की स्थापना गोकुल में हुई। सं० १८१७ में विषम राजनैतिक उत्क्रांति के कारण गो० श्री व्रजभूषणलाल जी (प्रथम) ने कांकरोली में द्वारिकाधीश के साथ तृतीय पीठ को स्थापित किया। तब से अब तक ३६० वर्षों के काल में अनेक विपरीत वातावरण में भी यह पीठ वैष्णव साहित्य के संरक्षण में बहुत कृतोद्योग रहा। समय-समय पर उसने ग्रंथोद्धार और वैष्णव साहित्य निर्माण में बहुत कार्य किया और आज यह कार्य पीठ के वर्तमान अधीश्वर कांकरोली नरेश गो० श्री व्रज[illegible]न जी महाराज की अध्यक्षता में एक पृथक् 'विद्या विभाग' द्वारा हो रहा है। यहां के पुस्तक भण्डार में इस समय २००० के लगभग हस्तलिखित ग्रंथ हैं, जिनमें अनेक दुर्लभ, अज्ञात और अनुपलब्ध हैं। विद्या विभाग का एक पृथक 'अन्वेषण विभाग' है जो सं० १९८५ से अपना कार्य कर रहा है। इसने अहमदाबाद, सखेडा, दतिया, टीकमगढ़, मद्रास, भोपाल, जहानाबाद, बीकानेर, कामवन, आन्ध्रप्रान्त में कार्य कर ५०० से अधिक प्राचीन ग्रंथों का विवरण प्राप्त किया है, जिनमें अनेक लुप्त प्राय थे। विभाग ने कई महत्त्वपूर्ण दुष्प्राय ग्रंथों का प्रकाशन और सम्पादन भी कराया है। विद्याविभाग में प्रतिदिन स्वयं महाराजश्री बैठ कर ग्रंथ सम्पादन में हाथ बँटाते हैं, विभाग का संचालन पं० कण्ठमणि शास्त्री अत्यंत योग्यता से करते हैं। ग्रंथोद्धार के सिवा विभागने शिक्षाविस्तार और सांस्कृतिक विषयोंमें भी बहुत स्तुत्य कार्य किया है।

कांकरोली के पीठाधीश्वर गोस्वामी श्रीव्रजभूषणजी महाराज के प्रति आरम्भ से ही मेरे मनमें बहुत मान था। उनका सदाचार, विद्या व्यसन और साधु स्वभाव अद्वितीय है। उनकी धर्मपत्नी भी उन्हीं जैसी है। बीस वर्षों से भी अधिक समय से मेरा उनका स्नेह सम्पर्क दिन दिन प्रगाढ़ होता गया। मैं परम नास्तिक और महाराजश्री

परम आस्तिक । हम लोगोकी मेल मुलाकात और घनिष्ठता पर बहुत लोग टीकाटिप्पणी और आश्चय करते रहे है । अपने मन की यह एक गूढ बात मै यहा कहना ह—कि इस पवित्र पुरुष के ससग सान्निध्य के प्रभाव स मेरी अन्तरात्मा म कभी कभी आस्तिक भाव की ऐसी वेगवती धारा बहती रही है,कि वह सब तर्कों और विवचनाओ को बहा ले जाती है । मेरे उप यास 'सोमनाथ' की रचना इसी वेगवती धारा के प्रवाह म हुई, यद्यपि इसका उद्दीपन हुआ पजाब के विभाजन स । पर तु सोमनाथ म जो धम सत्रप है, वह इसी वेगवती आस्तिक धारा की प्रतिक्रियावादिनी शक्ति स जबदस्त टक्कर है । निस्सदेह मै सोमनाथ मे स्वय प्रतिक्रियावादी नही बना,और अपनी सामर्थ्य स अ तत मानवतावादी ही रहा, पर मेरे सारे ही सोमनाथ पर जो आस्तिक तत्त्व छाया हुआ है, मै स्वीकार करता हूँ कि यह मेरे जीवन पर महाराजश्री के सम्पक का प्रभाव है । चाहे तो इसलिए समझिए, चाहे स्नेहाधिक्य से समझिए, मैने समझा— कि सोमनाथ रचना मे महाराजश्री का भी प्रच्छिन्न हिस्सा है । इसीलिए ज्यो ही सोमनाथ छप कर तैयार हुआ—मेने चुपचाप उसका समपण महाराजश्री और उनकी धमपत्नी को कर दिया, और जब इसकी सूचना मेने उन्ह दी, तो बहुत सकोच के बाद उ होने स्वीकार किया । मेरे समपण बिना ही अनुमति के हुआ करते है । नगरवधू' जब श्रीजवाहर लाल नेहरू को समर्पित की थी,तब उनसे भी नही पूछा था । इसपर जब उन्होने शिकायत की, तो मेने कहा था—मैंने आपको दिया ही है, लिया कुछ भी नही । कभी कुछ लेने का इरादा भी नही करता हूँ । स्वीकृति समथन की इसम क्या बात है, जिस पर श्रद्धा हुई, प्रिय वस्तु भेट कर दी । बस खत्म ।

पर तु सोमनाथ का समपण यो खत्म नही हुआ । महाराजश्री जसे बडे धमगुरु है, वैसे ही राजसी पुरुष भी है । उनके बहुत भक्त उनकी पदरावणी करते है, पद पूजा करते है । ऐसे ऐसे बडे भव्य समारोह मै देख चुका हूँ । बहुत बार मेरा मन हुआ कि कभी एक ऐसा ही भव्य समारोह मेरे हाथो भी हो तो उत्तम । तो इस अवसर को मेने उत्तम समझा । बहुत ननुनच करने पर, बहुत लडाई झगडे के बाद महाराजश्री ने मेरा अनुरोध स्वीकार किया । अन्तत पहली सितम्बर सन् ५८ के पूर्वाह्न म बम्बई के प्रसिद्ध ताजमहल के सवजन दुलभ प्रिन्सेस चेम्बर मे यह अभूतपूव ऐतिहासिक भव्य समारोह सम्पन्न हुआ । समारोह के प्रधान आसन पर न्यायमूर्ति श्रीनटवरलाल हरीलाल भगवती, जस्टिस, सुप्रीम कोट सुशोभित थे । उपस्थित गण्यमान्य जनो म, महाराजश्री और उनकी धमपत्नी के अतिरिक्त महाराजश्री के अनुज गोस्वामी श्री विट्ठल नाथ जी महाराज, गोस्वामी श्री गोपीनाथ जी महाराज, श्री कण्ठमणि शास्त्री, राजा बहादुर श्री गोविन्दलाल पित्ती, महावीरप्रसाद दाधीच सालीसीटर, श्री रणछोडलाल जी महाराज,बम्बई के हिन्दी, गुजराती,मराठी, अग्रजी प्रमुख पत्रो के सम्पादक,सम्वाद

दाता तथा बम्बई के प्रमुख भद्र नागरिक और महिलाए उपस्थित थी। मूसलाधार वषा होने पर भी समारोह की भव्यता असाधारण थी। यायमूर्ति जस्टिस भगवती, महाराज श्री तथा राजा बहादुर गोवि दलाल पित्ती आदि के महत्वपूण भाषण हुए।

समारोह की दो और विशेषताए थी। पथम महाराजश्री का ताजमहल मे पदापण, जिस पर परम्परागत पद की मयादा का उल्लघन करके श्रीमतीजी का सबके समक्ष उपस्थित होना असाधारण घटना थी। बम्बई भर के वष्णवो ने तथा निकटस्थ परिजनो तक ने विरोध किया, पर तु महाराजश्री तो समयकी प्रगति के साथ हे। वे दृढ रहे और हसकर यही कहा—देश म बाहर अछूतोद्धार हो रहा हे, आज ताजमहल का अछूतोद्धार होगा।

एक बार जोधपुर से मुझे बुलावा आया। मेरी ट्रेन आधा घण्टा लेट थी। स्टेशन पर स्वय रावराजा उदयसिह अपनी मोटर लिए मेरी प्रतीक्षा मे खडे थे। ट्रेन से उतरते ही उ होने मेरा स्वागत किया और स्वय ही कार को डाइव करके अपने साथ ले गए। स्टेट गेस्ट हाउस मे ठहराया। बहुत बाते हुई। चार दिन रुकना पडा। वहा चार दिन मे मेरे चोदह भाषण भी हुए। रवाना होने से एक दिन प्रथम मन काकरोली तार दिया कि मै जोधपुर आया हुआ हूँ, मेरी आवश्यकता हो तो आऊ। तुर त ही बुलाने का तार आ गया। मे दिल्लीका प्रोग्राम मुल्तबी कर काकरोली चल दिया। स्टेशन पर पहुँचकर देखा स्वय श्रीमहाराज अपनी गाडी लेकर आए हुए ह। मै महाराज से उनके कष्ट करने की बात कर ही रहा था कि एक घुडसवार तेजी मे महलो से दौडता हुआ आया। उसन महाराज को सूचना दी कि उनके शिशु पुत्र को अकस्मात दोरा हो गया हे। हम अपना असबाब वही छोड तुर त ही मोटर मे बठकर महल मे पहुँचे। जाकर देखा बच्चे का पेट बहुत फूला हुआ है, सास कष्ट स आ रहा हे और डाक्टर बगले झाक रहा है। बच्चे का दूर से देखते ही मै उसके दौरे का कारण समझ गया। गरम जल क साथ औषध दी। एक भयानक बदबूदार दस्त हुआ। सारा बिस्तर खराब हो गया। पर तु दस्त होते ही बच्चा आराम से सुख की नीद सो गया और उसकी उध्व श्वासे प्राकृतिक हो गई। पेट पिचक गया। एक दस्त और हुआ और अगले दिन तक वह उठकर खेलने और हसने लगा। दो दिन वहाँ रहकर मे नाथद्वारा घूमने के विचार से गया। नाथद्वारा मै धमशालामे ठहरा था। लोगो को पता चला तो मुझसे भेट करने आए। उनके आग्रह पर रात्रि का एक भाषण भी दिया। सुबह चलने लगे। बिस्तर बाधकर तैयार थे कि नाथद्वारा मन्दिरसे बुलावा आया कि श्रीबेटीजी बीमार हे, उ हे देख लीजिए। उनका अनुरोध मुझे स्वीकार करना पडा।

महलो मे पहुचकर उन्हे देखनेमे बाधा उपस्थित हुई। वे एक धर्माचाय की पुत्री थी। हर कोई व्यक्ति अन्त पुर की परछाई भी नही देख सकता था। कडे परदे और

महान धार्मिक व्यक्तित्व का वहा प्रश्न था। मुझे एक भारी परदे के पास ले जाकर बठा दिया गया। रुई का गद्देदार भारी परदा, और उसके पीछे एक और परदा और उस दूसरे परदे के पीछे सुनहरी ऊपरखट पर बेटीजी लेटी हुई थी। उनकी कलाई से बाध कर एक डोरा मेरे हाथ मे नब्ज देखने के लिए पकडा दिया गया। एसी विद्या तो मैने वैद्यक मे पढी नही थी। मैने कहा—मै कुछ भी नही कह सकता। फिर सलाह हुई। अ त मे मुझे विशेषाधिकार प्रदान किए गए और मे परदा को पार करके सुनहरी ऊपर खटपर लेटी हुई युवती बेटीजी के पास पहुचा दिया गया। मैने उनकी परीक्षा की, रोग के हालचाल पूछे। यह भी मैंने जान लिया कि उनका अभी विवाह नही हुआ है तथा मासिक धर्म भी नियमित नही है। उनको ज्वर सम रहता था और किसी औषध से शान्त नही होता था, न वे पँलग पर लेटे रहना पसन्द करती थी। उनके रोग और उसकी चिकित्सा को मैने तत्क्षण ही भाप लिया। पर मै वहा असली बात किसी को कह नही सकता था। मर्यादा ही ऐसी थी। उन्हे देखकर मै अपने डेरे पर लौट आया और औषध तैयार करके पानीमे भिगोदी। रात भर भीगी रही। सवेरे पानी को चादी के कटोरे मे छान कर उसे बेटीजी को पीने को दिया। दिन मे तीन बार यही पानी दिया। उनका ज्वर उतर गया था। अब तो मेरा समान धर्मशाला से उठवाकर सरकारी मेहमानखानेम लगा दिया गया। तीन चार दिन वहा ठहरा। बेटीजी मेरी औषध से पूर्ण स्वस्थ एव प्रसन्न हो चुकी थी। मैने वहासे आज्ञा ली। वहा से भी मुझे मदिर का प्रसाद दो टोकरे भरकर साथ कर दिया गया, जिसे हमने घर आकर महीनो खाया।

इसी प्रकार की एक चिकित्सा करने का अवसर मुझे १९५२ मे मिला था। मेरे एक मित्र दिल्ली मे नहर विभाग के सबसे बडे इजीनियर थे। रायसाहब भी थे। बहुत सज्जन और मृदुभाषी। उनका एक ही पुत्र था। उसे भी उन्होने इजीनियरी पढाई। पढने के बाद उसका विवाह केवल पन्द्रह मिनट मे उन्होने सम्पन्न किया था।

विवाह के दिन उन्होने मुझे तथा दो मित्र और साथ लिए। एक वे और एक उनका पुत्र दूलह केवल पाच व्यक्ति कार मे बठकर बेटी वाले के घर, जो उनके बगले से पाच सात मिनट का ही रास्ता था, पहुचे। एक बडे से सुसज्जित कमरे मे फूलो की बन्दनवार लटक रही थी। कुर्सियो पर कन्या के पिता, माता, बहिन एक दो अन्य सम्बन्धी तथा कन्यासहित कुल ६ व्यक्ति बठे थे। बीच मे एक मेज पर फलो की प्लेटे सजी हुई थी और एक थाल मे फूलमालाएं रखी थी। वर के पहुँचते ही सब खडे हो गए। कन्या ने उठकर सब आगतो को प्रणाम किया और वर के गले मे पुष्प माला डालकर उसके वामपक्ष मे खडी हो गई। वर ने भी एक पुष्पमाला लेकर कन्या के गले मे डाल दी। कन्या के एक अन्य सम्बन्धी ने शायद वे उसके मामा थे, हम चारो अतिथियो के गले मे भी पुष्पमाला डाल दी। इसके बाद कन्या पक्ष के सब व्यक्तियो

ने बारी बारी से आकर वर और वधू को रोरी का टीका दिया। अक्षत और पुष्प ऊपर फके। उसके बाद कन्या के पिता ने अपनी जेब में से पचास हजार का चेक निकालकर अपनी बेटी के हाथ में थमा दिया। मेरे मित्र रायसाहब ने भी अपनी चेकबुक निकाल कर पच्चीस हजार का चेक भरकर अपने पुत्र के हाथ में थमा दिया। बस लीजिए विवाह हो गया, लेना देना भी हो गया। यह सब होने के बाद कन्या के पिता ने हमसे फलो पर कृपा करने की प्रार्थना की। एक एक दो दो फल खाकर हम लोग उठ खड़े हुए। बीस मिनट भी उसमें नहीं लगे। ऐसे विवाह की मैं कल्पना किया करता था, पर साक्षात देख भी लिया सम्मिलित भी हुआ।

विवाह के चार पाच मास बाद रायसाहब ने मुझे बनारस पत्र लिखकर बुलाया। उन दिनो उनकी सर्विस बनारस चकिया में लगी हुई थी। मैं गया तो मेरे सामने पुत्र-वधू को पेश करके उन्होंने कहा कि इसकी चिकित्सा कीजिए। मैं उसको देख आश्चर्य और दुख में डूब गया। चार मास प्रथम इसी खिले हुए गुलाब पुष्पको मन भर यौवन में आह्लादित देखा था। आज वह मुर्झाकर पीला पड़ गया था। आखो की कोरो पर कलौंस छा गई थी। मुह सूख गया था। मानो वह जीवित नहीं थी। मैने रायसाहब से कहा—आपने अब तक मुझे लिखा क्यो नही ?

उन्होने नीची गर्दन करली। मैं उनके सलोनी स्वभाव का स्मरण करके अपने प्रश्न के लिए पश्चाताप करने लगा। मैने कहा— कोई चिंता की बात नही। सब ठीक होगा। आप बिल्कुल भी फिक्र न करे, न सकोच करे।

रायसाहब ने अपने बगले में ही मेरे ठहरने का प्रबन्ध कर दिया।

रायसाहब के पुत्र को एकान्तमे बुलाकर मैंने सब हाल पूछा। उसने मुझे बताया कि विवाह रात्रि के बाद से ही यह इस प्रकार सुस्त होती चली गई है।

लड़की से मैने अलग बातचीत की, पर उसने कोई विशेष बात नही बताई। अत्यन्त शालीनता से 'हा' 'ना' में मेरे प्रश्नो का उत्तर मात्र देती रही।

उसकी नाड़ी तथा शरीर परीक्षा से कोई रोग लक्षण प्रतीत नही हो रहे थे।

मैं दो चार दिन तक लड़की की चेष्टाओं और दिनचर्या का अध्ययन करता रहा। मैं अपने निदान में मनोविज्ञान का भी प्रयोग करता हू, इसीसे मुझे कभी कभी सही रोग सूत्र मिल जाते है।

अन्त में मुझे उसके रोग का सूत्र भी मिल गया। मैने रायसाहब के पुत्र से कहा - आज रात को पत्नी को मोटरमें बैठाकर बाजार ले जाना और कुछ श्रेष्ठ रिकार्ड जिनमे प्रेम गायन हो, उसकी पसन्द के खरीद लाना। उससे अत्यन्त मधुर मित्र की भांति व्यवहार करना, अपना पतित्व अधिकार किसी भी प्रकार उस पर न चलाना। उसे अपना मित्र समझना, वह भी तुम्हे अपना मित्र समझे, ऐसी चेष्टा करना। उसे

नित्य कोई प्रमपूर्ण पिक्चर्स भी दिखाने न जाना। पर तभी, जब वह स्वीकार करे, जबरदस्ती नही। उसके कमरो मे सदैव वे रिकार्ड ग्रामोफोन मे बजते रहने चाहिएँ। कमरे मे फूलो के गुलदस्ते तथा कामुक चित्र और मूर्त्तिया लगा देनी चाहिएँ। परन्तु रात्रि को अलग सोना, उसके कमरे मे नही, और जब तक मै आज्ञा न दूं, उसके शरीर का स्पर्श भी न करना।

मेरी व्यवस्था सुनकर वह कुछ चकित हुआ। परन्तु उसने आज्ञाकारी पुत्र की भाति मेरे सभी आदेशो का पालन किया।

इधर मैने यह किया कि सवेरे के नाश्ते पर मै उसे अपने पास बुलाने लगा। बाहर बरामदे मे फूलो के गमले सजे रहते थे और मै चाय पीते पीते अनेक अद्भुत ज्ञान और प्रेमकी बाते उसे सुनाता रहता था। मै उसके साथ बच्चे की भाति बात कर के हसता रहता और उसे भी खिलखिलाकर हँसने को प्रेरित करता। ठोस भोजन मैने उसका बन्द कर दिया। कभी दूध, कभी फल, कभी मेवा मक्खन, शहद टोस्ट आदि भोजन देता था। औषध मैने बहुत कम दी। केवल नाम मात्र को रात्रि को सोते समय उत्तेजनात्मक औषध की एक पुडिया शहद मे देता था।

पन्द्रह दिन मे ही अनुकूल परिणाम हुआ। उसका कामोद्दीपन जो ठण्डा हो गया था पुन लौट आया। अब वह स्वय कभी कभी प्रमगीतो को गुनगुनाती फिरती थी। पहले वह किसी भी काम करने मे उदासीन रहती थी,पर अब यह बात नही थी। वह घर के कामोमे दिलचस्पी लेने लगी, कभी वह मालीके हाथ से खुरपा लेकर पेडो को ठीक करने लगती, कभी अपने हाथ से फूल तोडकर गुलदस्ते सजाने लगती।

कुछ दिन बाद वह मेरे पास आकर चाय पीने मे विलम्ब करने लगी और चाय पीकर शीघ्र ही उठ जाने लगी। अब मैने उसके पति को आज्ञा दी कि वह भी हमारे साथ चाय मे सम्मिलित हो। पति के बैठने पर वह बहुत देर तक बैठी बातो मे लीन रहती। कभी कभी वह ऐसा प्रसग छेडती कि मुझे हँसी की बात सुनानी पड जाती,फिर तो वह हसते हँसते लोट पोट होकर वहा से भाग जाती।

एक डेढ मास व्यतीत होने पर एक दिन उसने पति से स्वय प्रस्ताव किया कि आजसे मेरे कमरे मे आपको सोना होगा। पति ने मुझ से कहा। मैने आज्ञा दे दी। परन्तु यह भी सकेत कर दिया कि उसकी मरजी के विपरीत कोई आचरण न हो। वह जिसकी आज्ञा दे वही हो। यही हुआ। मेरी औषध-चिकित्सा और मनोविज्ञान चिकित्सा दोनो चलती रही। पूरे तीन मास मुझे वहा ठहरना पडा। तीन मास बाद मुझे यह विश्वास हो गया कि अब पति पत्नि दोनो ही परस्पर मे लीन और आत्मसत् है, अब कोई रोग नही है। मैने रायसाहब से बिदा ली। चलती बार राय साहेब से एक ब्लैक चेक अपने दस्तखत करके मेरे आगे अत्यन्त सकोच के साथ पेश किया। वाणी उनकी

नही निकली । मैंने हँसकर रायसाहब के हाथसे चेक ले लिया और पाने वाले की जगह पुत्र वधू का नाम लिख कर उसे लौटा दिया । मैंने कहा—रकम आप भर दीजिए ।

रायसाहब की आँखों में पानी झलक आया, पर मैंने देर नही की । मैं उनके हाथों को अपने हाथों में दबा कर तेजी से बाहर निकल आया । कार का दरवाजा खोल मैंने ड्राइवर से कहा —चलो ।

रायसाहब नीची दृष्टि किए खड़े मुझे देखते रहे । रायसाहब के पुत्र और पुत्र बधू को मैंने पहिले ही पिक्चर देखने भेज दिया था ।

दिल्ली लौटने के चार पाच महीने पीछे मुझे रायसाहब का पत्र मिला कि बहू के बाल बच्चा होने वाला है । मैंने उत्तर में लिखा—हजार बार मुबारक ।

एक बार झालावाड़ महाराजा की चिकित्सा से निबटकर जब मैं लौट रहा था तब वहा का एक समीपस्थ रियासत से भी मुझे बुलाया आया । वहाँ रनवास में पहुच कर जब मैंने अपने मरीज को देखा तो मैं चकित रह गया । मरीजा राजकुमारी थी । आयु पच्चीस वर्ष, संगमरमर की कलात्मक प्रतिमूर्ति, गोरा उज्ज्वल रंग, लम्बा छरहरा शरीर, सुगठित भरा हुआ कमनीय बदन ज्योतिमय स्वच्छ नेत्र । हिजहाइनेस अपनी पुत्री के सिरहाने खडे थे, हरहाइनेस रेशमी पर्दे के पीछे तनिक हटकर थी, पर बात करती जाती थी, मैंने राजकुमारी की परीक्षा की, कुछ प्रश्न पूछे और चुप होकर महाराज की ओर देखने लगा । मेरा बहुत जल्दी परीक्षा खत्म कर लेना उन्हें पसंद नहीं आया । महाराज ने पूछा - बिमारी का पता चला वैद्यराज ?

हा महाराज, मैं जान चुका ।

तब ?

उसी समय परदे में से प्रश्न हुआ—'क्या रोग है ?' मैंने संक्षेप में संकेत से उनसे निवेदन किया । कुछ क्षण बाद परदेसे एक थालमें कुछ गिन्नियां लेकर दासी मेरे समक्ष आई । मैंने प्रश्नभरी दृष्टि से उसे देखा । इसी समय परदे में से कहा गया —'वैद्यराज जी, आपका जैसा नाम सुना, वैसा पाया । बेटी जी के लिए जो कुछ आपने कहा बिल कुल ठीक है । आपने तो पिछले पाच साल की रोग की जड़ ही पकड़ ली । मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार करें ।'

मैं महाराज के साथ चलकर दूसरे कमरे में आया । मैंने कहा—असली सोने की बीस तोले की एक डिबिया बनवा लीजिए, उसी में दवा रखी जायगी । दो दिन बाद डिबिया बनकर मेरे सामने आ गई । मैंने ब्राह्मी वटी उसमें रख कर राजकुमारी को भेज दी । एक एक गोली सुबह शाम ताजा पानी से । फूलों के बाग में हरी घास पर स्वच्छन्द घूमने का भी आदेश मैंने किया । एक सप्ताह में वे स्वस्थ और प्रसन्न थी ।

उनका सारा रोग विवाह न होने और मानसिक प्रसन्नता का अभाव था ।

एक ठिकानदार क यहा मुझे ।ल गाडी म बठकर निदिगाव जाना पडा। राह मे भीलो का एक गाव पडा। भीलो की चर्चा चल पडी। गाव क गाडीवान ने कहा—वे सब चार गाव डाकू है। यात्री का बिना मारे उसका धन नही लेते, पर इनका प्रधान काम पशु की चोरी है। पशु चुराकर ये उसे ऐसी अद्भुत रीति से काला कर देते है कि मालिक भी नही पहचान सकता। यह सुनकर मैंने गाव मे चलने का आग्रह किया। पर गाव मे जाना गाडीवान सा यात्री न था। सिपाही और गाडीवान झिझके, परन्तु मैं हठ कर गया। सब लोग गाव म पहुचे तो अनेक स्त्रिया बालको ने कौतूहल वश हो सवारी घेर ली। कई पुरुष भी नारियल पीते आ खडे हुए।

मैंने कहा—मुझे पटल से मिलना है, उसे बुलाओ।

बूढा पटल अपने लम्बे कृशकाय म आया तो मैंने गाडी से उतरकर जुहार किया और कहा—मै चिकित्सक हूँ, दिल्ली मे राजा का इलाज करने आया हूँ। यहा तुम्हारे गाव मे गुजरा तो मन चाहा कि तुमसे मिल और पूछू कि क्या मै तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ। क्या तुम्हारे गाव म कोई बीमार है, जिसे मै देखू ?

पटल प्रसन्न हो गया। उसकी पत्नी संग्रहणी से पीडित थी। वह मुझे अपनी झोपडी मे ले गया—मैंने रोगिणी को देखा, दवा दी और बातचीत से प्रसन्न किया। पटल ने बडे विनय से दो रुपये भेट करने चाहे। मैंने कहा—पटल, रुपये नही, दोस्ती दो। पटल बहुत खुश हो गया। अटपटी भाषा म उसने न जाने क्या क्या कहा।

मैंने कहा—सुना है,तुम पशु चुराते हो और उन्हे काला रग देते हो। क्या यह बात सत्य है ?'

उसने कहा—क्या आप देखेगे ?

मैंने अपनी स्वीकृति दी।

वह मुझ अकेले को सघन से टेढे सीधे रास्ते से ले चला। दोनो ओर नागफनी थी, उनकी मनुष्य के कद के बराबर ऊँची बाढ थी। साथमे तीन चार युवक भी थे। गुम-सा रग, चमकता हुआ नगा स्वस्थ शरीर, कण्ठ म मूगा की माला, कमर म तलवार। दृश्य भयावह था, पर मुझे रहस्य जानने की बडी उत्कण्ठा थी। अन्त मे वह मुझे एसे बाडे म लेगया, जहा सौ डेढ सौ बैल खडे थे। सब काले। उसने वह गूढ भेद भी बताया कि किस प्रकार भिलावे के प्रयोग से वे पशुओ के रग बदलते है। घर लौटकर इस पर मैंने बहुत प्रयोग परीक्षण किए और बाजार मे बिकने वाले इस सस्ते विष को अद्भुत शक्ति सम्पन्न रसायन पाया। तभी से लगभग २२ वर्ष से मै प्रति वर्ष शीतऋतु मे यह विष भक्षण करता हूँ। मेरे बाल सफ़ेद होने लगे थे,फिर इसके प्रभावसे आजतक काले है।

१९३४ से १९४४ तक का दस वर्ष का काल मेरे जीवन का शान्त और स्थिर काल समझना चाहिए। इन दिनो मे अपने एकान्त स्थल ज्ञानधाम (अपने निवास स्थान

का नाम अपनी पत्नी ज्ञान के नाम पर ज्ञानधाम रखा था) में ही रहता था। कहीं आता जाता नहीं था, सारा समय साहित्य रचना में बीतता था। सन्ध्याकाल साहित्यिक मित्रों की गोष्ठी में व्यतीत होता था। रोगियों की चिकित्सार्थ दिल्ली से बाहर जाने के लिए भी मैं प्रायः मना कर दिया करता था। जैसा मैं पहिले कह चुका हूं मेरी पत्नी पढ़ने में तीव्रबुद्धि थी, उन्होंने घर के कामों से अधिकांश समय निकाल कर बहुत साहित्य पढ़ डाला। अंग्रेजी और संस्कृत के ज्ञान को भी बहुत बढ़ा लिया। प्रभाकर परीक्षा तो उन्होंने छः महीने में ही तयारी करके पास करली थी। उन्हें संगीत और कविता का बहुत शौक था। वे रात को बहुत देर तक हारमोनियम लेकर नये नये पक्के राग निकाला करतीं और प्रातःकाल की शान्त वेला में फूलों की क्यारियों में बैठकर कविताएं लिखा करतीं। मेरे ग्रन्थ [illegible] छोटे ग्रन्थ और सद्भीय लेखों को, जिन्हें मैं बहुत दिनों से आलस्यवश हाथ नहीं लगा रहा था, उन्होंने संकलन करके अपने हाथ से सुलिखित किया और मेरी मेजपर धर कर दिया। सच पूछा जाय तो मेरे जीवन को उन्होंने बहुत सुव्यवस्थित कर दिया था और घर की अनेक चिन्ताओं ने मुझे छुट्टी दिला दी थी। मेरे सामने मेरा साहित्य और मेरे साहित्यिक मित्र ही रहते थे।

धीरे धीरे मैंने ज्ञानधाम में और भी दो चार कमरे रहने के लिए बनवा लिए। धाम के लान के बीचोबीच मैंने एक अत्यन्त सुन्दर कलात्मक गोल छप्पर बनाया। बांस की टट्टियों की गोल दीवारें बनाकर लताएं उस पर चढ़ा दीं, चारों तरफ सुगन्धित फूलों की क्यारियां लगादीं। वर्षा, शरद, ग्रीष्म, सभी ऋतुओं की दुपहरी में उसमें बैठ कर मुझे बहुत सुख मिलता था।

एक दिन ग्रीष्म ऋतु की मध्याह्न वेला में इसी छप्पर में बैठा हुआ मैं पत्नी के साथ गप्प लड़ा रहा था, कि एक कार ने ज्ञानधाम के फाटक में प्रवेश किया। वहीं गोल छप्पर के आगे आकर ड्राइवर ने कार रोक दी। उसने कार से उतर कर इधर उधर देखा। मैंने आवाज देकर उसे अपने पास छप्पर के अन्दर बुलाया। अन्दर आकर अभिवादन करके उसने निवेदन किया—शिवगढ़ के राजा साहेब आपसे भेंट करने आए हैं। मैं उस समय पाजामा और बनियान पहिने सिर पर गीला अंगोछा डाले बैठा था और वस्त्र पहिनने के लिए उठकर अन्दर जाना ही चाहता था कि एक दुबला पतला साधारण सा आदमी धोती की टीप टाप करता हुआ छप्पर में ही घुस आया। उसकी अंगुली में हीरे की अंगूठी [illegible] चमक रही थी, कीमती चश्मा भी लगा हुआ था। ड्राइवर ने झुक कर उस व्यक्ति का अभिवादन किया और मुझसे धीरे से कहा—आप ही शिवगढ़ के महाराज हैं।

मैंने उसी अवस्था में उठकर उनका स्वागत किया। कुर्सी पर बैठाया। वे बे-तकल्लुफी से कुर्सी पर बैठ गए। टोपी उतार कर मेज पर रख दी और ड्राइवर को

बाहर जाने का हुक्म दिया। ड्राइवर के बाहर जाते ही उनका निजू सेवक महाराज का कुर्सी के पीछे आकर खडा होगया। एक बडा सा चान्दी का पानदान उसके हाथ मे था। महाराज पन्द्रह बीस मिनटके बाद एक बीडा पान उसमे से उठा कर मुह मे दबा लिया करते थे।

महाराज ने बात छेडी—हम होटल मे ठहरे हुए है, परन्तु वहा ताजा हवा नही है। आप के यहाँ तो बहुत शान्ति का स्थान है। इस छप्पर को देखकर तो हमने सोचा है कि हम यहाँ दस पाँच दिन रहे। आपसे अपनी चिकित्सा के सम्बन्ध मे मशवरा भी लेना है। यही ठीक होगा।

मै भला इन्कार कैसे करता। मैने बडी खुशी से अपनी स्वीकृति देदी। बहुत बाते हुई और पहिली ही मुलाकात मे मै उनका अत्यन्त प्रिय और विश्वस्त मित्र बन गया। वे फिर लौट कर दिल्ली नही गए। ड्राइवर को भेजकर सब सामान होटल से उठवा कर उन्होने वही मगवा लिया। अगले दिन मैने दो तीन तम्बू मगाकर वहा लगवा दिए और महाराजके ठहरनेकी सब सुखसुविधा जुटा दी। परन्तु महाराजको वह छप्पर ऐसा पसन्द आया कि वे डेरे तम्बुओ मे नही गए। छप्पर मे ही ठहरे रहे। उनके नौकर चाकरो ने ही तम्बुओ का उपयोग किया। पूरे पन्द्रह दिन वे वहाँ ठहरे।

भेट के अगले दिन ही वे मेरी चिकित्सा मे आए। उन्हे देखकर मैने उन्हे औषध दी। उससे उन्हे लाभ हुआ। परन्तु वे ड्रिंक बहुत करते थे। शराब ने उनकी पाचन-क्रिया को बिलकुल बिगाड दिया था। मै इन राजा रईसो की प्रकृति से भलीभाति परिचित हो चुका था और यह जानता था कि इनसे शराब की आदत नही छुडाई जा सकती। इसलिए मै ऐसी औषध देता था कि जिससे शराब का प्रभाव पाचनक्रिया पर नही पडता था। फिर धीरे धीरे मै एक अन्य पेय उन्हे देता था जो शराब की भाति ही तेज जायका, परन्तु हानिरहित होता था।

शिवगढ महाराज पूरे सोलह बरस तक, जब तक उनकी मृत्यु हुई, मेरे सम्पर्क मे रहे। अनेक बार वे मेरे गोल छप्पर का आनन्द लेते और अनेक बार उन्होने मुझे शिवगढ अपने राजमहल मे भी बुलाकर ठहराया। दवादारू और चिकित्सा की बात खतम हो जाने पर भी वे मुझे शिवगढ से लौटने नही देते थे। कहते—कुछ कवियो को बुलाया है उनकी कविता भी तो सुनिए। कोई लखनऊ से, कोई इलाहाबाद से, कोई रायबरेली से, कोइ बनारस से। एक हफ्ता इसीलिए ठहरना पडता। कभी कहते—हमारे एक रिश्तेदार हिजहाइनेस शिकार खेलने आ रहे है, उन्हे भी जरा देख लीजिए। वे जब आते तो उनकी भी शरीर परीक्षा करनी पडती। वे चाहे बीमार हो या न हो, पर दो चार पुडिया उन्हे भी देनी जरूरी हो जाती।

महाराज शिवगढ के साथ मे मुझे एक बार एक हिजहाइनेस के विवाह मे

शरीक होना पडा। बारात म अनेक हिजहाइनेस और छोटे राजा सरदार लोग भी थे। एक लम्बी पूरी स्पेशल ट्रेन रवाना हुई। मुझे खास दूलह हिजहाइनेस के सलून डिब्बे मे बैठना पडा। बारात रात को खाना खा पीकर चली थी। इसलिए सब बारातियो के बिस्तर ट्रेन मे बिछ गए थे और पीनेकी बोतले उनके सामने मेजो पर थी। सलून मे दूलह राजा और उनके मामा राजा थे। उनके बिस्तर नीचे की बथ पर थे, मे जानता था कि ये लोग पियेंगे भूमेंगे, और मै तो न पीता ही हूँ, न इसकी बदबू ही बरदाश्त कर सकता हूँ, इसलिए मैंने अपना बिस्तर ऊपर की बथ पर लगवाया।

कुछ गपशप के बाद हम लोगो ने सोने की तयारिया की। मै ऊपर अपनी बथ पर जा चढा। उन दोनो के खास खिदमतगार गिलास ले लेकर उनके पास खडे हो गए। अब पग पर पग पिए जा रहे है। धीरे धीरे वह अवस्था मेरे सामने पेश हुई कि मुझे अपना सिर रजाई म डुबकाकर वह दृश्य दरगुजर करना पडा। उन दोनो हिजहाइनेस महोदयो ने वह वाहीतबाही की फाश गालियाँ एक दूसरे को देनी शुरू की और अपने वस्त्र उतार कर फेंकने शुरू किए कि जिसकी मै कल्पना नही कर सकता था। इतना सब होने पर भी क्या मजाल जो दोनो के दो सेवक वहा से टल जाय या अपनी आँखें ऊपर उठाकर उनकी दशा को देखे या खाली पग को भरकर दुबारा न भरे। मैं नही जानता कि कब मुझे गहरी नीद आगई और ट्रेन ने दूरी का सफर तय किया। सवेरे जब मेरी आखे खुली तो मैंने देखा कि दोनो हिजहाइनेस नशे मे बुत कम्पाटमेंट के फश पर औंधे पडे खुराटे भर रहे है। उनके मुह उल्टी होने से सन गए थे और उनकी एक निर्लज्ज भिखारी के समान गन्दी दशा हो गई थी। मे ऊपर से नीचे उतर आया। मैंने एक दो खिडकिया खोल दी। ताजी हवा का आनन्द लिया। ट्रेन चली जा रही थी और मेरे सामने दो राज्यो के अधिपति फश पर पडे सो रहे थे। मैंने उनकी दशा पर एक हाय की। मेरा मन घृणा से भर गया। परन्तु डेरे पर पहुच कर और दो दिन वहा रस्मी तौर पर बिताकर मैंने वहा से बडी कठिनाइ से बिदा ली और घर आकर चैन की सास ली।

शिवगढ महाराज अपने राजकाजके अत्यन्त पेचीदे मामलो मे भी मुझसे सलाह लिया करते थे। अपने परिवार की एक अत्यन्त खतरनाक और गम्भीर बात मे जब उन्होने मेरी राय मागी तो मै आश्चर्य चकित रह गया। परन्तु मैंने अपनी राय देकर उनके राय का रूप ही बदल दिया और एक घोर पाप होते होते बच गया। उस काय की समाप्ति पर उन्होने मुझे नकद एक लाख रुपया देना चाहा—पर मैंने नही लिया। मैंने कहा—इस रुपए का जब मैं अधिकारी ही नही हूँ तो क्यो लू। इस रुपए से आप अपनी रियासतमे छोटे बच्चोका निशुल्क स्कूल खुलवा दीजिए। उन्होने ऐसा ही किया।

परन्तु उनके अन्तिम दिनो म मेरी उनसे भेट नही हुई। मैंने दो वर्ष से उनके

समाचार नही सुने थे, न उनका कोई पत्र ही आया था। एक दिन एकाएक युवराज का तार उनकी मृत्यु का मिला। मै तुरन्त ही लिम्बड़ी पहुँचा। वहा की अवस्था देखकर बहुत दुख हुआ। मेरी कहानी 'मुर्दा-दान' उन्ही स्मृतियो को लिखी गई है।

इसी गोल छप्पर मे लेटा हुआ एक दिन मै धूप का आनन्द ले रहा था। धूप छन-छनकर मेरे शरीर पर पड रही थी और जैसा कि मेरा अभ्यास है, दोपहर का भोजन करके मै अधनीद की झपकिया का आनन्द ले रहा था। उसी समय एक व्यक्ति ने वहा आकर मुझे प्रणाम किया। मेरी अधनीद की झपकी जाती रही। मै उठ बैठा। उन्हे कुरसी दी। वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि झासी के पास समथर रियासत से वे आ रहे है। वहाके महाराज की बहिन का अर्से से नेत्रदृष्टि खो चुकी है। उन्हे कुछ दीखता नही है। उनका वक्तव्य सुनकर मैने कहा—तब तो आप किसी आई स्पेशलिस्ट डाक्टर को वहा ले जाइए। मै तो आखो की चिकित्सा करता नही। आगन्तुक उसी रियासत के राजवैद्य थे। उनकी आयु साठ के आसपास थी। उन्होने कहा—आयुर्वेद के सब प्रयत्न मैने कर लिए। बम्बई के डाक्टरो ने भी नेत्र चिकित्सा कर ली, परन्तु लाभ नही हुआ। आपका नाम सुनकर महाराज ने आपको बुलाने के लिए ही मुझे भेजा है।

मै नेत्ररोग का चिकित्सक नही था, इसलिए जाना नही चाहता था, परन्तु चार दिन तक वैद्यराज गए नही। मुझे चलने को राजी करते ही रहे। आखिर मैने 'हा' भरी और मै अनमने मन से उनके साथ चल दिया। उन दिनो मेरी तीन चार पुस्तके मेरी मेज पर फैली हुई थी, जिन्हे मै अन्तिम रूप दे रहा था।

रियासत मे पहुँचकर मैने मरीजा को देखा। समथर के किले के अन्दर राजमहल था। वैसा जमीदोज किला मैने पहिले नही देखा था। अनेक चक्करदार सडके पार करके हमारी कार राजमहल के बीच प्रागण मे हम ले गई। महाराज अपनी बहिन के पलग के पास हाजिर थे। मेरे पहुँचते ही उन्होने मेरा स्वागत किया। कहने लगे—मै अपनी इन बहिन को अपनी माता के समान आदर करता हूँ। आप किसी भी तरह इनकी दृष्टि ला दीजिए।

एक बलिष्ठ हृष्टपुष्ट तीस पतीस वर्ष की मोटी ताजी लाल सुर्ख युवती रेशमी वस्त्र और हीरे मोती के आभूषणो से सुसज्जित अपने पलग पर बैठी हुई भाई की बाते सुनकर मुस्कुरा रही थी। पान भी चबा रही थी। मै उसका यह शारीरिक स्वास्थ्य देखकर चकित रह गया। बात करने मे वह बहुत ही चपल और विनोदप्रिय थी।

डाक्टर और वैद्यराज भी वहा उपस्थित थे। उन्होने अपने अपने निदान और चिकित्सा मुझे विस्तार के साथ बताई। सब सुनकर जो मैने प्रश्न किए उससे उनकी किसी बात का मेल नही खाया। वे अवाक मेरे मुह की ओर देखने लगे।

मैने प्रश्न किया—आपका विवाह कब हुआ ?

डाक्टर और वैद्यराज महाराज की ओर देखने लगे। महाराज ने कहा—विवाह छोटी आयु में ही हो गया था, परन्तु भाग्य विधान से दो वर्ष बाद ही पति का स्वर्गवास हो गया। उस समय इनकी आयु सोलह सत्रह वर्ष की रही होगी। इस समय इनकी आयु पतीस वर्ष की है।

मासिक धर्म कैसा है?

डाक्टर ने उसका उत्तर भी मुझे नहीं दिया। परन्तु उन्होंने कहा—कि नेत्र रोग से आपके इन प्रश्नों का क्या सम्बन्ध है? मैंने महाराज से कहा—मैं एकान्त में बहिन श्री से कुछ प्रश्न करूंगा। तत्काल परदे का प्रबन्ध कर दिया गया।

उनसे प्रश्न करके मुझे ज्ञात हुआ कि बहुत समय से उनका मासिक धर्म बन्द है। बच्चा कोई नहीं हुआ। पतिगृह को पति की मृत्यु के बाद ही छोड़ दिया था, तब से यहीं रहती हैं। बाहर आकर मैंने डाक्टरों को राय दी कि आपने रोगी के इस पहलू पर विचार नहीं किया कि वे बालविधवा हैं, फिर इधर वर्षों से मासिक भी बन्द है। जब तक उनका मासिक नहीं खुलेगा तब तक नेत्र दृष्टि नहीं लौट सकती।

डाक्टर मेरे इस निदान से चौकन्ने हुए। उन्होंने कहा—इस ओर तो हमने ध्यान ही नहीं दिया था। मैंने कहा—चिकित्सा आपकी ही रहेगी, मैं केवल सम्मति दूंगा। आप उन्हें आज ही गोलियां मासिक धर्म प्रवाह की दीजिए।

पर जो गोलियां मैंने बताई उन्हें देने को वे तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा—उन गोलियों का देने की जिम्मेदारी हम नहीं ले सकते।

महाराज को भी बुला लिया गया। रात की सलाह हुई। अन्त में महाराज ने कहा—शास्त्रीजी की राय के अनुसार किया जाय।

वे गोलियां रियासत में मिलती न थीं। निदान एक डाक्टर बम्बई उसी रात रवाना हुए और वहां से वे गोलियां लाए। गोलियां दी गईं। रजोधर्म का रक्त जारी होना शुरू हुआ। पहिले दिन काफी जोर से प्रवाह चला। पांच दिन में स्थिति सुधरी। पांचवें दिन बहिनजी ने सामने जाते हुए बालक को बुलाया। यह बड़ी चमत्कार था। बालक को भी विश्वास नहीं हुआ कि वे मुझे देखकर पुकार भी सकती हैं। उनकी आवाज सुनकर महल में सभी लोग उनके इर्द गिर्द एकत्र हो गए। वे सभी को पहचानने लगीं और बात करने लगीं। मैं जब उन्हें देखने उनके सामने पहुँचा तो उन्होंने मुझे देखकर प्रणाम किया और अपने सिर का आंचल ठीक किया। मैंने महाराज से हंसकर कहा—आपको मुबारिक हो, बहिनश्री की दृष्टि लौट आई है। सब व्यवस्था डाक्टरों को समझा कर मैं अपने डेरे पर लौट आया। मेरा विचार दिल्ली लौट जाने का था। रात्रि को वैद्यराज मेरे पास आए। उस समय वे अत्यन्त करुण भाव में थे। उनकी इस दशा का कोई कारण मेरी समझ में नहीं आया।

मने पूछा —क्या बात हे ?

वे हाथ जोडकर बोले–आप मेरे भगवान है। मेरे चार व याएँ है। सबमे बडी कन्या का विवाह अगले मास ही होना निश्चय हुआ है। यहाँ रियासत मे हमे कुछ ज्यादा तो मिलता नही है। फिर हमारी बिरादरी की रूढिया ऐसी हैं कि दहेज की भारी गठरी लडके को पकडानी होती है। मे गरीब ब्राह्मण किसी प्रकार अपने बडे परिवार का गुजारा चला रहा हूँ। आशा थी आप यहाँ चिकित्सा करेगे तो कुछ मेरा भी लाभ होगा। परन्तु आपने आयुर्वेद चिकित्सा तो कुछ की नही, बम्बई से गोलिया मगा दी और डाक्टरो से ही सब काम कराया।

मैने उसके करुण भाव का कारण समझा। मैने कहा — महाराज से कहो, कल म चला जाना चाहता हूँ और मेरी फीस जो वे दे उसे तुम अपने पास रख लेना।

वद्यराज चले गए। परन्तु अगले प्रातःकाल महाराज स्वय गेस्टहाउस म मेरी फीस लेकर आ पहुँचे। उनके साथ वद्यराज और दो तीन सेवक भी थे। महाराज के सकेत पर सेवको ने थाल मेरे सामने पेश किया।

मैने महाराज से कहा—बहिनश्री के लिए मने सब व्यवस्था डाक्टरो को समझा दी है। कोई चिन्ता की बात नही है। एक सुरमे का नुस्खा म वद्यराज को लिख कर दे जाऊँगा। उसे आप इनसे बनवा लीजिए। दिन म तीन चार बार उस सुरमे को वे लगाया करेगी।

उन्होने कहा—सुरमा आप ही दिल्ली से अपनी फार्मेसी द्वारा बनवा कर भेजने का कष्ट करे तो और भी अच्छा है।

मने कहा–नही, ये वद्यराज यही बना लेगे और स्वय अपने हाथ से खरल मे घोटेगे। ऐसी कोई बात नही है यहाँ भी बन सकता है।

महाराज ने कहा–तब एक दिन आप और रुकिए। नुस्खे की दवाइया मगवा कर आप पास कर जाइए और अपने सामने उन्हे खरल मे डलवा दीजिए।

नुस्खा मने लिख दिया। उसमे मोती, हीराभस्म, आदि अनेक बहुमूल्य चीजें लिख दी थी।

महाराज ने नुस्खा पढकर खजाँची को रुपया देने का हुक्म लिख दिया। मने वद्यराज को उसे देकर कहा–रुपया ले आइए तब नुस्खे की व्यवस्था की जाय।

वैद्यराज दो हजार रुपया खजाने से लेकर आ गए। मेने कहा—इसे जेब मे रखिए। अपने थाल मे से भी मैंने पाँचसौ रुपए उन्हे दिए। मैंने कहा—अब तो लडकी का ब्याह नही रुकेगा। वद्यराज ने मेरे पैर पकड लिए। मैने कहा—चलो मेरे साथ झासी, वहा से नुस्खा खरीद कर लाए। झासी जाकर मेने वहाँ कुछ नही खरीदा, दो तीन घण्टे इधर उधर घूम कर लौट आया। डेरे पर आकर मैने अपने बक्स मे से निकाल

कर उ हे सुरमे की एक शीशी दी। मैने कहा—यह मेरा बनाया हुआ मोतियो का सुरमा है। इसे ही तुम खरल मे डालकर तीन चार दिन घोटते रहना और फिर शीशी मे भर कर महलो मे भेज आना। वास्तव मे बहिनश्री को सुरमे की कोई जरूरत नही है। पर तु तुम्हारा प्रब ध करने के लिए मुझे यह असत्य व्यवहार करना पड़ा। वैद्यराज को म चार पाच तोले सुरमे की पूरी शीशी ही देकर चला आया।

१४ जनवरी १९४४ को एक अनहोनी घटना ने मेरे जीवन को बहुत जोर से झकझोर डाला। चन्द्रसेन के चार वष के पुत्र प्रकाश को मै प्रात ९ बजे अपने लान मे बठकर खिला रहा था। खिलाते खिलाते मै दो मिनट के लिए किसी काय से मकान के अ दर चला गया। दो मिनट बाद आकर देखता हूँ तो बालक गायब। उन दिनो मै दो कमरे बनवा रहा था। राज मजदूर काम कर रहे थे। मैने चारो तरफ सारे आदमी दौडा दिए। घर की स्त्रिया भी ढूढने म लग गइ, और मै फिर जिस अवनगी हालत मे था—वसी ही हालत म उसे ढढो चल दिया। चन्द्रसेन उस समय दिल्ली मे था। बडी फिक्र, परेशानी और दौडधूप की गई। जल की बूद भी शाम तक मुह मे नही गई। पुलिस ने १८ आदमी तैनात किए। मैने निश्चय किया कि यदि बालक न मिला तो अन्न जल त्याग कर इस जीवन को समाप्त कर दूगा। दिन भर ढिढोरा पिटवाया। चन्द्रसेन भी दिल्ली स आकर ढूढने मे लग गया। अन्त मे शाम को पाच बजे बालक एक भगी के घर म बरामद हुआ। नही कह सकता क्यो उसने छिपा रखा। बालकको स्नान कराकर गेहूसे तुलादान किया। उसका वस्त्र दान किया। पाच रुपए की मिठाई प्रसाद बाटा गया। अ त म रात को नौ बजे सबने भोजन किया। यह मेरे लिए एक दवी सकेत था कि दुनियादारी की जिम्मेदारी लादना मूखता है। मैने इरादा किया कि भविष्य म बच्चो का मोह त्याग दिया जाय। अवनगी हालत मे मे जीवन मे इसी दिन दिल्ली और शाहदरे के बाजारो मे बदहवास फिरा।

वशाली की नगरवधू इतिहास रस

१९४८ के आसपास मैने अपनी प्रतिनिधि रचना वैशाली की नगरवधू लिखकर समाप्त की थी। वैशाली की नगरवधू इतिहास रसका हिन्दी साहित्यमे प्रथम उप यास था। इस उपन्यास को लेकर मेने हिन्दी कथा साहित्य सोपान की पाचवी पढी का शिला याम किया।

यह प्रकट है कि ऐतिहासिक उप यास काव्य और कहानियो मे जो ऐतिहासिक तथ्य होते है, वे विशुद्ध ऐतिहासिक नही। उनमे बहुत कल्पना और विकृति मिली होती है। पाठको को यह आशा नही करनी चाहिए कि उपन्यास काव्य या कहानी को पढकर वे ऐतिहासिक ज्ञान अजन करगे। ऐसी पुस्तको मे तो उन्हे इतिहास के स्थान पर केवल 'इतिहास-रस' ही की प्राप्ति होगी। भारतीय साहित्य मे कभी रामायण महा

भारत इतिहास माने जाते थे, परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणाए उनको इतिहास कहानी को स्वीकार नही करती। उनकी दृष्टि मे वे केवल काव्य ही है। वास्तव मे ऐतिहासिक काव्यो, उपन्यासो और कहानियो का इतिहास की सीमा का उल्लघन करने के कारण इतिहास कुल से विच्छेद कर दिया गया है। यह केवल भारतीय साहित्य ही की बात नही है, पाश्चात्य साहित्य मे भी ऐसा ही हुआ है। इतिहास के 'विशेष सत्य' और साहित्य के भी 'चिर सत्य' के सिद्धातो पर यहा हम थोडा विचार करेगे। 'चिर सत्य' ऐसे साहित्य का प्राण है। चिरन्तन मानव समाज मे चरित्र और परिस्थिति की जो विकृति होती है वही चिर सत्य है। ऐसे कथानको मे साहित्यकार उसी चिर सत्य को चित्रित करता है। इतिहास की विशिष्ट घटनाओ का उसे पूरा ज्ञान नही होता। होने पर भी वह जान बूझ कर उनकी उपेक्षा कर सकता है, क्योकि उसका काम तत्कालिक घटनाओ की सूची देना नही, तत्कालिक समाज प्रवाह का वेग दिखाना होता है।

यह कहा जा सकता है कि उसे ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक लिखने से पहिले ऐतिहासिक विशेष सत्यो को जानना चाहिए। परन्तु यदि वह ऐसा करे तो वह कदापि कोई रचना जीवन मे नही कर सकता, क्योकि ऐतिहासिक सत्यो का ज्ञान कभी भी पूरा नही हो सकता, उनमे गवेषणा करने वाले विद्वानो के द्वारा नई नई जानकारी होते रहने से निरन्तर परिवर्तन होते रहते है। फिर क्यो न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास को चिर सत्य के आधार पर, जिसमे गवेषणा की कोई गुंजायश नही, रचना करे और ऐसी रचनाए जो साहित्य ससलिष्ट है और जिनका आरम्भ एक अनिर्दिष्ट रस है—अपने स्थान पर पूजित हो। साहित्य के आचार्यो ने नो मूल रसो को साहित्य सृजन मे महत्त्व दिया है, परन्तु उनके सिवा कुछ अन्य 'अनिर्दिष्ट रस' है, जिन मे एक 'इतिहास रस' भी है।

जगत मे जीवन पाकर मनुष्य अनेक सुख दुखो की घाटियो को पार करता है। उसे अनेक बार रोना और अनेक बार हसना पडता है। उसका अपना जो छोटा सा सुख और दुख है वह उसे बहुत बडे रूप मे दीख पडता है, क्योकि वह उसी मे अभिभूत हो जाता है। उस सुख दुख की समता मे वह ससार की बडी घटनाओ को छाया-मात्र मानता है। एक नगण्य व्यक्ति भी जब राम, सीता, दमयन्ती, नल उपाख्यान मे उनकी महती सम्पत् विपत् की कहानी पढता है तो वह उनकी समता अपने छोटे से-छोटे सुख दुख से कर डालता है। उसे अपना सुख दुख भार और बना प्रतीत होता है। इसलिए उपन्यास या कहानी अथवा काव्य मे जब वह विशिष्ट व्यक्तियो के जीवन और उत्थान पतन का ठीक-ठीक वर्णन पढता है तो उसके हृदय मे रसावेश का प्रवाह हो जाता है, जो उसके अतिनिकट आकर उसे आक्रान्त करता है।

उपन्यासो और कहानियोमे जिन पात्रो के सुख दुख,सम्पत्ति विपत्ति और जीवन

के साहसपूर्ण परिणामोकी झांकी दिखाई जाती है वह प्राय ऐसी होती है जिसमे जीवन का क्षोभ बन्धु परिजन और कुछ घनिष्ट व्यक्तियो मे ही समाप्त हो जाता है। इसी से पाठक उसे अपनी ही पारिवारिक सम्पत्ति विपत्ति समझ कर हर्ष विषाद मे डूब जाता है। परन्तु ससार मे कुछ ऐसे पुरुष भी जन्मते है जिनके सुख दुख विश्व की महत् घटनाओ के साथ सम्बन्धित होते है रक्त की नदिया बहती है, प्रलय की मेघ गर्जना के समान महाकाल की नियति परम्परा मे उनका राग विराग अंकित होता है और कवि की भाव कल्पना के सहारे जब उनकी कहानी मनुष्यो के लिए ज्ञेय बन जाती है तो उसे देख सुनकर मानव लोक भाव विमोहित हुए बिना नही रह सकता। ऐसे जातियो के इतिहास के निर्माता साहित्यकार यदि हमारे नेत्रो के सामने जीवित होते है तो अपने अल्प जीवन मे उनका विराट रूप हम नही देख सकते है। इसी से उन्हे उनकी यथार्थ प्रतिष्ठा भूमि पर स्थापित भी नही कर सकते। उन्हे महाकाल की नियति के एक अंग मे देखने के लिए हम उनसे दूर खडा रहना पडता है, इसी से अतीत मे उनकी स्थापना होती है और उन्हे अकेले नही, वे जिस वृहत् नाटक अभिनय के एक पात्र थे उसके साथ देखते है। तब मालूम होता है कि विश्व पथ पर मानव कुल के ये महारथी किस अलौकिक कौशल और सामर्थ्य से काल के पहिए को घुमाते चले जा रहे है। उस समय कोटि कोटि जनपद आवेशित होकर जीवन की क्षुद्र परिधि से क्षण भर के लिए मुक्त हो जाता है और उनमे वह अपने परिमित सुख दुःख का मुकाबला नही कर सकता। तब वह तथा कथित अनिर्दिष्ट रस 'इतिहास रस' के स्वाद की एक बूद का आनन्द प्राप्त करता है।

इस अनिर्दिष्ट 'इतिहास रस' के उदय का एक और कारण भी है। इसमे रस का एक स्रोत मिश्रित है। वह साधारण भी है और असाधारण भी। वह है नारी प्रणय। जहा इतिहास रस का प्रादुर्भाव होता है वहाँ प्राय यही देखने को मिलताहै कि हृदय विप्लव के बाद राष्ट्र विप्लव हुआ। इतिहास के अनेक असाधारण नरवरो ने नारी की मायाके वशीभूत होकर जीवन भंग किया है। मानव कुलके जीवनके ऐसे करुण भग्नावशेषो से ससार पथ भरा पडा है। लेखक जब जीवन भग की इन घटनाओपर विप्रलम्भ शृङ्गार और 'इतिहास रस'का मिश्रण करके भैरव सहार की भेरी बजाता है तो कोटि कोटि जनपद उन्मत्त, उद्भ्रान्त होकर लोटपोट हो जाता है। अब कोई इसे प्रमाणो के प्रबल धक्के देकर हजार ऐतिहासिक भूले निकालता फिरे, उसे भ्रान्त और विकृत कहता फिरे, पर कवि ने जिस 'इतिहास रस' की सृष्टि की है वह इतिहास के लाख सत्य प्रकट होने पर भी फीका न होगा।

'वैशाली की नगरवधू' की कथा-वस्तु का आधार बौद्ध ग्रन्थो मे उल्लिखित वैशाली की गणिका अम्बपाली थी। बहुत दिन हुए सम्भवत सन् १९२६ मे मेरी दृष्टि

इस गणिका से सम्बन्धित एक बौद्ध उपाख्यान पर पढ़ी, जिसमें इस बात का उल्लेख था कि गणिका अम्बपाली ने वैशाली में आने पर बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया था और उस पर वैशाली के राजपुरुषों ने ईर्ष्या की थी। यह भी मैंने सुना कि वैशाली गणतन्त्र में एक ऐसा कानून था जिसके आधार पर राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को अविवाहित रखकर उसे वेश्या बना दिया जाता था। इसी पर से मैंने अपनी कल्पना के सहारे 'अम्बपाली' कहानी उन्हीं दिनों में लिखी थी जो 'चाँद' में छपी थी। इसके बाद अम्बपाली पर कई कहानी उपन्यास और लेख मेरे देखने में आए और मेरे मस्तिष्क में अम्बपाली को लेकर एक उपन्यास लिखने की भावना जड़ कर बैठी। परन्तु यह काम सहज न था। फिर भी मैं इसकी वास्तविक कठिनाइयों से ठीक ठीक अनभिज्ञ न था। मैं उत्सुक और दत्तचित होकर बहुत दिन तक सोचता रहा। समझ में आ ही न रहा था—कहाँ से प्रारम्भ करूँ, कैसे करूँ। सन् ३८ के शरद् में मुझे एक श्रीमन्त की चिकित्सार्थ बिहार जाना पड़ा। वे मुझे हठ करके राजगृह ले गए। वहाँ यों तो हरी भरी पहाड़ियों को छोड़कर कुछ भी न था। मैं कई दिन उन पहाड़ियों में भटकता और घण्टों गर्म जल के स्रोतों में सुखद स्नान करता रहा। परन्तु पता नहीं कौन सी दैवी प्रेरणा थी कि वहाँ पर रहते हुए मैं जाग्रत स्वप्न देखने लगा। मैं सब से आँख बचा किसी शिलाखण्ड की आड़ में बैठ जाता और सोचता रहता। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मैं कोई ग्रन्थ पढ़ रहा हूँ। अध्याय के अध्याय मेरी आँखों के सामने से गुजरने लगे। पत्तों की बातचीत प्रत्यक्ष कानों में सुनाई देने लगी। मुझे भय हुआ कि कहीं कोई जहरीली वस्तु खा लेने से मस्तिष्क में विकार तो नहीं हो गया है? दैवयोग से मैं जिस रोगी की चिकित्सार्थ गया था, वह रोगी भी उन्माद-रोग ग्रसित था। वह एकान्त में बैठा बैठा बहुधा होंठ और आँख हिलाता, हँसता मुस्कराता और कभी कभी चिल्ला चिल्ला कर असम्बद्ध प्रलाप किया करता था।

मैं यह देखकर परेशान होने लगा कि मेरी भी ठीक उसी के जैसी दशा होने लगी थी। केवल चीखता चिल्लाता न था। अन्त में यह सोच कर कि मैं कदाचित् स्वस्थ नहीं हूँ, मैंने जल्द से जल्द घर लौटने का निश्चय किया। घर आकर भी मेरी यही दशा रही। उन घाटियों में बसे हुए समृद्ध नगर, उनकी सेना, सम्पत्ति, वैभव, संस्कृति, संघर्ष दिन दिन सजीव होते गए। इसके साथ ही अम्बपाली की एक स्थिर मूर्ति का चित्र भी मेरे मस्तिष्क में अंकित होता गया। 'बसाढ़' को मैं पहले ही देख आया था। उससे बहुत दिन पूर्व एलौरा और अजन्ता की गुफाएँ देखी थीं। अब उनके स्त्री चित्रों को मैं घण्टों देखकर अम्बपाली की उनमें अभिव्यक्ति करने लगा। धीरे धीरे अम्बपाली की एक लोकोत्तर मूर्ति मेरे मानस पर अंकित हो गई। तथाकथित उस प्राचीन कानून ने मुझे अम्बपाली का हिमायती बना दिया। मैंने साहित्य और शृङ्गार के रस में उस मूर्ति को

डुबकियां दे देकर उसे अपने साथ इस प्रकार अंगीभूत कर लिया कि एक दिन जब मैं शीतल स्निग्ध चांदनी में सोया हुआ था तब मैंने आकाश में वह उज्ज्वल सजीव मूर्ति स्पष्ट देखी। उसके होंठ हिलते हुए,आंचल हवा में फरफराता हुआ, नेत्र आवाहन करते हुए स्पष्ट मैंने देखे। मेरे शरीर के सम्पूर्ण जीवकोष कल्पना के वशीभूत हो गए और मैंने कहा—नाचो अम्बपाली। और अम्बपाली ने नाचा। मैंने इन्हीं आंखों से उसे स्वच्छ नील गगन में चन्द्रमा के उज्ज्वल आलोक में नाचते देखा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं भी आकाश में ही उसके निकट पहुँच गया हूँ। मैं उसके श्वास से निकलते हुए सौरभ और नृत्य में मस्कृत पजनियों की ध्वनि प्रत्यक्ष अनुभव करता रहा। एकाएक मुझे प्रतीत हुआ कि वह मूर्ति गायब हो गई और मैं वेग से नीचे आ गिरा। सम्भवत मेरे मुंह से चीख या शब्द निकला था और पत्नी ने उठकर मुझे सावधान किया था। मेरा सम्पूर्ण शरीर पसीने से तर था और मैं समझ ही नहीं पा रहा था कि मेरी क्या हालत है। परन्तु यह मैं दृढतापूर्वक कहता हूँ कि मैंने स्वप्न नहीं देखा था। मैंने जो कुछ देखा जागते हुए। सत्य, सब सत्य। उस समय रात्रि के दो बजे थे। यही समय मेरे साहित्य लेखन का है। मैंने तुरन्त उठकर उस नृत्य का वर्णन लिखा, जिसका संशोधित रूप 'वैशाली की नगरवधू' में कलमबन्द है।

बस, यहीं से इस उपन्यास का लिखना प्रारम्भ हुआ। पर बड़ी ही धीमी गति से। थोड़े ही दिन में मेरा वह उन्माद समाप्त हो गया और फिर एक दो वर्ष तो मैंने इन कागजों को देखा ही नहीं। इसी बीच एक बार अहमदाबाद जाना हुआ। वहाँ गुजराती भाषा के मार्मिक कथा लेखक श्री धूमकेतु से मिलने गया। उन्होंने अपनी कहानियों का एक छोटा सा संग्रह दिया। उसमें एक कहानी अम्बपाली से सम्बन्धित भी थी। उसे पढ़ते ही पुराना उन्माद रोग फिर उभर आया और इस बार घर लौटकर मैं इस उपन्यास में जुट गया। बहुत अध्ययन किया, बहुत मनन किया। उस दिन आकाश में नृत्य करती हुई अम्बपाली के जो नेत्र देखे थे, वे जैसे मुझे आंखों से ओझल ही नहीं होने देते थे। मैं दिन में तो लिखने पढ़ने का क्षणभर भी अवकाश नहीं पाता हूं,रात को दो बजे से लिखता हूँ। सो मैं स्पष्ट देखता था कि जब मैं एकान्त निशा में लिखना प्रारम्भ करता तो वे दोनों उज्ज्वल अनिन्द्य नेत्र मेरे कन्धों के पीछे से झाँक झाँक कर प्रत्येक अक्षर को पढ़ लेते थे। इससे मैं इस उपन्यास को लिखते हुए कभी थका नहीं, कभी ऊबा नहीं।

१९४२ के जून में उपन्यास तैयार हो गया। अगस्त में जन अशान्ति हुई। उसी समय दो धूर्त मित्रों ने मेरा सान्निध्य प्राप्त करके मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई। उस अशान्ति में वे मुझे अपने संरक्षण में ले गये और भाग्यदोष से मुझे उनका उपकृत होना पड़ा। इसी समय मेरे इन हितैषी मित्रों ने इस उपन्यास की पूर्णाहुति के उपलक्ष में एक भव्य

समारोह का आयोजन कर डाला। आर ... उपन्यास का संक्षिप्त सार और कुछ अंश मेरी पाण्डुलिपि से पढ़े गए। ... आलोचना प्रत्यालोचना हुई। मिठाइयाँ बाँटी गईं। मुझे भी मिली।

तभी से प्रकाशकों, सिनेमावालों और अनुवादकों के पत्रों, मुलाकातों और सौदों का ऐसा ताँता लगा कि दूसरा काम करना ही कठिन हो गया। परन्तु अभी मैं पाण्डुलिपि में कुछ परिवर्तन किया चाह रहा था। इसी समय पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में कुछ भय के कारण उत्पन्न हो गए और मैंने उन लोगों को टरकाना तथा इसके सम्बन्ध में बातें करना बिल्कुल बन्द कर दिया। परन्तु एक दिन अवसर पाकर लोगों ने ... कर यारों ने पाण्डुलिपि चुरा ली।

बहुत पर फड़फड़ाए, पर सब व्यर्थ। विवश जैसे श्मशान में प्रियजन का विसर्जन करके कोई लौट आता है, उसी भाँति इन भद्र मित्रों को नमस्कार कर उनके संरक्षण का आभार मानकर मैं भी लौट आया और दो वर्ष मैंने हस्ताक्षर करने के लिए भी लेखनी नहीं छुई। सब काम बन्द कर दिए। लोगों से मुलाकात भी बन्द कर दी। इन दो वर्षों में मैंने यह अनुभव किया कि मेरे रक्त की प्रत्येक बूँद आँसू बन गई है, परन्तु वह रक्त में मिलकर शरीर के भीतर ही चक्कर काट रही है, बाहर नहीं निकल पाती। लोगों ने समझा मेरी साहित्यिक मृत्यु हो गई, परन्तु काल की बलिहारी, काल पाकर विदग्ध हृदय की जलन कम हुई, घाव पुरे, भावना अंकुरित हुई। मेरी पत्नी ने मेरे इस दुःख को बड़ी बुद्धिमानीपूर्वक दूर किया। वे बराबर मुझे उत्साहित करती रहीं। कई बार जबरदस्ती कलम उन्होंने मेरे हाथ में पकड़ाई थी।

मैंने दुःसाहस करके दुबारा नए सिरे से यह उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में मुझे यह असाध्य प्रतीत हुआ। परन्तु वही शुक्र नक्षत्र के समान उज्ज्वल आँखें मेरे साथ थीं। उस दिन जैसे मैंने कहा था – नाचो, उसी भाँति वह आग कह रही थी – लिखो। मैंने एकबार कहा था, पर वे बार-बार कहती थीं। फिर लिखता कैसे नहीं? अन्ततः मेरी जड़ता दूर हुई। मैंने नए उत्साह से पुरानी त्रुटियों को यथाशक्ति दूर करते हुए उपन्यास का पुनर्लेखन प्रारम्भ किया। इस बार दो नई बातें सामने आईं—एक तो राहुल सांकृत्यायन का 'सिंह सेनापति' उपन्यास, दूसरा उनकी कहानी पुस्तक 'वोल्गा से गंगा'। इन दोनों पुस्तकों को पढ़कर मैं दंग रह गया। लेखक की भावसामर्थ्य का क्या बखान करूँ? दोनों ही पुस्तकों में कहानी कला तथा उपन्यास के साधारण गुण भी नहीं थे, फिर भी ये दोनों पुस्तकें विशेषकर 'वोल्गा से गंगा' विश्व साहित्य में शीर्षस्थानीय होने योग्य थीं। विचारकों की विचारधारा को प्रबल धक्का मार कर उनके विचारों के प्रवाह को पलट देने की सामर्थ्य तो मैंने उसी लेखनी के अनी में देखी। इन पुस्तकों को पढ़ने के बाद मैंने जैन और बौद्ध साहित्य का गहन अध्ययन

[illegible] रहा हूँ।

[illegible]

[illegible] (पूर्णिमा) का आस्वादन [illegible]

[illegible] संस्करण की सर्व पुस्तक

प्रति [illegible] है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ~~[illegible]~~ [illegible]

~~[illegible]~~ [illegible] अभिलाषा

को प्रकट करता हूँ और [illegible]

[illegible] करता हूँ कि [illegible]

[illegible] जीवन काल में [illegible]

[illegible] इति

हस्ता०

[illegible]

[illegible]

[illegible]

संवत् 2005



प्रारम्भ किया। उप यास नेरवन ीमा हो गया। पर तु मैने उसकी जल्दी नही की। मने यह ठानली कि म इस उप यास म जहा एक तरफ मसीह से पूव पाचवी छठी शताब्दी की सम्पूण धमनीति, राजनीति और समाजनीति का रेखा चित्र खीचू, वहा अपने अ ययन और विचारो को भी प्रकट करता जाऊँ। अपनी बात को अधिक बल से कहने के लिए मुझे जन बौद्ध हि दू साहित्य तथा सस्कृत साहित्य के साथ वदिक साहित्य दशन, विज्ञान और मनोविज्ञान का भी अध्ययन करना पडा। अनक अँग्रेजी और दूसरी भाषाओ के ग्रन्थ और पुस्तक भी पढनी पढी। यह उप यास लिखकर म समाप्त ही कर रहा था कि मेरा भाग्य एक और ही विधान लेकर मेरे सामने आ खडा हुआ।

ज्ञान की बिदा

आधुनिक कूटनीतिक राजनीति की भाति पचीली और मोहक नई दिल्ली की भव्य छटा देखने जाने वाले मनचले यात्रियो का यान वहा के इरविन अस्पताल की दूर तक विस्तार म फली हुई भव्य लाल इमारत अनायास ही अपनी ओर खीच लेती है। वह आज के मानव के प्राणो की साररूप पजी, और ब्रिटेन के महास्त्र अथवाद का महाप्रसाद है। वहा, यद्यपि सायप्रात असहाय दरिद्र भारत के स्वनामधन्य निरीह प्राणियो का प्रतिनिधि प्रदशन अवश्य होता है, पर वह उदग्रीव इमारत, अपनी सजधज, ठाठ और शान मूतक दरिद्र भारत से तनिक भी सम्बधित नही, उसकी एक एक इट असहाय रोगियो की वेदनापूण कराहना पर उपेक्षा की मुस्कराहट बखेरती हुई, उनके शरीर से विच्छेद होते हुए प्राणो के चिर पयाण की सदव्यवस्था सम्पूण कोशल से करती ही रहती है।

विश्व की महाजातिया आज लोहू मे स्नान कर लोहा खाकर अमर हो रही है। वसी ही सद्व्यवस्था हमारे शत्रुओ ने हम गुलामो के लिए भी करने मे कोई कोर कसर नही रखी था, पर तु महामहिम चर्चिल की महामत्ता ने वह काय नही होने दिया। उसने हमारे उपयुक्त मृत्यु, भूख और महामारी ही के रूप म हमारे घर भेज दी, और हमने प्रमाणित कर दिया कि यदि योरोप का आधुनिकतम शस्त्र शिल्प जितने प्राणो का हरण कर सकता है, उससे कई गुना अधिक प्राण हम भूखे और रोगी रहकर विसजन कर सकते है।

अब सुनिए आप। मलेरिया की कुछ कपकपी पत्नी के हिस्से मे पडी। दो चार बार ज्वर चढा और उतर गया। औरो को भी घर म उसका प्रसाद मिला। क्विनन नही मिली, सो नही ही जा सकी। जापान की भाति हमने मलेरिया को भी एक अति तुच्छ शत्रु समझा। परन्तु एक और सकट हमने मोल ले लिया। किराए के लालच म एक आधुनिक कम बिजनस पार्टी को मकान का एक हिस्सा दे दिया। एक मास का किराया पेशगी देकर उ होने अगूठा दिखा दिया, आगन मे जबदस्ती चिमनी खडी कर

दी, और सप्लाई विभाग की छत्रछाया मे कोई कमीकन बनाना प्रारम्भ कर दिया। गत दिन धुए की जरीनी गस और कमिकल की बदबू से मारे सारे परिवार के प्राण छटपटाने लगे। उन्हे कहा, पुलिस को खबर दी, म्यूनिसिपल कमेटी को लिखा स्वास्थ्य विभाग को लिखा, हल्का मजिस्ट्रेट को लिखा—पर सब व्यर्थ। सप्लाई डिपार्टमेंट की छत्रछाया मे वह घातक विष पानकर सारा परिवार श्वास और अनिद्रा एव रक्ताल्पता का शिकार हो गया। पत्नी और भाई की स्त्री की हालत ज्यादा खराब हो गई। लाचार सारे परिवार को बनारस भेज दिया गया। वहा हालत कुछ ठीक हुई। फिर घर आए, मगर यहा वही विष पान।

पत्नी पर दो तीन दिन मलेरिया का फिर आक्रमण हुआ, मलेरिया चला गया। दिल की धडकन, नाडी की थराहट और हल्का ज्वर कायम रह गया। वमन भी कायम रहा, कोई वस्तु नही पचन लगी। तब चिन्ता बढी। यदि मे स्वय चिकित्सक न होता तो कदाचित इन बारीकियो पर ध्यान न जाता। परन्तु हल्का ज्वर, नाडी और हृदय की गति का वैषम्य और वमन एव रक्ताल्पता इन सब लक्षणो से शका बढ गई। स्थानीय डाक्टर से परामर्श लिया, और उन्होने विशेष चिन्ता न करने का आश्वासन दिया। परन्तु मेने रोगी को तत्काल ही सम्भव उत्तम चिकित्सा सहायता की आवश्यकता अनुभव की।

उस समय इरविन अस्पताल के इन्चार्ज और सिविलसर्जन एक ख्यातिनामा फिजीशियन थे, अस्पताल मे रखकर उन्ही की चिकित्सा मे रोगिणी को रखना ठीक समझा गया। खास कर इसलिए कि रोगिणी के शरीर मे रक्त सहायता पहुँचाने की आवश्यकता का मे अनुभव करने लगा था।

२६ नवम्बर १६४८ को प्रात काल रोगिणी को लेकर हम लोग ६ बजे इरविन अस्पताल चले। वहा पहुँचकर पता चला कि बडे डाक्टर छुट्टी पर है। निराश होकर हम लेडी हार्डिग अस्पताल पहुचे। बडी कठिनाई से अनेक बार तकाजा करने पर नर्स मेरी पत्नी को अन्दर 'एक्जामीनेशन रूम' मे ले गई। वहा चार घण्ट तक लगे रखा। साधारण देखभालकर केस को लौटा दिया कि केस को एडमिशन करने के लिए कोई कमरा खाली नही हे। हार झकमार कर हम शामको पाँच बजे फिर इरविन अस्पताल लौट, ज्ञात हुआ कि बडे डाक्टर बाहरसे आगए हे और अपने बगले पर है। इस प्रकार दिन भर भारी दिक्कते उठाने के बाद शाम को साढे छ बजे उनके बगले पर पहुँचे। उस समय वे सपरिवार शायद सिनेमा जारहे थे, पहिले तो देखने से इन्कार कर दिया, फिर बहुत मिन्नत खुशामद के बाद राजी हुए। रोगी को देखा। मै समझता हूँ, दो या तीन मिनट से अधिक नही। इधर उधर छुआ। जरा स्टेथसकोप लगाया, एक दो सवाल किए और फिर कहा—फीस दीजिए ?

कितना ?

बीस रुपया।

फीस मेज पर सामने रख दी गई, डाक्टर ने धीरसे धन्यवाद दिया और नुसखा लिखने बठे। कहा—दाखिल कर दीजिए अस्पताल के स्पेशल वार्ड मे।

हम तो गए इसी लिए थे। उनसे आज्ञा पत्र ले अस्पताल जब आए तो रात्रि के आठ बज चुके थे। डाक्टर ने रोगी को ठीक ठीक नही देखा था, इससे हमने यह समझा कि अब अस्पताल मे भरती तो कर ही रहे है, सुबह वे आकर देखभाल कर ही लेगे। कुछ ढारस बधा।

भरती करने वाले अफसर साहब ने नाक भौ चढा कर कहा—अब इस वक्त कुछ नही हो सकता, कल आइए। मेरा धैर्य जाता रहा। रोगी असहायावस्था मे बाहर गाडी मे आठ घण्टे से पडा है और महाशय धौंस दिखा रहे है। मैने कहा—कितना रुपया फीस देने से आप मेरे साथ भलमसी से पेश आ सकते है ?

अफसर साहब ने घूरकर मेरी ओर देखा, फिर कहा—जाइए, उधर बठिए हम आते है। अपमान का घूंट पीकर हम उनकी बताई जगह पर जा बठे, और आधे घण्टे बाद उन्होने एक क्लर्क के साथ आकर कहा—पैंतीस रुपए इनसे लेलो और अमुक कमरा दे दो। क्लर्क बेचारा अधिक सभ्य था, उसने झटपट सब सम्भव व्यवस्था कर दी। अन्तत रोगी को शैया पर लिटाकर हमे तसल्ली हुई।

रात बीती, सुबह दौडधूप शुरू हुई। रक्त परीक्षा, थूक परीक्षा, मूत्र परीक्षा, वमनद्रव्य परीक्षा, मल परीक्षा, और इन सबकी फीस। विवाह के जैसा खर्च और धूम मच गई मगर रोगिणी की चिकित्सा की कोई व्यवस्था न थी, न डाक्टर का पता था। पूरा दिन डाक्टर की प्रतीक्षा मे बीत गया। पत्नी को दस्तो मे खून भी आया और उल्टिया भी आती रही।

तीसरे पहर एक युवक जैन डाक्टर कमरे मे आए। मालूम हुआ मुझसे परिचित है, प्रेम और सहानुभूति से रोगी को देखा और कुछ इन्जेक्शन बाजार से लाने का आदेश दिया। रोग के सम्बन्ध मे मैने अपने कुछ विचार बताए, विशिष्ट लक्षणो की तरफ ध्यान दिलाया, पर उन्होने उधर ध्यान नही दिया। यह दवा ले आइए—कहकर चले गए। शाम को बडे डाक्टर भी आए। साधारण देखा और चले गए। २ दिसम्बर को साम मे कष्ट बढ गया। मै, माता और छोटी बहिन पत्नीके समीप थे। उनका कष्ट मुझसे देखा नही जाता था। वे कभी मेरी ओर, कभी माता की ओर दृष्टि अटका देती थी।

३ दिसम्बर को एक अग्रजी फौजी डाक्टर इरविन अस्पताल मे आए। उन्होने भी मेरी पत्नी को देखा। इस समय तक उनके हाथ परो मे सूजन आ गई थी—पैरो

पर काबू नहीं रहा था। और भी तीन चार दिन मृत्यु के साथ संघर्ष करते बीत गए। मृत्यु क्षण क्षण उनके निकट आ रही थी। अन्त में वह घड़ी आ पहुँची और ८ दिसम्बर को संध्या समय साढ़े सात बजे उन्होंने देहत्याग का प्रयाण किया। हमारी आंखें आंसुओं की झड़ी बरसा रही थीं कि तभी हमें यह कठोर यात्रा करने के लिए कहा गया। रात हो गई थी और उन दिनों यातायात के इतने सुलभ साधन नहीं थे जो मैं पत्नी के मृत शरीर को शीघ्र अपने घर ला सकता। बड़ी कठिनाई से एक तांगा वाला शव को यमुना तट तक पहुंचाने को तैयार हुआ। तांगे में हमने अपने बिस्तर भी रखे और शव को गोद में लिटाकर हम यमुना तट पर श्मशान घाट पर पहुंचे। केवल माता और पत्नी की छोटी बहिन ही साथ थी। रात्रि को ग्यारह बजे हम श्मशान में पहुंचे। उन दिनों निगमबोध घाट पर एक टीन छपरिया आदमियों के विश्राम के लिए बनी हुई थी। हम वहीं शव को रखकर रात भर बैठे रहे। वह रात्रि भी कैसी भयानक और काल रात्रि थी। कोई किसी को नहीं पूछ रहा था, पर सब एक दूसरे को शांत करने के लिए व्यग्र थे। अन्त में प्रभात हुआ, धूप चढ़ी। मैं माता को वहीं बैठा रहने के लिए कह सामान लेने और मित्र सम्बन्धियों को बुलाने के लिए चल दिया। दो चार कदम चलकर ही मैं लड़खड़ाने लगा। अपनी स्थिति मैं समझ गया। मुझे कितना साहस इस समय संचय करना चाहिए, यह भी मैंने समझ लिया। मैंने अपनी जीवनशक्ति एकत्रित करके आगे बढ़कर एक तांगे वाले को पुकारा और उसमें बैठकर शहर चला। दो तीन घंटे बाद मैं कुछ मित्रों को और अंतिम संस्कार का सामान लेकर लौटा। मैं नहीं कह सकता कि मैंने किस भांति वे कार्य निबटाए थे। मेरे हाथ पैर चल रहे थे, पर हृदय शून्य था। एक बजा था और सूर्य हमारे सिर पर अग्नि बरसा रहा था। पर मेरी दृष्टि तो चिता की ज्वाला की लपलपाती गरमी की ओर थी। ऐसी भयानक ज्वाला भी उस समय मुझे कष्टप्रद नहीं लग रही थी। मैं चाह रहा था कि ये लाल लाल ऊंची ऊंची लपटें मुझे भी अपने में समाकर भस्मीभूत कर डालें।

२९ नवम्बर को प्रातःकाल अपनी जिस प्रिय पत्नी को मैं घर से तांगे में बैठा कर आरोग्य लाभ कराने की कामना से इर्विन अस्पताल लाया था, उसे इस प्रकार ८ दिसम्बर को अग्निदेव को सौंप दसवें दिन गिरता पड़ता पत्नीहीन होकर अपने घर आकर पड़ गया। आंसू रुकते न थे किसको कौन कहां धैर्य बंधाता। तीसरे दिन १० दिसम्बर को मैं उनकी चिता पर फूल चुनने गया। फूल चुने, एक थैली में एकत्र किए। भस्म राशि को पोटली में एकत्र कर वहीं यमुना में प्रवाह कर दिया। फूलों को लेकर गढ़गङ्गा गया और ज्ञान को गङ्गा की पवित्र गोद में सौंप आया।

अद्भुत और अकल्पित

इस समय मेरी आयु ५३ वर्ष की थी। मुझ बदनसीब भाग्यहीन साहित्यकार

की कमी मिटी प्रतीत ही गई, उसे मे आप लोगो पर ही छोड़ता हूँ। भाग्य के खेल अद्भुत और अकल्पित है। ईश्वर की सत्ता पर से मेरा मन डिग गया। मने ईश्वर प्रार्थना करनी छोड़ दी। म नास्तिक नहीं तक बृहस्पति के मत का कायल हो गया। म आत्मा को नश्वर मानने लगा। आत्मा पैदा होनेसे मरने तक ही रहता है, उसके पश्चात कुछ नही। मेरी जीवन शक्तियां भाग्य ने एक एक करके छीन ली थी। आत्मघात मैं कर नहीं सकता था। मागने से मृत्यु मिली नहीं। मे अपने कमरे म चुपचाप पड़ा रहता। स्मरण नहीं कुछ खाता भी था या नहीं। मेरी पत्नी कीमाता और छोटी बहिन मेरे पास उन दिनो न रहती होती तो सम्भवतः भूख प्यास ही मेरा अ त उन दिनो कर देती। खाना पीना प्रायः मेने त्याग ही दिया था। कमरे म बैठा मे द्वार की ओर प्रतीक्षा से देखता रहता था कि पत्नी अब आकर मेरे समीप बैठगी। पर वे थी कहा। माता मुझे जिद करके चाय पिलाती, कुछ खिलाती। पर अधिक उनसे भी बोला नहीं जाता था। उनके अपार दुःख को म समझता था, इसलिए उनके आने पर म अपना सब विरोध और निश्चय छोड प्याला पकड लेता, चाय पी लेता, खाना भी जुठार देता। पूरे पाच महीने म अपने कमरे से बाहर नहीं निकला। मित्र सम्बन्धी आते बाते करते, मुझे समझाते, म किसी को कोई उत्तर नहीं देता, चुपचाप बैठा सुनता रहता। मानो म आदमी नहीं पत्थर का बुत था।

अन्तम मेरे कानो मे यह आवाज पहुँची कि मेरे चौथे व्याह की चर्चा हो रही है। मने छोटे भाई खेमसेन को बुलाकर पूछा—यह क्या बात है ?

मेरे प्रश्न पर वह रो उठा। बहुत देर बाद उसने कहा—भाभीजी की माता की यह आज्ञा है, आखिर आपका जीवन तो आप को भी तो देखना होगा। वे आपको अपना पुत्र भी समझती है। उन्होंने तो कई बार मुझसे कहा, पर मेरा साहस आपके सामने आने का नहीं हुआ। आपका जीवन कितना मूल्यवान है इसे तो बचाना ही होगा।

खेमसेन की बात म अधिक न सुन सका। हृदय पर चोटे पड रही थी। मैने कहा- नहीं नहीं, नहीं।

पर घर म बात बहुत दृढ़ता से तय की जा चुकी थी। ज्ञान की छोटी बहिन कमला को मेरे लिए चुना गया था। पता चला मेरे दुःख को देखकर कमला ने भी अपनी स्वीकृति माता के सामने दे दी है।

जिसे मैने विद्यार्थी की भांति पढ़ाया, जिसे मे किसी राजपरिवार मे व्याहना चाहता था और कुछ राजकुमारो से पत्र व्यवहार भी कर रहा था, उसी अमल धवल हास्य और प्रेम की पवित्र मूर्तिको मैं व्याहूं। कैसा घोर अनर्थ है! कैसी लाछना है! कैसा अन्याय है!!!

इन चार पाच महीनो म मैने कमला को देखा भी नहीं था। मेने खेमसेन से

कहा— कमला को बुलाओ, उसे मै समझा दूगा।

पर जब वह मन्द वेश मे थी और हास्यविहीन मुद्रा मे आकर मेरे सम्मुख नीची दृष्टि किए माता के साथ आ खडी हुई और उसने अपना चिर अभ्यस्त शान्त गीर से कहा—'जी' ? तो मैं हाहाकार कर उठा। म उसका त्याग और अपने प्रति अद्भुत भक्ति सहन नही कर सका। म पराजित होकर औधा पड गया और फूट फूट कर रोने लगा।

बहुत लोग हमारे घर म एकत्रित हो चुके थे। माता के कुछ परिजन भी बाहर से पहुच थे। मेरे सामने सभी का एक ही प्रस्ताव था। परन्तु मुझे परास्त किया अन्त मे माता ने। एक दिन सब मेहमानो से निपट सबको सुला कर वे मेरे सामने आ खडी हुइ। आसू उनकी आखो से अविरल बह रहे थे। मने उनके चरण पकडकर उनसे प्राथना की कि इन आखो को अब और मत रोकिए।

वही प्रस्ताव उनका उत्तर था।

मने कहा—भला यह कैसे सम्भव होगा ?

मने उनके चरण छूकर कहा—नही नही, ऐसा नही हो सकता। आपके मातृ स्नेह से मे कभी उऋण नही हो सकता।

पर उन्होने नही माना। मुझे स्वीकृति देनी पडी। घरभरमे विवाह की व्यस्तता फल गई। ७ जून १९४५ को मेरा चतुथ विवाह हो गया। विवाह सम्पन्न होने के दो महीने बाद तक मुझे ठीक ठीक होश नही था कि क्या हो गया है, क्या हो रहा है। उस समय उसकी आयु २२ वष थी। मेरे प्राणो की बलिहारी कि म फिर सब कुछ भुलाकर कमला का हाथ पकड अपनी दुरूह जीवन यात्रा के माग पर चल खडा हुआ। अब एक पुरुष स्त्री का माग प्रदशक नही था, एक स्त्री पुरुष का हाथ थामे माग प्रदशन कर रही थी। वही उसे मृत्युद्वार से हटाकर जीवित ससार म ला रही थी। मुझ मृत प्राण को कमला ही ने प्राण दिए। म फिर अपने जीवन और कार्यों मे व्यस्त हो गया। मानो कोई अघट घटना घटी ही नही थी। कमला ही मेरी प्रिय चिर सहचरी सदा से रही हो। कमला मधुर भावनाओ की एक कोमलतम भावुक प्रतिमूर्ति थी। जबसे वह अपनी माता के साथ मेरे घर आकर रहने लगी थी, मेरा घर मुखरित हो उठा था। धवल हास्य सदैव उसके होठो पर रहता था। सारे दिन घर का वातावरण सगीत की मधुर गुनगुनाहट से सुध्वनित रहता। स्नान करने, चाय बनाने, कोई और काय करने वह जब कभी इधर से उधर जाती, सगीत की गुनगुनाहट उसके मधुर होठो मे ध्वनित होकर सवत्र फैल जाती। इस आनन्द मूर्ति को देखकर म मन ही मन प्रसन्न होता था। मने उसे अच्छी शिक्षा दिलाई थी। म उसे किन्ही अत्यन्त सुयोग्य हाथो मे सौपने की खटपट मे लगा ही हुआ था कि यह अकस्मात भाग्य रेख सामने आ खडी हुई। उससे विवाह करने के उपरान्त तो म एक अपराधी की भाति उसके सामने पडता हुआ कतराता

था। यह उसी का कार्य था, जिसने मेरी अपराध भावना का धीरे धीरे नष्ट किया और मुझे पति स्थान पर प्रतिष्ठित किया।

१८४५ म लाहौर के मेसस महरचद लक्ष्मणदास ने मुझसे "हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास" लिखने का अनुरोध किया। यह केवल अनुराध मात्र ही नही था, उन्होने मुझे लाहौर बुलाकर उसका जुआ मेरे कधो पर रख दिया। अब मै सब काय छोड उसमे लग गया। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखना अत्यत गम्भीर काय था। मेरी इच्छा बहुत दिनो से ऐसा ग्रन्थ लिखने की तो थी, परन्तु इसके परिश्रम से मे सचेष्ट था, इसी से टाल रहा था। अब जब सब काय छोड कर मुझे इसमे लग जाना पडा तो मैने इसकी पूरी तैयारियाँ की।

इस ग्रथ को लिखने म मुझे बहुत उलझनो का सामना करना पडा। दिल्ली से लखनऊ, बनारस, कलकत्ता, इलाहाबाद, आगरा, नोना और लाहौर के बारम्बार चक्कर लगाने पडे। बहुत काम नुकसान हुआ, बहुत परिश्रम करना पडा, बहुत खचा और हर्जा उठाना पडा। इसके लिखने की सामग्री जुटाने के लिए बाहर जाना पडा और दो तीन महीने लाहोर ही बठना पडा। सात महीने के रातदिन के सतत परिश्रम के बाद ग्रन्थ समाप्त हुआ।

इस ग्रथ मे मैने अपने पूर्ववर्ती और समकालीन प्राय सब इतिहास लेखको की प्रचलित परम्परा का उल्लघन करके अपने कुछ नए ऐतिहासिक दृष्टिकोण निर्धारित किए थे और उनके समथन मे इतिहास की सामाजिक और राजनतिक पृष्ठभूमि की रेखाएे दी थी। मै नही जानता कि विद्वजन कहाँ तक मेरे इस प्रयास को दाद देगे।

मेरा सदव ही यह विश्वास रहा है कि साहित्य मानुष अग का पृष्ट वंश हे। मानुष का जीवन, जीवन की गति और उसकी सक्रान्ति साहित्य पर ही आधारित हे। इसलिए मैने साहित्य को इस ग्रथ मे अधिकाधिक व्यापक रूप दिया हे। मै ललित साहित्य के फेर म नही पडा। भाषा और लिपि को मै साहित्य का वाहन मानता हूँ। अत मैने ग्रथम उनका भी यत्किचित परिचय दे दिया था, तथा साहित्य पर भाषा से असम्बद्ध एक व्यापक विहङ्ग दृष्टि डाली थी।

विवादास्पद विषयो को मैंने गवेषणा करने वाले विद्वानो के लिए छोड दिया। और जहाँ विद्वानो के भिन्न मत थे वहाँ बहुमत का अनुसरण किया था। कुछ नई बातो का भी समावेश किया गया।

काकरौलीनरेश गोस्वामी श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज, श्रद्धेय मिश्रबन्धु, महामहोपाध्याय रायबहादुर डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा, प० रामनारायण मिश्र, रायकृष्णदास, बाबू रामचन्द्र वर्मा मन्त्री नागरीप्रचारिणी सभा बनारस आदि विद्वानो ने इस इतिहास के लिखने मे बहुमूल्य परामश द्वारा मेरी सहायता की। ग्रथ मे साहित्य

परिजनो के चित्र हस्तलेख और हस्ताक्षरो को रखकर उसे परिपूर्ण किया।

हिन्दी भाषा के इतिहास को समाप्त करते उपसंहार मे मैंने लिखा था—

यह एक गम्भीर विचारणीय बात है कि सन् ग ४ का उपसंहार हिन्दी साहित्य के इतिहास का 'प्रथम' अध्याय है। इसका यह अभिप्राय है कि सन् १९४५ तक हिन्दी साहित्य मे जो रचनाएँ हुई उनका काल समाप्त हो चुका, और अब सन् १९४६ हिन्दी साहित्य के 'प्रथम अध्याय' को प्रारम्भ करने का चिरस्मरणीय काल है। अब तक हिन्दी साहित्य मे रहस्य रंग, धर्म राजनीति और प्रगति का समावेश रहा। ये सब भाव समय समय पर अपने अपने कारणो से साहित्य मे समाविष्ट होते रहे। आज उन सब का समय व्यतीत हो चुका। आज के मानव के सामने अब तक की सम्पूर्ण साहित्य सम्पदा बच्चो के पुराने टूटे फूटे खिलौना के समान हो गई।

आज महत्तर युग का प्रारम्भ हो गया। महत्तर काल का यह प्रारम्भ 'अणु महास्त्र' के प्रयोग के साथ प्रारम्भ हुआ। इस 'अणु महास्त्र' के प्रयोग की विश्व पर दो प्रतिक्रियाएँ हुई। १—जब यह निर्मम नाशक प्रयोग जापान के दो असावधान नगरो पर किया गया तो विश्व ने इसपर तनिक भी क्रोध या घृणा नही प्रकट की और इस घोर नरहत्या को उसने चुपचाप ही सह लिया। २—इसके प्रयोग होते ही 'युद्ध' शब्द निरर्थक हो गया।

यह 'युद्ध' यद्यपि मानव की सम्पत्ति नही—पशु की प्रकृति है, परन्तु मानवता के बालकाल से लेकर आज तक मानव जीवन के विकास का महत्तर आधार 'युद्ध' है। 'युद्ध' ही मे महाजातियो की चरम शक्तियां निहित और केन्द्रित रही है। 'युद्ध' ही ने जातियो को निर्माण किया है। 'युद्ध' को संक्षेप मे हम मानव जीवन और उसकी सम्पदा के विकास का आधार ही कह सकते है। युद्ध ही मानवीय सभ्यता का इतिहास है, 'युद्ध' मानव की सबसे बडी सामर्थ्य है, सतत मानव अपने जीवन के प्रभात ही से युद्ध को अपने जीवन मे विकसित करता आया है। उसने युद्ध को इतना प्यार किया है कि आश्चर्यजनक उल्लास और उमंग से उसने अपने प्राण और प्राणाधिक ... युद्ध की भेट किए है, और जिसने जितना अधिक यह किया है साहित्य ने अतिपुरुष कह कर उसका कीर्तिगान किया है। परन्तु 'युद्ध' मनुष्य की सम्पत्ति नही पशु की प्रकृति है। फिर किसलिए पुरुष ने अपनी सम्पदा, प्राण और सम्पत्ति इस 'युद्ध' की भेट किय है? किसलिए मनुष्य की इस पशुवृत्ति की कविजनो ने प्रशंसा कर करके मेदिनी को ध्वनित कर दिया है? इसका एक ही सत्य और गम्भीरतम उत्तर है वह यह कि मनुष्य कभी भी सम्पूर्ण मनुष्य नही हो पाया, वह पशुत्व से थोडा ही विकसित एक 'प्रगतिशील पशु' रहा है, इसी से उसने अपने विकास की सारी ही प्रतिभा और प्रगति पशुत्व के इस महान् प्रतिनिधि 'युद्ध' के विकास मे व्यय की है और यह 'अणु महास्त्र'

इस दिशा मे उसके चरम उद्योगो का एक नूतनतम परिणाम है।

परन्तु सम्भवत वह मानव मस्तिष्क मे चिरधिष्ठित 'युद्ध तत्त्व' का पूर्ण विराम है। इस महास्त्र के प्रादुर्भाव ने अब तक विकसित सम्पूर्ण युद्धकला को निरर्थक कर दिया है। अब मनुष्य के सामने दो ही मार्ग है—या तो वह अपने अपूर्ण मानव तत्त्व को एक बारगी ही त्याग कर सम्पूर्ण पशु बन जाय तथा इस, और इस जैसे महास्त्रो से अपना सर्वतोभावेन विध्वस कर ले, या अपने मे व्याप्त पशुत्त्व को एक बारगी ही निकाल फके, और 'पूर्ण पुरुष' होकर विश्व सम्पदाओ का निर्भय भोग करे। निश्चय ही उसे दूसरा मार्ग चुनना होगा।

मानुष म जो रोष है यही पशुत्त्व का प्रतीक है। मानुष मे मानुष का प्रतीक 'विचार' है। वह जब तक 'विचार' के आधीन रहता है 'रोष' सुप्त रहता है, परन्तु विचारहीन होते ही वह रोषाभिभूत होकर जितना अधिक उसमे मानुष तत्त्व है, उतना ही अधिक हिंस्र बन जाता है क्योकि उसकी विचारसत्ता रोष की गुलाम बन जाती है।

पशु रोष म आवेशित होकर जब युद्ध करता है—तब वह अनिवार्य रूप से मृत्यु को वरण करता है। अल्प कारण ही मे वह उस प्राणघाती मार्ग पर चल पडता है, क्योकि वही उसकी प्रकृति है। परन्तु मानुष ऐसा नही करता, वह रोषावेश मे भी बलाबल, कारण और साधनो पर दृष्टि रखता है, पराजित होने पर वह रोष का दमन कर लेता है, इसलिये कि फिर वह बदला लेगा। यह सब वह उस विचारसत्ता के द्वारा करता है जो वास्तव मे उसके मानुष तत्त्व का प्रतीक थी, परन्तु अब वह रोषाधीन हो गई है।

फिर बदला लेने की भावना तमोगुण बहुला है। इसके लिये उसे नई विरोधिनी शक्तियो को जुटाने म विकट श्रम करना पडता है, तथा समय पाकर वह फिर 'युद्ध' करता है। उस युद्ध मे वह चाहे हारे चाहे जीते पर इच्छा और आशा जीतने की ही रखता है। कारण, प्रतिस्पर्द्धी की शक्ति के विषय मे वह सदिग्ध है।

परन्तु 'अणु महास्त्र' का आज के मानव मस्तिष्क पर एक बिल्कुल ही नया और अभूतपूर्व प्रभाव पडा है, इससे वह रोष को दबाने की नही, अपने मे से दूर निकाल फकने की सोचने लगा है। उसकी चेतना मे स्वच्छ विचारधारा का उदय हुआ है, और अब उसके 'पूर्ण पुरुष' होने का युग आ गया है। इस युग मे वह सर्वथा रोषहीन होकर विचार सामर्थ्य से अपना सगठन करेगा। बडे बडे क्रुद्ध जन निरर्थक फूत्कार कर, आकण्ठ रक्तस्नान कर मरण शरण हुए। 'लोह और लोहा' जिनका नारा था उनकी बेहद दुर्दशा हो गई। मानव रोष की निस्सारता विश्व ने देख ली। जातियो के भाग्य पलट गए, विश्व रेखाएँ बदल गई। इन सबसे मानुष ने अब चार बाते सीखी है—

१–विश्व के सब मनुष्य एक है—वे परस्पर भाई-भाई है, समान है, अभय है, और

विश्व की सम्पदाओं के अधिपति है। २–मानव विश्व की सबसे बड़ी इकाई है, उसकी पूजा, आत्मनिष्ठा, निर्भय विश्व विचरण तथा भोग सामर्थ्य कांक्षिणीय वस्तु है। ३–जगत् सत्य है, भूत सम्पदा मानव उत्कर्ष का साधन है। ४–'कला' और 'विज्ञान' मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क है, दोनों का विचार कौशल से एकीभूत करके उसे मानव कल्याण और मानव विभूति वर्धन में लगाना चाहिए, जिससे मनुष्य 'रोषहीन' हो।

इन चारों ही तथ्यों को मूर्तरूप देना साहित्यकार का काम है। जो साहित्यकार विचारों को मूर्त करता है, संस्कृति को मूर्त करता है, आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करता है वह अपने काल और उस काल के बाद के मनुष्यों का नेतृत्व करता है। वह मानुष्य तत्व का प्रतिनिधि है, वह मनुष्यों के आदर्श का विचार करके 'अति मनुष्यों' का निर्माण करता है, और अपनी 'नाद ध्वनि' के संकेत पर कोटि कोटि नर समूह को उसी लक्ष्य बिन्दु पर केन्द्रित करता है। वही सच्चा साहित्यकार है। आज हिन्दी साहित्य के महाप्राङ्गण में नए महत्तर काल के मानव की महान् सत्ता, जगत् की सत्यता, मानव विश्व बन्धुत्व, कला और विज्ञान का एकीकरण तथा मानव को अभय विचरण प्रदान करने वाले साहित्यकार के प्रादुर्भाव की प्रतीक्षा हो रही है।

इस ग्रन्थ की तयारी में मिश्रबन्धुओं ने मुझे बहुत अधिक सहयोग दिया। असल में वे इसकेलिए बहुत व्यग्र थे कि हिन्दी साहित्य का एक प्रामाणिक इतिहास कोई तयार करे। मेरा उनसे बहुत अधिक मित्रभाव था। ग्रन्थकी समाप्ति पर जब मैंने उनसे इस की भूमिका लिखनेके लिए कहा तो उन्होंने अपने व्यस्त क्षणोंमें भी उसे लिखा। उनका स्वास्थ्य भी ऐसा नहीं था कि वे इतनी लम्बी भूमिका लिखते, परन्तु उन्होंने जो भूमिका लिखी वह काफी लम्बी थी। भूमिका पर जो उन्होंने अपने हस्ताक्षर किए, यही उनके अन्तिम हस्ताक्षर थे। उसके बाद तो उनका कोई लेख आया ही नहीं। उनके वे अन्तिम हस्ताक्षर मैंने साहित्यनिधि की भांति यत्न से रख छोड़े हैं।

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास छपने के बाद शाहदरे में आकर अन्य पुस्तक को हाथ में लेनेकी तयारियां कर रहा था कि मानसिक अशान्ति का एक भीषण तूफान दो रूप लेकर मेरे सामने आ खड़ा हुआ। एक तो कुछ गुण्डाकांत दल और दूसरा–१९४७ की यमुना की भीषण बाढ़। मेरी प्रापर्टी में बहुत बड़ा भाग खाली पड़ा था। कुछ व्यक्ति मेरे पास उस भाग के कुछ अंश को किराए पर लेने के लिए आए और मुझे अच्छा किराया पेश किया। मैंने भी यह सोच कर कि खाली पड़ी जमीन का किराया आएगा, आय बढ़गी तथा पड़ौस में आबादी भी रहेगी, यह हिस्सा देना स्वीकार कर लिया। बातचीत तय होगई और अगले दिन प्रातःकाल आकर किरायानामा आदि लिख कर एक महीने का पेशगी किराया देने का वायदा कर वे चले गए। परन्तु उसी रात ३१ जुलाई और पहली अगस्त १९४७ को कुछ गुण्डों के दलने निश्चित योजना बनाकर

स्थानीय पुलिस के परामर्श और सहयोग से ५० ६० लाठीबन्द आदमियो के गिरोह को लेकर मेरी अनुपस्थिति मे मेरे घर पर आक्रमण किया, बलपूर्वक मकान के ताले तोड डाले, और मेरा तथा मेरे किराएदार का वहा रक्खा सब माल लूट लिया, बिल्डिग को भी काफी नुकसान पहुँचाया और उस भाग पर बलात अधिकार कर लिया। मने जाकर स्थानीय पुलिस मे रिपोट दर्ज नही की, मै लाला देशबन्धुगुप्त और डा० युद्धवीरसिह के पास गया, उन्होने रायसाहब चुन्नीलाल अधिकारी के नाम पत्र दिया, परन्तु दु ख है कि उन्होने मेरी किसी भी प्रकार की सहायता से इन्कार कर लिया और सरदार तेजासिह (पुलिस) ने तो मुलाकात ही से इन्कार करदिया। फिर मै प०बालकृष्ण शर्मा नवीन से मिला। उन्होने डिप्टी कमिश्नर रन्धावा को फोनपर कहा। इन्होने मुझे बुलाया, मै गया भी, परन्तु कोई सहायता नही की। बदमाश पार्टी इतना ही करके चुप न रही, वह और भी इरादा रखती थी। चारो ओर १० १५ दिन तक लाठीबन्द आदमी घूमते रहे और मेरा बाहर निकलना बन्द हो गया। उस हमले मे माताजी पर शारीरिक आक्रमण किया गया था, जिससे व और पत्नी बीमार हो गइ और मे निरुपाय हो अपनी सुरक्षा के विचारसे बनारस सपरिवार चला गया। पीछे घरकी रक्षाके लिए एक चौकीदार और कुछ आदमी नियत कर गया।

इसी बीच शाहदरे मे उपद्रव हुए। मुसलमान मारे गए और बदमाश पार्टी ने पुलिस के सहयोग स एक मुसलमान के घरसे किसी हिन्दू फर्म का लगभग एक लाख रुपए का रबड लूटकर मेरे मकान के गोदाम मे भर दिया।

३० सितम्बर को मै दिल्ली आया तब मेरे आदमियो ने मुझे यह बात कही। पर मै अगले ही दिन बनारस वापस जारहा था। मै अपने आदमी को डा०युद्धवीरसिह के पास लेगया तथा स्थानीय काग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी से भी कहा। उन्होन इस मामले को आगे चलाने का वचन दिया। इसके बाद शाहदरे म पानी आ गया। मेरे तमाम आदमी लालच देकर और धमकाकर भगा दिए गए। मेरा घर सूना रह गया। बदमाश पार्टी ने दक्खिन ओर की दीवार तोड डाली और मेरे घर का सब सामान लूट लिया। दो कमरे ढहा दिये, तथा नई दीवार बनाकर मकान का नक्शा बदल दिया। डा०युद्धवीरसिहने इस चोरीकी सूचना मुझे बनारस भजी। मे आया। उस समय मे ऐसी स्थिति मे था कि मेरे पास चाय पीने को एक प्याला भी घर म न था—मेरा सर्वस्व इन बदमाशो ने पुलिस स मिलकर लूट लिया।

सारी हकीकत मुझे मालूम हुई। पुलिस ने इस चोरी की रिपोट लिखने से भी इन्कार कर दिया था। मैं जिस दिन आया था उसी दिन स्थानीय थानेदार बदमाशो के साथ वहाँ उपस्थित था तथा जल्दी जल्दी दीवार बनाने की सलाह दे रहा था। मे जब थानेदारसे मिला उसने मेरा मजाक बनाते हुए रिपोट लिखने से इन्कारकर दिया।

विवश मने सुपरिटेंडेंट को रजिस्ट्री रिपोट भज दी, साथ मे चोरी मे गये माल की एक सूची भी भेजदी। कुल प द्रह हजार रुपयो का माल चोरी गया था। इमारती हानि की एक रिपोट स्थानीय पुलिस को रजिस्टी से अगले दिन भेजी थी।

कुछ दिन बाद एक सबइन्सपक्टर आए थे और चोरीके सम्बन्धमे कुछ बातचीत करके दूसरे दिन मुझे थाने मे बुलाकर चले गए। यदि मैं उनके बुलाए जाने का यथाथ अथ समझ जाता तो मेरा काम भी शायद हो जाता, परन्तु म उनका अभिप्राय नही समझा। अगले दिन व बहुत से प्रश्नोत्तरो के बाद आए और फक्टरी की तलाशी ली। तलाशी म पुलिस ने अपराधियो के क जे मे चोरी हुए मालका एक ट्रक बरामद किया, पर तु मेरे कहने पर भी न तो फैक्टरी पर अपना कब्जा किया न उनके घर और मकान की तलाशी ली। बरामद हुए माल को लेकर वे चले गए।

इसके बाद दो तीन दिन वे आते रहे, पर और तलाशी नही ली, न गिरफ्तारी की। फिर वे छुट्टी लेकर चलेगए। बाद म दूसरे सब-इ सपक्टर आए। पर तु नतीजा कुछ नही हुआ। इस डाकेजनी से पीडित होकर और पुलिस से निराश होकर मने एक पत्र डिप्टी कमिश्नर देहली को भी लिखा था।

पर तु इसका भी कोई परिणाम नही निकला। पुलिस जिससे मिल जाय फिर उसकी हार कसी? म पुलिस की श्रेष्ठ सत्ता को मानकर चुप बठ गया। मैंने पत्नी की सोने की दो चूडिया गिरवी रखकर पचास रुपये उधार लिए और चाय पीने तथा भोजन बनाने के दो चार जरूरी बर्तन बाजारसे खरीद कर अपने घर म खाना बनवाया। मेरे लिए कितना भयानक वह समय था, उसका बगन नही कर सकता। बस यही समझिए कि बदमाशो ने मुझे मार नही डाला, मेरी जमीन उठाकर न ले गए।

भीषण तूफान का दूसरा रूप यमुना की बाढ थी। १९४७ क अगस्त उपद्रवो के बाद यमुना मे बाढ आई। यह बाढ यमुना स गाजियाबाद की हिण्डन नदी तक व्यापक रूप से फली हुई थी तथा इस ग्यारह मील के बीच पानी ही पानी हिलोरे ले रहा था। मेरा मकान शाहदरे मे जी० टी० रोड के किनारे पर शहर स बाहर स्थित है, इसलिए वह समूचा पानी म डूब गया। जैसाकि म पहले बता चुका हू उन गुण्डो से निरुपाय हो अपनी सुरक्षाके विचार स म बनारस सपरिवार चला गया था और मकान के सब कमरो को ताले लगा केवल एक चौकीदार के भरोसे छोड गया था, पर तु जब बाढ आई तो तुर त ही सारे घर मे पानी भर गया और मेरा सब सामान पानी मे डूब गया। सामान मे घर गृहस्थी का सामान तो था ही, सबसे अमूल्य निधि तो मेरी लायब्रेरी की चालीस वर्षों से सग्रहीत अलभ्य हजारो पुस्तके थी। अल्मारियो मे वे भरी हुई थी। पानी पूरे आठ दिन तक रुका खडा रहा था। इन आठ दिनो मे मेरी वह विशाल अमूल्य लायब्रेरी सवथा नष्ट हो गई। इसके साथ ही एक अलमारी मे वर्षों के

परिश्रम से लिखी मेरी पचासो मन्युस्क्रिप्ट रखी हुई थी, वे सब भी पानी ने धो पोछ कर साफ करदी और पानीमे गले कागज मात्र रहगए। पुस्तका और मैं युस्क्रिप्टो का नष्ट होना कोई साधारण सह्य दुख नही था, फिर मेरे जसे व्यक्ति के लिए जो केवल इन दो वस्तुओ को ही अपनी आत्मा का भोजन और काय समझकर ससार के सब सघर्षों से टक्कर ले रहा था। इसी बाढ का लाभ उठाकर गुण्डो के दल ने मेरे अरक्षित घर को पूरी तरह से लूट लिया। बाढ की समाप्ति पर जब म सपरिवार बनारस से वापिस आया ता घर की दुदशा देखकर मेरा मन हाहाकार कर उठा। मेरे घर के फर्शों पर एक एक फुट मोटी बाढ की चिकनी मिटटी जमी हुई थी, जिसपर पैर रखते ही फिसल कर गिर जाना पडता था। बडी कठिनाई से वह फिसलनी कीचड हटाकर रास्ता बना कर हम अन्दर कमरो मे पहुँचे थे। कमरे सब खाली पडे थे, केवल ध्वस्त पुस्तके और मन्युस्क्रिप्ट वहा अवश्य थी। हफ्तो हमे मकान की सफाई और उसे बठने योग्य बनाने मे लग गए। उसी कीचडमे रपटकर म गिर भी पडा था और कोहनी की हड्डी टूट गई थी। जिस लेकर मुझे डेढ दो महीने अस्पताल की हाजरी बजानी पडी। मलेरिया के शिकार सब लोग बने सो अलग।

अन्त मे मेने नए सिरे मे जीवन नौका को खडा किया। अपनी प्रापर्टी को मेरे एक मित्र महाजनके यहा रहन रखकर पाच हजार रुपया कज लिया और अपनी दुनियाँ दारी जमाई।

सोमनाथ

१९२३ म मन प्रथम बार गुजरात की यात्रा की। गुजरात के प्रभु सोमनाथ और वहा के शवतत्त्व के सम्बन्धम मेन बहुत उत्सुकता से उनदिनो अध्ययन किया था। गजनवी महमूद का सोमनाथ पर आक्रमण उन दिनो मेरे अध्ययन का रोचक और आकषक विषय था और तभी मेरी इच्छा 'सोमनाथ' नामक एक उपन्यास लिखने की हुई। परन्तु स्कूल के इतिहास की पाठ्यपुस्तको म सोमनाथ के आक्रमण की जो जरा सी चचा थी, उसे छोडकर अन्यत्र कही भी इस विषयका कोई अच्छा साहित्य मुझे हिन्दी म नही मिला। धीरे धीरे मेरी व्याकुलता बढती गई और म सोमनाथ के इस आक्रमण के सम्बन्ध म अधिक म अधिक जानने को अधीर हो उठा। मजे की बात यह थी कि मेरे मुह से यह सुनकर कि म सोमनाथ पर एक उपन्यास लिखना चाहता हूँ—एक प्रकाशक ने अपने अधिकार के बल से उसका विज्ञापन भी छाप दिया, और सुना कि आडर भी बुक करने आरम्भ कर दिए। उसके बाद तो उसके तकाजो ने नाक मे दम कर दिया। प्रथम तो मुझे उस सम्बन्ध म इतिहास की अधिक जानकारी नही। दूसरे ऐसी लोक विश्रुत घटना को वैसे ही प्रभावशाली ढङ्ग से चित्रित करने की कल्पना शक्ति और साहस नही। म उपन्यास लिखता कम ? धीरे धीरे विलम्ब होता गया, दिन बीतते

गए। अँग्रजी इतिहासकारों के लिये कुछ टूटे फूटे विवरण मुझे मिले, पर वे यथेष्ट न थे। कुछ लोग तो यह भी कह देते थे कि यह घटना ही कपोल कल्पित है।

गुजराती साहित्य तथा गुजराती संस्कृति से मेरा थोडा लगाव भी है। इसका श्रेय मैं अपने दिवङ्गत मित्र हाजीमुहम्मद अल्लारखिया शिवजीको ही देना चाहता हूं। जिन्होंने बरबस मेरा मन गुजराती साहित्य के कोमल भावुक भाव चित्रों पर मोहित कर दिया। और मैं गुजरी साहित्य और संस्कृति के निकट आया। बम्बई में निवास करने से मैं गुजराती पढने और समझने भी लगा था, परन्तु सोमनाथ के प्रति मेरी आस्था तब हुई, जब दैवदुर्विपाक में फँस कर मुझे बम्बई छोडनी पड़ी। कचन की सघन वर्षा मे डूब कर छूछा हाथ लिए घर लौटना पडा।

सम्भवत सन् २६ मे मैं काफी अरसे के बाद फिर बम्बई गया और इस बार यह इरादा कर लिया कि सोमनाथ के सम्बन्ध में गुजराती साहित्य में जो कुछ भी मिल सकेगा बटोर लाऊँगा। परन्तु मेरी आशा फलवती न हुई। एक दो पुस्तकें मिली। पर प्रामाणिक जानकारी उनसे मुझे कुछ न मिली। बहुत निराशा हुई। इसी समय मेरे मित्र और शिष्य श्री महावीरप्रसाद दाधीच मार्तीमीटर ने, मुझसे श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी से मिलने की सलाह दी। उन्होंने कहा—वे गुजराती के अच्छे साहित्य कार है, उनसे आपको अवश्य ही कुछ काम की बात मालूम हो जाएगी। दाधीच ही को लेकर मैंने श्री मुशी से उनके आफिस में जाकर मुलाकात की। पर मुलाकात करके खुश नही हुआ। खीज ही गया। उन दिनों वे बम्बई में प्रैक्टिस करते थे, और फोर्ट मे उनका आफिस था। उनकी न दृष्टि ही में, न बात चीत में, मुझे कुछ रस मिला। मैंने यह तनिक भी अनुभव नही किया—कि मैं एक साहित्य बन्धु के पास मिलने आया हू। सोमनाथ के सम्बन्ध मे मैंने कुछ प्रश्न किए, पर जवाब ऐसे ही मिले—जैसे वकील अपने मुवक्किल से किसी मुकदमे की बात कर रहा हो। जहा तक मुझे स्मरण है, मुलाकात खडे ही खडे खत्म हो गई। काफी देर बाद जब उन्होंने मुझसे बैठने को कहा, तब उनके उस ठण्डे लहजे से मैं इतना कुढ गया कि तुरन्त ही उनका इतना समय नष्ट करने के लिए क्षमा माग भाग खडा हुआ। फिर मुझे किसी साहित्यकार से मिलने का साहस नही हुआ। हालाकि मुझे हाजी मुहम्मद अल्लारखिया की आठ आठ घण्टो की मुलाकाते नही भूली थी। इसके बाद जब मैं अहमदाबाद जाकर गुजर शब्दशिल्पी श्री धूम-केतु से मिला तो एक बार फिर मेरे मन की खिन्नता मिटी। श्री धूमकेतु ने मुझे एक दो पुस्तको के सङ्केत दिए। कुछ बाते भी बताई। फिर भी मेरे पास ऐसी सामग्री न जुट पाई कि मैं सोमनाथ पर उपन्यास लिख सकता। फलत यह उपन्यास लिखने का विचार मैंने दिमाग से ही निकाल दिया। दिन पर दिन और वर्ष पर वर्ष बीतते चले गए। एक दो लहरे आई और शुरू के तीन चार परिच्छेद मैंने लिखे, पर गाडी फिर

वही रुक गई ।

सन् ४७ आ गया, और मेने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा। उसमे मने महमूद के आक्रमण के सा̣ंस्कृतिक प्रभाव पर पकाश डाला और एक बार फिर भारतीय सस्कृति पर मुस्लिम प्रभाव पर जाकर मेरी विचारधारा केंद्रित हुई। अब मे कभी कभी सोमनाथ पर एक उपन्यास लिखने के लिए मन ही मन अधीर होने लगा। इसी समय श्री मुंशी का 'जय सोमनाथ' मेरे सामने आया। पहिले मैंने उसे मूल गुजराती मे पढा—पीछे हिन्दी अनुवाद पढा। मुझे इस बात का ख्याल ही न रहा कि यह उपन्यास श्री मुशी ने लिखा है या मने। मे यही सोचने लगा, कि क्या वास्तव मे सोमनाथ लिख दिया गया है। परन्तु मेरा मन भरा नही और किसी एक अतर्कित भावना ने मेरे हृदय मे एक ऐसी तीव्र आकांक्षा उत्पन्न कर दी, कि अब मे सोमनाथ पर कलम बिना उठाए रह ही न सकता था। अब मन यह विचार किया कि मै श्री मुशी के इस उपन्यास से कुछ प्राप्त कर सकता हूँ या नही। मने दो तीन बार उसे बारीकी से पढा।

१९४८ म मेरी 'वैशाली की नगरवधू' प्रकाशित हुई। उस समय मे 'इतिहास रस' की स्थापना म . म हटबद्ध कर चुका था। मुझे इस बात की परवाह न थी कि मं इतिहास मे इधर उधर हो जाऊगा तो क्या होगा ? मनमानी कुलाचे भरने के लिए मै तयार बठा था। श्री मुंशी के 'जय सोमनाथ' के प्रति मेने एक प्रतिस्पर्द्धा की दृष्टि डाली, मन मे कहा—यदि मेरा उपन्यास उसमे निकृष्ट बना, लोगो ने इसे न पढा—तो क्या होगा। मेने यद्यपि श्री मुशी के उस उपन्यास म कुछ भी प्राप्तव्य नही पाया था, परन्तु श्री मुशी का रुआब तो मुझ पर था ही। साहित्यिक न सही—ठाट बाट का ही सही।

म इसी ऊहापोह म फसा था, और उपन्यास के वही पुराने दस बारह वष पूर्व लिखे पाच छ परिच्छेद मेरे सामने थे, जिन्हे मे जब तब उमङ्ग मे आकर मित्रो को सुना दिया करता था। मेरे मित्र मेरा मजाक उड़ाया करते थे—कि इन परिच्छेदो का उल्लङ्घन करके 'वैशाली की नगरवधू' जन जीवन मे अपना स्थान पा चुकी। अब आपका यह 'सोमनाथ' उस पर नहले पर दहला मारे तो बात है। इस 'दहले' ने मुझे और भी दहला दिया। अभी तो श्री मुशी ही का रुआब मारे डाल रहा था, अब इस 'दहले' ने मेरी नाक रोक दी। परन्तु यह मेरे बस की बात तो थी ही नही। मे आज भी यह नही जान पाया हू कि 'नगरवधू' मे कितना सौष्ठव है। मे निस्स देह उस पर मोहित हू, उस पर अपना सम्पूर्ण साहित्यिक सम्पदा को वार चुका हू। परन्तु यह तो मै कसम खाकर कह सकता हू कि उसकी जिस सुषमा पर म इतना मोहित हो गया हूँ, उसे मैने अपने परिश्रम स निर्मित नही किया। में वास्तव म 'नगरवधू' का निर्माता नही—'प्रकटकर्ता' हू। न जाने किस अचिन्त्य शक्ति ने वे भव्य मूर्तिया मेरी घिसी घिसाई चालीस साल पुरानी कलम स व्यक्त करा दी। भला मै नगण्य कहा उन दिव्य मूर्तियो

का निर्माण कर सकता था । परन्तु मेरे मन में रहता था कि यह तो मित्रा की एक चुनौती थी । उसका यह स्पष्ट अर्थ था, कि 'नगरवधू' के उत्तर में 'सोमनाथ' लिख सकें— तो ही 'सोमनाथ' लिखना, नहीं तो नहीं ।

अब बताइए इस चुनौती का क्या जवाब है ? बस मैंने फिर उसे लिखने का इरादा त्याग दिया । वही प्रारम्भिक पाँच सात परिच्छेद पड़े थे, उन्हीं पर अपनी हसरत भरी नज़र जब तब डाल लेता था । कभी कभी इसी विचार से 'नगरवधू' के परिच्छेदों पर आँखें फैला देता था, कि आगे कहाँ कलम चलाने की गुंजाइश है या नहीं ।

इसी समय विभाजन का विराट मेरी आँखों के सामने आया । दिल्ली में रह कर दिल्ली और लाहौर के सारे लाल काले कारनामे मैंने अपनी आँखों से देखे, कानों से अनहोनी बातें सुनीं और विश्व के मानव इतिहास का सबसे बड़ा मर्मान्तिक क्रम देखा । यह ऐसी बात नहीं थी—जिसे मैं देख और गुज़र करूँ । कट्टरता के अभियोग से मैं हिन्दुओं को मुक्त नहीं कर सकता । परन्तु मैं उनकी खूनी प्रकृति का तो नहीं स्वीकार करता । जिन्ना का 'डाइरेक्ट ऐक्शन' और उसका सच्चा असली स्वरूप देख मैं समझ गया कि चाहे बीसवीं शताब्दी का सभ्य काल हो, चाहे चौदहवीं शताब्दी का, चाहे जंगली पठानों—खिलजियों और गुलामों का अंध-युग । मुस्लिम भावना तो खून में तर है और रहेगी । जब तक इसका जड़मूल से विनाश न हो जायगा—इसकी खून की प्यास बुझेगी नहीं । यह सर्वथा मानव विरोधिनी भावना है, जो सामूहिक रूप से मुस्लिम समाज में बद्धमूल है । ज्यों ज्यों पंजाब के अत्याचार, बलात्कार उत्पात, लूटमार मेरे कानों में पड़ते जाते थे, मैं सुलगता जाता था ।

आरम्भ में यद्यपि मुझे बहुत कम बातों का पता लगा । परन्तु आगे चलकर जो कुछ हुआ, उसकी एक भीतिमूर्ति मेरे मन में पहिले ही अंकित हो चुकी थी । विभाजन से बहुत पूर्व ही से, समय मित्रों से बहुधा कहा करता था कि किसी तरह पंजाब और सिन्ध से हिन्दू परिवारों को निकाल लाना चाहिए । बहुत मित्रों को मैंने तत्काल लाहौर छोड़ देने की सलाह भी दी थी । १९४६ में जब मेरा बृहत् हिन्दी साहित्य का इतिहास छपा और मैं उस समय जनवरी—फरवरी—मार्च में लगभग लाहौर में रहा । मेरे प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मणदास मिट्ठा गली में रहते थे । यह मुहल्ला ही मुसलमानी आबादी में था । अपनी अन्तिम यात्रा में मैंने लाहौर का वह स्वरूप देखा, जो विस्फोटोन्मुख ज्वालामुखी का होता है । स्टेशन से अपने उन मित्र के घर तक पहुँचना मेरे लिए अत्यन्त त्रासदायक हो गया । उस बार एक सप्ताह तक लाहौर में रहा और अद्भुत वातावरण देखा । रणजीतसिंह की समाधि फूटी पड़ी थी । वहाँ ढेरों मलवा और घास फूस जमा था, परन्तु बादशाही मस्जिद के गुम्बजों पर फिर से संगमरमर मढ़ा जा रहा था । मुझे ऐसा अनुभव हुआ—जैसे एक घर में दुलहिन के व्याह की तैया

रिया ठाठसे हो रही हे दुलहन पर हल्दी चढाई जारही है और दूसरे घर मे मुर्दा उठाने को पडा हे। दो घटनाओ ने मुझे सत्य रूप का दशन करा दिया। एक दिन सुबह ही मै पडौस म एक सलून पर जा बठा—बाल कटाए। क्षण क्षण मे मुझे भय हो रहा था कि वह नाई कही मेरा गला ही न काट डाले। लम्बे चौडे डीलडौल का पचहत्था जवान था। बडी ही लापरवाही से कैंची, उस्तरा और ब्रुश चला रहा था। शुरू मे गुस्सा हुआ, पर फिर मुझपर आतक छा गया। मे अपनी भूल समझ गया। अन्त मे मैने एक रुपया दिया और बकाया रेजगारी वापिस पाने को हाथ फलाया, परन्तु वह जवान मुस्लिम नाई धूततापूवक हस कर बोला—बाच्छा,तूने जो दिया सो दे दिया,अब चलता हो, और मेने चुपचाप चलता होने ही म कुशल समझी। हजामत ठीक बन चुकी थी।

इसी प्रकार एक मेवे वाले से मेने दो आने का एक सतरा लिया, और रुपया देकर बाकी पस मागे—तो उसने रुपया गल्ले म डालकर और यह कह कर–कि फिर कभी ले जाना, मेरी ओर से रुख फेर लिया। निस्स देह यह सरासर डाकाजनी थी। वह भी बीच बाजार। दुकानदार डाकू बने हुए थे। दूसरे दिन मै वहा से चल दिया, और अपने मित्रो से लाख लाख अनुरोध करता गया—कि वे तुरन्त लाहौर छोड दे।

अन्त म जो होना था वही होकर रहा। परन्तु मै भय, क्षोभ और आतक से जसे शराबार हो गया और जिस दिन विभाजन हो जाने पर दिल्ली मे स्वतत्रता दिवस मनाया गया, घन्टाघर पर शानदार रोशनी की गई, लाल किले पर तिरगा फहराया गया, मै अपने घर के सब दवाजे बन्दकर चुपचाप पडा सिसकता रहा। उस रात को मेने अपने घर मे दीप नही जलाया। दूसरे दिन अखबारो मे पढा—कि जब दिल्ली मे घण्टाघर रोशनी स जगमग कर रहा था–लाहौर धाय धाय जल रहा था। परन्तु इस साहित्यकार के आसू किसने देखे,लाहौर की चिताभस्म म जसे वे भी जल मिल गए।

मे लाहौर से चलते चलते अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के अतिम पृष्ठो पर ये पक्तिया लिख आया था महाकाल की गति अति विषम हे, वह घडी मे काँटे की भाति ठीक ठीक एकी तुली गति से नही चलती। कभी वह मन्द हो जाती है,और कभी अति भीषण तीव्र गति धारण कर लेती हे। उसी के प्रभाव से व्यक्ति की भाति राष्ट्र के जीवन का एक एक वष कभी कभी सौ वर्षों के समान भारी हो जाता है,और कभी हँसते खेलते ही बात की बातमे शताब्दिया बीत जाती है। भारत के गत छब्बीस वष बडे ही तेजी म बीते है,महशताब्दियो से सुप्त और आत्म विस्मृत भारतीय राष्ट्र एक अद्भुत उमग और तेज के साथ जाग उठा है। २६ वर्षोंमे जो कुछ हुआ है उसका भारत के राष्ट्रीय और सास्कृतिक जीवनपर कसा प्रभाव पडेगा–यह अभी नही कहा जा सकता। परन्तु यह दीख पडता है कि आगामी पाँच शताब्दी और भी द्रुतगति से आगे बढेगी, और बडी बडी घटनाएँ और बडे बडे परिवतन अकल्पित तेजीसे भारत म होगे,जिनका

का निमाण कर सकता था। पर तु गत यह न, ा पर ता ? गह ो मित्रा की एक चुनोती थी। इसका यह स्पष्ट अथ था, कि 'नगरव (ग उ प 'सोमनाथ' बन सके– तो ही 'सोमनाथ' लिखना, नही तो नही।

अब बताइए इस चुनौती का क्या जवाब है ? बस मैने फिर इस लिखने का इरादा त्याग दिया। वही प्रारम्भिक पाच सात परिच्छेद पडे थे, उन्ही पर अपनी हसरत भरी नजर जब तब डाल लेता था। कभी कभी नवत ग्या विचार मे 'नगरवधू' के परिच्छेदा पर आख फला दता था, कि आगे कही कलम चलाने की गजाइश है या नही।

इसी समय विभाजन का विराट मेरी आखा के आगे आया। दिल्ली म रह कर दिल्ली और लाहोर के सारे लाल काले बादल मन अपनी आखा मे दख कानो स अनहोनी बात सुनी और विश्व के मानव इतिहास का सबसे बडा महाभिनिष्क्रमण देखा। यह ऐसी बात नही थी—जिसे मे देख और दरगुजर कर । कट्टरता क अभियाग से मै हिन्दुओ को मुक्त नही कर सकता। पर तु मै उस खूनी प्रवृत्ति का तो नही स्वीकार करता। जिन्ना का 'डाइरेक्ट ऐक्शन' और उसका सच्चा असली स्वरूप देख मै समझ गया कि चाहे बीसवी शताब्दी का सभ्ययुग हो, चाहे चौदहवी शताब्दी का, चाहे जगली पठानो खिलजियो और गुलामो का अध–युग। मुस्लिम भावना तो खून म तर है और रहेगी। जब तक इसका जडमूल स विनाश न हो जायगा—इसकी खून की प्यास बुझेगी नही। यह सवथा मानव विरोधिनी भावना है, जो सास्कृतिक रूप स मुस्लिम समाज म दृढबद्धमूल है। ज्यो ज्यो पजाब के अत्याचार, बलात्कार उत्पात, लूटमार मेरे काना म पडते जाते थे, मे सुलगता जाता था।

आरम्भ मे यद्यपि मुझे बहुत कम बातो का पता लगा। पर तु आग चलकर जो कुछ हुआ,उसकी एक भीतिमूर्ति मेरे मन म पहिले ही अकित हो चुकी थी। विभाजन से बहुत पूव ही से, समय मित्रो स कहता रहा करता था कि किसी तरह पजाब और सिन्ध से हिन्दू परिवारो को निकाल लाना चाहिए। अपने मित्रो को मन तत्काल लाहौर छोड देने की सलाह भी दी थी। १९४६ के माच म मेरा ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का इतिहास छपा और मै उस समय जनवरी-फरवरी–मार्च म लगभग लाहौर मे रहा। मेरे प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मणदास म.मिटठा गली म रहते थे। यह मुहल्ला ही मुसलमानी आबादी म था। अपनी अन्तिम यात्रा म मैने लाहौर का वह स्वरूप देखा, जो विस्फोटो मुख ज्वालामुखी का होता है। स्टेशन स अपने उन मित्र के घर तक पहुँचना मेरे लिए अत्य त त्रासदायक हो गया। उस बार एक सप्ताह तक लाहौर म रहा और अद्भुत वातावरण देखा। रणजी सिंह को समाधि फूटी पडी थी। वहाँ ढेरा मलवा और घास फूस जमा था, परन्तु बादशाही मस्जिद के गुम्बजो पर फिर स सगमरमर मढा जा रहा था। मुझे ऐसा अनुभव हुआ—जैसे एक घर म दुलहिन के व्याह की तया

रिया ठाठसे हो रही है दुल्हन पर हल्दी चढाई जारही है और दूसरे घर मे मुर्दा उठाने को पडा है। दो घटनाओ ने मुझे सत्य रूप का दर्शन करा दिया। एक दिन सुबह ही मे पडोस मे एक सलून पर जा बैठा—बाल कटाए। क्षण क्षण मे मुझे भय हो रहा था कि वह नाई कही मेरा गला ही न काट डाले। लम्बे चौडे डीलडौल का पचहत्था जवान था। बडी ही लापरवाही से कची, उस्तरा और ब्रुश चला रहा था। शुरू मे गुस्सा हुआ, पर फिर मुझपर आतक छा गया। मे अपनी भूल समझ गया। अन्त मे मैने एक रुपया दिया और बकाया रेजगारी वापिस पाने को हाथ फैलाया, परन्तु वह जवान मुस्लिम नाई धूर्ततापूर्वक हॅस कर बोला—बाच्छा,तूने जो दिया सो दे दिया,अब चलता हो, और मैने चुपचाप चलता होने ही मे कुशल समझी। हजामत ठीक बन चुकी थी।

इसी प्रकार एक मेवे वाले से मैने दो आने का एक सतरा लिया, और रुपया देकर बाकी पैसे मागे—तो उसने रुपया गल्ले मे डालकर और यह कह कर–कि फिर कभी ले जाना, मेरी ओर से रुख फेर लिया। निस्सन्देह यह सरासर डाकाजनी थी। वह भी बीच बाजार। दुकानदार डाकू बने हुए थे। दूसरे दिन मै वहा से चल दिया, और अपने मित्रो से लाख लाख अनुरोध करता गया—कि वे तुरन्त लाहौर छोड दे।

अन्त मे जो होना था वही होकर रहा। परन्तु मै भय, क्षोभ और आतक से जैसे शराबोर हो गया और जिस दिन विभाजन हो जाने पर दिल्ली मे स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया, घण्टाघर पर शानदार रोशनी की गई, लाल किले पर तिरगा फहराया गया, मै अपने घर के सब दरवाजे बन्दकर चुपचाप पडा सिसकता रहा। उस रात को मैने अपने घर मे दीप नही जलाया। दूसरे दिन अखबारो मे पढा—कि जब दिल्ली मे घण्टाघर रोशनी से जगमग कर रहा था–लाहौर धाय धाय जल रहा था। परन्तु इस साहित्यकार के आसू किसने देखे,लाहौर की चिताभस्म मे जैसे वे भी जल मिल गए।

मै लाहौर से चलते चलते अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तिम पृष्ठो पर ये पक्तिया लिख आया था— महाकाल की गति अति विषम है, वह घडी मे काटे की भाति ठीक ठीक नपी तुली गति से नही चलती। कभी वह मन्द हो जाती है,और कभी अति भीषण तीव्र गति धारण कर लेती है। उसी के प्रभाव से व्यक्ति की भाति राष्ट्रो के जीवन का एक एक वर्ष कभी कभी सौ वर्षों के समान भारी हो जाता है,और कभी हँसते खेलते ही बात की बातमे शताब्दिया बीत जाती है। भारत के गत छब्बीस वर्ष बडे ही तेजी मे बीत है,सहस्त्राब्दियो से सुप्त और आत्म विस्मृत भारतीय राष्ट्र एक अद्भुत उमग और तेज के साथ जाग उठा है। २६ वर्षोंमे जो कुछ हुआ है उसका भारत के राष्ट्रीय और सास्कृतिक जीवनपर कैसा प्रभाव पडेगा–यह अभी नही कहा जा सकता। परन्तु यह दीख पडता है कि आगामी पाँच शताब्दी और भी द्रुतगति से आगे बढेगी, और बडी बडी घटनाएँ और बडे बडे परिवर्तन अकल्पित तेजीसे भारत मे होगे,जिनका

प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पडेगा ।

अब ये मेरे ही वाक्य बारम्बार नाना महत्त्व रूप धारण करके मेरे मस्तिष्क मे चक्कर खा रहे थे—कि मानव रक्त बहकर मेरे चरण तल तक आ पहुँचा और अब एक हिंस्र, असह्य, और दुर्धर्ष वक्तव्य तथा बीभत्स मेरा तन मन भर उठा और किसी अचिन्त्य शक्ति से ओत प्रोत होकर मेरी कलम अपना काम करने लगी । लीजिए साहब रातदिन की अनवरत गति से एक के बाद दूसरे परिच्छेद आप ही आप सम्पूर्ण होने लगे । खून खराबी, लूटपाट अत्याचार और बलात्कार के जो दृश्य घटनाएँ मेरे कानो और आँखो को आक्रान्त करने लगी, उन सबको मैं अपने सोमनाथ मे—ग्यारहवी शताब्दी के उस बर्बर आक्रान्ता के उत्पातो मे आरोपित करता चला गया । मैं नही जानता कि मेरा यह काम कहा तक साहित्यिक अपराध हो सकता है । परन्तु यदि यह अपराध ही है तो मै इसे आपसे छिपाना पसन्द नही करूँगा ।

किन्तु तीन बातो का मैने अपने सोमनाथ की रचना मे आश्रय लिया । श्री मुशी चूकि मुझसे प्रथम 'जय सोमनाथ' लिख चुके थे ... इस कथा मे मैने श्री मुशी को आप्त पुरुष मान्य किया । उनकी अनेक काल्पनिक स्थापनाओ को मैने सत्य की भाति ग्रहण कर लिया । इसमे एक तो मेरे उपन्यास मे परम्परामूलक रसोदय हुआ । दोनो उपन्यास पढने पर पाठक के मन पर उस घटना का द्विगुण प्रभाव होगा, विरोधी भावना नही पैदा होगी । इसमे रस भग का दोष नही आएगा यही मैने सोचा । ऐतिहासिक सत्यो की मैने परवा नही की । इतना ही काफी समझा कि महमूद ने सोमनाथ को आक्रान्त किया था । उसने गुजरात की लाज लूटी थी ।

फिर भी मुझे तत्कालीन वातावरण तथा घटनाओ की रूपरेखा बनाने मे गुजरात साहित्य और गुर्जर विद्वानो के लिखे संस्कृत प्राकृत आदि ग्रथो का मनन करना पडा । सोलकी वश, तत्कालीन सामाजिक एव राजनीतिक स्थिति अर्थ व्यवस्था, राजतत्र, कूटनीति चक्र साम्प्रदायिक भावना, सभी पर मैने विचार किया । सबसे महत्व पूर्ण अंश इस कालके वातावरण का जिसने गुजरात की प्रबल राजसत्ता को बहुत हानि पहुँचाई, यह था कि राजा शैव हिन्दू और मन्त्री जैन होते थे । इससे राज्य की अर्थ व्यवस्था जैनो के हाथ मे होती थी । नागरिक सेठ साहूकार भी जैन होने से राज्य मे राजा की अपेक्षा जैन मन्त्री का अधिक प्रभाव रहता था । परन्तु यह बात गुजरात ही मे थी—राजस्थानमे नही और यद्यपि गुजरात के राजा राजस्थान के भी अधीन स्वामी तथा सम्बन्धी रिश्तेदार थे, फिर भी राजस्थान मालवा, सिन्ध और गुजरात के राजाओ मे सहयोग के स्थान पर युद्ध और कलह ही का बोलबाला रहता था ।

ये हुई दो बाते । तीसरी बात मेरी अपनी थी । मित्रो की चुनौती मुझे याद थी । वही—'नहले पर दहला' वाली । 'नगरवधू' पर अभी भी मुझे मोह था । अम्ब-

पाली, सोमप्रभ, विम्बसार चम्पा की राजकुमारी,कुण्डनी आदि असाधारण रेखा चित्र है, परन्तु सोमनाथ में तो मुझे नहल पर दहला मारना था, प्रभावशाली नए चित्रों की सृष्टि करनी थी।

सब से प्रथम मेरा ध्यान हिन्दुओं के रूढ़िवाद, अज्ञान, धर्मान्धता कट्टरता तथा जातिभेद और आत्म कलह पर गया। मैंने स्वीकार किया, कि इसी ने हिन्दुओं को दलित किया, पराजित किया है। मैंने इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप—दासीपुत्र देवा, देवस्वामी फतहमुहम्मद की सृष्टि की। उसमें विद्रोह, तेजस्विता शौर्य प्रेम, कर्मठता, निष्ठा और दृढ़ता की मैं प्रतिष्ठा करता चला गया और अपनी समझ में उसे मैंने उसी की अनन्य प्रेमिका के हाथ से बध करा कर उसके जीवन को सार्थक कर दिया। दूसरी जिस अलौकिक मूर्ति की रचना मुझे करनी पड़ी—वह थी, 'शोभना', एक बाल विधवा ब्राह्मण कुमारी। इस मूर्ति में मानवीय कोमलतम प्रेम की पराकाष्ठा की स्थापना करने की मैंने चेष्टा की। सत्साहस, दर्प प्रत्युत्पन्नमति सेवा, दया, धर्म, औदार्य और आत्मार्पण की प्रतिष्ठा करने में मैंने अपनी धुंधली दृष्टि को न जाने कितनी बार एक बारगी ही अन्धा बना दिया। एक ही शब्द में, इस प्रियतमा युवती को मैंने अपनी सहृदयता के सम्पूर्ण आँसुओं में आचूड़ स्नान कराकर ही अपने पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। जो स्त्री अपने अनन्य प्रेमी का सिर काट सकती है, तथा धर्म और मानवता के शत्रु को अपना निश्चल प्यार अर्पण कर सकती है, खतरे में निश्शंक दृढ़तासे आगे बढ़तीही जाती है, उसको कितना प्यार दिया जाय, और कितनी उसकी पूजा की जाय, इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता हूँ, आप ही वह निर्णय करें। मैंने तो चुपचाप गजनी के दुर्दान्त महमूद को उसकी आँचल की छाँह में गजनी की राह भेज दिया था।

परन्तु निस्सन्देह, वह अपने आँचल की छाँह में जिस महमूद को ले गई थी, वह उसी का निर्मित पुरुष है। एक स्त्री का अपने हाथों पुरुष का निर्माण करना आसान बात नहीं है। महमूद का असल चरित्र चाहे जो हो वह एक दृढ़ योद्धा, आक्रान्ता और वीर पुरुष था। उसका जीवन ही कठिन अभियानों में बीता। पर उस व्यक्ति में मानवोचित गुण न थे यह मैं कहने का साहस कैसे करूँ? निस्सन्देह, जैसा कि मैंने पहिले कहा—विभाजन की विभीषिका से प्रभावित मन सभी सम्भव अत्याचारों का आरोप इस अभियान के नायक महमूद पर किया है परन्तु वह मेरी खीझ ही तो थी।

यह खीझ हिन्दू होने के नाते नहीं, मनुष्य होनेके नाते थी, इसलिए उसमें आकर मैं एक ऐसे महान विजेता के साथ अत्याचार ही करता रहूँ, यह मेरी साहित्यिक निष्ठा नहीं। अतः मैंने अपनी सम्पूर्ण साहित्यिक कोमलता, भावुकता और प्रेम की सम्पन्नता उसे प्रदान कर दी। मुझे यह याद ही न रहा, कि वह मनुष्यों का शत्रु, खूनी और डाकू है। अतः वह मनुष्य है, यह मैं कैसे भूल सकता था। फिर, वह मनुष्य भी साधारण

नही महान विजेता, योद्धा और नियन्ता । ग्र ा उसमे जो ग्रपगुगा । योग्य था उसकी घषणा कर, उसमे जो पूजाय था, उगनी मे पूजा की गार ‌ गा करके मने ग्रपना साहित्यिक धम पालन किया ।

जब मेने उसे दामामहता से पराजित कराया, तभी मेने उसके सच्चे शौय और मानवतत्त्व को स्पश किया । इसके बाद रमा ी ी ताल तीर म, शोभना की मुलाकात मे, सुर सागर के तट पर, तथा पीर की दरगाह म उसके सम्पूर्ण मानवतत्त्व को कोमल तथा भावुक प्यार, पीर ग्रोर ग्रात्मापगा म ग्रात प्रा ा कर के उस शोभना के ग्राचल म बाव दिया ।

मुस्लिम सस्कृति की खूनी, जि ी ग्रोर गागप्र ाति ‌ ा ‌ प्रवृत्ति पर म जितना गुस्सा प्रकट कर सकता था— मैने किया । पराजितो पर बदियो पर मने ग्रत्याचारो के जी भर कर रेखाचित्र खीचे । पर ‌ ‌ रक्तपात ग्रौर मानव विरोधी भावनाग्रो का मूलरूप जो महमूद था, उसको म ‌ ‌ रक्तपिपासु न छोड सकता था । उसे मने ‌ ‌ कर गजनी वापस भेजा है, शोभना के कल्याणाचन म ‌ ‌ विरोधी तत्त्व कह सकते है । पर मने तो उप ‌ म केवल ‌ का सहारा लिया है कि सोमनाथ महालय पर महमूद का यह ग्राक्रमण हुग्रा ग्रौर ‌ ‌ ‌ ग्रात्मक ग्राक्रमण था ।

इसी सोमनाथ ग्रौर महमूद के इतिहास ‌ ‌ ‌ ‌ ग्रौर मेरा साहित्य रस सूख न जाय—इसीका ‌ ‌ किया । कारण यही नही, कि ग्रादशवादिता की झोक म मैने ऐसा किया ‌ ‌, मनुष्यता म दुनियाँकी सबसे बडी इकाई समझता हू । म मनुष्य का पुजारी हू ग्रौर ‌ ‌ है । परन्तु 'मनुष्य', 'मानवता' नही । मानवता का म पुजारी ‌ । ‌ मानवीय श्रेष्ठ गुणो की भावना की प्रतीति कराती है । ‌ ‌ वीर, धीर, उदात्त, सच्चरित्र महापुरुष के पूजक है । ‌ ‌ मनुष्य का पुजारी हूँ । वह मनुष्य, जो घृणित, पापी, ग्रपराधी, ‌ ‌ ‌ ‌, व्यभिचारी, ग देरागो से ग्राक्रान्त, मलमूत्र ‌ ‌ ‌ है । उसमे जो यह कुरूप है उसका ग्रपना नही है ‌ ‌, उस पर ऊपर से लादा हुग्रा है । यह तो मेरा —पुजारी का काम है, कि उस ‌ ‌ कर, साफ शुद्ध करके, पवित्र—पूजनीय बनाए ग्रौर ग्रपना सम्पूर्ण प्यार ग्रौर ‌ ‌ ‌ कर, जैसे मल मूत्र से लतपत ग्रपने बच्चे को मा करती है ।

वहा मैने किया । सत्रह बार भारत का तलवार ग्रौर ग्राग ‌ भग करने वाला, लाखो बदियो को निरीह पशुग्रो की भाँति गजनी के बाजारो म बेचने वाला, दुर्दात

लुटेरा महमूद मेरे हाथ लग गया। गुस्से और विरक्ति से उसके सब कुकृत्य मैने देखे। परन्तु उसका अच्छिन्न मानव तत्त्व भी तो मुझे देखना था, सो अवसर पाकर मैने उसका सब कलुष धो पोछ कर, उसे साफ शुद्ध करके, एक कोमल भावुक, आतुर प्रेमी बनाकर, प्रेम तत्त्व की प्रतिनिधि एक रमणीरत्न के आचल की छाह मे उसे उसकी गजनी रवाना कर दिया। गङ्गसवज्ञ के रूप मे मैने उसे आशीर्वाद दिया, और आशीवाद का तत्त्व भी मैंने भीमदेव को बता दिया। फिर दामो महतासे पराजित करा—उसे उसका दोस्त बना—उसके सम्पूर्ण पौरुष को सत्कृत किया। परन्तु यह काफी न था। मैने शोभना का रूप धारण किया, और उस रूपमे मैंने उस दुर्दान्त लुटेरे को कितना धोया माजा, कितना मानवता के तत्त्वो मे उसे ओत प्रोत किया, इसका फैसला तो मै आप ही पर छोडे देता हूँ। अब यहा कही मैने चूक ही की है तो आप मेरे कान पकड सकते है, परन्तु आपकी बात मै मानूगा थोडे ही। मै तो यही कहे जाऊँगा, कि मैंने जो कुछ किया ठीक किया। विश्व का विद्रोह करने पर भी यही कहूँगा।

चौलादेवी मेरे उपन्यास की नायिका है। उसकी मूर्तिको जितना अमल धवल, कोमल, भावुक, बनाना शक्य था, बनाकर मैने सारे सघर्षो के इस पारसे उस पार तक पहुँचा कर, फिर अपने प्रियतम के वक्ष से लगाकर उसे बिदा कर दिया है। इस 'बिदा' की वेदना आसू नही बहान देती, मूर्छित कर देती है। भीमदेव निस्स देह शौर्य का मूर्त अवतार है। वह इस उपन्यास का नायक भी है, परन्तु उसके शौर्य का ही उत्कर्ष दिखाकर मैं सन्तुष्ट हो गया। उससे बडा पुरुष तो मैं उसे मान ही न सका।

सत्य और अहिंसा का तत्त्व

१९५० के अन्त मे एक छोटी सी किन्तु सर्वथा नवीन पद्धति पर 'पगध्वनि' नामक नाटिका मैने राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की प्रेरणा से लिखी थी। ८ मई के अपराह्न मे मैने उनसे मुलाकात की और साहित्य की प्रगति तथा साहित्य के द्वारा भारतीय जन जन को शान्तिप्रिय बनाये रखने के विधि विधानो पर विचार परामर्श हुआ। मेरा कहना था कि भावी भारत को व्यवस्थित करने मे साहित्यकार ही एक मात्र सहायक होगा राजनीतिज्ञ नही। राष्ट्रपति से इस भेट का मेरा उद्देश्य यह उलाहना देना भी था कि वर्तमान भारतीय गणतन्त्रीय सरकार ने साहित्य परिजनो का एक-बारगी ही त्यागन कर दिया है और वह भारत को पाश्चात्य राजनीति के ध्वस्त मार्ग पर घसीटे लिए जारही है। सैतालीस मिनट की लम्बी बातचीतके बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि साहित्यजनो को गांधीजी के सत्य और अहिंसाके तत्त्वो को अपनी साहित्य भावना मे आत्मसात् करना चाहिए। राष्ट्रपति ने मुझसे अनुरोध किया कि मै इस प्रकार के साहित्य की रचनामे सक्रिय भाग लू और अन्य साहित्य परिजनो को भी प्रेरित करूँ। मैने यह छोटी सी नाटिका लिखकर इस दिशा मे स्वय ही पहला कदम उठाया।

नहीं महान विजेता, योद्धा और निपुण था। ... था उसकी घर्षणा कर, उसमें जो पूजाय था, ... और ... करके मैंने अपना साहित्यिक धर्म पालन किया।

जब मैंने उस नामोमहत्ता ... पराजित ... उसके गन्ने शौर्य और मानवतत्त्व को स्पर्श किया। ... शोभना की मुलाकात में, सुर सागर के तट पर, तथा पीर ... मानवतत्त्व को कोमल तथा भावुक प्यार, पीर और आत्मसमर्पण ... शोभना के आंचल में बांध दिया।

मुस्लिम संस्कृति का ... और ... प्रवृत्ति पर मैं जितना गुस्सा प्रकट कर सकता था ... पराजितों पर ... पर मैंने अत्याचारों के जी भर कर ... खींचे। पर ... और मानव विरोधी भावनाओं का ... रक्तपिपासु न छोड़ सकता था। उसे मैंने ... गजनी वापस भेजा है, शोभना के ... विरोधी तत्त्व कह सकते हैं। पर मैंने तो ... किया है कि सोमनाथ महालय पर महमूद का ... आक्रमण ... आक्रमण था।

इसी सोमनाथ और महमूद के ... लगा और मेरा साहित्य रस सूख न जाय—... किया। ... नहीं, कि आदर्शवादिता की झोंक में मैंने ... दुनियाँ की सबसे बड़ी इकाई समझता हूँ। मैं मनुष्य का पुजारी हूँ और ... है। परन्तु 'मनुष्य', 'मानवता' नहीं। मानवता ... श्रेष्ठ गुणों की भावना की प्रतीति कराती है। ... वीर, उदात्त, सच्चरित्र महापुरुष ... पुजारी हूँ। वह मनुष्य, जो घृणित, पापी, अपराधी, ... व्यभिचारी, गंदे रोगों से आक्रान्त, ... है। उसमें जो यह कलुष है उसका ... पर ऊपर से लादा हुआ है। यह तो मेरा ... साफ शुद्ध करके, पवित्र—पूजनीय बनाना और ... प्यार और ... मल मूत्र से लतपत अपने बच्चे को ... है।

यही मैंने किया। सत्रह बार भारत ... और ... नष्ट करने वाला, लाखों बन्दियों को निरीह पशुओं की भाँति गजनी ... दुर्दान्त

लुटेरा महमूद मेरे हाथ लग गया। गुस्से और विरक्ति से उसके सब कुकृत्य मैंने देखे। परन्तु उसका प्रच्छिन्न मानव तत्त्व भी तो मुझे देखना था, सो अवसर पाकर मैंने उसका सब कलुष धो पोंछ कर, उसे साफ शुद्ध करके, एक कोमल भावुक, आतुर प्रेमी बनाकर, प्रेम तत्त्व की प्रतिनिधि एक रमणीरत्न के आंचल की छांह में उसे उसकी गजनी रवाना कर दिया। गङ्गसर्वज्ञ के रूप में मैंने उसे आशीर्वाद दिया, और आशीर्वाद का तत्त्व भी मैंने भीमदेव को बता दिया। फिर दामो महताासे पराजित करा—उसे उसका दोस्त बना—उसके सम्पूर्ण पौरुष को सत्कृत किया। परन्तु यह काफी न था। मैंने शोभना का रूप धारण किया, और उस रूपमें मैंने उस दुर्दान्त लुटेरे को कितना धोया माजा, कितना मानवता के तत्त्वों में उसे ओत प्रोत किया, इसका फैसला तो मैं आप ही पर छोड़े देता हूँ। अब यहां कहीं मैंने चूक ही की है तो आप मेरे कान पकड़ सकते हैं, परन्तु आपकी बात मैं मानने वाला थोड़े ही। मैं तो यही कहे जाऊँगा, कि मैंने जो कुछ किया ठीक किया। विश्व का विरोध करने पर भी यही कहूँगा।

चौलादेवी मेरे उपन्यास की नायिका है। उसको मैंने जितना अमल धवल, कोमल, भावुक, बनाना शक्य था, बनाकर मैंने सारे संघर्षों के इस पारसे उस पार तक पहुँचा कर, फिर अपने प्रियतम के वक्ष से लगाकर उसे बिदा कर दिया है। इस 'बिदा' की वेदना आसू नहीं बहाने देती, मूर्छित कर देती है। भीमदेव निस्सन्देह शौर्य का मूर्त अवतार है। वह उस उपन्यास का नायक भी है परन्तु उसके शौर्य का ही उत्कर्ष दिखाकर मैं संतुष्ट हो गया। उसमें देव पुरुष तो मैं उसे मान ही न सका।

सत्य और अहिंसा का तत्त्व

१९५० के आरम्भ में एक छोटी सी किन्तु सर्वथा नवीन पद्धति पर 'पगध्वनि' नामक नाटिका मैंने राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की प्रेरणा से लिखी थी। ८ मई के अपराह्न में मेरी उनसे मुलाकात की और साहित्य की प्रगति तथा साहित्य के द्वारा भारतीय जन जन को शान्तिप्रिय बनाये रखने के विधि विधानों पर विचार परामर्श हुआ। मेरा कहना था कि भावी भारत को व्यवस्थित करने में साहित्यकार ही एक मात्र सहायक होगा राजनीतिज्ञ नहीं। राष्ट्रपति से उस भेंट का मेरा उद्देश्य यह उलाहना देना भी था कि ... भारतीय गणतन्त्रीय सरकार ने साहित्य परिजनों का एक बारगी ही त्याग कर दिया है और वह भारत को पाश्चात्य राजनीति के ध्वस्त मार्ग पर घसीटे लिए जाती है। सवा तीन मिनट की लम्बी बातचीतके बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि साहित्यजनों को गांधीजी के सत्य और अहिंसाके तत्वों को अपनी साहित्य भावना मे आत्मसात् करना चाहिए। राष्ट्रपति ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं इस प्रकार के साहित्य की रचनामें सक्रिय भाग लूँ और अन्य साहित्य परिजनों को भी प्रेरित करूँ। मैंने यह छोटी सी नाटिका लिखकर इस दिशा में स्वयं ही पहला कदम उठाया।

सब लोग यह बात जानते है फिर भी मै कहे देता हू-- कि मै न तो गाधी जी का भक्त हूँ और न काग्रेस का ही आदमी हू । गाधी सम्प्रदाय से भी मेरा कुछ वास्ता नही है । अत मेरी यह रचना इन सब वासना और भावनाओ से परे शुद्ध साहित्यिक वस्तु है । गाँधी जी को मै प्यार अवश्य करता रहा हूँ । जब तक वे रहे तब तक भी, और उसके बाद अधिकाधिक । मै केवल एक बार उनसे मिला और फिर कभी कोई सम्पर्क नही रखा । मेरी इस रचना मे वह प्यार ही प्यार है । उस प्यार के साथ कुछ आँसू भी है, जो प्रिय वियोग से आप ही उमड आते है ।

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति तो है ही—हमारे साहित्य परिजन भी है । साथ ही वे परम साधु है । ऐसे कि उन पर दया भी आती है और प्यार भी उमडता है । इसी से मै उनसे मिला । यो मैं इस स्वदेशी सरकार से खुश नही हूँ । यह सरकार साहित्यकारो का कोई भला नही कर सकती, व्यक्तिगत सम्पर्कों का हम कोई मूल्य नही समझते, दिन दिन हम उससे और वह हमसे दूर होती जा रही है । हम इस राज्य मे प्रतिष्ठित नागरिक नही है । प्रतिष्ठित नागरिक कदाचित् वे सदाचार फैलाने वाली फिल्म तारिकाए है, जिनके साथ खडे होकर राष्ट्रपति फोटो खिचवाते है या वे मिनिस्टर, जिनके घर नित्य दिन मे ईद और रात को दिवाली मनाई जाती है और जिन्हे अपने विभागो के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञान और दायित्व नही । अथवा वे घूसखोर और चोरबाजारी करने वाले उठाईगीर, जो आए दिन सरकारी दावतोमे राष्ट्रपति भवन की शोभा बढाते है । हम लोग तो सडक के एक किनारे खडे होकर उनकी बडी बडी मोटरो को आते जाते देखकर अपनी आँखे ठन्डी कर सकते है यदि पुलिस के धक्के खाने की जोखम बर्दाश्त कर सके तो ।

इस नाटिका मे मैंने सर्वथा नई पद्धति का प्रयोग किया है । नाटको की पुरानी सब परम्पराओ का उल्लघन किया है । एक अकमे केवल एक दृश्य है। दृश्योका परस्पर सम्पर्क नही है, नाटिका मे कोई कथानक भी नही है । केवल भावना के रेखाचित्र है । भूमि मे केवल प्यार की पीडा है, प्रस्तावना मे पूजा है, प्रथम अक मे गाँधी दर्शन, दूसरे मे गाधी भावना, तीसरे मे गाँधी प्रभाव, चौथे मे गाँधी जीवन और पाँचवे मे विरोध निराकरण और छटे मे गाँधी आदर्श है । देश काल से अक परस्पर सम्बन्धित नही है।

नाटिका मे कुछ गहरे तत्व है । उनका सम्बन्ध गाँधी दर्शन से है । गाधी दर्शन, धर्म और राजनीति के कूट सम्बन्धो पर आधारित है । उसका प्रकट रूप 'सत्य और अहिसा' है । इसी से मैं गाधी जी की विकास भावना और सत्य अहिसा की रूपरेखा की यहा थोडी विवेचना करूँगा ।

गाँधी जी के 'सत्याग्रह' सिद्धान्त की आधार शिला पाश्चात्य है । रशियन ऋषि टाल्सटाय ने अपनी पुस्तक मे सत्याग्रह कल्पना की एक विस्तृत योजना लिखी थी । गाधी

जी ने उसे व्यावहारिक रूप दिया, कहना चाहिए— राजनीतिक लडाई मे गाधी जी ने रूस से पहले सत्याग्रह प्रयोग किया। इस प्रयोग मे एक सास्कृतिक तत्व पाश्चात्य था दूसरा भारतीय। पाश्चात्य तत्व 'देश भक्ति' था और भारतीय तत्व 'सत्य अहिसा'।

पहले हम देश भक्ति' की विवेचना करेगे। देश भक्ति भारतमे अग्रजो के साथ साथ आई। इसे हम पाश्चात्यो का देवता कह सकते है। वदिक काल मे आर्यो के देवता इन्द्र थे, अशोक काल मे बुद्ध, शको के काल मे महादेव और गुप्तो के काल मे वासुदेव। उसी प्रकार अग्रजी राज्य मे भारत का सबसे प्रधान देवता हुआ 'देश'। ज्यो ज्यो भारत मे सत्तावन के विद्रोह के बाद अग्रेजी अमल जमकर बठता गया, यह नया देवता हिन्दू समाज के मध्यवर्ग को सर्वप्रिय होता गया। मुसलमानो ने हिन्दुओ पर अल्लामिया को लादने के लिए बडे बडे जोर जुल्म किये—परन्तु हिन्दुओ ने उस देवता को राजी खुशी स्वीकार नही किया। पर इस पाश्चात्य देव को हिन्दू समाज के सब अग ब्राह्मण, आर्य, जैन सिक्ख— आदि सर्वोपरी देवता समझते चले गए। कहना चाहता हूँ कि इस देवता पर सत्तावन के विद्रोह के बाद से अब तक सभ्य युगमे जितनी नर बली दी गई—उतनी शायद ही किसी देवता को जगली युग मे दी गई होगी। इसलिए पाश्चात्य सस्कृति परभी यहा दो शब्द कहने पडे जो इस 'देश देवता की आधार शिला है।

मिस्र और बबिलोनिया म हजारो वर्षों के पुराने साम्राज्यो का जब नाश हो गया तब ग्रीक लोगो का उदय हुआ। ससार के इतिहास मे उन्होने ही सबसे प्रथम यह सिद्ध कर दिखाया कि साधारण जनता राजा की सहायताके बिना भी राज्य कर सकती है। यद्यपि उनमे गुलामी की प्रथा थी, परन्तु मध्यम श्रेणी के सामान्य जनो को अपना नेता चुनने का उन्होने अधिकार दिया। बुद्ध काल मे भारत मे भी मल्ल शाक्य वशी आदि गणतन्त्र थ, परन्तु उसमे मध्यम वर्ग के लोगो को राज्य शासनके अधिकार नही थे। एक अथवा अनेक गावो के सर्वाधिकारी जमीदार— जो राजा कहाते थे—एकत्रित होकर अपने म से किसी को महाराज चुनते और उसके अनुरोध से राज्य चलाते थे। पर ग्रीक म सब मध्यमवर्गीय नागरिकों को अपना नेता चुनने का अधिकार था। प्राचीन ग्रीक किस प्रकार जनतन्त्र का सचालन करते थे, इस पर प्लेटो की प्रसिद्ध पुस्तक रिपब्लिक म बहुत कुछ प्रकाश डाला गया।

ग्रीक लोग केवल प्रजातन्त्री राज्यो ही की स्थापना मे अग्रसर न थे। कला-कौशल और शौर्य तथा दर्शन एव विज्ञान मे भी उनकी गति ससार की सब जातियो से बढी चढी थी। कुछ काल बाद उनके अस्त होने पर रोमन लोगो का उदय हुआ। पर वे ग्रीको के समान बुद्धिमान न थे। ग्रीको को उन्होने पकडकर दास बनाया, पर ये दास ही उनके गुरू बन गए। रोमन लोगो ने कला, कौशल, साहित्य आदि जो कुछ सीखा—उन्ही ग्रीक दासो से। रोमन लोगो ने भूमध्य सागर पर प्रभुत्व

स्थापन करनेके लिए बडे बडे युद्ध किए और उनके राज्यका बडा विस्तार हुआ। यद्यपि रोम मे प्रजातन्त्र प्रणाली अवश्य थी, पर बाहरके देशो पर उनका निरकुश शासन था। इस निरकुश शाही का ही यह परिणाम हुआ कि स्वयं रोम ही मे साम्राज्यशाही की स्थापना हो गई।

रोमन साम्राज्य नष्ट होने पर ईसाई युग का उदय हुआ, पर रोमन साम्राज्य का प्रभाव यूरोप पर बना ही रहा। रोमन साम्राज्य का नेता पोप बन गया, और उस मध्य युगमे पोप की तूती बोलती रही। इसी समय मगोलो ने और फिर तुर्कों ने योरोप को रौदना प्रारम्भ किया। यहा तक कि सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि जसे सारा योरोप ही मुसलमान बन जायगा। परन्तु योरोप मे तब तक अनेक सम्पन्न नगर बस चुके थे, और उनके व्यापार बहुत बढ गए थे, उन्ही से यूरोप का भीतरी सुधार होता चला गया। कुस्तुनतुनियाँ उन दिनो योरोप के व्यापार का मध्यमार्ग था। पर अभी तक उन्हे चीन और भारत का कुछ ज्ञान न था। धीरे धीरे पुर्तगीज, डच लोगो की साहसिक यात्राओ तथा युद्धो ने उन्हे भारत, चीन और अमेरिका से परिचित कराया। इन जातियो के बाद भारत मे फ्रेंच और अग्रेज आए और काफी सघर्ष के बाद—प्लासी के युद्ध करने पर भारत मे उनकी जड जम गई। यह ई० स० १७५७ की बात है। आज इस राज्य का और कल उस राज्य का पक्ष लेकर उन्होने सारे भारतवर्ष पर अधिकार जमा लिया। पर, देशी राज्यो को वह अधिकार मे न ले सके। यदि अग्रेज उन देशी राज्यो को भी तब अपने अधिकार मे ले लेते तो भारत का बहुत भला होता परन्तु लार्ड डलहौजी के जमाने मे लोग यही समझते थे कि देशी राज्य हिन्दुस्तान की सस्कृति है। इसी कारण सन् सत्तावन मे भारतीय सनिक इन अधमरे राजाओ के राज्याधिकार के लिए लड पडे। उसका फल यह हुआ कि अग्रजो ने इन मुर्दार राजाओ को उसी अधमरी अवस्थामे बनाए रखा, और सन् १८५८ मे रानी विक्टोरिया की घोषणा के बाद ये सब राजा लोग भी ब्रिटिश शासन की गाडी मे जोत दिए गए। इनकी स्थिति ऐसी रही कि ये अपनी प्रजा पर तो मनमानी स्वेच्छाचारिता कर सकते थे, पर अग्रजो के विरुद्ध जरा भी सिर उठाने पर उन्हे कुचल दिया जाता था, और उनकी छाती पर रेजीडेण्ट का मूसल इस काम के लिए सदैव तयार रहता था।

विचारने की बात यह है कि पोर्तुगीज, डच, फ्रेन्च और अग्रज इन चार योरोपियन जातियो ने भारत पर अधिकार जमाने का यत्न किया, पर विजयी अग्रेज ही हुए। इसका कारण वह औद्योगिक क्रान्ति थी, जो पन्द्रहवी शताब्दी मे सभी यूरोपियन देशो मे आरम्भ हो गई थी और अग्रेज उसमे सबसे बढ गए थे। इग्लैंड की सरकारो और मध्यम वर्ग के लोगो ने इससे बहुत पहले ही राजा पर अपने अधिकार 'माग्ना कर्टा'

द्वारा प्राप्त कर लिए थे। सत्रहवी शताब्दी म जब राजा चार्ल्स ने इन अधिकारो मे हस्तक्षेप करना चाहा तो अंग्रेजो ने अपने उस राजा का सिर काट लिया। इसके बाद इग्लण्ड के राजा के अधिकार कम ही होते गए, पर चतुर अंग्रेजो को प्रजातन्त्र की स्थापना समुचित प्रतीत न हुई, उन्हे विजित प्रदेशो और उपनिवेशो पर स्वेच्छाधिकारी शासन के लिए एक राजा की आवश्यकता थी। बिना राज सस्था के वे भारत पर भी अपना अबाध शासन कायम नही रख सकते थे। जब कभी पार्लियामेण्ट गलती करती, झट उससे बच निकलने के लिए राजा से ढाल का काम लिया जाता था। लार्ड कर्जन ने जब हिन्दुओ का महत्त्व घटाने के लिए बग भग किया तो सारे ही भारत मे आग लग गई। अंग्रेजो ने दमन करने का अवसर न देखा—यूरोप मे युद्धाग्नि सुलग रही थी, और युद्ध आरम्भ होने के पहले ही भारत के क्षोभ को दूर करना श्रेयस्कर था इसलिए जार्ज पचम को भारत भेजकर बग भग रद्द करा दिया। राजा का यह अच्छे से अच्छा कूटनीतिक उपयोग था।

पुर्तगाल और स्पेन पोप के फन्दे म फसे रहकर कमजोर बन गए, हालण्ड बहुत छोटा सा देश था, फ्रास मे राज सत्ता के विपरीत रक्त क्रान्ति हो गई, इन सब सयोगो से भारत म पैर फैलाने के लिए अंग्रेजो को बहुत अवसर मिल गए और प्रगति की दौड म अंग्रेज यूरोप के सब देशो से आगे बढ गए।

पाश्चात्य सस्कृति से हमारा सम्बन्ध अंग्रेजो ही के द्वारा हुआ। इग्लण्ड मे मध्यम वर्ग ने व्यापार पर अधिकार करके सरकारी सत्ता पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। हमारे राजा ऐयाश और घमण्डी थे, साधारण बात पर लड पडते थे, परन्तु अंग्रेजो को युद्ध नही, व्यापार चाहिए था, युद्ध करना भी पडता तो व्यापार के लिए। अभिमान तो उन्हे था ही नही। मुगलो के दरबारो तथा पेशवाओ के यहा उनका मजाक उडाया गया, अपमान भी किया गया, पर वे पीछे नही हटे। सबसे बडी बात यह है कि व्यापार के कारण उनका हाथ कभी तग न रहा, पैसा हमेशा उनके हाथो खेलता रहा। इससे वे सेना का वेतन सदा समय पर देते रहे, जब कि राजा महाराजाओ की सेनाओ के वेतन कभी समय पर मिलते ही न थे। इसीसे उनकी सेना व्यवस्थित रही, और सदैव वे जीतते ही गए।

जब अंग्रेजो के द्वारा पाश्चात्य सस्कृति की लहरे भारत म काबुल तक जा टकराई तो भारत की केवल राजनीतिक ही नही—धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर भी भारी क्रान्तिकारी प्रभाव पडा। उन स्वेच्छाचारी राजाओ और नवाबो के कारण म लोगो को अंग्रेजो की राजनीति बहुत भा गई, और आज तक वृद्ध कहते लगे कि अंग्रेजी राज्य बहुत अच्छा है। पर उसके साथ ही बाइबिल अपना काम करने लगी। लोग धर्मपरिवर्तन करने लगे। खासकर दलित हरिजन।

इसी समय राजा राममोहन राय ने पाश्चात्य ज्ञान की, पर उसकी ईश्वरी सत्ता को आत्मसात् किया। यह मुस्लिम धर्म के अनुरूप भी था। उन्होंने इसके लिए उपनिषद् का सहारा लिया और ब्रह्म समाज की स्थापना की। उन्होंने जाति भेद को बहिष्कृत किया। इसका वर्णाश्रम धर्म के अनुयायियों ने विरोध प्रदर्शन किया, परन्तु शिक्षित वर्ग ने इस धर्म को अपनाया। परन्तु अंग्रेजी भाषा के द्वारा अंग्रेजी इतिहास के अध्ययन करने से ब्रह्म समाज की प्रगति रुक गई। अंग्रेजों ने सरकार के आग्रह से भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ किया और नौकरी की आशा से उच्चवर्ग के हिन्दू अंग्रेजी सीखने लगे। अंग्रेजों ने इस बात का कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा था कि ईसाई बने बिना नौकरी न दी जायगी। फलत अंग्रेजी पढ़ लिखकर उच्चवर्ग के हिन्दू ही अंग्रेजों के नौकर बनकर अंग्रेजी राज्य की जड़ जमाने में बड़े कारगर प्रमाणित हुए। उनके द्वारा साहब लोगों को भारतीय घरों में क्या कहा क्या हो रहा है यह सब मालूम हो गया। चूंकि सरकारी नौकरियों में ब्राह्मधर्म का उपयोग न हुआ तथा उसमें आस्था के लिए कोई स्थान ही न था, इससे ब्राह्म धर्म का समर्थन नहीं मिला, उसकी प्रगति रुक गई। केवल विलायत गए लोग जिन्हें ब्राह्मण जाति बहिष्कृत कर देते थे, ब्राह्मधर्म अंगीकार कर लेते थे।

अंग्रेजी सीखने पर हिन्दुओं को यह पता लगा कि अंग्रेजों के उत्कर्ष का मूल कारण उनकी बाइबिल या ईसाई धर्म नहीं है देश भक्ति है। अंग्रेज अपने देश के लिए बड़ी से बड़ी हानि उठा सकता है, पर हिन्दू नहीं। हिन्दू अधिक से अधिक अपने धर्म के लिए कष्ट सह सकता था। देश की कल्पना तो उसके थी ही नहीं। इसीसे उन्होंने मुसलमानों को देश विजय कर लेने दिया, पर धर्म के लिए कटते मरते रहे। अब अंग्रेजी भावना से ओत प्रोत शिक्षित हिन्दू वर्ग में देश भक्ति का भाव उदित हुआ और उसमें यह धारणा उदित हुई कि हिन्दुओं में स्वाभिमान जाग्रत किया जाय तथा देश की एकता के लिए एक धर्म और एक भाषा की भी आवश्यकता का उन्होंने अनुभव किया। इस कार्य में सबसे बढ़कर ऊँची आवाज उठाई स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने। उत्तर भारत में एक प्रबल शक्ति का स्रोत प्रवाहित कर दिया—जिसमें एक वैदिक धर्म जो सब हिन्दुओं से समर्पित था, एक आर्य भाषा और एक देशीयता की भावना मूलबद्ध थी। सारा देश सामूहिक रूप से दयानन्द की आवाज से जाग उठा।

इसके बाद ही दक्षिण में लोकमान्य तिलक ने शिवाजी उत्सव और गणेश उत्सवों की नींव डाली। शिवाजी मराठा राज्य संस्थापक थे और गणेश पेशवाओं के देवता। दोनों ही महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय थे। इसीलिए दोनों ही को आगे लाकर हिन्दुओं में देश भक्ति और राष्ट्राभिमान जाग्रत करने की युक्ति लोकमान्य तिलक ने खोज निकाली। इसका अच्छा फल हुआ।

गांधी जी ने अपना कार्य भारत में नहीं, दक्षिण अफ्रीका में प्रारम्भ किया। वे

एक मुसलमान व्यापारी के मुकदमे की पैरवी करने को वहां गए और वहीं वकालत करने लगे। वहां अपने देश भाइयों के साथ अत्याचार होते देखकर उसका प्रतिकार करने का सत्याग्रह का प्रयोग करने लगे। दक्षिण अफ्रीका मे नीग्रो लोग बहुत थे पर वे बुद्धिमान नहीं थे इसलिए व गोरो का काम अच्छी तरह नही करते थे। इससे अंग्रेजो ने भारत से बहुत से मजदूर कुली निश्चित अवधि तक नौकरी करने की प्रतिज्ञा पर भरती किए। अवधि समाप्त होने पर भी वे लोग वहीं बसकर छोटा मोटा व्यवसाय करने लगे। उनमे से कुछ समृद्ध भी हो गए। इन सबके प्रति वहां के गोरे अधिकारियों का बड़ा भारी पक्षपात था। गांधी जी ने वहां बहुत कुछ किया। पीछे महायुद्ध आरम्भ होने पर वह भारत लौट आए और स्वराज्य के लिए समूचे भारत मे सत्याग्रह करने का आयोजन करने लगे। परन्तु उनके मार्ग मे बड़ी कठिनाइयां थी। जिनमे सबसे बड़ी कठिनाई हिन्दू मुसलमानो की फूट थी। परन्तु सन् १९१६ मे लखनऊ मे कौंसिल के स्थानो के सम्बन्ध मे हिन्दू मुसलमानो मे समझौता हो गया, उधर योरपीय महायुद्ध की समाप्ति पर तुर्की के समर्थन मे भारतीय मुसलमानो ने खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। इसी समय अंग्रेजो ने रौलट एक्ट पास करके भारत के नरमदली नेताओ को नाराज कर दिया। इन सब परिस्थितियो से लाभ उठाकर गांधी जी ने सत्याग्रह का भारत मे श्रीगणेश किया। इसी समय पंजाब मे डायर द्वारा अमृतसर का हत्या काण्ड हुआ तथा वहीं मार्शल ला द्वारा दमन किया गया। अब पंजाब का मार्शल ला और हत्याकाण्ड, खिलाफत आन्दोलन, रौलट एक्ट का विरोध, ये सब कारण एकत्र होने से गांधी जी का सत्याग्रह सहसा तीव्र हो उठा। संसार की आंख उधर जा लगी, अंग्रेज भी घबरा गए। पर उसी समय चौरा चौरी काण्ड हो गया और गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया—अंग्रेजो का संकट टल गया, उन्होने अवसर पाकर गांधी जी को जेल मे भेज दिया।

दो वर्ष बाद जब गांधी जी बाहर आए तो उन्होने खादी, राष्ट्रीय शिक्षा प्रचार, हिन्दू मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता निवारण इन चार विधायक कार्यो का भारत मे प्रसार किया।

१९२९ मे श्री जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के अध्यक्ष की कुर्सी से कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित किया। कांग्रेस अधिवेशन समाप्त होने पर गांधी जी ने ११ शर्तें वाइसराय के सामने पेश की, तथा मार्च मे नमक सत्याग्रह छेड़ दिया। एक महीने ही मे उन्हें पकड़ कर यरवदा जेल मे ठूंस दिया गया। परन्तु सत्याग्रह का वेग कम नहीं हुआ। वाइसराय को मार्शल ला स्थगित करना पड़ा और अन्त मे गांधीजी के साथ विराम सन्धि करनी पड़ी। सन्धि वार्तालाप के लिए गांधीजी इंग्लैण्ड गए। वहां उनका अपूर्व स्वागत हुआ। बादशाह ने भी उनसे भेंट की। परन्तु संघर्ष बढ़ना ही

इसी समय राजा राममोहन राय ने ब्राह्मिन या वाणी पर उसकी सर्वेश्वरी सत्ता को आत्मसात् किया। यह मुस्लिम धर्म से अनुप्राणित था। उन्होंने इसके लिए उपनिषद् का सहारा लिया और ब्रह्म समाज की स्थापना की। उन्होंने जाति भेद को बहिष्कृत किया। इसका पण्डित मण्डली ने विरोध प्रकट किया परन्तु शिक्षित वर्ग ने इस धर्म को अपनाया। परन्तु अंग्रेजी भाषा के द्वारा यूरोपीय इतिहास के अध्ययन करने से ब्रह्म समाज की प्रगति रुक गई। अंग्रेजों ने सरकारी मांग से भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ किया और नौकरी की आशा से उच्चवर्ग के हिन्दू अंग्रेजी सीखने लगे। अंग्रेजों ने इस बात का कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा था कि ईसाई बने बिना नौकरी न दी जायगी। फलत अंग्रेजी पढ पढकर उच्चवर्गी हिन्दू ही अंग्रेजों के नौकर बनकर अंग्रेजी राज्य की जड जमाने में बडे कारगर प्रमाणित हुए। इनके द्वारा साहब लोगो को भारतीय घरों में क्या क्या हो रहा है यह सब मालूम हो गया। चूंकि सरकारी नौकरियो में ब्राह्मधर्म का उपयोग न हुआ तथा उसमें ब्राह्मण के लिए कोई स्थान ही न था, इससे ब्राह्म धर्म को समर्थन नहीं मिला, उसकी प्रगति रुक गई। केवल विलायत गए लोग जिन्हें ब्राह्मण जाति बहिष्कृत कर देते थे, ब्राह्मधर्म अंगीकार कर लेते थे।

अंग्रेजी सीखने पर हिन्दुओं को यह पता लगा कि अंग्रेजों के उत्कर्ष का मूल कारण उनकी बाइबिल या ईसाई धर्म नहीं है, देश भक्ति है। अंग्रेज अपने देश के लिए बडी से बडी हानि उठा सकता है, पर हिन्दू नहीं। हिन्दू अधिक से अधिक अपने धर्म के लिए कष्ट सह सकता था। देश की कल्पना तो उन्हें थी ही नहीं। इसीसे उन्होंने मुसलमानो को देश विजय कर लेने दिया, पर धर्म के लिए कटते मरते रहे। अब अंग्रेजी भावना से ओत प्रोत शिक्षित हिन्दू वर्ग में देश भक्ति का भाव उदित हुआ और उनमें यह धारणा उदित हुई कि हिन्दुओं में देशाभिमान जाग्रत किया जाय तथा देश की एकता के लिए एक धर्म और एक भाषा की भी आवश्यकता का उन्होंने अनुभव किया। इस कार्य में सबसे बढ़कर ऊँची आवाज उठाई स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने। उत्तर भारत में एक प्रबल शक्ति का स्रोत प्रवाहित कर दिया—जिसमें एक वैदिक धर्म जो सब हिन्दुओं से समर्पित था, एक आर्य भाषा और एक देशीयता की भावना मूलबद्ध थी। सारा देश सामूहिक रूप से दयानन्द की आवाज से जाग उठा।

इसके बाद ही दक्षिण में लोकमान्य तिलक ने शिवाजी उत्सव और गणेश उत्सवो की नींव डाली। शिवाजी मराठा राज्य संस्थापक थे और गणेश पेशवाओं के देवता। दोनों ही महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय थे। इसीलिए दोनों ही को आगे लाकर हिन्दुओं में देश भक्ति और राष्ट्राभिमान जाग्रत करने की युक्ति लोकमान्य तिलक ने खोज निकाली। इसका अच्छा फल हुआ।

गांधी जी ने अपना कार्य भारत में नहीं, दक्षिण अफ्रीका में प्रारम्भ किया। वे

एक मुसलमान व्यापारी के मुकदमे की पैरवी करने को वहां गए और वहीं वकालत करने लगे। वहां अपने देश भाइयों के साथ अत्याचार होते देखकर उसका प्रतिकार करने को सत्याग्रह के प्रयोग करने लगे। दक्षिण अफ्रीका में नीग्रो लोग बहुत थे पर वे बुद्धिमान नहीं थे इसलिए वे गोरों का काम अच्छी तरह नहीं करते थे। इससे अंग्रेजों ने भारत से बहुत से मजदूर कुली निश्चित अवधि तक नौकरी करने की प्रतिज्ञा पर भरती किए। अवधि समाप्त होने पर भी वे लोग वहीं बसकर छोटा मोटा व्यवसाय करने लगे। उनमें से कुछ समृद्ध भी हो गए। इन सबके प्रति वहां के गोरे अधिकारियों का बड़ा भारी पक्षपात था। गांधी जी ने वहां बहुत कुछ किया। पीछे महायुद्ध आरम्भ होने पर वह भारत लौट आए और स्वराज्य के लिए समूचे भारत में सत्याग्रह करने का आयोजन करने लगे। परन्तु उनके मार्ग में बड़ी कठिनाइयां थीं। जिनमें सबसे बड़ी कठिनाई हिन्दू मुसलमानों की फूट थी। परन्तु सन् १९१६ में लखनऊ में कौंसिल के स्थानों के सम्बन्ध में हिन्दू मुसलमानों में समझौता हो गया, उधर योरपीय महायुद्ध की समाप्ति पर तुर्की के समर्थन में भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। उसी समय अंग्रेजों ने रौलट एक्ट पास करके भारत के नरमदली नेताओं को नाराज कर दिया। इन सब परिस्थितियों से लाभ उठाकर गांधी जी ने सत्याग्रह का भारत में श्रीगणेश किया। इसी समय पंजाब में डायर द्वारा अमृतसर का हत्याकाण्ड हुआ तथा वहीं मार्शल ला द्वारा दमन किया गया। अब पंजाब का मार्शल ला और हत्याकाण्ड, खिलाफत आंदोलन, रौलट एक्ट का विरोध, ये सब कारण एकत्र होने से गांधी जी का सत्याग्रह सहसा तीव्र हो उठा। संसार की आंख उधर जा लगी, अंग्रेज भी घबरा गए। पर उसी समय चौरा चौरी काण्ड हो गया और गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। अंग्रेजों का साहस बढ़ गया, उन्होंने अवसर पाकर गांधी जी को जेल में भेज दिया।

दो वर्ष बाद जब गांधी जी बाहर आए तो उन्होंने खादी, राष्ट्रीय शिक्षा प्रचार, हिन्दू मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता निवारण इन चार विधायक कार्यों का भारत में प्रसार किया।

१९२८ में श्री जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के अध्यक्ष की कुर्सी से कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित किया। कांग्रेस अधिवेशन समाप्त होने पर गांधी जी ने ११ शर्तें वाइसराय के सम्मुख पेश कीं, तथा मार्च में नमक सत्याग्रह छेड़ दिया। एक महीने ही में उन्हें पकड़ कर यरवदा जेल में ठूंस दिया गया। परन्तु सत्याग्रह का वेग कम नहीं हुआ। वाइसराय को मार्शल ला स्थगित करना पड़ा और अन्त में गांधीजी के साथ विराम सन्धि करनी पड़ी। सन्धि वार्तालाप के लिए गांधीजी इंग्लैण्ड गए। वहां उनका अपूर्व स्वागत हुआ। बादशाह ने भी उनसे भेंट की। परन्तु संघर्ष बढ़ता ही

गया, मिटा नहीं।

मैंने कहा कि पाश्चात्य देशों का नया युग में सबसे बड़ा देवता 'देश' माना गया। गत महायुद्ध में जर्मन कैथोलिकों ने अपना और [illegible] का रक्त इसी देवता को अर्पण किया था, इसी भावना की प्रेरणा के लिए अमेरिका के जर्मन प्रवासियों ने जर्मनी में रहने वाले अपने भाइयों की निस्संकोच हत्या की। इस देश पूजन के सामने न किसी का धर्म प्रेम चला, न [illegible]। देशाभिमान के नशे में मस्त होकर पाश्चात्य राष्ट्रों ने इस सभ्य युग में खूब ही नर बलि दी, दिल खोलकर नर-रक्त में स्नान किया। यह 'देश' नाम का नया देवता हमारे यहाँ अंग्रेजों के साथ आया और मध्यमवर्गीय हिन्दुओं में उसका प्रचार राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। बंकिम का 'वन्दे मातरम्' उसका मूल मन्त्र बन गया। प्रारम्भ से मुसलमानों में उत्थान ने इस देवता के गीत गाए पर मुसलमानों में वह भावना जड़ न जमा सकी। मुसलमानों ने भारत को देश देवता नहीं माना, वह उनका 'अधिदैवत' नहीं बना, न उनमें देशाभिमान जाग्रत हुआ। वे उसे अपने बाप दादा की विजित सम्पत्ति समझते रहे। जहाँ हिन्दू भारत को 'मातृभूमि' समझ कर उसकी पूजा कर रहे थे, वहाँ मुसलमान उसे अपनी फतह की हुई 'भोग्या लौंडी' समझ रहे थे। इसी ने पहले खिलाफत, फिर पाकिस्तान के अभियान और विभाजन ने ऐतिहासिक रक्त पात को जन्म दिया।

योरोप के राष्ट्र बाइबिल के देव का महत्त्व तभी तक समझते थे, जब तक वह, इस 'देश' नामक देवता का नाशक नहीं। इसी प्रकार हिन्दुओं में भी यही भावना जमी—पर मुसलमानों में उसका बीज अंकुरित तो हुआ पर पल्लवित नहीं हुआ। हिन्दू नेताओं ने हिन्दुओं को पाश्चात्यों जैसा देशाभिमानी बनाने के लिए प्रथम धार्मिक पथों और गणपति उत्सव जैसे उपाय [illegible] और अन्त में सम्पूर्ण देश के हिन्दुओं में यह भावना फैल गई कि पहले हम अच्छे थे पर अँग्रेजी शासन से हम गिर गए हैं—इसी से उनमें उत्कृष्ट देशाभिमान जाग उठा।

मुसलमान शताब्दियों से इस देश में रहते आए थे, पर उनका ध्यान मक्का की ओर रहा और इधर तो वे सम्पूर्ण मुस्लिम राज्यों के संगठन का ही स्वप्न देखने लगे। यद्यपि उनके मन में यह बात थी कि उनमें खामियाँ हुई हैं, इसी से उनका राज्याधिकार चला गया है और अंग्रेजी राज्य में जहाँ हिन्दुओं में देश भक्ति के कारण देश के प्रति बलिदान की भावना का उदय हुआ वहाँ मुसलमानों के मन में अपना राज्य फिर से प्राप्त करने के हौसले जागने लगे। उनका खयाल था कि अफगानिस्तान, पर्शिया, तुर्की, अरब आदि मुस्लिम देशों के मुसलमानों में एकता हो जायगी और बंगाल से कुस्तुनतुनिया तक मुसलमानों का एकछत्र राज्य हो जायगा। इसी भावना से उन्होंने

प्रथम सि व प्रान्त को पृथक् करने की माग की, फिर बगाल और पजाब मे बहुमत प्राप्त करने की, और इस प्रकार देश हित के सम्बन्ध मे हिन्दुओ के वे सगी साथी न रहे—प्रतिद्वन्द्वी हो गए और उन्होने आग्रहपूर्वक उसी प्रकार भारत का बटवारा भी कर डाला—जैसे दो भाई अपने पिता की सम्पत्ति का बटवारा कर लेते है। देश भक्ति, देशाभिमान, देश गविरत, की उन्होने तनिक भी चिन्ता न की।

पर तु मुसलमानो के इस प्रयत्न का जब हिन्दुओ को पता चल गया तो वो निष्क्रिय न बैठ रहे। महामना मालवीय ने कायदे आजम जिन्ना का तुर्की ब तुर्की जवाब दिया। उन्होने बौद्ध धर्म के प्रति समादर प्रकट करके तथा बौद्ध सस्कृति को हिन्दू सस्कृति मे सम्मिलित करके एव भारत को बुद्ध की प्रतिष्ठा भूमि कहकर बर्मा, चीन, स्याम, जापान आदि देशो के बौद्धो की सहानुभूति तथा आत्मीयता प्राप्त करने के उद्योग किए। परन्तु मुसलमानो ही की भाति हिन्दुओ का यह प्रयत्न भी 'देश भक्ति' के लिए घातक था। हिन्दू मुसलमान दोनो की चेष्टाएँ 'देशाभिमान' की विरोधिनी थी, यदि हिन्दू मुसलमान दोनो मे पाश्चात्यो जैसा देशाभिमान भारत मे जाग्रत हो पाता तो भारत के हिन्दू मुसलमान एक होकर एक ओर तो हिन्दुस्तान के चारो ओर बिखरे हुए बौद्ध देशो तथा मुस्लिम देशो को कुचल डालते और साथही दूसरी ओर भारत की स्वतन्त्रता के काल मे हिन्दू मुसलमानो ने जो परस्पर रक्त बहाया वह न बहाकर उन्हे जर करने वाले अग्रेजो का रक्त बहता और तब कदाचित् एक भी अग्रेज बच्चा जीवित स्वदेश न लौटता। परन्तु पडौसी देशो के सौभाग्य से तथा अग्रेजो के पुण्य प्रताप से वैसी देश भक्ति की स्थापना हिन्दू मुसलमानो मे फलीभूत न हुई और अग्रेज हिन्दू मुसलमानो को अपने ही रक्त मे स्नान करता छोडकर फूलो और प्रशसाओ से लदे फदे सुख चैन से सानन्द अपने घर लौट गए।

परन्तु गाधी जी ने पाश्चात्यो के इस देवता के आगे सिर नही झुकाया। उन्होने 'देश भक्ति' को, जिसे हिन्दू अगीकार कर चुके थे, तथा साम्प्रदायिकता को, जिस पर मुसलमान कटने मरने को तैयार थे—उपेक्षा भाव से देखा। वे अपना नया देवता लेकर आगे आए। यह देवता था 'मनुष्य'। उन्होने 'मनुष्य पूजन' की परिपाटी चलाई। उनकी पूजन पद्धति थी 'सेवा'। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक अपने इसी नवीन देवता की अकेले पूजा करते रहे, उन्हे उनके जीवन मे एक भी साथी न मिला और वे इस देवता की पूजा करने मे मर मिटे। केवल काग्रेसके राष्ट्रवादियो ने उनके कुछ आदर्शों को आशिक रूप मे अपनाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त की।

आज भी गाँधी का यह देवता 'मनुष्य' बिना पूजन पड़ा है। आज भी गाधी के स्थान पर कोई अन्य पुरुष आगे बढ़कर इस नए देवता की पूजा नही कर रहा। पाकिस्तान बन जाने के बाद भारत के मुसलमान अतिथि की भाँति भारत मे रह रहे हैं

और कांग्रेस के राष्ट्रवादी राष्ट्र की रक्षा में फंसे रहे हैं। राष्ट्रीयता की भावना उनका बड़ा शक कर रही है, गांधीवादी जन अभी भी ... उनमें केवल प्र ... भर है, जीवन नहीं। परन्तु गांधी के उस 'ब्रत'मनुष्य ... नहीं ... ,और यदि वह संसार की जातियों का अधिदेवत नहीं बना तो सम्भवतः ... नहीं ... गलत राजनीति भारत में अपनाई है, उसमें ... चलने ... नहीं है।

भारतीय राजनीतिक क्रांति का रूस की क्रांति से बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है। सन् १९०५ के पूर्व रूस के आतंकवादियों ने बम प्रयोग किये और गुप्त समितियों की स्थापना की थी। इसी की प्रतिध्वनि बंग भंग के समय बंगाल में हुई, जिसका सिलसिला बहुत आगे तक चला। सन् १९०१ में जब रूस जापान युद्ध के कारण रूस में घोर अकाल पड़ा तो बोलशेविकों ने अपनी आवाज ऊंची की। ... हड़ताल कराई गई, पर जारशाही ने पराकाष्ठा का दमन करके बोलशेविकों को कुचल डालने की चेष्टा की। अंत में जारशाही का सन् १९१७ में अंत हुआ, और केरेनस्की रूसी प्रजातन्त्र का नेता बना। उसने अमेरिका से इस शर्त पर ऋण लिया कि वह युद्ध से न हटेगा। उन दिनों विश्व युद्ध में अमेरिका जर्मनों के विरुद्ध मित्रराष्ट्रों के साथ लड़ रहा था, पर रूसी लड़ाई से ऊब गए थे, उन्होंने अपनी बन्दूक रख दी और ... अपने ... जाने ... गये। करेनस्की को अपनी वक्तृत्व शक्ति के बल पर लड़ाई जारी रखना असम्भव हो गया, इस अवसर से लाभ उठाकर लेनिन आगे आया। उसने तीन नारे बुलन्द किये —'मिल मजदूरों की, जमीन किसानों की, और लड़ाई बन्द'। ये नारे जनता ... , और बिना अधिक रक्तपात के रूस पर बोलशेविकों का अधिकार हो गया। मित्र राष्ट्रों पर यह भारी संकट था। वे डरने लगे कि कहीं यह बोलशेविक ... पूंजीवाद को न ग्रस ले। उन्होंने इस नए पंथ को कुचलने के प्रत्येक प्रयत्न किए जो अब तक जारी है, और वे घोर नृशंस रूप धारण कर चुके हैं। आगे वे कम ... होंगे यह नहीं कहा जा सकता।

रूस की इस महा क्रांति का प्रभाव सारे संसार पर पड़ा, भारत भी उससे अछूता न रहा। पूंजीवादी राष्ट्रों ने हिटलर, मुसोलिनी और ... को आगे बढ़ने का अवसर दिया, भारत में अंग्रेजों ने रूस की ... क्रांति की छाया न पड़ने देने के बड़े बड़े प्रयत्न किए, परन्तु भारत का मध्यमवर्ग स्वतन्त्र होने के लिए सब कुछ कर गुजरने को तत्पर हो गया, और भारी से भारी विरोध के बावजूद उसके मन में शक्तिमान बोलशेविक मार्ग से चलकर सारे मजदूर वर्ग को स्वतन्त्र करने की भावना जड़ पकड़ती गई।

यहां जापानी चमत्कार को हम नहीं भूल सकते। जिस सरदारी सत्ता से निकल कर मध्यमवर्गीय सत्ता स्थापित करने में इंग्लण्ड, फ्रान्स और जर्मनी को सैकड़ों वर्ष लग

गए, वही काम जापान ने केवल तीस वर्ष में कर डाला। सन् १८५३ तक जापान का अन्य राष्ट्रों से कोई सम्बन्ध ही न था, पहले एक डच कम्पनी का यत्किंचित व्यापार सम्बन्ध जुड़ा फिर अमरिका ने जोर जुल्म से एक संधि की, उसके बाद ब्रिटेन, फ्रेंच, डच तथा अमेरिकन राष्ट्रों ने जापान की अप्रतिष्ठा करने में कोई कसर न उठा रखी, परन्तु सन् १८६६ में जापान का तरुण मण्डल जाग उठा, उन्होंने योरोप और अमरीका जाकर—शिल्प वाणिज्य और युद्ध कला का अध्ययन किया, और केवल तीस साल में ही महान चीन को परास्त करके फारमूसा और कोरिया को अधिकृत कर लिया।

भारत में गांधीजी के नेतृत्व में जब एक लाख आदमी जेल गए, जो अधिकांशत मध्यमवर्गीय तरुण थे, तो उन्हें उस पाश्चात्य साहित्य और रूस तथा जापान की क्रांति से सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन करने तथा उस पर मनन करने एवं रोषावेशित हो उसका प्रयोग अंग्रेजी राज्य पर करने की भावना को अंकुरित करने का बहुत सुयोग मिला। और उन्होंने सन् १९२८ ही में समाजवादी दल की स्थापना कर ली। पाश्चात्य संस्कृति के सहयोग से जो देशाभिमान उनमें जाग्रत हुआ उसने उनकी अन्तरात्मा तक में पौराणिक तथा वैदिक संस्कृति का एक प्रकार से लोप कर दिया। वे स्वीकार करने लगे कि देश के हित के लिए वे किसी भी सम्प्रदाय या देवता की आन नहीं मानेंगे। परन्तु मुसलमानी अभिमान देशाभिमान का सबसे बड़ा दुश्मन था, दूसरा कांटा राष्ट्रीयता का था, वे इस सबके ऊपर सारे श्रमजीवी मजदूर वर्ग का सामूहिक संगठन करना चाहने लगे और इसी मजदूर वर्ग के आधार पर भारतीय स्वतन्त्रता की इमारत खड़ी करने की चेष्टा करते रहे। उनका यह श्रमजीवी वर्ग देशाभिमान को भी पार कर गया और गांधीजी के देवता 'मनुष्य' का स्पर्श कर गया, पर गांधी जी के सम्पूर्ण मनुष्य का नहीं केवल उसके चरणतल मात्र का।

इस प्रकार गांधीवाद और समाजवाद ने मिलकर भारत के हिन्दू समाज को पौराणिक संस्कृति के तमोगुण से बाहर खींच निकाला।

परन्तु गांधीजी ने जिस 'मनुष्य' नामक नए देवता की प्रतिष्ठा अपने मानस में की, उसको और कोई भारत में न पा सका, न योरोप का, न अमरिका का, न रूस का। रूस अपना सब कुछ पर लगा कर श्रमजीवी वर्ग को सम्पन्न कर रहा है। योरोप और अमरिका पूंजीवाद के चक्कर में पड़े हैं, और भारत क्षुद्र राष्ट्रवाद की दलदल में, क्षुद्र पूंजीवाद के जाल में, क्षुद्र राजनीति के बीहड़ वन में उलझ रहा है। गांधीजी के निकट सम्पर्क से उसने लाभ उठाया। अंग्रेजों की पराधीनता का जुआ उसने उतार फेंका, राजसत्ता को भी प्राप्त करने के चमत्कार में उसने जापान तक को मात कर दिया। फिर भी वह गांधी जी के नए देवता 'मनुष्य' को अपनी पूजा का केन्द्र नहीं बना पाया।

गाधीजी के इस 'मनुष्य देवता' की पूजा का मूल आधार ही अहिंसा है। अहिंसा ही सच्ची मानवी सस्कृति है, गाधीजी ने बतला दिया। इस बात पर लक्ष्य किया कि माता पिता यदि अपनी सन्तान के प्रति पूर्ण अहिंसात्मक वृत्ति न रखे तो न मनुष्य समाज की वृद्धि हो सकती है न पशु समाज की। अपनी सन्तान के लालन पालन मे आज भी माता पिता को बडे बडे त्याग और पुरुषार्थ करने पडते है। परन्तु अत्यन्त प्रारम्भिक काल मे जब सभ्यता का उदय नही हुआ था, माता पिताओ को अपनी सन्तान के लिए बडे बडे कष्ट भेलने पडते होगे। कदाचित् उन्ही की सुरक्षा के लिए उन्हे एक नेता के नेतृत्व मे सगठित होकर रहना पडा, जिसने आगे चलकर मनुष्य को सामाजिक प्राणी बना दिया।

एक समय ऐसा भी था जब मनुष्य केवल अपने 'शिकार साम्राज्य' पर निर्भर था। वह दल बाधकर रहता था, प्रत्येक दल अपने स्त्री बच्चो और वनिताओ तथा घायलो के प्रति सदय और अहिंसक था। पर दूसरे दलो के लिए हिंसक। शिकार चाहे मनुष्य का था, चाहे पशु का। उसे बाल बच्चो सहित मार डालना ही निरापद था। इसी से विजयी टोलिया विजितो को मार डालती थी। पीछे उन्हे दास बनाकर उनसे सेवा लेना उन्होने सीखा। बाद मे जब वह अन्न पर निर्वाह करने लगे तब तो पराजितो की उपयोगिता बहुत बढ गई। उनके परिश्रम से उपार्जित सम्पत्ति का उपभोग करने की उन्होने राह निकाल ली। इससे विजयीजन शारीरिक परिश्रम से मुक्त होकर कला कौशल युद्ध कला और विज्ञान मे आगे बढने लगे। उन्नत दशा को और सभ्य बन गए। वे नागरिक बने, दो नगर समीप समीप बसे। उनकी सीमाए मिली। सीमाओ के निबटारे के लिए युद्ध विग्रह होने लगे। युद्धो का शौर्य भी एक दिन जातीय रूप धारण कर गया। योद्धाओ की फिर एक जाति बन गई। इसके बाद [illegible] देवताओ की पूजा करने वालो की भी। योद्धाओ की जब जाति हो बन गई तो वे कारण अकारण सर्वत्र युद्ध करने लगे। यह उनका पेशा ही बन गया। [illegible] निर्बलो को आधीन करके साम्राज्य की स्थापना कर ली और तब [illegible] देवताओ के साथ इस जीते जागते देवता, सम्राट या राज्य की भी पूजा होने लगा।

परन्तु ये सम्राट भी निर्भय न रहे। वे [illegible] सदा घिरे रहे। युद्ध अब उनका प्रधान कर्त्तव्य बन गया। युद्ध द्वारा ही एक साम्राज्य का छिन्न भिन्न करके दूसरे साम्राज्य की स्थापना होने लगी। ऐसा आराम मे पडे 'सम्राट' पराभूत होते और साहसी लोग अपना नया साम्राज्य स्थापित करते गए।

बहुधा ऐसा हुआ कि नया साम्राज्य स्थापित करके बाद पिछडे हुए लोग सुधरे हुए लोगो से बहुत शिक्षा ग्रहण करते रहे। बेबिलोनिया मे हजारो वर्ष तक ऐसा ही हुआ। शुरू मे दक्षिण बेबिलोनिया मे सुमेरियनो के राज्य स्थापित हुए। उन्हे समेटिक

लोगो ने विजित किया, परन्तु वे पिछडे हुए थे। उन्होने सुमेरियनो की सस्कृति ज्यो की त्यो अपना ली। यही हाल केशिजनो का हुआ, जो केवल घुडसवारो मे प्रबल होने ही से विजयी हुए। उन्होने बेबिलोनिया मे साम्राज्य स्थापित करके वहा की सस्कृति अपना ली। यही हाल रोमन्स का हुआ। ग्रीस का उन्होने जीतकर ग्रीको को दास बनाया फिर वे ही ग्रीक उनके गुरु बन गए। भारत मे शको का यही हाल हुआ, उनका केवल 'महादेव' देवता बचा रहा, शेष सब तरह से उन्होने हिन्दू सस्कृति अपनाली। हिन्दुओ ने उनके देवता को अपना लिया। हूण, गुजर, मालव आदि ने भी अपने राज्य स्थापित किए, पर उनके सब आचार और देवता लुप्त हो गए। सभीने भारतीय सस्कृति अपना ली। हूणो और गुप्तो मे बडे बडे युद्ध हुए, हूणो ने उत्तर भारत मे अत्याचार भी कम नही किए, पर अन्त मे वे भी हिन्दू हो गए। परन्तु जब जब ये विजित पिछडे हुए लोग पराजित उन्नत लोगो की सस्कृति को अपनाना नही चाहते रहे, तब तब विजित लोगो पर भारी सकट आए। उदाहरण के लिए हम चगेजखा और उसके वशज मुगलो को लेते है, इन्होने पूर्वीय योरोप और मध्य ऐशिया पर कब्जा किया, पर न मुसलमानो की सस्कृति अपनाई, न ईसाइयो की। परिणामस्वरूप समरकन्द, बुखारा आदि मध्य-एशिया के देशो तथा रूस का सत्यानाश हो गया। इन प्रदेशो की सस्कृति ही नष्ट-भ्रष्ट हो गई। मुसलमानो के उदाहरण भी ऐसे ही है। वे जिस देशमे नगी तलवार लेकर घुसे, अपने इस्लामी धर्म के जनून मे उन्होने उस देश की सस्कृति को अत्यन्त हिकारत की नजर मे देखा। उन्होने निर्दयतापूर्वक मिस्र और ईरान की उत्कृष्ट सस्कृति नष्ट कर डाली। हिन्दू सस्कृति को वे पूर्णतया नष्ट तो न कर सके पर मुस्लिम राज्य काल मे उसकी भारी अवनति हुई। हिन्दुओ ने उनके हाथ से अवर्णनीय कष्ट भोगे।

साम्राज्यवाद बहुत पुरानी सस्था थी। पर इसमे दो भारी दोष थे। एक तो यह कि इसमे बहुसख्यक जनो की दासता स्वीकार करनी पडती है, दूसरे लोग निर्बुद्धि हो जाते है। लोग समझने लगते है कि राजा के बिना काम ही नही चल सकता। राजा परमेश्वर का अवतार माना जाता है। वह स्वेच्छाचारी भी होता है। राजा अपनी इच्छा से जिस देवता की पूजा करता है उसके सरदार भी उसे ही पूजने लगते है। हिन्दुओ मे ऐसा ही हुआ। ब्राह्मणो ने इन राजाओ को ईश्वर के समान बताकर तथा उनके स्थापित देवताओ को पूजकर भारी भारी दक्षिणा प्राप्त करके खूब मौज मजा किया। सर्व साधारण को इन राजाओ और उनके समर्थक ब्राह्मणो की दासता स्वीकार करके जीना पडा, और इस स्थिति मे वे दलित श्रमिक स्वदेश या भविष्य की उन्नति के विषय मे सर्वथा उदासीन बन गए। वे भाग्य को ही प्रबल मानने लगे। इस प्रकार जब उनमे बुद्धि मान्द्य उत्पन्न हो गया था तभी मुसलमान जैसे शत्रु घर मे घुस आए और उनके सम्मुख ये हिन्दू जन विमूढ और निरुपाय बैठे रहे।

परन्तु पाश्चात्यों के सम्पर्क से जो व्यापारिक क्रान्ति का बीज भारत में आया उसने मध्यम वर्ग का प्रभुत्व बहुत बढ़ा दिया। इससे दलित श्रमजीवियों को भी कुछ सन्तोष हुआ। बुद्धिमान जन पूंजीपति बन गए। कृषक और शिल्पी अपने उद्योग में लग गए। इससे जो शांति, व्यवस्था और सम्पन्नता भारत में उत्पन्न हुई, उसका श्रेय अंग्रेजी राज्य को मिला, यहां तक कि राजा राममोहनराय तो इसे ईश्वरीय व्यवस्था तक कहने लगे। पर सौ वर्ष के भीतर ही इस नई प्रणाली के दोष दीख पड़ने लगे। प्रत्येक नगर का कलेवर बढ़ गया। एक ओर तो पूंजीपतियों के महल खड़े हो गए जहां वे ऐशो आराम करने लगे, दूसरी ओर श्रमिकों की अत्यन्त हीनदशा हो गई। वे गांव देहात छोड़कर इन नगरों में पशुओं की भांति रहने और पेट के लिए कड़ा परिश्रम करने लगे। उनमें अनाचार भी बहुत फैल गया, सट्टे और घुड़-दौड़ का जुआ भी इस व्यापारिक युग में एक भयानक व्यसन हो गया। जिससे श्रमिक भी न बचा। दूसरा दैत्य मद्य उनके पीछे लग गया। इन श्रमिकों की दशा इतनी विपन्न हो गई कि उनके यह भाव स्थायी हो गए कि जन्म भर दरिद्रता का कष्ट भोगने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है, कदाचित् भगवान् ने उनकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए ही हैजे, प्लेग, महामारी, चेचक, मलेरिया, इन्फ्लूएंजा आदि घातक रोगों की सेना उन पर भेज दी, जिससे बूढ़ों की अपेक्षा जवान ही अधिक शिकार हुए और उनके आश्रितजन निराश्रित होकर और निरीह हो गए। उधर ये पूंजीपति राष्ट्र सम्पन्न तो हुए, पर उन पर एक घोर संकट आ गया। इंग्लैण्ड और फ्रान्स इन सबके चौधरी बने थे। जर्मन घाटे में था, पर उसकी जन संख्या बढ़ रही थी। जापान की बढ़तीहुई शक्ति और योरोप की फूट के कारण जर्मन चीन को हड़पने में सफल न हो सका। उसने खीझकर फ्रांस और इंग्लैण्ड के उपनिवेशों पर लोलुप दृष्टि डाली और उसीसे प्रथम महायुद्ध का सूत्रपात हुआ। इसके बाद जापान ने चीन को नोचना प्रारम्भ किया और मुसोलिनी अबीसीनिया को निगल गया। इस सब लूट खसोट और आपाधापी से पूंजीपति राष्ट्र परस्पर का सहयोग और प्रेम खो बैठे और खूंखार भेड़ियों की भांति लड़ पड़े। इधर ये द्वितीय महायुद्ध में अपने ही रक्त से खेल रहे थे, उधर उन्हीं का श्रमिक वर्ग क्रांति के लिए अधीर बैठा था। इससे ये सारे ही राष्ट्र भय और आशंका से भर उठे।

यद्यपि बोलशेविक रूस इस भय से परे था। वहाँ के श्रमिक मजे में थे, परन्तु सारे ही पूंजीवादी राष्ट्र उसके विरुद्ध थे। द्वितीय महायुद्ध के बाद ही उसका इन पूंजीवादी राष्ट्रों से गठजोड़ा टूट गया। उधर द्वितीय महायुद्ध ने पूंजीवाद की रीढ़ की हड्डी तोड़ डाली और अब उस तृतीय युद्ध का सूत्रपात हो रहा है, जिसमें यह सब पूंजीवादी राष्ट्र दफना दिए जाएंगे।

भोग तृष्णा मनुष्य के सब दुःखों की जड़ है। शरीर के लिए आवश्यक वस्तुओं

के उपभोग का तृष्णा नहीं कहते, जब वस्तुओ की लालसा बढ जाती है, वही तृष्णा है। यही मनुष्य म विषय वासना उत्प न करती है, जो सब अनर्थों की जड है। मनुष्य के मन मे जब तृष्णा का अकुर फूटता है, तब तो बहुत अच्छा लगता है। पर तु अन्त मे वही तृष्णा उस खा जाती है, उसका जीवन नष्ट हो जाता है। बुद्ध ने कहा है कि—'आन द, वेदना से तृष्णा, तृष्णामे पयपणा पयपणा, से लाभ, लाभ से निश्चय, निश्चय से आसक्ति, आसक्ति से अध्यवसाय, अध्यवसाय से परिग्रह, परिग्रह से मात्सय, मात्सय से आरक्षा, आरक्षा से दण्डादान, शस्त्रादान, कलह, विग्रह, विवाद, तू तू मै मैं, पशु य, असत्यभाषण आदि पापकारक बात होती है।'

यह भोग तृष्णा भाई भाई और सम्ब वियो में कलह उत्प न कराती है। पर तु यह भोग तृष्णा जब जातियाम उत्पन्न होती है, तब महाघातक युद्धो और ऐसे ही घोर महापातको की सृष्टि होती है। कदाचित् इसी भोग तृष्णा से विपरीत होने के लिए ईसा ने कहा था—कि ऊँट सुई के छेद म जा सकता है, पर धनी व्यक्ति स्वग मे नही।

पर तु बुद्ध और ईसा दोनो ही क धम सकेतो की अवहेलना करके मनुष्य परिग्रहवान बने। योरोप म पजीवाद के ज म के बाद व्यक्ति से समष्टि मे भोग तृष्णा ने प्रवेश किया और समष्टि की भोग तृष्णा ही राष्ट्र का नाम धारण कर बठी। यह राष्ट्र सब छोटे बडे लोगो का था, इसम सब छोट बडे सामूहिक रूप से भोग तृष्णा के भूखे थे। गत महायुद्ध के आरम्भ तक इन राष्ट्रो मे भोग तृष्णा खूब पनपी।

सोलहवी शताब्दी म सबसे पहले अकाल और महामारी से पीडित होने पर इगलण्ड के उच्चवर्गी जनो मे राष्ट्रीय तृष्णा उत्पन्न हुई, और वे किसी भी सम्भव उपाय से अपने राष्ट्रकी सम्पत्ति बढान पर तुल गए, उधर उ होने अमेरिका मे उपनिवेश स्थापित किए, इधर ईस्ट इण्डिया कम्पनी स्थापित करके पूवमे व्यापारका जाल फलाया। व्यापार म लाभ हानि दानो ही सम्भव थे, पर तु चतुर अग्रेज लाभ के स्थान पर आगे बढने और हानि के स्थान पर पीछे हटने लगे। लाभ के स्थान पर वे दृढबद्ध हुए, और उसी के फलस्वरूप उ होने समुद्र पर अपना एकछत्र प्रभुत्व स्थापित करने मे खून की नदी बहा दी। इसके लिए बडे बडे युद्ध विग्रह कलह हुए। अग्रेज कवि गोल्डस्मिथ ने इग्लण्ड की इस राष्ट्र तृष्णा को देखकर—जिसमे सारा देश ऐश आराम के लिए झूठी सजधज स सज रहा था, जहा सम्पत्ति एकत्र हो रही थी पर मनुष्य का ह्रास हो रहा था—अपना 'डेजर्टेड विलेज' काव्य लिखकर इग्लैण्ड को भावी सकटो का सकेत किया। पर उसे बहरे कानो ने सुना, और बडे-बडे राजनीतिज्ञो ने यह कूटनीति स्थिर की कि देश हित के लिए, राष्ट्र क उत्थान के लिए, अन्य देशो की सम्पदा अपने देश मे लाने के लिए, कोई भी कुकम निद्य नही। भारतीय साम्राज्य पाकर अग्रेजो का लोभ और भी बढ गया, और इसीसे गत महायुद्ध की नौबत आई। योरोपीय राष्ट्र आपस की लडाई

मे लगे रह इससे शह पाकर अग्रेज समुद्र पर अजेय होकर अफ्रीका और पूर्वी देशो का भाग लेते रहे। पर अन्त मे उस राष्ट्र ने जर्मनी ही ने उन्हे पराभव दिया। द्वितीय महायुद्ध उन्होने जीता तो पर ससार की उनकी हुकूमत समाप्त हो गई और भारत छोडकर उन्हे अपने छोटे से टापू मे भाग जाना पडा। अब दुनिया देखेगी कि आगामी कुछ दशाब्दियो ही मे ब्रिटेन एक साधारण राष्ट्र रह जायगा।

मनुष्य मे अन्य सब प्राणियो की अपेक्षा एक वस्तु अधिक है—प्रज्ञा। 'प्रज्ञा' उस ज्ञान का नाम है जिसका विकास पूर्वानुभव से होता है। उसी प्रज्ञा के सहारे मनुष्य अपनी पिछली पीढी के उपार्जित ज्ञान से लाभ उठाकर नया ज्ञान अर्जन करता है। परन्तु मनुष्य मे प्रज्ञा के साथ ही अहिंसा का भी उदय होना चाहिए, यदि ऐसा नही हुआ तो मनुष्य की प्रज्ञा ही मनुष्य को नर घाती बना देगी। वह दुर्बलो का पीडक बना रहेगा। अब आप आधुनिक सभ्यता के विकास पर दृष्टि डाले तो आप देखेगे योरोप के प्रवासियो ने क्राइस्ट लिया और अमेरिका मे जाकर वहा के मूल निवासियो को निर्दयता से नष्ट कर डाला, अफ्रीका के निग्रो लोगो का सहार ही नही किया उन पर अत्याचार करने मे कोई कसर भी नही रखी। उन्हे पशुओ से बदतर समझा और भेड बकरी की भाति उन्हे बेचा। लाखो नीग्रो पकडकर अमेरिका लाकर बेच डाले गए। भारत मे भी अग्रेजोने धन शोषणके बडे बीभत्स प्रयोग किए। यह सब अहिंसा शून्य प्रज्ञा के कारण।

कार्ल मार्क्स ने सामाजिक विकास का उत्कृष्ट मार्ग यूरोप के सम्मुख रखा। उसने बताया कि कैसे ससार के पीडितो को पीडको से बचाकर उनका सगठन किया जा सकता है। पर इस कार्य मे अहिंसा का खयाल उसे नही आया, उसने तो यही कहा कि सारे ससार के पीडितो को एकत्र होकर पीडको का सहार कर डालना चाहिए।

रूस ने ऐसा ही किया। परन्तु यदि सब पीडित एकीभूत हो जाँय तो पीडको को मारने की आवश्यकता ही न रह जायगी। पश्चिम की राजनीति की परम्परा हिंसा पर ही आधारित है, क्योकि उसकी प्रेरणा उसे ग्रीको से मिली है, जिनकी सारी सस्कृति ग्रीक नगरो तक सीमित थी। अन्य नगरोसे उसका पूर्ण विरोध रहा। उसी आधार पर योरोप की राष्ट्रीयता सगठित हुई, जिसका मूल मन्त्र था अपने राष्ट्र हित के लिए कोई भी कुकृत्य उचित है। इसी से देश के हित के लिए व्यभिचार करना, झूठ बोलना, हत्या करना, छल कपट का जाल रचना, सभी प्रशसनीय ठहराये गए। जैसे ग्रीक अन्य नगरो को विरोधी समझते थे, यूरोप के राष्ट्र उसी भाति अन्य राष्ट्रो को विरोधी समझते रहे। कार्ल मार्क्स ने राष्ट्रीयता की कैद से केवल श्रमिको को निकाल बाहर कर एकता बद्ध करने की सलाह तो दी, पर योरोपीय नीति के इस दोष से वह न बच सका। इससे जहाँ राष्ट्रो का राष्ट्रो से जो बैर विरोध था वह यहाँ पूजीपतियो और मजदूरो मे कायम रहा।

कार्ल मार्क्स की यह नीति काँटे से काँटा निकालने जैसी रही। उसने समाज

वादके कांटे से राष्ट्रीयता के कांटे का निकालना चाहा। उसने कहा, सशस्त्र क्रांति करके पूंजीपतियो को मारो। पर गान्धीजी ने कहा—नही, पूंजीपतियो के लिए शस्त्र ग्रहण मत करो। रूस मे आंशिक रूप मे यह प्रयोग सफल हुआ। जार ने नागो को जबर दस्ती युद्ध क्षेत्र म भेजना चाहा पर नागा ने जल्द ही से इकार कर दिया। इससे जार शाही स्वय ही खत्म हो गई, यदि गत महायुद्ध के समय मे ही सब योरोपियन देशो के मजदूरो ने युद्धोद्योगो म काम करने से इन्कार कर दिया होता तो युद्ध एक सप्ताह भी नही चलता और योरोपियन राष्ट्र महायुद्ध के विनाश से बच जाते।

महावीर और बुद्ध न सत्य अहिंसा को 'बहुजन हिताय' की भावना स प्रचारित किया था। पर वह साम्प्रदायिक दलदल मे फँस गया, उस अहिसा का राजनीतिक क्षेत्र मे उपयोग करने का श्रेय गाधी जी को है।

आज हम उस पुरुष की प्रतीक्षा कर रहे है जो उस पग ध्वनि के सकेत पर 'सत्य और अहिंसा' को न जाकर गाधी जी के प्रस्थापित देवता 'मनुष्य' की विधि विधान स पूजा करना सादि काटि जनो को सिखावे।

वयरक्षाम अतीत रस

सन् १९५० की मई के अतिम सप्ताह मे एक दिन,जब मेरी पत्नी तीसरे पहर की चाय लेकर मेरे निकट आई तो सदा की भाति मैंने प्रसन्न मुद्रा मे उसका स्वागत नही किया। अपितु, चाय पीने की अनिच्छा प्रकट की। फिर भी उन्होने प्याला बना कर दिया, तो सदा की आदत के अनुसार एक दो घूट पीकर काम करने लगा। कुछ देर बाद उन्होने आकर देखा तो चाय वैसी ही रखी थी और ठण्डी हो गई थी। नाश्ता भी छुआ नही था। कारण पूछने पर मैंने कहा—तबियत नही चाहती, ठण्ड की फुरहरी सी लग रही है। सिरदर्द भी है। उन्होंने माथा छूकर देखा—गर्म था। उन्होंने कहा—हरारत है, आराम करना चाहिए। मै बिस्तर लगवाती हूँ। मैंने रोककर कहा—नही, यह काम खत्म करके ही उठूगा। अभी देर लगेगी। मेरी मेज पर ६० ७० विविध ग्रन्थ खुले पडे थे। चारो ओर पत्र पत्रिकाओके कटिंग थे, बहुतसे नए पुराने हस्तलेखोका ढेर था हफ्तो महीनों हो गए थे, रात दिन काम – काम—काम। रात दिन टेबुल लैम्प जलता था। वे हँसी मे कहती—यह लाश पर दिया जल रहा है। 'भारतीय सस्कृति के इतिहास' के सतयुग और त्रेता खण्ड की तयारी हो रही थी। कोई दो हज़ार पृष्ठोमे फलने वाला इतिहास। टेम्परेचर लिया तो १०१ था। पत्नी अपनी अम्मा को बुला लाई और उन्हे देखते ही मैं भले बालक की भाति हँसकर कलम छोड बिस्तर पर लेट गया और ऐसा लेटा कि आठ दस महीनो मे उठ पाया।

एक दो दिन तो साधारण मलेरिया का उत्पात समझा गया। पर शीघ्र ही चेहरा सुर्ख, आँखे लालचोट, भयानक सिरदर्द और हाथ पैर ठण्डे बर्फ। ये लक्षण बढते

ही गए। धीरे-धीरे चेतना लोप होने लगी डिलीरियम के आसार दीखने लगे। चिकित्सक मिल जुलकर चिकित्सा करने लगे। परन्तु दशा गम्भीर होती गई। इसी समय भाग्य से एक वायुसेनाके उच्च अधिकारी मुझे देखने आए। बहुत मानते थे, दूसरे दिन वे सेना के एक तरुण अमेरिकन डाक्टर को ले आए, जिसने लगातार ४५ मिनट एक विचित्र यन्त्र द्वारा नेत्रोंकी परीक्षा करके कहा प्राणघातक अवस्था उपस्थित है, शरीर का रक्त दिमाग मे जमा हो रहा है, किसी भी क्षण नस फट सकती है। घरके लोगोंके हाथो के तोते उड गए, पर धन्य है वह देवदूत। वह कई दिन निरन्तर अपनी कार मे आया और उसके प्रयत्नोसे जीवन का खतरा टल गया, परन्तु ज्ञान नही आया। मनुष्य को पहचानता रहा अवश्य, केवल पत्नी के प्रश्नो का ठीक उत्तर देता। बीच बीच मे अद्भुत बात करता और कहता – झटपट लिखो फिर भूल जाऊगा।

दिन बीतते गए। रोग मे रोग उत्पन्न होते गए। शरीर सूखते सूखते अन्त म जाँघे बाह जसी हो गइ। शौच आदि को भी न उठ पाता था। बोली बहुत धीमी हो गई थी। किन्तु आश्चय की बात यह थी, कि भज म जब उठा था वाल्मीकि का कोई श्लोक ढूढ रहा था। उठा तो बिस्तर पर वाल्मीकि साथ लेता आया था। वह गहरी बदहवासीमे भी हाथसे नही छोडी। नीद नही आती थी। जब ध्यान होता, रामायण पढता। सम्पूण वाल्मीकि उसी दशा म पढ डाली—न डाक्टरो का प्रतिनिषेध माना, न पत्नी का, न किसीका। सोता तो छातीसे लगाकर। सब लोग पीठ पीछे इधर-उधर जा कर रो लेते, पर सामने आते तो हँसी की बातो म बहलाते। खच का अन्त न था। आधुनिक चिकित्सा के खच का क्या ठिकाना। शीघ्र ही अथसकट का सामना करना पडा। जबसे प्रक्टिस छोडी—बस्टस परटस खच चलता था। हाथ मेरा सदा का खुला है, हजार भी थोडे और लाख भी थोडे। अथकष्ट प्राय बना ही रहता था। परन्तु बठा था तो कुछ होता ही था। अब जो खच का भार पडा, तो पहले सारे जेवर गए। फिर फालतू चीजे और उसके बाद जो काम मेरी पत्नी का करना पडा, उसके लिए मन आज तक उन्हे क्षमा नही किया। मेरी चालीस वर्षों म सचित सब मासिक पत्रिकाओ की फाइले, जिनमे इन्दु, सुधा, माधुरी, चाद, सरस्वती, प्रभा, गृहलक्ष्मी, शारदा आदि अनेक थी, सभी को रद्दी मे बेच बेचकर अपने लिए दो कौर अन्न और मेरे लिए पथ्य जुटाया, इन दिनों गौतम बुक डिपो, दिल्ली 'वशाली की नगरवधू' सहित बीस पुस्तके छाप और बेच रहे थ। एक बारभी यह प्रकाशक इस विपत्तिमे मुझे देखने नही आया, एक पसा रायल्टी नही दिया, जब कि हजारों का हिसाब उनकी तरफ निकलता था। दुलारेलाल भागव पर ८ १० पुस्तको की रायल्टी और 'आरोग्यशास्त्र' का हजारों रुपया बकाया था। पर एक बार जब चन्द्रसेन उनसे कुछ माँगने गए—तो एक अठन्नी पस से निकाल कर उन्होने बडी लाचारी दिखाते हुए कहा—इस वक्त तो यही है।

विपत्ति यही समाप्त नही हुई, एक भले आदमी की मैने जमानत दी थी। वह रकम उस भले आदमी ने नही अदा की। लेनदार इस अवसर पर कुर्की लेकर आ पहुचा। उस समय मेरी असहाय स्त्री एक ओर जहा चुपचाप, जिससे मेरे कानमे भनक भी न पडे ऐसी सब आर्थिक आपदाओ का सामना कर रही थी, उधर मेरे प्राण भूले पर भूल रहे थे। बहुत बार कठिन क्षण आए, एक बार तो नाखून और अग नीला पड गया, मूत्र परीक्षा करने पर डाक्टर ने कहा—शायद ही आज का दिन निकले। पता नही, किस दैवीशक्ति ने मुझे बचा दिया। सारी पृथ्वी पर उस रात मेरी शय्या के पास केवल तीन थे—पत्नी, माता जी और चन्द्रसेन। सब के ऊपर भगवान।

विपत्तिया और भी टूटी। परन्तु अन्तत मेरे जीवन की रक्षा हो गई। जीवन रक्षा का श्रेय न चिकित्सा का, न औषध को, न लोगो की अथक सेवा को। प्राणरक्षा हुइ मेरे अपने अटूट आत्मबल से। अभी मेरे हाथो 'सोमनाथ' और 'वयरक्षाम' जैसा साहित्य का सृजन होना था। और भी कुछ होने वाला था।

स्वस्थ होने पर बारम्बार मै उस पुलिंदे पर नजर डालता था—पर मेरी पत्नी ने दो साल तक वह गठरी न खोलने दी। इस बीच भी मै छुटपुट कुछ लिखता रहा फिर 'सोमनाथ' को पूरा किया। इसके बाद मैने गठरी खोली और एक नया विचार मेरे मन मे आया—कि भारतीय सस्कृति का इतिहास लिखने योग्य मुकम्मिल सामग्री अभी नही जुटी है। बीच मे बहुत व्यवधान है। तब फिलहाल इस सामग्री का उपयोग क्यो न एक उपन्यास लिखने मे किया जाय।

उन दिनो जैनेन्द्रकुमार के कमरे पर शनिवार समाज की बैठक होती थी। वहा से आया निमन्त्रण एक कहानी पढने का, और तब एक मौखिककहानी सुनाई गई—जो इस उपन्यास की आधारशिला थी। फिर तो मै इसी उपन्यास मे जुट गया पर लिखता था धीरे धीरे, शान्तिपूर्वक। उपन्यास पूरा हुआ भी नही और छपना आरम्भ हो गया। फिर तो परिश्रम की हद हो गई। मैं नही विश्वास कर सकता कि कोई पुरुष इतना परिश्रम कर सकता है—जितना इस उपन्यास और इसके भाष्यके लिखनेमे मैने किया। ईश्वर की कृपा है कि परिश्रम परिसमाप्त हुआ और यह अमर उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य मे प्रतिष्ठित हो गया, कदाचित पाँच सौ वर्षों के लिए, अथवा अधिक के लिए।

वयरक्षाम की भूमिका दिल्ली मे छप रही थी तभी उस के प्रकाशक का एक पत्र मिला। प्रकाशक एक तरुण मारवाडी सज्जन है धनिक और भावुक भी है। देखा नही है, जानता भी नही हूँ,पत्रालाप श्री चन्द्रसेन से होता था, यह पत्र भी उन्ही के नाम है। चन्द्रसेन मेरा सब कारोबार करते हैं। 'वयरक्षाम'का सौदा भी उन्होने किया था। चन्द्रसेन मे एक दोष है, वे कारबार और व्यवहार के सौजन्य को आत्मीयता मान लेते है, और सम्पर्क होते ही वे दूसरो की जिम्मेदारी अपने ऊपर लाद लेते है। जवाबदेही

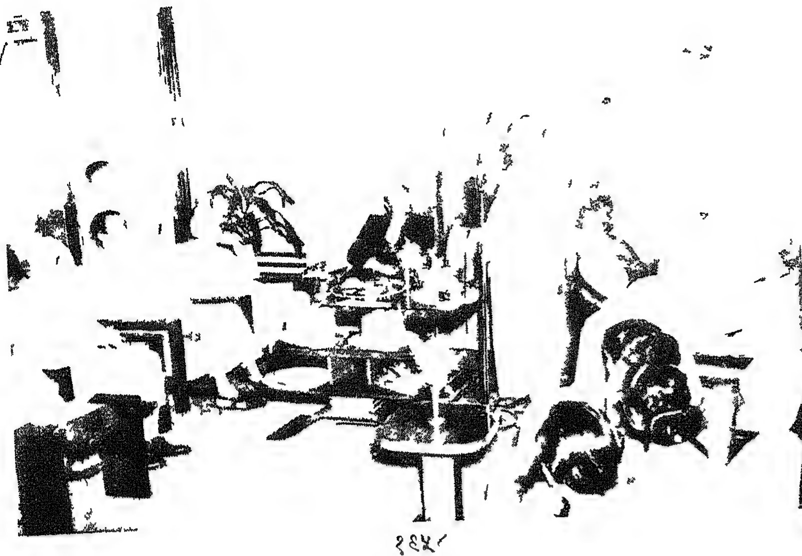
की परवाह नही करते और सदिग्ध बन जाते है पर जब वे ऐसा कोई काम मेरे प्रतिनिधि की हैसियत से कर डालते है, तो बहुधा मुझे जिल्लत उठानी पडती है और मै बहुत बहुत तकलीफ उठाता हूँ। मै एकाकी हू, असहाय, हूँ अपने ही मे अन्तर्मुख हू, इसी एक भाई के सहारेसे दुनियादारी मे सम्पर्क बनाए हुए हू। न भाई होने से इन्कार कर सकता हूँ, न कारोबार से बरखास्त कर सकता हूँ।

पत्र मे चन्द्रसेन के कान खींचे गए थे और एक लात कसकर मेरे ऊपर भी चलाई गई थी। पत्र का सम्बन्ध 'वयरक्षाम से था और उससे लेखक और प्रकाशक की विपथगामिनी मनोवृत्ति पर प्रकाश पडता था, इसी से अपनी इस अनन्य कृति की बात कहने से पहले इस पत्र की बात मुझे कहनी पडी है।

'वयरक्षाम' समूचा भागलपुर में प्रकाशक ने अपने प्रेस मे छापा। प्रूफ केवल एक बार मेरे पास आया, फिर वह किस प्रकार शुद्ध हुआ, यह मैं न देख सका था, अब भाष्यम् छपना शेष था जो तीन सौ पृष्ठोतक फला, और जिसमे मेरा तीस वर्ष से भी अधिक का अध्ययन सचित था। समूची पाण्डुलिपि मेरे हाथ की लिखी थी। टाइप मैंने इसलिए नही कराया कि पाण्डुलिपि ही अशुद्ध हो जाने का भय था। जब तक पूर्ण संस्कृतज्ञ टाइपिस्ट मेरे पास बैठकर टाइप न करे—मैनुस्क्रिप्ट टाइप नही की जा सकती थी। फिर टाइप की हुई कापी को असल से मिलाना भारी सिरदर्द था। इससे मैंने यह सोचा—कि 'भाष्यम् यहा दिल्ली मे मेरे सम्मुख छपे तो ही अच्छा। काम जल्द खत्म होने के विचार से प्रकाशक ने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया, और 'भाष्यम्' यहा छपने लगा। जनवरी के आरम्भ मे मैटर प्रेस मे गया, और पूरे चार मास अप्रैल मे सम्पूर्ण हुआ। यो तीन सौ पृष्ठ एक सप्ताह मे छापे जा सकते थे प्रेस इतना साधन-सम्पन्न था। इस चार मास के काल मे प्रेस का समूचा स्टाफ, मै और चन्द्रसेन सभी बौखला उठे।

मुझे छ छ और सात सात बार प्रूफ देखने पडे। 'भाष्यम्' के लगभग सारे ही नोटस अबसे कोई बाईस वर्ष पूर्व कलकत्ता की इम्पीरियल लाइब्रेरीमे बैठकर तयार किए गए थे। इस समय मेरे पास अपना अच्छा पुस्तकालय नही है। सन् ४७ के यमुना प्रवाह मे मेरी समूची सम्पत्ति के साथ मेरा पुस्तकालय नष्ट हो गया और मेरी सबसे बडी दौलत पत्र-पत्रिकाओ की दुर्लभ फाइले, जो ४० वर्षों मे अर्जित की गई थी, इन सबका सदुपयोग मेरी रुग्णावस्था मे पत्नी बेचकर कर ही चुकी थी। यमुना प्रवाह मे मेरा घर १५ दिन तक ९ फुट पानी मे डूबा रहा। अत मेरे हस्तलेख, नोटस आदि जो बच रहे—वे सब भीगकर खराब हो गए थे। उनको सहेजते सहेजते, परस्पर उनका तारतम्य मिलाते—नकल करते कराते, असल ग्रन्थो से मिलाते मिलाते मैं घातक रोग के चगुल मे जा फसा था। अब इस मैनुस्क्रिप्ट मे बहुत बाते सन्दिग्ध रह गई थी।

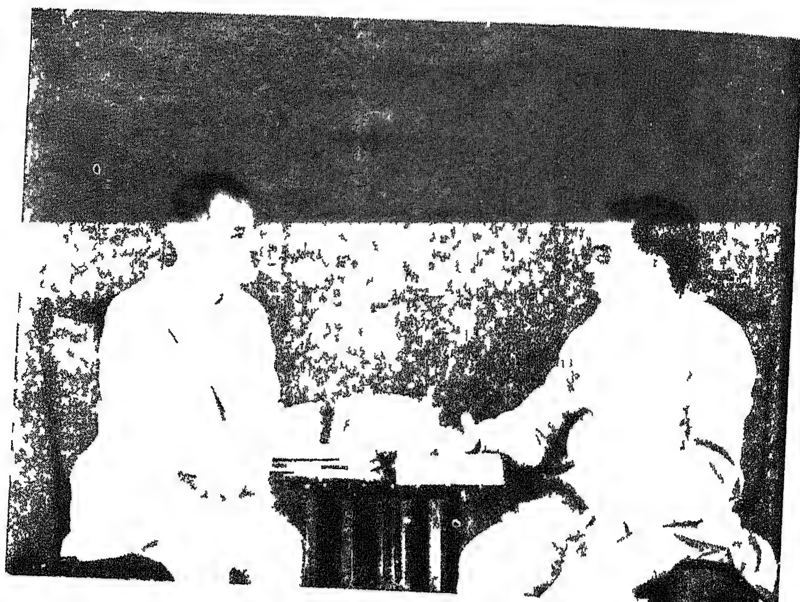
जसा कि मैने कहा—'वयरक्षाम' बिना मुझसे पूछे चन्द्रसेन इन प्रकाशक को



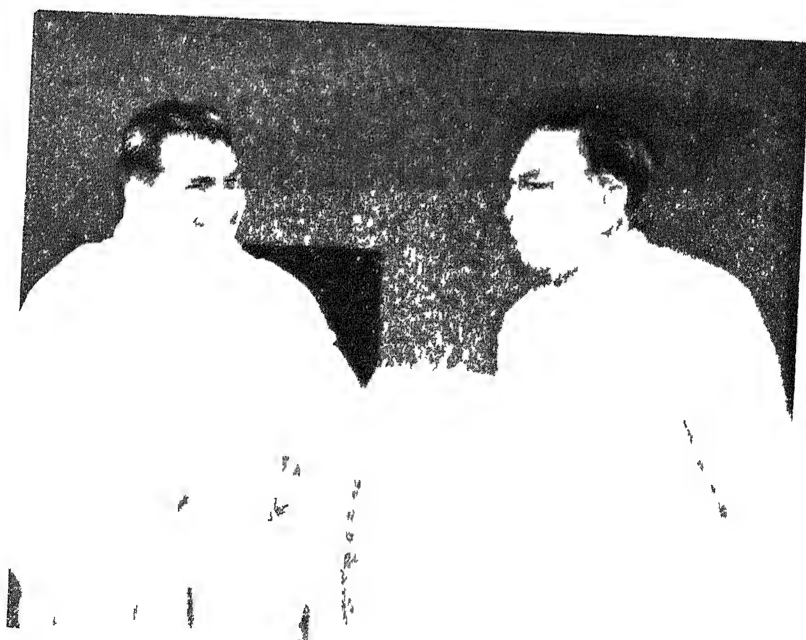
२३४१



२३४४



۱۴۲۲



۱۴۷۲

दे आए और उन्होने उसे तुरन्त छापना शुरू कर दिया था, तब तक भी पूरा उपन्यास नहा लिखा जा सका था। अब इधर 'वयरक्षाम' छप रहा था, उधर मैं आगे लिख रहा था। पिछले प्रूफ आते थे, उनके साथ आगे का नया मैटर यहाँ से जाता था। इस प्रकार ऐसे वृहद् ग्रन्थ का लिखना छपना और उसका पूर्वापर सम्बन्ध बनाए रखना आसान काम न था। और इसके लिए मुझे ग्यारह महीने तक केवल तीन घन्टा सोना मिला। २०–२१ घन्टे कठिन काम करना पड़ा। मुझे केवल यही काम न था, गृहस्थ की और भी जिम्मेदारियाँ थी। फिर, मैं कोई तरुण साधन सम्पन्न पुरुष नही। अत इस भयानक परिश्रम ने मेरे सब अजर-पजर ढीले कर दिए, और मै एक प्रकार से मर मिटा। अब आप मेरे वक्तव्य की पुष्टि मे एक प्रमाण देखिए—सन् ४८ मे 'वैशाली की नगरवधू' छपी, और ५४ मे 'सोमनाथ', यह ५५ मे 'वयरक्षाम' छपा हे। तीनो मे मेरे चित्र हैं, जो पुस्तको की समाप्ति काल मे तैयार किए गए थे। इसके गवाह फोटोग्राफर हे। इन तीनो चित्रो का मुकाबिला कीजिए। खासकर 'सोमनाथ' और 'वयरक्षाम' के चित्र से। आप देखेगे कि इस 'वयरक्षाम' ने एक ही साल मे मुझे खा डाला।

मूल ग्रन्थ की समाप्ति के बाद मेरी विपत्ति का अन्त नही हुआ। 'भाष्यम्' छपना आरम्भ हुआ और ज्यो-ज्यो मेटर प्रेस मे जाने लगा, मुझे उसमे पहाड-पहाड सी त्रुटिया दिखलाई देने लगी। बहुत बार मै हताश विमूढ हो बैठा। पर यह काम तो पार डालना था। कितना अच्छा होता, वह दारुण रोग मुझे मृत्यु की गोद मे फेक देता तो आज मैं इस भयानक परिश्रम के बदले आराम से चिर विश्राम करता होता। परन्तु 'वयरक्षाम' के उपसहार मे जो प्रकाशक की लात खानी मेरे भाग्य मे लिखी थी, वह कहा मिलती।

हाँ, तो 'भाष्यम्' छपना आरम्भ हुआ, और अब सम्पूर्ण रेफरेन्सेज पर, प्रमाणो पर, सन्दर्भों पर बारीक दृष्टि डालना मेरा फर्ज हो गया। बहुधा ऐसा होने लगा, कि मै प्रूफ देख रहा हूँ, और कही एक शब्द पर सन्देह उठ खडा हुआ, कोई श्लोक अशुद्ध प्रतीत हुआ, कोई एक उद्धरण अटपटा सा लगा, बस काम सब बन्द। प्रेस वाले सिर पीट रहे है, मैटर मशीन रुकी पडी है, और मै तीन तीन सहायको के साथ कभी हार्डिग लाइब्रेरी मे, कभी मारवाडी पुस्तकालय मे, कभी दिल्ली लाइब्रेरी मे, कभी कही, मोटे मोटे ग्रन्थो के बीच अपनी एक पक्ति को दो दो दिन तीन तीन दिन तक ढढता रहा हूँ। चन्द्रसेन हे कि पुस्तके ढो ढो कर मेरे पास ला रहे है, ले जा रहे ह। लायब्रेरियन कृपालु थे। बठने का विशेष प्रबन्ध कर दिया था। सुबह चाय पीकर जो बैठते तो दिन वही खत्म हो जाता था। भूख प्यास दोनो ही अक्षरो को खा पीकर मिटाई जाती थी। सब कुछ होने पर भी दिल्ली की कोई लायब्रेरी भला कलकत्ता की इम्पीरियल लायब्रेरी (अब नेशनल लायब्रेरी) का मुकाबिला कर सकती ह? तीन तीन दिन की भया

नक खोज के बाद भी बहुधा किसी एक पक्ति की सगति नही बठती थी । कसा दुर्भाग्य है हमारा, हमारे जसे मूढ असहाय लेखको का, जो साधन और सहायता से विहीन, अपनी सामथ्य और योग्यता से अधिक काम का बोझ सिर पर ढाते और अपनी भूख प्यास और नीद को हराम करते हे । केवल प्रकाशको की लात खाने के लिए, हे राम !

चद्रसेन सुबह सूर्योदय के साथ ही, कभी कभी तो चाय भी न पीकर जाते प्रस, जो शाहदरे से दस बारह मील से कम न होगा । और लौटते रात को, कभी आठ बजे कभी दस बजे । प्रूफो का गट्ठर लिए, जिनकी मे प्रतीक्षा मे बठा रहता, और रात को एक बजा, कि में उन पर झुक जाता झुका रहता । बीच मे उठ उठकर नाचता, अल मारिया खोलता । यह पुस्तक, वह ग्र थ, यह कटिंग, वह नोट । यहा नही वहा, वहाँ नही, यहा । फिर भी कुछ मिलते कुछ नही मिलते, और एक कागज पर उन गुमनामो की सूची बनती रहती । रात गलती जाती, पानी का एक गिलास आगे रखे म अपने नेत्रो पर जितना अत्याचार कर सकता था, करता जाता । कब रात गई, कब प्रभात हुआ, यह मुझे तब ज्ञात होता, जब पत्नी आकर खट से टेबुल लेम्प का स्विच आफ करती और उठो, चाय तैयार हे, कहती । तब उठकर झटपट जरूरी कामो से निबट कर फिर वही कुर्सी और वही मनहूस कागज । चाय का प्याला पूरा खतम भी न हो पाता, कि चन्द्रसेन का प्रश्न सिर पर, क्या लायब्रेरी चलना होगा ?

हा हा चलो तुम, पुस्तके निकलवाओ, यह सूची है, म आ रहा हूँ ।

कल रातभर भाष्यम् के अन्तिम प्रूफ देखे थे । परिशिष्ट ठीक किए थे । और जब चार बज रहे थे, मे 'इति' लिखने बठा, सस्कृत म, और सूर्योदय के साथ ही कलम रख दी । चमत्कार की बात यह, कि आज रामनवमी है । मेरी माता का भी अवसान दिवस हे । इस भयानक पुस्तक का सब काम समाप्त कर आज म सुस्ता रहा था, कि यह पत्र ? चन्द्रसेन प्रेस गए थे, वे होते तो यह पत्र कदाचित् मेरी नजर म न पडता । पर तु भाग्य मे जो बदा है वह तो मिलेगा । प्रकाशक की इस लात म मेरी आज की लिखी 'इति' भी श्रीसम्पन्न हो गई । रामनवमी का आज का पुण्य दिन भी धन्य हो गया, और मेरा साहित्यिक जीवन तो सुप्रतिष्ठ हुआ ही ।

हा, सुनिए लात की की बात । प्रकाशक ने कुछ रुपए भेजे थे, कागज के लिए और प्रेस का बिल चुकाने के लिए । उनम से कुछ चन्द्रसेन ने इधर उधर खर्च कर दिए । किस तरह खच कर दिए ? रोज प्रस जाने आने म दो तीन रुपए उठता था । शाहदरे से पहाडगज । शायद कुछ खान पीने म खच किया, या गया । कागज अनुमान से अधिक लगा । और ८।६ फाम इकट्ठे हो गए । कागज के बिना काम रुक गया । सकोचवश उ होने मुझे नही बताया । या इसलिए, कि मेरी आर्थिक दिक्कते उन पर प्रकट है । प्रकाशक को शायद उ होने कुछ और रुपए भेजने को लिखा । इसी पर प्रका

शक ने खत मे जो लिखा, उसका मतलब यह, कि तुम चोर हो, अविश्वासी हो, तुमने अमानत मे खयानत की हे, हमारा रुपया खा गए हो। रुपया हम अब नही भेजेगे।

और मेरे ऊपर यह लात है, कि तेरे अक्षर इतने खराब क्यो हे, साफ साफ लिखना क्यो नही सीखता, तेरा लेख पढने का कष्ट हम क्यो उठाएँ, जब कि हमने तुझे मजदूरी दी है। मेरे ऊपर जो यह लात है, सो तो बिलकुल मुझे कबूल हे। ठीक ही तो हे कि मे खराब लिखता हूँ तो मेरे प्रकाशक इसका दण्ड क्यो भरे भला ? पर तु चन्द्र सेन की बात इससे सवथा जुदा है। प्रथम तो चन्द्रसेन प्रकाशक के नौकर नही, इन चार मासो मे उन्होने जो परिश्रम किया है, उसका यदि पाचसौ रुपया मासिक भी मुआविजा दिया जाय तो कम हे। निश्चित रूप से उन्होने प्रकाशक की बेगार ढोई है। रुपया भी जो खच हुआ, वह उन्ही के काम मे, प्रेस आने जाने आदि मे। परन्तु सकोच वश या चाहे भी जिस कारग उसे उन्होने अपना निजी खच मान लिया। यह रकम महज डेढ या दो सौ रुपए से अधिक न होगी। फिर चन्द्रसेन का भी एक उपन्यास प्रकाशक ने छापा है, जिसकी रायल्टी भी थी। इस प्रकार जहा चार महीने उन्होने प्रकाशक की बेगार ढोई, वहा पाकेट से डेढ दो सौ रुपया भी खच कर दिया। इतना ही नही, यह फवरी माच का मास साल की समाप्ति का समय था। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारो ने मेरी भी कुछ पुस्तके खरीदी थी, सूची भी मिल गई थी, आशा थी, कुछ माल उठ जायगा, तो दिक्कते कम हो जाऐगी। पर चन्द्रसेन के इधर फसे रहने से उधर दौड धूप न कर सके, फलत धेले का भी माल न बिका। इस सबके बदले मे वे बने अमानत मे खयानत के मुजरिम।

लेकिन मैं जो 'वयरक्षाम' का, अपनी महत्तम कृति का परिचय देने बठा, और प्रकाशक का परिचय देने लगा, इसका कारग यह है, कि मेरे पाठक यह समझ जायँ कि साहित्य की एक ही नाव पर सवार दो व्यक्ति प्रकाशक और लेखक परस्पर कितने विरोधी तत्व है, वे परस्पर मिलते नही है, टकराते हैं। लेखक जहा अपनी साहित्य निष्ठा पर अपने रक्त की प्रत्येक बूद से अपनी रचना मे जीवन उडेलता है, वहा प्रकाशक पक्के कारबारी व्यवसायिक की भाति अपने नफे नुकसान पर पक्की नजर रखता हुआ, साहित्य का प्रकाशन करता है, उसे अपनी कौडियो का ख्याल है, साहित्यकार का नही, उसके आदेशो का नही, उसके आत्मयज्ञ का नही, उसकी निष्ठाका नही। वह समझता है इस मजदूर का मेने मजदूरी दी है, (यद्यपि दी नही है, देने का वायदा किया है) तो इसे मेरा काम, मेरी सुविधा और आराम के मुताबिक ठीक ठीक करके देना चाहिए। खरी मजूरी चोखा काम। वह साहित्यकार की टूटी हुई कमर मे लात मारकर कहता हे, अरे मूढ, तूने अपनी रचना मे मोती बखेरे है या कूडे का ढेर इकट्ठा किया है, इससे मेरा क्या सरोकार है, तू इतना खराब क्यो लिखता है, कि मुझसे पढा ही नही जाता। मेरा

तेरा जो खाता हुआ है उसके अनुसार ऐसा लिखू, कि मै अपने बहीखाते की तरह उसे पढ और समझ सकू। नही तो यह लात तक सिर पर है।

यह मेरी निजू कथा है आजकल इस नए युग मे जब हिन्दी साहित्य का सूर्य मध्याकाश मे प्रखर तेज बखेर रहा है, मै 'वैशाली की नगरवधू' लिख रहा हूँ और भूखो मर रहा हूँ। 'सोमनाथ' भेट कर रहा हूँ और टुकर टुकर देख रहा हूँ जवान बेटी के बाप की तरह, कि इस हथिनी का कोई गाहक भी है। 'वयरक्षाम' भेट कर रहा हूँ और प्रकाशक की लाल पीली आख देख रहा हू, लात खा रहा हूँ। उसका पैसा खर्च हो रहा है, काम का हर्ज हो रहा है, कितनी खराब बात है। यदि वह धोती जोडा का बिजनेस करता, गेहूँ का, रुई का सौदा करता, ब्याज पर रुपया चलाता तो हेर फेर मे अब तक कितना कमा लेता ?

जो हो, मेरे प्राणान्त परिश्रम का फल 'वयरक्षाम' १९५५ मे जनता के सम्मुख आ गया था। इरादा जरूर यह कर रहा था कि उसके बाद नया उपन्यास 'सोना और खून' दस भागोमे आपको भेट करू, परन्तु न जाने कौन भीतरसे बोल रहा है कि यह कृति अपूर्ण रह जायगी। फिर भी मै सुनता कब हूँ, जब तक दम मे दम है, होश हवास दुरुस्त है रक्तकी एक बूद भी गर्म है, कलम छोडूगा नही। परन्तु भविष्य अदृष्ट के हाथ मे है। 'वयरक्षाम' लिखकर मैने प्राचीन आर्य सस्कृति और सभ्यता की विस्मृत बातो को मूर्त किया। इस मूर्तकला मे मै अपने ही पर आधारित हूँ। मै ही अपना आदर्श हूँ। मेरे ही अपने विचार हैं, भावना हैं, कल्पना है, मेरा ही अपना दृष्टिकोण है। वेद ब्राह्मण पुराण स्मृति आदि से मिस्र, मेसोपोटामिया, बबिलोन, पर्शिया और यूनान के अति प्राचीन इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन है। देव दैत्य दानव नाग यक्ष रक्ष मानव आनव आर्य व्रात्य मत्स्य गरुड वानर— ऋक्ष महिष आदि इतिहासातीत जातियो की अब तक अविश्रुत विस्मृत, सर्वथा नवीन, साधारण असाधारण स्थापनाए है। उसमे मुक्त सहवास है, विवसन विचरण है, हरण और पलायन है। शिश्नदेव की उपासना है, वैदिक अवदिक का अद्भुत सम्मिश्रण है, नर मास की खुले बाजार मे बिक्री है, नृत्य है, मद्य है, उन्मुक्त अनावृत यौवन है।

जैसे आपका शिव मन्दिर मे जाकर शिवलिंग पूजन अश्लील नही है, उसी भाति मेरा 'शिश्नदेवा' भी अश्लील नही है। उसमे धर्मतत्त्व समावेशित है। फिर, वह मेरा नही है, प्राचीन है, प्राचीनतम है, सनातन है। विश्व की देवदैत्य, दानव मानव आदि सभी जातियो का सुपूजित है। सत्य की व्याख्या साहित्यकार की निष्ठा है। उसी सत्य की प्रतिष्ठा मे मुझे प्राग्वेदकालीन नवश के जीवन पर प्रकाश डालना पडा। अनहोन, अविश्रुत, सर्वथा अपरिचित तथ्य मेरे इस उपन्यास मे है।

'वैशाली की नगरवधू' लिखकर मैने हिन्दी कथा साहित्य मे यह नया मोड

उपस्थित किया था, कि अब उपन्यास हमारे मनोरंजन के तथा चरित्र चित्रण भर की सामग्री न रह जाएंगे। 'वयरक्षाम' इस दिशा में जबदस्त अगला क़दम था। इसमे प्राग्वेदकालीन विविध नवशा के विस्मृत पुरातन रेखा चित्र है। धर्म के रंगीन चश्मे से देखकर जिन्हे सारे ससार ने अन्तरिक्ष का देवता मान लिया था मैने उन्हे नर रूप मे इस उपन्यास मे आपके सामने उपस्थित करने का दुस्सह साहस किया है। 'वयरक्षाम' कहने भर को ही उपन्यास है, परन्तु वास्तव मे वह मेरा दुस्सह अध्ययन है। आज तक कभी मनुष्य की वाणी से न सुनी गई बाते मै आपको सुनाने पर आमादा हूँ। व्याख्यात तत्त्वो की विवेचना मुझे उपन्यास मे स्थान-स्थान पर करनी पडी है। मेरे लिए दूसरा मार्ग था ही नही। फिर भी प्रत्येक तथ्य की साधारण टीका बिना किए मै अपना बचाव नही कर सकता था। अत तीन सौ पृष्ठो से भी अधिक का भाष्य भी मुझे उपन्यास पर लिखना पडा है। अन्तत मेरा परिमित ज्ञान इस अगाध इतिहास को साङ्गोपाङ्ग व्यक्त नही कर सकता था। सक्षेप से मैने सब—वेद पुराण, दर्शन ब्राह्मण और इतिहास के प्रासङ्गो को एक बडी सी गठरी मे बाँधकर इतिहास रस की एक डुबकी देदी है। साथ ही इतिहास रस में रस 'अतीत रस' की नई स्थापना की है।

निर्माण शैली भाषा और भावव्यजना के सम्बन्ध मे भी दो शब्द कहना चाहता हूँ। आज के हिन्दी साहित्य मे स्त्री प्राय अग्रेजी भाषा और साहित्य के पठित पण्डित है। उनकी साहित्य गति भी भाषा, भाव, शैली और कला की दृष्टि से अँग्रेजी साहित्यनिष्ठा की ओर उन्मुख है, मेरा यह उपन्यास इस दृष्टि से सर्वथा नई कला से ओत प्रोत है। जैसे उसकी कथावस्तु प्राचीन—प्राचीनतम है, उसी भाँति उसकी शैली, भाषा निर्माण, कला भावव्यजनाए सबकुछ सस्कृतनिष्ठ है। कही कही तो सस्कृत मिश्रित भाषा है, कही समूचा हो परिच्छेद सस्कृत मे है। बहुधा अनार्य महत्पुरुषो का कथोपकथन सस्कृत मे कराया गया है। ग्रन्थ का समर्पण पत्र भी सस्कृत मे है और 'इति' व्याख्या भी सस्कृत मे है। ग्रन्थ की समाप्ति मन्दोदरी विलाप पर हुई है वह विलाप भी सस्कृत मे ही है।

सस्कृत का मै पण्डित नही हूँ। जीवन के आरम्भ मे सस्कृत पढी अवश्य थी, अब सब भूलभाल गया। सस्कृत से प्राय नाता ही टूट गया। यदा कदा कभी कुछ पढ लेता था, परन्तु अब इस उपन्यास के लिखने के समय बासी कढी मे उबाल आ गया। सो यह भी एक चमत्कार कहना चाहिए।

भाषा को सवारने मे मैने पहली ही बार इस उपन्यास मे चेष्टा की है। परन्तु सर्वत्र नही, कही कही। भाषा के विषय मे मै बहुत लापरवाह हूँ। विचारो के प्रवाह मे तेजी से जब लिखने लगता हूँ, तो भाषा भागती, दौडती, लडखडाती, गिरती पडती पीछे पीछे भागती चली आती है। पीछे मुडकर मैं देखता नही। परन्तु इस उपन्यास मे

तो भापा का मैने रुचकर शृङ्गार किया है। एक वाक्य मे समास की बहार देखिए—

कज्जलकूट के समान गहन श्यामल, अनावृत उ मुख यौवन, नीलमणि सी ज्या तिमयी बडी बडी आखे,तीखे कटाक्षोसे भरपूर जिनमे मद्यसिक्त लाल डोर,मदघूर्णित दृष्टि, कम्बु ग्रीवा पर अधर धरे से गहरे लाल लाल उत्फुल्ल अ र, उज्ज्वल हीरकावलि सी धवल दन्तपक्ति, सम्पुष्ट प्रतिबिम्बित कपोल और प्रलय मेघ सी सघन गहन काली घुघराली मुक्त कुन्तलावलि, जिनमे गुथे ताजे कमल दल शतदल, कण्ठ म स्वर्णभार ग्रथित गुजामाल, अनावृत, उन्मुख, अचल यौवन युगल पर निरन्तर आघात करती हुई मासल असफलक, भुजाओ मे स्वर्ण वलय और क्षीण कटि मे स्वर्ण मेखला, रक्ताम्बरमण्डित सम्पुष्ट जघन नितम्ब, गुल्फ मे स्वर्ण पैजनिया, उनके नीचे हेमतार सूत्र ग्रथित कच्छप चम उपानत आवृत चरण कमल। सद्य किशोरी।

सुलोचना का वर्णन देखिए—

मेघरहित क्षणप्रभा विद्युत सी, कुमुदबन्धु चन्द्ररहित ज्योत्स्ना सी, मन्मथरहित रति सी थी वह सुलोचना सुलक्षणा दैत्यपुत्री मेघनाद प्रियतमा। जैसे विधाता ने उसे ससार की सब रचनाओ से अपने हस्तकौशल को परिष्कृत कर एक आदश रम्य मूर्ति रची थी। जो वसन्त की फुलवाडी-सी प्रतीत होती थी। निर्दोष शुक्र नक्षत्र की भाति समुज्ज्वल दृष्टि, मनोज्य निर्वाच्य वदन कमल, जितवीणा क्वणित वाणी। प्रस्फुट शरीर वि याम, शोभनीव अवयव सश्लेष, पीनपयोधर, सुशोभन गमन, शरदि दु सा गात्र समुच्चय, अभिनन्दित चरण युगल, अतिविपुल जघन, जसे काम ने सकाम हो, शरीरी हो, उसे रचा हो, जसे अनुराग ही का समूल आविर्भाव हुआ हो, जैसे तत्क्षण ही उस गात्रलता मे सात्विक भाव अकुरित हुए हो। अन्तज्वलित मनोभव मे दह्य सी उसके गात्र से प्रस्वेद-जल प्रिय-सन्देश सुनकर ही झरने लगता था। कुसुम शरजाल पतिता सी वह तन्वी बारम्बार अनिमेष दृष्टिसे प्रियको जैसे पीती थी। उस स्तब्धतनु,सोत्कण्ठिता पुलकवती, स्वेदिनी, सनि श्वासा, के साथ धूत स्मर यथेच्छ क्रीडा कर उसे विह्वल रखता था। उसके नेत्रो की स्निग्धता राग प्रत्यायक थी। अनुराग के कारण उसकी वदनच्छवि कान्तिमती प्रतीत होती थी। वाणी और गमन मे उस भीरु का जो स्खलन होता था— वह उसकी चारुता मे चार चाद लगाता था।

उस बालाकी नवीन अनुरागावस्था म उल्लासके साथ जो कुचयुगलका उल्लसन होता था, उसका सम्पन्न मनोहारि मौग्ध्य नेत्रो को पुलकित कर देता था। वह प्रणय भङ्गभीता व्रीडिता— प्रियका त मेघनाद को समीप पाकर भी चित गन -म म र पीडा को व्यक्त नही कर पाती थी।

रूपगर्विता का विप्रलम्भ देखिए—

सखियो, कुछ चातुय करो, कुछ यत्न करो, आक्रान्त विपन्न का विपत्ति प्रति

कार न कर शुष्क उपदेश देनेसे क्या होगा ? यह सुरभिमास चन्द्र प्रिय होने पर भी अप्रिय सा लगता है। मृदु पवन ता स्वत शोभन है, पर विरहिणी के लिए अशोभन। अरी, हँसी तो सभी उडाते है, पर ससार मे व्याकुल मन उन्मन जन को परित्राण देने वाले थोडे ही है। अब मै किससे कहूँ, आश्वासन कहा पाऊँ, किसकी शरण जाऊँ। मुझे तो यह शीतल मन्द दक्षिण मलय समीर बहुत ही पीडा दे रहा है। मुझसे तो कुछ कहा ही नही जाता—इसी से चिर मौनव्रता ये कोयल मुझ पर निर्यातन कर रही है। ये क्षुद्र तिर्यग्योनि निरकुशा भी मेरी व्यथा बताने को प्रिय विरहजनित स्वर मे कूक रही है। इन हसो ही को देखो, इतराकर मेरी चाल का अनुकरण कर रहे है।

और ये भौरे मेरे उच्छ्वास से विदह्यमान होकर भी अलक कुसुमो का लोभ सवरण नही कर सकते। इसी से तो कहते है—कि विषय सभी दुष्त्याज्य है। अरी, मुझे तो शरीर धारण भी भारभूत हो रहा है, और ये दुष्ट भौरे कर्णपूर मे सूखे फूलो पर गूज रहे है। इन्हे तो निवारण करो। यह हार, जो मैंने बडे प्यार से हृदय पर धारण किया था—अब मेरे शत्रु मनोभव से मिलकर मुझे दुख दे रहा है। भला अब कुशल कहा है उज्ज्वल स्वेदजल गण्ड और कपोलो से झर कर तथा कज्जलमिश्रित अश्रुजल से मिलकर ऐसा हो गया है जैसा प्रयाग मे गगा यमुना का सगम है। कोयल की कूक मलय समीर, पुष्पो का सुवास, पुष्पायुध और भौरे ये पाच अग्नि है। सो मै परिरम्भण की लालसा से पचाग्नितप तपरही हूँ।'

अब सयोग शृङ्गार भी देखिए—

'नैसर्गिक प्रीति, अप्रतिबन्ध विलास, रतिरसायन वय तारुण्य, इन सबने मिल कर दोनो को एकीभूत कर दिया। सदृशजनसमाश्रय काम। स्नेह के अतिरेक ने दोनो को वश बना दिया। वे सौकुमार्य का उल्लघन कर निर्दय वामाचरण करने लगे, बार म्बार अभिलाप करने पर भी उनकी तृप्ति नही हुई। लज्जाभाव भी विगलित हो गया। वर्धमान राग के कारण—हृदय के एकीभूत भूत होने से—वस्त्राभरण भूषा सज्जा सभी कुछ अस्त व्यस्त हो गया। ऐसा उनका सुरतोत्सव हुआ। यथोचित रूप हो, यत्तथा अनुराग हो, अमन्द मन्मथ हो, अभिराम यौवन हो, तो जीवन का यथार्थ प्राप्तव्य मिल ही मिले, और मन्मथ का श्रम दवेग भी अद्भुत प्रभाव रखता है। जहा अविनय ही शोभनीय माना जाता है। अनीति आचरण ही सम्मान समझा जाता है। निश्शकता ही जहा सौष्ठव और चाञ्चल्य ही जहा गौरवाधान बन जाता है। जहा अग अग का अभेद हो जाता है। स्वदेह से परदेह का विनय करने की इच्छा कभी तृप्त ही नही होती। परिरम्भण परम सुखदाता होता है। लज्जा जहा अवगुण कहाती है। विवेक जहा मूर्खतापूर्ण बन जाता है। जो कामाग्नि आरम्भमे ही धक् धक जलती है, उसकी प्रवृद्धावस्था का वर्णन कैसे किया जाय। जहा न पाण्डित्य काम देता है, न चातुर्य। सुरत रस मे निमग्न पुरुष

समाधि से भी परगति को प्राप्त होता है उसका वर्णन अकथ्य है। वहाँ हास विलास, चाटुभाव सभी समाप्त हो जाते हैं। वहाँ तो भगवान् कुसुमायुध रतिपति ही का अबाध शासन चलता है। कैसा चमत्कार है यह, मृदुगात्र लता कामनता त बाला दृढ पुरुष द्वारा आक्रान्त होने पर भी व्यथित नहीं होती, हर्षित होती है। निस्स देह यह मनोज्ञ मनोरथ का ही प्रभाव है। सुरतयोग म तो जसे दानो का देह सायुज्य रूप अद्वैत हो जाता है। इस हृदया-द्वैत भाव ही से दोनो, रमणीय और रमण भिन्न लिंगी और भिन्न शरीर सम्पत्ति तथा भिन्न गुण होने पर भी तृष्णातिशय मे एक्याभिलाष से परस्पर अनुप्रवेश करते है। तब कौन रमण, कौन रमणी है। यह भेद अभेद हो जाता है। यह मेरा अ ग अवश्य है, यह पराया, यह भेद बोध नष्ट हो जाता है। निर्व्याजरूपेण प्रिय के अ क म अर्पित वपुषा कामिनी की मिलनरात्रि जसे क्षण भर ही म व्यतीत हो जाती है।'

लका का एक राक्षस नागरिक अपने एक ऋणी का स्त्री पुत्र सहित पकड लाया। वह ऋण न चुका सका था। पुरुष को उसने वध कर डाला। स्त्री और पुत्र को यूप मे बाध वह वध करना ही चाहता था कि—

यह क्या किया रे व्याघ्रक्ष ?
तो मै अपना ऋण छोड दू ?
छोड उन्हे, अभी बन्धन मुक्त कर।
तो ला तीन स्वर्ण, तू ही दे दे।
पर तूने पुरुष को तो मार ही डाला।

उस सूखे बूढे मे मास ही कितना है, एक स्वर्ण भी तो नही उठेगा उसका। आज युद्ध मे उस द्वीप के बहुत तरुणो का वध हुआ है। वे सब बिकने हाट मे आए है। आज नर मास का भाव बहुत सस्ता हो गया है। फिर यह बूढा, यह बालक। ऊहुँक, मैं बहुत घाटे मे रहूगा। सोच भला, तीन स्वर्ण और व्याज।

यह ले तीन स्वर्ण, खोल उनका बन्धन। उसने स्वर्ण उसकी ओर फक दिए।

व्याघ्राक्ष ने हसकर स्वर्ण उठा लिए। फिर कहा—तनिक पहले आता तो यह बूढा भी तेरे काम आता। वह बालक और स्त्री को बन्धन मुक्त करने लगा। परन्तु विकटोदरी ने क्रुद्ध मुद्रा से कहा—'यह हृदय खण्ड और इसका मास मै नही दूगी।

२६ अगस्त १९५५ को मेरी इस कृति का ग्रन्थिमोचन—समारोह सम्पन्न हुआ था। इस अवसर पर मैने अपने ६५वे जन्म नक्षत्र के शुभ क्षण मे समारोह म उपस्थित सब छोटे बडो को प्रणाम कहते हुए कहा था कि आप सब आज अपने इस ६ साल के बालक को आशीर्वाद दीजिए कि वह इस कृति के बाद 'सोना और खून' को दस भागो मे पूर्ण करके आपके समक्ष इसी भाँति उपस्थित होकर प्रणाम कर।

पूर्वीय भूखण्ड पर सर्वश्रेष्ठ पुरुष

पच्चीस वर्ष प्रथम सन् १९३० में मैंने एक मासिक पत्रिका का 'जवाहर विशेषांक' सम्पादन करते हुए श्रीजवाहरलाल नेहरू के विषय में लिखा था—आज के इन तरुणों के मस्तक पर जो नरपगत्र शोभायमान है, वह 'जवाहरलाल' है। यह नररत्न आज भारत ही का नहीं, एशिया भर का सर्वाधिक त्राता और संरक्षक है। इस पुरुष की राजनीति और व्यापक ख्याति ने विश्व के भाग्य विधाताओं को इसके प्रति चौकन्ना किया हुआ है और यह कहा जा सकता है कि यही पुरुष निकट भविष्य में विश्व की सार्वभौम शक्ति की स्थापना में सर्वोच्च स्थान ग्रहण करेगा। देश ने उसे आज राष्ट्रपति का स्थान दिया है, पर वह तो जन्मसिद्ध राष्ट्रपति है। आज भारतीय कांग्रेस सम्भवत एशिया की सम्पूर्ण राजनीतिक गतिविधि पर प्रभाव डालने की सामर्थ्य रखती है। कल ज्योंही जवाहरलाल के नेतृत्व में ग्रेट ब्रिटेन का भारत से सम्बन्ध विच्छेद होगा, त्योंही सम्पूर्ण ऐशियाई देशों की भाग्य रेखाएं भी बदल जावेंगी। इसलिए विश्व की राजनीति में जवाहरलाल का स्थान गांधी, चर्चिल, स्टालिन और चाकगाईशेक से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। इन सबसे सफलता दूर है, एक जवाहरलाल ही उसके द्वार पर पहुंचे हैं। जवाहरलालने हमारे लिए वेदनाओंके पर्वत छातीपर उठाए हैं। उन्होंने अपनी आयु का एक बड़ा भाग जेल की घृणास्पद कोठरियों में काटा है, पत्नी का विछोह सहा है, जीवन की बहुत सी लालसाओं से वे विरत रहे हैं। उन्होंने इच्छापूर्वक श्रीमन्ताई का ताज उतार फेंका है और हमारी गरीबी और भूख में शरीक रहे हैं।'

इसी से मैंने अपनी सबसे प्रिय वस्तु अपनी साहित्यिक प्रतिनिधि रचना वैशाली की नगरवधू उन्हें समर्पित करते हुए लिखा था—ओ ब्राह्मण, तेरे राज्यमें शतप्रतिशत असुविधाओं और विपरीत परिस्थितियों में जीकर हमने यह ग्रन्थ तैयार किया है। तू जो पाश्चात्य राजनीति के ध्वस्त मार्ग पर अपने आसपास के कूड़े कर्कट का भार लाद उतावली में देश को घसीट ले चला और भारत संस्कृति के निर्माता तथा कोटि कोटि जनपद के शास्ता साहित्यकारों को एक बारगी ही भूल बैठा, इससे तुझ पर निर्भर रहने वालों और तुझे प्यार करने वालों को सिर धुन धुन कर अपने ही कायर रक्त में आचूड़ स्नान करना पड़ा। तो भी वे तुझे प्यार करते हैं। किन्तु मैं रोषावेशित हूँ, क्योंकि मैंने उन सबमें अधिक तुझे प्यार किया है। इसलिए कि तू मेरी दृष्टि में पूर्वीय भूखण्ड पर एकमात्र जीवित सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। अपने साहित्यिक रोष और हार्दिक प्यारकी स्मृतिमें यह अपनी प्रतिनिधि रचना तुझे भेंट करता हूँ।'

नेहरू के लिए मैं सदैव चिंतित रहता हूँ। बेशक वे युग पुरुष हैं ? परन्तु जैसे मकड़ी अपने जाल में ही फँस जाती है, वैसे नेहरू भी आज अपनी ही राजनीतिमें फँस कर खतरे के किनारे जा पहुँचे हैं। नेहरू का व्यक्तित्व ही देश को उस अराजकता के

खतरे से बचा सकता है जो चारों ओर से देश को घेरता चला आ रहा है। वास्तव में कांग्रेस पर अकस्मात ही अंग्रेजों ने भारत का शासन भार फेंक दिया। इसके लिए कांग्रेस की कोई तैयारी ही न थी। अतर्कित रूप से देश के शासन ही का भार कांग्रेस पर नहीं आ पड़ा, विभाजन की अकल्पित विभीषिका को भी उसे झेलना हुआ। यह बड़ी बात समझनी चाहिए कि कांग्रेस इस विषम परिस्थिति को पार कर गई और इसका बहुत अंश में श्रेय जवाहरलाल को है परन्तु कांग्रेस के सिद्धान्त में बहुत मूल भूत गलतियां थीं। प्रथम तो यह कि उसका साराही संगठन राजनीतिक था। उसने अंग्रेजी साम्राज्य वादी ढांचे पर अपनी राजनीतिक लोकशाही का निर्माण किया और उसका संगठन अमेरिकाकी आर्थिक लोकशाहीकी परिपाटी पर किया। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय शासन कांग्रेस की आधीनता में जनतन्त्र न बन सका—गणतन्त्र बन गया। गणतन्त्रों के भीषण परिणाम भारत शताब्दियों पहले भी भुगत चुका है। इस गणतन्त्र की सबसे बड़ी खराबी यह थी कि अधिकार योग्यतम पुरुषों के हाथमें नहीं गया, जो जनतन्त्र का प्रमुख सिद्धान्त है, प्रत्युत गुटटों के प्रतिनिधियों के हाथ में गया। देश में दलबंदी का ऐसा कुत्सित रूप बन गया कि आज कांग्रेस तथा सच्चे देश भक्तों ही ने परस्पर विरोधी गुटट बना लिए। आज उनकी शक्ति देश को सुखी समृद्ध करने की अपेक्षा परस्पर के संघर्ष में समाप्त हो रही है तथा जवाहरलाल दिन प्रतिदिन विरोधी तत्वों से घिरते जा रहे हैं। पटलके बाद तो वे सर्वथा असहाय अकेले रह गए हैं। दूसरी बात है कि जवाहरलाल ने साहित्यजनों का साथ छोड़ दिया। गांधीके जीवित रहते साहित्यजन उनके साथ थे। कह सकता हूँ कि साहित्यजन ही गांधीको अपने कन्धों पर बैठाकर सफलता और समर्थन के उस यशस्वी उच्च पद तक ले गए जहां वे आज प्रतिष्ठित हैं। आजका साहित्यकार जवाहरलाल का समर्थक नहीं है। इसके अतिरिक्त मेरा यह भी विश्वास है कि गांधी युग बीत चुका। भावी राजनीति के निर्माण के लिए 'नये दर्शन' की आवश्यकता है, जिसका निर्माण साहित्यकार करेंगे।

उनके प्रधान मन्त्री पद पर आरूढ होने के कुछ मास व्यतीत होने पर मैंने उन्हें भारतके भावी शासनविधानमें सम्बन्धित सांस्कृतिक स्मृतिपत्र भेजा, जो इस प्रकार था—

आदरणीय पण्डित जी,

मैंने बहुत बार आपसे मिलने और विचार विनिमय करने की समय समय पर इच्छा की, परन्तु आपके पदारूढ होने के बाद बहुत से संकोच के कारण पैदा हो गए। पूर्व का व्यक्तिगत परिचय भी नगण्य था। आप जब तक देशके नेता थे, आपकी प्रतिष्ठा चरमसीमा पर पहुँच गई थी, परन्तु राज्याधिकारी होने के बाद उसपर खतरे ही खतरे खड़े हो गए और अब मेरी दृष्टि में वह पूर्व संचित प्रतिष्ठा खर्च करके ही आप अपने पद भार को ढो रहे हैं। एक दिन वह रत्ती रत्ती खर्च हो जायगी और न जाने

आप किस अपकीर्ति के गढे म धकेल दिए जायगे । इसका कारण मै यह समझता हूँ कि आपने राजनीति के आधार पर नव्य भारत को अनुशासित करना प्रारम्भ किया, सास्कृतिक आधार पर नही । यह जानते हुए भी कि हम राजनीतिमे योरोप के बिल्कुल नोसिखिए और कच्चे शिष्य है और यह देखते हुए भी कि हिटलर और मुसोलिनी जसे ख्यातनामा जन राजनीति की चक्की म पिस मरे । आप जसे बहुदर्शी विद्वान् मनस्वी से यह भी छिपा न था कि भारत सस्कृति मे विश्वगुरु है और उसकी सास्कृतिक धाक इस हीनावस्था मे भी विश्व पर अकित है । कहने को काग्रस महात्मा गाधी की अनुगत रही, पर सत्य तो यह है कि काग्रस ने महात्मा गाधी के सास्कृतिक विकास को तोड मरोड कर राजनैतिक विकास का विकृतरूप दे दिया और कही दबाकर, कही विवश करके महात्माजी की शक्तिया का अपने ही विचारो के प्रचार का माध्यम बनाया । परिणाम यह हुआ कि जहा तक महात्माजी के सास्कृतिक विकास का प्रभाव हुआ, देश का जनमत जाग्रत और सुगठित हुआ, परन्तु राजनैतिक विकास जो काग्रेस के हाथ मे था, देश की जनता पर खतरे का बोझ लादता ही चला गया और अब जनसाधारण उस असहायावस्था मे पहुँच गए है कि यह नही कहा जा सकता कि किस क्षण अरा जकता के मृत्यु कूप म वे गिर जाय ।

काग्रेस की हालत और भी दयनीय हो गई है, काग्रेस ने सदैव ऊँचे आसन पर बठकर अन्याय से युद्ध किया उस पर फतह हासिल की, परन्तु इसके बाद उसने उससे सुलह करली और उसे उसी आसन पर बहाल कर दिया । जो अन्याय पहिले अग्रेजी अदल और रुआबके दबदबमे जनसाधारणको पीडित करता था, वह अब काग्रेसके तिरगे झण्डे के नीचे मनमानी कर रहा है । अग्रेज उस्ताद थे, कूटनीति के मझे हुए खिलाडी थे । इससे उनके चेहरे की लाली अन्याय से गन्दे-से गन्दे खेल खेलने मे भी अक्षुण्य बनी रही, परन्तु काग्रस के हिमधवल खद्दर के परिधान पर तो अन्याय के काले दाग छिप न सकगे ।

काग्रेस ने देशभक्ति, स्वाधीनता और राष्ट्रीयता को अपनी राजनीति बनाया । उसने साम्प्रदायिक न होने पर भी साम्प्रदायिक विभाजन स्वीकार कर लिया । नौकर शाही से घृणा करके पर भी देश की जनता को उसीकी दया पर छोड दिया । सास्कृतिक विकास को छोडकर अग्रजो से सीखी हुई राजनीति के द्वारा शासनचक्र चलाना प्रारम्भ किया ।

यह स्पष्ट है कि काग्रेस का राज्य जनता का राज्य नही है, काग्रेसी राज्य मे योग्यतम हाथो म अधिकार नही है । अधिकारी, कर्तव्य की निष्ठा से नही, अधिकारके दर्प से उसी ढग पर जनशासन चला रहे है जसे साम्राज्यवादी अग्रेज अपनी प्रजा (?) पर चलाते रहे थे । सबसे अधिक यह जिस कच्ची राजनीति का तानाबाना काग्रेस के

अनाडी अधिकारी बुन रहे है, यह पजीवादके प्रभाव मे गारगार हे। काग्रस की सरकार कीमती दूरबीन लगाकर दुनिया के लोगो के दिमाग मे यह देखने मे उत्सुक है कि हमारी ओर उनकी नजर कसी है, पर तु वे भूखे नगे, अरक्षित, असहाय और अराजकता के भय से भयभीत अपने चारो ओर फले हुए करोडो नरनारियो को नही देख रहे अथवा देखकर भी निरुपाय है। यह काग्रेस की सद्धान्तिक भूल है। सबसे बडे दुख की बात यह है कि काग्रेस सरकार बुद्धिहीन और चरित्रहीन होती जा रही है। बडा झगडा हिदू मुसलमानो का यह है कि मुसलमान हिदुओ मे बहुत अधिक सगठित और सभ्य है। वे हिन्दुओ से बहुत अधिक होशियार और तयार है, हिदुओ के मुकाबिले उन्होने एक मजिल जीत ली है, दूसरी की तैयारी हे। काग्रेस इस बात को समझना तो दूर, सुनना भी नही चाहती।

मै अग्रेजी पढा लिखा आदमी नही हूँ, न वकील हूँ। इस हिसाब से मै मूख पुरुष हूँ। फिर भी मे एक नगण्य साहित्यकार हूँ और व्यवहारिक जीवन मे इतना पिछडा हुआ हूँ कि बिना विवाद मै अपने को एक अनागरिक स्वीकार करना निरापद समझता हू। पर साहित्यिक दृष्टिकोण से मै यह कहूँगा कि सास्कृतिक विकास से ही जनगण का विकास होगा। हिन्दू मुसलमानो का सास्कृतिक मिश्रण हुए बिना काम नही चल सकता है। दुख हे कि हमने भाषा के प्रश्न को भी एक राजनीति बना दिया हे, मे आपसे अनुरोध करूँगा कि साहित्य की सामथ्य पर विचार कीजिए। शासन मे साहित्य को सास्कृतिक प्रभाव उत्पन्न करने दीजिए और एक बार बल लगाकर देशकी राजनीति को साहित्य के सास्कृतिक प्रभाव की निगरानी मे दे डालिए।

साहित्य को हमे सोष्ठव की दृष्टिसे नही देखना चाहिए। देखना है साहित्यकार का चरित्रबल कसा है और ससार पर उसके साहित्य का क्या प्रभाव पडता है। सिख सम्प्रदाय के 'ग्रथ साहब' का मैं एक उदाहरण देता हूँ, उसकी रचनाओ का महत्त्व साहित्य की दृष्टि से उतना नही, जितना चरित्रबल के कारण है। इसी चरित्रबल से ये रचनाए उस समय देशोन्नति मे इतनी सहायक हुई कि हम कह सकते है कि हिन्दी साहित्यका सर्वोत्कृष्ट ऐतिहासिक फल सिख जातिका सगठन और उसकी उन्नति है। इसी प्रकार तुलसी की रामायण को लीजिए। उसने भारत के इतिहास की धारा ही बदल दी, हिदु मुसलमानो मे ऐक्य बढा, समाज मे सहिष्णुता, मर्यादा, न्याय, सगठन, शौय और आशा का बीज वपन हुआ। तुलसी के रामके प्रभावशाली झण्डेकी छाया मे आगे चलकर छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण मे बीजापुर, गोलकुण्डा और दिल्ली को विमर्दित करके विशाल महाराष्ट्र राज्य की स्थापना की। तुलसी ही के राम का बल धरकर तीस वष राठौराने मुगलो से लोहा लिया। इन्ही तुलसीके राम का बल पाकर छत्रसाल ने केवल पाच सवारो और पच्चीस पैदलो की सेना लेकर मुगलो से लोहा लिया और

विजया पर विजय प्राप्त करके दो करोड वार्षिक आय का विशाल राज्य बुन्देलखण्ड मे स्थापित किया। तुलसी की इसी रामाश्रय को पाकर दक्षिण मे बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव पेशवा ने मुगल साम्राज्य को ध्वस करके पाच सौ वर्षों म खोए हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की। ये तुलसीदास के हिन्दू सगठन के महान परिणाम थे कि दो ही शताब्दी के भीतर हिन्दू साम्राज्य भारत मे स्थापित हो गया। यह हिन्दुओ का दुर्भाग्य था कि १९वी शताब्दी मे उसकी भार सम्भालनेवाला कोई प्रतापी सगठनकर्ता नही पैदा हुआ।

आप पिछले २६।२७ वर्षों ही के साहित्य व सांस्कृतिक सामर्थ्य पर विचार कीजिए, किस प्रकार उसने सहस्राब्दियों से सुप्त और आत्मविस्मृत भारतीय राष्ट्र को उठा कर अद्भुत उमङ्ग और तेज से जगमग कर दिया। अब आगामी पाँच दशाब्दी और भी द्रुतगति से बढा चाह रही है। बडी बडी घटनाए और बडे बडे परिवर्तन अकल्पित तेजी से भारत मे हो चुके और अभी होगे, जिनका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पडेगा। इन सब बातो पर विचार करके जहाँ आप देश की सम्पूर्ण चल-अचल सम्पदा को जन हित मे लगाने म उत्सुक है, साहित्यिको की विचारधारा का भी सदुपयोग कीजिए। महाकाल की गति विषम है। वह कभी मन्द और कभी भीषण तीव्रगति धारण कर लेती है। उसके प्रभाव से व्यक्ति की भाँति राष्ट्रो के जीवन का एक-एक वर्ष कभी कभी सौ वर्ष के समान भारी हो जाता है और कभी हँसते खेलते शताब्दिया बीत जाती है। इसलिए मैं अपने देश की जैसी शासन व्यवस्था की कल्पना करता हू, उसका इस स्मृतिपत्र मे विवरण लिखता हूँ।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिर समृद्धिभि
आमृत्योश्रिय मन्विच्छेन्नै नाभ्मन्येत्सु दुर्लभाम् ।

'पिछली असफलताओ के कारण अपने को अयोग्य न समझे, मृत्यु तक सिद्धि को ढूढे और कभी उसे दुर्लभ न जाने।'

पहिला अध्याय

दूषित सिद्धान्त

(अ) राष्ट्रीयता की भावना राष्ट्रीयता की भावना सघर्ष और प्रतिद्वन्दिता को जन्म देती है और अनेकत्व का प्रतिपादन करती है, जिससे सघर्ष अनिवार्य हो जाता है क्योकि उसमे उत्कर्ष का प्राबल्य है। इन कारणो से राष्ट्रीयता की भावना मानवीय एकता की विरोधी है। इसलिए हमे राष्ट्रीयता की भावना का सिद्धान्तत त्याग करके मानवीय एकता के सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए।

वर्तमान भारतीय जीवन मे राष्ट्रीय भावना का जन्म अब से २५ वर्ष पूर्व सन् १९२१ के लगभग महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन के साथ हुआ। उस

समय इस भावना ने सम्पूर्ण भारत की प्रान्तीयता तथा साम्प्रदायिक भेदो को मिटा कर एक भारतीय राष्ट्र का रूप दे दिया था। अब हम महत्तर काल मे प्रविष्ट हो रहे है। हमे अब एक कदम आगे बढ़ना होगा।

(आ) देशभक्ति—देशभक्ति की भावना विशुद्ध पूजीवादी भावना है। देश वास्तव मे मानव सम्पत्ति है। सम्पत्ति के प्रति ऐसी भक्ति भावना जिससे मानवजन रक्तप्लुत हो, अमानुषी सिद्धान्त है। मानव जन जीवन, विश्व की बहुमूल्य निधि है। इसलिए देशभक्ति के स्थान पर 'मानव जन जीवन भक्ति' का सास्कृतिक सिद्धान्त मान्य करना चाहिए।

वर्तमान भारतीय जीवन मे देशभक्ति का जन्म अब से लगभग ३० वर्ष पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और स्वामी दयानन्द के द्वारा हुआ। उसी से देशभक्ति की यह भावना हिन्दुओ और हिन्दू राष्ट्रजनो मे ही पनपी। उन्होने ही देश को 'जननी जन्मभूमि' कहा। 'वन्देमातरम्' गीत उन्ही का भावावेश है। उन्ही ने उसे मातृभूमि कहकर माता के समान पवित्र पूजनीय और प्राणोत्सर्ग तक के मूल्य पर सरक्षणीय समझा।

परन्तु मुसलमानो और इतरजनो ने उसे मातृभूमि नही माना। वे उसे एक विजित देश और अपने को उसके भोग का अधिकारी समझते रहे। इसी से हिन्दू मुसलमान एक नही हो सके। एक उसे जननी जन्मभूमि और दूसरा भोग्यादासी समझता रहा। और हिन्दू मुस्लिम विद्रोह का प्रारम्भ काग्रेस के मचपर 'वन्देमातरम्' गान से हुआ और अन्त पाकिस्तान विभाजन, रक्तपात, मे। दूसरे शब्दो मे, देश स्वाधीन हुआ और देशवासी पराधीन हो गये। क्योकि अपने घर के भीतर और बाहर सर्वत्र प्रत्येक जन अरक्षित, असहाय और भयभीत है।

(इ) स्वाधीनता—स्वाधीनता की आवाज गुलामो की आवाज है, जो आज सम्पूर्ण एशिया की सम्मिलित ध्वनि मे विश्वव्याप्त हो रही है। यह आवाज चाहे व्यक्ति मे हो या समष्टि मे—मानवीय सस्कृति के विपरीत है। मानव एक सामाजिक जीव है और उसे अधिकाधिक परस्पर अनुबन्धित रहना ही उसकी सभ्यता और सुसस्कृति का प्रतीक है। गुलामी या दासता का प्रश्न पृथक् है। मानव जीवन उससे अवश्य मुक्त हो, पर सामाजिक सार्वजनिक जीवन मे वह विश्व मानव से अनुबन्धित रहे।

पूजीवाद ने दासता को जन्म दिया है। उसी ने विश्व के मनुष्यो को गोदाम मे भरे हुए बोरो की भाति एक के ऊपर दूसरे को लाद दिया है, और वे अपने ही जैसे समान भार और स्थिति के मनुष्यो के बोझ से दबे हुए है। ऐसा नही

होना चाहिए। सामूहिक जीवन मे मानव को बाग मे उन्मुक्त वायु मे झूमती हुई लता शाखाओ मे सश्लिष्ट सुन्दर खिले पुष्प की भाति हसते हुए विश्व मे सौरभ विस्तार करना चाहिए। इसीलिए हम मानव जनपद मे स्वाधीनता की भावना को त्यागकर परस्पर आत्मापर्णपूर्वक सम सहयोग करना चाहिए।

(ई) साम्प्रदायिक साहिष्णुता— सामाजिक सार्वजनिक जीवन मे साम्प्रदायिक साहिष्णुता सबसे अधिक व्यक्तिजनक है। समाज और सामाजिक जीवन से सम्प्रदाय का कोई सम्बन्ध नही होना चाहिए। वर्तमान भारत सरकार की सबसे बडी विपत्ति यही है कि उसका देशविभाजन मत विभाजन, पद विभाजन सिद्धान्तत साम्प्रदायिक आधार पर किया गया। साम्प्रदायिक भावनाएँ केवल विश्वास और अधिक से अधिक विचारो तक ही सीमित रहे। सामूहिक जीवन मे सम्पूर्ण जनपद एकरूप रहे।

(उ) सैन्य और शस्त्र—युद्ध का देवता मर गया। अब मानव जीवन से सेना और शस्त्र सदा के लिए विसर्जन हो जाने चाहिएँ।

अणुमहास्त्र ने युद्ध' शब्द को निरर्थक कर दिया। यह 'युद्ध, मानव सम्पत्ति नही, पशु की प्रकृति है। परन्तु मानवता के बालकाल से लेकर आज तक मानव जीवन के विकास का महत्तर आधार 'युद्ध' रहा है। युद्ध ही मानव सभ्यता का इतिहास है। 'युद्ध' ही मानव की सबसे बडी सामर्थ्य रही है। इसी से मानव 'युद्ध' को अपने जीवन के शैशव काल ही से अपने जीवन मे लिप्त करता आया है। उसने युद्ध को इतना प्यार दिया कि आश्चर्यजनक वेग और उल्लास से उसने अपने प्राण और प्राणाधिक पदार्थ 'युद्ध' की भेट किये। और जिसने अधिक किया इतिहास ने उसे अतिपुरुष कहकर कीर्तिगान किया। परन्तु 'युद्ध' मनुष्य का सम्पत्ति नही, पशु की प्रकृति है। फिर किसलिए पुरुष ने अपनी सम्पदा प्राण और पौरुष इस 'युद्ध' की भेट किए? इसका सत्य और एक ही गम्भीरतम उत्तर है कि मनुष्य कभी भी सम्पूर्ण मनुष्य नही हो पाया है, वह पशु का एक अत्यन्त विकसित एक प्रगतिशील पशु रहा है। इसीसे उसने अपने विकास की सारी प्रतिभा और प्रगति पशुत्व के इस महान प्रतिनिधि 'युद्ध' के विकास मे व्यय की है और यह 'अणुबम' इस दिशामे उसके चरम उद्योगो का नूतनतम परिणाम है।

परन्तु सम्भवत यह मानव मस्तिष्क मे चिरविष्ठित 'युद्धतत्व' का पूर्ण विराम है। इस महास्त्र के प्रादुर्भाव ने अबतक विकसित सम्पूर्ण युद्धकला को निरर्थक कर दिया है। अब मनुष्यके सामने दो ही मार्ग है १— या तो वह अपने अपूर्ण मानव तत्व को एक बारगी ही त्यागकर सम्पूर्ण पशु बन जाय तथा इस ओर

इस जैसे महास्त्रों से अपना सर्वतोभावेन विनाश करने, या अपने में व्याप्त पशुत्व को एक बारगी ही निकाल फेंके और 'पूर्णपुरुष' होकर निर्भय सम्पदाओं का निर्भय भोग करे। उसे निश्चय ही दूसरा ही मार्ग चुनना होगा।

यदि मनुष्य अपनी सुरक्षा से शंकित होकर अपने साधारण नागरिक जीवन में घातक शस्त्र धारण करके विचरण करे तो इसका यह अर्थ है कि वह एक जंगली असमर्थ और अपूर्ण सरकार की अमलदारी में रह रहा है। प्रत्येक सभ्य सरकार का पहिला दायित्व है कि उसके अमल में मानव को अभय मिले। सेना की सहायता से व्यवस्था कायम रखना किसी भी सरकार की नालायकी का प्रमुख लक्षण है। अब तक अंग्रेज भारत पर सेना के बल पर शासन कर रहे थे। सेना के बल की वृद्धि के लिए ही सर्व साधारण पर शस्त्र रखने की मनाही थी। परन्तु अब भारतीय सरकार को भारत पर शासन नहीं करना है। भारत की व्यवस्था करनी है और वह सरकार भारतीय जन द्वारा समर्थित है। ऐसी दशा में भारत सरकार को विश्व के सामने ऐसा आदर्श स्थापित करना चाहिए कि बिना ही सेना के देश की व्यवस्था हो और नागरिक जनता इस सरकार के अमल में अभय रहे। उन्हें अपने पास पृथक् शस्त्र रखने की आवश्यकता न हो।

(ऊ) जनवाद—निकट भविष्य में एक दूसरा दल वर्तमान भारतसरकार का उत्तराधिकारी होने की तयारी कर रहा है। उसमें और वर्तमान सरकार में मूलभेद 'जनवाद' है, जो बहुत कुछ सोवियत रूस की परम्परापर है। परन्तु जन व्यवस्था कभी भी बहुमत पर निर्भर नहीं रह सकती। वह तो अतिपुरुषों और महापुरुषों की मेधा के आधार पर अवलम्बित है। समाज में सब जन समान नहीं हो सकते। बहुमत अल्पज्ञों का है। मेधावी पुरुष जिन गम्भीर तथ्यों पर मनन कर सिद्धान्त निर्णय करेंगे, उनपर अल्पज्ञों का बहुमत लेना अत्यन्त हास्यास्पद है, अव्यवहार्य भी है। अतः जनवाद देश की व्यवस्था में सहायक नहीं हो सकता। 'बहुजन हिताय' महापुरुष अतिपुरुष सदा समाज का पथ प्रदर्शन करेंगे, करते रहे हैं। हां, व्यक्तित्व का समाज में सम सहयोग होना आवश्यक है। परन्तु उसके लिए अनुशासन और मर्यादा पालन आवश्यक है, सबका समान होना नहीं। यह कभी होगा भी नहीं।

(ए) अधिकार और कर्तव्य— अंग्रेजी राज्य का मूल आधार अधिकार था, इसी से वह सरकार हुकूमत करती थी। परन्तु जनता की सरकार का आधार कर्तव्य होना चाहिए। अधिकार यह कहता है कि मैं यह कर सकता हूँ पर कर्तव्य कहता है कि मुझे यह करना चाहिए। अधिकार का आधार सामर्थ्य

है और कतव्य का आधार विवेक और याय है। जन व्यवस्था सामथ्य पर निभर नही, विवेक और याय पर निभर होनी चाहिए।

स्वाधीन भारत की वतमान सरकार का ढाचा भी अभी अंग्रेजी सरकार की पद्धति पर है। अदालत पुलिस, सेना और कुछ अ य विभाग जो जन सम्पक मे हैं अधिकार मद मे कतव्य विमुख हैं। वे जनता के सेवक और सहायक न होकर हाकिम और अधिकारी ही अपने को समझते हैं इसी से वतमान सरकार मे अव्यवस्था भ्रष्टाचार और अराजकता का उदय हो गया है। जन साधारण अभी भी वतमान सरकार को अपना अग न मानकर अपने को विदेशी सरकार के पजे मे फमी असहाय समझती है। जनता की सरकार जब कत्तव्य के सिद्धा त पर सगठित होगी, तब 'हुक्म, हाकिम, 'प्राथना, 'सेवक, 'स्वामी, 'आज्ञाकारी, आदि दासतामूलक शब्दो का वहिष्कार हो जायगा।

(ग) पूँजीवाद—९०% अपराध और १००% सघष पूजीवाद के आधार पर अवलम्बित है। पूजी के माध्यम को हमे सामाजिक मयादा से पूणभावेन निकाल डालना चाहिए। सामाजिक जीवन सस्कृति और सम सहयोग पर निभर रहना चाहिए। पूजी का प्रभाव केवल विनिमय के मापदण्ड तक ही समित रहे। सावजनिक जीवन से पूजीवादी प्रवृत्ति एव पूजीवाद की श्रेष्ठता की भावना को नष्ट कर देना चाहिए।

दूसरा अध्याय

प्रस्तावित सिद्धा त

देश—'हिन्द । जिसकी सीमा उत्तर मे नपाल, भूटान, सहित दक्षिण मे लका सहित, पूव मे वर्मा और द्वीप समूह सहित, पच्छिम मे अफगानिस्तान सहित है। यह सम्पूण देश 'हि द' के अन्तगत होना चाहिए। वतमान हि द देश तीन भागो म विभक्त है—१–भारत, २–बहिर्भारत (पाकिस्तान), ३–वहिरङ्ग, भारत (नैपाल, भूटान, लका, बमा द्वीपसमूह, अफगानिस्तान)।

जाति—इस विस्तृत हिन्द के प्रत्येक निवासी की एक जाति हो—'हि दी'।

भाषा—इस विस्तृत देशकी सावभौम भाषा 'हिन्दी हो। इस हिन्दीमे २०% सस्कृत तत्सम श द समूह २०%, अरबी, फारसी, और अन्य एशियाई शब्द २०%, अंग्रेजी, फ्र च और योरोपीय देशो के शब्द, तथा ४०% रूढि योगिक नवीन शब्द हो।

लिपि—इस देश की लिपि हिन्दी, हो वह वतमान नागरी लिपि को सशोधन करके ध्वनि और छापने की दृष्टि से सुविधाजनक बनाई जाय।

मूलभावना—'मानव' विश्व की सबसे बडी इकाई है, उसकी पूजा निष्ठा

कविजन गेय है, इसके लिए 'सार्वभौम मानवीय एकता', मानव जीवन जन पूर्णभक्ति, तथा आत्मार्पणपूर्वक सार्वभौम सम सहयोग ।

सरकार—संपूर्ण सरकार जनपद की सरकार हो, उसी से व्यवस्थित हो । वह योग्यतम व्यक्तियों के हाथों में हो । वे शासक न हो व्यवस्थापक हो । व्यवस्था का सारा दृष्टिकोण कर्त्तव्य पर निर्भर हो, उस व्यवस्था का चरम ध्येय जनपद में 'मानव अभय' हो ।

जनपद—सब उत्पादन, सब श्रम, सब सम्पत्ति जनपद की हो, जनपद के योग्यतम जन अपने हाथों उत्पादन श्रम और सम्पत्ति लेकर सब जनहिताय उसका उपयोजन करें ।

राजा प्रजा—हिन्द जनपद में दोनों न हों । स्वामी सेवक भी न हों । ऊँच नीच का सीमित भेद कर्त्तव्य सीमा पर हो, जन जीवन में सब समान हों ।

हिन्दी जनसंघ—इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर 'हिन्दी जनसंघ' संगठित हो और देश की व्यवस्था हिन्दी जनसंघ में संगठित जनों के हाथ में हो । धीरे धीरे सम्पूर्ण जनपद 'हिन्दी जनसंघ, में एकीभूत हो सांस्कृतिक दीक्षा ले ।

संघर्ष—संघर्ष और उपद्रवों का दमन सेना के घातक शस्त्रों द्वारा नहीं होना चाहिए, क्योंकि ये उपद्रवी जन असंगठित, क्षुद्र और अपराधी श्रेणी के लोग हैं, इनके लिए नवीन वैज्ञानिक उपाय जैसे अश्रु गैस, या इसी प्रकार के अन्य उपाय काम में लाए जाएँ ।

व्यवस्था स्थापन—भीति और दण्डके आधार पर नहीं सद्भावना और सार्वजनिक सुविधाओं के आधार पर होना चाहिए । उसका मापदण्ड नैतिकता होना चाहिए ।

तीसरा अध्याय

क्रियात्मक कार्यक्रम

(क) प्रस्तावित सांस्कृतिक योजना - भारत सरकार अविलम्ब एक सांस्कृतिक विभाग स्थापित करे और उसके सांस्कृतिक मंत्री नियत हों । वे सब जन साहित्य, संस्कृति, राजनीति और समाज व्यवस्था के महापण्डित हों, अतः वे ही इस विभाग का नेतृत्व करने योग्य हैं ।

(ख) यह विभाग निम्नकार्य करे—(१) सांस्कृतिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना । जहाँ सरकारी नौकरी पर आने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह छोटा हो या बड़ा, एक निश्चित काल तक अध्ययन करे और वहां का प्रमाण पत्र बिना लिए सरकार में उसे नौकरी या पद न मिले । यहां पर निम्न विषयों की शिक्षा दी जाय—जनता के सहयोग और उसका विश्वास प्राप्त करने की रीति ।

बिना ही अधिकारप्रदर्शन कर्त्तव्य के सिद्धान्तपर जनव्यवस्था करने की रीति।
'हिंदी जनसंघ के सिद्धान्तों का सप्रयोग अध्ययन।
व्यक्तिगत जीवन को आदर्श विश्व बन्धुत्व के आधार पर चलाने के सिद्धान्तों का अध्ययन।
परीक्षार्थी की विचारधारा, जीवन और क्रियाशक्ति के मापदण्ड की व्यवस्था।
(२) सास्कृतिक प्रकाशनकेन्द्र—पचास लाख के धनसे भारतमे तीन प्रकाशन केन्द्र स्थापित किए जाय १ कलकत्ता के निकट, २ दिल्ली के निकट, ३- मद्रास के निकट। जहा आधुनिकतम मुद्रण सहायता से ग्रन्थो का मुद्रण हो। ग्रन्थकी भाषा और लिपि हिंदी देवनागरी हो। यहामे समाज, राजनीति, शिक्षा, विज्ञान, स्वास्थ्य, सम्पत्ति, कला, साहित्य और इतिहास आदि सम्बन्धी ग्रन्थो का प्रकाशन हो, जिन्हे सम्पूर्ण शिक्षा केन्द्र, स्त्रीवर्ग, जनसाधारण पढकर अपने नित्य जीवन मे सास्कृतिक प्रतिष्ठा कर सके। यह प्रकाशन अन्य व्यक्तिगत प्रकाशको की अपेक्षा अधिक सस्ता और टिकाऊ हो।
१०० चुने हुए लेखक, कवि, विचारक, चुनकर उनसे सब साहित्य तैयार कराया जाय और जनता मे वितरण कराया जाय। ये लेखक वेतन पर भी हो तथा रायल्टी पर भी इनके ग्रन्थ छापे जाये। ये सब लेखक भी सास्कृतिक शिक्षा केन्द्र का प्रमाण पत्र प्राप्त हो।
कम से कम तीनो केन्द्रो से एक सास्कृतिक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित हो, जिसमे—बहुजन एकीभूत होकर सुखी, अभय और स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सके—ऐसी शिक्षा दी जाय।
(३) सास्कृतिक सैसर विभाग – इसके द्वारा सब स्वतन्त्र लेखको, प्रकाशको, सम्पादको और वक्ताओ को अनुशासित रहना होगा। और वे बिना इस विभाग द्वारा स्वीकृति के कोई ग्रन्थ, पत्र आदि प्रकाशित न कर सकेगे। सीनेमा भी इस विभाग से अनुशासित होगे।
(४) सास्कृतिक प्रचार विभाग—इस विभाग द्वारा ग्रामीण और अपढ जनता को हिंदी सघके सिद्धान्त और सम सहयोग के सिद्धान्त समझाने को पम्फ्लेट, भाषण और सूचना पत्रो का वितरण किया जाय।
रेलो मे, मेलो मे, सार्वजनिक घाटो और बाजारो मे गायकजन ऐसे गीत गाये, जो सास्कृतिक कवियो ने तयार किए हो।
सिनेमाओ के चित्रो, कथनाक और विवरणो द्वारा उन्ही भावो का प्रचार किया जाय।
(ग) भारत सरकार का सस्कृतिकरण—छोटी बडी प्रत्येक सरकारी नोकरी

या पद उ ही व्यक्तियो को दिये जाय जो 'हिन्दी जन सघ' म शपथ ले चुके हो और सारकृतिक शिक्षाकेन्द्र का प्रमाण पत्र ग्रहण कर चुके हो। गवर्नरसे चपरासी तक के लिए यह नियम अनिवार्य हो। ऐसी नियुक्तियो म इन बातो का खयाल रखा जाए—

इन सरकारी कमचारियो और अधिकारियो को सरकारी निवासस्थान दिए जाय जो सवसाधारण से प्रथक एक सास्कृतिक मुहल्ले के रूप मे बने हो। ये मुहल्ले छोटे बडे सरकारी जनो के लिए उनकी सुविधा और सुख के अनुरूप हो। वहा वे 'हि दी जन सघ' के आदर्शो पर साम्प्रदायिक भाव से रहित एक सयुक्त पारिवारिक ढग पर रहे। उच्च से उच्च पदाधिकारी और निम्न-कमचारी मे सामाजिक और व्यवहारिक एकता समता प्रेम पारिवारिक भावना से हो। कमचारी व्यक्तिगत रूपसे अपने विश्वासो और विचारोकी परिधिमे साम्प्रदायिक भावना रख सकते हे तथा साम्प्रदायिक भावना वाले परिजनो मे भी मिल जुल सकते है। पर वे स्वय कोई ऐसा प्रदशन न कर सकते हे, न उसमे सम्मिलित हो सकते हे जो साम्प्रदायिक हो। साम्प्रदायिक भिन्नता के साथ ही जातपात और ऊँचनीच की अभिन्नता भी उनके जीवन मे रहेगी।

किसी भी जन से सरकारी दृष्टि से जाति, सम्प्रदाय, आदि नही पूछे जाय। सरकारी कागजो मे इसका खाना भी न रहे।

'हिन्दी जनसघ' के आदर्शो पर जिनका व्यवहारिक जीवन उत्तम हो, उसी के आधार पर उ हे नौकरियो पर तरक्की दी जाय। चरित्र,निष्ठा और सिद्धा त ये तीन वस्तु उनकी उन्नति के आधार रहे।

जो पुराने सरकारी कमचारी स्वेच्छा से'हि दी जनसघ'म शपथ ले और सास्कृतिक शिक्षाकेन्द्र का प्रमाण पत्रभी ग्रहण करे तथा चरित्र निष्ठा और सिद्धा त की दृष्टि से आदश हो,उ हे खास तौर पर उन्नति दी जाय और कुछ अतिरिक्त सुविधाए किसी न किसी रूप मे दी जाय।

जो पुराने सरकारी जन 'हि दी जनसघ म शपथ न ले, न सास्कृतिक प्रमाणपत्र ही ले,उ हे इसके लिए विवश न किया जाय, परन्तु वे अपनी नियुक्तिमे 'हि दी जनसघ' के नियमो का पालन करे तथा उनके स्थान के रिक्त होने पर प्रथम अधिकार उन पुराने जनो का हो जो पूर्वोक्त धारा म उल्लिखित हे।

(घ)—शिक्षा केन्द्रो का सस्कृतिकरण—शिक्षा केन्द्रो का प्रत्येक अध्यापक और कमचारी 'हिन्दी जनसघ'का सदस्य हो और सारकृतिक शिक्षाकेन्द्र का प्रमाण पत्र प्राप्त हो।

प्रत्येक बालक ५ वष की अवस्था से, यदि लडकी हे तो १८ वष की अवस्था

तक, और यदि वह लडका है तो २१ वष की अवस्था तक स्वस्थ अवस्था मे सास्कृतिक ~ े न मे रहे । उसका रहन सहन,खान पान पठन पाठन शिक्षा केन्द्रा ही मे हो । पाठ्य ग्रन्थ सास्कृतिक मेमर स्वीकृत या सास्कृतिक प्रकाशन केन्द्र के हो । उन पर कुल शिक्षा का व्यय सरकार करे और अपर प्राइमरी के बाद छात्रा स कुछ ऐसे परिश्रम करा लिए जाएँ जिनसे वे अपनी शिक्षा और भोजन आदि के व्यय योग्य उत्पन्न कर सक । ताकि उनकी शिक्षा का भार सर कार पर न हो । उनकी छुट्टिया कम की जाए और उ है ऐसे काम प्रतिदिन दो तीन घ टे कराये जाय, जिनमे विनोद, व्यायाम श्रम और आय भी हो ।

प्रत्येक लडकी लडके को ५ से १० वष की अवस्था तक एक साथ सहशिक्षा हो । इसम भाषा व्याकरण, गणित, काव्य, साहित्य, प्रारम्भिक शिल्प–कला और विज्ञान सिखाया जाय । स्वास्थ सदाचार शिष्टाचार, नित्यकम, व्यायाम और विचार भावना का अभ्यास कराया जाय ।

१० से १८ साल की आयु तक लडकी और १८ साल तक लडके की शिक्षा प्रथक हो ।

लडकी गृहशिल्प, स्वास्थ्य प्राथमिक उपचार, रोगी सेवा, स्काउट,सगीत, साहित्य, अथशास्त्र, शिशुपालन, और गृहोद्योग सीखे ।

लडका साहित्य विज्ञान, शिल्प, गणित व्यापार तथा विविध कला और पुरातत्व का अध्ययन करे ।

१८ साल के बाद लडकी लडके सयुक्त शिक्षा प्राप्त करे । लडकी को १८ वष की आयु म, और लडका को २१ वष की आयु मे स्नातक डिप्लोमा प्राप्त हो । इस कालमे वे चिकित्सा, अध्ययन, कला, सम्पादन कला, विज्ञान,रसायन, शिल्प, कृषि, उद्योग, अथ शास्त्र आदि किसी एक विषय का विशेष अध्ययन करे । इसके बाद उन्हे विवाह की अनुमति दे दी जाय । परन्तु यदि वे चाहे तो दो वष तक विवाह स्थगित रख सकते हे और किसी विषय पर रिसच या थीसिस तयार करके डाक्टर हो सकते हे ।

स्नातक होने पर प्रत्येक स्नातक सरकारी वातावरण मे जनसेवा करे । सरकार उन्हे सास्कृतिक रीति पर निर्वाह योग्य व्यय दे । यह वेतन उनके स्वास्थ्य जीवन और आवश्यकताओके अनुरूप हो, जिसमे अति सचय का स्थान नही हो ।

२३ वष की अवस्था के बाद प्रत्येक युवक और २० वष के बाद प्रत्येक युवती अनिवाय रीति पर विवाह करेगी । कुमार कुमारी रहने की आज्ञा सरकार खास हालतो मे दे सकती है ।

शिक्षाकेन्द्रा मे प्रत्येक हिन्दीजन बालक सम्प्रदाय या नीच ऊँच की बिना भेद

भावना के एक साथ रहे और शिक्षा प्राप्त करें ।

(ङ) जनपद सस्कृतिकरण—सावजनिक जीवन म निम्न प्रकार स सास्कृतिक प्रसार हो—

प्रत्येक युवक और युवती स्वय पति पत्नी का चुनाव करे ।

वे प्रथम शारीरिक चिकित्सक और फिर मनोवैज्ञानिक चिकित्सक का प्रमाण पत्र प्राप्त करे, फिर सास्कृतिक केन्द्र की अनुमति ल । इसके बाद माता पिता या अभिभावक की स्वीकृति से विवाह हो । यदि माता पिता या अभिभावक सहमत न हो तो जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियोग हो और तब विवाह हो । विवाह वधू के घर पर जिला मजिस्ट्रेट दो साक्षियो की उपस्थिति मे सम्पन्न करे । विधि मे 'हिन्दी जन सघ मे स्वीकृत प्रतिज्ञा होने पर एक विवाह सार्टिफिकेट दे दिया जाय ।

वरवधू विवाह के उपलक्ष मे मित्रो को प्रीति भोजन या अन्य प्रकार का समारोह विवाह के बाद एक सप्ताह के भीतर कर सकते है, परन्तु उसम कोई साम्प्रदायिक प्रदशन नही हो ।

भोजन, चिकित्सा, वस्त्र, और अन्य जीवन उपयोगी वस्तु वितरण सरकार द्वारा कन्ट्रोल से हो । प्रत्येक वस्तु की निश्चित दर सरकार करेगी ।

प्रत्येक नागरिक अपने विचारो और विश्वासो म साम्प्रदायिक स्वातन्त्र्य तो रख सके, परन्तु किसी भी साम्प्रदायिक भावनाका सावजनिक प्रदशन न कर सके साम्प्रदायिक विद्वेष गुरुतर अपराध माना जाय । साम्प्रदायिक विवाह की मनाही हो ।

सावजनिक साम्प्रदायिक पूजास्थानो, त्यौहारो, और रीति पद्धतिओका उपयोग व्यक्तिगत हो तथा अत्यन्त आवश्यक विषयो म सीमाबद्ध होगा ।

ऊँच नीच की सामाजिक भावना आर्थिक हो चाहे सामाजिक, पर उसका सावजनिक व्यवहार नही होगा ।

समाज म बहुत ऊचे जनो को नीचे और बहुत नीचे जनो को ऊचे रखनके प्रयोग अमल म लाए जाय ।

सम्मिलित समारोहो, उत्सवो और त्योहारो की सृष्टि की जाय ।

पूजी बैंक सरकारी हो ।

व्यापार विनिमय, यातायात सरकारी हो ।

कृषि, उद्योग, सहयोग समितियो के आधार पर हो ।

सामाजिक जीवन का सास्कृतिक विनियोजन हो ।

गण शासन सघ स्थापित हो ।

सावजनिक जीवन में विज्ञान को व्यवहारिक रूप मे निकट लाया जाय, जिससे जीवन निर्वाह सरल, स्वस्थ, सुखी और स्वावलम्बी हो। नौकरो और आजीवियो की आवश्यकता न रहे।

प्रत्येक मकान मे बिजली फिट हो, फर्नीचर, प्रकाश, ताप और शीतोष्ण व्यवस्था मालिक मकान की ओर से प्रत्येक मकान मे रहे।

पाखाने और रसोई आधुनिकतम हो। जहा बिजली के चूल्हे और तापयत्र हो। मकान सामूहिक रूप से ऐसे बनाए जाय, जिनमे १०० परिवार एक साथ रह सके। उन परिवारो की रोगी सुश्रुषा, रेडियो, फोन, आदि की व्यवस्था, बच्चो की देखभाल, प्रारम्भिक शिक्षा, विनोद आदि सम्भव सयुक्त हो, जलपान दूध आदि के प्राप्तिसाधन भी सयुक्त हो।

मकाना के निश्चित माडल हो अधिक से अधिक ६। उन्ही मे भिन्न भिन्न स्थिति के लोग रहे। मालिक मकान उसी पद्धति पर मकान बनावे।

राजा, रईस, जमीदार और पूजीपति—

राजा—वधानिक हो। वह 'हिन्द जन सघ' का एक सदस्य हो। शासनभार जनता के योग्यतम मनोनीत जनो के हाथमे हो, जो अधिक से अधिक तीन वर्ष के बाद नए सिरे से चुन लिए जाये। प्रत्येक राज्य का केवल प्रधानमन्त्री अपने मण्डल के राजा और प्रजा दोनो का प्रतिनिधित्व भारतीय विधान परिषद मे करे। प्रत्येक राज्य मण्डल मे राजकोष से व्यवस्थित नियमित और अनियमित सेना रहे, परन्तु उसका सम्पूर्ण प्रबन्ध भारत सरकार के हाथ मे रहे। राज्य मण्डल की सुरक्षा का सम्पूर्ण दायित्व भारत सरकार पर हो।

रईस और साहूकार—व्याज पर रुपया देने वालो पर सरकार का नियन्त्रण रहे। उनके सूद की दर निश्चित हो, वे खास खास हालत मे केवल उन्ही व्यक्तियो को रुपया उधार देसके, जिन्हे उद्योगधधो के लिए आवश्यक हो। इसके लिए आवश्यक प्रतिबन्ध नियत किए जाये।

किराए की आमदनी खाने वाले या इसी प्रकार की स्थिर आयवाले व्यक्तियो की जो बिना परिश्रम की आय पर निर्भर है, सूची बनाकर उन पर प्रतिबन्ध और नियन्त्रण किए जाये। रहने के मकानो के सम्बन्ध मे यह नियम बना दिए जाये कि नियत अवधि के बाद वे मकान किराएदार के हो जाये और फिर उन्हे किराया न देना पडे।

जमीदार—जमीदारी की प्रथा उठा दी जाए और वे आधुनिक पद्धति पर किसान बना दिए जाऐ। वे और उनके आसामी भूमि, परिश्रम और उत्पादन मे सयुक्त कर दिए जाऐ।

पूजीपति—सरकार के नियन्त्रण में अपनी पूंजी को विविध उद्योगों तथा निर्माण में लगावें और सहयोग पद्धति पर श्रमिक और उनमें लाभ का बँटवारा हो जाए।

दलित और खानाबदोश जातियां—दलित वर्ग दो हैं। १ हिन्दु, २ मुस्लिम। हिन्दु ७ करोड़ हैं और मुस्लिम ३॥ करोड़। ये दोनों ही जातियां व्यवसाय में उपाश्रित, अशिक्षित और व्यसनी हैं। उन पर ५ करोड़ रुपया वर्ष में खर्च किया जाय जो सांस्कृतिक दृष्टि से निम्न ढंग पर हो—

(क) इनकी बस्तियां नए ढंग पर बसाई जाये, जहां वे साफ सुथरे ढंग पर रहें।

(ख) उनके बच्चों को खास ऐसी शिक्षा दी जाए जो उनके व्यवसाय में सहायक हो और इसी अवस्था में विज्ञान और सहयोग समितियां की सहायता से उनके कार्यो को समृद्ध व्यवस्थित और सुविधाजनक बना दिया जाय।

(ग) वे अपनी बस्तियों में और उनके बच्चे शिक्षा केन्द्रों में साम्प्रदायिक भेद भाव से यथासम्भव दूर रहें और उन्हें रोटी बेटी में रहन सहन में और कारबार में हिन्दु मुस्लिम भेद को व्यवहारिक तौर पर भुलाने के सब सम्भव उद्योग किए जाएँ।

(घ) जनपद में वे समय समय पर बिना अपनी हीनता अनुभव किए सामूहिक समारोहों में सम्मिलित हो सकें। वैयक्तिक उन्नत होने पर व्यक्ति को उपयुक्त स्थान समाज में मिले।

खानाबदोश जातियों को बलात् व्यवस्थित करके नागरिक जीवन, कृषि, उद्योग और ग्राम्य केन्द्रों में जन साधारण के साथ इस प्रकार अनुबन्धित कर दिया जाय—

(क) उन्हें खेती की जमीन देकर।

(ख) छोटे बड़े कारखानों में काम दिलाकर।

(ग) उनके बच्चों को अनिवार्य शिक्षा देकर।

(घ) उनकी स्त्रियों को नागरिक जीवन का अभ्यस्त बनाकर।

(ङ) उन्हें अनुपात से दलितजनों के साथ बसा और उनके गुट तोड़कर। इस प्रकार भारतीय जनपद को वह लगभग १५ करोड़ कठोर परिश्रमी मेधावी, सहिष्णु और स्वस्थ्य जन का सहयोग प्राप्त हो जायगा, जो गृहोद्योग, ग्रामोद्योग, कृषि तथा निर्माण से भारत सरकार को प्रतिवर्ष २०० अरब रुपयों का उत्पादन देगा।

महन्त, साधु, संन्यासी और भिखारी—सम्पत्तिशील महन्त और साधुओं की जागीरों के साथ जमींदारों के समान व्यवहार किया जाय।

उनके क्रियाकलापो और सस्थाओ की साम्प्रदायिक उत्वणता कम करके जन-सेवा के रूप मे बदल दिया जाय। जैसे —

(क) ग्राम्य चिकित्सालय

(ख) ग्राम्य पुस्तकालय

(ग) ग्रामोद्योग

(घ) गाम्य मौखिक शिक्षण

(ङ) सेवा, व्यवस्था आदि

साधु सन्यासी जन मजिस्ट्रेट से प्रमाण पत्र ल। जो जन सेवा कर उन्हे ही प्रमाण पत्र दिया जाय।

किसी भी नवीन व्यक्तिको चेला बनाना, स यास देना और दीक्षा देना कानूनन रोक दिया जाय।

भीख मागना, कानूनन रोक दिया जाय। और स्वस्थ स्त्री पुरुषो को उद्योग गृहो मे भेज दिया जाय, जहा निवास, भोजन और पारश्रमिक उ हे मिले। बालक बालिकाएँ शिक्षा केन्द्रो मे भेज दी जाय।

रोगी, अपाहिज और छूतके रोगियोको पृथक उपयुक्त स्थानोम भेजदिया जाय। मन्दिरा, देवालयो और पूजा स्थानोपर धन भेट करना कानूनन रोकदिया जाय। इस वग की उन्नति व्यवस्था करने और उन्हे समाज का अग बनाने के लिए सरकार एक करोड रुपया वष मे खच करे।

'हिन्दी जनसघ'—काग्रेस अब अपना नाम बदल कर 'हि दी जनसघ' रक्खे। 'हिन्दी जनसघ' की शपथ लेने वाले नागरिक स्त्री पुरुषो को ही मताधिकार प्राप्त हो, वे ही सरकारी नौकरी मे लिए जाये। सरकारी और अध सरकारी सहायता कृतोद्योगो मे भी केवल वे ही लिए जाएँ। 'हिन्दी जनसघ' की शपथ स्थानीय मजिस्ट्रेट के सम्मुख ग्रहण करके उसकी रजिष्ट्री कराई जाय, जो दो साक्षियो के समथन से हो। मजिस्ट्रेट अपने हस्ताक्षरका एक सार्टिफिकेट द, जो सवत्र प्रमाण पत्र के तौर पर काम दे।

म भारत के प्रत्येक प्रधानमन्त्री से निम्न प्रतिज्ञा करने की आशा रखता हूँ--

१—मै तीन नारे बुल द करूँगा—१—देशभक्ति का नाश हो। २—राष्ट्रीयता का नाश हो। ३—स्वाधीनता की भावना का नाश हो। मै जन जन की जय जयकार मनाऊगा।

२—मै इस गणतन्त्र को जनत त्र मे बदल डालू और गुट्टो के चौधरियो को कुर्सियो से उठाकर जनता के योग्यतम व्यक्तियो को योग्य अधिकार दू।

३— मै देश के किसी भी स्त्री पुरुष बालक को न अशिक्षित रहने दू, न गरीब,

न अमीर । मै सबको समान रूप से सम्य-सम्पन्न और सुखी बनाऊं ।

४—गवर्नमेंट या हुकूमत साम्राज्यशाही न रहने दें । मैं नये भारत के भावी ज्ञानकोष से बहिष्कृत करूं । उसके स्थान पर सहयोग व्यवस्था और न्याय की स्थापना करू, जिससे कोई भी सरकारी उच्च पदाधिकारी अफसरी का रोब न जमा सके, सबको जनसेवक समझे ।

५—मै किसी के पास व्यक्तिगत सवारी और कोई ऐसी वस्तु न रहने दूं जो केवल शान और आराम के लिए हो । सार्वजनिक हित के लिए यह नियम कड़ाई से पालन कराऊं ।

६—मै देशमे किसीभी स्वस्थ व्यक्तिको बिना परिश्रम किए खाली न रहने दूं । प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार काम कराऊं ।

७—शिक्षा, चिकित्सा और जीवन निर्वाह करने के सब साधन मैं लोगोको घर बैठे पहुंचाने का प्रबन्ध करूं । शिक्षा और चिकित्सा निःखर्ची होगी ।

८—मैं न किसी के पास पूंजी रहने दूंगा, न पूंजी का काम होने दूंगा । मैं सब मिल कारखाने फैक्टरियां उद्योगों को सरकारी प्रबन्ध में ले लूंगा और उसका लाभ उसमे काम करने वालों को बांट दूंगा ।

९—जमीन, जायदाद, मकान, दुकान और ऐसी सम्पत्ति जिनसे लोग खाली बैठे अपनी गुजर करते हैं सरकारी अधिकार में ले लूंगा और ऐसे लोगो को काम करने के लिए लाचार करूंगा ।

१०—सामाजिक रहन सहन में ऊंच नीच छूआछूत नही रहने दूंगा । सबको केवल एक ही दर्जा रखूंगा । सबको एक ही परिवार के आदमी की भांति रखूंगा ।

११—गंदे गांवों को मैं नष्ट कर डालूंगा । उनके स्थान पर स्वास्थ्य और वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न नये गांव बनाऊंगा, जिसमें सड़कें, रेल, तार, फोन रेडियो, बिजली और स्वास्थ्य तथा शिक्षाकेन्द्र होंगे ।

१२—मै शिक्षा का सारा ढांचा बदल डालूंगा । शिक्षा विद्वान होने के लिए नहीं, जीवन को उपयोगी बनाने के लिए दूंगा ।

१३—मै श्रम को सबसे अधिक महत्व दूंगा, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक । उसका मै आदर करूंगा ।

१४—स्त्रियों को मै घर से बाहर काम नहीं करने दूंगा । उनको सब महान कार्य अपने घरों को सुख, आनंद, आराम और कला की दृष्टि से स्वर्गधाम बनाना होगा । केवल शिक्षा और चिकित्सा में ही वे घर से बाहर रह सकेंगी ।

१५—मै किसी भी वयस्क स्त्री पुरुष को अविवाहित नहीं रहने दूंगा । केवल चिकित्सक की राय ही इसका अपवाद रहेगी ।

१६–मैं युद्ध नहीं करूंगा। किन्तु सुरक्षा के महत्तम साधन रखूंगा।

१८–मैं किसी भी साम्प्रदायिक भावना को नहीं पनपने दूंगा।

१८–मैं प्रत्येक आदमी के दुख और दरिद्रता के लिए जिम्मेदार हूँगा।

१९–मैं अधिकार पर कर्तव्य को प्राधान्य दूंगा और सदाचार की मर्यादा स्थापित करूंगा।

२०–मैं एक भाषा, एक जाति, एक समाज की रचना करूंगा और वह विश्व के मनुष्यों से हमें प्रथक न करे—ऐसी होगी।

परन्तु मेरे इस सांस्कृतिक स्मृति पत्र का कोई प्रयुत्तर मुझे नहीं प्राप्त हुआ।

छात्रों की दूषित वृत्ति

१९५५ की बात है। वयरक्षाम के भाष्य में उलझे हुए मुझे ग्यारहवां महीना बीत रहा था। मुश्किल से दिन रात के चौबीस घण्टों में केवल तीन चार घण्टे सोना मिलता। मेरी टेबुल और चारपाई पास पास पड़ी थी। रातदिन समान भाव में मेरा यह दस्तूर रहा है कि जब लिखते लिखते थक गया या कोई गुत्थी उलझ गई तो उठकर चारपाई पर आंख बंद करके मन ही मन उस गुत्थी को सुलझाने को सोचने लगा। नींद आ गई तो एक झपकी भी ले ली। उठे तो फिर टेबुल पर, रात हो या दिन, मेरा यह काम जारी रहता। 'वयरक्षाम' के अन्तिम प्रूफ पढ़कर प्रेस में भेजे सो गया नहाया। अब तो तबियत कलम को फेंक देने की होती थी। पर इन उंगलियों के आश्रय में इसे पचास वर्ष बीत रहे हैं, अर्धशताब्दी। इन पचास वर्षों में इसने इन उंगलियों के संकेत पर कितना हास्य रुदन किया है। कितना ज्ञान अज्ञान बखेरा है। रवीन्द्र और टगोर, तिलक गोखले, मालवीय लाजपतराय-श्रद्धानन्द, गांधी, और उनकी प्रगति, दो दो विश्व युद्ध, भारत का महाभिनिष्क्रमण। राष्ट्रीयता का गठन और विघटन, नए समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का निर्माण सभी कुछ तो इस कलम ने देखा है। इन्हीं उंगलियों के सम्पर्क से, फिर अब यह एकाएक छूटे तो क्यों कर? गो—घिस घिसाकर चौपट हो गई है, पर चलते रहने के दमखम तो वही है। 'वयरक्षाम' ने मुझे खत्म कर दिया। नेत्रों की आठ आना ज्योति हर ली और वही मैं, जो रात रात भर एक बैठक में एक सौ फुलिस्केप शीटस रंग कर ढेर कर देता था अब दो पृष्ठ लिखते ही थक कर लेट जाता हूँ। वयरक्षाम के भाष्य के दो तीन फर्मे मेरी मेज पर फैले थे।

सुबह आठ बजे से लेकर तीन बजे शाम तक हार्डिंज लाइब्रेरी में बैठा सहकारियों के साथ हिस्ट्री आफ पर्शिया तथा अरब की हिस्ट्री की खोज पड़ताल करता रहा। चार बजे आकर स्नान किया, भोजन किया और प्रूफों को ठीक करने बैठा तो आठ बज गए। अंग प्रत्यंग बेकाम हो गए तो बिस्तरपर जा पड़ा। लेटा ही था कि नौ बजते बजते 'समाज' के सम्पादक महावीर अधिकारी और कुछ तरुण कविगण सागर यूनि-

र्सिटी से आए हुए एक तरुण को लेकर आ पहुँचे । रात में इतनी दूर । सूचना मिलते ही उठकर आया । अभिप्राय सुना, सागर यूनिवर्सिटी [illegible] करना होगा । यात्रा कल रात ही करनी है । अपनी दुर्दशा मैं इन बन्धुओं से न कह सका । जाना किसी हालत में सम्भव न था । जाने से काम मशीन पर जा ही नहीं सकते थे । आगे का मैटर भी तैयार नहीं हो सकता था । स्पष्ट था कि एक दिन के अन्तराल से आठ दिन तक काम रुक जायगा । फिर ये तरुण ही तो मेरे साहित्य के उत्तराधिकारी हैं । मेरी साहित्य सम्पदा के स्वामी भी तो यही हैं । इसलिए उनकी बात किसी मूल्य पर टाली नहीं जा सकती थी ।

कहीं ऐसा भी हुआ है कि एक तरुण किसी प्रौढ़ से आत्मीयता के साथ आकांक्षा प्रकट करे और वह अपनी कठिनाइयाँ बताने बैठ जाय । तरुणों की आकांक्षा भी कहीं रोकी जाने योग्य होती है । मैंने सोचविचार तो बहुत किया, पर मुझे स्वीकृति देनी पड़ी । मैं सागर चला गया ।

संघ के उद्घाटन समारोह के समय ज्यों ही मैंने भाषण आरम्भ किया दस मिनट भी न बीते होंगे कि मक्खियों की भिनभिनाहट जैसी ध्वनि मेरे कानों में आने लगी । मैंने अनुभव किया, छात्र भाषण सुन नहीं रहे हैं । कुछ तो खास तौर पर शायद गड़बड़ कर रहे थे । कालेजों और यूनिवर्सिटियों के छात्रों की अनुशासन के प्रति निष्ठा वृत्ति से मैं भलीभाँति परिचित हूँ । मेरा ऐसा अनुभव भी है कि वक्ता की खिल्लियाँ उड़ाने और उसे अप्रतिभ करने में विश्वविद्यालयों के छात्र सिद्धहस्त हैं । बहुत जगह मैंने ऐसा देखा है, प्रथम इसी प्रकार मक्खियों की भिनभिनाहट जैसी आवाज उठती है, फिर वह जरा तेज होती है, फिर तालियों की तड़ातड़, पैरों की धमधमाहट और दूसरी फूलझड़ियाँ छूटने लगती हैं । इन्दौर लखनऊ के दृश्य भी मेरे दृष्टि में थे । मैं न तो पेशेवर भाषणकर्त्ता हूँ, न मुझे भाषण देने की हविस ही है । कहना चाहिए-- इन वर्षों में तो मूक और जड़ हो गया हूँ । फिर भला मैं यह कौशल कहाँ से ला सकता था कि उन छात्रों का मन बरबस अपनी ओर खींच लूँ । फिर अभी तो उनकी प्रसन्नता बनी ही थी । मुझे तो अपने भाषण में कुछ गम्भीर साहित्यिक समस्याओं पर इस दृष्टिकोण से विचार करना था कि उनका हमारी भावी पीढ़ी के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा । विश्वविद्यालयों में छात्र गुरुपदों से बराबर सूर, तुलसी और प्रेमचन्द का अध्ययन करते हैं । पर उनके जीवन के साथ साहित्य का क्या सम्बन्ध है, यह बात तो उन्हें बताई नहीं जाती । जिन गुरुपदों ने कबीर, दादू, तुलसीदास साहित्य शृङ्गार विषयक बातों पर निबन्ध लिखकर विश्वविद्यालयों में गुरुपद पाया है, वे भी अपने पाठ्य विषय से छात्रों को इधर उधर नहीं जाने देते । इसीसे प्रसाद और प्रेमचन्द आज भी काव्य और कथा साहित्य में चरम स्थान पर बैठे हैं । मानो आज के कवि और कथाकार

भकुआ है, और हिन्दी साहित्य का गत तीस वर्षो मे कुछ विकास ही नही हुआ है, विश्व की बदलती हुई रेखाओ को जसे हिन्दी के साहित्यकार देख समझ ही नही रहे है। इसीसे आज प्रेमचन्द हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार और कामायनी, एम० ए० के छात्रो को पढाने योग्य पुस्तक स्वीकार हुई है। इस प्रकार विश्वविद्यालयो का वातावरण अग्रदृष्टि नही रखता है। वहा तो छात्र घोडे पर इस प्रकार सवार कराए जाते है कि उनका मुह दुम की ओर होता है।

भला यह भी सम्भव हो सकता है कि हमारे विश्वविद्यालयोमे छात्र और उनके गुरुपद सूर और बिहारी के पदो और अलकारो की व्याख्या करते रहे, या कबीर की उलटबासियो पर थीसिस लिखकर डाक्टरेट की उपाधि लेने मे गर्व का अनुभव करते रहे, प्रसाद और पत से उलझते रहे, कामायनी के मनु और श्रद्धा की कपोलकल्पित, अप्राकृत मूर्तियो को दूरवीक्षण यन्त्रो के सहारे देखते रहने मे समय बर्बाद करते रहे, और उधर अणु और उद्जन बम दुनिया को तबाह करने की तैयारी करते रहे। क्या दुनिया की इस तबाही पर उन पर कोई असर नही होगा? और जब तबाही की वह आग उन तक पहुँचेगी तब क्या पत का रहस्य,महादेवी की पीर,प्रसाद की श्रद्धा उनकी रक्षा मे कुछ सहायता देगी? उन्हे छोडिए—क्या सूर के कृष्ण और तुलसी के राम ही कुछ मदद करेगे? क्या इस शिक्षा से कुछ भी जीवन की व्याख्या का सम्बन्ध है? क्या हमारा साहित्य हमारे आज के जीवन की व्याख्या कर रहा है? क्या आज का साहित्य हमारे आज के आधुनिकतम जीवन का प्रतिनिधित्व कर रहा है?

हिन्दी साहित्य के विकास की ओर भी तो जरा दृष्टि डालिए। सामन्ती युग मे उसमे वीररस की प्रतिष्ठा हुई। मारना और मरना शेखी की बात समझी गई। कवियो और भाटो तथा चारणो ने, जो सामन्तो के वतन भोगी स्तुति गान करने वाले थे, इस मारकाट, हत्याकाण्ड, खून खराबी का ऐसा प्रशस्त गान किया कि लोग उसमे मग्न हो गए, वह रस बन गया साहित्य का एक स्थिर अँग और आज मानव मृति के उदय होने पर भी वह साहित्यका अग बना हुआ है। हा सामती युग तो अबभी समाप्त नही हुआ। तलवारे टूट गई। बन्दूक भी रद्द हो चुकी,पर तो मृत्यु दूत विज्ञानके रथ पर सवार हो नगरो को खाक करने पर तुले हुए है। परन्तु क्या वीर रस के अन्तर्गत हम इन मृत्यु दूतो का,इन हत्यारो का भी यशोगान करना होगा? वीररस की प्रतिष्ठा तो हमे करनी ही है और विनाश ही का नाम यदि वीररस है,तो फिर अणु और उद्जन बमोके प्रयोक्ता घृणित हत्यारे नही, वीरतम वीर शिरोमणि है।

मै स्वीकार करता हू। वह युग था जब वीररस ने तत्कालीन राजपूत और दूसरी जातियो को जीवन दिया। यदि भाट और चारण अपने साहित्य मे वीररस का सृजन न करते तो राजपूतो का बीज नाश हो जाता। प्रबल प्रतापी मुगलो को अपने

दिल्ली और आगरे के उर्दू और फारसी साहित्य में वीररस का आलम्बन नहीं मिला। फलत वे मटियामेट हो गए। वीर रस के स्थान पर शराब की सुराहियां उनके आगे लुढकाई गई, यौवन और वासना की शक्तियां मुग्ध हो गई, जिससे मुगल साम्राज्य को डूबकर और जलकर निःशेष हो जाना पडा। निस्सन्देह आज राष्ट्रवादी योरोप के लोग के प्यासे आज भी रक्तपात में रुचि रखते है। इनका निर्माण ही रक्तपात के उपादानों से हुआ है। योरोप की जातियों पर प्राचीन ग्रीस के कठोर निष्ठुर जीवन का प्रभाव है। सुकरात और ईसा के असमानवीय वध इसके उदाहरण हैं। शेक्सपीयर ने अपने अप्रतिम भाव नाटय औथेलो मे एक क्रूर निर्दय पति को उपस्थित किया है, जो एक ही रात्रि मे अपना पौरुष और विवेक खोकर केवल सदेह के आधार पर अपनी भोली भाली और सु दर पत्नीका गला घोटकर वध कर डालता है। शेक्सपीयरने इस घटनाकी अभिव्यजना करते हुए गहन कोमलतम करुण भावोकी उत्तम स्थापना की है। परन्तु मैं जिस बात की ओर विशेष ध्यान दिलाऊगा, वह है इस निर्मम हत्याकाण्ड को चुपचाप देखते रहना, जो योरोप की जातियो के परम्परागत निष्ठुर स्वभाव का द्योतक है।

शौर्य और पराक्रम का प्रदर्शन पाश्चात्य साहित्य में कम नहीं है। परन्तु चरित्र का वह विकास, जो हम राम लक्ष्मण सीता भरत-युधिष्ठिर आदि के चरित्रों में देखते हैं वह योरोप के साहित्य में नहीं है। यह व्यास और वाल्मीकि की कलम के चमत्कार है कि वे प्रताडित होने पर भी तथा भयानक रक्तपात करने पर भी, न तो दया के पात्र बनते हैं और न घृणा के। इसके विपरीत चरित्र के विकास ने उनके प्रति जनपदके मन में श्रद्धा और भक्ति का भाव इतना अधिक जाग्रत कर दिया है कि वे देवत्व के पद को पहुँच गए हैं। पाश्चात्य साहित्यकारों ने कुत्सा की प्रबलता में वीर रस को प्रकट किया है, पर भारतीय साहित्यकारों ने निष्ठा और चरित्र की मर्यादित सीमा में वीररस को उदय किया है। यह निष्ठा ही है कि जिसके कारण निर्द्वन्द्व होकर पाण्डवों को परिजनों का रक्त बहाने को उत्तेजित करते कुण्ठित नहीं होते। वाल्मीकि व्यास से भी बढे चढे है। व्यास निष्ठा के बलपर मानव में देवत्व का आरोप नहीं कर सके, पर वाल्मीकि ने यह कार्य किया। वाल्मीकि ने शक्ति, धैर्य और निष्ठा के सगम से राम को देवत्व प्रदान किया है। इस निष्ठा के दर्शन आप सीता, शकुन्तला में कीजिए। सीता और शकुन्तला के टूटे हुए हृदयों पर नजर डालिए। सीता पति से त्यक्त होने पर भी बिना ही क्रोध किए पति पर श्रद्धा और प्रेम के फूल बखेरती वियोगके दिन काटती है। राम की भी आप औथेलो से तुलना कीजिए। राम औथेलो जैसा, क्रूर विचारहीन और निष्ठुर पति नहीं है। वह आदर्श पति, आदर्श राजा और आदर्श पुरुष है। इसी से वाल्मीकि उनकी मानव मूर्ति में देवत्व की स्थापना कर सके और विश्व के सब साहित्यकारों के मूर्धन्य हो गए। उन्होंने जो आदर्श चित्र अकित किए, उनकी इस सामर्थ्य के

पीछे एक वस्तु थी—धर्माश्रय। धर्माश्रय ने ही उन्हें अमरत्व दिया और उन की रची हुई मूर्तियों का देवत्व प्रदान किया। पाश्चात्य कलाकार धर्माश्रय नहीं प्राप्त कर सके इसी से प्रेम दया क्षमा और तप के रेखाचित्र वे नहीं खींच सके।

और आज जिन उद्जन बम, और अणु बम के नाम से दुनिया त्रस्त है वे मृत्यु दूत महास्त्र एक ही दिन में नहीं बन गए हैं। इनमें मानव मन की चिरंतन भावना निहित है। मनुष्य जाति का सहस्रों वर्षों का पिछला इतिहास प्रगति और संस्कृति विकास के विवरणों से भरा हुआ है। आज पश्चिम का वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ विध्वंस और विनाश का अग्रदूत हो उठा है। इसका कारण है योरोप की संस्कृति की क्रूर परम्परा, जिसमें योरोप के साहित्य की रक्तरंजित भावनाओं का पुट है। अणुबम और उद्जन बम उसी खेत की उपज है, जिसमें योरोप के साहित्यकारों ने मनुष्य के प्रतिहिंसा और खून की खाद दी थी।

हमारे विश्वविद्यालयों का वातावरण जहां आज भी पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति से प्रभावित है, वहां वह आर्य साहित्य से नहीं। इसीसे आज जो विद्वान विश्व विद्यालयों से दीक्षा प्राप्त करके निकलते हैं, साहित्य रचना करते हैं, सोचते विचारते हैं वह कुछ भी आर्य साहित्यसे प्रभावित नहीं होता। मैं यदि यह कहने की धृष्टता करूँ कि आज की डाक्टरेट की योग्यता, कभीके मिडिल पासों से कुछ भी अधिक महत्व नहीं रखती, तो मुझे क्षमा किया जाय। इसी से विश्वविद्यालय का छात्र साहित्य के सच्चे रूप से अपरिचित ही रह जाता है। जीवन और सौंदर्य की व्याख्या का नाम साहित्य है। बाहरी दुनिया में जो कुछ बनता बिगड़ता रहता है उस पर से मानव हृदय और भावना की जो रचना करता है, वही साहित्य है। साहित्यकार साहित्य का निर्माता नहीं उद्गाता है। वह केवल बांसुरीमें फूंक मारता है। शब्द शक्ति उसकी नहीं, केवल फूंक मारने का कौशल उसका है। इसलिए साहित्यकार का आनन्द उसका अपना नहीं है सब का है। पक्षी जैसे अपने आनन्द में मग्न होकर गाता है, कवि वैसे नहीं गाता। कवि का गान तो माता का दूध है—संतानके लिए। मां का दूध पीकर जैसे कवि की नाद ध्वनि सुनकर जगत जीवन की राह पाता है। उसका स्वर जगत के लिए है, जगत के लाखों करोड़ों अरबों जनों के लिए। कवि जो सोचता है जो कुछ अनुभव करता है वह मरता नहीं। वह एक मन से दूसरे मन में, एक कान से दूसरे कान में, एक कालसे दूसरे कालमें मनुष्य की बुद्धि और भावना का सहारा पाकर जीवित रहता है। यही साहित्य का सत्‌रूप है।

मोहनजोदडो और हड़प्पा के ध्वंसों में, किसी विलुप्त विस्मृत मानव समाज के कुछ अक्षर हमें मिले, अज्ञात भाषा के अपरिचित अक्षर। उनमें किस समय की, किस सजीव मन की, क्या चेष्टा अंकित है, उसे जानने को हमारा मन छटपटा रहा है।

अशोक ने पत्थर के शरीर में खोदकर अपनी अभिलाषाएँ चिरकाल तक श्रुतिगोचर करानी चाही। उन पत्थरों को अपनी बात कहने का भार सौंप कर अशोक का नश्वर शरीर लुप्त हो गया। अब वे पत्थर इस काल का कुछ भी विचार न करके उस सम्राट की उन भूली हुई बातों को भूले हुए अक्षरों में, अनजानी भाषा में आज बोल रहे हैं। युग बीते, शताब्दियाँ बीतीं, सहस्राब्दियाँ बीतीं, और आज अशोक की वह महावाणी एकाएक फूट पड़ी।

परन्तु यह विद्यार्थी वर्ग के अभिमान का केवल एक कारण है। उसकी सहायक और भी बातें हैं, जिनमें सामने प्रथम मैं सिनेमा का नाम लूँगा। सिनेमा वह खतरनाक वस्तु है जिसने तरुण वर्ग का सारा संयम और निष्ठा का संतुलन खराब कर दिया है। मैंने खूब बारीकी से देखा है कि विश्वविद्यालयों में जब साहित्यिक समारोह होते हैं, वक्ता भाषण देते हैं, तब भी तरुण विद्यार्थी का वर्ग उसे सिनेमा ही की भांति अपने मन की पसंद से नापना जोखता है। और जहाँ जरा भी नापसंद अपनी रुचि के विपरीत, या अपने मूड के प्रतिकूल कुछ देखा—कि उसमें अवश वह वैकल्प जाग उठता है जो ठीक ऐसे अवसरों पर सिनेमा देखते हुए जागता है, और वह उस वैकल्प को संयत नहीं रख सकता। इसी से विश्वविद्यालय के समारोहों में पवित्रता, गम्भीरता और एकाग्रता के स्थान पर हमें सिनेमा की भीड़ की गंदगी और अनुशासनहीनता दीख पड़ती है।

ऐसा ही कुछ मैंने यहाँ इस अवसर पर देखा। मैं अभी अपने भाषण की प्रस्तावना की स्थापना कर रहा था कि मक्खियों की भिनभिनाहट की भांति एक वृद्धिगत ध्वनि मेरे कानों में आने लगी। यद्यपि प्रकाश अपर्याप्त था, परन्तु मैंने देखा कि जैसा प्रायः होता है वातावरण और भी अनुशासनहीन हो सकता था। वहाँ तक पहुँचने देना कहाँ की बुद्धिमत्ता थी। मैं जानता हूँ कि ऐसी अवस्था में वहाँ खड़ा रहना दूभर हो जाता है। मैंने बुद्धिमानी से काम लिया और भाषण की प्रस्तावना ही में उनसे हारकर मैं बैठ गया।

परन्तु इसके तत्काल बाद ही वहाँ सचमुच ही सिनेमा का वातावरण स्थापित हो गया। स्टेज तुरन्त नाटकीय रंगमंच के रूप में बदल गया। मैं प्रसन्न होता—यदि विश्वविद्यालय के छात्र छात्राएँ कोई भावपूर्ण अभिनय का आयोजन करते। कला और सौंदर्य का सत्य रूप दीखता। परन्तु वहाँ तो संगीत का एक दरिद्र प्रदर्शन मात्र था, जो निस्सन्देह दयनीय था। एक रेडियो गायिका केवल एक दिन के लिए तीन सौ रुपए फीस देकर दिल्ली से ले जाई गई थी, जो मेरे साथ ही आई थी। एकाध निष्प्राण गाना होने के बाद उसने दो गजलें गाईं, जिनमें आशिकेजार मुहब्बत की आग में जले जा रहे थे, तड़प तड़प कर या अपने मरने का मर्सिया गा रहे थे, या तूमतड़ाम से

दिल की दिल्लगी का इजहार कर रहे थे। छात्रगणो को अब रस आ रहा था। गायिका की कोमल बारीक आवाज साफ सुनाई देने मे अब कोई बाधा न थी।

विश्वविद्यालय के आचार्य श्री बाजपेयी जी तो आरम्भ मे ही उठ कर चले गए थे। उन दो गजलो के खत्म होते न होते और भी अनेक उठ गए और तभी मै भी उठ आया। इतनी देर सवारी की प्रतीक्षा मे बैठना पडा।

यहा क्या इस बात पर विचार नही किया जा सकता कि एक तरुणी रेडियो गायिका को गजले गाने के लिए एक साहित्यकार के साथ विश्वविद्यालय के इस समारोह मे तीन सौ रुपए की फीस देकर किस विचार से बुलाया गया था? सगीत तो वह था ही नही। साहित्य भी न था। कितना अच्छा होता—नए पुराने हिन्दी काव्य के कुछ अश छात्र छात्राऍ स्वय ही गाते—आनन्द को किराए पर खरीदने की यह पुरानी भारतीय परिपाटी है। उस काल मे डोम मीरासी और वेश्याए किराए पर लोगो का मजलिसो मे मनोरजन करते थे—अब भद्र महिलाए और भद्र पुरुषो ने यह पेशा अख्तियार कर लिया है। पर जैसा कि स्वाभाविक है—ऐसी मजलिसो का वातावरण निर्दोष और भद्र नही रहता है। और इस प्रकार के दृश्यो का सास्कृतिक मूल्य तो कानी कौडी के बराबर भी नही है। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय के प्रसग मे— जहॉ गुरुपद सहित छात्र छात्राए भी उपस्थित हो, ऐसा प्रदर्शन सर्वथा अशोभनीय और अनुचित था। केवल इस सगीत सभा का उद्घाटन करने के लिए मुझे कष्ट दिया गया था।

मुझे तो चला आना था। सो दूसरे दिन में चला आया। उस दिन कवि सम्मेलन भी होने को था। मैने सुना कि किसी कवि को दो सौ, किसी को डेढ सौ और किसी को सौ रुपया फीस देकर सम्मेलन मे बुलाया गया है। कुछ ढाई तीन सौ माग रहे थे। उन्हे छाट दिया गया है। बच्चन नही आ रहे थे उनकी फीस भारी थी। हलके हलके तरुण कवि हलकी हलकी फीस मे जुटा लिए गए थे। किसी तरह महफिल सज जायगी—यहा भरोसा कर लिया गया था।

कवि सम्मेलन भी मैने देखे है। वहा सदैव ही कविता का उपहास होता है। कविता के विकास का तो इन सम्मेलनो से कोई सम्बन्ध नही है। उपयुक्त कविता की उपयुक्त सराहना भी नही होती है। गले दराजी इन कवि सम्मेलनो की जान होती है और इन सम्मेलनो की सफलता महफिल की सफलता से अधिक नही है।

इस कवि सम्मेलनमे चाहे तरुण कवि हो, चाहे प्रौढ, परन्तु मेरा ध्यान उस फीस की ओर गया, जो इन कविजनो ने प्रथम ही ठहरा ली थी। फिर तुरन्त ही मेरा ध्यान उस रेडियो गायिका की ओर भी गया जिसे तीन सौ रुपया फीस देकर दो चार गजले और हल्के फुलके गाने गाने के लिए यहाँ बुलाया गया था। हठात् मुझे अपनी मूर्खता का ख्याल आया कि मैने तो कोई फीस तय ही नही की। क्या कारण है कि और लोग

गठरिया बाध कर यहा से जाय—मे अपना इतना समय नष्ट कर और इतनी गमुसिया, बर्दास्त कर हाथ फटकारता जाऊँ ? कुछ खीझ और कुछ विनोद के मूड मे मन इस आयोजन के पुरोहित छात्र से, जो मुझे और उस गायिका को दिल्ली से हाक ले गया था साकेतिक भाषा मे पूछा—कि क्या मेरे भी हाथ पल्ले कुछ पड़ने की आशा है ? और इस तरुण ने तपाक से जरा लज्जा का अभिनय करते हुए कहा—दखिए, जो कुछ बन पडता है—हम साहित्यकारो की सेवा करते है आप की भी करेगे ।

जब हम लोग—मै और वह गायिका युवती स्टेशनपर पहुचे तो आयोजना का प्रमुख नोटो का बडल लिए वहा हाजिर हुआ । दिल मेरा धडकने लगा । लेकिन सिर्फ धडक कर ही रह गया । उसने वह गठरी सावधानीसे गिनकर गायिकाके सुन्दर फैंसी पस मे रख दी । उसके कुछ क्षण बाद मुबलिग पाच रुपए मेरी हथेली पर रख कर सभ्य शिष्ट भाषा मे निवेदन किया गया कि हमारी युनिवर्सिटी गरीब है अधिक हम सेवा नही कर सकते ।

दो दिन इन छात्रो से में प्यार से बातचीत करता रहा था । अब इस तरह गुस्सा करने से क्या भला हो सकता था । अवश्य ही मेरा अपमान हो रहा था, लेकिन यह सत्य है, कि इन तरुणो का इरादा मेरा अपमान करने का नही था । फिर भी मेरे मस्तिष्क का सतुलन बिगडने लगा । वे रुपए रख लेना किसी भी हालतम सम्भव न था, पर मैंने तुरत ही अपने ऊपर काबू कर लिया । वे पाच रुपये चुपचाप जेब मे रख कर मेने हॅस कर इस छात्र की ओर देखा ।

परतु अभी तो मुझे और एक परीक्षा देनी थी । तुरत ही टिकट लगी रसीद पर मेरे हस्ताक्षर मागे गए । देखा तो रेल टिकट के रुपयो समेत वे पाच रुपए भी उसमे जोड कर मुझ से रसीद मागी जा रही है । अब तो मे सयत न रह सका । तो भी मैने चुपचाप दस्तखत कर दिए और चाहा कि अब ये लोग मेरे सामने से हट जाय ।

लेकिन हटना पडा मुझे ही, जब रेलगाडी मुझे घसीटती हुई वहा से खसक चली । कम्पाटमेन्ट मे सिर्फ हम दो थे, एक मै, गाभ से भरा हुआ, जिसके दो मूल्यवान दिन व्यर्थ ही नष्ट हुए थे और यात्रा का कष्ट सहना पडा था घाटे मे, दूसरी यह रेडियो गायिका, होठ उसके खुशी से फूल रहे थे ।

प्रेम का मूल्य धन

वयरक्षाम से निबटकर मै फिर भारतीय सस्कृति के इतिहास मे जुट गया । मुझे उसे पूरा करने की इतनी जल्दी थी कि मे अपने कर्जे को उतारने की व्यवस्था करने को टालता रहा । मैने कहा—मित्र के रुपए है, जरा देर मे ही उतर जाएँगे, परतु साहूकार कभी मित्र नही रह सकता । उसने मुझसे आकर सीधे मुह तकाजा भी नही किया, अपने वकील के द्वारा रजिस्ट्री नोटिस सूद दर सूद लगाकर असल से ढाईगुनी

रकम बनाकर मुझे दे दिया। यह भी धमकी देदी कि एक माह के बाद वह दावा भी कर देगा, परन्तु मैने उसे कुछ न कह कर उसके वकील को यह पत्र लिखा—

'श्रीमान् लालाजी की ओर से आपका भेजा हुआ ता० २३ मार्च १९५१ का नोटिस मिला, धन्यवाद। उत्तर मे निवेदन है कि प्रथम तो लालाजी ने केवल पाच हजार रुपया के एवजम मेरी एक लाख रुपए मूल्य की प्रापर्टी अपने कब्जे मे करली है, दूसरे वे मुझसे कसकर करारा सूद लेते है, तीसरे वे मेरे पुराने मित्र है चौथे उन पर मेरे कुछ अहसान भी है। एकबार उन्हे भयकर बिमारीसे बचाकर आरोग्य किया, दूसरी बार ब्लेक मेकिंग मे उन्हे सात वर्षकी सजा होनेवाली थी दौड़धूप करके उससे बचाया। पाचवे मै धन कमानेवाला जीव नही हूँ, साहित्य सेवा करके अपने देशके लाखो मनुष्यो की सेवा करता हूँ, छठे पिछले पूरे एक साल मै सख्त बीमार रहा और दूसरी मुसीबता मे भी फँसा रहा जिनसे लालाजी अनजान नही है। लेकिन इन सब बातो का लालाजी ने कोई विचार नही किया। उन्होने बडी बेरहमी और सख्तीसे तकाजे पर तकाजे करके मेरा नाक मे दम कर दिया, जिससे मेरे दिल को बहुत सदमा पहुँचा है। अपनी बिमारी की बुरी से बुरी हालत मे मैने एक पुरजा लिखकर उनके कदमो मे अपना सिर रख दिया, पर उन्होने उसमे भी एक ठोकर मार दी। फिर भी इन सारी बातो से मै उनसे नाराज नही हूँ, क्योकि एक तो मै प्रेम और विश्वास को अपने जीवन का सहारा समझता हूँ। दूसरे जिसे एकबार मित्र समझ लिया, उसकेसाथ दुर्व्यवहार रखना अपनी शान के खिलाफ समझता है, तीसरे मै यह जानता हूँ कि लालाजी एक मामूली निबुद्धि आदमी है। उनका छोटा सा दिल, छोटी सी दुनिया और छोटे ही विचार है। वे न तो मेरी प्रतिष्ठा और योग्यता ही को जानते है और न उनमे कर्त्तव्य को समझने ही की शक्ति है। उनकी दौड अधिक से अधिक दुकान से 'लल्ला की मा' तक ही है। ऐसी हालत म उनसे मुझे इससे अधिक कुछ आशा ही नही करनी चाहिए कि जो सलूक उन्होने मेरे साथ किया अथवा करने का इरादा रखते ह।

इस अर्से म मैने उनका रुपया चुकता करने की अपने भरसक बहुत कोशिश की, क्योकि उनका व्यवहार मेरे साथ ऐसा अपमानजनक था कि उसे मै किसी हालत मे बर्दाश्त नही कर सकता था। पर मेरा यह दुर्भाग्य है कि मुझे इस तुच्छ रकम को चुका देने म सफलता नही मिली। यह समय की बात है, ज्यादा क्या कहूँ ? कभी इतनी रकम एक एक दिन मे खर्च हो जाती थी। पर उन बाता से अब क्या सरोकार। मेरी बीमारी के दौरान मे मेरे एक प्रतिष्ठित मित्र को मेरी इस दिक्कत का पता किसी तरह लग गया था। वे दौड़े हुए आए और बोले कि लालाजी आपके मित्र है, उन्हे तकलीफ देने की जरूरत नही। वे आपसे ब्याज नही लेगे, असल पाच हजार रुपए मे चुकता दिए देता हूँ। मैने अछता पछता कर उनका दान लेना स्वीकार कर लिया। पर जब

लाला जी से मैंने ब्याज छोड़कर असल रुपया लेने का इसरार किया तो उन्होंने वह स्वीकार नहीं किया। ऐसी हालत में मित्रता की मर्यादा भंग हो गई और लालाजी का व्यवहार मेरे साथ मित्रवत नहीं रहा, महाजन का व्यवहार रहा। मैं मित्र के लिए मित्र का दान ले सकता था, महाजन के लिए नहीं। यह मेरी शान के खिलाफ था, क्योंकि मैं अभी इतना निकम्मा नहीं हो गया हूँ कि महाजन के लिए मित्र का रुपया लूँ। इसके लिए मेरी प्रोपर्टी है, शरीर है। उसे बेचकर महाजन का रुपया चुकाया जा सकता है। मैंने अपनी जमीन कुछ बेचने तथा अन्यत्र रहन रखने की भी चेष्टा की, पर कुछ ऐसी बाधाएँ आती गईं कि सफलता नहीं मिली, देर होती ही गई।

अब ईश्वर की कृपा से हालात बदलने लगे हैं और रुपया थोड़ा थोड़ा आने लगा है। मैंने तारीख २७ मार्च १९५१ का इलाहाबाद बैंक का एक किता चैक संख्या डी० ८६७२८ इसी रहन के सिलसिले में ८ मार्च १९५१ तक का चुकता एक हजार रुपये के ब्याज के पेटे आठ आना सैकड़ा के दर से लालाजी को भेज दिया है। दूसरी किश्त अगले मास में भेजूँगा तथा उनका असल और ब्याज सब जून जुलाई तक चुकता हो जाय इसकी भरसक चेष्टा करूँगा। सो आप लालाजी को सूचित कर दीजिएगा, साथ ही नमस्ते भी। मेरे कारण लालाजी को जो तकलीफ पहुँची है, उसके लिए, जब उनका रुपया मयब्याज चुकता हो जायगा, तब उनके दरे दौलत पर पहुँच कर प्रार्थना करूँगा कि वे जो सजा मुनासिब समझें, दें। इससे मुझे खुशी होगी। अपने कानूनी नोटिस के जवाब में मेरे इस लम्बे खत को पढ़कर शायद आपको कुछ अजीब सा लगा होगा, परन्तु मैं मामले—मुकद्दमों और कानूनी दावपेचों को पसन्द नहीं करता। लालाजी और चाहे जो व्यवहार मेरे साथ करें, पर यह मैं विश्वास करता हूँ कि वे मुझे बेईमान समझने की हिमाकत कभी न करेंगे।'

पर लालाजी ने मेरे वायदों का भरोसा नहीं किया। मेरे ऊपर नालिश ठोक दी। केस चला, अन्त में बड़ी कठिनाई से जोड़ तोड़ लगाकर इस कर्ज को १९५६ में उतार पाया था। परन्तु केस होनेपर भी मैं एक दिन भी कोर्ट में नहीं गया। न मैंने लालाजी से एक पैसा कम करने अथवा छोड़ने की प्रार्थना ही की। चन्द्रसेन ही केस करते रहे। केस के समाप्त होने से पहिले एक बार उन्होंने चन्द्रसेन से कहा था कि यदि शास्त्रीजी अब आकर मुझसे ब्याज छोड़ने को कहें तो मैं कम कर दूँगा। पर मैं नहीं गया। मुझे उस आदमी से सख्त नफरत थी। चन्द्रसेन ने उनसे कहा कि आप ही उनके पास चल कर बात कर लीजिए, पर वह भी नहीं आए।

उनकी आयु सत्तर को पार कर रही थी, शराब और ऐय्याशी उन्हें बड़ी तेजी से मृत्यु के पास ले जा रही थी। कर्ज की अन्तिम किश्त देने जब चन्द्रसेन उनके घर गए तब वे मृत्यु की तैयारी में थे। उन्होंने चन्द्रसेन से कहा—यह अन्तिम किश्त मैं नहीं

लूगा इसे मे छोडता हूँ। पर चन्द्रसेन ने इसे स्वीकार नही किया। उसने जिद्द करके वह किश्त चुकाता की और रसीद ली। कर्ज से मुझे मुक्ति मिली।

रसीद देने के बाद वे रो पडे। रोते-रोते उन्होने कहा—'मने बुरा किया।'

इसके दो तीन महीने बाद ही वे मर गए थे।

सन् १९३८ मे हरिद्वार कुम्भ अवसर पर आलइण्डिया रेडियो की ओर से मुझे कुम्भ अवसर पर वहा से कमेन्टरी करनेका निमन्त्रण मिला। मेरे साथ देहली के प्रसिद्ध वम पत्रकार पण्डित रामनाथ कालिया भी भेजे गए।

कुम्भ जोरो पर था और दूर दूर से लाखो व्यक्ति वहा आए हुए थे। हरिद्वार पहुँचकर म अपने निवासस्थान के प्रबन्ध पर विचार कर ही रहा था कि मेरे साथी पण्डित कालियाजी ने कहा—'मेरे मित्र पण्डित लीलाधर शास्त्री ऋषिकुल आश्रम मे रहते हे। मै तो वही ठहरूँगा, आप भी मेरे साथ वहा चलिए।'

मने स्वीकार किया और वहा जाकर ठहर गया। पण्डित लीलाधर शास्त्री को जब यह ज्ञान हुआ कि कालिया जी के साथ आकर आतिथ्य ग्रहण करने वाला व्यक्ति 'चतुरसेन' हे, तब वे चौक पडे। इससे प्रथम उन्होने मुझे देखा नही था। केवल मेरे ग्रन्थ पढे थे और ब्राह्मणो के प्रति मेरी आलोचनाओ से भी वे मेरे विपरीत थे। उन्होने मेरा नाम सुनते ही कालिया जी से कहा—'बाबा, तुम किसे मेरे घर ले आए हो ?'

कालियाजी ने प्रश्न किया—क्यो, क्या बात हे ?

अरे बाबा, ब्राह्मण के घर मे घोर नास्तिक व्यक्ति को ले आए हो, जो खुले खजाने ब्राह्मणत्व पर प्रहार करता है।

कालिया जी हँस पडे। उन्होने उत्तर दिया—अभी तक इन्हे दूर से सुना ही सुना हे, अब पास से देखो, परखो, जाचो।

गृहस्वामी चुप हो गए। मे दूसरे कमरे मे बैठा सब सुन रहा था। पर म वहा से गया नही, वही ठहरा रहा।

तीसरे दिन जब हम अपना काय करके बिदा हुए, तब गृहस्वामी ने मुझसे एक दिन और ठहरने का आग्रह किया। उनके मन का भाव बदल चुका था और वे अपने आन्तरिक प्रेम उद्वेग को अपनी कम्पित वाणी मे छिपा रहे थे।

अपराजिता एक नारी

जब से प्रक्टिस छोडी और कलम-घिसाई का धन्धा अख्तियार किया, तगदस्ती बढती ही गई। अजब नही, एक दिन भूखो मरने की नोबत आ जाय। परन्तु मुझ 'इच्छा दरिद्री' को इसकी शिकायत क्या ? १९५२ के दिन थे। महीनो से बच्चे फटेहाल स्कूल जा रहे थे। एक दिन बाजार मे कपडेका एक पीस सस्ता मिल गया। इत्तफाक से पसे जेब मे थे, खरीद लाया। घर आकर चन्द्रसेन की पुत्री प्रभा से कहा—इस कपडे का तू

फ्राक बनवायगी या प्रकाशका बुशशट बनवा द । उसने कोमलतासे हँसकर कहा -प्रकाश का बुशशट बनवा दीजिए । और चली गई । फिर मैंने प्रकाश को बुलाकर पूछा—इस कपडे का तू बुशशट बनवायगा या मै प्रभाका फ्राक बनवा द । उसने झपटकर कपडा मेरे हाथ से खीच लिया और उसे लेकर हँसता और यह कहता हुआ भाग गया मै बुश शट बनवाऊगा ।

साहित्यकार खब्ती तो होते ही है । बहुत देर तक मै इस अत्यत छोटी सी बात पर विचार करता रहा । विचार करते करते बहुत पुरानी,साठ वर्ष पहली धुधली स्मृतिया मानस पटल पर उदित हो आइ । पिताजी कभी नाराज होकर मुझे एकाध चपत मार देते थे या गुस्सा होकर बकते थे तो कला की आखोमे पानी भर आता था । कला मुझसे बहुत छोटी थी, नासमझ थी, फिर भी जो चपत मुझ पर पडती थी,उसकी चोट न जाने कहा, कसे उसे लग जाती थी, क्या उसकी आखे भर आती थी । तब मैने यह मम नही समझा था,इस पर विचार नही किया था । परन्तु उसके बाद ही नारी जाति से मेरा परिचय बढता ही गया । बचपनमे मैने अपनी माता की निरीह असहाय अवस्था देखी, अपने परिजन पास पडौस की स्त्रिया की दुरवस्था भी देखी । कोई पतिसे पिटती थी और रोती हुइ माता के पास आकर फरियाद करती थी कोई आधी रात से सूर्योदय तक चक्की पीसकर अपना और बच्चो का पेट पालती थी । कोई बालिका विधवा थी, कोई युवती पति से त्यागी जाकर पिता के घर भरके तिरस्कार सह रही थी । एक बार अपने पडोस की एक सात वर्ष की बालिका को,जब मैने इसलिए फूट फूटकर रोते देखा कि उसकी माता ने उसकी एक ही दिन पहले पहिनी चूडियो को पत्थर से चकनाचूर कर दिया, क्योकि उसके विधवा होने का तार ससुराल से आया था । वह सिसक सिसक कर रोरही थी । विधवा होने के कारण नही,चार पैसे की चूडियाके कारण !!!

मेरी आख खुलती गइ,और नारी की भावुकता और पीडा मेरे अग मे प्रवेश करती गई । तब से अब तक,बहुत बार मुझे उनके लिए आखो का पानी बहाना पडा । एक दिन एक असहाय नव प्रसूता को एक तनिकसे अपराध मे उसके पति ने निदय होकर खूब पीटा, उसके सब जेवर उतार लिए,उसे जाडो की सूनी रात और ठण्डी रात मे धक्का देकर घरसे निकाल घरमे ताला ब द कर दिया । बेचारी असहाय नारी अस्मत, गरत,लाज और मर्यादा से लदी-फदी किसी पास पडोसिनके यहा शरण मे न जा सकी, अफीम निकल गई । भोरके तडकेमे उधर शौचको लिए निकला तो अधेरमे ठोकर लगी । अरे,यह राह मे कौन सो रहा है ? देखा तो की वह ! आख पथराई,मुह से फेन निकलता हुआ, बदन ठण्डाबर्फ लकडी सा एठा हुआ, छाती पर सूखे स्तन चूसती हुई नवजात बालिका ! हे राम, हे राम,मै दौडा दौडा माता के पास गया । मा ने उठाकर उसे बिछोने पर सुलाया, उपचार किया, मा को उसने धन्यवाद नही दिया, आखो मे पानी

भरकर कहा—अम्मा, अच्छा नही किया, मुझे दु ख सागर मे फिर धकेल लाइ, म जा रही थी सुख मागर मे गोते लगाने, और मा ने अपनी चिरअभ्यस्त गाली दी, पगली ले दूध पी ! और गन दूध का गिलास उसके सूखे शीतल होठोसे लगा दिया । तीन दिन मै उस नारी की खाटके पास पाटी पर सिर टेके बठा रहा । सेवा टहल कुछ नही की, सिफ कभी कभी पूछता, अब कसी हो भाभी, क्या अम्मा को बुलाऊँ ? और उसका जवाब था,नही भय्या,मै अच्छीहूँ ! इसके बाद पानी,पानी,पानी । वही आखोका पानी।

इससे तो मेरी आखा का पानी झुलस उठा । वह उत्तप्त होकर चार धार धार बहने लगा । कितना बहा, अब इसका हिसाब किताब क्या दू ? एक दो दिन का खाता नहीं है । साठ साल से कुछ ऊपर ही का जमा खच है ।

इस बीच, ज्ञान विज्ञान, धम, नीति, समाज, राजनीति और अथशास्त्र के गहन बनो मे होकर जीवन पार करना पडा सम्पत्ति और विपत्तियो ने प्राणो को बहुत बार झकझोरा, बहुत बार जीवन मरण की समस्याएँ आइ, अनगिनत शत्रु और मित्रोसे हाथ मिले, आखे मिली, पर तु वह नारी जो हृदय मे बैठी सो बठी, आसू से भरी हुई, दद से कराहती हुई निराशा से लाचार, असहाय बेबस ।

चार युग देखते ही देखते बीत गए । युग ने पलटा खाया, नारी की ददभरी कराह क्रोध की चीत्कार और आवेश के फूत्कार मे बदल गई । मेरी मा, दादी, चाची, भाभियो और बहनो की छाया कभी घर की दहलीज के बाहर नही हुई । लक्ष्मण की खीची हुई रेखा जैसे रावण को भिक्षा देने आकर सीता के उल्लघन करने मे आपत्ति थी, वसे ही अपने छकडा भरे दु ख सुख को लेकर घर की दहलीज से बाहर निकलना उनकी मर्यादाके बाहर था । घर ही मे वह जन्मी, बढी, जीई, और मरी । पर तु आज की मेरी बेटियो ने उस लक्ष्मण की रेख का, घर की दहलीज का उल्लघन कर दिया। उन्होने कालेज से उच्च शिक्षाए प्राप्त की है, वे जीवन के सघष मे पुरुषो की प्रतिस्पर्द्धा करने लगी ह । साहस और प्रतिभाका जहा तक सवाल है, वे पुरुषो से आगे है, पाश्चात्यो के सग ने हमारी नारी समस्या को भारी उलझन मे डाल दिया है और आज केवल हमारा ही नही, सारे ही ससार का सबसे अधिक महत्वपूण और सब से बडा प्रश्न यह उठ खडा हुआ है कि 'नारी का समाज मे क्या स्थान होगा ?' सभ्य ससार के सामने बडे बडे विकट राजनतिक और आर्थिक प्रश्न है । परन्तु मेरा खयाल है कि दुनिया के मेधावी उन प्रश्नो का हल निकाल लेगे, किन्तु इस नारी-समस्या का नही ।

सभ्य, शिष्ट, समुन्नत नारी समाज ने घर की दहलीज का उल्लघन अवश्य किया है, पर ऐसा करके उसने रावण के द्वारा हरण किये जाने ही का खतरा उठाया ह । यह छद्मवेशी राक्षस, साधू के वेश मे भिक्षा के मिस उसे हरण करने की ताक मे है । नारी को उसके साहस ने, शिक्षा ने, समु नत होन ने तनिक भी तो सहारा नही दिया

है। बन्धुवर मैथिलीशरण गुप्त ने एक ही वाक्य में नारी का सब कुछ बखान कर दिया 'आंचल में है दूध, और आंखों में पानी'। अब यह नारी धन दौलत, और सारी विभूतियों से लदी फदी रहे। उसका सच्चा परिचय तो यही है, "आंचल में है दूध और आंखों में पानी"।

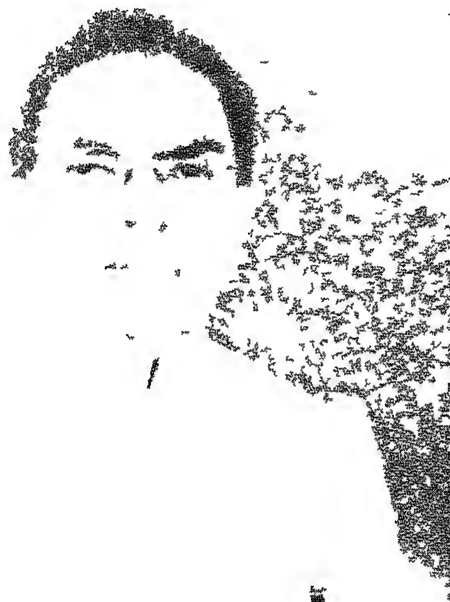
मैं तो पहले ही कह चुका हूँ, इस पानी में मैंने भी अपनी आंख का बहुत पानी मिलाया है, अलबत्ता, इसका कोई साक्षी नहीं है परन्तु यह दूध का ऋण नहीं है यह तो मेरे 'जीवन' का ऋण है। मैं समझता हूं। और सब क्या समझते हैं, मैं नहीं जानता।

मैं चिकित्सक भी तो हूं। और अपने पचास वर्ष के अनुभव से मैंने एक चिकित्सा तत्व पाया है, 'विषस्य विषमौषधम्'। यह बड़ा भारी गूढ़ तत्व है। इसी तत्व पर मैंने 'नारी समस्या' को भी परखा है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि नारी ही नारी की समस्या को हल कर सकती है, परन्तु 'नारी' रहकर, 'नर' बन कर नहीं। 'नारी' बननेके लिए उसे 'नारी तत्व' को जीवन में आत्मसात् करना होगा। ऐसा करने ही से वह 'अपराजिता' के रूप में उदय होगी।

बरसों से मैं इस 'अपराजिता' नारी की खोज में था, कहीं मिलती ही न थी। १९४९ में जुलाई मास में बनारस गया। सख्त गर्मी थी, पंखा पास न था। बिस्तर भी न काफी था, मस्तिष्क में अनेक उलझनें भरी हुई थीं। वर्षा नहीं हो रही थी, हवा नहीं चल रही थी। खुली छत सोने के लिए नहीं थी। सब जड़ जंगम सरजाम ऐसे जुट गए थे कि 'निन्दिया रानी' आई ही नहीं। अकस्मात् उस अर्ध निशा में 'राज' से साक्षात् हुआ। 'ब्रज' और 'राधा' उसी के साथ थे। तीनों बात करने लगे। तीनों नहीं, दोनों 'राज' और 'राधा'। ब्रज सुनता था, केवल हंसता था। मैं भी सुनने लगा। सब बातें पते की थीं। कलम मेरे पास थी, और कागज भी। जो कुछ सुना, लिख डाला। मैंने देखा—ओह, इसकी 'राज' तो सारे संसार की सभ्य असभ्य नारियों से पृथक अकेली ही खड़ी है। केवल अपनी ही सामर्थ्य पर। वह असहाय नहीं है—क्रोध, दैन्य, आवेश, अधैर्य, सबसे पाक साफ है। वह संयम, कर्तव्य और जीवन के सच्चे तत्वों की अधिष्ठात्री है। वह आज की नारी मात्र की पथ प्रदर्शिका है। मैंने उसे अपराजिता स्वीकार कर लिया और उस दिन 'ब्रजराज' ने राज के चले जाने के बाद जब उस भूमि पर, जहां उसके चरण चिन्ह बने थे—साष्टाङ्ग भूपात करके अपना मस्तक टेक दिया, तो सब की नजर बचाकर मैंने भी उन चरण चिन्हों की एक कोर चूम ली और मेरा अब तक का जीवन धन्य हो गया।

दो अप्रतिम मित्र

अपने इन दो मित्रों का मैं विस्मरण नहीं कर सकता। एक डाक्टर अम्बेडकर और दूसरे राजा महेन्द्रप्रताप। दोनों ही योग्य राजपुरुष थे। मेरे कानों में डाक्टर



१९५२



१६५२

अम्बेडकर का वह गम्भीर नाद गूज उठता हे जो उस पुरुषश्रेष्ठ की व्यक्तिगत विशेषता थी। लोग कहते हे कि वह कानून के असाधारण विद्वान थे। आर्य धर्म शास्त्रो के वह कितने गम्भीर मननकर्ता थे, इस बात का साक्षी तो मे स्वय हू। वह श्रद्धा और अन्ध-विश्वास के झमेले से पाक साफ रहकर झाड झखाड मे लिपटी हुई उन सास्कृतिक बुराइयो को झटपट ताड लेते थे, जिनके कारण जातियो का उत्थान पतन होता है। उनमे यह विवेचना शक्ति उनके पाण्डित्य और अध्ययनके कारण नही उत्पन्न हुई थी। वह उस प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुई थी, जो उनमे अभिजात्य हिन्दुओ के हाथो मिलनेवाले तिरस्कार के फलस्वरूप आई थी।

मेधावी और तेजवान पुरुष अग्नि और सूर्य के समान असह्य हुआ करते हे। उन से सब से प्रथम वे ही पुरुष झुलसते जलते हे, जो उनके अति निकट रहते हे। इसी से तेजवान पुरुषो की सेवा करना आसान काम नही हे। ऐसे पुरुषो की पत्निया, परिजन और भक्तजन बहुधा उन्ही से आहत होते रहते हे। परन्तु तेजवान पुरुष सबसे अधिक आहत स्वय ही होता है—अपने तेज से। विश्व को जला कर खाक कर देने की शक्ति वाला तेज जिस शरीर मे, जिस चेतना मे अधिष्ठित रहता है, वह उस शरीर को भी जलाया करता हे। उस दाह की वेदना को तेजवान पुरुष आजीवन सहते रहते है। ऐसी दशा मे वे इस बात की क्यो परवाह करने लगे कि उनके अतेवासी जन भी उनके द्वारा जल रहे हे।

आप गाधीजी का ही उदाहरण ले लीजिए। उनकी पत्नी ने अपने जीवन का पूरा काल उस तेजवान सूर्य के तेज मे जलने की वेदना सहन करते हुए ही व्यतीत किया। ऐसे ही तेजस्वी पुरुष डा० अम्बेडकर थे, जिनके तेज की असह्य ज्वाला गाधी जसे हिमालय को भी स्पर्श किए बिना न रही।

बहुत अर्सा हुआ, उन दिनो वह हिन्दू कोड का बिल निर्माण कर रहे थे। हिदुत्व पर उनका असाधारण अधिकार था। अछूतो के हितो के लिए उनके हृदय मे केवल हमदर्दी और न्याय की कल्पना ही न थी, क्योकि वह केवल उनके कोरे हिमा-यती न थे, वह तो उनके साथी और अग थे। वह चाहे जिस उच्च आसन पर रहे हो, पर वह यह कैसे भूल सकते थे कि उन का जातीय आसन कितना नीचा हे और वह इसे असह्य मानते थे। इसी से वह आजन्म दलितो के अधिकार की रक्षा के लिए लडते रहे। यह उन की लडाई असहायो तथा दलितो की सहायता और हिमायत के लिए नही थी, आत्मनिष्ठाके लिए थी, आत्मोद्धारके लिए थी। इसी से वह इतने सबल, दृढ और अचल रह कि उन्हे न कोई प्रलोभन डिगा सका, न भय।

जिन दिनो वह हिन्दू कोड बिल का मसौदा बना रहे थे, मेरी बहुधा उनसे मुलाकाते होती तथा इसी विषय पर वार्तालाप भी होता था। स्त्रियो को समाज मे

समानाधिकार मिले और वे पतियो के घरो मे उन की आश्रित बन कर न रहे, यहा तक तो मे उनसे सहमत था, परन्तु तलाक का मै एकदम विरोधी था। भारतता की यह कानूनी अदल बदल मुझे पसन्द नही थी। भारतीय सयुक्त परिवार प्रथा के मूलाधारा पर बहुधा उन से बातचीत हुई। हिन्दू विवाह और उत्तराधिकार सम्बन्धी कानूनो के वह अपने काल के एक ही पण्डित थे। उन जैसा कानून का ज्ञाता तो मैने सागर वाले डा० हरिसिह गौड को ही देखा था पर इन मे यह लगन न थी। मैने ही उनका ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया था कि हिन्दू व्यवहार (ला) स्मृतियो की व्याख्या के आधार पर बना है, जबकि अब भी हिन्दू विवाह वैदिक रीति से होते है। वैदिक और स्मार्त अन्तर पर भी हमारे गम्भीर विवेचन होते रहे। उत्तराधिकार और दायभाग का अन्तर, उनका प्रचलन, आर्यो की दुरगी विवाह नीति, वर्णशकर, अनुलोम, प्रतिलोम, महाभारत मे व्यास का विद्रोह, परम्परा का नियमित रूप मे चला आता विद्रोह—इन सभी शास्त्रीय बातो पर छानबीन और विवेचना होती रहती थी। वह सभी को जानते और मानते थे। वैसे सस्कृत के वह पण्डित नही थे, पर सभी धर्मग्रन्थ मौलिक रूप मे उन्होने अग्रेजी अनुवाद के साथ पढे थे। वह सभी की बात सुनते और समझते थे, पर करते अपने मन की थे। धर्मग्रन्थो को वह आप्त वाक्य नही मानते थे। जो कुछ वहा लिखा है, वही हम आज भी करना चाहिए यह युक्ति वह निस्सार समझते थे। उन का कहना था, धर्मग्रन्थ तो स्वय ही पूर्वापर विरोधी है। वेद, ब्राह्मण, सूत्र और स्मृतिया परस्पर एकमत नही है, पर आचार्यो ने पूर्व आचार्यो की आज्ञा का उल्लघन किया है। सो मै आज अपने पूर्वाचार्यो का उल्लघन करता हूँ। इसी से वह अपनी टेक पर दृढ थे। कडे से कडे विरोध का वह जवाब नही देते थे, बहस नही करते थे, केवल हस कर बातो मे उडा देते थे। यह थी, उन की आत्मनिष्ठा, जिसमे सशोधन और इधर उधर करने की गुजाइश कही थी ही नही।

बहुत बार मुझे खीज आई। एक बार तो मैने कह दिया कि आप तलाक की आवाज उठाकर हमारे हिन्दुओ के घरो मे आग लगाना चाहते है, हमारे घरो को उजाड देना चाहते है, इस मे आप दया माया या हानि लाभ का विचार ही नही करते। इस का कारण यह है कि आप आर्य तो है नही, द्रविड, है, कदाचित् अनार्य।

यह बात भी सुनकर वह हस दिए—वही अपनी सहज हसी जिसका स्पष्ट यह अर्थ होता था कि हमारे ऊपर इस बात का भी कोई असर नही है।

विचारो और सिद्धान्तो की उनकी यह दृढता और उनकी अपनी मान्यताओ के प्रति अटूट लगन किसी प्रतिस्पर्धा के कारण न थी। वह कुटिल पुरुष न थे, प्रकृत साधु थे—स्वच्छ मन और साफ हृदय के स्वामी। अपनी इमानदारी के ही कारण वह अपने सत्य से डिगे नही। मान, सम्मान, अपमान की उन्होने परवाह की नही।

साधारण बातचीत और व्यवहार मे वह मृदुल और कोमल थे। लोगो से अधिक मिलने जुलने या मुलाकातियो को खुश रखने की उन्हे परवाह नही थी। अन्य अध्ययनशील जनो की भांति वह एकान्तप्रिय और मितभाषी थे पर कटु नही थे, रूखे नही थे। मुझे याद नही आता कि उनसे मिलने वालो मे से किसी ने कभी उनके दुर्व्यवहार की शिकायत की हो या उन्हे घमण्डी पाया हो।

कभी कभी वह मुझे चिकित्सक की भांति भी याद कर लेते थे। ऐसा ही एक मजेदार संस्मरण मे सुनाता हू।

श्री सोहनलाल शास्त्री ने मुझे लिखा कि डाक्टर साहब की कमर मे दर्द रहता है, आपसे वह इस सम्बन्ध मे कुछ परामर्श करना चाहते है, कृपा कर यदि असुविधा न हो तो अमुक समय पर आ जाइए।

उन दिनो वह कानून मन्त्री थे और इण्डिया गेट के समीप रहते थे। ठीक समय पर मै जा पहुचा। पहुचने पर मैने देखा कि सोहनलाल जी कुछ घबराए हुए है। मैने पूछा—मामला क्या है ?

'आप बैठिए, अभी बताता हू।'

वह मुझे बजाय डाक्टर साहब के ड्राइंग रूम मे बैठाने के अपने दफ्तर मे ले गए। वहा बैठाकर वह कुछ देर के लिए शायद यह देखने कि डाक्टर साहब क्या कर रहे है भीतर चले गए।

वापसीमे उन्होने विनीतभाव से कहा—'कष्ट के लिए आप क्षमा कीजिए। अभी डाक्टर साहब दो मिनिट मे फारिग हुए जाते है। मिल लीजिए, मगर कृपा करके बीमारी या चिकित्सा सम्बन्धी कोई बात मत कीजिए।'

मै हैरान था—इसका क्या मतलब ? मुझे तो बुलाया ही गया है रोगके सम्बन्ध मे सलाह करने के लिए।

परन्तु सोहनलालजी बहुत परेशान हो रहे थे। असल बात वह कहना चाहते न थे। उन्होने इतना ही कहा—'मै फिर आप को बताऊगा, अभी तो आप उनसे मिल लीजिए। कृपा कर मेरी बात का ध्यान रखिए।'

मुझे यह बात अच्छी नही लगी। मैने कहा—'अपनी ओर से कोई प्रश्न उठाने की मेरी कोई आदत नही है। चलिए आप।'

भीतर जाकर देखा तो डाक्टर साहब आराम कुर्सी पर बैठे थे। चेहरे पर थकावट के चिन्ह तो जरूर थे, पर मुस्कान वैसी ही थी। सामने मेज पर मकई के भुट्टो की १० १२ गिल्लिया पडी हुई थी। अनायास ही मेरा ध्यान उन की तरफ गया। साधारण शिष्टाचार के बाद मैने हसकर कहा—'आप अभी शायद मकई के भुट्टे खा रहे थे।'

डाक्टर साहब अभी जवाब न दे पाए थे कि उनकी धर्मपत्नी आकर पास ही

कुर्सी पर बैठ गई और मेरी ओर कठोर मुद्रा से देखने लगी, जिसका कारण मैं समझ नहीं पाया। डाक्टर साहब ने हँसकर मेरी बात का जवाब दिया। उन्होंने पत्नी की ओर संकेत करके कहा—'देखो यह डाक्टर हैं, इन्हीं के हाथों में खाना है।'

'लेकिन आपके तो कमर में दर्द है?'

'हां, इनका ख्याल है कि यह उस बीमारी में फायदेमन्द है।'

मैंने श्रीमती जी की ओर प्रशंसासूचक ढंग से देखा। यह विवाह डाक्टर साहब ने उन दिनों कुछ मास पूर्व ही किया था और इन श्रीमती जी को देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था। मैं समझ नहीं रहा था कि उनकी मेरे प्रति इस कदर कड़ी नजर क्यों है।

उन्होंने पूछा—'क्या आप डाक्टर हैं?'

'जी, मैं वैद्य हूं। आयुर्वेदिक चिकित्सक।'

'आयुर्वेद तो कोई विज्ञान नहीं है।'

मैं अपनी आदत से लाचार हूं। लड़ाई का चैलेंज मैं सहन कर नहीं सकता हूँ। यह तो सरासर लड़ाई की चुनौती थी। उनकी कड़ी नजर तो पहले ही थी। अब इस पर यह फतवा। स्पष्ट ही मुझे यह प्रकट हो गया कि वह यहां न मेरी हाजिरी चिकित्सक की हैसियत से पसन्द करती है न आयुर्वेद पर ही उनकी श्रद्धा है। इसके अतिरिक्त शायद वह किसी भी चिकित्सक को अपने घर में दखल देना नहीं चाहती थी, क्योंकि वह एक नामांकित डाक्टर और पण्डिता थी।

परन्तु वह चाहे जो भी हो, उन्होंने मुझे करारी ललकार दी थी इसलिए जब उन्होंने कहा कि आयुर्वेद कोई विज्ञान नहीं है, तो मैंने आहिस्ता से पूछा—'क्या आपने आयुर्वेद पढ़ा है?'

इस प्रश्न से वह गुस्से हो गई और इधर मैं भी तीर-तमंचे से लैस हो गया। कठिनाई यह थी कि जहाँ वह स्त्री थी और गृहस्वामिनी थी वहाँ मैं अतिथि था। फिर भी जब लड़ना ही है तो सोच विचार क्या?

परन्तु डाक्टर साहब ने मामले की गहराई को भांप लिया। उन्होंने हँसकर युक्ति से बातचीत का प्रसंग दूसरी ओर फेर दिया। उन्होंने प्रथम मुझे प्रसन्न करने को आयुर्वेद की प्रशंसा की, फिर पत्नी को भी प्रसन्न करने के लिए उसकी वर्तमान अधोगति की थोड़ी व्याख्या की। इसके बाद चतुराई से उन्होंने बातचीत का प्रसंग औपचारिक बना दिया और उस दिन एक अप्रिय घटना होते होते रह गई। थोड़ी ही देरमें मैंने बिदा मांगी और मैं श्रीमती जी को खुश करने का शिष्टाचार नहीं भूला। जब वह हँस दी, तभी मैंने उन्हें दुबारा प्रणाम किया और मैं चला आया।

मैं समझता हूँ, डाक्टर अम्बेडकर में भारत के राष्ट्रपति होने की योग्यता थी।

यदि वह अछूतो का प्रतिनिधित्व त्याग देते और समूचे भारतीय जनपद का प्रतिनिधित्व समष्टि मे करते तो उन्हे भारतीय राष्ट्रपति का पद मिलता, जिसके कि यह प्रकृत अधिकारी थे। यह बात मैने उन्हे एक पत्र मे लिखी भी थी, परन्तु वह कैसे अपने रक्त सम्बन्ध से अकेले रह सकते थे? कैसे उन लाखो अछूतो का साथ छोड सकते थे, जिन के साथ अभिजात्य कुलीनो ने शताब्दियो से अत्याचार किए है। इसके लिए वह गांधी जी से भी लडते रहे, यद्यपि वह गाँधीजी को प्यार करते थे। गांधीजी के प्रति उन की निष्ठा का पता ही तब लगा, जब गाँधीजी ने प्राणान्त उपवास किया था, जिसके कारण अम्बेडकर ने अपना अजेय बाण झुका लिया था। गाँधीजी भी इस महात्मा के सत्यव्रत को समझते थे, और उनका वैसा ही मान भी करते थे। अपने अन्त समय मे वे बौद्धधर्म की शरण मे गए। उनके मन की दुर्बलता मैं समझता था। कभी भी वे हिन्दू न बन पाए। वे जानते थे, हिन्दू समाज मे घुसने के चार द्वार थे। चारो ही उनके लिए निषिद्ध थे। विद्वान होनेपर भी पडित होने पर भी, माननीय होने पर भी, क्योकि वे जन्मजात अन्त्यज थे। जीवन के आरम्भ ही से उन्होने इस निषेध का अनुभव किया। भारतीय जनतन्त्री राज्य मे मन्त्री पद पाकर भी, एक विदूषी ब्राह्मण महिला से विवाह करके भी उनके मनका द्वैध मिटा नही। जिन्ना ने उन्हे मुसलमान होने का निमन्त्रण दिया था, परन्तु इतनी निष्ठा तो उनमे थी कि इस निमन्त्रण को वे ठुकरादे। बौद्धधर्म का उदय निस्सन्देह उसी प्रतिक्रिया से हुआ था जो अम्बेडकर के मन मे बद्ध मूल थी। इसलिए उनका मन बौद्धधर्म की ओर झुक गया। इसके लिए उन्हे दोष नही दिया जा सकता। कोई भी आत्मसम्मानी व्यक्ति उस अपमान को सह नही सकता, जो अम्बेडकर जैसे प्रकाण्ड पडित और धाराशास्त्री को केवल जन्मदोष से सहना पडा। आर्यसमाज आज सजीव होता तो वे उधर अवश्य झुकते, पर वह प्रथम ही निस्तेज सस्था हो चुकी थी। बौद्ध सस्था मे भी कुछ जीवन नही रहा था, न अब है। परन्तु नए युग के साथ बौद्धधर्म ने एक नया रूप और दृष्टिकोण स्थापित किया है, उसीसे डाक्टर अम्बेडकर ने उसे अपना आत्मार्पण किया।

राजा महेन्द्रप्रताप जबर्दस्त क्रान्तिकारी तथा बीती हुई पीढी के देशभक्त पुरुष है। उनकी अटपटी वाणी और भावो को देश आज अपने मे आत्मसात करने का काल नही देखता। सन् १९५७ के चुनावो मे अनेक चमत्कार हुए, उनमे एक हुआ राजा महेन्द्रप्रताप का लोकसभा मे चुना जाना। नेहरूजी का कहना था कि राजा साहब का लोकसभा मे आना उनके लिए एक सिरदर्द है। उधर राजा साहब का कहना था कि वह यदि इस बार न चुन लिए जाते तो विदेशो मे जाकर अपनी राजनीति का चक्र घुमाते, जो श्रीनेहरू के लिए और भी सिरदर्द का बाइस होता।

अपनी इस सफलता को राजा साहब अपने शब्दो मे 'दिल्ली पकडना' कहते थे।

वह बरसो से दिल्ली पकडने की जुगत मे थे। पिछले चुनावो मे वह हार गए, दिल्ली न पकड सके। इसके बाद उन्होने बाहर से भी दिल्ली पकडने की चेष्टा की, पर साथियो ने साथ न दिया। वह दिल्ली न पकड सके। अन्त में तंग आकर उन्होंने दिल्ली को सलाम किया, अब परबी दिल्ली।

किन्तु अब ?

'बागबा नेन्द, गुल बेवफा गुलची रकीब, कौन सुनता है चमन मे बालहाए अन्दलीब।' क्या करेगे राजा साहब वहा पहुच कर मेरा खयाल है अपने सिर मे दर्द पैदा करेगे। अपना समय बर्बाद करेगे और अपने अन्य साथियो का भी। सहयोग उनमे होगा नही। सपने जो कुछ वह देखते है, कभी साकार होगे नही। छत्तीस बरस उन्होने दुनिया के राष्ट्रो के द्वार पर अलख जगाया, प्रेम के गीत गाए, संसार संघ के कल्पना चित्र बनाए। जो कुछ था सब त्याग दिया। भागीरथ प्रयास किया। वह अपनी धन सम्पत्ति से ही नही, स्त्री बच्चो से भी वचित रह गए। उनकी देशभक्ति मे, प्रेम भावना मे, मनुष्यो की हित कामना मे, युद्ध विरोधी तत्वो मे त्याग, तप मे किसे सन्देह होगा ? इन सब सद्भावनाओ और तपस्याओ के कारण कौन उनका सत्कार न करेगा ? परन्तु यह उत्कट देशभक्ति के नाम पर बलि देकर, देश विदेशो की खाक छान कर, विश्व के चोटी के महज्जनो से निकट सम्पर्क स्थापित करके भी रूखे हाथो वृद्धावस्था मे झुकी हुई कमर और आधी शताब्दि तक दुनिया की राजनीतिक आगम भुलसी हुई पकी सफेद दाढी तथा माथे मे चिन्ताओ की असंख्य लकीरे लेकर फकीर के वेश मे अकेला लौटा, तो उस बात को भी आज दस बरस से अधिक हो गए। वह तब से अब तक अकेला का अकेला ही है। लोग कहते है कि वह खब्ती है, कही उसके दिमाग की कीली हिल गई है, वह सनकी है। उसकी बात हास्यास्पद है, अव्यावहारिक है, परस्पर विरोधिनी है, क्रियात्मक योजनाओ से रहित है। ऐसो वैसो है। मान लो यह सब कुछ है, फिर अवसे पचास साल प्रथम का क्रान्तिकारी तो ऐसा होगा ही। अब तक जीवित रहना ही शायद उनका सबसे बडा अपराध है। वह आज की बदली हुई राजनीति मे फिट होने योग्य नही है। नजते बाज मे गुर उसका मिलता नही है, तो क्या उमीरो उसका सारा तप त्याग और सच्चा तपा हुआ देश प्रेम किसी मूल्य का न रहा ? अब यही शोभनीय है कि वह दर दर मारा मारा फिरे, बकता रहे। लोग सुने और खफ्ती कह कर, हसकर उस पर उपेक्षा की नजर डालकर चलते बने। आज देश की नजर मे एक कानी कौडी के मूल्य की भी उसकी योग्यता नही। उसकी सेवाओ का मूल्य नही।

आज कितने मिनिस्टर न जाने कहा से किस योग्यता के आधार पर निकल आते और कुर्सियो मे चिपक कर बैठ जाते है। यही बात कितने ही राज्यपालो के बारे मे भी कही जा सकती है। क्या इनकी योग्यता कभी किसी ने जाच कर देखी है। एक चपरासी को यदि नौकर रखना होता है, तो उसकी योग्यता, अनुभव, सच्चरित्रता और

काम करने की शक्ति देख ली जाती हे । पर मिनिस्टरो और राज्यपालो की नहीं । बस सया जिसे चाहे वही सुहागिन । क्षण भर मे एकाएक कोई भी व्यक्ति चाहे जिस मिनिस्टरी की कुर्सी पर आ बैठा और उसी विभाग को धडल्ले से चलाने लगा । हकीकत यह कि चलाने वाले चलाते ही रहते है, और चलने वाले चलते ही रहते हे । कुर्सी पर मिट्टी का माधो भी यदि बैठे तो क्या ? इसी लिए मिनिस्टरो और राज्यपालो के लिए हमारी इस गणतन्त्री सरकार मे किसी योग्यता की आवश्यकता नही हे । बस, यह चाहिए कि वे बडे गुट के आदमी हो सिख हो, या हरिजन हो, या अल्पसख्यक हो, तो उन्हे कही न कही किसी मिनिस्टरी की कुर्सी पर चस्पा कर दिया जायगा । राज्यपाल के लिए तो इतना भी दरकार नही, केवल प्रभुजनो की कृपादृष्टि ही काफी है ।

परन्तु ये दोनो महकमे मिनिस्टरी और राज्यपाल के जिनमे किसी भी प्रकार की योग्यता की कद्र नही, इनके योग्य भी वह बेचारा एकाकी बूढा क्रान्तिकारी सन्त नही हे । क्योकि वह न हरिजन है, न किसी एक गुट का प्रतिनिधि हे । इसके अतिरिक्त प्रभुजनो का वह कृपा पात्र भी नही हे । वह तो अपना अलग ही बेसुरा राग अलापता है । किसी की आवाज मे उसकी आवाज मिलती नही है । अब जो वह अपना बेसुरा राग अलापने के लिए लोकसभा की सामूहिक राग मण्डली मे हठपूर्वक आया हे, सो उसकी यहा किस कदर दुर्गति होगी, कितनी उसे परेशानी और निराशा होगी, यह हमे कुछ-कुछ अभी से दीख रहा हे ।

राजा महेन्द्रप्रताप एक पाक्षिक पत्र निकालते है—'ससार सघ' । अग्रेजी और हिन्दी मे । मुझे राजनीति का अजीर्ण ही हे । राजनीति का मेरे ऊपर वही असर होता हे जो अफीम का होता है । चार मित्र यदि मेरे पास बैठकर राजनीति की चर्चा करे तो मुझे झट नीद आ जाएगी । यो नीद मुझे कम ही आती है । परन्तु राजा साहब के इस अखबार को तो मै सब काम छोड एक ही सास मे पढ जाता हूँ । एक एक अक्षर । मजेदार अखबार है मजेदार अटपटी, शुद्ध अशुद्ध भाषा । न शब्दो मे औचित्य का विचार न वाक्य योजना की परवाह, न शब्दशुद्धि का ध्यान, न किसी तरह की टीप टाप । रद्दी कागज, रद्दी छपाई । लेकिन प्रत्येक बात ठाठ की । खरी और पते की । सीधी चोट । दृहत्तड मार । आत्मश्लाघा की भरमार । पर उसमे बच्चा जैसा भोला पन । बाते जरूर बहकी बहकी । जिनके सिर पर का पता लगाना मुश्किल । सबसे ऊँची आवाज—ससार सघ की, प्रेमकर्म, धर्मजय, धर्मराज्य, परन्तु साथ मे जाटो, राजपूतो, सैनिको, भूस्वामियो को भडकाने के मसाले । हमारी समझ मे नही आता कि इन बातो को विश्व शान्ति से मेल कहा है, परन्तु इन सब बातो से हमे क्या सरोकार । बहुत लोग बहुत तरह की बात करते है । उनमे कितने ही झूठे और लपाट है, भारी लीडर होने के बावजूद भी । सभी अपनी अपनी कहते है, राजा साहब भी अपनी कहते

है। पर इतना तो म कह सकता ह—इस बूढे बालक की प्रत्येक बात निर्दोष है, निर्व्याज है, मक्कारी और धूर्तता से कतई पाक साफ है। सच्ची है, भले ही ठीक नहीं, आपको ठीक न जँचे तो आप उनसे बहस कर लीजिए, समझिए समझाइए। सम्भव है, वह भी कुछ समझ जाँय, आज के जहान मे मिल जाय परन्तु इस ऐसे तपस्वी को अकेला छोड देना बडी तकलीफ की, कहना चाहिए शर्म की बात है।

राजा साहब को देखकर हमे याद आती है रूस के महान् क्रांतिकारी टाटस्की की, जो पुण्यश्लोक महात्मा लेनिन का न केवल मित्र था, उसका राजनीतिक दाहिना हाथ और पथ प्रदर्शक भी था। जिसमे बीस आदमियो की क्रिया शक्ति थी। हमे उस महान् क्रांतिकारी के वे दिन याद हैं, जब वह स्पेशल ट्रेन द्वारा यात्राकर रहा था। उस की ट्रेन पर पद पद पर आक्रमण हो रहे थे, जिनका जवाब ट्रेन मे जडी हुई मशीन गनें दनादन दे रही थी। पद पद पर ट्रेन के उलट जाने, उसमे आग लग जाने का भय था, परन्तु वह नरशार्दूल, इन क्षणो मे ट्रेन के भीतर अपने डब्बे मे बैठा, एकाकी मन अपना क्रांति ग्रन्थ लिख रहा था।

कितनी समता है इस महापुरुष मे और राजा साहब मे। वैसा ही लम्बा कद, वैसा ही झुकी कमर, वैसी ही कुछ ढूँढती हुई सी आकुल व्याकुल आखे। वैसा ही चिन्ताओ की रेखाओ से सिकुडा हुआ मस्तिष्क और वैसे ही मौलिक एकनिष्ठ मस्तिष्क मे भरे हुए विचार।

अधिकार के लालची उसके शत्रुओ ने उसे दुनिया के किसी कोने मे आराम से न रहने दिया और अन्त मे उसका सिर हथौडे से फोड कर उसकी हत्या कर डाली। शुक्र है कि भारत के राजनीतिक धुरंधरो ने राजा साहब से ऐसा सलूक नही किया। सिर्फ उनकी ओर से मुह फेर लिया है और अब इन्होने दिल्ली पकड ली है।

दर्द की तस्वीर धर्मपुत्र

१९५८ के आरम्भ मे कृष्ण चन्दर को एक पार्टी दी गई थी। पार्टी दिल्ली के एक प्रतिष्ठित प्रकाशक ने दी थी। निमंत्रण मुझे भी मिला। यो यह एक नई बात थी। आमतौरसे मुझे लोग पार्टियोमे बुलाते बुलाते नही। नई दिल्ली के एक शानदार होटल मे पार्टी का आयोजन था। पार्टी मे अनेक प्रकाशक,साहित्यिक पत्रकार और अध्यापक भी थे। और मै तो था ही। पार्टी की धूमधाम और शान को मैने देखा,कृष्णचन्दर को देखा,निपट बालक सा तरुण है। इसे भला क्या पार्टी दी गई। ऐसी शानदार पार्टी तो मुझे मिलनी चाहिए थी। इसके बाद अकस्मात् मेरे मन मे एक विचार पैदा हुआ, कि क्या कारण है अब तक मुझे किसी ने ऐसी शानदार पार्टी नही दी। चालीस साल कलम घिसी, पैसठ की दहलीज पर पहुँचा,ग्रन्थो की संख्या एक सौ इक्कीस को पार कर गई, फिर क्या लोग अन्धे है, बहरे है, मूर्ख है या साहित्य को समझते ही नही है, क्या बात

हे,वास्तव मे पार्टी यदि किसी को मिलनी चाहिए थी ता मुझी को मिलनी चाहिए थी। मेने एकबार आख और सिर उठाकर चारो ओर देखा,तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ,कि इस जमघट मे मुझसे बडा साहित्यकार तो कोई नजर नही आ रहा हे । फिर भी पार्टी मुझे नही, कृष्णच दर को ही दी गई थी, इसमे तनिक भी शुबहा न था ।

बडी देर तक मै इस बात पर विचार करता रहा और अतमे मेरे मन ने मान लिया, कि मै आयु मे ही कृष्णच दर से बडा हूँ । परन्तु साहित्यकार बडा कृष्णचन्दर ही हे । गो है बालक ही । अब मुझे इस बात का भी पछतावा हो रहा था कि मे तो कृष्णच दर के सम्ब धमे कुछ जानता ही नही हूँ । खुदा की मार मुझपर,कि मेने उनकी कोई कहानी पढीही नही । नि दा और स्तुति म साहित्यकारो की सुनने का आदी नही। अब म घबराने भी लगा कि थोडी देरमे भाषण होगे,कृष्णच दर की ओर उनके साहित्य की प्रसशात्मक आलोचना करनी होगी । सम्भवत यह काम मुझे ही सब से प्रथम अन्जाम देना होगा । क्योकि यहा सबसे बडा साहित्यकार तो मे ही हूँ । गो कृष्णचन्दर से छाटा ही सही । मगर कहा ? प्रशस्तिगान आरम्भ कराया गया देवेन्द्र सत्यार्थी से । मानना हूँ कि उनकी जसी शानदार डाढी दिल्ली भर मे नही मिल सकती,हालाकि इस वक्त दिल्ली डाढियो का ससार भर मे सबसे बडा मार्केट है । मगर उस मजलिस म मे तो था ही, उग्र थे, जैनेन्द्र थ और भी अनेक थे । इन सबके सिर पर इस लम्बी डाढी की यह हिमाकत मुझे बहुत ही नागवार प्रतीत हुई । गो डाढी बहुत ही शानदार थी, और कला की दृष्टि से यह भी साहित्य के अन्तगत आती है । निरालापन ही तो साहित्य की जान हे,और यह डाढी जरूर निराली थी । फिर भी हम लोगो के रहते हुए सिफ डाढी ही के जोरपर उस साहित्यिक मजलिस की नाक का बाल बनाना अप्रल की सिफ पहली तारीख को ही बदाश्त किया जा सकता है । उग्र भी शायद गुनगुने हो रहे थे,म सोच ही रहा था कि डाढी के बाद अब मेरी बारी आएगी पर तु कहा ? उग्र एक दम उठ खडे हुए । अपना परिचय दिया जो कहना सुनना था,कह गए, पर तु मेरी बारी तो फिर भी नही आई । बारी आई जनेन्द्र को। वत्तरे की । अब मुझे स्वीकार करना पडा कि जने द्र भी मुझ से बडे साहित्यकार हे, यद्यपि उम्र मे वे भी छाटे हे । जने द्र का भाषण आरम्भ हुआ, और मेने कुछ साचना आरम्भ कर दिया । पुरानी आदत हे, जनेन्द्र जब बोलने लगते हैं तो मै किसी विषय की चि तना करने लगता हूँ । ध्यान से सुनने समझनेपर भी कुछ पताही नही लगता कि वे क्या कह रहे है । बस यही सोचकर सन्तोष कर लेता हूँ कि कुछ दाशनिक बाते कह रहे होगे, जिनसे मे प्याज की बू की तरह घबराता हूँ । इसलिए, जने द्र के भाषण के साथ ही मे अपने किसी प्रिय विषय को सोचने लगता हूँ । परन्तु उस समय मै जैनेन्द्र की ही बात सोचने लगा । जरूर ही जनेन्द्र मुझ से बडे साहित्यकार है,तभी तो सब लोग मेरे रहते भी उन्हे ही आगे रखते

है। पर इतना तो मै कह सकता हूँ—इस बूढे आदमी की प्रत्येक बात निर्लेप है, निर्व्याज है मक्कारी और धूर्तता से कतई पाक साफ है। सच्ची है, भले ही ठीक नही, आपको ठीक न जँचे तो आप उनसे बहस कर लीजिए, समझिए समझाइए। सम्भव है, वह भी कुछ समझ जाँय, आज के जहान म मिल जाय, परन्तु उस ऐसे तपस्वी को अकेला छोड देना बडी तकलीफ की, कहना चाहिए शर्म की बात है।

राजा साहब को देखकर हमे याद आती है रूस के महान् क्रांतिकारी ट्राटस्की की, जो पुण्यश्लोक महात्मा लेनिन का न केवल मित्र था, उसका राजनीतिक दाहिना हाथ और पथ प्रदर्शक भी था। जिसमे बीस आदमियो की क्रिया शक्ति थी। हम उस महान् क्रांतिकारी के वे दिन याद हैं, जब वह स्पेशल ट्रेन द्वारा यात्राकर रहा था। उस की ट्रेन पर पद पद पर आक्रमण हो रहे थे, जिनका जवाब ट्रेन मे जडी हुई मशीन गनें दनादन दे रही थी। पद पद पर ट्रेन के उलट जाने, उसमे आग लग जाने का भय था, परन्तु वह नरशार्दूल, इन क्षणो मे ट्रेन के भीतर अपने डब्बे मे बैठा, एकाग्र मन अपना क्रांति ग्रन्थ लिख रहा था।

कितनी समता है इस महापुरुष म और राजा साहब मे। वैसा ही लम्बा कद, वैसी ही झुकी कमर, वैसी ही कुछ ढूढती हुई सी आकुल व्याकुल आखे। वैसा ही चिन्ताओ की रेखाओ से सिकुडा हुआ मस्तिष्क और वैसे ही मौलिक एकनिष्ठ मस्तिष्क मे भरे हुए विचार।

अधिकार के लालची उसके शत्रुओ ने उसे दुनिया के किसी कोने मे आराम से न रहने दिया और अन्त मे उसका सिर हथोडे से फोड कर उसकी हत्या कर डाली। शुक्र है कि भारत के राजनीतिक धुरन्धरो ने राजा साहब से ऐसा सलूक नही किया। सिर्फ उनकी ओर स मुह फेर लिया है और अब उन्होने दिल्ली पकड ली है।

दर्द की तस्वीर धर्मपुत्र

१९५४ के आरम्भ म कृष्ण चन्दर की एक पार्टी दी गई थी। पार्टी दिल्ली के एक प्रतिष्ठित प्रकाशक ने दी थी। निमन्त्रण मुझे भी मिला। सो यह एक नई बात थी। आमतौरसे मुझे लोग पार्टियामे बुलाते उलाते नही। नई दिल्ली के एक शानदार होटल मे पार्टी का आयोजन था। पार्टी म अनेक प्रकाशक,साहित्यिक पत्रकार और अध्यापक भी थे। और मै तो था ही। पार्टी की धूमधाम और शान को मैने देखा,कृष्णचन्दर को देखा,निपट बालक सा तरुण है। उसे भला क्या पार्टी दी गई। ऐसी शानदार पार्टी तो मुझे मिलनी चाहिए थी। इसके बाद अकस्मात् मेरे मन म एक विचार पैदा हुआ, कि क्या कारण है अब तक मुझे किसी ने ऐसी शानदार पार्टी नही दी। चालीस साल कलम घिसी, पसठ की दहलीज पर पहुँचा,ग्रन्था की संख्या एक सौ इक्कीस को पार कर गई, फिर क्या लोग अन्धे है, बहरे है, मूर्ख है या साहित्य को समझते ही नही है, क्या बात

हे,वास्तव मे पार्टी यदि किसी को मिलनी चाहिए थी तो मुझी को मिलनी चाहिए थी। मैने एकबार आख और सिर उठाकर चारो ओर देखा,तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ,कि इस जमघट मे मुझमे बडा साहित्यकार तो कोई नजर नही आ रहा ह । फिर भी पार्टी मुझे नही, कृष्णाच दर को ही दी गई थी, इसमे तनिक भी शुबहा न था ।

बडी देर तक मै इस बात पर विचार करता रहा और अतमे मेरे मन ने मान लिया, कि मै आयु मे ही कृष्णाच दर से बडा हूँ । परन्तु साहित्यकार बडा कृष्णाचन्दर ही हे । गो है बालक ही । अब मुझे इस बात का भी पछतावा हो रहा था कि मे तो कृष्णाच दर के सम्ब धमे कुछ जानता ही नही हूँ । खुदा की मार मुझपर,कि मैने उनकी कोई कहानी पढीही नही । नि दा और स्तुति म साहित्यकारो की सुनने का आदी नही । अब मे घबराने भी लगा कि थोडी देरमे भाषण होगे,कृष्णाच दर की ओर उनके साहित्य की प्रमशात्मक आलोचना करनी होगी । सम्भवत यह काम मुझे ही सब से प्रथम अ जाम देना होगा । क्योकि यहा सबसे बडा साहित्यकार तो मै ही हूँ । गो कृष्णाच दर मे छोटा ही सही । मगर कहा ? प्रशस्तिगान आरम्भ कराया गया देवेन्द्र सत्यार्थी से । मानना हूँ कि उनकी जसी शानदार डाढी दिल्ली भर म नही मिल सकती,हालाकि इस वक्त दिल्ली डाढियो का ससार भर मे सबसे बडा मार्केट है । मगर उस मजलिस मे म तो था ही, उग्र थे, जनेन्द्र थे और भी अनेक थे । इन सबके सिर पर इस लम्बी डाढी की यह हिमाकत मुझे बहुत ही नागवार प्रतीत हुई । गो डाढी बहुत ही शानदार थी, और कला की दृष्टि से यह भी साहित्य के अन्तगत आती है । निरालापन ही तो साहित्य की जान हे,और यह डाढी जरूर निराली थी । फिर भी हम लोगो के रहते हुए सिफ डाढी ही के जोरपर उस साहित्यिक मजलिस की नाक का बाल बनाना अप्रल की सिफ पहली तारीख को ही बर्दाश्त किया जा सकता हे । उग्र भी शायद गुनगुने हो रहे थ,म साच ही रहा था कि डाढी के बाद अब मेरी बारी आएगी पर तु कहा ? उग्र एक दम उठ खडे हुए । अपना परिचय दिया जो कहना सुनना था कह गए, परन्तु मेरी बारी तो फिर भी नही आई । बारी आई जनेन्द्र को । वत्तरे की । अब मुझे स्वीकार करना पडा कि जने द्र भी मुझ मे बडे साहित्यकार हे यद्यपि उम्र मे वे भी छोटे हे । जने द्र का भाषण आरम्भ हुआ, और मैने कुछ साचना आरम्भ कर दिया । पुरानी आदत हे, जनेन्द्र जब बालने लगते है तो मै किसी विषय की चि तना करने लगता हूँ । ध्यान म सुनने समझनेपर भी कुछ पताही नही लगता कि वे क्या कह रहे है । बस यही सोचकर स तोष कर लेता हू कि कुछ दाशनिक बात कह रहे होगे, जिनसे मै प्याज की बू की तरह घबराता हूँ । इसलिए, जैने द्र के भाषण के साथ ही मे अपने किसी प्रिय विषय को सोचने लगता हूँ । परन्तु उस समय मै जैनेन्द्र की ही बात सोचने लगा । जरूर ही जनेन्द्र मुझ से बडे साहित्यकार है,तभी तो सब लोग मेरे रहते भी उ हे ही आगे रखते

है जिसम उन्हे भी कभी सकोच नही हुआ। अवश्य ही वह भी ऐसा ही समझते है। सोचते सोचते मन ने कहा प्रत्येक साहित्यकार का अपना पृथक् व्राण्ड है। जन द्र जनेवी ब्राण्ड साहित्यकार है। उनके साहित्य मे जनेवी जसा कुछ चिपचिप चिपकता, कुछ टप कता, कुछ गोल गाल उलझा, कुछ सुलझा, मीठा मोठा साहित्य रहता है, बासी होने पर प्रसाद कहकर बेचा जाता है। फिर मेरा ध्यान सामने बठे उग्र पर पडा। निस्स देह उग्र डण्डा ब्राण्ड साहित्यकार है। सीधा खोपडी पर खीच मारते है। फिर वह बिलबिलाकर अस्पताल जाय या चूना गुड का लेप करे और मै हूँ लाठी ब्राण्ड साहित्यकार। चोट करूँगा तो ठौर करके धर देना ही मेरा लक्ष्य है। सास आने का काम नही। सामने नजर उठी तो बनारसीदास चतुर्वेदी रसगुल्ला पर हाथ साफ कर रहे थे। भई वाह, ये है बल्ली ब्राण्ड साहित्यकार। जिसका जी चाहे नाप कर देख ले। लीजिए साहब, मै तो सोचता ही रहा और लोग उठ उठ कर चलने भी लगे। हडबडा कर देखा पार्टी खत्म हो चुकी थी, भाषण और भी हुए थे। कृपलानी ने जवाब मे भी कुछ कहासुनी की थी पर मेरी हिमाकत देखिए मुझे कुछ पता ही न लगा। अब मै समझ गया, कि क्यो लोग मुझे बुलाते चलाते नही। पर तु अब क्या हो सकता था? अछताता पछताता घर चला आया।

बहुत गुस्सा आ रहा था मुझे सब लोगो पर। क्यो नही लोग मुझे ऐसी पार्टिया देते। पर तु कहूँ किससे? मन ही मन खीझ रहा था कि मन ने एक धक्का दिया, कहा—अपनी इतनी पूजा करता है तो दुनिया से क्या? तू खुद अपनी ओर देख अपना साहित्य रचे जा, अपनी कलम चलाए जा, अपने आसू बखेरे जा। अपनी रचना आप ही पढ, अपनी सम्पदा स आप ही सम्पन्न रह, मगन रह पार्टी नार्टी को गोली मार और उठा कलम। अभी उठा। इस वक्त दिल चुटीला है, ऐसी ही चोट खाकर साहित्यिक वेदनाए मूर्त होती है। ले खीच तो एक दद की तस्वीर।

क्या कहा जाय, अपने ही मन की बात टाली न जा सकी। लो साहब, हद हो गई। हाथ आप ही कलम पर आ पडा। कलम था फाउ टेनपेन। इसी साल गये तिर सठवे ज म नक्षत्र पर दिल्ली की प्रगतिशील साहित्य परिषद् ने मुझे स्नेह भेट के रूप मे दिया था। इस सम्ब ध म भी कुछ कहना पडा। आजतक किसी भी साहित्यकार, साहित्य सस्था, या साहित्य सघ ने कभी मेरे पास आकर नही कहा—कि आ, तुझे हम सम्मानित कर, तेरा ज म नक्षत्र मनाए, तेरी कुछ धूम धाम कर, पब्लिसिटी कर, न कभी किसी न किसी सम्मेलन का सभापति ही मुझे बनाया। द तजारी बहुत थी। सभापति बनाना तो दूर, साहित्य सम्मेलन तक के अधिवेशन म कभी मुझे निम त्रण तक नही मिला। पिछली बार मेरठ म हि दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन था, वहाँ म बिना ही बुलाए चला गया, इसलिए कि पास तो है ही, बहुत से साहित्य ब धुओ के दश पश हो जाएँगे। देखा सबने, पर किसी ने भीतर मच पर चलकर बैठने तक को नही कहा।

दो दिन बाहर ही बाहर घूम फिर कर चला आया। ऐसी हालत मे हर साल मै ही अपना ज म नक्षत्र मना लिया करता हूँ। व धुवा वग मित्र और कुछ साहित्य परिजन आ जाते है मेरे घर को जुठार जाते है मेरे प्राणो को आन द दे जाते है। पर भेट उप हार कभी कोई नही देता। इस बार न जाने यह क्या एक बदपरहेजी ही हो गइ कि प्रगतिशील परिषद् न हरिदत्त भाई के हाथ मुझे एक कलम भट की। उसी समय, मेने यह स्वीकारोक्ति का थी, कि इस कलम से पहिली बार एक उप यास लिखूगा और यह भी लिख दूगा, कि यह उप यास इस कलम से लिखा हुआ है। सो हाथ इस कलम पर आ पडा और वह स्वीकारोक्ति भी याद पड गई। बस एक प थ दो काज। उसी कलम से दद की एक तस्वीर 'धमपुत्र' उप यासमे खीची गई। उस तस्वीर मे दद जितना था, वह मेरे कलेजे का था, और प्यार जितना था,यह प्रगतिशील साहित्य परिषद के सदस्या का, जो उ होने अपने कलम मे भरकर मेरे जन्म-नक्षत्र पर भेजा था।

दिव्यज्योति ज्योत्स्ना

१९५५ के आरम्भ म मुझे एक अद्भुत स्वप्न दीखा। रात को दो बजे मेरी आख खुल जाती है और मे बिस्तर त्याग अपनी मेज पर आकर लिखने बैठ जाता हू। उन दिनो भारतीय सस्कृति का इतिहास मेरी मेज पर चारो ओर फैला हुआ था। सतयुग खण्ड, त्रेता खण्ड, द्वापर खण्ड इन तीनो खण्डो मे, जो लगभग सात सात सा पृष्ठ के थे, म उलझा रहता था। उस दिन दो घ टा काम करके ही मुझे नीद आने लगी और मे पलग पर जाकर सो गया। चार या पाच बजे प्रात काल की उस नीद मे वह अद्भुत ओर आन दप्रद स्वप्न देखा।

मेने देखा कि काकरोली मदिर के द्वारकाधीश जी की प्रतिमा की भव्य मूर्त्ति ने सागरतल से निकलकर साक्षात् मेरे शयनकक्ष मे प्रवेश किया। उनके हाथ म एक दिव्य ज्योति थी, जिसका तेज प्रकाश अत्य त प्रिय था। मेरे सिरहाने खडे होकर वह दिव्य ज्योति उ होने मुझे दी और मेरे ऊपर वरद हस्त रख आशीवाद दे चले गए।

अपनी डायरी मे इस स्वप्न के सम्बन्ध मे मैने लिखा था—'सागर मे मने एक स्वप्नद्रष्टा देखा, जिसके चेहरे पर गहरी दाशनिक रेखाए अकित थी। फिर वह स्वप्न भी, जो पत्थरो मे अकित हो रहा था, जिसके चरणतल म सागर, सागर, सागर! कामना हुई, उस प्रभु के चरणो मे, वह स्वप्नद्रष्टा चिरजीव रहे। अपने स्वप्न को चम चक्षुओ से मूत्त दख सके।'

इस स्वप्न का अवश्य कोई श्रेष्ठ और गूढ अथ है। प्रात उठकर चायपान के समय पत्नी से मेने अपना स्वप्न कहा। सुनकर वह हसकर चली गइ। पत्नी को यह प्रारम्भिक गभकाल था। २९ सितम्बर १९५५ को जब वह दिव्य ज्योति कन्या का रूप धारण कर मेरे घर जन्मी तो मे सोचता ही रह गया कि मुझ सततिहीन, मित्र, ब धु

है जिसमे उन्हे भी कभी सकोच नही हुआ। अवश्य ही वह भी ऐसा ही समझते है। सोचते सोचते मन ने कहा पत्येक साहित्यकार का पृथक पृथक ब्राण्ड है। जैसे द्र जलेबी ब्राण्ड साहित्यकार है। उनके साहित्य मे जलेबी जैसा कुछ चिपचिप चिपकता, कुछ टपकता, कुछ गोल गोल उलझा, कुछ सुलझा, मीठा मीठा साहित्य रहता है, बासी होने पर प्रसाद कहकर बेचा जाता है। फिर मेरा ध्यान सामने बैठे उग्र पर पड़ा। निस्स देह उग्र डण्डा ब्राण्ड साहित्यकार है। सीधा खोपडी पर खीच मारते है। फिर वह बिलबिलाकर अस्पताल जाय या चूना गुड का लेप करे और मै हूँ लाठी ब्राण्ड साहित्यकार। चोट करूँगा तो ठौर करके धर देना ही मेरा लक्ष्य है। सामने आने का काम नही। सामने नजर उठी तो बनारसीदास चतुर्वेदी रसगुल्ला पर हाथ साफ कर रहे थे। भई वाह, ये है बल्ली ब्राण्ड साहित्यकार। जिसका जी चाहे नाप कर देख ले। लीजिए साहब, मै तो सोचता ही रहा और लोग उठ उठ कर चलने भी लगे। हडबडा कर देखा पार्टी खत्म हो चुकी थी भाषण और भी हुए थे। कृपलानी ने जवाब मे भी कुछ कहासुनी की थी पर मेरी हिमाकत देखिए मुझे कुछ पता ही न लगा। अब मै समझ गया, कि क्यो लोग मुझे बुलाते चलाते नही। परन्तु अब क्या हो सकता था? अछताता पछताता घर चला आया।

बहुत गुस्सा आ रहा था मुझे सब लोगो पर। क्यो नही लोग मुझे ऐसी पार्टिया देते। परन्तु कहूँ किससे? मन ही मन खीझ रहा था कि मन ने एक धक्का दिया, कहा—अपनी इतनी पूजा करता है तो दुनिया मे क्या? तू खुद अपनी ओर देख, अपना साहित्य रचे जा, अपनी कलम चलाए जा, अपने आसू बखेरे जा। अपनी रचना आप ही पढ, अपनी सम्पदा मे आप ही सम्पन्न रह, मगन रह, पार्टी वार्टी को गोली मार और उठा कलम। अभी उठा। इस वक्त दिल चुटीला है, ऐसी ही चोट खाकर साहित्यिक वेदनाएँ मूर्त होती है। ले खीच तो एक दर्द की तस्वीर।

क्या कहा जाय, अपने ही मन की बात टाली न जा सकी। तो साहब, हद हो गई। हाथ आप ही कलम पर आ पडा। कलम था फाउन्टनपेन। इसी साल मेरे तिरसठवे जन्म नक्षत्र पर दिल्ली की प्रगतिशील साहित्य परिषद् ने मुझे स्नेह भेट के रूप मे दिया था। इस सम्बन्ध मे भी कुछ कहना पडा। आजतक किसी भी साहित्यकार, साहित्य सस्था, या साहित्य सघ ने कभी मेरे पास आकर नही कहा—कि आ, तुझे हम सम्मानित करे, तेरा जन्म नक्षत्र मनाए, तेरी कुछ धूमधाम कर, पब्लिसिटी करे, न कभी किसी ने किसी सम्मेलन का सभापति ही मुझे बनाया। इ तजारी बहुत थी। सभापति बनाना तो दूर, साहित्य सम्मेलन तक के अधिवेशन मे कभी मुझे निमन्त्रण तक नही मिला। पिछली बार मेरठ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन था, वहाँ मै बिना ही बुलाए चला गया, इसलिए कि पास तो है ही, बहुत से साहित्य बन्धुओ के दर्शन हो जाएँगे। देखा सबने, पर किसी ने भीतर मच पर चलकर बैठने तक को नही कहा।

दो दिन बाहर ही बाहर घूम फिर कर चला आया। ऐसी हालत मे हर साल मैं ही अपना ज म नक्षत्र मना लिया करता हूँ। व धुबा धव मित्र और कुछ साहित्य परिजन आ जाते है मेरे घर को जुठार जाते है मेरे प्राणो को आन द दे जाते है। पर भेट उप हार कभी कोई नही देता। इस बार न जाने यह क्या एक बदपरहेजी ही हो गई कि प्रगतिशील परिषद् ने हरिदत्त भाई के हाथ मुझे एक कलम भेट की। उसी समय, मन यह स्वीकारोक्ति की थी, कि इस कलम से पहिली बार एक उप यास लिखूगा और यह भी लिख दूगा, कि यह उप यास इस कलम से लिखा हुआ है। सो हाथ इस कलम पर आ पडा और वह स्वीकारोक्ति भी याद पड गई। बस एक प थ दो काज। उसी कलम से दद की एक तस्वीर 'वयपुत्र' उप यासमे खीची गई। उस तस्वीर मे दद जितना था, वह मेरे कलेजे का था, और प्यार जितना था,यह प्रगतिशील साहित्य परिषद के सदस्यो का, जो उ होने अपने कलम मे भरकर मेरे ज म-नक्षत्र पर भेजा था।

दिव्यज्योति ज्योत्स्ना

१९५५ के आरम्भ म मुझे एक अद्भुत स्वप्न दीखा। रात को दो बजे मेरी आख खुल जाती है और मे बिस्तर त्याग अपनी मेज पर आकर लिखने बैठ जाता हू। उन दिना भारतीय सस्कृति का इतिहास मेरी मेज पर चारो ओर फैला हुआ था। सतयुग खण्ड, त्रेता खण्ड, द्वापर खण्ड इन तीनो खण्डो म, जो लगभग सात सात सौ पृष्ठ के थे, मे उलझा रहता था। उस दिन दो घ टे काम करके ही मुझे नीद आने लगी और मे पलग पर जाकर सो गया। चार या पाच बजे प्रात काल की उस नीद मे वह अद्भुत और आन दप्रद स्वप्न देखा।

मेने देखा कि काकरोली म दिर के द्वारकाधीश जी की प्रतिमा की भव्य मूर्त्ति ने सागरतल से निकलकर साक्षात् मेरे शयनकक्ष मे प्रवेश किया। उनके हाथ म एक दिव्य ज्योति थी, जिसका तेज प्रकाश अत्य त प्रिय था। मेरे सिरहाने खडे होकर वह दिव्य ज्योति उ होने मुझे दी और मेरे ऊपर वरद हस्त रख आशीवाद दे चल गए।

अपनी डायरी मे इस स्वप्न के सम्बन्ध मे मैने लिखा था—'सागर मे मने एक स्वप्नद्रष्टा देखा, जिसके चेहरे पर गहरी दाशनिक रेखाए अकित थी। फिर वह स्वप्न भी, जो पत्थरो मे अकित हो रहा था, जिसके चरणतल मे सागर, सागर, सागर! कामना हुई, उस प्रभु के चरणो मे, वह स्वप्नद्रष्टा चिरजीव रहे। अपने स्वप्न को चम चक्षुओ मे मूत्त देख सके।'

इस स्वप्न का अवश्य कोई श्रेष्ठ और गूढ अथ है। प्रात उठकर चायपान के समय पत्नी से मेने अपना स्वप्न कहा। सुनकर वह हसकर चली गई। पत्नी को यह प्रारम्भिक गभकाल था। २९ सितम्बर १९५५ को जब वह दिव्य ज्योति क या का रूप धारण कर मेरे घर जन्मी तो मै सोचता ही रह गया कि मुझ सततिहीन, मित्र, ब धु

गौरव और सगे सम्बन्धियों से हीन एक दीन दारिद्र्यग्रस्त व्यक्ति का, जो चालीस की देहरी पर पहुँच कर अपनी संध्या की ओर उन्मुख हो रहा है, ईश्वर एक शिशु के पिता बनने का गौरव भी प्रदान कर रहा है। मेरे लिए यह दैवी चमत्कार था। मैंने तभी कांकरोली महाराज को पत्र लिखा कि मैंने इस प्रकार एक स्वप्न देखा था और अब मुझे कन्या रत्न प्राप्त हुई है। मैं नास्तिक ही रहा हूँ। कभी द्वारिकाधीश की ड्योढ़ियों पर जाकर प्रणाम नहीं किया, फिर भी उन्होंने मुझे संतति से आप्यायित किया है।

कांकरोली महाराज ने पत्र पढ़कर मुझे लिखा था—पढ़कर हर्ष और आश्चर्य दोनों हुए। अब आप सपत्नीक पुत्री को लेकर यहाँ आइए।

प्रसव काल निकट आने पर मैंने पत्नी को विक्टोरिया जनाना अस्पताल में रख दिया था, जहाँ डाक्टरों तथा नर्सों की देखभाल रहती थी। वहीं २६ सितम्बर १९५५ को पुत्री ज्योत्स्ना का जन्म हुआ। अस्पताल में एक सप्ताह रहने के बाद हम शाहदरे अपने घर लौटने की तैयारी कर रहे थे कि मकान से चन्द्रसेन का फोन आया कि यमुना बाढ़ का पानी जी० टी० रोड पार करके मकान में घुस आया है और अभी बढ़ता ही जा रहा है। फोन का समाचार पाकर हम घोर चिन्ता में पड़ गए, क्योंकि मकान पर चन्द्रसेन अकेले थे। सामान भी बहुत था, गाय बछड़ों का भी झंझट था। यमुना बाढ़ के कारण रेल पुल पर भी खतरा हो गया था और दिल्ली शाहदरे का यातायात सर्वथा बन्द था। दोपहर तक तो टेलीफोन से समाचार मिलता भी रहा, परन्तु दोपहर बाद टेलीफोन भी बन्द हो गया। टेलीफोन के खम्भे उखड़ गए थे। १९४७ की बाढ़ की भयंकरता हम भूले नहीं थे। १९४७ की उस बाढ़ के बाद तो सरकार ने यमुना पर बाँध बनवा दिया था और फिर बाद में बाढ़ आने का कोई भय नहीं रह गया।

विवश होकर हम लोग अस्पताल से छुट्टी लेकर [illegible] के मकान में जाकर पन्द्रह बीस दिन रहे। घर की चिन्ता हमें बनी ही रहती थी, परन्तु समाचार जानने का कोई उपाय न था। एक ही उपाय था कि पैदल जाकर वहाँ पहुँचा जाय। परन्तु ५ मील जाना और ५ मील लौटना १० मील का सफर करके दो चार घंटों में लौट आना मेरी शक्ति से बाहर की बात थी। परन्तु मैं चन्द्रसेन के समाचार जानने के लिए बहुत बेचैन था। यद्यपि चन्द्रसेन के बच्चे भी हमारे साथ अस्पताल में थे और उस समय डाक्टर युद्धवीरसिंह के घर साथ ही रह रहे थे, फिर भी बाढ़ के समाचार सुन सुनकर मेरा मन भयभीत हो उठता था। अन्त में मेरे मन ने दुस्साहस किया और मैं पैदल शाहदरे चल दिया। पुल पर पुलिस सिपाही तैनात थे और आने जाने वालों की पूरी जाँच करते थे। मैंने अपनी चिन्ता बताकर पुलिस आफिसर से पास बनवाया और पुल पार करके रेल की पटरी पटरी होता हुआ बड़ी कठिनाई से मकान पर पहुँचा। सारी जी० टी० रोड पानी में डूबी हुई थी। रेल की पटरियों के ऊँचे भू-भाग को

छोडकर शेष सब भूमि दूर दूर तक जलमग्न थी और वह अथाह जल समुद्र के समान लहरें उछाल रहा था। जब मै थका और बदहवास अपने मकान के फाटक के समीप पहुँचने लगा तो कुछ दूरीसे ही मैने देखा कि मेरे फाटकके सामने दो मृत शरीर रखे हुए हे और बहुत से आदमी वहा एकत्र है। भय और आशका से मेरे पर वही जमने लगे। बडी कठिनाई से साहस बटोर कर मै अपने फाटक तक पहुँचा और जाकर देखा, मेरा सारा मकान चार चार फुट पानी मे डूबा पडा है। मेरे मकान के सामने की जी० टी० रोड पानीमे बची थी, शेष इधर उधरकी सारी जी० टी० रोड पानी मे डूबी हुई थी। पानी रुका हुआ था, बह नही रहा था। मकान पर दृष्टि उठाई तो देखा कि चन्द्रसेन मकान की छत पर सारा सामान ऊपर लिए बैठे हुए हे। उसे देखकर मेरे प्राण लौटे। पता चला कि ये दो व्यक्ति रात को सामने के खेतो मे डूब कर मर गए थे और पुलिस उनकी शिनाख्त करा रही थी।

मुझे देखकर चन्द्रसेन उतरकर नीचे आए। मिलिट्री की छोटी छोटी किश्तिया इधर उधर लोगो को पहुचा रही थी। उसी एक किश्ती पर बैठ कर वे मेरे पास जी० टी० रोड पर आए। सब हाल सुनकर बहुत दुख हुआ। पर मेरी तसल्ली होगई थी। गाय बछडो को एक सुरक्षित स्थान पर पहिले ही पहुँचा दिया गया था। आधा घटा वहा ठहर कर अब मैने दिल्ली वापिस लौटने की सोची। मै कभी इतना पैदल नही चला था। घुटनो मे तकलीफ रहने लगी थी। मेरे सामने लौटने की बडी भारी समस्या थी। पर घर के और सब लोग दिल्ली मे मेरे लौटने की प्रतीक्षा मे चिंतित होगे यह सोचकर मै साहस करके चल खडा हुआ। लोगो ने मुझे बहुत रोकना चाहा, पर मै चल ही दिया। दिल्ली घर पहुचते पहुचते तो मै बिल्कुल बेदम हो चुका था। मेरी जान निकल गई थी। दो दिन मे मेरी थकान उतरी।

धीरे धीरे दो सप्ताह बाद बाढ का पानी कम हुआ। जी० टी० रोड और पुल पर आना जाना खुला। मकान मे से सब पानी निकल जाने के बाद मैने मकान की सफाई कराई, सफेदी कराई और दिल्लीसे परिवार को शाहदरे ले आया। यह अपने घर मे उस दिव्य ज्योति पुत्री ज्योत्स्ना का प्रथम पदार्पण था।

बाढ से मेरा घर बिल्कुल खराब हो चुका था। दो कमरे भी टूट चुके थे, सारा बगीचा उजड गया था। मेरा घर किसी भले आदमी के रहने योग्य नही रह गया था। पर मै तो जैसे सघर्षो के लिए ही पैदा हुआ था, जिनसे जीवन मे टक्करे लेकर मै उनका अभ्यस्त हो गया था, मैने फिर वर्तमान को सम्भालना आरम्भ किया। मेरे मित्र और परिजन लोग मुझसे तकाजे कर रहे थे कि जीवन मे पहिली बार सन्तान के पिता बने हो तो उसकी शानदार पार्टी जल्दी करो। पर मै उन्हे बार बार यही कहकर टाल देता था कि जरा घर ठीक हो तो दस भले आदमियो को बैठाने के योग्य बनेगा।

परन्तु मेरा हाथ रुका नही। मेरे दो तीन उपन्यासों का अनुबन्ध प्रकाशकों से हुआ और मेरे हाथ मे रुपया आ गया। मैं ने तीन नए कमरे बनवाए। सब कमरो के फर्श नए करवाए और मकान को सब भांति सुसज्जित किया। बगीचा फिर लगवाया। इन सबके पूर्ण होने मे एक वर्ष के लगभग समय लग गया और तब मैने अपनी पुत्री का जन्मोत्सव तथा नामकरण संस्कार किया। मेरी कृतियां ही मेरी सन्तान थी। चन्द्रसेन के अब तीन बच्चे थे, वे भी मेरे ही बच्चे थे। सो पुत्री के साथ उन तीन बच्चो का यज्ञोपवीत संस्कार भी मैने करा डाला। खूब धूमधाम रही। पुत्री का नाम पंडिता ने बताया सुषमा, परन्तु मैने रखा—'ज्योत्स्नाकुमारी कमलाचीसेन प्रिंसेस ऑफ लाल बाग'। बडी होने पर जब वह बोलने योग्य हो गई तो मैने यही नाम उसे बता दिया था। जब वह मूड मे होती और उससे नाम पूछा जाता तो बडी शान से अपना यह लम्बा चौडा नाम बता देती। एक बार मैने कागज पर उसका नाम लिख दिया—ज्योत्स्ना। इस पर वह बिगडकर मुझे डाटने लगी—पापा, मेरा नाम पूरा तो लिखो।

मैने पूछा—पूरा कैसा बेटी ?

उसने रोब से कहा—ज्योत्स्नाकुमारी कमलाचीसेन प्रिंसेस आफ लालबाग।

मै खिलखिला कर हंस दिया और स्लेट पर पूरा नाम लिख दिया।

ज्योत्स्ना शशिकला की भाति बढने लगी। अपने शिशु काल की प्यारी प्यारी बातो से वह मुझे नई नई अनुभूति कराने लगी। अब तक मै दूर से ही बच्चो के प्रति कोमल भावनाएं और प्रेम रखता था। पर अब वे जब साक्षात् मुझे प्राप्त हो रही थी। उन्ही अनुभूतियोसे मै ओत प्रोत होरहा था। उसका पुष्प के समान सौरभ और हास्य। उत्फुल्लित कमलके समान प्यारे नेत्र मेरे मानसमे रमते चले गए। मै यह भूल गया कि यह केवल एक अबोध शिशुमात्र है और मै ६८ वर्षका एक व्यक्ति। मै और वे दोनो एक समान आयु के बन गए थे। वह दो वर्ष की थी तो मै भी दो वर्ष की आयु का शिशु बन गया था। उसके तीन वर्ष के होनेपर तीन वर्ष का, चार वर्ष के होने पर चार वर्ष का। मैने उसका प्यारा नाम रखा—मुन्ना। जब मै लिखते लिखते थक जाता तो मै उठकर मुन्ना को ढूंढता और उसे गोद मे उठाकर कहता—आओ मुन्ना, बात करे।

पलग पर लेटकर उसे मै अपने पेटपर डाल लेता और बात करने लगता। मेरी बात होती गुजुगाना। मै उससे अनेक प्रश्न पूछता और वह सबका उत्तर में किलकारी मारकर अपना हास्य बखेर देती। मै तो उससे बात करते करते सो भी जाता, पर वह पड़ी पड़ी खेलती रहती।

जब वह चार पांच वर्ष आयु की हुई और बातो को समझ कर उत्तर देने योग्य हो गई तो मै उससे सलाह करता—मुन्ना, तुम्हारे लिए यहां कैसा कमरा बनवाऊं ?

अच्छा, मुन्ना आओ सलाह कर हम कहां कहां जाना है। बनारस, कलकत्ता,

इलाहाबाद, बम्बई । और वह पूरे ध्यान से मेरी बातो को सुनकर अपना उत्तर देती ।

उसके उत्पन्न होने से पहले मे ऐसे ही दो चार साधारण कमरो म रहता था । मने कभी गम्भीरता से इस बात का विचार भी नही किया था कि मेरे पास इतनी बडी जगह हे, मे इसमे बहुत सु दर कोठी बनाकर बहुत आराम से रह सकता हूँ । यह बुद्धि तो मुझे आई ज्योत्सना के आ जाने पर । जब से मे उसे अस्पताल से लेकर घर आया तभी से मेरे मन मे यह बात समा गई कि इसके लिए बहुत सु दर कोठी बनादू । तभी से मे अपनी कोठी को बनाने लगा । मेरी पुस्तको की रायल्टी से जो बडी राशि आती, वही मै मकान के निमाण मे लगाने लगा और ज्योत्मना की चार वष की आयु होते होते मैने पूरी कोठी दो मजिला बनाकर तयार करदी । उसके एक एक कमरे के फश मे मेने अपनी रुचि के अनुसार बेल बूटे और पक्षियो के डिजाइन बनवाए और साधारण से बहुत अधिक उसमे व्यय किया । म तो यही कहता हूँ कि गृह निमाण मे जो चालीस हजार रुपया लगा वह सब इसी दिव्य ज्योति ने ही दिया । इसी ने निर्माण की प्रेरणा मुझे दी ।

जब वह डेढ दो वष की थी, तभी मेने उसे लेकर सपत्नीक बिहार कलकत्ता और पुरी तक यात्रा की । इस यात्रा मे पूरा एक महीना मेने लगाया । पर तु आश्चय है कि मेरी घुटनो की तकलीफ ने मुझे बिल्कुल भी कष्ट नही दिया । चार वष की होने पर वह मेरे लिए प्रात चाय लाती और अपना दूध भी ले आती । हम दोनो साथ साथ पीते और बाते करते जाते । चाय पीने पर वह मुझसे कहती अब अखबार पढकर सुनाओ । और मे अखबार की दो चार मुख्य मुख्य बाते उसे पढकर सुना देता । आधा घण्टा उसके साथ चाय पीकर और अखबार पढकर मे उसे कहता—अच्छा मुन्ना, अब तुम अपनी अम्मा के पास जाओ और मे अपने काम मे लग । वह हँसती हुई अखबार हाथमे लेकर अपनी माता के पास भाग जाती ।

उसे मेने अक्षराभ्यास कराया । मुझे यह देख कर चकित रह जाना पडा कि जो बात मैं एक बार मे बता देता हूँ उसे वह उसी बार मे समझ और हृदयङ्गम कर लेती हे । उसकी बुद्धि असाधारण हे । मे लोरियो की बाल पुस्तके लाकर दोपहर मे उसे पास लिटाकर लोरिया पढ पढकर सुनाया करता था । मै सो जाता था, पर वह मेरे पास बठकर उस पुस्तक मे उ ही लोरियो पर उगली रखकर मेरी ही तरह पढती थी । उसकी स्मरण शक्ति को देखकर मेने उसे बहुत शीघ्र अक्षराभ्यास कराकर शब्द जोडने और पढने बता दिए । अग्रजी का भी अक्षराभ्यास करा दिया ।

उपकृत हुआ

नवम्बर १९५५ मे दिल्ली प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन ने मेरी साहित्य सेवाओ के लिए मुझे एक ताम्रपट देकर उपकृत किया । इस समय मेरी आयु ६४ वष की थी ।

ताम्रपट ग्रहण करते हुए मैंने अपने भाषण मे कहा था —

'आपने मुझ अकिंचन बहिष्कृत साहित्यकार को यह बहुमूल्य ताम्रपट प्रदान करके जो अकल्पित असाधारण सम्मान प्रदान किया है, उससे मै आश्चर्यचकित और विमूढ हो गया हूँ। भय और आशका से मेरा दिल धडक रहा है कि कही किसी दूसरे साहित्य महारथी की जगह मेरा नाम भूल से तो नही लिख लिया गया है। बहुत दिन हुए—उन दिनो मै अजमेर मे रहता था। तब प्रबल प्रताप अग्रजी सरकार हर नए वर्ष के उपलक्ष्यमे राजभक्त लक्ष्मीपुत्रो को रायसाहब, रायबहादुर का खिताब दिया करती थी। खिताबित लोगो की सूची अखबारो मे छपती थी। उस बार एक मोटेमल सेठ का नाम रायबहादुर की सनद पर छप गया। दूसरे दिन जब दावत उड रही थी और मुबारक बादिया आरही थीं कि तार आया कि गलती से आपका नाम छपगया था, खिताब किसी दूसरे को मिला है। डरता हूँ कही मेरे साथ भी ऐसा ही न हो। डरने के अनेक कारण है। दिल्ली भारत की राजधानी है, साहित्य महारथियो की यहा क्या कमी। उनके सम्मुख मै तीन मे न तेरह मे। पहिले ही कह चुका हूँ कि मै साहित्यकारो मे बहिष्कृत हूँ। जहा उपन्यासकारो की चर्चा होती है, मेरा नाम सिफर। कहानीकारोमे, नाटककारो मे, एकाकीकारो मे, निबन्धकारो मे, सबमे सिफर। यहा तक कि रेडियो टाकिस्टो मे भी सिफर। मै तो यह कहकर सन्तोष कर लेता हूँ कि—

साहित्य देव नमस्तुभ्य सिद्धोऽह त्वत्प्रसादत ।
अहपश्यामि जगत्सर्व नमा पश्यति कश्चन ।

परन्तु बडो की बाते भी बडी होती है। उनके सम्मुख झुकने मे ही कल्याण है। आप बडे है, आपने जब मुझे यह सम्मान दिया है तो यह, एक भ्रम मे ही लिए हो, तो भी मेरे लिए मेरे जीवन से भी अधिक प्रिय और मूल्यवान है। अत इस आपके मानपत्र को शिरोधार्य कर, आप सब छोटे बडे साहित्य परिजनो के चरणो मे मै अपना मस्तक नवाता हूँ, और वचन देता हूँ कि आजीवन ईमानदारी से अपने अवशिष्ट जीवन के प्रत्येक क्षण को साहित्यश्रम मे लगाकर उसका मूल्य चुकाता रहूँगा। औपचारिक तौर पर मेरा वक्तव्य यही समाप्त हो जाना चाहिए, परन्तु 'अयमितिनतृप्यत' जब अवसर मिला है तो अनुमति चाहता हूँ कि मन की एक बात भी कह दू। भव ही मेरा पर्दा फाश हो जाए। पर ईमान की बात तो यह है कि मुझे मान सम्मान की अपेक्षा आरामकी अधिक आवश्यकता है। कुछ अकेले अपने ही लिए नही, साहित्य रचना के निमित्त स्वस्थ रहने के लिए भी। पिछले जमानेमे राजा महाराजा विद्वानो को जमीन-जागीर देते और उसके लिए ताम्र पट्ट लिख देते थे, क्योकि तब रजिस्ट्रेशन का प्रचलन नही था। अब तो यह कोरा ताम्र पट्ट है, साथ मे जमीन-जागीर कुछ भी नही। आपने सम्मान दिया, वह मेरे सिर आखो पर। परन्तु मै अब उस आयु को पहुँच चुका



१९५८



१९५९

हूँ कि सम्मान की अपेक्षा आराम की अधिक जरूरत है। मसनन म बेकार हूँ—अर्थात् मेरे पास कार नहीं है, परमश्रेष्ठ बुलगानिन जितनी देर मे भारत से चलकर समरकन्द पहुँचते हे, और महामात्य नेहरू पालम हवाई अड्डे से कलकत्ता या रगून पहुचते है, उतनी देर मे मे अपने घर शाहदरा से दिल्ली पहुचता हूँ। बस की लाइन मे घण्टा खडा रहता हूँ। बहुधा हट्टे कट्टे लोग धीगामुश्ती से पहले चढ जाते हे। मेरे सामने तीन तीन बसे निकल जाती है और मे निरुपाय रह जाता हू। अब आप ही सोच लीजिए कि इस भाग्यदग्ध साहित्य का वैभव कितना हे, जिसने अम्बपाली के वभव का वर्णन किया हे। मुझे यह सब बात कहते शर्म आती हे। पता नही आपको सुनते हुए शर्म आती हे या नही। उपस्थित जनो मे श्रद्धेय टण्डन जी थे, श्री अनन्तशयनम आयगार थे, पत जी थे—और भी बहुत से गणमान्य व्यक्ति थे। मैन कह दिया उन्होने सुन लिया। बस बात खत्म हुई।

साँस्कृतिक मूर्ति पुरुषोत्तमदास टण्डन

अप्रैल १९५७मे दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से पुण्य श्लोक श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन की विदाई का समारोह दिल्ली मे सम्पन्न हुआ जिसमे सम्मिलित होने के लिए जाते हुए मै एक दुर्घटना मे फसकर आहत हो गया और समारोह मे उपस्थित होने की प्रतिष्ठा से वचित रह गया। आज जब मे इन पक्तियो को लिखने योग्य हो गया हूँ, मै टण्डनजी के सम्बन्धमे अपने कुछ विचार लिखना चाहता हूँ, जिन्हे शायद मै विदाई सभा मे उपस्थित होने पर व्यक्त करता।

टण्डन जी की काँग्रेस और राजनीति से बिदाई तो ठीक हे और उसका हिन्दी क्षेत्र मे जितना अभिनन्दन किया जाय कम है, परन्तु हिन्दी क्षेत्र से बिदाई कैसी ? इस घटनाको तो हमे राजर्षिकी अवाई कहना चाहिए और उसका अभिनन्दन करना चाहिए। वास्तव मे टण्डन जी का राजनीति से सन्यास ग्रहण करना हिन्दी के लिए एक शुभ लक्षण हे, जिससे हिन्दी ससार को पूरा लाभ उठाना चाहिए।

मै तो यह समझता हू कि जबसे हिन्दी राष्ट्रभाषा हुई है, हिन्दी की अपार हानि हुई हे। उस हानि के दो प्रमुख रूप है। प्रथम तो यह कि भारतवर्ष मे जितनी भी हिन्दी उन्नायक सभाएँ, गोष्ठियाँ, सस्थाएँ हे, वे सब हिन्दी प्रचार मे जुट गइ। हिन्दी साहित्य और साहित्यकारो को उनसे कोई प्रश्रय नही मिला, इससे हिन्दी साहित्य और साहित्यकारो का विकास रुक गया। दूसरी हानि यह हुई कि विभाषी प्रान्तो मे हिन्दी के प्रति सपत्य भाव पैदा हो गया और यह भाव हिन्दी भाषा ही तक सीमित न रहा, हिन्दी साहित्य को भी छू गया। केवल भाषा के प्रश्न को लेकर साहित्य मे सपत्य भाव का समावेश अत्यन्त दुख की बात हे। सस्कृत के बाद हिन्दी ही वह भाषा है जिसका साहित्य गोष्ठन हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक व्यापक हो पाया है। इसीसे अविभूत

होकर नामदेव आदि ने हिन्दी में भक्तिवाद का प्रवाह बहाया और सुदूर दक्षिण के अचलों में सूर, तुलसी तथा मीरा की रचना को उतना ही प्रेम और आदर प्रदान किया जितना उनके अपने प्रान्तों के भक्तों के वचनों को प्राप्त था। हकीकत तो यह है कि साहित्य की कोई बिरादरी नहीं है वह तो मानवीय हृदय के सौंदर्य का प्रतिबिम्ब है चाहे जिस भाषा में भी वैसा साहित्य हो वह मानव हृदय को वशीभूत किए बिना नहीं रहेगा। परन्तु भाषा के प्रति सपत्न्य भाव रहने से साहित्य पर भी उसका प्रभाव पड़ जाता है, साहित्य के प्रति भी वैसी भावना उत्पन्न हो जाती है।

जब अंग्रेजी अमलदारी का प्रारम्भ हुआ था, तब उर्दू और हिन्दी के बीच सपत्न्य भाव पैदा हुआ था। उन दिनों देश की बोल चाल और व्यवहार की भाषा हिन्दी थी और लिपि देवनागरी, किन्तु अंग्रेजों ने उर्दू को अदालत की राज्य भाषा बनाया इस प्रश्न को लेकर उस समय भी बहुत बड़ा संघर्ष खड़ा हुआ था। उर्दू का जन्म बहुत पहले हो चुका था और उस समय तक उर्दू गद्य पद्य साहित्य का काफी विकास हो चुका था। इसलिए साहित्य की दृष्टि से हिन्दू और मुसलमान समान रूप से रस लेते थे। पर ज्योंही अंग्रेजों ने उर्दू भाषा को राजनीतिक रूप दिया, हिन्दी और उर्दू में सपत्न्य भाव पैदा हो गया और ऐसा संघर्ष छिड़ा, जो अंग्रेजों के राज्य की समाप्ति तक भी समाप्त नहीं हुआ। परन्तु यह संघर्ष देशव्यापी न था, केवल उन द्विभाषी प्रदेशों तक सीमित था, जहां हिन्दी और उर्दू दोनों ही व्यवहार में लाई जाती थीं।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के अन्तिम चरण में जब गांधी जी ने प्रवेश किया तब उनकी पैनी दृष्टि दक्षिण भारत पर गई, जहां चार भिन्न भिन्न भाषाएँ बोली जाती थीं। इन भाषाओं के कारण दक्षिण भारत सांस्कृतिक रूप से न केवल उत्तर भारत से पृथक था, अपितु दक्षिण के चारों प्रान्त भी भाषा के आधार पर परस्पर पृथक थे। गांधी जी की राजनीति भारत के 'एक राष्ट्र' सिद्धान्त पर आधारित थी। जब तक दक्षिण और उत्तर भारत सांस्कृतिक रूप से एक न हो जाते, तब तक अखण्ड भारतीय राष्ट्र का उदय नहीं हो सकता था। उस समय अंग्रेजी भाषा ने दक्षिण के चारों प्रान्तों और उत्तर भारत में भी शिक्षा के माध्यम का रूप ग्रहण कर रखा था। परन्तु यह माध्यम विदेशी होने के कारण सांस्कृतिक नहीं था। गांधीजी ने तत्काल इस त्रुटि को भांप लिया और उन्होंने सबसे पहला वार इसी पर किया। जैसे सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र को बोधि वृक्ष की शाखा लेकर सुदूर लंका द्वीप में भेजा था, उसी प्रकार गांधीजी ने अपने पुत्र देवदास को दक्षिण में हिन्दी का बीज वपन करने के लिए भेज दिया। यह काम केवल दिव्य दृष्टि वाला ही कर सकता था। निरन्तर बीस वर्ष तक करोड़ों स्त्री पुरुषों के हृदयों में हिन्दी का बीज अंकुरित किया गया और उसका परिणाम यह हुआ कि पहले हिन्दी के माध्यम से दक्षिण के चारों प्रान्त सांस्कृतिक रूप में एक हो गए और फि

उनका उत्तर भारत मे एकीकरण हो गया । इस प्रकार एक अखण्ड भारतीय राष्ट्र का उदय हुआ । यह कोई साधारण बात नही थी । यह एक ऐसा महत्वपूर्ण काय था जो वदिक काल से लेकर अब तक नही हो पाया था ।

टण्डनजी गाधीजी के इस सास्कृतिक यज्ञ मे सबसे बडे सूत्रधार बने यहा तक कि गाधीजी ने अपने विचारो मे परिवतन किए, पर तु टण्डनजी पवत की चट्टान की भाति अचल रह । आज सारी पृथ्वी मे टण्डनजी जसा दूसरा कोई व्यक्ति हिन्दी का हिमायती नही हे । परन्तु टण्डनजी भारतीय राजनीति क भी धुरीण पुरुष हे ।

टण्डन जी भारतीय सस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि थे । उनकी इस सास्कृतिक निष्ठा स प्रभावित होकर मेने अपनी अप्रतिम रचना 'भारतीय सस्कृति का इतिहास' उ ह समर्पित की हे । रचना के पूर्ण होने पर उसकी पाण्डुलिपि लेकर मै उ हे समर्पित करने गया था और उनकी गोद मे उसे रख दिया था । उस समय दाना की आखे भावातिरेक से सिक्त थी ।

आदश व्याह

जैनेन्द्रकुमार की आयुष्मती पुत्री का विवाह बडी धूमधाम से सम्पन्न हुआ । विवाह म दिल्ली के छोटे बडे सभी साहित्य पुरुष ही नही राजपुरुष भी उपस्थित थे । एक प्रकार से वह समारोह बडे आदमिया का एक मेला सा लग रहा था । ऐसा भारी मेला कि जहा मेरे जसे छोटे जीव ज तु एक प्रकार से छिप ही गए । कई बार चेष्टा की कि किसी तरह जनेन्द्र की नजर मुझ पर भी पड जाय,कई स्थान बदले,मार्के की जगहो पर जा खडा हुआ,पर बेकार । जैनेन्द्र पास होकर भी गुजरे,पर मुझे तो देखाही नही । मे समझताहूँ कि इन अनदेखो मे मेरे जसे अनेक छुटभये होगे । जिन परिचितोने देखा, वे भी नमस्कार मात्र के बाद अपनी मण्डली से बातचीत मे व्यस्त रहे । फलत अपनी अति तुच्छ भेट, जो मे पुत्री के लिए ले गया था, जेब मे डाल चुपके से खसक आया । कुछ तो इसलिए कि बडे आदमियो के उस जगल मे किसे दू,इसका बहुत पूछने पर भी कुछ पता न लगा । दूसरे इस महा महिमामयी शादी म वह तुच्छ भेट देते लज्जा भी आई । उपराष्ट्रपति महामान्य श्रीराधाकृष्णन जब विवाहवेदी पर पत्रो मे छपने के लिए एक फाटो खिचवाकर भीड-भाड के साथ उठ चले,तो यह नाचीज साहित्यकार भी चोर की भाति सबकी नजर बचा कर भाग आया ।

पर तु इस प्रकार का यह अनुभव मेरे लिए कुछ नया न था । लडकियो की शादी मे प्राय यही होता हे कि सभी इष्ट मित्रो की हेसियत एक अदली की रहती हे । प्राय वे राह के दोनो ओर सफ बाधकर खडे हो बारात का स्वागत करते है । विवाह समारोह मे लडकी की ओर से आए हुए इष्ट मित्रो का स्वागत सत्कार या आवभगत करने का रिवाज नही है । बारात मे आए हुए बुनिए, जुलाहे तक सम्मानीय समझे

जाते हे। उन्हे फूल मालाए अर्पित की जाती हे और उनके लिए स्वागत समारोह और उपचार भी होते हे। असल बात यह हे कि हम हिन्दुओं मे बेटी का पक्ष हीन माना जाता हे और वह हीनता उन पुरुषों को भी सहन करनी पडती हे,जो बेटी की ओर से विवाह समारोह मे सम्मिलित होते हे। यह रूढि इतनी जडबद्ध हो चुकी है कि बडे बडे लोग भी इस अपमान को अपमान नही समझते और बेटी का बाप तो इस अवसर पर समागत जनो की ओर आख उठाकर भी नही देखता। हा बडे बडे आगत अभ्यागतों की बात और हे, जो इष्ट मित्र की हेसियत से नही, समारोह की गरिमा बढाने के लिए खास मिन्नत खुशामद से क्षण भर के लिए, ममलन फोटो खिचवाने के लिए ही किसी तरह खीच लाए जाते हे।

जो हो, समारोह बहुत ही भव्य था। जैनेन्द्र मेरे अति निकटस्थ आत्मीय हे। मुझे अपना उस प्रकार जाना आना तनिक भी बुरा नही लगा, पर मुझे श्री जनेन्द्र के व्याह की बात अवश्य याद आ गई। बहुत पुरानी हो गई है वह बात, पर उस रात मे घर आकर जनेन्द्र के विवाह के ही सपने देखता रहा। बडा मजदार और असाधारण था वह विवाह। वह एक साहित्यकार का विवाह था और उसे एक भावपूर्ण कविता कहा जा सकता हे। अब उसकी कहानी सुन लीजिए।

आज उन बातो को चालीस बरस बीत गए होगे। विवाह अन्तर्जातीय था। वर था जनी और वधु के पिता थे वैष्णव, परन्तु जैनी जैनेन्द्र न थे,उनकी माता थी। जनेन्द्र थे रूढि के तरुण और तीव्र विद्रोही। विवाह का सयोजक मे था और योजना बनाई थी दूल्हे मिया के साथ मेने। अपनी इच्छा से नही,दूल्हे की इच्छानुसार, क्योकि म भी उन दिनो आर्यसमाजी था। मेरे अतिरिक्त उन्ही की भाति एक और बदीन आदमी थे,जैनेन्द्र के मामा महात्मा भगवानदीन। हमारी योजना के तीन पहलू थे--

१—विवाह अधिक से अधिक आडम्बरहीन और सादगी से हो।

२—विवाह मे कम से कम खर्च किया जाय।

३—विवाह सब रूढियो और साम्प्रदायिक भावनाओ से रहित हो।

पहले पहलू की सफलता यह थी कि बारात मे मय दूल्हा के सात तीन बाराती थे। मे, महात्मा भगवानदीन, दूल्हा और एक छोटी सी लडकी शायद जनेन्द्र की कोई रिश्तेदार बहिन।

दूसरी व्यवस्था ऐसी थी कि न गाजा,न बाजा, न दूल्हे दुल्हन के लिए कोई जेवर खरीदा गया, न कपडा, न दान, न दहेज। एकदम बेबाक शादी।

तीसरा पहलू और भी खासुलखास था। विवाह मे न यज्ञ मण्डप, न वेदी, न वेदमन्त्र, न अग्नि-प्रदक्षिणा, न सप्त पदी, न नव ग्रह पूजन, न कन्यादान। हम लोगो ने अर्थात महात्मा भगवानदीन और मैने मिलकर सात सात प्रश्न हिन्दीमे लिख लिए,सात

दूल्हे के लिए सात दुल्हिनके लिए। उनका 'हा' मे उत्तर वर वधू को देना था। न पुरोहित, न विवाह पढनेवाला पण्डित।

सुबह की गाडी मे बारात चली मुजफ्फरनगर और हम लोग भोजन के समय वहा पहुँच गए। तीन आदमियो की बारात का जनवासा एक साधारण कमरा था, जिसमे तीन पलग पडे थे। जाते ही हमने भोजन किया। आराम किया और चार बजे विवाह के लिए हमारी बारात बेटी वालेके घर की ओर चली। न बाजा न धूम। दूल्हे ने जामा नही पहना, न दूल्हा घोडेपर चढा। धोबी का धुला खद्दर का धोती कुरता पहने दूल्हा, खरामा खरामा हम दोनो प्रतिष्ठित बारातियो के साथ बाजारो और गलियो को अपनी पुरानी ही चप्पले पहिने पैदल पार कर बेटी के बाप के द्वार पर जा पहुँचा।

तारीफ करताहू बेटी के बाप के साहस की। कोई अध्यापक सज्जन थे। असीम साहस था उनमे कि दूल्हे की सनक को उन्होने क्रियान्वित किया। मास्टर जी के घर मे बहुत लोग नगरके इस विवाह की साक्षी रहने को आए थे। निःसन्देह यह बारात की अगवानी करने वाले अरदलियो की फौज न थी, लडकी के पिता के इष्ट मित्र थे। यद्यपि हम दोनो बाराती लाट साहब से कम हैसियत न रखते थे, हमारे स्वागत को कोई द्वार पर खडा न था। प्राङ्गण मे सभी भद्र पुरुष की भाँति बैठे थे, उन्ही मे हम भी बैठ गए।

तब कोई साढे चार बजे थे। विवाह कार्य आरम्भ हुआ। सबसे प्रथम कुछ लडकियो ने वन्देमातरम् गीत गाया। इसके बाद वर वधू आमने सामने, परन्तु जरा फासले से खडे हुए। प्रथम वधू ने सात प्रश्न कागजसे पढकर वरसे किए। वर ने 'हा' मे उत्तर दिए। फिर वर ने सात प्रश्न एक-एक करके पूछे वधू ने 'हा' मे उत्तर दिए। अब वर ने आगे बढकर वधू का हाथ पकडकर उपस्थित मण्डलीके समक्ष घोषित किया कि आप लोग साक्षी रहे आज से हम पति पत्नी है जीवन के अन्त तक के लिए। इस पर उपस्थित मण्डली ने हर्षनाद किया। महात्मा भगवानदीन जी ने वर वधू को आशीर्वाद दिया। परन्तु उपस्थित मण्डली की हर्षनाद की ध्वनि वायुमण्डल मे गूज ही रही थी कि उठ खडा हुआ एक दुबला पतला अधनगा सा व्यक्ति भाषण देने को। ये थे 'भारत मे अँग्रेजी राज्य' के प्रणेता पण्डित सुन्दरलाल।

उन्होने भाषण क्या दिया, तोपो की बाढ दाग दी। पण्डित सुन्दरलाल आज भी अद्वितीय भाषणकर्ता है और उन दिनो तो वे आग बरसाते थे। क्रान्तिकारी दिन थे वे। उन्होने कहा—मैं आशा करता था कि जैनेन्द्र जैसा आदमी एक दिन फासी के तख्ते पर चढेगा, पर आज वह विवाह की बेडिया पहन कर बन्दी बन गया है। इसके आगे उन्होने प्रभावशाली शब्दो मे बताया कि आज भारत के प्रत्येक तरुण को देश के लिए बलिदान होने की राह पर चलना चाहिए। ब्याह शादी के झझट मे नही पडना चाहिए। बडा सरस और कडुआ भाषण था उनका। कम से कम विवाह के मगल समा

रोह के उपयुक्त तो कदापि न था। तब उसका उत्तर मुझे देना पड़ा और वैसे ही कड़े शब्दों में कहना पड़ा कि विवाह बन्धन नहीं है। आज की स्त्री जीवन संगिनी है और उसमें देश पर जूझ मरने की दुगनी शक्ति और प्रेरणा मिलनी चाहिए। अच्छा खासा डिबेट होगया यह। जब विवाह समारोह समाप्त हुआ। वहां से उठकर हम लोग भोजन के लिए बन्दी पंक्ति बना बैठ गए। पंक्ति में बराती घराती सभी थे यहां तक कि दूल्हा के साथ दुल्हिन भी पंक्ति में बैठी थी। घूंघट और पर्दे का कोई प्रश्न ही न था।

दूसरे दिन सुबह जब हमारी मात्र तीन आदमियों की बारात विदा हो रही थी और सामान तांगों पर लद गया था, हमारे साथ सभ्यशिष्ट मजाक किया गया। एक थाल में कुछ मिष्टान्न के टुकड़े रखकर लाए गए और अनुरोध किया गया कि जाने से प्रथम मुंह मीठा कर लीजिए। थाल में कुछ बर्फियां के टुकड़े थे, कुछ पेड़े थे। बर्फी सादा रंग थी, पर पेड़े असाधारण रूप से बनाए गए थे। ऐसा प्रतीत होता था बहुत ही उत्तम मावे के बने हैं। महात्मा भगवानदीन ने बर्फी का एक टुकड़ा उठाकर मुंह में दिया। मैंने पेड़ा उठाया। महात्मा जी मजे में बर्फी खाकर हँस रहे थे, जबकि मेरे मुंह में मैदा और रुई भर गई थी। अच्छा मजाक रहा।

हम चले तो ट्रेन चलते ही दुलहिन ने खाने की टोकरी खोली और हमसे कहा— आप लोग भोजनकर लीजिए फिर ठण्डा हो जायगा। और उसने चिर अभ्यस्त गृहिणी की भांति गर्म गर्म पूरियां और तरकारी मिठाई हमारे आगे परोस दी, आग्रहपूर्वक परोसती रही। नई वधू का संकोच वहां कोई न था। आज से चालीस साल प्रथम नवपरिणीता दुलहिन का यह व्यवहार उस अद्भुत विवाह में भी अद्भुत था।

वही भगवती देवी अब वृद्धा हो चुकी है। सारे बाल सफेद और दांत सब गायब। पुत्र पुत्रियों की माता और पुत्र वधुओं की सास। मैं जानता हूँ उस तपस्विनी ने अपनी गृहस्थी में तप तपा है। मैंने अभी ही मसूरी में चालीस साल पूर्व की उसी भगवती के दर्शन किए थे। जैनेन्द्र से मिलने गया था। भगवती जी के हाथ की हड्डी टूट गई थी। हाथ प्लास्टर में था। एन०एल० बी० पास बैठी आई घूम कर, दो जन और भी साथ थे। देखा तो बिगड़ पड़ी— मां, यह क्या हो रहा है चाय तैयार नहीं हुई, मेरा सिनेमा का प्रोग्राम था समय अब कहां रहा ?' उसने अपनी कलाई की घड़ी पर दृष्टि दी। भगवती उठी और—अभी चाय देती हूं, कहकर रसोई घर में घुस गई। एक आंसू मेरी आंख में आया था मां और बेटी को देखकर। अब हंसी आ रही है मां और बेटी के ब्याह की याद करके। कितना अन्तर था मां और बेटी में और उनके विवाह में ?

देवताओं के देश में

दिसम्बर १९५९ में मद्रास में 'आल इंडिया राइटर्स कान्फ्रेंस' हो रही थी। इसका निमन्त्रण मुझे भी मिला था। मैंने उसे स्वीकार कर सपत्नीक उधर जाने का

प्रोग्राम बनाया ।

दक्षिण यात्रा की मेरे मन मे चिर अभिलाषा थी। कहिए सन १९ २ से ही ऐसी यात्रा का प्रोग्राम बन रहा था । १९३२ या ३३ म दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास के कुछ काय कर्त्ता और विद्यार्थीगण दिल्ली भ्रमणार्थ आए थे । उनके साथ सत्यनारायण जी भी थे जिनके अनथक परिश्रम से दक्षिण भारत म यह सस्था हि दी का काम कर रही थी । अपने दल के साथ वे मुझ स भट करने के लिए आए । साहित्य चर्चा के बाद सत्यनारायणजी ने मुझसे अनुरोध किया कि मै दक्षिण के हि दी के द्रो मे आकर कुछ भाषण करूँ । जब मैने उन्हे दक्षिण यात्राकी अपनी इच्छा भी बताइ तो उन्होने उसका सब प्रब ध करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया । इसके बाद हि दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा उत्तर भारतीय विद्वानो के यात्रीमण्डल मे सम्मिलित होकर दक्षिण भारत चलने का निमन्त्रण भी मुझे मिला । परन्तु मै ऐसा फसा रहा कि उधर जा ही नही सका । अलबत्ता कईबार मै दक्षिण हैदराबाद अपने मित्र कप्टन सूय प्रताप से मिलने जाता रहा, परन्तु हैदराबाद से आगे दक्षिण मे बढ ही नही सका ।

दक्षिण भारत के विशाल देवमन्दिर मेरे आकर्षण के विषय थे । दक्षिण के राजमहलो के समान मन्दिरोके वर्णन सुन सुनकर उन्हे एक बार अपनी आखो से देखने और वहा की सस्कृति को जानने की अभिलाषा तीव्र हो उठी थी । मेरा जीवन भी अब ६८ की देहरी पर पहुँच चुकाथा । इसलिए अब अधिक सोच विचार न करके मैने पहिले मुन्ना से और फिर पत्नी से सलाह की और चलने की ठान ली ।

पर तु इन दिनो दो उपन्यास मेरे सामने फले हुए थे । एक 'पत्थर युग के दो बुत'तो मे राजपाल एण्ड सन्स के लिए लिख हीरहा था कि इसी समय एक अन्य प्रकाशक ने आकर अपनी पाकेट बुक सीरीज के लिए लघु उपन्यास की जबरदस्त माग की । मैने टालना चाहा पर वे मेरी शक्ति की दुहाई देने लगे, मेरे हीने हवाले कुछ नही सुने और मुझसे एक सप्ताह बाद उपन्यास देने का वायदा कराकर चले गए । मुझे भी दक्षिण यात्रा के लिए रुपयो की जरूरत थी, इसलिए मैने हा भर दी । उनके जातही मैने दूसरे उपन्यास का ताना बाना तयार किया और लिखने लगा । इसका नाम मैने रखा 'बिना चिराग का शहर' । अब लीजिए,'पत्थर युग के दो बुत'और बिना चिराग का शहर' ये दो उपन्यास मेरी मेज पर फल गए और मेरी दक्षिण यात्रा सातवें दिन आरम्भ होने का प्रोग्राम भी बन गया । पत्नी से सब तयारियाँ करने को कह, मे अपने कागजो मे डूब गया । चौथे दिन मैने 'पत्थर युग के दो बुत' तयार करके राजपाल को दे दिया और उसके बाद तीसरे दिन बिना चिरागका शहर पूरा करके दूसरे प्रकाशक के हवाले किया । रुपए जेबमे डाले और सब झझटो को दिल्लीमे छोड मुन्ना से गप्पे लडाता हुआ बालक बन मद्रास की रेल मे जा बैठा । मेरी रेल फक फक करके चलदी । मे सब चिन्ताओ से

रोह के उपयुक्त तो कदापि न था । तब उसका उत्तर मुझे देना पड़ा और वसे ही कड शब्दो मे कहना पड़ा कि विवाह ब ान नही है । आज की स्त्री जीवन सगिनी है और इसमे देश पर जूझ मरने की दुगनी शक्ति और प्रेरणा मिलनी चाहिए । अच्छा खासा न्विवेट होगया यह । बस विवाह समारोह समाप्त हुआ । वहा स उठकर हम लोग भोजन के लिए वही पक्ति बना बठ गए । पक्ति म बराती घराती सभी थ यहा तक कि दूल्हा के साथ दुल्हिन भी पक्ति मे बठी थी । घूघट और पर्दे का कोई प्रश्न ही न था ।

दूसरे दिन सुबह जब हमारी माट तीन आदमियो की बारात विदा हो रही थी और सामान तागो पर लद गया था, हमार साथ सभ्यतापूर्ण मजाक किया गया । एक थाल मे कुछ मिष्टान्न के टुकडे रखकर लाए गए और अनुरोध किया गया कि जाने से प्रथम मुह मीठा कर लीजिए । थाल म कुछ बर्फियो के टुकडे व कुछ पेडे थे । बर्फी मावा रंग थी,पर पडे असाधारण रूप से बनाए गए थे । ऐसा प्रतीत होता था बहुत ही उत्तम मावे के बने है । महात्मा भगवानदीन न बर्फी का एक टुकडा उठाकर मुह मे दिया । मैने पेडा उठाया । महात्मा जी मज म बर्फी खाकर हस रह थ,जबकि मेरे मुह म मैदा और रुई भर गई थी । अच्छा मजाक रहा ।

हम चले तो रेल चलते ही दुलहिन ने खाने की टोकरी खोली और हमसे कहा—आप लोग भोजनकर लीजिए फिर ठण्डा हो जायगा । और उसने चिर अभ्यस्त गृहिणी की भाति गर्म गर्म पूरिया और तरकारी मिठाई हमारे आगे परोस दी,आग्रहपूर्वक परोसती रही । नई वधू का सकोच वहा कोसो न था । अपने चालीस साल प्रथम नवपरिणीता दुलहिन का यह व्यवहार उस अद्भुत विवाह से भी अद्भुत था ।

वही भगवती देवी अब वृद्धा हो चुकीहै । सारे बाल सफेद और दात सब गायब । पुत्र पुत्रियो की माता और पुत्र वधुओ की सास । मै जानता हू उस तपस्विनी ने अपनी गृहस्थी म तप तपा है । मने गतवर्ष ही मसूरी म चालीस साल पूर्व की उसी भगवती के दर्शन किए थ । जब द्र से मिलने गया था । भगवती जी क हाथ की हड्डी टूट गई थी । हाथ प्लास्टर म था । एम०एस० बी० पास बटी आई घूम कर, दो जन और भी साथ थ । देखा तो बिगड पडी—'मा,यह क्या हो रहाहै चाय तैयार नही हुइ,मेरा सिनमा का प्रोग्राम था,समय अब कहा रहा ?' उसने अपनी कलाई की घडी पर दृष्टि दी । भगवती उठी और – अभी चाय देती हूँ, कहकर रसोई घर म घुस गइ । एक आसू मेरी आख मे आया था मा और बटी को देखकर । अब हसी आ रही है मा और बेटी के व्याह की याद करके । कितना अन्तर था मा और बेटी म और उनके विवाह मे ?

देवताओ के देश मे

दिसम्बर १९५९ म मद्रास म 'आल इंडिया राइटर्स कान्फ्रेंस' हो रही थी । इसका निमन्त्रण मुझे भी मिला था । मने उसे स्वीकार कर सपत्नीक उधर जाने का

प्रोग्राम बनाया ।

दक्षिण यात्रा की मेरे मन मे चिर अभिलाषा थी । कहिए मन १९३२ से ही ऐसी यात्रा का प्रोग्राम बन रहा था । १९३२ या ३३ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास के कुछ कार्यकर्त्ता और विद्यार्थीगण दिल्ली भ्रमणार्थ आए थे । उनके साथ सत्यनारायण जी भी थे जिनके अनथक परिश्रम से दक्षिण भारत में यह संस्था हिन्दी का काम कर रही थी । अपने दल के साथ वे मुझ से भेंट करने के लिए आए । साहित्य चर्चा के बाद सत्यनारायणजी ने मुझसे अनुरोध किया कि मै दक्षिण के हिन्दी केन्द्रो मे आकर कुछ भाषण करूँ । जब मैने उन्हे दक्षिण यात्राकी अपनी इच्छा भी बताई तो उन्होने उसका सब प्रबन्ध करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया । इसके बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा उत्तर भारतीय विद्वानो के यात्रीमण्डल मे सम्मिलित होकर दक्षिण भारत चलने का निमन्त्रण भी मुझे मिला । परन्तु मै ऐसा फसा रहा कि उधर जा ही नही सका । अलबत्ता कईबार मै दक्षिण हैदराबाद अपने मित्र कप्टन सूर्य प्रताप से मिलने जाता रहा, परन्तु हैदराबाद से आगे दक्षिण मे बढ ही नही सका ।

दक्षिण भारत के विशाल देवमन्दिर मेरे आकर्षण के विषय थे । दक्षिण के राजमहलो के समान मन्दिरोके वर्णन सुन सुनकर उन्हे एक बार अपनी आखो से देखने और वहा की संस्कृति को जानने की अभिलाषा तीव्र हो उठी थी । मेरा जीवन भी अब ६८ की देहरी पर पहुँच चुकाथा । इसलिए अब अधिक सोच विचार न करके मैने पहिले मुन्ना से और फिर पत्नी से सलाह की और चलने की ठान ली ।

परन्तु इन दिनो दो उपन्यास मेरे सामने फले हुए थे । एक 'पत्थर युग के दो बुत'तो मै राजपाल एण्ड सन्स के लिए लिख हीरहा था कि इसी समय एक अन्य प्रकाशक ने आकर अपनी पाकेट बुक सीरीज के लिए लघु उपन्यास की जबरदस्त माग की । मैने टालना चाहा पर वे मेरी शक्ति की दुहाई देने लगे, मेरे हीले हवाले कुछ नही सुने और मुझसे एक सप्ताह बाद उपन्यास देने का वायदा कराकर चले गए । मुझे भी दक्षिण यात्रा के लिए रुपयो की जरूरत थी, इसलिए मैने हा भर दी । उनके जातेही मैने दूसरे उपन्यास का ताना बाना तयार किया और लिखने लगा । इसका नाम मैने रखा 'बिना चिराग का शहर' । अब लीजिए,'पत्थर युग के दो बुत'और बिना चिराग का शहर' ये दो उपन्यास मेरी मेज पर फल गए और मेरी दक्षिण यात्रा सातवें दिन आरम्भ होने का प्रोग्राम भी बन गया । पत्नी से सब तयारिया करने को कह, मै अपने कागजो मे डूब गया । चौथे दिन मैने 'पत्थर युग के दो बुत' तयार करके राजपाल को दे दिया और उसके बाद तीसरे दिन'बिना चिरागका शहर पूरा करके दूसरे प्रकाशक के हवाले किया । रुपए जेबमे डाले और सब झझटो को दिल्लीमे छोड मुन्ना से गप्पे लडाता हुआ बालक बन मद्रास की रेल मे जा बठा । मेरी रेल फक फक करके चलदी । मै सब चिन्ताओ से

मुक्त था। दक्षिण यात्रा में कहां कहां घूमना होगा, उसकी सूची मुन्ना से पूछकर और रेलवे टाइमटेबील में देख देख कर मै बनाता जा रहा था।

भारत के दक्षिणाचल को मै दक्षिणाचल का देश कहा करता हूं। बहुत दिन से मेरी अभिलाषा भारत के दक्षिणाचल को देखने की थी, परन्तु स्वास्थ्य और अनवकाश के कारण, ऐसा अवसर नही प्राप्त हुआ, उस समय दिल्ली में बड़ी ठण्ड थी और अब मै गर्मी की भांति सर्दी को भी सहन नहीं कर पाता था। दक्षिण में ठण्ड कम है, यह मुझे ज्ञात था। सो मै पत्नी और पुत्री के साथ चल ही दिया। पूरे ४८ घण्टे की लम्बी थका देने वाली यात्रा थी। परन्तु ज्योंही दक्षिण की भूमि का सूर्योदय देखा, यात्रा की सब थकान दूर हो गई। वह एक प्रभावशाली दृश्य था। अभी उषा का उदय हुआ था और बेजवाडा का भव्य नगर सम्मुख था। दूर पर चारों ओर छोटी छोटी पहाड़ियां, सहस्त्रों बिजली बत्तियों का आलोक और कृष्णा नदी की सुषमा, जिस ने दक्षिण के इस नगर के सौंदर्य को चार चांद लगा दिए हैं। दूर तक फैले हुए प्रशस्त समतल मैदानों में लहलहाते खेत, बीच बीच में ताड़–खजूर, नारियल की सघन वृक्षावलियाँ झुटपुटे के धूमिल प्रकाश में बड़ी सुन्दर लग रही थी। मैं तो यहां तक कह सकता हूँ कि ऐसा सुन्दर प्रभात मैंने पहिले नहीं देखा था।

सूर्योदय होता गया, और दक्षिण भूमि की सुषमा प्रकट होती गई। रेलगाडी अपनी चाल चल रही थी। और एक के बाद दूसरे लुभावने दृश्य सम्मुख आते जाते थे। बीच बीचमे छोटे छोटे गांव जिनमें कच्ची दीवारों पर ताड़पत्रों से या घास से छाए हुए छप्पर, प्रांगणमें एकाध नारियल का वृक्ष, कहीं कहीं चरते हुए पशुओं के झुण्ड और उन के बीच कृष्णवर्णी किन्तु धवल वेशधारी ग्रामीण कृषक। निःसन्देह यह दरिद्रवर्ग है, परन्तु जैसे उन के घर बार साफ सुथरे है, वैसे उन के वस्त्र भी। वस्त्र शरीर पर थोड़े ही है, पर स्वच्छ है। ऐसा प्रतीत हुआ कि स्वच्छता भी दक्षिण की एक सांस्कृतिक वस्तु है।

मद्रास पहुंच कर दक्षिण की भव्यता के भी दर्शन हुए। यह प्राचीन दक्षिणी सभ्यता का एक प्रतीक नगर है। कर्नाटक सगीत, भरत नाट्यम्, और हस्तकौशल कला का एक केन्द्र है। यहां दक्षिण के भव्य स्थापत्य के बहुमूल्य नमूने दीख पड़ते है। प्राचीन मन्दिरों, मूर्तियों का अथाह खजाना इस दक्षिणाचल मे है। प्रत्येक मूर्ति अतीत की कहानियां वर्णित करती हुई सी प्रतीत होती है। मद्रास नगर वास्तव में दक्षिण का द्वार है। हिन्दी केन्द्र 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारसभा' मद्रास का एक सब प्रधान आधुनिक सांस्कृतिक केन्द्र है। इस की स्थापना गांधी जी ने सन् १९१९ में की थी।

नर्मदा तथा विन्ध्याचल का दक्षिण भूभाग प्राचीन कालसे दक्षिणापथ कहलाता आ रहा है। लगभग पांच लाख वर्ग मील के इस भूभाग मे तेरह चौदह करोड़ मनुष्य

बसते हैं। सामाजिक सांस्कृतिक और लौकिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से यह भूभाग भाषा और साहित्य मे अत्यन्त प्रगतिशील है। इस समूचे भूभाग मे पाच प्रधान भाषाए बोली जाती है। पश्चिम समुद्र से परिवेष्टित भूभाग, जो लगभग सवा लाख वर्गमील मे विस्तृत है, महाराष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध है, जहा की भाषा मराठी है। इतना ही बडा प्रदेश तलगाना है जो पूर्व समुद्र बगाल की खाडी से परिवेष्ठित है। इन दोनो प्रान्तो मे से प्रत्येक की आबादी साढे तीन करोड के लगभग है तथा इन दोनाके दक्षिण का हिस्सा तीन प्रदेशो मे बँटा हुआ है। जो क्रमश तमिलनाड, कनाटक, तथा केरल के नाम से प्रसिद्ध है। दोनो प्रान्तो की आबादी पाच करोड के लगभग है तथा इस भूभागमे तामिल, मलयालम तथा कन्नड भाषाए बोली जाती हैं।

भाषाई गठन तथा सारूप्यता की दृष्टि से महाराष्ट्र की भाषा मराठी उत्तर भारतीय भाषाओ से अधिक मेल खाती है। खासकर उस की लिपि तो देवनागरी ही है। तलगू तामिल कन्नड और मलयालम द्रविड भाषाए कहलाती है। ये भाषाए अति प्राचीन सुसम्पन्न तथा साहित्य से परिपूर्ण है। इसलिए इन प्रदेशो के निवासी अपनी भाषाओ के प्रति प्रगाढ प्रेम और आसक्ति रखते है। प्राचीन काल म इन प्रदेशो मे सस्कृत एक समन्वय भाषा थी। वह न केवल दक्षिण की ही समन्वयमूलक भाषा थी अपितु उत्तर भारत से भी दक्षिणी सस्कृति का समन्वय सस्कृत भाषा के द्वारा ही होता था। तथा सस्कृत के माध्यम ही से उत्तर भारत मे दक्षिण का हिन्दू धर्म गया।

आज उत्तर भारत का जो हिन्दू धम है—वह प्राचीन आर्यो का वदिक धर्म नही है। दक्षिण से गया हुआ हिन्दूधम है जिसके प्रवतक शकराचाय थे। यद्यपि उससे प्रथम ही गुप्तो मौर्यों तथा उत्तरकालीन मिश्रित भारतीय राजाओ ने ही वदिक धम को वतमान पौराणिक हिन्दू रूप दे दिया था। परन्तु उसे कुछ शुद्ध त्रिदेवमूलक हिन्दू धम का स्वरूप शकर के बाद ही मिला। शकर ने ही वेदो के स्थान पर उपनिषद को श्रुति, गीता को स्मृति और वेदान्त को समीक्षा ग्रन्थ स्वीकार कर प्रस्थान-त्रयी की स्थापना की थी। उसके बाद दक्षिण से धमकर्मों का अथक प्रवाह चलता ही रहा। रामानुजाचाय, मध्वाचाय, निम्बार्काचाय, बल्लभाचाय और रामानन्द स्वामी ने वैष्णव धम की परम्परा उत्तर भारत मे कायम की। यह सब काय सस्कृत भाषा ही के द्वारा हुआ। दक्षिण भारत के ये आचाय यदि सस्कृत भाषा को न अपनाते तो आज उत्तर भारत मे हिन्दू धम का यह स्वरूप पनपता ही नही, जिसने आर्यों के प्राचीन वैदिक धम को परास्त कर दिया था। इस प्रकार सस्कृत के माध्यम से उत्तर भारत ने दक्षिण का हिन्दू धम अपना कर अपना स्वतन्त्र धम साहित्य बना लिया और उस मे इस बात का कोई चिह्न शेष नही रह गया कि वह दक्षिण से गया हुआ धम था। इसी से दक्षिणी भाषाओ से उत्तरीय भाषाओ का अभिन्न सम्पर्क स्थापित नही हो पाया, तथा दक्षिण के हिन्दू धम

को अपना कर भी उत्तरी भारत सांस्कृतिक रूप में दक्षिण भारत से पृथक ही रहा।

परन्तु अब जब भारत में राष्ट्रीयता का सर्वोदय हुआ तो जन सामान्य से सम्बन्धित एक लोक भाषा को सामान्य भाषा के तौर पर भारत भर में व्याप्त करने का कठिन प्रश्न आया। जिसका अधिकतर जटिल स्वरूप दक्षिण की भाषाओं से सम्बन्धित था। केवल भाषा के ही मूल प्रश्न को ले कर वैदिक काल से ले कर अब तक भी दक्षिण उत्तर से पृथक रहता आया था। अब राजनीतिक एकत्व का प्रश्न न था, सांस्कृतिक एकत्व का प्रश्न था, इस लिए उत्तर दक्षिण की भाषा समस्या सुलझने की जरूरत पड़ी। जिस पर गांधीजी का भारत में आते ही, सन् १९१८ में ज्यों ही उन्होंने भारत नेतृत्व ग्रहण किया, ध्यान आकर्षित हुआ और उन्हीं की दिव्य दृष्टि ने यह चमत्कार प्रदर्शित किया कि उत्तर की भाषा हिंदी ने विन्ध्या को लांघकर नर्मदा को पार किया, और दक्षिण में जहां की मूल भाषाएं हिंदी की अपेक्षा अत्यधिक प्रौढ़ और सम्पन्न थीं, हिंदी ने स्थापित हो कर उत्तर दक्षिण भारत का समन्वय करना आरम्भ कर दिया।

आज उस बात को ३७ वर्ष हो गए। इस ३७ वर्षों के काल में हिंदी ने जो कार्य किया है उसने सहस्राब्दियों की विचार तथा आचार धारा को बदल दिया है। आज यह कार्य दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा कर रही है। इस सभा ने देश की सामूहिक एकता को पुष्ट करने वाली राष्ट्रभाषा, साम्प्रदायिक एकता को दृढ़ बनाने वाली हिन्दुस्तानी, दक्षिणी भाषा तथा साहित्य को समन्वित करने वाली हिन्दी के आन्दोलनों को आश्चर्यजनक सफलता से सचलित किया है।

भारत के दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा दक्षिण भारत अधिक साक्षर है। कहीं कहीं तो साक्षरता ८० प्रतिशत तक पहुँची है। इस प्रकार अपनी भाषा को प्रेम करने वाले लोग भी हिंदी को अपना रहे हैं। आज दक्षिण में हिंदी भाषाभाषी तथा हिंदी में साक्षरों की संख्या लाखों में है। तथा हजारों ही जन हिंदी साहित्य के प्रेमी और ज्ञाता भी आज दक्षिणी भारत में हैं। सभा के उपाधिधारी १४,००० के लगभग हैं और उनमें ५०० से अधिक विश्वविद्यालयों के उपाधिधारी हैं। जिन में हिन्दी के विद्वान बी० ए० तथा एम० ए० तथा भाषा प्रवीण भी सम्मिलित हैं। हिन्दी के लेखकों तथा पत्रकारों की संख्या भी बढ़ रही है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सभा के कार्य में जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त है, तथा दक्षिण भारत की भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों की मान्यताएँ भी उसकी परीक्षाओं को प्राप्त है। सभा के ५ हजार के लगभग कार्यकर्त्ता हैं जिन्हें सभा ही ने शिक्षित किया है, दक्षिण भारत के कोने कोने में फैले हुए हैं तथा देश के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में हाथ बटा रहे हैं। सभा की प्रादेशिक संस्थाएं तैलंगानी, आन्ध्र कर्नाटक तमिलनाड और केरल राज्यों में स्थापित होकर प्रचार कार्य कर रही हैं।

सभा के साढे पाच सो प्रचार केन्द्र हे, तथा ६०० के ऊपर स्थापित सस्थाए है। कुल मिलकर ६० लाख रुपया सभाने खच किया हे। तथा सभाकी सम्पत्ति २० लाख रुपया हे। सबसे बडी बात यह कि मस्था गाधीजी द्वारा स्थापित सवप्रथम मस्था है। मभाके शिक्षण के अ तगत ५० लाख से अधिक विद्यार्थी शामिल हो चुके हे, तथा सभा के प्रकाशनो की सख्या भो २०० तक पहुच चुकी है। ६ लाख से अधिक परीक्षार्थिया ने परीक्षाए दी हे तथा सभाके अपने प्रेमसे प्रकाशना की १ करोड प्रतिया छप चुकी है। सभा के प्रेस मे इस समय १० भाषाओ मे छपाई की सुविधा है। इस मभा के महत् काय के सचालन का श्रेय सभा के प्रधान पद्मश्री सत्यनारायण ओर उनके सहयोगियो को है जो सम्पूण भारत के श्रद्धा तथा आशीवाद के पात्र हे। देवदास गाधी के प्रारम्भिक प्रयासो का जो उन्होने गाधी जी के आदेश पर इस सस्था के लिए किए, सास्कृतिक मूल्य महाराज अशोक के पुत्र महेन्द्र के लका प्रयाण की अपेक्षा कम नही है।

दक्षिण की सगीत ओर नत्यकला भी उत्तर भारत से सवथा भिन्न ह। कहना चाहिए कि भारतीय सगीन उत्तरापथ ओर दक्षिणापथ को दो भागो मे विभाजित करता है। दक्षिण का भाषावार विभाजन तो चिरकाल से है, पर तु उसका सगीत तो सास्कृतिक एकता का सन्देश सुनाता है।

दक्षिण की वत्तमान सगीत पद्धतियो की परम्परा पल्वी के समय से आरम्भ होती है। जब आषवार ओर नाकनमार अपन श्रुतिगीत गाते थे, ओर प्रादेशिक रूप मे विजयनगरम ओर हैदराबाद से ले कर तिरुवनन्तपुरम ओर एट्टयपुरम के बीच का क्षेत्र उससे प्रभावित हो कर उसका पोषक बन गया था।

नवी दशवी शताब्दियो मे जब उत्तर भारत विदेशी आक्रान्ताओ द्वारा दलित होने लगा तो उत्तर भारत की सस्कृति ने दक्षिण मे शरण ली तथा यहा की मूल सस्कृति से मिलकर उसके नवीन रूप का यहा विकास हुआ। इसलिए यदि देखा जाए तो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से केरल ओर तमिलनाड की सास्कृतिक परम्परा भारतवष भर मे एक खास प्रभाव रखती हे। तामिलनाड की अभिरुचि सदव कलाके प्रति कोमल भाव रखती आई है। कलाकार ओर आचायगण अपनी कला ओर पाण्डित्य के पोषण के लिए तमिलनाड ओर चोलुनाड के प्रति कृतज्ञ रह हे। सगीत के सम्बन्ध मे खास तोर पर यह बात है। कर्नाटक सगीत सम्राट त्यागया का वासस्थल चोलनाडु था ओर उन्होने अपनी रचनाओ मे चोलनाडु के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की हे।

दक्षिणी सस्कृति की विगत दो शताब्दियो से सगीत की सभी धाराए इसी ओर को अभिमुख होती गईं। भारतकी प्राय सभी सगीत पद्धतियो मे सगीत की इस प्रायोगिक सूक्ष्मता के लिए दक्षिण की पद्धति को आदर्श माना। तमिलनाड भारत भर मे सबसे अधिक सगीत मे रुचि रखता है, यह कहना अत्युक्ति नही हे। सस्कृत के प्रसिद्ध

को अपना कर भी उत्तरी भारत सांस्कृतिक रूप में दक्षिण भारत से पृथक ही रहा।

परन्तु अब जब भारत में राष्ट्रीयता का सर्वोदय हुआ तो जन सामान्य से सम्बन्धित एक लोक भाषा को सामान्य भाषा के तौर पर भारत भर में व्याप्त करने का कठिन प्रश्न आया। जिसका अधिकतर जटिल स्वरूप दक्षिण की भाषाओं से सम्बन्धित था। केवल भाषा के ही मूल प्रश्न को ले कर वैदिक काल से ले कर अब तक भी दक्षिण उत्तर से पृथक रहता आया था। अब राजनीतिक एकत्व का प्रश्न न था, सांस्कृतिक एकत्व का प्रश्न था, इस लिए उत्तर दक्षिण की भाषा समस्या सुलझने की जरूरत पड़ी। जिस पर गांधीजी का भारत में आते ही, सन् १९१८ में ज्यों ही उन्होंने भारत नेतृत्व ग्रहण किया, ध्यान आकर्षित हुआ और उन्ही की दिव्य दृष्टि ने यह चमत्कार प्रदर्शित किया कि उत्तर की भाषा हिंदी ने विन्ध्या को लांघकर नर्मदा को पार किया, और दक्षिण में जहां की मूल भाषाएं हिंदी की अपेक्षा अत्यधिक प्रौढ़ और सम्पन्न थीं, हिंदी ने स्थापित हो कर उत्तर दक्षिण भारत का समन्वय करना आरम्भ कर दिया।

आज उस बात को ३७ वर्ष हो गए। इस ३७ वर्षों के काल में हिंदी ने जो कार्य किया है उसने सहस्राब्दियों की विचार तथा आचार धारा को बदल दिया है। आज यह कार्य दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा कर रही है। इस सभा ने देश की सामूहिक एकता को पुष्ट करने वाली राष्ट्रभाषा, साम्प्रदायिक एकता को दृढ़ बनाने वाली हिन्दुस्तानी, दक्षिणी भाषा तथा साहित्य को समन्वित करने वाली हिन्दी के आन्दोलनों को आश्चर्यजनक सफलता में सञ्चालित किया है।

भारत के दूसरे प्रदेशों की अपेक्षा दक्षिण भारत अधिक साक्षर है। कहीं कहीं तो साक्षरता ८० प्रतिशत तक पहुंची है। इस प्रकार अपनी भाषा का प्रेम करने वाले लोग भी हिंदी को अपना रहे हैं। आज दक्षिण में हिंदी भाषाभाषी तथा हिंदी में साक्षरों की संख्या लाखों में है। तथा हजारों ही जन हिंदी साहित्य के प्रेमी और ज्ञाता भी आज दक्षिणी भारत में हैं। सभा के उपाधिधारी १४,००० के लगभग हैं और उनमें ५०० से अधिक विश्वविद्यालयों के उपाधिधारी हैं। जिन में हिंदी के विद्वान बी० ए० तथा एम० ए० तथा भाषा प्रवीण भी सम्मिलित हैं। हिन्दी के लेखकों तथा पत्रकारों की संख्या भी बढ़ रही है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सभा के कार्य में जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त है, तथा दक्षिण भारत की भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों की मान्यताएँ भी उसकी परीक्षाओं को प्राप्त हैं। सभा के ५ हजार के लगभग कार्यकर्त्ता हैं जिन्हें सभा ही ने शिक्षित किया है, दक्षिण भारत के कोने कोने में फैले हुए हैं तथा देश के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में हाथ बटा रहे हैं। सभा की प्रादेशिक संस्थाएं तैलंगानी, आन्ध्र कर्नाटक तमिलनाड और केरल राज्यों में स्थापित होकर प्रचार कार्य कर रही हैं।

सभा के साढे पाच सो प्रचार केन्द्र हे, तथा ६०० के ऊपर स्थापित सस्थाए है। कुल मिलकर ६० लाख रुपया सभाने खच किया हे। तथा सभाकी सम्पत्ति २० लाख रुपया हे। सबसे बडी बात यह कि सस्था गाधीजी द्वारा स्थापित सवप्रथम सस्था है। सभाके शिक्षण के अ तगत ५० लाख से अधिक विद्यार्थी शामिल हो चुके हे, तथा सभा के प्रकाशना की सरया भो २०० तक पहुँच चुकी है। ६ लाख से अविक परीक्षार्थियो ने परीक्षाए दी हे तथा सभाके अपने प्रेससे प्रकाशनो की १ करोड प्रतिया छप चुकी हें। सभा के प्रेस मे इस समय १० भाषाओ मे छपाई की सुविवा हे। इस सभा के म्हत् काय के सचालन का श्रय सभा के प्रवान पद्मश्री सत्यनारायण ओर उनके सहयोगियो को है जो सम्पूण भारत के श्रद्धा तथा आशीर्वाद के पात्र है। देवदास गाधी के प्रारम्भिक प्रयासा का जो उन्होने गावी जी के आदेश पर इस सस्था के लिए किए, साम्कृतिक मूल्य महाराज अशोक के पुत्र महेन्द्र के लका प्रयाण की अपक्षा कम नही ह।

दक्षिण की सगीत ओर नत्यकला भी उत्तर भारत से सवथा भिन्न ह। कहना चाहिए कि भारतीय सगीत उत्तरापथ ओर दक्षिणापथ को दो भागो मे विभाजित करता है। दक्षिण का भापावार विभाजन तो चिरकाल से हे, पर तु उसका सगीत तो सास्कृतिक एकता का सन्देश सुनाता है।

दक्षिण की वत्तमान सगीत पद्धतियो की परम्परा पल्वी के समय से आरम्भ होती है। जब आषवार ओर नाकनमार अपने श्रुतिगीत गाते थे, ओर प्रादेशिक रूप मे विजयनगरम ओर हैदराबाद मे ले कर तिरुवनन्तपुरम ओर एट्टयपुरम के बीच का क्षेत्र उससे प्रभावित हो कर उसका पोषक बन गया था।

नवी दशवी शताब्दियो मे जब उत्तर भारत विदेशी आक्रान्ताओ द्वारा दलित होने लगा तो उत्तर भारत की सस्कृति ने दक्षिण मे शरण ली तथा यहा की मूल सस्कृति से मिलकर उसके नवीन रूप का यहा विकास हुआ। इसलिए यदि देखा जाए ता ऐतिहासिक दृष्टिकोण से केरल ओर तमिलनाड की सास्कृतिक परम्परा भारतवष भर मे एक खास प्रभाव रखती हे। तामिलनाड की अभिरुचि सदव कलाके प्रति कोमल भाव रखती आई है। कलाकार ओर आचायगण अपनी कला ओर पाण्डित्य के पोषण के लिए तमिलनाड ओर चोलुनाड के प्रति कृतज्ञ रहे हे। सगीत के सम्बन्ध मे खास तौर पर यह बात हे। कर्नाटक सगीत सम्राट त्यागया का वासस्थल चीलनाडु था ओर उन्होने अपनी रचनाओ मे चीलनाडु के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की हे।

दक्षिणी सस्कृति की विगत दो शताब्दियो से सगीत की सभी धाराए इसी ओर को अभिमुख होती गईं। भारतकी प्राय सभी सगीत पद्धतियो मे सगीत की इस प्रायोगिक सूक्ष्मता के लिए दक्षिण की पद्धति को आदर्श माना। तमिलनाड भारत भर मे सबसे अविक सगीत मे रुचि रखता है, यह कहना अत्युक्ति नही है। सस्कृत के प्रसिद्ध

कवि राजशेखर ने नवी शताब्दी मे तमिलनाड की उस प्रगति पर आश्चर्य प्रकट किया था। पुरन्दरदास के कन्नड पद और त्यागराज के तेलगु पद और कृतिया तिरुवनन्तपुरम से स्वाति तिरुनाल महाराजा की रचनाओ ने एक ऐसी परम्परा को जन्म दिया जो भारतीय सस्कृति को सूत्रबद्ध करने मे बहुमूल्य है। उसने भाषाओ की सीमा का तोड कर उत्तर दक्षिण को एक सूत्र म बाधा है।

कर्नाटक सगीत लोकसगीत के स्रोतो का प्रवाह है। 'तेवारम' और 'कीतनो' की परम्परा हमे अति प्राचीन आदिवासियो तक ले जाती है।

सगीत के साथ नाट्य का सम्बन्ध भी प्राचीन है। इसी प्रकार शैली और पद्धति मे गेय और वाद्य सगीत का भी महत्त्व एक दूसरे पर प्रभाव रखता रहा है। वीणा सैद्धान्तिक और प्रायोगिक सगीत के क्षेत्रो मे वाद्यो की रानी बनकर आई। नागस्वर दक्षिण का एक वाद्य विशेष है, जिसका प्रभाव आधुनिक काल मे बहुत है। यह कहा जा सकता है कि दक्षिण मे सगीत शास्त्र का विवेचन प्राचीन भारत की भाति पूर्णरूप से विकसित है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दक्षिण की यह महती कला भारत के अन्य प्रान्तो की भाति राजाश्रय से हट कर लोकाश्रय मे बिना हानि के आती जा रही है। दक्षिण मे तो मैने आकर यह देखा कि सगीत जनता की सम्पत्ति बनता जा रहा है। सबसे बढकर बात यह कि दक्षिण मे सगीत और नृत्य दोनो ही धर्मविक्षित हैं। सगीत और नृत्य भी धार्मिक कथाओ पर आधारित है। इसका प्रभाव यह हुआ है कि दर्शक के मन मे विलास की कुत्सा नही आ पाती और सगीत नृत्य एक शुद्ध धर्मानुष्ठान प्रतीत होता है।

मद्रास दक्षिण का द्वार है। यहा से दक्षिण मे प्रवेश होता है, मद्रास मे मैने दक्षिण का आतिथ्य, दक्षिण का भोजन और दक्षिण की भाषाओ के साथ दक्षिण का नृत्य सगीत देखा। दक्षिण की वह वस्तु जिसके कारण मै उसे देवताओ का देश कहता हू दखने का भी अवसर आया। वह दक्षिण का विशाल देवालय, सबसे प्रथम मैने महाबलीपुरम मे देखा। महाबलीपुरम मद्रास से ४४ मील दक्षिण कोण मे है। अति शोभायमान समुद्र तट पर अवस्थित है। यहा समुद्र की सुषमा भी अनोखी है। यह बगाल की खाड़ी का ही एक भाग है। यही पर महाबलीपुरम की गुफाएँ हैं। पत्थर पर खुदाई के काम और मूर्तिया हे। कभी यह महाबलीपुरम पल्लव राजाओ का एक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह था, जो अब एक शान्त ग्राम के रूप मे रह गया है। यहा सात पैगोडा प्रसिद्ध है, जो सभी अत्यन्त प्रभावशाली खुदाई के काम से भरपूर है। इन पगोडाओ मे हम पल्लव राजाओ के काल का शिल्प, गृहनिर्माणकला और पत्थर खुदाई के कामो के उत्कृष्ट नमूने देख सकते है। जिन्होने ई० की छठी से आठवी शताब्दी के मध्य काल तक दक्षिण मे शासन किया था। यह कमाल की ही बात कहनी चाहिए कि महाबली

पुरम की प्रत्येक चट्टान को शिल्पी ने अपनी छनी गौर हथोडो से जीवन प्रदान किया है। यह तक्षण चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है। गुह-गृह मन्दिर, तटस्थ मन्दिर, शिलातक्षण और तलशिल्प। असुरमर्दिनी दुर्गा का महिषासुर मण्डप न एक जीवित तक्षण है। ऐसा ही वाराह मण्डपम भी है। गोवर्द्धन तथा पशुमण्डपन् भी देखने योग्य है। किन्तु जब हम गणेशरथ के दर्शन करते है तो मानव कृत एक विराट, किन्तु साथ ही उत्कृष्ट तक्षण और वास्तु के एक साथ ही दर्शन होते है। ऐसा ही अर्जुन का गोड है, जो ६० फुट लम्बा और ३० फुट ऊँचा है। समुद्र तट को छूता हुआ नट मन्दिर है, जिसके आसपास दो-तीन मन्दिर और है जिनके चरण सागर पखारता है।

मै मद्रास आल इण्डिया राइटस कानफरेस (अ भा लेखक सम्मेलन) के निमन्त्रण पर आया था। कानफरेसके कार्यकर्ता–प्रबन्धक तथा स्वागतकारिणीके अधिकारी सभी महापुरुष थे। महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रबन्धक पुरुषो की अपेक्षा महिलाओ का अधिक भाग था। खासकर भोजन का प्रबन्ध तो सर्वतोरूपेण महिलाओ के ही हाथ मे था। अतिथियो के निवास और उनकी सब सुख सुविधाए भी उन्ही के हाथो मे थी। जब एक अल्पवयस्का कुमारी ने मेरे ठहरने के स्थान पर मुझे पहुँचा कर शुद्ध सुसस्कृत अग्रेजी भाषा मे मुझ से गम्भीर मुद्रा मे कहा—'आप को कोई असुविधा हो तो आप कृपा कर मुझसे कहिए"—तो मुझे अनायास ही हसी आ गई। एक और प्रौढाकुमारी, जो अतिथि व्यवस्था मे मुख्य भाग ले रही थी—आश्चर्यजनक फुर्ती और तत्परतासे यहा वहा सर्वव्यापिनी नजर आ रही थी ठेठ अग्रेजो की भाति वह अग्रेजी मे अपने सभी भाव प्रकट करती थी। स्वागतकारिणी के जनरल सेक्रेटरी, का० ना० सुब्रह्मनयम, अध्यक्ष श्री एम० भक्तवत्सलम्, उपाध्यक्ष श्री डा० ए०एल० मुदालियर, श्रीमती रुक्मणीदेवी अरुडेल, श्री बी० एस० त्यागराज मुदालियर, श्री सी०आर० श्रीनिवासन श्री एस० ए० गोविन्दराजन, मन्त्री श्री कोडुमुडि राजगोपालन—श्री एस० सिवपाथा सुन्दरम् आदि बडे यत्न और लगन से कानफरेस को सफल बनाने मे तन मन से प्रयत्न शील थे। और इन सब महिला तथा महानुभावो के अथक् परिश्रम का ही यह फल था कि समारोह असाधारण भव्यता तथा सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। अतिथियो के तथा प्रतिनिधियो के सम्बन्ध मे मार्के की बात यह थी कि क्या निवास व्यवस्था, क्या भोजन, क्या सभा, सर्वत्र ही एक पारिवारिक आत्मीयता का वातावरण था।

परन्तु मेरे हृदय को सबसे अधिक वेदना यह देख कर हुई कि इस कानफरेस मे अग्रेजी का ही डका बज रहा था। अग्रेजी ही का सर्वत्र बोलबाला था। वेशभूषा मे सब भारतीय थे—सरल, उज्ज्वल भारतीय सर्वथा और जिह्वा पर अग्रेजी का धारा प्रवाह। निस्सदेह यह एक जबरदस्त कठिन समस्या है कि जहाँ भिन्न भिन्न देशके भाषा भाषी एकत्र हो, जो एक दूसरे की भाषा को न समझ सके—वहा एक समन्वय की

भाषा होनी चाहिए। पर वह समन्वय की भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती, कोई भारतीय भाषा ही हो सकती है। अब सन् १०।९५ तक परम यह था कि दक्षिणमें अंग्रेजी समन्वय की भाषा थी। केवल उत्तर भारत ही की बात नहीं दक्षिण के चार विभिन्न भाषा भाषी प्रान्त भी आपस में अंग्रेजी के माध्यम से ही भावों का आदान प्रदान करते थे। परन्तु आज जब अंग्रेज भारत को छोड गए तो अंग्रेजी को हम अपने लिए समन्वय भाषा कैसे रख सकते है। मुझे बडी आशा थी कि मैं दक्षिण में हिन्दी के उदीयमान स्वरूप को देखगा, पर यहा कानफरेंस के इस अंग्रेजी वातावरण को देखकर मेरी वह आशा धूल मे मिल गई और आतिथ्य में जो आत्मीयता और प्रेम वहा देखकर मेरा मन खिल रहा था—खिन्न हो गया।

परन्तु जब मैं अंग्रेजी के इस पारावार मे घबराया हुआ सा खडा था—तभी एक भद्र महिला दो तीन लडकियो को साथ लिए झपटती हुई आई, और उन्होंने बडी उत्सुकतासे हिन्दी भाषाम मेरा नाम पूछा और मेरा परिचय प्राप्त करनेके बाद जसे वह महिला और वे लडकिया गद्गद् हो गईं। बहुत स्थानो पर साहित्य समारोह मे जब मेरा जाना होता है तो लोग मुझे कुतूहल से देखते हैं। कभी अटपटे प्रश्न करते ही गद् गद् हो जाने की घटना तो मैंने यही देखी। महिला भी प्रबन्ध मे व्यस्त थी। जल्दी जल्दी मे उन्होंने मेरे साहित्य के सम्बन्ध मे दो चार शब्द कहे और कहा— अतिथियो की सूची मे आप का नाम देखते ही मैं भागी आई हू। दो लडकिया भी आप को देखने को बहुत उत्सुक है। हम सब आपकी रचना को पढते हैं। उसके बाद उन्होंने तत्परता से मेरी पत्नी को जलपान के लिए दो तीन लडकियो के साथ भेज दिया और मुझे वे घेर कर साथ ले गई। मेरे लिए वहीं काफी और नाश्ता मगा दिया गया। इसके बाद तो लडकियो का मेला लग गया और तब मैंने जाना—कि अब दक्षिण मे यह अंग्रेजीका महज लिफाफा ही रह गया है, दक्षिण की आत्मा मे हिन्दी बस चुकी है।

केवल यही बात नहीं कि विवश अंग्रेजी से काम लिया गया। वास्तव में हिन्दी विरोधी वातावरण ही उसे कहना चाहिए। क्योंकि हिन्दी के कोई भी स्थानीय कार्यकर्ता कानफरेंस मे उपस्थित न थे। यह भी ज्ञात हुआ कि उनकी जान-बूझकर उपेक्षा की गई और उनके सहयोग से इन्कार कर दिया गया। हिन्दी के आगत अतिथियो मे मेरे अतिरिक्त सर्वश्री अमृतराय, सच्चिदानन्द वात्स्यायन शिवदानसिंह चौहान तथा सोनरिक्सा दम्पति ही थे।

यहाँ आने से प्रथम ही भोजन और अन्य व्यवस्था के सम्बन्ध मे जानकारी स्वागतकारिणी से प्राप्त कर ली थी। उस मे एक बात यह भी थी कि भोजन निरामिष होगा या सामिष। भोजनागार के एक अंचल मे सामिष व्यवस्था भी थी। परन्तु यहा केले के पत्ता के स्थान पर प्लेटो की व्यवस्था थी। इस अंचल मे बंगाली प्रतिनिधि,

मुस्लिम प्रतिनिधि और रूसी प्रतिनिधि तथा कुछ अवसरवादी प्रतिनिधि भोजन करते थे। अवसरवादी वह जो मिल जाय तो मछली मुर्गी का भी आस्वादन कर लिया जाए।

मास्को से श्री चेलीशेव आए थे। उनके साथ दो सज्जन और भी थे। श्री चेलीशेव हिन्दी के अच्छे विद्यार्थी है। उन्होने छायावादी कविता का अच्छा अध्ययन किया है। पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, प्रसाद के वह बडे भक्त है। जब उन्होने सुना एक मे भी यहा आया हुआ हूँ, तो खोज कर आए, मेरी कहानियो तथा वशाली की नगर वधू की बहुत देर तक चर्चा करते रहे। मेरा भारतीय सस्कृति का इतिहास भी वह पढ चुके थे। उसकी उन्हे बहुत तलाश थी। पुस्तक प्रदशनीमे मेरा साहित्य उपस्थित था। वहा से मेने सस्कृति का इतिहास उन्हे दे दिया। हिन्दी भाषा के इतिहास की भी एक प्रति दी। मेने उन्हे जो पुस्तक पसन्द हो, उठा लेने को कहा तो बहुत प्रसन्न हुए। बच्चो जसी सरल प्रसन्नता थी वह। उन्होने ८ पुस्तके चुनली और बहुत बहुत बाते की। कान्फ्रेंस समारोह मे वह बहुत प्रतिनिधियो से मिले। महिलाओ ने तथा लडकियो ने तो उन्हे खिलौना बना लिया। परन्तु चमत्कारिक बात यह हुई कि वह हिन्दी बोलते थे और महिलाए हिन्दी न समझ कर अग्रजी बोलती थी, तब वह इस कठिनाई मे फस जाते थे कि क्या कारण है कि ये लोग हिन्दी नही समझती। दक्षिण भारत मे हिन्दी की व्यापकता की बात वह जानते थे, पर इस कानफरेस मे अग्रेजी की प्रमुखता देख वह हैरान हो रहे थे।

विवेचनीय विषयो की सूची प्रथम ही प्रतिनिधियो के पास भेज दी गई थी। और प्रतिनिधि अपनी अपनी रुचि के विषयो पर निबन्ध लिख लाए थे। विचारणीय विषय थे—१ भारतीय लेखन परम्परा और सम सामयिक लेखक, २ भारतीय भाषाओ मे मोलिक एकरूपता, ३- सामूहिक व्यवहार और वयक्तिक सम्पर्क, ४ भारतीय भाषाओ की सम सामयिक वैज्ञानिक और परिभाषिक व्यक्त सामर्थ्य, ५- प्रामाणिक लेखको से तुष्टिकरण, ६ राज्य और लेखक, ७ भारतीय उपन्यास कला, ८ भारतीय लेखकोका सम सामयिक झुकाव और ९ अनुवाद की कला। प्रत्येक प्रस्तावित विषयपर पृथक पृथक परिषदोमे मोखिक भाषण हुए तथा निबन्ध पढे गए। सवश्री काजी अब्दुल वदूद, श्री एस० आर० मागव व शर्मा, डा० एन० शेषाद्रिनाथन, एन०रघनाथन, श्री के० चन्द्रशेखरन, श्री श्रीनिवासन, डा० नगेन्द्र, श्री जे० जी० कोल, श्री अमृतराय, श्री बालकृष्ण राव, श्री पी० टी० भास्कर पन्निक्कर, श्री शकर राय, श्री पी० वाई० देशपाडे, श्री गोपीनाथ महन्त, श्री प्रो० एम० वी० मलकानी, श्री गोरीनाथ शास्त्री, श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन, श्री सुरेश जोशी, श्री माधो बी० अचल, श्री एस०पी०एस० योगी आदि ने परिषदो मे महत्वपूर्ण भाषण दिए तथा निबन्ध पढे। कुछ महिलाओ ने भी वाद विवाद मे भाग लिया।

भाषा होनी चाहिए। पर वह समन्वय की भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती, कोई भारतीय भाषा ही हो सकती है। अब से १०।१५ वर्ष पहले यह था कि दक्षिण में अंग्रेजी समन्वय की भाषा थी। केवल उत्तर भारत ही की बात नहीं — दक्षिण के चार विभिन्न भाषा भाषी प्रान्त भी आपस मे अंग्रेजी के माध्यम से ही भावो का आदान प्रदान करते थे। परन्तु आज जब अंग्रेज भारत को छोड गए तो अंग्रेजी को हम अपने लिए समन्वय भाषा कैसे रख सकते है। मुझे बडी आशा थी कि मै दक्षिण मे हिन्दी के उदीयमान स्वरूप को देखूंगा, पर यहां कानफरेन्स के इस अंग्रेजी वातावरण को देखकर मेरी वह आशा धूल मे मिल गई और आतिथ्य में जो आत्मीयता और प्रेम यहां देखकर मेरा मन खिल रहा था—खिन्न हो गया।

परन्तु जब मै अंग्रेजो के इस पारावार मे घबराया हुआ सा खडा था—तभी एक भद्र महिला दो तीन लडकियो को साथ लिए झपटती हुई आई, और उन्होने बडी उत्सुकतासे हिन्दी भाषामे मेरा नाम पूछा और मेरा परिचय प्राप्त करनेके बाद जैसे वह महिला और वे लडकियां गद्‌गद् हो गई। बहुत स्थानो पर साहित्य समारोह मे जब मेरा जाना होता है तो लोग मुझे कुतूहल से देखते है। कभी अटपट प्रश्न करते ही गद् गद् हो जाने की घटना तो मैने यही देखी। महिला भी प्रबन्ध मे व्यस्त थी। जल्दी जल्दी मे उन्होने मेरे साहित्य के सम्बन्ध मे दो चार शब्द कहे और कहा—अतिथियो की सूची मे आप का नाम देखते ही मै भागी आई हूँ। ये लडकियां भी आप को देखने को बहुत उत्सुक है। हम सब आपकी रचना का पठन है। इसके बाद उन्होने तत्परता से मेरी पत्नी को जलपान के लिए कैंटीन मे लडकियो के साथ भेज दिया और मुझे वे घेर कर साथ ले गई। मेरे लिए वही काफी और नाश्ता मगा दिया गया। इसके बाद तो लडकियो का मेला लग गया और तब मैने जाना— कि अब दक्षिण मे यह अंग्रेजीका महज लिफाफा ही रह गया है दक्षिण की आत्मा मे हिन्दी बस चुकी है।

केवल यही बात नही कि विवश अंग्रेजी से काम लिया गया। वास्तव मे हिन्दी विरोधी वातावरण ही उसे कहना चाहिए। क्योकि हिन्दी के कोई भी स्थानीय कार्यकर्ता कानफरेन्स मे उपस्थित न थे। यह भी ज्ञात हुआ कि उनकी जान-बूझकर उपेक्षा की गई और उनके सहयोग से इन्कार कर दिया गया। हिन्दी के आगत अतिथियो मे मेरे अतिरिक्त सर्वश्री अमृतराय, सच्चिदानन्द वात्स्यायन शिवदानसिंह चौहान तथा सोनरिक्सा दम्पति ही थे।

यहा आने से प्रथम ही भोजन और अन्य व्यवस्था के सम्बन्ध मे जानकारी स्वागतकारिणी से प्राप्त कर ली थी। उस मे एक बात यह भी थी कि भोजन निरामिष होगा या सामिष। भोजनागार के एक अंचल मे सामिष व्यवस्था भी थी। परन्तु यहा केले के पत्तो के स्थान पर प्लेटो की व्यवस्था थी। इस अंचल मे बंगाली प्रतिनिधि,

मुस्लिम प्रतिनिधि और रूमी प्रतिनिधि तथा कुछ अवसरवादी प्रतिनिधि भोजन करते थे। अवसरवादी वह जो मिल जाय तो मछली मुर्गी का भी आस्वादन कर लिया जाए।

मास्को से श्री चेलीशेव आए थे। उनके साथ दो सज्जन और भी थे। श्री चेलीशेव हिन्दी के अच्छे विद्यार्थी हे। उन्होने छायावादी कविता का अच्छा अ०ययन किया है। प त, निराला, महादेवी वर्मा, प्रसाद के वह बडे भक्त हे। जब उ होने सुना एक म भी यहा आया हुआ हूँ, तो खोज कर आए, मेरी कहानियो तथा वशाली की नगर वधू की बहुत देर तक चर्चा करते रहे। मेरा भारतीय सस्कृति का इतिहास भी वह पढ चुके थे। उसकी उ हे बहुत तलाश थी। पुस्तक प्रदशनीमे मेरा साहित्य उपस्थित था। वहा से मेने सस्कृति का इतिहास उ हे दे दिया। हिन्दी भाषा के इतिहास की भी एक प्रति दी। मेने उ हे जो पुस्तक पस द हो, उठा लेने को कहा तो बहुत प्रसन्न हुए। बच्चो जैसी सरल प्रसन्नता थी वह। उ होने ८ पुस्तके चुनली और बहुत बहुत बाते की। का फ्रे म समारोह मे वह बहुत प्रतिनिधियो से मिले। महिलाओ ने तथा लडकियो ने तो उ हे खिलौना बना लिया। परन्तु चमत्कारिक बात यह हुई कि वह हि दी बोलते थे और महिलाए हि दी न समझ कर अग्रजी बोलती थी, तब वह इस कठिनाइ मे फस जाते थ कि क्या कारण हे कि ये लोग हिन्दी नही समझती। दक्षिण भारत मे हि दी की व्यापकता की बात वह जानते थे, पर इस कानफरेस मे अग्रेजी की प्रमुखता देख वह हेरान हो रहे थे।

विवेचनीय विषयो की सूची प्रथम ही प्रतिनिधियो के पास भेज दी गई थी। और प्रतिनिधि अपनी अपनी रुचि के विषयो पर निब ध लिख लाए थे। विचारणीय विषय थे— १ भारतीय लेखन परम्परा और सम सामयिक लेखक, २ भारतीय भाषाओ मे मोलिक एकरूपता, ३ सामूहिक व्यवहार और वयक्तिक सम्पक, ४ भारतीय भाषाओ की सम सामयिक वैज्ञानिक और परिभाषिक व्यक्त सामथ्य, ५ प्रामाणिक लेखको से तुष्टिकरण, ६ राज्य और लेखक, ७ भारतीय उप यास कला, ८ भारतीय लेखकोका सम सामयिक झुकाव और ९ अनुवाद की कला। प्रत्येक प्रस्तावित विषयपर पृथक पृथक परिषदोमे मोखिक भाषण हुए तथा निबन्ध पढे गए। सवश्री काजी अब्दुल बदूद, श्री एस० आर० सागवन्व शर्मा, डा० एन० शेषाद्रिनाथन, एन०रघनाथन, श्री के० च द्रशेखरन, श्री श्रीनिवासन, डा० नगे द्र, श्री जे० जी० कोल, श्री अमृतराय, श्री बालकृष्ण राव, श्री पी० टी० भास्कर पन्निक्कर, श्री शकर राय, श्री पी० वाई० देशपाडे, श्री गोपीनाथ महन्त, श्री प्रो० एम० वी० मलकानी, श्री गोरीनाथ शास्त्री, श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन, श्री सुरेश जोशी, श्री माधो बी० अचल, श्री एस०पी०एस० योगी आदि ने परिषदो मे महत्वपूर्ण भाषण दिए तथा निब ध पढे। कुछ महिलाओ ने भी वाद विवाद मे भाग लिया।

कुछ विद्वानो ने महत्वपूर्ण निब ध भेजे—श्री आर०एम० देवीक ने तामिल साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डाला । डा० ना० सुब्रह्मायम ने आधुनिक तामिल साहित्य की विवेचना की । श्री पी० महादेव ने सुब्रह्मण्यम के कार्यों का वर्णन किया । श्री सिवनारायण राय ने आधुनिक भारतीय साहित्य पर विचार प्रकट किए । श्री च द्रशेखरन के निब ध मे रवी द्र साहित्य की चर्चा थी । इसी प्रकार अ य महत्वपूर्ण निबंध भी अनेक विद्वानो ने, जो यहा न आ सके थे, भेजे ।

स्वागताध्यक्ष श्री एम० भक्तवत्सलम् ने अपने सक्षिप्त स्वागत भाषण मे अतिथियो के प्रति समादर प्रकट करते हुए भिन्न भिन्न भारतीय तथा अभारतीय लेखको के एकत्र होने के महत्व का वर्णन किया । उन्होने प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य की गतिविधि पर प्रकाश डालते हुए सब भाषा भाषी लेखको के एक मच मे प्रविष्ट होने के महत्व पर जोर दिया । उ होने तामिलनाड के साहित्य की स्थिति पर भी प्रकाश डाला और दक्षिणी भाषाओ मे साहित्य की अर्वाचीन तथा प्राचीन जो परिपाटी थी उसकी पूर्वापर प्रसँग वर्णन किया, तथा भिन्न भिन्न भाषाभाषी लेखको से परस्पर विचार विनिमय का अनुरोध किया ।

कान्फ्रे स का अध्यक्षपद ताराशकर बनर्जी ने ग्रहण किया था । उ होने भी अपना भाषण अग्रेजी मे पढा । भाषण उनका ढीला ढाला था तथा दक्षिण की मेधा और तेज के सम्मुख फीका सा जॅच रहा था । अच्छा होता वह बगला मे भाषण देते और उसका अनुवाद तामिल या अग्रेजी मे प्रकाशित कर दिया जाता । अपने भाषण मे उ होने अपने चुनाव के लिए स्वागतकारिणी का आभार प्रकट किया और कहा कि बगाल मे अभी तक इस प्रकार की सब भाषा भाषी का फ्रे स नही हुई । यहा जो भारत के भिन्न भिन्न भाषा भाषी विद्वान या जिनके केवल नाम सुने जाते थे, व्यक्तिगत रूप मे एकत्र हुए है, यह प्रसन्नता का विषय है । उ होने अग्रेजी मे भाषण करने का खेद प्रकट किया और कहा—'मैने उसी भाषा मे रचनाए की है, जिसे मैने माता के मुह से सीखा था ।' उ होने कान्फ्रे स के महत्व की चर्चा करते हुए कहा कि इसका सबसे बडा महत्व उत्तर और दक्षिण की सीमाओ को तोडकर एक होने मे है ।

उत्तर और दक्षिण की भाव विभिन्नता का सकेत करते हुए उ होने बताया कि इस कान्फ्रेन्स मे उत्तर और दक्षिण सास्कृतिक रूप मे मिलकर एक हो रहे है, जो राजनीतिक दृष्टिकोण से भिन्न है । उन्होने सास्कृतिक मन्त्री हुमायू कबीर का हवाला देते हुए कहा कि हमने एशियन लेखको की का फ्रेन्स की चर्चा की थी, जो पूरी तौर पर सफल नही हुई । उन्होने ताशकन्द की एशियन राइटर्स का भी हवाला दिया और साहित्य के साथ राजनीतिक प्रचार का सकेत किया । इसके बाद कलकत्ते की सभा की चर्चा की और इस बात पर जोर दिया कि ऐसी परिषदो का उद्देश्य राजनीतिक

वातावरण से ऊपर रहना चाहिए और लेखक को पूरा विचार स्वातन्त्र्य प्राप्त होना चाहिए। उन्होने भाषण का उपसहार एक वदिक म त्र से किया।

१८ दिसम्बर को खुले अधिवेशन मे राजगोपालाचार्य ने एक सक्षिप्त भाषण मे समारोह की उपादेयता और इसके प्रति बडी प्रसन्नता प्रकट की।

कान्फ्रेन्स के कार्यक्रमो मे सास्कृतिक समारोह अति भव्य रहे। दूसरे दिन 'सीता स्वयवर' का मूक अभिनय कला क्षेत्र के द्वारा प्रस्तुत किया गया। गायन-वादन अप्रस्तुत रहता था और कलाकार केवल अपनी भाव भगिमा मे ही गायन मे प्रस्तुत प्रसग विषयो को प्रकट करता था। यह भाव भगिमा इतनी सजीव और प्रभावशाली थी कि उसकी जितनी ही प्रशसा की जाय, थोडी है। उत्तर भारत मे हमारे यहा रामलीलाएँ होती है, जिनमे बडी भारी धूमधाम और भीड भाड होती है। बहुत खर्चा भी होता है, पर इस अभिनय का जैसा सजीव प्रदर्शन होता है इसके सामने हमारी वह रामलीला एक सर्वथा भोडी सी बेतुकी उछल कूद प्रतीत होती है। सीता स्वयवर मे जो भाव अभिनय हुआ वह इतना सुन्दर था कि मै उसे शीघ्र नही भूल सकता। मै यह भी कह सकता हूँ कि मैने इससे प्रथम ऐसा अभिनय नही देखा था।

इससे प्रथम दिन 'नादस्वरम्' का कार्यक्रम था। जो कारुकुरीचि अरुणाचलम और मण्डली द्वारा प्रस्तुत किया गया था। प्राय मन्दिरो मे इसी नादस्वर का प्रयोग होता है। दो व्यक्ति बहुत बडी नफीरी के ढग का वाद्य बजाते है। अनुक्रम से और दो व्यक्ति दोनो सिरो पर बैठकर मृदग की भाति का किन्तु मृदगसे बहुत मजबूत वाद्य बजाते है। उगलियो की पूरी पोर मे बडे-बडे छल्ले पहन कर तथा सर्वथा नगे बैठकर वे यह वाद्य बजाते है। पहिले तो नगे बैठने पर आश्चर्य हुआ। पर शीघ्र ही पता लग गया कि उनका वेग इतना तीव्र होता है कि पाच मिनिट ही मे व्यक्ति पसीना पसीना हो जाता है। बडा गम्भीर नाद होता है, जसे बादल गरज रहे हो और उसका प्रभाव भी अद्भुत पडता है।

तीसरे दिन मद्रास की प्रसिद्ध नर्तकी कमला लक्ष्मनन का 'भरतनाट्यम्' हुआ। ये सम्भ्रान्त कुल की दोनो विदुषी बहने अपनी कला के लिए समूचे दक्षिण मे प्रसिद्ध है। उनका शुद्ध शास्त्रीय नृत्य कोरा नृत्य ही न था। नृत्य के साथ एक-एक पौराणिक धर्म गाथा का उसमे समावेश था। कला मे इस प्रकार धर्म भावना का समावेश एक महत्त्वपूर्ण बात थी। जिसका यहा अकस्मात ही दर्शन हुआ। दर्शको के मन मे विकार का पता न था। वे नृत्य की भाव-मुद्रा को सर्वथा एक धर्माभिनय रूप मे देख रहे थे। इस दिन तो हाल मे तिल धरने को स्थान न था और यह नृत्य भी ऐसा अद्भुत था कि जिसका दर्शन उत्तर भारत मे दुर्लभ है। हमारे रूसी प्रतिनिधि चेलिशेव भाव मुग्ध होकर यह भारतीय कला देख रहे थे। जब मैने पूछा—'कसा लगा?' तो वह कहने

लगे—स्वप्न था, जो खत्म हो गया।'

काचीपुरम (स्वर्णनगरी) की सुदर नगरी मद्रास से केवल ८७ मील के अन्तर पर है। उसकी गणना भारत की सात पवित्र नगरियों में है। यह पल्लव राजाओं की कभी राजधानी रही थी। यहा अनगिनत भव्य मन्दिर है, जिनके तक्षण अद्भुत है। काची के भीतर बाहर मंदिरो की माला गुथी हुई है। जो कोई दक्षिण भारत के अतुल तक्षण का चमत्कार देखना चाहे वह इस स्वर्णनगरी में आकर अपनी आखो का फल प्राप्त करे। सम्भवत भारत भर मे ऐसा भव्य तक्षण अन्यत्र नही है। सब से प्राचीन मन्दिर कलाशनाथका है,जो बारह सौ वर्षोसे भी अधिक पुराना है। पल्लववशीय राजाओ के काल के तक्षण और स्थापत्य का यह उत्कृष्ट नमूना है। यहापर पल्लवकालीन चित्रो का भी प्रदर्शन है। वकुण्ठ पारिमल मन्दिर एक दूसरा महत्वपूर्ण देवालय है, जो दक्षिण के पाच प्रसिद्ध मंदिरो मे एक है। यह विष्णु का मंदिर है। एकाम्बरेश्वरम् के मदिर का गोपुरम गगनस्पर्शी है, जो पल्लव शिल्प कौशल का अत्युत्तम नमूना है। इस मदिर मे चोल, पल्लव और विजयनगरम् साम्राज्यो के स्मृति अक उपस्थित है। मंदिर के सैकडो खम्भे और मण्डप है जो १०वी शताब्दी की करामात है। जो इतिहास और वास्तु शिल्प की दृष्टि से जवाहरात के मूल्य से कम नही है। काचीपुरम् आज भी एक महान तीर्थ है और दक्षिण भारतीय सस्कृति शिल्प,वास्तु और मूर्ति कला का अप्रतिम प्रतीक है। यहा की रेशमी साड़िया भारत भर मे प्रसिद्ध है। यह हैण्डलूम का भी सेटर है। परन्तु इस स्वर्गनगरी मे जूता चोर बहुत है। मदिर की पौर से मेरा नया कीमती जूता कोई देवता चुरा ले गया।

मद्रास मे अ० भा० लेखक सम्मेलन मे आयोजित पुस्तकों की प्रदर्शनी मे सर्वाधिक मेरा ध्यान तजोरके सरस्वती महल ग्रथागार की हस्तलिखित पाडुलिपियो ने आकर्षित किया। अनेक बहुमूल्य दुर्लभ पाडुलिपिया तो तालपत्रो पर लिखी थी ही, ऋग्वेद की एक सचित्र पाण्डुलिपि भी थी। एक महाराष्ट्र तरुण उस सग्रह को लेकर यहा आए थे। उनका नाम था श्री गणपतिराव। मेरा परिचय पाते ही उन्होने मुझसे मुलाकात की तथा उनसे सरस्वती महल ग्रथागार का जो परिचय मुझे मिला,उससे मै उस अलभ्य ग्रथागार को देखने के लिए अधीर हो उठा और मैने हर्षपूर्वक उनका निमत्रण स्वीकार कर लिया। श्री गणपति राव महाराष्ट्र तरुण है, परन्तु पीढियो से तजौर मे ही निवास करते है। मेरा आधा दिन सरस्वती महल ग्रथागार को देखने मे लगा। तजौर मे मुझे दक्षिण की महत्ता के दर्शन हुए, यह कहना अत्युक्ति नही मानी जानी चाहिए। प्रथम तो यहा के प्रसिद्ध वृहदेश्वर के दुर्गाकार मदिर को देखकर ही मै दग रह गया। ससार भर का सबसे बडा नन्दी यही है। यह बारह फुट ऊचा है और काले रग के एक ही पत्थर का बना हुआ है। ज्योर्तिलिंग भी इतना विशाल है कि भूमि पर खडे होकर

उसका ऊपरी सिरा नही छुआ जा सकता हे। किन्तु वृहदेश्वर से भी बहुत यहा के सरस्वती महल का वृहत्तम ग्रन्थागार है, जिसे विश्व के सबसे महान और बडे ग्रन्थागारो मे से एक कहा जा सकता हे। मद्रास मे डा० एनीबीसेट का जगत्प्रसिद्ध अडियार का ग्रन्थागार देखा था जिसकी भव्य इमारत मद्रास की एक दर्शनीय वस्तु हे। वहा एक लाख पुस्तको का सग्रह भी हे,जिनमे १० हजार के लगभग संस्कृत की हस्तलिखित पाण्डुलिपिया भी है। सच पूछा जाय तो अडियार का ग्रन्थागार डा० एनीबीसेट का अभूतपूर्व सास्कृतिक वृहत्काय हे।

तजोर चोल राजाओ की राजधानी थी। राजा कारिकाल चोल चोल साम्राज्य का सस्थापक था। उसने ईस्वी ५० से ६० तक राज्य किया। वह केवल योद्धा और विद्वान् ही न था, एक कुशल इजीनियर भी था। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उसने कोइलवेण्णि मे, जो तजौर से पूर्व कोई १५ मील पर हे, चेर और पाण्ड्य राजाओ को पराजित किया था तथा कावेरी पर बाध बधवाया था। 'कावेरि प्पूम्पट्टिणम्' को एक व्यवस्थित बन्दरगाह के रूपमे परिणत किया था, जो उस कालमे ससार भर के अन्तर्राष्ट्रीय सौदागरो का वाणिज्य केन्द्र तथा भारत का मुख बन गया था। 'पट्टिण पुप्पालै' ग्रथ, जो इसी राजा के राजत्व कालमे रचा गया,अन्यतम साहित्य ग्रथ हे। इसी राजा के राज्य काल के व्यापार वाणिज्य वैभव का चमत्कारिक वर्णन है। शिलप्पधिकारम् मे जो तामिल के पाच प्रसिद्ध काव्यो मे सर्वोपरि हे, लिखा हे कि इस तेजस्वी राजा ने उत्तर के मगध और अवन्ती के राज्यो को भी युद्ध मे पराजित किया था। चोलवश का उदय तामिल साहित्य के उदय का काल हे।

पाचवी शताब्दी मे पल्लवो ने चोल राज्य वश को पददलित किया और तब नौवी शताब्दी के मध्य तक उनके आधीन राजा होकर रहना पडा। विजयालम चोल ने ई० ८५०से ८७१ तक राज्य किया और तजौर को मुत्तरयर के हाथो से मुक्त कर प्रथम बार उसे अपनी राजधानी बनाया। विजयालम के पुत्र आदित्य ने श्रीपुरम्बियम मे एक निर्णायक युद्ध करके सदा के लिए पाण्ड्यो को पराभूत कर दिया। उसने सन् ६०७ई० तक राज्य किया। आगे इसी वश के राजराजन चोल ने अपने बाहुबल से समूचे मद्रास प्रान्त, मैसूर और लका पर भी अधिकार कर लिया तथा उसकी जल सेना ने मलाया के सघ राज्य, इडोचाइना और बर्मा को जीत कर महान चोल साम्राज्य की स्थापना की। इसी प्रतापी यशस्वी राजा ने तजोर का वृहदीश्वर का विशाल मदिर बनवाया, जो सर्वप्रथम पेटिपकोइल(बडा मन्दिर)कहलाता है। इसमे तत्कालीन वास्तु कला के प्रत्यक्ष दर्शन होते हे।

राजराजन ने ई० ६८५ से १०१४ तक राज्य किया, इस के बाद उस के पुत्र राजेन्द्र चोल ने १०१४ से १०४८ तक राज्य किया। राजेन्द्र चोल ने चोल साम्राज्य

की और भी वृद्धि की। उसने तंजौर के चोल साम्राज्य को समुद्र के उस पार तक फैला दिया। एक ओर उसके राज्य की सीमाएं उत्तर भारत की ओर, दूसरी ओर मलाया को छू रही थी। इसके बाद प्रतापी चोल सम्राटों ने ई० स० १२७९ तक शासन किया। इस वंश का अंतिम सम्राट राजेन्द्र तृतीय था। उसके बाद भी १४वीं शताब्दी के अंत तक अनेक सामंत अपने को चोल कह कर दक्षिण में शासन करते रहे। अंत में १५वीं शताब्दी के समाप्त होते न होते चोल मण्डल को विजयनगरम् साम्राज्य में मिला लिया गया। अब केवल तामिल साहित्य ही चोल साम्राज्यकी अमर विभूति रह गई।

विजयनगरम् साम्राज्य का प्रतिनिधि वंश आगे तंजौर नायक वंश के नाम से शासन करता रहा। इस वंश में सेवप्प्य नायक प्रमुख पुरुष था। उसने १५६० तक राज्य किया। इसी राजा के शासन काल में पुर्तगाली लोग नागपट्टणम में प्रथम बार आए। आगे इस वंश के अनेक वीर राजा हुए। विजयराघव इस वंश का अंतिम राजा था, जिसने १६३४ से १६७३ तक तंजौर पर राज्य किया, बाद में तंजौर बीजापुर शासन के आधीन हो गया। यह वह काल था कि जब पुर्तगाल-डेनिश और अंग्रेज लोग दक्षिण भारत में पैर जमा रहे थे। उधर उसके उत्तरी कोण पर छत्रपति शिवाजी अपना पसार कर रहे थे। अन्त में शिवाजी ने बीजापुर राज्य की जड़ खोखली कर दी। इस पर अवसर पा मदुरा के राजा ने तंजौरको अपने आधीन कर लिया। इस पर बीजापुर राज्य ने शिवाजी के भाई वेंकोजी को तंजौर भेजा। अनेक युद्धों के बाद वेंकोजी ने तंजोर को अधिकृत कर लिया और तंजौर में मराठा राज्य का श्रीगणेश हुआ।

वेंकोजी का नाम यहां एकोजी प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने ई० स० १६७६ से १६८३ तक राज्य किया। शिवाजी ने उस राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लेने की इच्छा भी की पर एकोजी ने स्वीकार नहीं किया। एकोजी को अनेक युद्ध करने पड़े, फिर भी उसने कला तथा साहित्य का बहुत विकास किया। एकोजी के तीन पुत्रों ने दक्षिण में तीन नए राज्यों की स्थापना की। यह काल यद्यपि लड़ाई झगड़े का काल रहा, तथापि कला कौशल की बहुत वृद्धि हुई। सन् १७३९ में महाराष्ट्र शासन खतम हुआ। इसके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी और कर्नाटकके नवाब संघर्ष करते रहे और तंजौर पर १७७६ तक पुलिस शासन रहा। बाद में यह ब्रिटिश प्रभाव का शिकार हो गया। उन्होंने महाराष्ट्र राजाको गद्दी पर बैठा दिया, जिसके दत्तकपुत्र शरभोजी ने ईस्ट इंडिया कम्पनीको अपने अधिकार सौंप दिए और स्वयं उनके अनुशासन में राज्य करने लगा। वह १७९८ में गद्दी पर बैठा। कम्पनी ने श्वार्टस नामक शिक्षक को शरभोजी के शिक्षण के लिए नियत किया। इस योग्य शिक्षक ने शरभोजी को अनेक पाश्चात्य भाषाओं तथा संस्कृत का पूरा पण्डित बनाया। आगे चल कर यह राजा बड़ा गुणी प्रमाणित हुआ तथा सरस्वती महल ग्रंथागार की स्थापना उसी ने की। शरभोजी की मृत्यु १८३२ में हुई।

उसके बाद उस का पुत्र राजा हुआ। उसकी मृत्यु के बाद ई० स० १८५५ मे तजोर राज्य ब्रिटिश राज्य मे मिला लिया गया।

सरस्वती महल ग्रथागार तीन भिन्न भिन्न सस्कृतियो का सगम हे, जो अपने युग के तीन प्रभावोसे सम्वर्धित है। तामिल के चोल, तेलगू के नायक तथा महाराष्ट्र राज्य और पाश्चात्य प्रभाव–ये तीन स्रोत इन सस्कृतियो के है। चोलो ने ई० पू० २५० मे ही दक्षिण मे प्रभाव स्थापित किया था तथा १३वी शताब्दी मे उस का अवसान हुआ। यह दो हजार वष व्यापी दीघकाल चोलो के माध्यम से तामिल विकास का काल है, जिस का अलभ्य साहित्य भी सरस्वती महल ग्रथागार की अलमारियो मे है। चोलो के बाद नायक राजा हुए। सभी नायक पालक उच्च कोटि के विद्वान् रहे और ई० सन् १५३२ से १६७६ तकका काल उनके सरक्षण मे सस्कृत और तेलगू के साहित्य के सम्बद्धन का काल रहा। सस्कृत और तेलगू का यह अलभ्य साहित्य भी सरस्वती महल की अलमारियो मे सुशोभित है। नायक पालो के बाद महाराष्ट्र आए। सभी महाराष्ट्र महीभुज कला और शिक्षा के प्रेमी रहे। उन्होने तामिल, तेलगू तथा मराठी एव सस्कृत का बहुत भण्डार भरा। महाराज शरभोजी ने अन्तत 'सरस्वती महल ग्रथागार' की स्थापना करके महान सास्कृतिक सम्पदाको एक स्थान पर एकत्र किया।

ग्रन्थागार मे पाण्डुलिपियो के अतिरिक्त अनेक विदेशी भाषाओ का अथाह साहित्य भरा है, जो राजा शरभोजी ने सग्रह किया था। सब पुस्तको पर इस विद्वान राजा के हस्ताक्षर है। इन पुस्तको मे बहुत सी तो प्रथम सस्करण की दुलभ पुस्तके हे। कुछ प्राचीन पत्र पत्रिकाएँ है। योरोप और एशिया के विविध खण्डो मे बोली जाने वाली भाषाओ का यहा अथाह सागर है कुछ अद्भुत पुस्तके सचित्र है। चित्रो तथा छाया चित्रो का भी यहा अलभ्य सग्रह है। शरीर शास्त्र, स्थापत्य विज्ञान, युद्ध शास्त्र एव देश देशान्तरो की वेषभूषा सम्बन्धी अनेक महत्वपूण ग्रन्थ यहा है। सामुद्रिक शास्त्र पर अनेक ग्रथ फ्रेच भाषा मे है, जिनमे कई दुलभ है। एक फ्रेच भाषा की अलभ्य पुस्तक ऐसी है जिसमे मानवो, पशु पक्षियो के मुह सभ्यताक्रम की दृष्टि से छपे हुए है।

मराठी पाण्डुलिपिया कसप्पूर के वस्त्रो मे बँधी पक्तिवद्ध रखी है। ये ग्रथ वेदात, साहित्य, सगीत, वद्यक और विज्ञान से सम्बन्धित है। इनमे राजा शरभोजी तथा अन्य राजाओ के नाटक तथा देवेन्द्र कुरवेजि नामक अनोखी भूगोल रचना हे। इसमे दुनिया के अन्यान्य स्थानो का वणन 'कुरत्ति' नाम से प्रसिद्ध चलती फिरती स्वर्गीया युवतियो द्वारा गीत रूपसे प्रस्तुत किया गया है। इसके रचयिता शरभोजी स्वय थे। इस विभाग मे एक मराठी, सचित्र महाभारत तथा भागवत का ग्रथ है, जिसके हर मुख पृष्ठ पर चित्र है। ये रचनाएँ एकनाथ के वशज एव शिष्य माधव स्वामी द्वारा विरचित है, जिन के चित्र का रग आज ढाई सौ वष बाद भी वसा ही चटकीला बना हुआ है।

की और भी वृद्धि की। उसने तंजौर के चोल साम्राज्य को समुद्र के उस पार तक फैला दिया। एक ओर उसके राज्य की सीमाएँ उत्तर भारत को और, दूसरी ओर मलाया को छू रही थी। इसके बाद प्रतापी चोल सम्राटों ने ई० स० १२७९ तक शासन किया। इस वंश का अन्तिम सम्राट राजेन्द्र तृतीय था। उसके बाद भी १४वीं शताब्दी के अंत तक अनेक सामंत अपने को चोल कह कर दक्षिण में शासन करते रहे। अंत में १५वीं शताब्दी के समाप्त होते न होते चोल मण्डल को विजयनगरम् साम्राज्य में मिला लिया गया। अब केवल तामिल साहित्य ही चोल साम्राज्य की अमर विभूति रह गई।

विजयनगरम् साम्राज्य का प्रतिनिधि वंश आगे तंजौर नायक वंश के नाम से शासन करता रहा। इस वंश में सेवय्य नायक प्रमुख पुरुष था। उसने १५६० तक राज्य किया। इसी राजा के शासन काल में पुर्तगाली लोग नागपट्टणम में प्रथम बार आए। आगे इस वंश के अनेक वीर राजा हुए। विजयराघव इस वंश का अंतिम राजा था, जिसने १६३४ से १६७३ तक तंजोर पर राज्य किया, बाद में तंजोर बीजापुर शासन के आधीन हो गया। यह वह काल था कि जब पुर्तगाल डेनिश और अंग्रेज लोग दक्षिण भारत में पैर जमा रहे थे। उधर उसके उत्तरी कोण पर छत्रपति शिवाजी अपना पसार कर रहे थे। अन्त में शिवाजी ने बीजापुर राज्य की जड़ें खोखली कर दी। इस पर अवसर पा मदुरा के राजा ने तंजोर को अपने आधीन कर लिया। इस पर बीजापुर राज्य ने शिवाजी के भाई वेंकोजी को तंजोर भेजा। अनेक युद्धों के बाद वेंकोजी ने तंजोर को अधिकृत कर लिया और तंजौर में मराठा राज्य का श्रीगणेश हुआ।

वेंकोजी का नाम यहाँ एकोजी प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने ई० स० १६७६ से १६८३ तक राज्य किया। शिवाजी ने उस राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लेने की इच्छा भी की पर एकोजी ने स्वीकार नहीं किया। एकोजी को अनेक युद्ध करने पड़े, फिर भी उसने कला तथा साहित्य का बहुत विकास किया। एकोजी के तीन पुत्रों ने दक्षिण में तीन नए राज्यों की स्थापना की। यह काल यद्यपि लड़ाई झगड़े का काल रहा, तथापि कला कौशल की बहुत वृद्धि हुई। सन् १७३९ में महाराष्ट्र शासन खतम हुआ। इसके बाद ईस्ट इन्डिया कम्पनी और कर्नाटक के नवाब संघर्ष चलाते रहे और तंजौर पर १७७६ तक पुलिस शासन रहा। बाद में वह ब्रिटिश प्रभाव का शिकार हो गया। उन्होंने महाराष्ट्र राजा को गद्दी पर बैठा दिया, जिसके दत्तकपुत्र शरभोजी ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को अपने अधिकार सौंप दिए और स्वयं उनके अनुशासन में राज्य करने लगा। वह १७९८ में गद्दी पर बैठा। कम्पनी ने श्वार्टस नामक शिक्षक को शरभोजी के शिक्षण के लिए नियत किया। इस योग्य शिक्षक ने शरभोजी को अनेक पाश्चात्य भाषाओं तथा संस्कृत का पूरा पण्डित बनाया। आगे चल कर यह राजा बड़ा गुणी प्रमाणित हुआ तथा सरस्वती महल ग्रंथागार की स्थापना उसी ने की। शरभोजी की मृत्यु १८३२ में हुई।

उसके बाद उस का पुत्र राजा हुआ। उसकी मृत्यु के बाद ई० स० १८५५ मे तजौर राज्य ब्रिटिश राज्य मे मिला लिया गया।

सरस्वती महल ग्रथागार तीन भिन्न-भिन्न सस्कृतियो का सगम हे, जो अपने युग के तीन प्रभावोसे सम्वन्वित है। तामिल के चोल, तेलगू के नायक तथा महाराष्ट्र राज्य और पाश्चात्य प्रभाव—ये तीन स्रोत इन सस्कृतियो के है। चोलो ने ई० पू० २५० मे ही दक्षिण मे प्रभाव स्थापित किया था तथा १३वी शताब्दी मे उस का अवसान हुआ। यह दो हजार वष व्यापी दीघकाल चोलो के माध्यम से तामिल विकास का काल है, जिस का अलभ्य साहित्य भी सरस्वती महल ग्रथागार की अलमारियो मे है। चोलो के बाद नायक राजा हुए। सभी नायक पालक उच्च कोटि के विद्वान् रहे और ई० सन् १५३२ से १६७६ तकका काल उनके सरक्षण मे सस्कृत और तेलगू के साहित्य के सम्बद्धन का काल रहा। स स्कृत और तेलगू का यह अलभ्य साहित्य भी सरस्वती महल की अलमारियो मे सुशोभित है। नायक पालो के बाद महाराष्ट्र आए। सभी महाराष्ट्र महीभुज कला और शिक्षा के प्रेमी रहे। उन्होने तामिल, तेलगू तथा मराठी एव स स्कृत का बहुत भण्डार भरा। महाराज शरभोजी ने अन्तत 'सरस्वती महल ग्र थागार' की स्थापना करके महान सास्कृतिक सम्पदाको एक स्थान पर एकत्र किया।

ग्रन्थागार मे पाण्डुलिपियो के अतिरिक्त अनेक विदेशी भाषाओ का अथाह साहित्य भरा है, जो राजा शरभोजी ने सग्रह किया था। सब पुस्तको पर इस विद्वान राजा के हस्ताक्षर है। इन पुस्तको मे बहुत सी तो प्रथम सस्करण की दुलभ पुस्तके हे। कुछ प्राचीन पत्र पत्रिकाएँ है। योरोप और एशिया के विविध खण्डो मे बोली जाने वाली भाषाओ का यहा अथाह सागर है कुछ अद्भुत पुस्तके सचित्र है। चित्रो तथा छाया चित्रो का भी यहा अलभ्य सग्रह है। शरीर शास्त्र, स्थापत्य विज्ञान, युद्ध शास्त्र एव देश देशान्तरो की वेषभूषा सम्बन्धी अनेक महत्वपूण ग्रन्थ यहा है। सामुद्रिक शास्त्र पर अनेक ग्र थ फ्रेंच भाषा मे है, जिनमे कई दुलभ है। एक फ्रेंच भाषा की अलभ्य पुस्तक ऐसी हे जिसमे मानवो, पशु पक्षियो के मुह सभ्यताक्रम की दृष्टि से छपे हुए हे।

मराठी पाण्डुलिपिया कसप्पूर के वस्त्रो मे बँधी पक्तिवद्ध रखी है। ये ग्रथ वेदात, साहित्य, सगीत, वद्यक और विज्ञान से सम्बन्धित है। इनमे राजा शरभोजी तथा अन्य राजाओ के नाटक तथा देवेन्द्र कुरवेजि नामक अनोखी भूगोल रचना हे। इसमे दुनिया के अन्यान्य स्थानो का वणन 'कुरत्ति' नाम से प्रसिद्ध चलती-फिरती स्वर्गीया युवतियो द्वारा गीत रूपसे प्रस्तुत किया गया हे। इसके रचयिता शरभोजी स्वय थे। इस विभाग मे एक मराठी, सचित्र महाभारत तथा भागवत का ग्रथ है, जिसके हर मुख पृष्ठ पर चित्र है। ये रचनाएँ एकनाथ के वशज एव शिष्य माधव स्वामी द्वारा विरचित है, जिन के चित्र का रग आज ढाई सौ वष बाद भी वसा ही चटकीला वना हुआ है।

इसके बाद तेलगू का अथाह भण्डार है। इन ... ... को देखकर इस बात का पता चलता है कि उस काल मे लिखने की अनेक परिपाटियाँ प्रचलित थी। अनेक सस्कृत रचनाए तेलगू लिपि मे है। तेलगू रचनाए देवनागरी लिपि मे है तथा तमिल की प्रतिया नागरी एव तेलगू लिपि मे है।

दुष्प्राप्य तेलगू रचनाओ मे रघुनाथ नायकाभ्युदयमु और कट्टवरदराजु रामायणु उल्लेखनीय है। प्रथम रचना मे तजोर राजमहल के वास्तु का वर्णन है। यह चार सौ वर्ष प्रथम की कृति है। तजौर के राजा शाहजी के, जो स्वय एक सिद्धहस्त गायक थे, रचे हुए गाने योग्य पाच सौ पद सग्रहीत है।

तमिल पाण्डुलिपियो मे तिरुच्चि ... कायवर की अप्राप्य कई टीकाएँ, तिरुवायमोलि, नालडियार, पम्ब देवनार भारतम् तथा तिरुक्कुरल की अलभ्य पुस्तके है। इस विभाग मे विज्ञान और वैद्यक की भी अनेक रचनाए है। रसायनशास्त्र के ग्रथ भी है। एक रचना शरभोजी कृत है—शरभेन्द्र वैद्यमुरत्न, जो १८ भागो मे है। शरभोजी को वैद्यक से भी बडा प्रेम था। उन्होने एक धन्वन्तरि महल की भी स्थापना की थी। मोडी लिपि की पाण्डुलिपियो के बडे बडे बण्डल नजर आते है। यह वह लिपि है जिसमे तजोर के मराठी राजाओ के बही खाते लिखे जाते थे।

सस्कृत पाण्डुलिपियो का सग्रह सबसे बडा है। इनमे विविध विषय है। यह सग्रहालय पृथक ही प्राच्य सग्रहालय के नाम से प्रसिद्ध है। सस्कृत की पाण्डुलिपिया ही सरस्वती महल ग्रथागार की अमूल्य निधिया है। मत्र शास्त्र, दुर्लभ वैदिक ग्रथ 'वैद्यक' सगीत, विज्ञान, ललित कला की असख्य रचनाए इस विभाग मे है। सर्वश्री गोविन्द दीक्षित, त्र्यम्बकराव मखी आदि लेखको की रचनाओ को भी सग्रह है। वैद्यक रसवाद की दुर्लभ पुस्तक 'आनन्द कन्द' की पाण्डुलिपि यहा है, जिसमे अणु विज्ञान तथा लोहो को बदल देने वाले अणु सम्बन्धी परिवर्तन प्रयोग की महत्वपूर्ण भूमिकाए है। अश्व गज शास्त्र भी है। मतग लीला अनूप ग्रथ है, जो सचित्र है।

बारीक हस्तलिखित अक्षरो की भगवद्गीता की भी ऐसी पाण्डुलिपिया है, जो बिना खुर्दबीन नही देखी जा सकती। एक सचित्र ... की पाण्डुलिपि भी है।

इन दुर्लभ पाण्डुलिपियो के अतिरिक्त यहा दस्तावेजो का भी भारी भण्डार है जो इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री है और जिनसे भारतीय इतिहास की पुनर्रचना मे बडी सहायता ली जा सकती है, खास कर वे दस्तावेज पिछले ब्रिटिश काल पर पूरा प्रकाश डालते है। ईस्वी सन् १७३० के आगे के पचास वर्षों का समय दक्षिण भारत की महान राजनीतिक घटनाओ का समय है। इसी काल मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने औपनिवेशिक शासक की पोशाक पहनी थी। पेशवाओ के नेतृत्व मे एक तरफ मराठो की और दूसरी तरफ हैदरअली एव टीपू सुलतान की चढाइया हुआ करती थी। इसी

बीच तजोर राज्य तथा कर्नाटक के नवाब मे भी मुठभेड हुई थी। उस समय तजौर इन घटनाओ का मुख्य केन्द्र रहा था। यहा इन बातो पर प्रकाश डालने वाले अनेक बहुमूल्य डाकूमेट है।

तजौर से अन्य स्थानो को देखते भालते हम लोग सेतुबन्ध रामेश्वर तक पहुँच गए जहा समुद्रजल भारत भूमि के चरण पखारता हे, उसे देख अपने नेत्र सफ्ल किए।

इस यात्रा मे मुन्ना ने अपनी छोटी उगली से मुझे पकडकर खूब घुमाया, दोडाया, हँसाया। मेरे घुटनो की तकलीफ ने मुझे अधिक कष्ट नही दिया। मै समझ रहा था कि यह दिव्य ज्योति मेरे शारीरिक कष्टो की भी औषधि है। चिर हास्य मेरे जीवन का लक्ष्य रहा हे। यही चिरहास्य बहुत दिनो से कम हो गया था, अब उस तोतली शिशुवाणी ने उस चिरहास्य को फिर ला दिया। मेरे सुन्दर स्वास्थ्य का प्रमुख कारण मेरा चिरहास्य ही हे। मे मास, मदिरा तो दूर, प्याज की बदबू भी बरदाश्त नही कर सकता। भोजन मे दाल, फुलका, एक दो हरी सब्जिया थोडा चावल। यही भोजन का क्रम सदैव रहा। दो एक भस मै अवश्य रखता था। इससे शुद्ध दूध, मक्खन, घी, दही, छाछ मुझे मिल जाती थी। अनेक कष्ट आने पर भी भस का क्रम मैंने नही टूटने दिया। दूध से जब वह लात जाती, उसे गाव भेजकर दूसरी ले लेता था। सात्विक भोजन और चिरहास्य ही मेरे स्वास्थ्य का भेद था।

महाप्रयाण

(अनुज चन्द्रसेन द्वारा वर्णित)

दक्षिणाचलकी देवभूमि का भ्रमण करके १० जनवरी १९६० की प्रात वह लोट आए थे। इस भ्रमण से उनका स्वास्थ्य सुधरा था। घुटने की तकलीफ ने भी उन्हे नही सताया था।

१०, ११ ओर १२ जनवरी तीन दिन वह स्वस्थ और प्रसन्न रहे। १३ जनवरी को सन्ध्या समय से उन्हे पेशाब रुकने की तकलीफ शुरू हुई। रात होते होते यह कष्ट अधिक बढ गया।

डाक्टरो ने कहा—'अब तो अरविन अस्पताल ही जाना होगा।' अरविन अस्पताल गए। अरविन अस्पताल मे गत तीन वर्षो से घुटनो मे दर्द और पेशाब रुक रुक कर आने की चिकित्सा एव परामर्श के लिए वह जाते थे। वहा डाक्टरो ने उन्हे बताया भी था कि आपके 'प्रास्ट्रेट ग्लाड' बढ गए है, इनका आपरेशन करा डालिए—तभी पेशाबकी तकलीफ दूर होगी। सो इस बार १४ जनवरी को भी डाक्टरो ने अपनी वही राय दोहरायी। मूत्रावरोधसे इतना छटपटा रहे थे कि उन्होने सलाह मशवरा किए बिना तुरन्त आपरेशन करने और वहा भरती होने की स्वीकृति दे दी। वार्ड न० २ मे बिस्तर न० २३ उन्हे दियागया। भरती करनेके बाद डाक्टरोने नली तथा अन्य उपायो

द्वारा पेशाब कराया और तीन दिन तक वह बिस्तर पर लेटे रहे। नली से पेशाब आता रहा। चौथे दिन नली निकाल दी गयी। पेशाब स्वतः आने लगा।

भाभीजी ने आपरेशनकी भयङ्करता का अनुमान कर उनसे विनती की कि अब तो पेशाब आने लगा है, आपरेशन न कराया जाय। उनके और भी अन्यतम मित्रों ने कहा कि अब आपरेशन की बात छोड़दी जाय। परन्तु अस्पताल के उस वार्ड में 'प्रास्टेट ग्लाड' आपरेशन के दो तीन केस और थे, जो पक्के हो चुके थे और दो चार दिन में ही जिन्हें अस्पताल से छुट्टी मिलने वाली थी। उन्हें दिखाकर वह सबको समझाते थे कि चिन्ता की बात नहीं है। आपरेशन होने दो - मेरी तकलीफ मिट जायगी।

तीस जनवरी तक, जब उनका आपरेशन हुआ, उनसे यही अनुरोध किया जाता रहा कि आपरेशन टाल दें। परन्तु पेशाब की पीड़ा से वह बहुत परेशान थे। उन्होंने स्वयं भी साहस सञ्चय किया और हम सबको भी हिम्मत बंधायी।

परन्तु मेरा मन विद्रोह कर रहा था। अस्पताल के उस वार्ड में लगभग तीस बिस्तर थे। लम्बा कमरा, पलगोंकी लम्बी दो कतारें दूर तक चली गई थीं। सब पर मरीज थे। अच्छे बुरे, सभ्य असभ्य, उजले मन, शिक्षित अशिक्षित। फिर उनकी चीख, पुकार, वेदना, कराह। उन्हींके बीच में एक बिस्तरपर यह महापुरुष। जिसने राजमहलों में राजा रानियोंके लिए मखमली कुर्सियों पर बैठकर नुस्खे लिखे, उनकी सम्पन्न वैभवशाली अतिथिशालाओं में मेहमानदारी की, जो शरीर से अत्यन्त कोमल, गन्दगी और बदबू जिन्हें एक क्षण भी असह्य थी, जो अपने सोने के कमरे में तनिक भी शोर गुल बरदाश्त नहीं कर सकते थे, जो पलग पर तीन चार गद्दे बिछा कोमल शय्या बनाकर ही सो सकते थे, उन्हें यहां पड़े देख मैं हाहाकार कर उठता था। मैं सोचता—कैसे इन्होंने यह सब सहन कर लिया है? यह लोहे का नग्न पलग और उस पर बिछा इतना सख्त गदा गद्दा, जिसपर सारा रोगियों ने अपने कीटाणु छोड़े हैं, यह कैसे नींद लेते होंगे। यह सब देखकर मैं उन्हें यहां से ले जाना चाहता था।

अन्त में मैंने कहा—'डाक्टर सेन के नर्सिंग होम में चलकर आपरेशन कराया जाय तो इस गन्दगी और कष्ट से तो बचा जायगा।'

कुछ देर वे मेरी ओर नाराजी से देखते रहे। फिर बोले—'क्या मैं यहां बसने आया हूँ। आपरेशन कराकर अपने घर जाऊंगा। बीमारी में क्या सुख और क्या मीनमेख?'

'उस सख्त पलग पर आपको कैसे नींद आती होगी?'

'खूब आती है, तुम मुझे परेशान मत करो।'

कुछ देर चुप रहकर मैंने कहा—'मैं राजेन्द्रलाल हाडा जी के पास जाता हूं, वे राष्ट्रपतिजी से कहकर आपकी चिकित्सा के लिए कहीं बढ़िया प्रबन्ध करा देंगे।'

'बड़ी मुश्किल से तो यहा आपरेशन की डेट आई है। परसो आपरेशन हो जाएगा। अब क्या करोगे उनसे कहकर, और फिर राष्ट्रपति क्यो मेरी चिता करने लगे। नही, मै किसी से कुछ नही चाहता।'

फिर भी मेरा मन नही माना। मै चुपचाप उठकर अस्पताल के आफिस मे गया। वहा पूछा कि प्राइवेट कमरा लिया जाय तो कितना खच होगा। उन्होने सब हिसाब जोडकर कहा—'लगभग डेढ हजार।'

'और यदि कही प्राइवेट नर्सिग होम मे जाय तब ?'

'डेढ दो हजार ही वहा होगा।'

परन्तु घर मे इस समय इतना रुपया नही था जो यह व्यय किया जाता। मै उदास मन उनके पलग के पास आकर खडा हो गया।

उन्होने पूछा —'कहा गए थे ?

'आफिस मे यह पूछने गया था कि प्राइवेट कमरा ले तब क्या खच होगा ?'

'तब क्या बताया ?'

'डेढ दो हजार।'

'देख लिया न !'

'मै रुपए का प्रबध करता हूँ। कुछ प्रकाशको से मागूगा, कुछ उधार लूगा।'

'इस समय कोई प्रकाशक धेला नही देगा। न कही मे उधार मिलेगा। जाओ तुम, डाक्टर से मिलकर परसो आपरेशन की तैयारी पक्की करा दो।'

'अच्छा' कहकर मै डाक्टर के कमरे की ओर चल दिया।

डाक्टर ने कहा—'परसो आपरेशन जरूर होगा, लिस्ट मे पहिला नम्बर है। खून का इतजाम कर लिया है न ?'

'कहिए, कहा से करना होगा ?'

उन्होने एक फम का नाम बताया कि वहा से खून की बोतल मोल मिलती है, परन्तु आपरेशन के बाद यह ठीक नही कहा जा सकता कि कितनी बोतलो की जरूरत पडेगी। कभी दो बोतलो से भी काम चल जाता है, कभी सात आठ बोतले भी पूरी नही होती।'

'एक बोतल कितने की आती है ?'

'शायद चालीस पचास रुपए की ?

मै कुछ सोचने लगा। डाक्टर ने कहा—'एक बात हो सकती है कि आपकी फेमिली मे से कोई व्यक्ति हमारे अस्पताल को खून डोनेट कर दे तो फिर मरीज पर अस्पताल ही खून खच करेगा, जितनी बोतलो की भी जरूरत पडे।'

'आपका ब्लडबैक कितना खून निकालेगा ?'

'थोडा ही, ज्यादा नही।'

'अच्छा, मै ऐसा ही करता हू।' कहकर मै इन्चार्ज के कमरे की ओर लपका। वहा जाकर मैने इचाज से अपना खून देने की बात कही। उन्होने मेरी बाह की एक नस मे से थोडा खून निकाल कर टेस्ट किया और फिर कहा—ठीक है, अभी निकालते है।

अपने रजिस्टर मे उन्होने खानापूरी की।

'खून किस मरीज के लिए दे रहे है?'

'वार्ड न० २ बिस्तर न० २३ श्री चतुरसेन शास्त्री।' इचाज डाक्टर के पास एक युवा लेडी डाक्टर भी खडी थी। मरीज का नाम सुनते ही वे बोली—'क्या वे हमारे अस्पताल मे है?'

'हा परसो प्रोटेस्टी आपरेशन होगा।'

'ओह, उनके लिए खून मै दूँगी डाक्टर!' उन्होने डाक्टर से कहा।

'वाह, आप यह कष्ट क्यो करे? आपकी कृपा के लिए बहुत धन्यवाद।

'कष्ट कैसा, यह तो उनकी सेवा होगी। एक तुच्छ सेवा।' फिर उन्होने डाक्टर को बताया कि शास्त्री जी कितने महान लेखक है और वे उनके प्रति कितनी गहरी श्रद्धा रखती है। उन्होने अपना सफेद कोट उतार दिया और अपनी बाह की नसो को देखने और दबाने लगी।

मैने उनसे प्रार्थना की—'आप यह क्या कर रही है?' परन्तु डाक्टर ने मेरी रक्षा करली। उन्होने उनसे कहा—'आपको परेशान होने की जरूरत नही। खून इनका टेस्ट हो चुका है। थोडा सा ही तो लिया जायगा, इन्हे देने दीजिए।

मै कुर्सी से उठकर ट्रासफ्यूजन रूम मे गया और दो बोतल खून नर्स ने इतनी आसानी और शीघ्रता से निकाल लिया कि मुझे कुछ भी प्रतीत नही हुआ।

खून लेकर उन्होने एक पर्ची मुझे दी और कहा—'इसे अपने डाक्टरको दीजिए।

पर्ची लाकर मैने आचार्य जी को दी। उसे देख और समझ कर उनका मन उदास हो गया। उस दिन उन्होने भोजन नही किया। भूख नही है, कहकर टाल दिया और अपना सारा खाना अपने सामने बैठा कर मुझे खिला दिया। अस्पताल मे भरती होने पर भी उनके लिए खाना हम घर से ही बनाकर लाते थे। दलिया, मक्खन, एक दो फल, थोडा दूध। उनकी उदासी के पीछे जो उनका मेरे प्रति प्रेम और वात्सल्य उमड पडा था, वह मै ठीक ठीक समझ रहा था। वे भावुक जो थे, और मुझे पाँच वर्ष की आयु से पुत्रवत् पाला जो था। यद्यपि खून देकर मैने कोई वीरता नही की थी न मुझे तनिक भी कमजोरी ही हुई थी, न मेरे शरीर अनिष्ट की कोई आशका ही थी फिर भी एक वात्सल्य उनकी नम आखोमे झलक उठा था। मेरे यह कहने पर भी कि

मुझे तनिक भी निबलता प्रतीत नही होरही, उ होने विश्वास नही किया। उ होने ज्से आज्ञाभरे स्वर मे कहा—'घर जाकर आराम करो। खूब दूध पियो। एक डिब्बा आमूल मक्खन भी लेते जाना और खाना। कल दिनभर भी आराम करना, यहा आने की जरूरत नही। परसो सवेरे आपरेशन होगा, सो परसो ही जरा पहिले आ जाना।'

मन मारकर आज्ञा मान मैं चला आया। परसो तीस जनवरी को यद्यपि शाह दरे अपने घर से प्रात बहुत जल्दी ही चल पडा था, पर तु फिर भी माग बाधाओ के कारण अस्पताल देर से पहुँचा। भाभी जी साथ थी। हम दोनो चुपचाप अपनी अपनी भावनाओ को मन ही मन पी रहे थे। आठ बजे होगे जब हम वाड मे पहुँचे। वे अपने पलग पर नही थे। हमने चि तातुर होकर इधर उधर देखा। वे सामने ड्रेसिंग रूम से अपने घर के वस्त्र उतार आपरेशन काल के वस्त्र पहन कर बाहर निकल रहे थे। मैं लपक कर उनके सामने आया। उतारे हुए वस्त्रो की पोटली उनके हाथो मे थी। मैने पोटली उनसे ले ली। उस क्षण की उनकी मूर्ति मै भूल नही सकता। जीवन शून्य आकति की भयकर झलक मुझे दीख पडी। मरफिया के इ जेक्शन लग चुके थे। आप रेशन थियेटर से उ हे ले जाने के लिए नस स्ट्रेचर लेकर आचुकी थी। उ हे अ तिम बार समझाने या रोकने का अब समय नही था। नस ने आहिस्ता से उन्हे 'स्ट्रेचर' पर लिटा दिया, और स्ट्रेचर के पीछे पीछे हम आपरेशन थियेटर के द्वार तक उनके साथ आये। पर तु मन बिल्कुल बैठा जारहा था। फिर भी बुरी शका को मै अपने हृदय मे अधिक समय तक स्थान देना नही चाहता था।

धडकते हृदय से दो घटे तक मै, भाभी तथा अ य इष्ट मित्र आपरेशन थियेटर के बाहर आकुल व्याकुल से खडे रहे। दो घटे बाद दरवाजा खुला और 'स्ट्रेचर' पर लेटे हुए वह बाहर निकले। नर्से तथा डाक्टर उनके साथ थे। डाक्टरो ने हमे चि तित देखकर कहा—'चि ता की कोई बात नही है। आपरेशन ठीक हुआ है और अब तो ये होश मे भी है। ३०, ३१ जनवरी और १ फरवरी चि ता और शकाओ मे व्यतीत हुई। यद्यपि वह ठीक ही थे और दूध, पानी कभी कभी पीते भी थे, पर तु जो चैत न्यता आपरेशन के बाद क्रमश होती है, वैसी नहीं हो रही थी।

आपरेशन के बाद मुझे रात दिन उनके पास रहने की अस्पताल से आज्ञा मिल गई थी। इसलिए मैं चार दिन अन्त समय तक उनके स्वास्थ्य की कामना प्रभु से करता रहा। आपरेशन के बाद पहिला दिन ठीक बीता, पर तु रात्रि को उनकी हालत गम्भीर हो गई। पैर ठडे हो गए, ब्लडप्रेशर गिरने लगा। डाक्टरो को सूचित किया गया, वे आए और विचार परामश के बाद पैरो के पास टाग मे फस्त खोलकर खून दिया गया। उस समय वाड के एक कोने मे एक अन्य मरीज की हालत मरणासन्न हो रही थी। नस बार बार डाक्टर को उसे तनिक देखने के लिए कह रही थी, पर डाक्टर

इन्हे अटेंड कर रहे थे। वे नही गए और पांच मिनट बाद नर्स ने आकर कहा—'वह मरीज मर गया डाक्टर।'

डाक्टर ने कहा—'उसे मरना ही था। भंगी से कहो उसे बरामदे में ले जाय और मुर्दाखाना भेज दे।'

सुनकर मन में भय व्याप गया। एक मनहूस वातावरण वार्ड में प्रतीत होने लगा। रात भर उपचार चलते रहे। बहुत प्रयत्न के बाद उनका ब्लडप्रेशर ठीक गति पर आया और चिंता टली। रात्रि व्यतीत हुई और प्रभात का उदय हुआ। उस दिन रविवार था। रविवार को सब मरीजों को वार्ड में से बाहर निकाल कर सारे हाल की धुलाई सफाई होती है। सो सब मरीजों को बिस्तर छोडकर बाहर कर दिया गया, जो बिस्तर नही छोड सकते थे, उन्हे पलग सहित बाहर बरामदे मे कर दिया गया। उन्होने इनका पलग भी वहा से हटाने को कहा, पर मैने उन्हें इस विशिष्ट केस की गम्भीरता की, उनके व्यक्तित्व की दुहाई दी हुज्जत की, तब कही उन्होने उसे वही रहने दिया। परन्तु भंगी ठंडे पानी से फर्श धो रहा था। हलचल और ठंडे पानी के छींटे उन पर पड रहे थे। बहुत रोकने पर वे मुझे भी धमकाते थे। फल यह हुआ कि इन्हे ठंड लगने लगी, शरीर काँपने लगा। खून की दोनो बोतले जो सिरहाने स्टेंड पर टगी हुई थी, रबड की नली सहित हिलने लगी। डाक्टरको बुलाया तो एक कम्बल और डाल दिया गया, उससे भी काम न बना तो तीसरा कम्बल और उढा दिया गया। पर सरदी की कपकपी बंद नही हुई। दांत बज रहे थे। यह प्रातःकाल ९ बजे का समय था। इसी समय शाहदरे से भाभी जी आ पहुँची। परन्तु नर्स ने उन्हे डाट कर द्वार पर ही रोक दिया। उनसे थोडी ही दूर पर उनके पति पलग पर पडे मृत्यु से युद्ध कर रहे थे। पर अस्पताल के नियम जो थे, पत्नी अन्दर नही आ सकती थी। मेरी दृष्टि उनके आकुल व्याकुल मुख पर पडी। मैने डाक्टर से कहा—इन्हे आने दीजिए, नर्स नही आने दे रही है। डाक्टरने उनकी ओर देखा— पत्नी के दर्दको महसूस किया और उन्हे अन्दर आने का इशारा किया। वे डाल से टूटे पत्ते की भांति आकर पति के सिरहाने पहुँच गई। सिरपर हाथ फेरा, तबियत पूछी। पतिने नेत्रोंसे ठीक होनेका संकेत किया। पर मेरा सूखा मुह और भरी आंख देखकर भाभीजी ने चिन्तित दृष्टि से मेरी ओर देखा। कुछ देर बाद उन्हे एक ओर ले जाकर मैने कहा—'ईश्वर को धन्यवाद दो, रात को पुनर्जन्म हुआ है। पर इस समय इनके सामने रोना नही, दिल कमजोर बनाना नही।' कहकर मै फिर डाक्टर से कपकपी के उपचार के लिए प्रार्थना करने लगा। अन्त मे दो घंटे बाद कपकपी बंद हुई। भाभी जी को केवल पन्द्रह बीस मिनिट ही वहाँ रहने दिया गया, फिर बाहर कर दिया। अस्पताल का नियम शाम को चार से पांच बजे तक मिलने आने का था। सो वे दस बजे से शाम के चार बजे तक बाहर

पास मे भूखी प्यासी चिंतित आकुल व्याकुल मन से बैठी रही। चार बजे जब आइ तो जसे उनके प्राण हरे हो गए। वे पति के चरणो को पकड कर बैठ गइ। तबियत उनकी ठीक क्या थी, चुपचाप आखे बद किए आपरेशन की पीडा को, घावके दद को, और रक्त प्रवेश के लिए बाह और टाग मे घुसाई हुई दो दो सुइयो की वेदना को अद्भुत साहस से सहन कर रहे थे। हिलडुल नही सकते थे, करवट नही ले सकते थे। किसी भी प्रश्न का उत्तर देना उनके लिए सवथा कठिन था। न कुछ वस्तु ही मागते थे। हम ही थोडी थोडी देर मे उनसे कभी दूध कभी पानी कभी ग्लुकोज दने के लिए पूछते और यदि उन्हे हमारे प्रश्न का बोध होता तो वे जरा सा सिर हिलाकर स्वीकृति या अस्वीकृति दे देते थे। पत्नी का रूखा मुह देखकर उ होने बडे श्रमसे क्षीण वाणी म पूछा—'खाना खाया ?'

'नही।'

'पहले खाना खा।'

'कसे खाऊँ ?'

वे चुपचाप पत्नी की ओर देखते रहे। यह दृष्टि विचित्र थी। पत्नी ने तुर त ही अपनी भूल समझ ली। बोली—'यहाँ से जाते ही खा लूगी, आप दुखी न हो। खाऊँगी नही तो क्या करूँगी।'

सुनकर उ होने फिर नेत्र मूद लिए।

इसी समय उ ह बडे वेग से वमन हुई। लाल लाल काला काला तरल गाढा पदाथ अन्दरसे निकला। सब कपडे सन गए। वस्त्र बदलने मे नर्सों ने तनिक भी कोमलता या दया नही की। उनके वस्त्र बदले गए, जिसमे उन्हे बहुत हिलना और कष्ट सहना पडा।

मुलाकात का एक घटा समाप्त होगया। पाच बजे वाड की घटी बज उठी और भाभीजी को विवश पति से अलग होना पडा। रात गहरी होती चली गई। वार्ड की इन्चाज मेट्रन, डाक्टर और नर्सों की डयूटी बदलती गई। नर्सों की बदली से तो नही, पर तु डाक्टर की बदली के कारण ऐसे गम्भीर केस मे बहुत कठिनाई होती थी। केस की प्रकृति समझने मे समय लगता था। मे उन बहुमूल्य प्राणो का मूल्य समझता था और मेरे रोम रोम मे उनकी जीवन याचना बसी हुई थी, इसलिए मै न दिन मे सोता था, न रात मे। सिरहाने बैठा उन्हे ग्लूकोज देता, ढारस बधाना, और उनकी कष्ट सहिष्णुता को देखता रहता था। रात भी बीत गई, दिन निकल आया। आज सोमवार था और पहली फरवरी। दिन भर साधारण गति से बीत गया। तीस जनवरी को जो डाक्टरो की अधिक और तत्पर अटेन्डेन्स थी, वसी आज नही थी। वार्ड मे इस बीच एक मृत्यु और हो गई। मन शकाओ से भर उठा। रात आई। नर्सों और

डाक्टरो की बदली हुई। रात के दस बजे नए डाक्टर आए। उन्होने बारी बारी से प्रत्येक मरीज को देखा। बारी आने पर उन्हे भी देखा और देखकर कहा—ओ० के०।

मैने कहा—'डाक्टर, तबियत सुधर नही रही है।'

'क्या तुम डाक्टर हो ?

मै खीझकर चुप होगया। बारह बजे, एक बजा। उनकी कराहना और छटपटाहट बढती गई। श्वास गति भी बिगडती दीखी। उपहाद और हल्की वमन आती रही। डाक्टर को बुला कर मैने दिखाया। देखकर बोले—'सो जाइए मिस्टर शास्त्री।'

उन्होने क्षीण स्वर मे कहा —'नीद नही आती।'

डाक्टर नस से सोने का इजेक्शन लगाने को कहकर चले गए। नस ने इजेक्शन लगा दिया, पर नीद नही आई। फिर डाक्टर को बुलाया गया, उसने एक और इजेक्शन सोने का लगा दिया और यह कह कर कि 'सो जाइए मिस्टर शास्त्री' फिर चले गए। नीद फिर भी नही आई। डाक्टर को फिर बुलाया। उसने तीसरा इजेक्शन सोने का लगाया। इस समय रात के २॥ बजे थे। वाड मे और भी कुछ मरीज कष्ट से कराह रहे थे। डाक्टर ने उन सबसे आज्ञाभरे स्वरमे कहा—'चुपचाप सो जाओ भाई।' और वह वाड की बत्तिया बद करके अधेरा करके चले गये। मैने कहा —'इनकी तबियत बहुत खराब है, बत्ती बन्द मत कीजिए। अधेरे मे इनको देखना ही कठिन हो जायगा।'

'अधेरा होनेसे सबको नीद आयगी। आपभी सोइए मिस्टर। बार बार परेशान क्या करते है।'

वे मेरा उत्तर सुनने लिए रुके नही, चले गए। अधेरे मे उनकी कराह मै सुन रहा था। दूर पर कुछ और मरीजो की भी कराह मेरे कानोमे पड रही थी। कुछ देर बाद मैंने वाड मे अपने पास वाली बत्ती जलादी। उजाला देखकर नर्स अपने कमरे से निकल आई और बोली—'डाक्टर मना कर गए हैं।' वह बत्ती बन्द करके चली गई। निरुपाय शेष रात्रि उसी अधकार मे व्यतीत हुई। प्रभात हुआ। सात बजे और ड्यूटी बदल कर नए लोग आए। नर्सो ने आकर सब मरीजो के मुह मे थर्मामीटर लगाकर टेम्प्रेचर लेना और नब्ज देखकर नाडी की गति रोगी चार्ट पर लिखना शुरू किया। कपडे बदलने वाली नर्से मरीजो के वस्त्र और पलग की चादरे बदलने लगी। उनके पास भी एक नर्स पलग की चादर और वस्त्र बदलने आई, पर मैने उसे यह कहकर रोक दिया कि इन्हे तनिक भी छेडना खतरनाक है। वह चली गई। उस हलचल और वार्त्तालाप से मानो उनकी तन्द्रा भग हुई। उन्होने क्षीण स्वर मे मुझसे पूछा—'दिन क्या ?'

'मगल है।'

'टाइम ?'

'साढे सात बजे है ?'

'दूध आया ?'

'जी हा ।'

'आधा प्याला बढिया कॉफी बनाओ ।'

'अच्छा, अभी बनाता हूँ ।'

'वे आइ ?'

संकेत पत्नी से था । मेने कहा—'नौ बजे तक आयेगी ।'

'तुम सब मिलकर प्रेम से एकत्र रहना, लडना नही ।' उनकी काफी पीने की इच्छा जानकर जो प्रसन्नता और सा त्वना मन म हुई थी वह यह वाक्य सुनकर उड गई । सुनकर मै काफी बनाने के लिए जाता जाता रुक गया ।

उन्होने फिर कहा—'मुन्ना को खूब पढाना, योग्य लडका ढूढकर व्याह करना ।' शब्द अत्यन्त क्षीण थे किन्तु मेरे हृदय की मानो गति ही रुक गई । मैने उनके सिर पर बालो मे प्यार से हाथ फेर कर कहा—'आप अच्छे हो जायेगे, ऐसा क्यो कहते है ।' पर आखे मेरी भर आई और वाणी अवरुद्ध हो गई । कुछ ठहर कर आखे मूदे ही मूदे उन्होने प्रश्न किया—'काफी बन गई ?'

'अभी लाया ।' कहकर मै कॉफी बनाने चला गया । मैंने बिजली के हीटर से गरम पानी लिया, काफी डाली और दूध गरमाया । ग्लूकोज मिलाकर प्यालेमे ले आया । बडे यत्नसे दो तीन चम्मच ही पी सके, सास मे तकलीफ होने लगी । मैने शकित होकर उनकी चेष्टाओ को देखा । सास धीमी होती जा रही थी, आखे पथराने लगी थी । मैने सामने जाती हुई बडी नर्स को पुकारा । वह आकर खडी होगई और श्वास गति को देखकर उसने कहा—'शाम तक तो अच्छे थे, अब यह क्या हुआ ?'

इस प्रश्न का मर्म और उनके अन्तिम आदेशो का अर्थ मेरे मस्तिष्क मे घूम गया । मैने प्रार्थना के स्वर मे नर्स से कहा—'डाक्टर को जल्दी बुलाइए ।'

वह तेज कदमो से डाक्टर को बुलाने चली गई । मै लपककर मेट के कमरे मे टेलीफोन करने गया और शाहदरा भाभीजी को फोन किया कि तुरन्त आएँ । एक फोन मेने चीफ मैडीकल आफिसर के बगले पर भी उन्हे शीघ्र आने के लिए किया । डाक्टर युद्धवीरसिंह को भी फोन किया ।

१० १२ मील दूर शाहदरे से भाभीजी आधा घण्टा मे ही अस्पताल पहुँच गइ, परन्तु मैडीकल आफिसर दो घण्टे बाद आए । इस बीच मे अटेडिंग डाक्टर ने आकर उन्हे देखा । अब वह निश्चित रूप से मृत्यु मुख मे जा रहे थे । डाक्टर ने इन्जेक्शन लगाए और भी कन्सल्टेशन हुआ, परन्तु कुछ लाभ नही हुआ । मूत्र नली से खून भी निकल रहा था । कपडे खूनमे सन गए थे । स्टाफ नर्स को जब यह ज्ञात हुआ कि मैडीकल आफि-सर उन्हे देखने आ रहे है,तब उसने शीघ्रता से आकर उनके वस्त्र बदले । इस समय वे

डाक्टरो की बदली हुई। रात के दस बजे नए डाक्टर आए। उन्होने बारी बारी स प्रत्येक मरीज को देखा। बारी आने पर उन्हे भी देखा और देखकर कहा—ओ० के०।

मैने कहा—'डाक्टर, तबियत सुधर नही रही है।'

'क्या तुम डाक्टर हो ?'

मै खीझकर चुप होगया। बारह बजे एक बजा। उनकी कराहना और छटपटाहट बढती गई। श्वास गति भी बिगडती दीखी। उपकाइ और हल्की वमन आती रही। डाक्टर को बुला कर मैने दिखाया। देखकर बोले—'सो जाइए मिस्टर शास्त्री।'

उन्होने क्षीण स्वर मे कहा—'नीद नही आती।'

डाक्टर नस से सोने का इजेक्शन लगाने को कहकर चले गए। नर्स ने इजेक्शन लगा दिया, पर नीद नही आई। फिर डाक्टर को बुलाया गया, उसने एक और इजेक्शन सोने का लगा दिया और यह कह कर कि 'सो जाइए मिस्टर शास्त्री' फिर चले गए। नीद फिर भी नही आई। डाक्टर को फिर बुलाया। उसने तीसरा इजेक्शन सोने का लगाया। इस समय रात के २॥ बजे थे। वार्ड म और भी कुछ मरीज कष्ट से कराह रहे थे। डाक्टर ने उन सबसे आज्ञाभरे स्वरम कहा—'चुपचाप सो जाओ भाई।' और वह वार्ड की बत्तिया बद करके अधेरा करके चले गये। मैने कहा—'इनकी तबियत बहुत खराब है, बत्ती बद मत कीजिए। अधेरे म इनको देखना ही कठिन हो जायगा।'

'अधेरा होनेसे सबको नीद आयगी। आपभी सोइए मिस्टर। बार बार परेशान क्यो करते हे।'

वे मेरा उत्तर सुनने लिए रुके नही, चले गए। अधेरे मे उनकी कराह मै सुन रहा था। दूर पर कुछ और मरीजो की भी कराह मेरे कानामे पड रही थी। कुछ देर बाद मैंने वार्ड मे अपने पास वाली बत्ती जलादी। उजाला देखकर नर्स अपने कमरे से निकल आई और बोली—'डाक्टर मना कर गए है।' वह बत्ती बन्द करके चली गई। निरुपाय शेष रात्रि उसी अधकार मे व्यतीत हुई। प्रभात हुआ। सात बजे और ड्यूटी बदल कर नए लोग आए। नर्सों ने आकर सब मरीजो के मुह म थर्मामीटर लगाकर टेम्प्रेचर लेना और नब्ज देखकर नाडी की गति रोगी-चार्ट पर लिखना शुरू किया। कपडे बदलने वाली नर्से मरीजो के वस्त्र और पलग की चादरे बदलने लगी। उनके पास भी एक नर्स पलग की चादर और वस्त्र बदलने आई, पर मैने उसे यह कहकर रोक दिया कि इन्हे तनिक भी छेडना खतरनाक है। वह चली गई। उस हलचल और वार्त्तालाप से मानो उनकी तन्द्रा भग हुई। उन्होने क्षीण स्वर मे मुझसे पूछा—'दिन क्या ?'

'मगल है।'

'टाइम ?'

'साढे सात बजे है ?'

'दूध आया ?'

'जी हा।'

'आधा प्याला बढिया कॉफी बनाओ।'

'अच्छा, अभी बनाता हूँ।'

'वे आइ ?'

सकेत पत्नी से था। मैने कहा—'नौ बजे तक आयेगी।'

'तुम सब मिलकर प्रेम से एकत्र रहना, लडना नही।' उनकी काफी पीने की इच्छा जानकर जो प्रसन्नता और सा त्वना मन म हुई थी वह यह वाक्य सुनकर उड गई। सुनकर मै कॉफी बनाने के लिए जाता जाता रुक गया।

उन्होने फिर कहा—'मुन्ना को खूब पढाना, योग्य लडका ढूढकर व्याह करना।' शब्द अत्यन्त क्षीण थे कि तु मेरे हृदय की मानो गति ही रुक गई। मैने उनके सिर पर बालो मे प्यार से हाथ फेर कर कहा—'आप अच्छे हो जायेगे, ऐसा क्यो कहते है।' पर आखे मेरी भर आई और वाणी अवरुद्ध हा गई। कुछ ठहर कर आखे मदे ही मूदे उन्होने प्रश्न किया—'काफी बन गई ?'

'अभी लाया।' कहकर मे कॉफी बनाने चला गया। मैने बिजली के हीटर से गरम पानी लिया, काफी डाली और दूध गरमाया। ग्लूकोज मिलाकर प्यालेमे ले आया। बडे यत्नसे दो तीन चम्मच ही पी सके, सास मे तकलीफ होने लगी। मैने शकित होकर उनकी चेष्टाओ को देखा। सास धीमी होती जा रही थी, आखे पथराने लगी थी। मैने सामने जाती हुई बडी नस को पुकारा। वह आकर खडी होगई और श्वास गति को देखकर उसने कहा—'शाम तक तो अच्छे थे, अब यह क्या हुआ ?'

इस प्रश्न का मर्म और उनके अन्तिम आदेशो का अथ मेरे मस्तिष्क मे घूम गया। मैने प्राथना के स्वर मे नस से कहा—'डाक्टर को जल्दी बुलाइए।'

वह तेज कदमो से डाक्टर को बुलाने चली गई। मै लपककर मेट के कमरे मे टेलीफोन करने गया और शाहदरा भाभीजी को फोन किया कि तुरन्त आएँ। एक फोन मने चीफ मैडीकल आफिसर के बगले पर भी उन्हे शीघ्र आने के लिए किया। डाक्टर युद्धवीरसिह को भी फोन किया।

१० १२ मील दूर शाहदरे से भाभीजी आधा घण्टा मे ही अस्पताल पहुँच गई, परन्तु मैडीकल आफिसर दो घण्टे बाद आए। इस बीच मे अटेन्डिग डाक्टर ने आकर उन्हे देखा। अब वह निश्चित रूप से मृत्यु मुख मे जा रह थे। डाक्टर ने इन्जेक्शन लगाए और भी कन्सल्टेशन हुआ, परन्तु कुछ लाभ नही हुआ। मूत्र नली से खून भी निकल रहा था। कपडे खूनमे सन गए थे। स्टाफ नस को जब यह ज्ञात हुआ कि मैडीकल आफिसर उन्हे देखने आ रहे है,तब उसने शीघ्रता से आकर उनके वस्त्र बदले। इस समय वे

सज्ञा मे नही थे। सास मे रुकावट पैदा हो गई थी, मन मे घुर घुर शब्द होता था। उन्हे तनिक भी हिलाना डुलाना खतरनाक था। हमारे मना करने पर भी नर्स ने उनको इधरसे उधर हिलाकर वस्त्र और पलगकी चादर बदलकर ही दी। इससे उनकी श्वास गति और भी बिगड गई। भाभी आखो मे आसू भरे अपने पति से प्रश्न कर रही थी, पर उत्तर एक का भी न दे सकते थे, न मुख से। उनके खुले नेत्र अवश्य उन्हे देख रहे थे। उनकी वाणी क्रिया जा चुकी थी। मेडीकल आफिसर के साथ और भी डाक्टर आए थे, देखभाल कर उन्होने एक नया इजेक्शन तजवीज किया। हार्ट की गति पल पल पर बिगड रही थी। परन्तु गति बिगडने का कारण उनकी समझ मे नही आ रहा था। नए इजेक्शन की दवा अस्पताल मे नही थी, पुर्जा लिख कर बाजार से मगाने को कहा गया। मै स्वय दरियागज टैक्सी मे जाकर वह दवा लाया, बहुत कीमती थी। डाक्टरो ने यह इजेक्शन बहुत बडी आशा से लगाया, परन्तु कोई परिणाम नही निकला।

प्रात सात बजे से दोपहर एक बजे तक वह मृत्यु से यथाशक्ति सघर्ष करते रहे। बीच मे कुछ चेतनाशक्ति सचय करके उन्होने पत्नी से कहा 'मुन्नी'

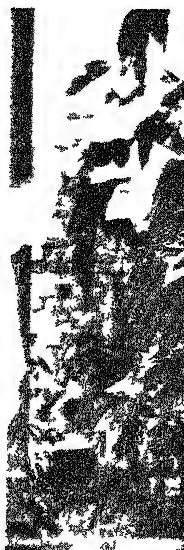
बालिका मुन्नी अभी तक घरपर शाहदरा थी। तुरन्त आदमी भेजकर उसे अरविन अस्पताल बुलाया गया। उसके पहुँचने पर जब उसे उनके सम्मुख किया गया, तब दैवीशक्ति ने उन्हे प्रेरणा दी। उनका दाहिना हाथ धीरे धीरे उठा और पुत्री के मस्तक पर लग गया। सिर पर हाथ फेरा और अटूट प्यार आखो मे भरकर उसकी ओर देखते रहे। सभी इस करुण दृश्य को देखकर अपने आवेग को कठिनाई से रोक रहे थे। पुत्री ने कहा—'पापा'। जब हृदयगति अत्यन्त क्षीण हो गयी तब दोपहर को एक बजे हृदय को जाचा गया। इसके बाद डाक्टरो ने सबको वहा भीड न करने का अनुरोध किया। सब वहाँ से हट गए। एक्सरे मशीन लाकर हृदय का एक्सरे लिया गया। हृदय की खराबी जानने का यही एकमात्र उपाय था। एक्सरे की प्लेटे धोकर रूम मे लाने के लिए भेजदी गई। सब सम्भव उपचार जो तेजी से किए जा रहे थे, अब फोटो आने की प्रतीक्षा मे शिथिल कर दिए गए।

परन्तु मानो वह दृढ चरणो से स्वर्गारोहण कर रहे थे। कोई वेदना, कोई कष्ट, कोई असुविधा उन्हे प्रतीत नही हो रही थी। भाभी जी का क्या पूछना। वह एक टक अपने यशस्वी पतिके मुखको देखरही थी और भगवान से प्रार्थना कर रही थी। उन्होने एक डाक्टर के चरण पकड कर आसू बहाते हुए प्रार्थना की—'उन्हे किसी प्रकार बचा लीजिए।' डाक्टर विचलित होकर चलदिए। उनकी नाकमे रबरकी नली डालकर हलक मे उतार दी जाती थी और उसे अन्दर तक पहुँचा कर उसके बाहरी सिरे मे पिचकारी लगाकर अन्दर का बलगम खीच कर बाहर निकाला जाता था। घटे आध घटे मे यह

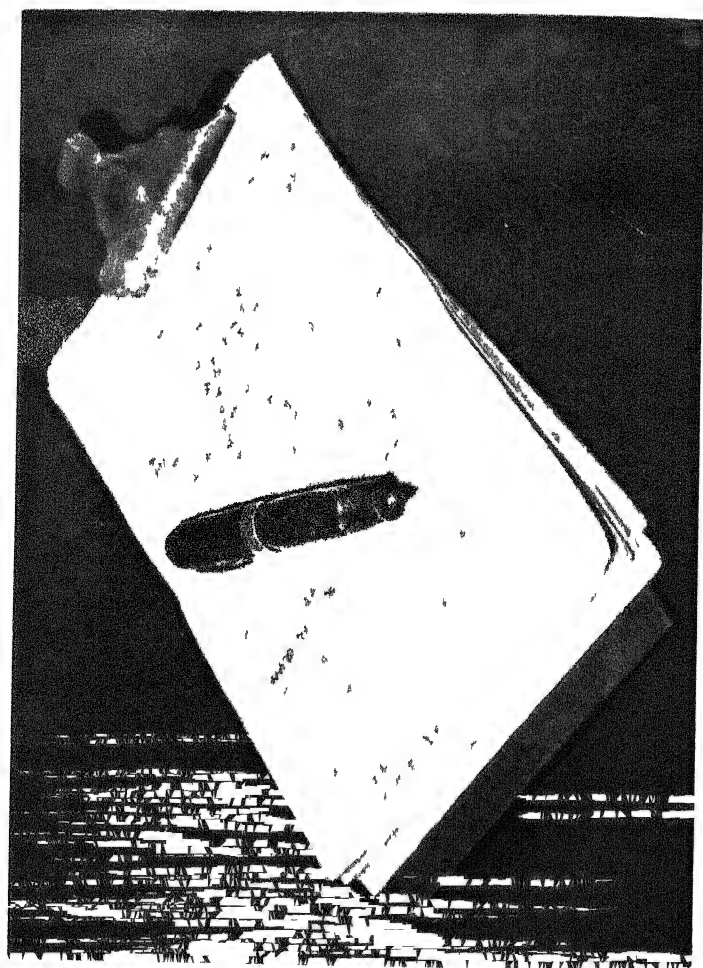


१९२५





१९४४



क्रिया की जाती थी। इस क्रिया मे जब नली उनकी नाक मे ठूसी जाती, तब उ हे बडा कष्ट होता था। अ तिम बार जब यह क्रिया की गई तो वह कष्ट से छटपटा गए। भाभी यह न देख सकी। उ होने डाक्टर से कहा—'अब नली मत लगाइए, ये कभी सरसो का तेल भी सूघना बरदास्त नही कर सकते थे, इस नली का ठूसा जाना कैसे बरदाश्त करेगे। इनकी कोमल प्रकृति पर भी तो विचार कीजिए।' डाक्टर ने नली निकाल ली। परन्तु उनकी श्वासगति बहुत बिगड चुकी थी, अभीतक हार्टकी एक्सरे भी धुलकर नही आई थी कि इसी समय डाक्टर युद्धवीरसिंह भी वहा आए। उन्होने भी डाक्टरो से विशेष ध्यान देने को कहा। अ त मे दोपहर के एक बजकर पतीस मिनट पर इस साहित्य मनीषी ने धीरे से अ तिम श्वास ली और भाभी चीख मारकर उनके वक्ष पर गिर पडी। अरविन अस्पताल के उस कक्षमे रुदन और क्रन्दन का स्रोत बह चला।

विद्युत वेग से यह दारुण समाचार शहर मे फैल गया। आचार्यजी के बाल सखा और सबसे पुराने अन्यतम मित्र डाक्टर युद्धवीरसिंह और श्री जनेन्द्रकुमार दौडे आए। सबकी आखे बरस रही थी। तीन का समय होते होते उनके दर्शन करने अनेक मित्र और सम्बन्धी आने लगे। श्री हसराज रहबार, बहुत उत्सुकता से उनका कुशलक्षेम पूछने और देखने आए थे, परन्तु वहा पर सब लोगो को अश्रुपूरित नीची गर्दन किए एकत्र देख और सबके बीच मे 'स्ट्रेचर' पर कम्बल से ढके हुए आचार्य श्री का निश्चेष्ट दिव्य शरीर देखकर वह चीखकर रो पडे। जो आया वही इस अप्रत्याशित स्वर्गारोहण पर अवाक और स्तब्ध रह गया। आचार्य परिवार श्रीहीन होकर अनाथ बना खडा था। मध्याह्नके रेडियो समाचारमे उनका मृत्यु समाचार सुना दिया गया था। दिल्ली मे साहित्यिक बन्धु रेडियो के इस समाचार पर विश्वास नही कर सके। टलीफोन खडके और सब अपना अपना काम धधा छोडकर इरविन अस्पताल आने लगे।

हमने उनका शव अपने निवास स्थान शाहदरा लाने का प्रयत्न किया। अस्पतालसे निवास स्थान १० १२ मील दूर है, परन्तु चार घटे तक भी एम्बूलेन्स गाडी हमे नही मिली। दिन ढलने लगा था। इसी समय सब लोगो का ध्यान उनके शव की ओर गया। पिछले चार पाच घटो मे उनके शरीर मे ८० ९० बार इजेक्शन लगाए गए थे। ओषधियो और क्लोरोफार्म के विष का भी प्रभाव था कि शव का पेट फूलने लगा था। अत उन्हे शाहदरे लाने का विचार त्याग देना और वही से सीधे यमुना तट पर निगमबोध घाट ले जाकर तुरन्त शवदाह करने का निर्णय करना पडा। जिसके कारण दिल्ली के आसपास नगरो से आने वाले व्यक्तियो (जो अगले प्रात काल ज्ञानधाम पहुँचे) को उनके अन्तिम दर्शन करने और शवयात्रा मे सम्मिलित होकर महान साहित्यकार के प्रति पुष्प श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने से विवश वचित रह जाना पडा।

अन्त मे हमने उन सब अश्रुपूरित जन समुदाय के साथ उनके शवयात्रा की

तयारी की। सूर्य अस्त होने पर हम उन्हें यमुना तटपर निगमबोध घाट की ओर ले जा रहे थे। श्री अक्षयकुमार जैन, मुकुटबिहारी वर्मा, जैनेन्द्र, गोपालप्रसाद व्यास प्रभृति साहित्य पुत्रों ने मौन भाव से उन्हें उस स्थान पर उतारा जहाँ उनके पंचभूत शरीर को अग्नि भस्म करने वाली थी।

सब मित्र, सम्बन्धी और परिवार जनों ने उनके चरणों में अन्तिम पुष्पमालाएं चढाई, प्रणाम किया और दर्शन किये। चिता बनायी गयी और उस पर उनका शरीर रख दिया गया। विधि का विधान अटल मानकर रोते रोते परिजनों ने उन्हें अग्नि दी और वेद मन्त्रों के बीच अग्नि ज्वालायें तीव्रतर होती गयी।

परिशिष्ट अंश

इस ग्रंश मे उस विशिष्ट सामग्री को प्रकाशित किया जा रहा है, जो उनके साहित्यिक जीवन से निकटतम सम्बन्धित है। 'मेरी आत्म कहानी' को प्रकाशित करते समय 'चतुरसेन साहित्य समिति' द्वारा यह सामग्री अत्यन्त खोज और कठिन श्रम से संग्रहीत की गई है।

अ—बालकाल की प्रारम्भिक रचनाएं।

आ—१६१६–१६२५ के मध्यकाल की कविताएं।

इ—राजनैतिक और साहित्यिक विचार।

ई—पत्र व्यवहार।

उ—रचनाओं की क्रम तिथि।

ऊ—साहित्य का प्रकाशन।

(सन् १६१५ मे आचार्यश्री ने पहिला उपन्यास 'अपराधी' लिखा। परन्तु यह उपन्यास प्रकाशित नही हुआ। लिखकर रखा रहा। अब खोजने पर इस उपन्यास की मूल पाण्डुलिपि मे आरम्भ के ही कुछ पृष्ठ मिले, जिनमे कथानक नहीं है। इस कृति से लेखक की प्रारम्भिक शली का आभास होगा। पाण्डुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर आरम्भ मे लेखन समय दिया गया है—२४-६-१५, रात्रि १२ बजे)

अपराधी

प्रथम परिच्छेद

चादनी खूब मजे की चटक रही थी। समय बारह से कुछ ही अधिक होगा। जिला बिजनौर के किसी छोटे से गाँव के उत्तर दिशा स्थित एक कच्चे घर मे लगभग दस बारह आदमी किसी गुप्त मन्त्रणा मे सलग्न थे। उनकी चेष्टा और चचलता से प्रकट होता था कि उन्हे किसी की प्रतीक्षा है। बार बार वे चौकन्ने होकर खडके को देखते और फिर विचार मे बैठ जाते। अन्त मे एक ने कहा—

'आदमी तो भरोसे का है न ?

दूसरा—'भरोसा क्या माने, मैंने उसे खूब पक्का कर लिया है।

पहला—तब तो वह आवेगा ही, धोखा नही हो सकता।

दूसरा—धोखा ? वाह ! धोखे की एक ही कही, वह आवेगा और अवश्य आवेगा। पर एक बात है बूटासिह ! म तुमसे पहले ही कहे देता हूँ, वह बडा सीधा-सच्चा आदमी है, बेचारा गरीबी और कर्ज मे पिस रहा है। लाचार हो हमारे काम को हामी भरी है, एक लोभ पर, देखना ऐसी कोई बात न निकालना कि उछल जाय, क्योकि चिडिया अनमोल है, निकली कि बस निकली है। यह अच्छी तरह समझ लेना।

बूटा—'तुमने क्या मुझे घोघाबसन्त समझ रखा है। १७ वर्ष इसी काम मे निकाले है, ये बाल धूप मे नही सफेद किए, मुझे क्या इतनी भी समझ नही है ? तुम खातिर जमा रखो केसरीसिह !'

बूटा इतना ही कह पाया था कि टड्डा ने उन्हे रोक कर कहा—'सुनो सुनो, देखो किवाड पर किसी ने थपकी दी है।' सब कान लगा उधर ही को देखने लगे। अब फिर थपकी सुनकर टड्डा खुद किवाड खोलने गया। आगन्तुक वही था जिसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पाठको को इसका विशेष परिचय तो आगे मिलेगा, पर यहा इतना कहे देते है, यह एक गठीला बलिष्ट जवान था, पर मुख पर सादगी और नेत्रो मे मूर्खता भापने वालो से छिपी नही थी। किवाड खुलते ही उसने कहा—'केसरी है न ?'

'हा है, भीतर आओ ।' इतना कह उसे भीतरकर टड्डाने द्वार बन्द कर दिया ।

आगन्तुक कुछ घबराया सा था, वह बहुत ही धीरे धीरे झिझकता सा आगे बढ रहा था, उसने सशङ्क चित्त दबी जबान मे पूछा—'और कौन कौन है वहा ?'

'सब अपने ही आदमी है, चिन्ता की कोई बात नही है ।' इतना कहकर टड्डा उसे मण्डली मे ले आया । उसे देखते ही सब बोल उठे–'यह लो ये आ गए ।'

केसरी ने कहा—'मैने कहा था न कि कभी न रुकगे ।'

बूटासिह ने हाथ बढा कर कहा—'इधर आजाओ दोस्त ।

आगन्तुक अभी घबरा रहा था । उसका दिल धडक रहा था । इस मण्डली मे उसका प्रथम प्रवेश है यह स्पष्ट दीख पडता था । उस अपरिचित मण्डली मे केसरीसिंह ही उसका परिचित था, उसी को लक्ष्य करके और किसी ओर न देखकर उसने कहा–'केसरी ! अब तो मै जाता हू तुम कल दिन मे आकर सब ठीक कर जाना, न हो तो मुझे ही बुला भेजना ।

केसरी ने उठकर उसका हाथ पकड कर दिलासा देते हुए कहा–'क्या इन दोस्तो से कुछ पर्दा है । ये सब बहादुर एक कालिब दो जान है । एक बार दोस्ती का दम भरने पर मरते दम तक निबाहने वाले हैं । इनकी बोटी बोटी काट दो पर दोस्त के खिलाफ जबान न हिलाएँगे । इनके चमडे की जूती बनाओ, ये उज्र न करेंगे । यह देखो यही सर्दार बूटासिह हैं, जिनकी बहादुरी का सिक्का जिले भर मे है । (बूटासिह से) और सरदार जी, यही मेरे दोस्त बनारसीदास है ।'

बूटासिह—'अच्छा, जिनकी आपने कल तारीफ की थी, सचमुच बडे बहादुर, सच्चे और मिलनसार मालूम होते है । आओ दोस्त, एक बार मिलो तो ।' इतना कह कर बूटासिह ने खडे होकर आगन्तुक को छाती से लगा लिया, फिर बूटा ने हाथ पकड कर पास बैठाकर कहा–'ये केसरीसिह मेरे जिगरी दोस्त है, इन्हे मैं अपना दाहिना हाथ समझता हूँ । जब से इन्होने तुम्हारी तारीफ करी मुझे मिलने का शौक हो गया था । और जब से इन्होने तुम्हारी गरीबी, कर्ज और बइज्जती की बात कही, तब से तो बस मिलने को दिल उमडा पडता था । भला ऐसा बहादुर जवान गुलामी के टुकडे खावे ? बडे अफसोस की बात है गोपाल ! देखो तो कैसा बदन है, कैसा मिजाज है, जैसा सुना उससे ज्यादा पाया ।'

गोपाल—'इसमे क्या शक है, बडे खानदान के है । बेचारे बिगड गए, मजबूरन गुलामी करनी पडी । नहीं तो इनकी लोग गुलामी करते ।'

बूटासिह ने बात काटकर कहा–'अजी तुम्हे खबर नहीं । इन्ही लोगो ने इनका खानदान बर्बाद किया है जिनकी सामने हवेली चमक रही है । ये साले किसके टुकडो से पले थे । एक दिन था कि इनके बाबा इन्हे चने बाँटा करते थे, पर छल छिद्र, दगा

फरेब से सब छीन लिया, अब भलेमानस बनकर साहू बने बैठे है ।'

गोपाल– तो अब उनके दिन भी पूरे हुए समझो, भगवान भी देखता है । जिसकी माया उसीको साजे । जिसे बर्बाद किया है, उसीसे बर्बाद होगे भी । क्योकि बबूल बोने से काटा ही हाथ आता है ।'

बूटा— बेशक ! इसीलिए हमने इन्हे अपने साथ लिया है । पर आप लोगो को मेरी एक बात माननी होगी, इस मामले मे इन्हे दूना हिस्सा मिलना चाहिए ।'

केसरी—'हा इसकी मैं भी ताईद करता हूँ, कि इनका हक भी है ।'

बूटा—'आप कहे चाहे न कहे । बूटा कभी दोस्तो मे बहक बात नही कहता, बेवकूफ साले हमे डाकू लुटेरा कहते है, पर कोई सोचे तो कि लुटेरे वे है जो पराया हडप लेते हैं और डकार भी नही लेते, न कि हम जो एक गरीब दोस्त को, जिसकी गिरस्ती डगमगा रही है उसका हक दिलाते है ।'

आगन्तुक अब तक चुपचाप बैठा सबकी बाते सुन रहा था । उसकी अजीब दशा थी । वह कभी भय से काँप उठता, कभी लोभमे फँस जाता, कभी हिम्मत बाधता और कभी भागनेको छटपटाता । अब इतनी बाते सुनकर उसे भी साहस हुआ । उसने नम्रता से कहा—'मगर मेरा दिल तो कहता है इन झगडो मे पडना अच्छा नही । जिस तरह कटती है कटने दे, भगवान की मरजी होती तो सभी क्यो जाता ।'

बूटासिंह ने हँसकर केसरीसिंह से कहा— देखा केसरीसिंह ! कसा भला आदमी है, कैसा सन्तोषी है, अगर इसको हम मदद न दे सके तो लानत है हमारी दोस्ती को ।'

केसरीसिंह—'सचमुच मुझे तो बेचारे के बच्चो की याद करके रोना आता है । तन पर चीथडे नही, बेचारा छ रुपए कमाता है, करे भी तो क्या करे । बनवारीलाल, देखो भाई भगवान सबके दिन फेरता है। अब तुम्हारी भी बारी है, भगवान ने चाहा तो बारे के न्यारे हो जावेगे ।'

आगन्तुक ने हडबडा कर कहा—'पर मुझसे सब होगा कैसे ? मेरा तो अन्दर से कलेजा धडक रहा है ।'

केसरी ने बात काटकर कहा–'देखो भाई, जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ । बिना रोये तो मा भी दूध नही पिलाती । जब भाग्योदय के सब सामान जुट गए हे तो अपनी बुजदिली से सब चौपट मत करो । डर क्या है, हम सब है ही और तुम्हे तो ज्यादा काम भी न करना पडेगा, खतरे का काम तो हमारा ही हे । तुम्हारा काम तो बालको सा सीधा है और हिस्सा दूना । देखते हो सरदार कितने मेहरबान है ?'

बनवारी ने नम्रता से कहा—'सरदारजी की कृपा है । अच्छा तो मुझे क्या करना होगा यह तो कहो ?'

केसरी—'अधिक कुछ नही । ठीक बारह बजे किवाड खोल देना, रोकड का

'हा है, भीतर आओ।' इतना कह उसे भीतरकर टड्डाने द्वार ब द कर दिया।

आग तुक कुछ घबराया सा था, वह बहुत ही धीरे धीरे झिझकता सा आगे बढ रहा था, उसने सशक चित्त दबी जबान से पूछा—'और कौन कौन है वहा ?'

'सब अपने ही आदमी है, चि ता की कोई बात नही है।' इतना कहकर टड्डा उसे मण्डली मे ले आया। उसे देखते ही सब बोल उठे—'यह लो ये आ गए।'

केसरी ने कहा—'मैने कहा था न कि कभी न रुकगे।'

बूटासिह ने हाथ बढा कर कहा—'इधर आजाओ दोस्त।

आगतुक अभी घबरा रहा था। उसका दिल धडक रहा था। इस मण्डली मे उसका प्रथम प्रवेश है यह स्पष्ट दीख पडता था। उस अपरिचित मण्डली मे केसरीसिह ही उसका परिचित था उसी को लक्ष्य करके और किसी ओर न देखकर उसने कहा—'केसरी! अब तो मै जाता हूँ तुम कल दिन म आकर सब ठीक कर जाना, न हो तो मुझे ही बुला भेजना।

केसरी ने उठकर उसका हाथ पकड कर दिलासा देते हुए कहा—'क्या इन दोस्तो से कुछ पर्दा है। ये सब बहादुर एक कालिब दो जान है। एक बार दोस्ती का दम भरने पर मरते दम तक निबाहने वाले है। इनकी बोटी बोटी काट दो पर दोस्त के खिलाफ जबान न हिलाएँगे। इनके चमडे की जूती बनाओ, ये उज्र न करेंगे। यह देखो यही सर्दार बूटासिह हैं, जिनकी बहादुरी का सिक्का जिले भर मे है। (बूटासिह से) और सरदार जी, यही मेरे दोस्त बनारसीदास है।'

बूटासिह—'अच्छा, जिनकी आपने कल तारीफ की थी, सचमुच बडे बहादुर, सच्चे और मिलनसार मालूम होते है। आओ दोस्त, एक बार मिलो तो।' इतना कह कर बूटासिह ने खडे होकर आग तुक को छाती से लगा लिया, फिर बूटा ने हाथ पकड कर पास बैठाकर कहा—'ये केसरीसिह मेरे जिगरी दोस्त है, इन्हे मैं अपना दाहिना हाथ समझता हूँ। जब से इन्होने तुम्हारी तारीफ करी मुझे मिलने का शौक हो गया था। और जब से इ होने तुम्हारी गरीबी, कर्ज और बइज्जती की बात कही, तब स तो बस मिलने को दिल उमडा पडता था। भला ऐसा बहादुर जवान गुलामी के टुकडे खावे ? बडे अफसोस की बात है गोपाल! देखो तो कसा बदन है कसा मिजाज है, जैसा सुना उससे ज्यादा पाया।'

गोपाल—'इसमे क्या शक है, बडे खानदान के हैं। बेचारे बिगड गए, मजबूरन गुलामी करनी पडी। नही तो इनकी लाग गुलामी करते।'

बूटासिह ने बात काटकर कहा—'अजी तुम्हे खबर नही। इन्ही लोगो ने इनका खानदान बर्बाद किया है जिनकी सामने हवेली चमक रही है। ये साले किसके टुकडो से पले थे। एक दिन था कि इनके बाबा इ हे चने बाँटा करते थे, पर छल छिद्र, दगा

फरेब से सब छीन लिया, अब भलेमानस बनकर साहू बने बैठे है।'

गोपाल– तो अब उनके दिन भी पूरे हुए समझो, भगवान भी देखता है। जिमकी माया उसीको साजे। जिसे बर्बाद किया है, उसीसे बर्बाद होगे भी। क्योकि बबूल बोने से काटा ही हाथ आता है।'

बूटा— बेशक! इमीलिए हमने इन्हे अपने साथ लिया है। पर आप लोगो को मेरी एक बात माननी होगी, इस मामले मे इन्हे दूना हिस्सा मिलना चाहिए।'

केसरी—'हा इसकी मैं भी ताईद करता हूँ, कि इनका हक भी है।'

बूटा—'आप कहे चाहे न कहे। बूटा कभी दोस्तो मे बेहक बात नही कहता, बेवकूफ साले हमे डाकू लुटेरा कहते है, पर कोई सोचे तो कि लुटेरे वे है जो पराया हडप लेते हैं और डकार भी नही लेते, न कि हम जो एक गरीब दोस्त को, जिसकी गिरस्ती डगमगा रही है उसका हक दिलाते है।'

आगन्तुक अब तक चुपचाप बैठा सबकी बाते सुन रहा था। उसकी अजीब दशा थी। वह कभी भय से काप उठता, कभी लोभमे फँस जाता, कभी हिम्मत बाधता और कभी भागनेको छटपटाता। अब इतनी बाते सुनकर उसे भी साहस हुआ। उसने नम्रता से कहा—'मगर मेरा दिल तो कहता है इन झगडो मे पडना अच्छा नही। जिस तरह कटती है कटने दे, भगवान की मरजी होती तो सभी क्यो जाता!'

बूटासिंह ने हँसकर केसरीसिंह से कहा— देखा केसरीसिह! कैसा भला आदमी है, कैसा सन्तोषी है, अगर इसको हम मदद न दे सके तो लानत है हमारी दोस्ती को।'

केसरीसिह—'सचमुच मुझे तो बेचारे के बच्चो की याद करके रोना आता है। तन पर चीथडे नही, बेचारा छ रुपए कमाता है, करे भी तो क्या करे। बनवारीलाल, देखो भाई भगवान सबके दिन फेरता है। अब तुम्हारी भी बारी है, भगवान ने चाहा तो वारे के न्यारे हो जावेगे।'

आगन्तुक ने हडबडा कर कहा—'पर मुझसे सब होगा कैसे? मेरा तो अन्दर से कलेजा धडक रहा है।'

केसरी ने बात काटकर कहा–'देखो भाई, जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ। बिना रोये तो मा भी दूध नही पिलाती। जब भाग्योदय के सब सामान जुट गए है तो अपनी बुजदिली से सब चौपट मत करो। डर क्या है, हम सब है ही और तुम्हे तो ज्यादा काम भी न करना पडेगा, खतरे का काम तो हमारा ही है। तुम्हारा काम तो बालको सा सीधा है और हिस्सा दूना। देखते हो सरदार कितने महरबान हैं?'

बनवारी ने नम्रता से कहा—'सरदारजी की कृपा है। अच्छा तो मुझे क्या करना होगा यह तो कहो?'

केसरी—'अधिक कुछ नही। ठीक बारह बजे किवाड खोल देना, रोकड का

ओर सेठ कहा सोते ह उसका पता बताना । गन चाभी नजर म रखना बस ।'

बनवारी ने कुछ सोच कर कहा – 'बात तो कुछ नही पर मे पुराना नौकर हू, कसे कपट करू । नमक खाया है, नमकहरामी भी तो होगी ।'

अब केसरी ने जोर स हँसकर कहा – 'नमकहरामी की एक ही कही। क्या वह दस रुपए मे दस रुपए का काम नही लगाता है ?'

'काम अजी काम का क्या कहना है दिन भर कोल्हू के बैल की तरह पिसता हूँ। दूसरा होता तो कब का रस्सा तुडा भागा होता, मै ही हूँ जो जम रहा हू।'

केसरी—'तो फिर ? नमक तुम उसका खाते हो या वह तुम्हारा। अरे भाई जो घर बैठे तनखा देता तो वैसी बात कही जा सकती थी।'

बनवारी—'ठीक कहते हो। तिस पर भी सीधे मुह बात नही करता, जसे मे आदमी ही नही हूँ।'

केसरी—'बस तो। तुम्ही जानो। तुम्ही हो जो यह सब सह रहे हो। सच जानो मै होता तो अब तक कब का जह नुम रसीद करता।'

बनवारी—'पर भाई करे क्या। गरीब आदमी। बिना खाए तो एक दिन भी नही चले। तुम जानो गुलामी तो गुलामी ही है।'

केसरी—'बस कल से तोड दो गुलामी की फासी।'

बनवारी— 'अच्छी बात है। पर एक बात है, मै भी साथ ही भागूगा क्योकि पीछे बिना जान मारे थोडे ही छोडेगा ?'

केसरी—'हा ऐसा तो होना ही चाहिए। आखिर तुम्हे अपना दुगुना हिस्सा भी तो लेना है।'

बनवारी—'अच्छा तो मे चला। देखो किसी को कानोकान खबर न हो।'

केसरीसिह- 'अजी कोई बात कहते हो ? अच्छा चलो तुम्हे बाहर पहुँचा दू, बडी तकलीफ दी है।'

दूसरा परिच्छेद

दिन अच्छी तरह निकला भी नही था। रातभर मच्छरो के सताये हुए लोग अब सवेरे की गुलाबी सर्दी मे एक मीठी झपकी ले रहे थे। गाव मे सन्नाटा था। उसी सन्नाटे को तोड कर भजनलाल साहु के घर से हाय पुकार का रोना उठा। लोग एकदम अक चका कर उठ बैठे। जिसे चेत होता गया, वह सीधा साहु की हवेली को दौडता गया। सूरज निकलते निकलते गम गम करके साहु जी की बडी हवेली भर गई। सारा गाव इकट्ठा हो गया। क्या बालक क्या बूढे सभी आँखे फाड फाड कर देखने लगे। साहजी के घर की चौखा चौगा धरती खुदी पडी है। सन्दूक टूटे पडे है। सामान बिखर रहा है। साहजी–'हाय लुट गया, मर गया' कह कर धरती आसमान एक कर रहे है।

शहर कस्बे के तो मामले ही और होते है, वहा तो किसी के आग लग जाय तो लोग तमाशा देखा करते है। एक घर मे गमी हो गई है तो बराबर के घर मे गाना बजाना और चार दोस्तो की चुहल बेखटके होती रहती है। मानो सामाजिक जीवन नष्ट ही हो चुका है। परस्पर की सहानुभूति मानो मर ही गई है। पर बाहर देहातो मे इस खुदगर्जी की छूत नही है। वहाँ ब्राह्मण से लेकर भगी तक एक सगठन मे,एक परिवार की तरह रहते है। जब उस सगठन का प्रश्न आताहै,तब ऊँच नीच का भेद नही रहता। गाव के ब्राह्मण की नई बहू अपनी बुढिया भगन के पैर पडकर बूढ सुहागन का असीस लेती है। गाव की चमारी ठाकुर को काका चाचा ताऊ कहकर पुकारतीहै। उस सहानुभूतिमय सगठन का उदाहरण यहा दीखा। गाव का गाव उमडा आज साहजी के घर पर चला आ रहा है। बालक दौडे-दौडे आते हे और उन बडे बडे गढो और साह के पारिवारिक क्रन्दन को सुनकर अपनी स्वाभाविक चचलता को भूलकर एकटक खडे देखते रह जाते है। गाव के बूढे भी उठते ही लाठी टेकते आखे मलते गम्भीर भाव से आ रहे है। स्त्रिया मे आज प्रौढा,मुग्धा, सरला और बालिका मे भेद करना कठिन है। सभी तेजी से पाव बढाये आधा घूघट निकाले उस भीड मे मिल रही है। गाव भर मे चोरी का रौला मच रहा है। जितने मुह उतनी बात। कोई कहता है–'भाई,बडी भारी चोरी हुई।' किसी ने कहा—'चोरी क्या माने डकती कहो, डकैती।' तीसरे ने कहा–'डकैती मे क्या कसर है देखते नही,सारा घर छलनी हुआ पडा है।' चौथे ने कहा–'क्या ठीक हे इस माया का। अटूट सम्पत्ति थी।'एक ने कहा–'पर सभी लुट गई, भूजी भाँग भी नही रही। एक बोला—'बडा पुराना घर था। पुस्त दर पुस्त की कमाई पल भर मे उड गई।' एक बूढे बाबा बोले–'इसी से कहा करते हे नेकी कर और कुए मे डाल, जाने कब क्या हो। करले सो काम, भजले सो राम। यह माया राँड ठगनी हे, सदा किसके रही हे। दूसरे बडे मिया बोले–'हा साहब ठीक कहते हो, भला हुआ जो एकाध की जान जोखो नही हुई। इसी प्रकार तरह तरह की बात हो रही थी। जहा इस तरह की सहानुभूति की बात थी,वहा कोई कोई मन ही मन प्रसन्न होकर, पास वाले आदमी से कह रहा था—'अच्छा हुआ, कजूस साला लुट गया।' दूसरे ने सुर मे सुर मिलाकर कहा—'मजी न कभी किसी का भला नही किया।' तीसरे बोले—'ऐसा था कि एक कौडी भी गिरे तो दात से उठा ले।' उधर मे एक बोले—'अब सब चौपट हो गया। वही मिसाल हुई, जोड जोड मर जाएँगे माल जमाई खाएँगे।'

भीतर स्त्रियो मे और ही गौगा मच रहा था। कोई तो गृहणी के पास जाकर झूठमूठ को रो ही रही थी। कोई–'क्या-क्या गया, क्या क्या रहा, अरी कह तो सही,' की धुन बाँध रही थी। कोई प्रवीणा अच्छी तरह टूटे सन्दूक और गढो को जाँच रही थी, और कोई रणपण्डिता अपनी मुस्कुराहट को होठो ही मे दबाकर उस दृश्य का

आनन्द लूट रही थी।

इधर यह खिचडी पक रही थी, उधर साहजी के पास ही दो चार गाव के मुखिया बैठे आश्वासन और तरह तरह की सलाह दे रहे थे। किसने यह काम किया होगा, इस पर आलोचना प्रत्यालोचना चल रही थी। इतनेही में हल्ला मचा—'दरोगाजी आगये, दरोगाजी आ गये।'

इस खबर ने दृश्य की कायापलट ही कर दी। सब रोना कराहना हाय हाय करना उड गया। स्त्रिया भयभीत होकर भीतर घुस गई। साहजी भी करारे हो गये। वे पगडी बाध मुह धो बाहर चले।

बाहर दलबल से दारोगा जी डटे हुए थे। कान्स्टेबिल भीड को हटा रहे थे। दारोगा जी मूढे पर बैठे पान कचर रहे थे। उनकी खिजाब लगी डाढी बेतरह हिल रही थी। साहजी ने सामने पहुँच कर झुक कर सलाम किया।

दारोगा ने गम्भीरता से सलाम लेकर कहा—'क्या कर डाला सेठ साहब। सब मामला साफ साफ कहो, कैसे क्या हुआ।' साहजी लगे सिर पकड कर रोने।

दारोगा ने कहा—'वाह मिया, यह रोने का वक्त है, नामर्दों की तरह रोने से क्या होता है, उठो बयान लिखाओ।'

साहजी ने हाथ जोड़कर गिडगिडाकर कहा—'सरकार लुट गया, मैं तो बर्बाद होगया। अब आपही माई बाप है। बचाओतो बच, नही मरनेम तो कसर रही नही है।'

दारोगा ने बिना कुछ जबाब दिए ही हेड कान्स्टबिल को पुकार कर कहा—'मिया विलायतअली, लाओ कलमदान कागज। अरे तुम सुस्ती से क्या मुह ताका करते हो? पुलिस के आदमी को ऐसी सुस्ती चाहिए?'

बिना ही बात इस बाते सुनकर विलायत लपककर कलमदान कागज ले आया। अब दारोगा जी बयान लिखने बैठे।

दारोगा—'हा सेठ! क्या नाम है तुम्हारा?'

सेठ—'भजनलाल, माई बाप!'

दारोगा—'बाप का नाम?'

सेठ—'करोडीमल।'

दारोगा—'अच्छा, क्या बात हुई?'

सेठ—हुजूर, क्या कहूँ कहते कलेजा थर्राता है। रात एकाएक खटका पाकर आख खुली। पहले तो कुछ समझ मे नही आया कि क्या है, पर धीरे धीरे एक परछाई सी आगे बढती दीखी। मैं डर कर चुपचाप उसे देखने लगा। मैंने समझा कोई भूत ऊत न हो। पर हिम्मत करके मैंने मुह से आवाज निकाली ही थी कि वह दौड कर गला दबा बैठा। मेरी तो जान निकल गई, और बेहोश हो गया। होश मे आने पर देखा,

कमरे मे दिया बल रहा है और चार पाच पचहत्ते जवान खाट के चारो ओर मोट मोट लठठ लिए खडे है। एक के हाथ मे कसाइयां वाला छुरा था, वह मेरी छाती पर ताने ही खडा था।'

दारोगा—'उन्होने कुछ कहा तुमसे ?'

सेठ—'जी हाँ। उन्होने कहा—'जान की खर है तो जो मालमत्ता हो बतादे, वरना यह छुरा है और छाती है।'

दारोगा—'उसके बाद ?'

सेठ–'उसके बाद तो मेरी नानी मर गई साहब। पहले तो मेरे मुहसे बोली ही नही निकली। पीछे हिम्मत करके कहा–'सब कुछ ले लो,पर जान बरस दो। इतना कहकर मैने चाभी का गुच्छा तकिये के नीचे से निकाल कर उन्हे सोप दिया।'

दारोगा—'फिर क्या हुआ ?'

सेठ—'फिर साहब, उनके और साथी घर मे घुस आए। उन्होने चाभियो से सन्दूक अलमारी खोल खोल कर मालमत्ता निकालना शुरू किया।

दारोगा—'पर घर मे खुदाई कसे हुई ?'

सेठ—'वही तो कहता हूँ साहब! जब सब ले चुके तो फिर मेरी छाती पर आ डटे कि और बता कहाँ कहा गाढ रक्खा है।'

दारोगा—'तुमने बता दिया ?'

सेठ—'क्या करता सरकार, आखिर जान के आगे क्या प्यारा है ?'

दारोगा ने हुकारा भरकर कहा—'कोई गवाह है इसका ?'

सेठ—'गवाह कौन है साहब! रात मे कौन इस डकती को देखता। सवेरे ये सब लोग आजुटे।'

दारोगा ने सिर हिलाकर कहा—'अदालत जब गवाह मागेगी तब क्या कहोगे ? वह यह नही सुनेगी कि वहाँ कौन था और कौन नही।'

सेठ साहब चुपचाप किक्तव्य होकर बठे देखते रह गये।

दारोगा जी फिर बोले—'अच्छा तुमने किसी को पहचाना ?'

'नही सरकार।'

'किसी पर शुबहा है ?'

'सो कसे कहूँ—सरकार, भगवान् देखता है मुझे किसी पर शक नही।'

दरोगा मुस्कराकर मन ही मन बडबडाने लगे–'बेवकूफ कही का क्या ऊटपटाग लिखा रहा है। विलायतहुसेन जरा इन्हे हवा खिलाओ। देखता हूँ इनका सिर ठिकाने नही है। कहता कुछ है,निकलता कुछ है ?'

विलायत लाला को घसीट कर ले चला। उधर दारोगा जी नोकर चाकर पास

आनंद लूट रही थी।

इधर यह खिचड़ी पक रही थी, उधर साहजी के पास भी दो चार गाव के मुखिया बड़े आश्वासन और तरह तरह की सलाह दे रहे थे। किसने यह काम किया होगा, इस पर आलोचना प्रत्यालोचना चल रही थी। इतने ही में हल्ला मचा—'दरोगाजी आगये, दरोगाजी आ गये।'

इस खबर ने दृश्य की कायापलट ही कर दी। सब रोना कराहना हाय हाय करना उड़ गया। स्त्रिया भयभीत होकर भीतर घुस गई। साहजी भी करारे हो गये। वे पगडी बाध मुह धो बाहर चले।

बाहर दलान में दारोगा जी डटे हुए थे। कान्स्टेबिल भीड़ को हटा रहे थे। दारोगा जी मूढे पर बठे पान कुचर रहे थे। उनकी खिजाब लगी डाढी बेतरह हिल रही थी। साहजी ने सामने पहुँच कर झुक कर सलाम किया।

दारोगा ने गम्भीरता से सलाम लेकर कहा—'क्या कर डाला सेठ साहब। सब मामला साफ साफ कहो, क्से क्या हुआ।' साहजी लगे सिर पकड कर रोने।

दारोगा ने कहा—'वाह मिया, यह रोने का वक्त है, नामर्दों की तरह रोने से क्या होता है, उठो बयान लिखाओ।'

साहजी ने हाथ जोड़कर गिडगिडाकर कहा—'सरकार लुट गया, मैं तो बर्बाद होगया। अब आपही माई बाप है। बचाओतो बचू, नहीं मरनेमे तो कसर रही नहीं है।'

दारोगा ने बिना कुछ जवाब दिए ही हैड कान्स्टेबिल को पुकार कर कहा—'मिया विलायतअली, लाओ कलमदान कागज। अरे तुम सुस्ती में क्या मुह ताका करते हो? पुलिस के आदमी को ऐसी सुस्ती चाहिए?'

बिना ही बात दस बातें सुनकर विलायत लपककर कलमदान कागज ले आया। अब दारोगा जी बयान लिखने बठे।

दारोगा—'हा सेठ! क्या नाम है तुम्हारा?'

सेठ—'भजनलाल, माई बाप!'

दारोगा—'बाप का नाम?'

सेठ—'करोड़ीमल।'

दारोगा—'अच्छा, क्या बात हुई?'

सेठ—हजूर, क्या कहूँ कहते कलेजा थर्राता है। रात एकाएक खटका पाकर आख खुली। पहले तो कुछ समझ में नहीं आया कि क्या है, पर धीरे-धीरे एक परछाई सी आगे बढ़ती दीखी। मैं डर कर चुपचाप उसे देखने लगा। मैंने समझा कोई भूत ऊत न हो। पर हिम्मत करके मैंने मुह से आवाज निकाली ही थी कि वह दौड़ कर गला दबा बैठा। मेरी तो जान निकल गई, और बेहोश हो गया। होश मे आने पर देखा,

कमरे मे दिया बल रहा है और चार पाच पचहत्ते जवान खाट के चारो ओर मोटे मोटे लठठ लिए खडे हे । एक के हाथ मे कसाइयो वाला छुरा था, वह मेरी छाती पर ताने ही खडा था ।'

दारोगा—'उन्होने कुछ कहा तुमसे ?'

सेठ—'जी हाँ । उन्होने कहा—'जान की खर है तो जो मालमत्ता हो बतादे, वरना यह छुरा है और छाती है ।'

दारोगा—'उसके बाद ?'

सेठ–'उसके बाद तो मेरी नानी मर गई साहब । पहले तो मेरे मुहसे बोली ही नही निकली । पीछे हिम्मत करके कहा–'सब कुछ ले लो,पर जान बख्श दो । इतना कहकर मैंने चाभी का गुच्छा तकिये के नीचे से निकाल कर उन्हे सौप दिया ।'

दारोगा—'फिर क्या हुआ ?'

सेठ—'फिर साहब, उनके और साथी घर मे घुस आए । उन्होने चाभियो से सन्दूक अलमारी खोल खोल कर मालमत्ता निकालना शुरू किया ।

दारोगा—'पर घर मे खुदाई कसे हुई ?'

सेठ—'वही तो कहता हूँ साहब ! जब सब ले चुके तो फिर मेरी छाती पर आ डटे कि और बता कहाँ कहा गाढ रक्खा है ।'

दारोगा—'तुमने बता दिया ?'

सेठ —'क्या करता सरकार, आखिर जान के आगे क्या प्यारा हे ?'

दारोगा ने हुकारा भरकर कहा—'कोई गवाह है इसका ?'

सेठ—'गवाह कौन है साहब ! रात मे कौन इस डकती को देखता । सवेरे ये सब लोग आजुटे ।'

दारोगा ने सिर हिलाकर कहा—'अदालत जब गवाह मागेगी तब क्या कहोगे ? वह यह नही सुनेगो कि वहाँ कौन था और कौन नही ।'

सेठ साहब चुपचाप किंकतव्य होकर बैठे देखते रह गये ।

दारोगा जी फिर बोले—'अच्छा तुमने किसी को पहचाना ?'

'नही सरकार ।'

'किसी पर शुबहा है ?'

'सो कैसे कहूँ—सरकार, भगवान् देखता है मुझे किसी पर शक नही ।'

दरोगा मुस्कराकर मन ही मन बडबडाने लगे–'बेवकूफ कही का क्या ऊटपटाग लिखा रहा है । विलायतहुसेन जरा इन्हे हवा खिलाओ । देखता हूँ इनका सिर ठिकाने नही है । कहता कुछ है,निकलता कुछ है ?'

विलायत लाला को घसीट कर ले चला । उधर दारोगा जी नाकर चाकर पास

पड़ौसियो के इजहार लेने लगे। इधर विलायत सेठ साहब को हवा खिलाने लगे। कुछ एकान्त मे लेजाकर विलायत ने कहा—'तुममे कुछ घर की अकल भी है या पूरे घन चक्कर हो ?'

और समय होता तो यही विलायत सेठ साहब को बीस बीस सलाम करता। उस दिन लडकी के व्याह के लिए बीस रुपल्ली लेने आया था। बीस बार नाक रगडी थी, खुशामद की थी और तमस्सुक लिखा था, पर आज उसकी बन आई है। सेठजी ने चुपचाप गाली हज़म करके कहा—'मैंने क्या कसूर किया जमादार साहब ?'

जमादार ने झिडकते हुए कहा—'कसूर ! अरे मियाँ हम क्या कसूर की बात कहते है, तुमने अपने पैर आप ही कुल्हाडी मार ली। बयान बिगाड लिया।'

'तो इसमे में क्या करू, जो बात थी वही कह दी।'

'सिर तुम्हारा ! इस तरह तो तुम खूब चोरी वसूल कराओगे ? कही ऐसा न हो कि जेल जाना पडे, लुट तो चुके ही हो।'

लाला बेत की तरह कापकर बोले—'तो हुजूर ! मेरी क्या अक्ल ठिकाने है, जो कहो सो करू।'

अब जमादार बडप्पन से बोले—'देखो जो भला चाहते हो और चोरी पकडनी चाहते हो तो ध्यान से मेरी बात सुनो। तुम कह दो—पछाह वालो से मेरी अदावत है, उन्ही पर मेरा शुबहा है। उनका एक आदमी मैंने पहचान भी लिया है ?'

लाला के काटो तो खून नही। उसने कहा—'क्या बलदेवसिह की बात कहते हो ? यह तो न होगा—वे तो बडे ही भले '

जमादार ने बात काटकर कहा—'बको मत जी, मैं तुमसे भलमसाहत का सार्टिफिकेट लेने नही आया। चलो दरोगा जी के सामने। मै समझ गया हूँ, इस चोरी मे तुम्हारी ही साजिश है, समझ गये ?'

लाला ने अकचका कर कहा—'क्या कहा ? मेरी साजिश ?'

जमादार—'हा, तेरी साजिस, घूरता क्या है ?'

'मैंने आप ही चोरी कराई है ?'

'बेशक।'

'इसमे क्या फायदा है ?'

'जमाने का रुपया मारना—और क्या ?'

'ऐसा कही हो सकता है जमादार ! मैं कसम '

जमादार ने गुस्सेसे कहा—'अबे कसमके बच्चे मैने तुझ तुझसे कितने बेच खाये। मुझे बनाता है। एक ही बात है जो चोरी पकडी चाहता है तो बल्देवसिंह का नाम ले दे—और उसके भतीजे को पहचान लीजो। फिर मैने जानी और उससे पैसा पसा

वसूल करा दगा। वरना इस दारोगा को तुम जानते ही हो, कभी किसीको छोडने वाला नही है। बिना जेल जाये बच नही सकते।'

'पर बलदेवसिह के यहा क्या सचमुच माल है और वह इस मामले मे है ?'

'तुम्हे इससे क्या ? वह हमारे देखनेका काम है, तुमसे जो कहा है वैसा करो।'

निदान विलायतअली लाला को पढा लिखा कर दरोगा के सामने ले आया। उसे देखकर दारोगा बोले—'कहो तुम्हारा दिमाग ठिकाने हुआ ?'

'जी हा सरकार!'

'तो तुम अच्छी तरह याद करके बताओ—किसी को पहचाना ?'

लाला—(कुछ सोचकर) 'हुजूर कुछ पहचाना तो, पर कहते डर लगता है।'

दारोगा—'डरने की कोई बात नही, सरकारी अमलदारी है, बेखटके कहो।'

लाला—'मैने बल्देवसिंह के भतीजे को देखा।'

दारोगा—(मन ही मे खुश होकर) 'हूँ। बल्देवसिह कौन ?'

'हुजूर! यहा वे जमीदार है। वही जो उस केस मे भी शुबहा मे आये थे।'

बल्देव का नाम सुनकर भीड मे हलचल मच गई। चारो तरफ से कानाफूसी होने लगी। पर दरोगा ने उधर ध्यान न देकर और गम्भीर बन कर कहा—'खर देख लूगा। तुम्हारे कितने नौकर चाकर है ?'

लाला—'दो है सरकार, दोनो बहुत भले सीधेसादे है।

दारोगा—'अच्छा उन्हे बुलाओ।'

सेठजी के बुलाने पर बूढा धन्ना काँपता काँपता आ खडा हुआ। दारोगा ने उसका नाम धाम पूछ कर डपट कर कहा—'तू क्या जानता है रे ?'

'हुजूर! मै कुछ नही जानता।'

दारोगा—(गाली देकर) 'दूधपीता बच्चा है न तू। घर मे इतनी भारी चोरी हो गई और तू कुछ नही जानता। पूरा हरामखोर दीखता है।'

नौकर ने गिडगिडाकर कहा—'हुजूर की दुहाई है, मै तो खडग मे सो रहा था।'

दारोगा—'कह दे क्या हिस्सा मिला है, हम थोडे ही बीच मे मागेगे ?'

नौकर चुपचाप खडा कापता रहा। दारोगा ने फिर पूछा—'तूने कुछ खटपट सुनी—या किसी को पहचाना ?'

'मे तो हुजूर सवेरे उठकर आया तो तभी कुछ मालूम हुआ।'

दारोगा—'साले! समझूगा तुझे। विलायत, इसे हिरासतमे लो, मशकूक है।'

विलायत मानो उधार खाये ही बठा था, झटपट गदनिया देकर एक ओर को घसीट ले गया। बूढा गिरता पडता—हुजूर हुजूर पुकारता शून्य दृष्टी से इधर उधर देखने लगा। उधर दूसरी ओर उसकी स्त्री और छोटे छोटे बच्चे हाय दैया! हाय

दया !! कह कर चिल्ला उठा।

पर दारोगा जी का उधर ध्यान न था। वे तेजी में भरे रहे थे। मानो धीरे धीरे सुराग पा लिया है। अब गरजकर बोले —'दूसरे आदमी को हाजिर करो।'

बनवारी की अभी तक किसी को खबर नहीं थी कि वह भाग गया है। अब अचानक उसकी खोज होने लगी। कुछ ही देर में हल्ला मच गया कि बनवारी गायब है। लाला के तो होश उड़ गये। दारोगा जी पींजरे में बंध शेर की तरह इधर उधर टहलने लगे। निदान बनवारी का नाम ग्राम—गाम पता लिखकर तहकीकात खतम हुई। अब विदाई की तयारी होने लगी। दारोगा ने लालाजी की ओर ताककर कहा— 'सुस्त क्यों बैठे हो। देखते नहीं सूरज सिर पर आ गया है, सरकार के खाने पीने का क्या इन्तजाम किया है ?

सेठ जी सिटपिटा कर बोले— —

'जो हुक्म हो सो करू ?'

'अरे हुक्म ? अभी हुक्म की ही इन्तजारी में है आप ?'

यह बाते हो ही रही थी कि केशव चौधरी भी आ खड़े हुये। बिना पूछे ही बीच में बोल उठे—'यह तो कायदे की बात है साहब ! तुम देखते तो हकीम हाकिम की भेट होती ही है।'

लाला जी ने क्षीण स्वर से पूछा – 'तो कितना होना चाहिये ?'

'तुम्हारी चोरी २५००) के करीब है ?'

'जी हा।'

'तो २५०) रु० तो देने चाहिए।'

सेठ जी तो यह सुनकर आसमान से गिरे। पर विलायतन रुककर कहा—'आप यह क्या फैसला करते है, इधर पहले पढ़ लीजिये।'

चौधरीजी ने खुशामद से कहा —'बस जमादारजी ! हमने हक की बात कह दी है, अब ज्यादा नहीं।'

विलायत ने कहा —'तो आप सरकार को समझा दे, मेरी तो ताब नहीं पडती।'

चौधरीजी ने उसकी डाढ़ी सहलाते सहलाते कहा—'अब इसपर मिहरबानी करो।'

अस्तु, दारोगा के कान में पूछकर विलायत किसी तरह राजी हुआ। २५०) जेब में डाल कर दारोगा जी दलबल सहित बलदेवसिंह की हवेली की ओर चले। इधर सेठ जी के घर में उन नकद दामादों के लिए पूरियां तली जाने लगी। अफसोस हम न हुये पुलिस के दारोगा।

तृतीय परिच्छेद

जिस गांव की घटना का जिक्र ऊपर आया है, उससे १५ कोस दूर बनवारी

का गाव था । बनवारी जात का वैश्य था । जिस समय की यह घटना है उस समय उसकी अवस्था २२ साल के करीब होगी । बनवारी के बाप को ७ वर्ष से कम्पवाय की बीमारी थी । पहले उन लोगो का घर अच्छा था, लेन देन भी होता था और गुड तेल नमक की एक छोटी सी दुकान थी । दुकान छोटी सी तो थी पर चलती खूब थी ।उसके सिवा गिरवी गाँठे का भी सिलसिला था । गरज उस आमदनीम उनके छोटे से परिवार की अच्छी कट रही थी ।

बनवारी माँ बाप का लाडला बेटा था । एक तो देहातो म पढने लिखने की चर्चा वसे ही कम होती है, पर जो थी, बनवारी ने दुर्भाग्य से उससे भी कुछ लाभ न उठाया । गाव मे एक छोटी सी पाठशाला थी । मु शी जी जात के छीपा थे । टोटा कद, चुन्नी आखे और खनखनी आवाज से वे अलग पहचाने जाते थे । लोग तो उनकी तारीफ ही करते थे,पर लडको के लिए यमराज ही थे । बिना कमची तो उनका चलता ही नही था । ये बडे उस्ताद, बेत के लिए कभी पसा नही फेका,सदा खजूर की कम्मच से काम लेते । कम कीमत और गुस्सा ज्यादा । चपत व किसी को न मारते थे, क्योकि एक तो हाथ उनका टोटा था दूसरे लडके बडे शैतान । एक बार एक लडका टोपी म काटे र‌ लाया,मु शीजी ने चपत लगाया तो काटे चुभ गए । एक बार एक लडके को चाटा रसीद किया, पर उस नामाकूल ने जो हाथ से बचाया तो उसके हाथ की पेन्सिल मु शी जी के हाथ मे घुस गई । तब से आपने इस खतरनाक रास्ते को ही छोड दिया । उस्तादो के अनेक रास्ते होते है, सो उन्होने यह कम्मच सिस्टम ही अधिक पसन्द किया था । इसके सिवा, मुर्गी बनाना, उठक बैठक कराना, गोला लाठी देना आदि महाअस्त्रो का भी प्रयोग आप कभी कभी किया करते थे । गरज लडके पढते लिखते तो वाजिनी ही थे, हा डरते खूब थे । दर्जे मे एकाध दजन तो ऐसे लडके थे जो मुन्शीजी के मुह पर पिशाब करते थे । ऐसे ही हमारे मुन्शीजी थे । घटनावश बनवारी भी इन्ही की शागिर्दी मे आया, पर पहले ही दिन छिटक गया । उसने देखा—दो तीन लडके मुर्गा बने खडे है, दो तीन उठ बैठ रहे है,दो एक चिलम भर रहे है,और दो चार मु शीजी के सामने खडे सूअर गधा बन बन कर बारी बारी बेंत खा रहे है ।

बस, बनवारी उसी दिन से जी चुराने लगा । लडको को किताब लिए कपडे पहने स्कूल जाते देखकर उसे भी जाने की होस तो होती,पर स्कूल की बात याद करके मिट्टी हो जाता । किन्तु पिता का कडा तकाजा था । कारण, बडे लाला हिसाब किताब कतई नही जानते थे । सोचा, लडका जल्दी से हिसाब किताब सीखे, तो अडचन दूर हो । पर जितना ही वे बेटे को मदरसे भेजना चाहते,उसकी मा उतना ही उनका विरोध करती । पर स्त्री की चलती नही थी,फिर भी कलह खासी पदा हो गई थी । एक दिन मामला ही अन्त हो गया । बात यह हुई कि बनवारी रोज पाठशाला का बहाना करके घर से

तो चल देता, पर जगल म जाकर मौज उडाता। कुछ दिन तो अकेला ही रहा, पर जी बहलाने को वह और लडको को भी साथ ले जाने को फुसलाने लगा। मुशीजी ने जब सुना तो बडे झल्लाये और पकडने की धुन म लगे रहे। लडके बडे चुगलखोर होते हे, किसी ने एक दिन कह दिया कि बनवारी ता मोती के साथ रामदास की बगीचीम आम तोड रहा हे। बस फिर क्या था, मुशी जी स्वय ही पकडने चले। खबर सच्ची थी। क्योकि जासूस कच्चा न था खास घर का भेदिया था। मुशी जी ने देखा—बनवारी पेड पर चढ रहा हे और मोती को चढाने की तयारी म हे। बस आप लपके। नीचे होता ता भाग जाता पर गरीब के भाग म पिटना लिखा था, बस पहुँचते ही मुशी जी ने उडाना शुरू किया।

बस उस दिन घर लोटकर बनवारी ने बडी टीका टिप्पणियो से मार के निशान दिखा दिखा कर मा के सामने रोया। अब क्या था, बुढिया पूरी करारी थी,झट ओढना ओढ कर वेटे को घसीटती हुई सीधी मुशी जी की छानी पर जा धमकी। अच्छा हुआ उस समय मुन्शी जी गाँव के एकाध जमीदार के साथ बठा बैठ थे, वरना बिना ठुके न रहते। फिर भी गालियो म ता कोई कसर रही नही। उसी दिन स सदा के लिए बनवारी का पढना बद हुआ। मा बाप बटे की तरफ से खाली कम रह सकते है, पढने पढाने की फिक्र मिटी, ता व्याह की फिक्र लगी और शीघ्र ही उसका व्याह भी हो गया। अब मानो बुढिया,पृथ्वी के ऋण से उऋण हुई, क्योकि इसके ६ मास बाद ही बेचारी हेजे से परलोक सिधारी। अब गृहस्थी म बडी मुश्किल हुई। बहू तो छोटी थी, बूढा अपने हाथ से ठेक ठेककर सब को खिलाता। ८ मास के घर म बालिका बहू अपढ और असहाय, मूर्ख उजड्ड आवारा बालक पति ? पाठक समझले कि गृहस्थी कैसे सकट मे फस गई होगी। तभी एक और घटना घटी। बूढे को कम्पवाय राग हो गया। पहले तो कुछ कुछ हाथ पर ही हिलते थे,पर धीरे धीरे सारा शरीर हिलने लगा। निदान दुकानदारी धूल म मिलने लगी। बनवारी दुकान और घर को सम्हाल ता क्या करता,घर की चोजो को चुरा चुरा कर बेचने लगा और यार दोस्ता को चाट पानी खिलाने लगा। कहना तो अनुचित है पर कहना ही पडता है कि गाव के कुछ लुच्चो ने उसकी मूखता से गहरा मतलब निकालना चाहा। कुछ पैसे देकर उसे अपनी स्त्री से मिलाने को राजी कर लिया। पर कुमार्गियो का यह चक्र चला नही। कुछ तो बूढे की उपस्थिति और कुछ बेचारी बालिका के भय, अज्ञान और नासमझी स मामला न बना।

इसी प्रकार आठ वष बीत गए। तब स अब म अतर पड गया है। अब बनवारी कुछ गृहस्थी की जिम्मेवारी समझने लगा है और उसके दो छोटी छोटी लडकिया भी है। बाप अब बिल्कुल पडा रहता है, कारबार बारहबाट हो गया है। अब वह तीन वष से भजनलाल साहू के यहा ६ रुपए मासिक पर नौकरी करता है। पर इस ग्राम

दनी से गुजर नही चलती । उसकी स्त्री भी कात पीस कर कुछ पसे बचा लेती है, पर फिर भी कुछ कज हो ही गया है। कुछ दिन से बेचारा बडी कठिनता मे है। पसा बचता नही, बच्चे हर तीसरे साल हाते रहते है। अब वह कजदारो के डर से ७ मास से गॉव मे नही आया हे। प्रथम परिच्छेद मे जिस युवक को चोरो के दल ने फुसला कर काम बनाया था, उस युवक का यही सक्षेपत परिचय हे।

चतुथ परिच्छेद

बरसात का मौसम था, पर मेह बर्षा नही था। घमस की गर्मी और मच्छरो ने सोने वालो का नाक मे दम कर दिया था। पर बेचारी बनवारी की स्त्री को दिन भर कठिन परिश्रम के बाद सोना मिलता है, तिसपर भी केवल चार घण्टे के लिए। क्योकि पन्द्रह वीस सेर नाज पिसाई का रखा रहता हे और दिन निकलते ही सबको पिसा आटा देना पडता हे। निदान यह साधारण नियम सा हो गया है कि उसे नित्य तीन बजे ही उठकर घडघडाहट करनी पडती है। गर्मी हो या बरसात, सर्दी हो या कुछ, उसका इस पत्थर घिसने को छोडकर दूसरा उपाय नही है। नित्य की तरह आज भी वह अपनी चक्की ले बैठी हे। उसकी छोटी सी बच्ची गोद मे पडी सूखे स्तनो को चूस रही है। दूसरी पास ही खटोली पर पडी हुई बेसुध सो रही हे। गर्मी के मारे पसीने मे तर है। यद्यपि बेचारी ने चक्की के हथेडे से पखा बाध लिया है पर यह क्या उस परिश्रम के पसीने को सुखा सकता है ?

अस्तु, आज उसे अच्छी नीद नही आई थी। सो वह जल्दी ही उठकर पीसने लग गई थी। अभी तीन बजेका समय था। रात अँधेरी थी। उसने घरघराहट मे सुना कोई द्वार पर थपकी दे रहा है। अब वह चक्की बन्द करके कान देकर सुनने लगी। बात सच थी। उसने मनमे सोचा इतनी रात को द्वार पर कौन है ? स्त्री की जात, फिर असहाय अवस्था, इसके सिवा अपने अबोधपतिकी मूखता से बहुत कुछ भुगत चुकी थी। उसे किवाड खोलने का साहस न हुआ। पर जब देखा कि आगन्तुक धडाधड किवाड ठोक रहा है तो विवश हो उसने बालिका को जगाकर ससुर के पास भेजना चाहा। पर बालिका कुनमुना कर और करवट बदलकर पड रही। दुबारा जगाने से वह रो उठी। यही नही बल्कि मा के मुह पर खीझकर एक चपत भी जमा दिया। उधर द्वार पर थपाथप चल रही थी, अन्तत वह स्वय स्वसुर को जगाने चली। बालक और बूढे की नीद मे बडा अन्तर हे। तिस पर बूढा वातदोष पीडित। उसने तुरन्त जागकर कहा—'कौन ! बहू ! क्या है ?'

बहू का नाम गुलिया था। गुलिया ने तनिक घूघट खीचकर कहा—'दरवाजे पर कोई है ?'

बूढे ने द्वार की ओर मुँह करके पुकारा—'कौन है ?'

'मैं हूँ, खोलो न ?'

बूढ़े ने स्वर पहचानकर कहा—'कौन बनवारी ?'

'हाँ।'

अब गुनिया का साहस हुआ, वह लपक कर द्वार खोल आई। एक गठरी पीठ पर लादे बनवारी ने घर में प्रवेश करते करते कहा—'दरवाजा बन्द कर दे।'

स्त्री और पिता दोनों बनवारी के उस कुसमय आगमन से चकित थे। अब जब उसने सावधानी से द्वार बन्द करने और चुपचाप भीतर आने को कहा तो वे और भी चकराए। भीतर जाकर बनवारी ने घबराई आवाज से कहा—

'दिया तो जलाओ। कितनी देर से चिल्ला रहा था, दरवाजा खोलने को कोई न आया। कोई देख लेता तो।'

बूढ़े ने कहा—'क्या चोरी है जो देख लेता। अपना घर है कि पराया ?'

बनवारी ने होठों पर उंगली रखकर बूढ़े को चुप रहने को संकेत किया। बूढ़ा अपाहज तो था ही, वह चुपचाप पुत्र के मुँह की ओर देखता रह गया। तभी स्त्री दिया जलाकर ले आई। अब दोनों ने देखा कि बनवारी के चेहरे पर हवाई उड़ रही है, उसका हुलिया तंग है वह बारम्बार चौकन्ना हो इधर उधर देखता है, कभी कभी कांप भी जाता है।

बूढ़े ने कहा—'मामला क्या है ?'

बनवारी ने फिर होठ पर उँगली रखकर बूढ़े को चुप रहने का इशारा किया। साथ ही स्त्री से कहा—'कुदाल है न ?'

बूढ़े ने किसी तरह पास खिसक कर कहा—'अरे बात तो कह, हुआ क्या है ?'

बनवारी ने घबराई आवाज में कहा—'जरा चुप रहो, इतनी फुर्सत नहीं है, कुदाल लाई ?'

गुनिया ने कुदाल लाकर बनवारी के हाथ में दे दिया, बनवारी ने रसोई में जाकर चूल्हा खोदना शुरू किया। अब बूढ़े से न रहा गया। उसने बेटे के कंधे पर हाथ रखकर कहा—'अरे कुछ मैं भी तो सुनूँ ? करता क्या है।'

बनवारी ने गठरी खोल दी। बूढ़े ने आँखें फाड़ कर देखा—सोने के गहने और रुपए भरे हैं। बूढ़ा अपनी सूखी आँखों को पुत्र के मुख पर गड़ा कर घूरने लगा। बनवारी ने संक्षेप में ही सब कह दिया।

'खबरदार किसी को मालूम न होने पावे ?' इतना कहकर उसने जल्दी से गढ़ा खोदकर सब माल टीन उसमें उलट कर मिट्टी भर दी। अब वह जरा सुस्ताकर सांस लेता हुआ अपनी स्त्री से बोला—'गोबर लाकर चौका लगा दे, मामला रफेदफे हो जाय।'

श्वसुर के सामने बेचारी गुनिया को कुछ कहने का साहस ही न हुआ था। अब

उसने धीमे स्वर से कहा—'हाय ! यह क्या किया ? कहा से यह सब ले आए हो ?'

बनवारी ने उसे झिडक कर कहा—'तू जा भी, इन बातो से तुझे क्या मतलब है। जरा गोबर लाकर लीप दे न।' स्त्री तुरत गोबर लेने चल दी। अब बनवारी ने बूढे के हाथ पर एक और पोटली रखकर कहा—'ये लो, कल सब कर्जदारो को चुका दो।'

बूढे ने हाथ मे रुपए लेकर उन पर एक ललचायी दृष्टि डालते हुए कहा—'आखिर कहा से क्या किया। कोई आफत तो सिर नही धर ली।'

बनवारी के होश हवास ठिकाने नही थे। उसने कहा—'फिर कभी फुर्सत मे कहूगा। करता भी क्या पावनदारो के डर से घर द्वार छूटा पडा है। कुर्की के बतन तक उठ गए, जूतो से चाद पिट गई। पराए टुकडे खाते है, तिस मे भी गुजारा नही होता। दुनिया मे क्या सब धर्मात्मा ही है ? पाप पुण्य देखा किसने है, जब होगा देखा जायगा। पर इस तरह तो नही रहा जाता। लो अब जाता हूँ दस पाच दिन गुम रहूँगा। कभी रात को ही आऊँगा।' इतना कहकर और बूढे की बात की प्रतीक्षा बिना किए ही बनवारी चल खडा हुआ। उसकी स्त्री ने द्वार तक पीछा करके कहा—'जरा सुनो तो ! अजी सुनो तो !' पर 'अब नही' कहकर बनवारी उसी अन्धकार से घर से निकल कर विलीन हो गया। बूढा और गुलिया त्रिशकु की तरह भय और उद्वेग के बीच मे टगे रह गए। पौ फट चुकी थी।

पाँचवा परिच्छेद

पुलिस के हथकण्डे

चौधरी बलदेवसिह इस गाव के मुखिया थे। लाट साहबके दरबारी मेम्बर थे। प्रतिभाशाली और बेलाग आदमी थे। यो तो जमीदारी और रियासत के मामले ही ऐसे होते है कि अदालती कुत्तो और पुलिस के गिद्धो को बिना टुकडा दिये नही चलता। जाने कब किसका काम अटक जाय, कब किसकी पगडी पर आ बने, कब किससे काम पड जाय। क्योकि यह तो तीसो दिन की रगडपट्टी है। पर बलदेवसिह वसे आदमी नही थे। उन्हे अपने सम्मानका बडा ख्याल था। वे पुलिस और इन पुछलगो को कभी मुह नही लगाते थे। इनाम इकराम की तो बात ही क्या थी, गावमे आने पर भी कभी मिजाजपुर्सी तक न करते थे। गाव मे ही नही वरन आस पास मे भी इनका रुबाब और दबदबा था। इनके फसला पर दोनो पक्षो को उज्र न होता था। कम बोलने वाले, सच्चे सीधे और धर्म भीरू पुरुष थे। परन्तु क्षात्र तेज से चेहरा दमकता था। दारोगा जी ने भजनलाल साह के घर से उठकर इन्ही के घर का रास्ता पकडा। यह साफ था कि उनका मामलेमे कुछ लगाव न था और दारोगाजी ने जबदस्ती अपनी कसक निकालने का मोका पाया था। पर इसमे भी रहस्य था, पुलिसके आदमी अवसर को जितना समझते है, उतना दूसरे नही।

चौधरी बलदेवसिंह जी भोजन करने को उठने वाले ही थे। उन्होंने देखा कि पुलिस का दल और खासी भीड उन्ही की ओर चली आ रही है। चौधरी जी ने पास बैठे हुए सज्जन से धीरे से कहा —

'साहजी की तहकीकात हो गई मालूम होती है।' अभी इसका उत्तर भी नही पाया था कि दारोगाजी ने दलबल से चौपाल पर पदार्पण किया। साथ ही व्यंग के स्वर मे कुछ झुक कर कहा—'चौधरी जी साहब को आदाबज करता हूँ।' 'चौधरी जी शिष्टाचारके लिए उठ ही थे और हाथ बढाने को आगे बढने वाले ही थे कि दारोगा के इस व्यंग से उनके चित्त मे झुंझलाहट उत्पन्न हो गई। उन्होंने गम्भीरता से सलाम करके नौकर को पुकार कर मूढा उठा लाने को कहा। मूढे पर दारोगा के बैठते ही आप भी तख्त पर बैठ गये और गम्भीरता से पूछा—'कहिए तहकीकात खतम हो गई ?'

दारोगाजी ने व्यंग के शिष्टाचार से कहा— 'जी हां, कुछकर पाया है, कुछ बाकी है सो भी आपके तुफलसे किए डालता हू।'

चौधरीजी ने सरल स्वभाव से कहा—'बेशक बडी ही दुख की बात है—पर गनीमत है कोई खून खराबी नही हुई।'

दारोगाजी ने कुछ मुस्करा कर कहा—'जी हां, आपकी दया से वैसा नही हुआ।'

'खैर तो कुछ सुराग लगा ?'

'कुछ कुछ।

'किसी पर शुबहा है ?'

'जी ! इस बाबत साफ तो कहा नही जा सकता, पर मुझे इसके मुताल्लिक आपको तकलीफ देने का अफसोस है।'

चौधरी जी ने सरलता से कहा—'कोई हर्ज नही, आप मेरे लायक जो काम हो फर्मावे। मुझे इस सम्बन्ध मे कुछ सहायता करके बडी खुशी होगी।'

अब दारोगा जी ने मुस्कराकर, अपने गर्व को छिपाते हुए कहा— 'यह आपकी ऐन इनायत है, मुझे भी आपसे ऐसी ही उम्मीद है। साफ बात यह है कि मै आपके भतीजे साहब से मिलना चाहता हूँ।'

चौधरी जी ने कुछ चिन्तित होकर कहा—'इसी सम्बन्ध मे ?'

'जी हाँ।'

'मै नही समझता वह क्या कहेगा, वह परसो ही कालिज से छुट्टियो मे आया है।'

'खैर, जो होगा वह सब अभी जाहिर होगा। चोरी तो कलही रात को हुई है, उन्हे मौके पर पहचाना गया है ?'

अब चौधरीजी आस्मानसे गिरे। उन्होंने घबडाकर कहा—'यह आप क्या कहते है?'

'ज्यादा कुछ नही, सिर्फ उनसे मिलना चाहता हूँ।'

('अपराधी' के बाद आचार्यश्री ने दूसरा उपन्यास 'प्लेगविभ्राट' सन् १९१७-१८ में लिखा। यह उपन्यास पुस्तक रूप मे प्रकाशित भी हुआ था, परन्तु इसकी कोई प्रति अब उपलब्ध नहीं है। उपन्यास के केवल प्रारम्भिक कुछ अ श ही हस्त लिखित रूप मे मिले है। कथानक पूर्ण नही हें। 'अपराधी' और 'प्लेगविभ्राट' के बाद तीसरा उपन्यास 'हृदय की परख' लिखा गया था जो प्रथम बार 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई' से प्रकाशित होकर पाठको के सम्मुख आया।)

प्लेगविभ्राट

प्रथम परिच्छेद

वसन्त का भरपूर यौवन छलक रहा था। हरे भरे वृक्ष मस्ती मे झूम रहे थे। कुसुम कलिकाऐं मन के अदम्य उल्लास को अपने सकोचशील कोमल गात्र मे छिपा न रख कर गुपचुप हँस रही थी। पक्षीगण नाच गा रहे थे। वायु मे भीनी महक खेल रही थी, जहा तक आखे देख सक्ती थी सु दर और नवीन ही दीख पडता था। प्रकृति जी खोल कर वसन्तोत्सव मना रही थी।

कल कल निनादिनी गगा अपने उज्ज्वल परिधान की शोभा बखेरती हुई खरज के स्वरो मे सोहनी गाती बही चली जा रही थी। चादी के समान सफेद रेती दूरतक फैल रही थी।

प्रभात का समय था। सुनहरी धूप हँस रही थी। गगा के किनारे दो युवक चुपचाप बठे लहरो को देख रहे थे। दोनो नववयस्क थे। तन्दुरुस्ती की लाली और पवित्रता का माधुर्य दोनो के चेहरो पर था। नेत्रो के नीचे के भाग म लाल डोरा और उभरे हुये होठ उनके सरल गौर दयापूर्ण हृदय का परिचय दे रहे थे। आखे बहुत ही मधुर थी। रेखे अभी भीगी नही थी। दोनो युवक साधारण कमीज और धोती ही पहने बैठे थे। एक की अवस्था बीस वर्ष और दूसरे की पच्चीस वर्ष के अनुमान होगी।

दोनो कुछ चिन्तामग्न थे। ध्यान से देखने पर मालूम होता था एक विषाद की रेखा उनके चेहरे पर अलग चमक रही है। कुछ देर चुप रहकर एक ने कहा—'राजे! कैसा सुन्दर दिन हे, जगल मे क्या बहार आ रही है कसे फूल खिल रहे है, कैसी चिडिया चहक रही हे, नदी का जल कसा स्वच्छ है, सारी प्रकृति मे एक नवीन रस का सचार होरहा है? ओहो, सब तरफ कितना अच्छा है। यह वसन्त का जादू है क्यो न?'

साथी ने बीच मे ही बात काट कर कहा—'पर उधर बस्ती मे क्या हो रहा है? तुम्हारे हृदय मे क्या हो रहा है? इस मूर्ख वसन्त का जादू इन वृक्ष पत्तो, खेतो और

पर्वतों पर ही है। जड़ जगत ही हम रहा है, पर हम मनुष्य ? ग्रामगण्ठ जन्तु भी क्या उस नवीन रस से ऐसे ही हरे भरे हो रहे है, क्यो ?'

पहले युवक ने कुछ गम्भीर होकर कहा - 'बिल्कुल नही, अभी तो, मामा की लडकी को फूक कर आया हू ? उस दिन उसका ब्याह हुआ था, दस दिन घर आये नही हुये-परसो बीमार पत्नी आज मर गई। यह भी सम्भव है शामतक और भी दो चार को फूकना पडे, शायद दो चार दिन म लोग हम फूकने की चिंता करे ?' इतना कहकर युवक जरा मुस्कराया।

दूसरे युवक ने और भी गम्भीर होकर कहा—'यह असम्भव नही है ? प्लेग जैसा भीषण प्राण शत्रु रोग जो न करे सो थोडा, गाव का गाव भाग गया, सारा नगर सन्नाटे में हो रहा है। जो मरता है जवान ही मरता है ? आज ८ १० दिन हो गये क्या तुमने किसी बूढे को मरते सुना ? और अभी क्या है ? दो चार दिन म देखना- कैसी प्रलय मचती है।'

पहला युवक कुछ भयभीत हुआ। उसने दबी जबान से कहा—'चलो फिर कही दूसरी जगह चलदे। मेरे घर के लोग तो बडे भाई के पास चले गये है, मैं सिर्फ परीक्षा के कारण अटक गया था। तुम भी तो अकेले ही हो-'चलो तुम्हारी सुसराल चल, वहा से मैं भाई के पास चला जाऊँगा।

दूसरे युवक ने कहा— इससे क्या होगा ?

पहला—'हमारी प्राणरक्षा होगी।

दूसरा— निश्चय ?'

यह प्रश्न ऐसी दृढता से किया गया कि पहला युवक उत्तर देते देते झिझक गया। उसने कहा— निश्चय तो भगवान् जाने, पर प्राण बचाना तो अपना कर्तव्य है।'

दूसरा युवक कुछ देर चुप बैठा गगा को निहारता रहा। पहला युवक भी गम्भीर चिंता म डूबने लगा।

एकाएक दूसरे युवक ने कहा—'गोविन्द ! यह तो सच है कि अपनी रक्षा का भरसक प्रबन्ध करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। परन्तु मनुष्य अपनी रक्षा मनुष्यत्व खोकर नही कर सकता। मनुष्यत्व खोकर यदि उसने अपने प्राणो की रक्षा भी की, तो उसका कुछ मान ही नही समझना चाहिये। बल्कि यह सत्य त कायरता की बात सम झनी चाहिये।

'पर आत्मरक्षा म मनुष्यत्व कैसे खोया जाता है ?'

'समझ कर देखो, अच्छा इस बात पर भी तुमने कभी विचार किया है कि इस सुन्दर बसन्त का हम अभागे मनुष्यो पर क्यो प्रभाव नही पडा। क्या हम मनुष्य, जो सृष्टि म सर्वोत्कृष्ट जीव है, कुछ प्राकृतिक रीति से ऐसे बनाये गये है-जो रोग शोक दुख

मृत्यु और निरान द ग्र वि ताओ मे व्यस्त रहे और असमय मे मर जाय ? क्या हमार हाड माम शरीर म कुछ ऐसा अद्भुत ममाला लगा है कि जड जगत आर जीव जन्तु भी जहा आन दमग्न हो रहे है, हम विना मौत मर रहे है । इन पशु पक्षियो पर किस का राज है ? इस मे बडे-बडे भयकर हिंसक ज तु भी हे और अत्य त नाजुक ज तु भी हे, पर तु बलवानो से कमजोरो के स्वत्वो की रक्षा करने वाला कोई कानून कोई दण्ट तो नही है, पुलिस, अदालत, कचहरी वकील कुछ नही है ? फिर भी ये पशु क्या हमसे अधिक स्वत त्र निद्वन्द और सुखी एव शात नही है ? हम मे जो मूखता समाई हे कि बिना पुलिस, राजा फौज हथियार और याय कानून के हम सुखी और शान्त रह ही नही सकते । इसी का यह फल है कि हम अधिकाधिक हिसक और विपत्तिमग्न हो रहे हे । क्या यह झूठ है ।'

इतना कहकर युवक तीखी दृष्टि से अपने मित्र की ओर देखने लगा । जब पहले युवक ने एक शब्द भी न कहा तो उसने फिर कहना शुरू किया—

'इसी तरह देखो ये बडी बडी कोमल चिडिया जिनको छूनेसे उनके प्राणनाश होने का भय रहता है, कच्चे चने, जुवार, अन्न और कङ्कड पत्थर तक बडे मजेसे खा और पचा जाती हे । न इनके पेट मे दद होता है और न खासी बुखार, न इ हे जुलाव की जरूरत होती है, न ताकतकी दवा खानेकी । क्या तुमने कही रसोईघर देखा है, जहा इनके लिए तरह तरह के मिरच मसालेदार, चटपटे पदाथ भूनकर बनाये जाय, या कही हलवाई की दुकाने इनके लिए है, जहा रसीली मिठाईया इनके लिए बिकती हो ? तुम्हारे घर मे स्त्रिया कैसी नजाकत से रहती है, घर का काम ध धा भी नही करती, नौकरानी उनके पाखाने के लोटे तक को माजती है । पर तु जब कभी उन्हे बच्चे होते हे, क्या जान के लाले नही पड जाते ? तुम्हारी भाभी क्या उसदिन लडकी हानेमे नही मर गई ? कितने डाक्टर, दाई वद्य, जो सामके साथ रुपये पचाते थे, कुछ न कर सके । परन्तु इन पशु ।ि।ो के लिए भी कोई दाई है ? उस दिन हमारी गाय जगल मे व्या गई, शाम को बच्चा उछलता कूदता आ गया । इस बात से तुम्हे आश्चय नही होता ? चिडियो को, मुर्गियो को देखते हो—बडे आराम से अण्डा देदेती है और फुदक से उड जाती हे ? इ ह तो दाई की जरूरत ही नही रहती ? इसका क्या कारण है—क्या तुम जवाब दे सकते हो ?' इतना कहकर युवक फिर जरा देर को ठहर गया । पहला युवक आखे गाढकर मित्र के मुख की ओर देख रहा था, उसे कुछ भी जवाब देते न बना ।

उसने फिर कहना शुरू किया—'और सुनो, अखबार पढते हो न । जहा अखबार म देश के नाम पर मर मिटनेके गरम से गरम लेख रहते है, जो मनुष्यकी चित्तवृत्तियो को बलिदान की ओर ले जाते हे, वही सुस्ती और नामर्दी के ग दे से गन्दे विज्ञापन रहते हे । जिनकी भाषा बडी ग दी, बडी नग्न और बडी फूहड होती हे । हजारो मनुष्य अखबार

वालो को तो सिरफ दो रुपये साल ही देते है—पर इन लुच्चे जुआरियो को दस बीस रुपये फाड़ देते है। क्या इनकी दशा पर तरस नही खाना चाहिए ?

मनुष्य समुदाय का यह दावा है कि वह ससार के समस्त चराचर प्राणियो मे श्रेष्ठ है। उसने अपने बुद्धिबलसे समस्त प्राणियोपर विजयभी प्राप्त की है और वह समस्त अचर प्रकृति का स्वामी भी बन बैठा है। उसका खान पान रहन सहन भी ससार के प्राणियो से श्रेष्ठ है। फिर भी यह विषय है जिसम वह अधम से अधम प्राणी से भी निकृष्ट है। वह भौतिक और स्वाभाविक सुख जो प्रत्येक प्राणी को स्वत प्राप्त है—उसे अपनी पूरी बुद्धिबल से भी प्राप्त नहीं होता।

कितने अफसोस और लज्जा की बात है कि जितनी फुर्ती तेजी और मस्ती एक साधारण अधम सूअर, साड, बैल, घोडे और पक्षियो मे है—वसी शक्ति मनुष्य को हजार तरसने, लाख विज्ञान लडाने और करोड रुपया खचने पर भी नही मिलती।'

इतना कहकर युवक चुप हो गया। एकबार उसने सुन्दर खेतो की तरफ देखा और हाथ फैलाकर कहा—'जिस तरह हम इन अपदार्थ घासके तिनकोकी सुन्दरता पर और इस जड जगत की मस्ती पर डाह करते है, उसी प्रकार हम इन अधम पशु पक्षियो के स्वास्थ्य और भोग शक्ति पर हाय करते है। इसका यह मतलब नही है कि परमात्मा ने यह शक्ति हमे नही दी थी। हम ससार की सर्वश्रेष्ठ रचना है। तुम पूर्वजो के इतिहास देखो, वेद और उपनिषदो को टटोलो। हम जिस मनुष्य कुल मे है, उन पवित्रात्मा पूज्य पुरुषो की आयु हजारो बरस की होती थी। वे कभी रोगी होते ही नही थे। वे अपनी इच्छा से शरीर बदल सकते थे, समस्त जगत की घटनाओ को देख सकते थे, लोक और परलोक के तमाम रहस्य उनपर प्रकट थे, उन्हे किसी वस्तु की अभिलाषा न थी। समस्त प्रकृति उनकी दासी थी। ब्रह्माण्ड और भूगोल मानो उनके अनुवर्ती था। नक्षत्रो की अगम गति, दुर्लभ भूतविज्ञान उन्हे मालूम था। उस समय वे सचमुच जगत के जन्मसिद्ध श्रेष्ठ प्राणी थे।

उसके बाद जब सामाजिकता बढी और नागरिक योग्य नेताओ के उपयोग का काल आया—तब भी मनुष्य कुल अत्यन्त तेजस्वी, निरोग, दीर्घायु एव सर्वशक्ति-सम्पन्न और सर्वथा तृप्त था।'

पहले युवक ने मानो उतावले होकर कहा—

'फिर एकाएक मनुष्य समाज पर यह क्या श्राप पडा ? सारा जगत जब सुन्दर और सर्जित हो रहा है, तब मनुष्य समाज ही क्या दुखी और रोगी है ? उसी पर य दवी विपत्तिया क्यो पडती हैं ? यह भीषण रोग जगत के अन्य पशु पक्षियो को क्यो नही भक्षण करता ?'

पहले युवक ने किंचित हास्य करके कहा—

'मित्र ! जगत की समस्त बनस्पतियो और पशु पक्षियो के लिए तो मनुष्य ही बडा भयकर प्लेग हे। क्या तुमने नही देखा कि जहा तक साधारण मनुष्य बुद्धि चली है उसने तमाम वनस्पतियो को और तमाम पशु पक्षिओ को अपना भक्ष्य बनाया है। वह जबरदस्ती अपने बुद्धिबल से सवभक्षी बना है। ईश्वर ने उसे पैने दात और नाखून नही दिये थे, इसलिये कि वह इस प्राणी को सौम्य और सभ्य बनाना चाहता था। पर उसने अपने ही उद्योग से बडे बडे नोकदार और धारदार हथियार बना लिये। यह अभागा प्राणी न तो ईश्वर के नियम की अब परवा करता है, न उसकी आज्ञा की, न प्रकृति की, न अपने स्वभाव की। इसी का यह फल है कि वह प्रकृति का कोप भाजन है और ईश्वर प्रतिक्षण जगत को जो स्वाभाविक दान देता हे, जिससे जगत फूला फला और सुखी रहता है, मनुष्य उससे वचित रखा गया हे। इस मूख को अपनी बुद्धि और विज्ञान का जो घमण्ड है, उसी के बल पर यह पागल मनुष्य ईश्वर और प्रकृति दोनो से लड रहा है। क्या तुम यह नही समझते ?'

युवक ने झटपट सिर हिलाकर कहा—'बिल्कुल नही। मेरी दृष्टि इन गम्भीर विषयो की ओर कभी गई ही नही। मैंने इन बातो पर कभी विचार किया भी नही।'

होठ की एक कोर मे मुस्कराकर युवक ने फिर कहना शुरू किया—

'अगर तुम ध्यान से मनुष्य के स्वभाव का अध्ययन करोगे तो देखोगे कि मनुष्य मे सबसे बडी बुराई यह पदा होगई है कि वह अपनी बुराइयो को छिपाना चाहता हे। मूख आदमी मूखता को, कमजोर आदमी कमजोरीको, दरिद्र दरिद्रताको, कुरूप कुरूपता को, रोगी रोग को सदा छिपाता हे ? फल यह होता है कि बुराइया दूर करने मे उसे जो शक्ति लगानी चाहिये थी, और उसे जो सहायता तथा सहानुभूति चारो तरफ से मिल सकती थी—नही मिल पाती। हमारे बच्चे दुबले पतले कुरूप रोगी और अल्पायु होते हे। परन्तु न हम उनके उन दोषो के कारण पर विचार करते है और न उन्हे दूर ही करना चाहते है। उन्हे सुन्दर बढिया वस्त्रो से ढक देते है। हमारी स्त्रिया मूख, कुपढ और अल्पायु होती है। ३० वषमे स्त्रियाँ वृद्ध होजाती है। इनकी नस्लका पतन किन कारणो से हो रहा है इस बात पर जरा भी विचार न करके हम उन्हे बहुमूल्य गहनो और वस्त्रो मे ढककर सुन्दर बनाना चाहते है। तुम युवको को देखते हो, किस तरह चुनी धोती, बढिया माँग, और झकाझक अस्त्री की हुई कमीज पहन और पम्पशू पहन कर निकलते है। इन बाहिरी सफाई की बातो मे तो उनका इतना ध्यान हे, परन्तु उनके चेहरो पर कितनी झुर्रिया है, आखे कितनी मैली है, पेट कितना गन्दा है, इसपर भी ध्यान देते है ? दर्जी भद्दे तराश का कपडा न सीवे, इसकी तो उन्हे बडी चिन्ता रहती है परन्तु उनका शरीर कितना, किधर मे भद्दा और बेडौल हो रहा हे इसकी परवाह नही। तुम क्या समझते हो कि बढिया माग निकालने, तेल चुपडने और सुनहरी फ्रेम का चश्मा लगाने

से क्या रूखे सूखे चेहरो पर रोनक आ सकती है ? कदापि नही ।

प्रारम्भ के युग मे—जब पवित्र आत्मा मनुष्य सीधे सादे ढग पर प्रकृति की गोद मे खेलते थे तब उन्हे अपने बनाव की इतनी जरूरत नही पडती थी । वे निरालस्य हो-शरीरधर्म पालन करते थे । सब से प्रथम आलस्य उत्पन्न हुआ, आलस्य होने पर मनुष्य को सञ्चय बुद्धि उत्पन्न हुई । सचय होने पर लोभ, लोभसे क्रोध, क्रोधसे झूठ, झूठसे पाप बना । सतोगुण का लोप होकर रजोगुण बढ गया । जहा ससार के समस्त प्राणियो के प्रति मनुष्य को त्याग और प्रेम का व्यवहार करना चाहिय था—वहाँ वह अपने अति निकटस्थ के प्रति भी स्वार्थ और छल का व्यवहार करने लगा !!!'

युवक अत्यन्त कातर कण्ठ से इतना कह कर और एक लम्बी सास खीच कर चुप हो रहा ।

दूसरे युवक ने दुखभरे शब्दो मे कहा—'मने तो कभी इन बातो पर विचार भी नही किया, इतनी बात मेरे ध्यान मे भी नही आई । हाय ! हम मनुष्यो का सौभाग्य ही सो गया ? क्या जगतसे सबसे पहले मनुष्य वश ही नष्ट होगा ? इस तरह ईश्वर और प्रकृति के नियमो को भग करके, अनीति और अविचार के मार्ग पर चलकर—क्या मनुष्य समाज का कल्याण हो सकता है ?'

'कभी नही'—युवक ने दृढतासे कहा, 'परन्तु मनुष्यमे परमेश्वर ने एक विशेषता दी है । वह यह है कि जिस तरह वह अपनी जिम्मेदारी पर पतन की चरम सीमा तक पहुँच सकता है, उसी तरह उन्नति की भी चरम सीमा उसके लिये खुली है । ससार के अन्य जीवो मे यह योग्यता नही है । कुत्ते को लाख सिखाओ, परन्तु वह एक ही ढग से तरेगा । तरना उसे मालूम है, यद्यपि वह जलजन्तु नही । परन्तु मनुष्य स्वय तरना नही जानता, पर सीखनेसे सौ प्रकार से तैर सकता है । इसलिये मनुष्य समाज यदि चाहे तो पतन के ढलवा रास्ते से लौटकर उत्तम मार्ग पर चल सकता है । जिस दिन ऐसा होगा उस दिन यह सम्भव ही नही कि मनुष्य इन प्रकृति के क्षणिक और निर्जीव सौन्दर्य पर मोहित हो । यह सम्भव ही नही कि वह इन्द्रियो का इतना दास हो । वह प्रकृति विश्व सम्राट की तरह सर्वशक्तिमान् ईश्वर का प्रतिनिधि स्वरूप जगत भर के सब पदार्थो से श्रेष्ठ, सब पदार्थों से सुन्दर, सब पदार्थों से स्थायी और बहुमूल्य होगा ।'

युवक ने बाल सुलभ उतावली से कहा—'यह कब होगा ?'

'यह कौन कह सकता है ? मै समझता हूँ अभी वह दिन दूर है । इस समय मनुष्य प्रकृति का गम्भीर अध्ययन कर रहा है, परन्तु उसके मनमे स्वार्थ का हलाहल विष है । क्या तुमने नही देखा, कि जगत भर के श्रेष्ठ विद्वानो का चरम विकास, यूरोप के महा युद्ध मे मनुष्यो के ही विध्वस मे काम आया ? समझे ? मनुष्यो के उत्कर्ष का चरम विकास मनुष्यो ही के विध्वस मे ?? क्या आश्चर्य नही होता ? और यह तो कुछ हुआ

ही नही, इसका तो सिफ यही परिणाम हुआ कि कुछ खरब रुपया नष्ट हुआ, कुछ करोड हत्याएँ हुई, और कुछ लाख स्त्रिया असती हुइ, एव कुछ नर नारी अनाथ हुए और व चोरी, व्यभिचार, हत्या आदि पाप करने के लिए विवश है। पर तु उस निकट भविष्य को देखने की भी तो आशा रखो, जब तमाम पृथ्वी पर रक्त की धार बहेगी। उस समय सिवाय मरते हुओ के आतनाद के कुछ सुनाई न देगा। मुर्दो के ढूह लग जावेगे और जो जीते बचेगे, वे उस अशुद्ध वायु मे सास लेने से तडप तडप कर मर जावेगे। इस प्रकार महा नरविध्वस होगा।'

युवक ने भयभीत होकर कहा—'यह क्या कहते हो? ऐसी भयकर बात? ओफ सुना भी नही जाता।'

दूसरे युवक ने धुन मे कहा—'सुना नही जाता तो मत सुनो, पर देखना तो अवश्य पडेगा। क्या तुम यही समझते रहोगे कि कुछ चुने हुए चालाक जगतकी सम्पदा का रस निचोड कर एक ही साम मे पी जावेगे और कराडो, अरबो नर नारी अपन भूखे, नगे कगाल बच्चा को लिए हुए, अपने पेट को उघाडे चुपचाप खडे रहेगे? मनुष्य समाज तो अन्धा होकर विज्ञान कला और साहित्य पर टूट कर पडा है। तुम्हारी क्या यही राय है कि ये निकम्मी चीजे मनुष्य जाति को तृप्त कर देगी? क्या तुम इतना नही समझ सकते कि ये वस्तुएँ तप्त होने के बाद समृद्ध होने की नही, पर तु मनुष्य इ ही म तप्ति ढढ रहा है। जि हे ये वस्तु मिल गइ है, व औरो की श्रेणी से अपने को श्रेष्ठ समझते है। मै तुम्ही से पूछता हूँ कि क्या तुम्हे यह बात पस द है, बोलो?'

युवक ने अकचका कर कहा—'कौनसी बात? मै तो तुम्हारा मतलब ही नही समझा? क्या तुम यह कहते हो कि विज्ञान, कला और साहित्य मनुष्य समाज के लिए कल्याणकारी नही हे, बिल्कुल निकम्मे हे?

'मेरा ऐसा विश्वास नही।'

'तुम्हारा विश्वास मे अभी उत्पन्न किये देता हूँ। विज्ञान, कला और साहित्य इन तीनो म एक मे विकास, एक मे आन द, और एक मे तृप्ति है। अब ये विकास आन द और तृप्ति, तुम दो ऐसे भिन्न भिन्न मनुष्यो को दो, जिन मे एक तो भूखा रोगी और आत्म विश्वास शू य है, और दूसरे ऐसे मनुष्य को दो जो हट्टा कट्टा और सब तरह स तुष्ट है। तुम देखोगे—पहला व्यक्ति इन पदार्थों को भोगने की शक्ति नही रखता और दूसरा सयम। तुम स्वादिष्ट पक्वान्नो की प्रशसा कर ही नही सकते। वह अतुल रीति से सेवन किए जाने पर निस्सन्देह जहर का काम देगे। विचार करने पर तुम्हे सदुपयोग और विवेक को एक स्थान देना पडेगा। विज्ञान, कला और साहित्य एक पक्वान्न है, वे चाहे जितने मोहक बहुमूल्य और अपूव क्यो न हो—यदि उनका सदुपयोग नही किया जाता तो वे कदापि मनुष्य के लिए लाभकारी नही।'

युवक ने कहा—'और तुम यह बात किस आधार पर कह रहे हो ?'

'सब से बडी घटना के आधार पर, क्या तुमने इस योरोपियन महायुद्ध पर विचार नही किया ? जिसमे १ करोड तीस लाख मनुष्य मरे, दो करोड घायल हुए, ६० लाख बच्चे अनाथ हुए, ५० लाख विधवाये हो गइ, १ करोड आदमी बेघरबार हो गये और खरबो रुपये स्वाहा हो गए ! यह सब जर्मनी के हाथो। उस जर्मनी के हाथो—जिसने सभ्य जगत के सम्मुख १८वी शताब्दी म वेदो को और उपनिषदो को पेश किया था, जो पृथ्वी पर अध्यापको और पण्डितो की जाति प्रख्यात हे, जहा कला, साहित्य और विज्ञान पानी भरता था। क्या तुम यह विश्वास नही कर सकते कि यदि जर्मनी और यूरोप के पास कला, विज्ञान और साहित्य इतनी प्रचुर परिणाम मे न होते, अथवा उनके सदुपयोग की योग्यता उनमे न होती, तो क्या पृथ्वी पर इस तरह खून की होली खेली जाती ? कदापि नही।

कहा हे वे पवित्रात्मा ऋषि जिन्होने सनशास्त्र उस ब्रह्माण्ड और समस्त ग्रहमडल की दुर्बोध गति एव आध्यात्मवाद के ज्ञान गम्य तत्त्व ऐसी सुन्दरता, स्थिरता और योग्यता से जाने थे कि आज बीसवी शताब्दी भी इस विषयमे उनको शिष्य है। आज यूरोप वाह्य साधनो से मनुष्योत्तर बनने की चेष्टा कर रहा है। परन्तु एक समय था कि जब वाह्य प्रदर्शन कुछ न था, परन्तु मनुष्य सर्वोत्तर मत्व था। तब जगत के कल्याण की कामना उसके मन मे थी और आज जगत के विध्वस की कामना उसके मन मे है। मत्री सम्बन्ध व्यवहार, व्यापार, राजनीति, सबमे घुडदौड, सब मे बदाबदी सबमे ईर्षा, फिर भला विवेक, धर्य, त्याग और शान्ति कहा रह सकती है ? यह असम्भव है।'

पहले युवक ने उकता कर पूछा—'तब सम्भव क्या है ?'

'सर्वनाश' ! यह कहकर दूसरा युवक चुप हो गया। उसके होठ फडकने लगे। मानो—बहुत सी बाते बलपूर्वक उसके मुख से निकलना चाहती थी, पर निकल नही सकती थी। वह सयम की चेष्टा कर रहा था। अन्त मे उसने कहा—'सर्वनाश। कैसा भयकर शब्द है ? जो नही समझता वह न समझे, पर जो समझता है, वह अवश्य भय खायगा। क्या तुम्हे मनुष्यो के सर्वनाश पर दया नही आती, क्या तुम आदर्श सहृदय मनुष्य होने के नाते मनुष्य के प्रति इतनी उदारता नही दिखा सकते कि उसे सर्वनाश से बचाने के लिए कुछ करो ?'

पहले युवक ने स्थिर होकर कहा—'मनुष्य के कल्याण के लिए मैं अपना जीवन भी होम देने को तैयार हूँ।'

दूसरा युवक हस दिया। उसने कहा—'शायद इसीलिए गाँव छोड कर मेरी सुसराल को भाग रहे थे ?'

युवक ने लज्जित होकर कहा—'अगर चोर, डाकू, शत्रु का भय हो तो हम लड़

कर मनुष्यो की रक्षा करे, परन्तु प्लेग मे क्या कर सकते है ? यहा तो वद्य डाक्टरो का काम है।'

दूसरे युवक ने मधुर स्वर से कहा—'तब क्या चोर डाकू शत्रु तुम्हारे ख्याल मे मनुष्य नही है ? तुम उन्हे मारकर मनुष्य का कल्याण करोगे ? तब तो हो चुका।'

पहला युवक विमूढ होकर साथी का मुह ताकने लगा।

साथी ने कहा—'योग्यता और आत्मत्याग मनुष्य की चरम श्रेष्ठताएँ है। महर्षियो ने इन दोनो श्रेष्ठताओ को अगीभूत किया था और वे जगत के देवता कहाए गए है। वही गुण हममे अगर न हुए तो कुछ न कर सकेगे। हम योग्य बनने की भरपूर चेष्टा कर रहे हे, पर आत्मत्याग की तरफ हमारा ध्यान नही है। जिस दिन आत्मत्याग हमारी योग्यता का पथ प्रदर्शक बनेगा, उसी दिन हम मनुष्य का कल्याण कर सकेगे।'

पहले युवक ने मित्र का हाथ पकडकर कहा—'मेरे मन मे उमग आती है कि मै अपने जीवन को आत्मत्याग मे लगाऊँ, क्या तुम उसका उपाय बता दोगे ?'

'अवश्य, उपाय ही नही, अवसर भी। और वह अवसर आज सामने है। तुमने कहा था कि तुम अपने मामा की लडकी को फूक कर आ रहे हो, जिसका अभी कुछ दिन प्रथम विवाह हुआ था और तुम यह भी देखते हो कि दिन दिन यह उपद्रव भीषण हो रहा हे ? लोग अपने-अपने घरो को बन्द करके भाग रहे है। यह निश्चय है कि शीघ्र ही कितने ही अनाथ, बच्चे, स्त्रिया और पुरुष असहाय अवस्था मे पडे रह जावेगे। जिन्हे एक ऐसे मनुष्य की सहायता की जरूरत होगी—जिसमे मनुष्य का हृदय हो, जिसमे मनुष्य की योग्यता हो, जिसमे मनुष्य का त्याग हो, क्या तुम और मै वसे मनुष्य नही बन सकते ? कल्पना करो, तुम और मै प्लेग के चक्कर मे आ जाय, छूत के भय से हमे छोडकर सब सगे सम्बन्धी भाग जाए, हमारे कण्ठ प्यास से सूखने लगे, शरीर ज्वर से तप रहा हो, रोग का विष बेहोश कर रहा हो। एक बूद पानी के लिए तुम कलेजा चीर कर चिल्लाते चिल्लाते मर जाओ, पर कोई मनुष्य बच्चा तुम्हारे पास न झाके, तब तुम्हारी क्या दशा होगी ! तब तुम क्या सोचोगे ? और फिर यदि एकाएक एक व्यक्ति चुपचाप आकर तुम्हारे सिरहाने बठ जाय, शीतल जल का भरा पात्र तुम्हारे मुख से लगादे, तुम्हे दवादारू द, तुम्हारे मलमूत्र उठावे, उसके साथ तुम क्या व्यवहार करोगे ?'

युवक ने तेजी से कहा—'उसे मै जहातक मुझमे बनेगा अपना सवस्व दूगा ?'

'सवस्व दे दोगे और उऋण हो जाओगे ? तव समझो, कि तुम उसे उसकी मजदूरी दोगे। क्या यह मजदूरी उसकी सेवा का मोल हो सकती है ? इस तरह कुछ देकर उसके भार से उऋण होना क्या उसका अपना अपमान नही हे। जहाँ तुम्हारे

सगे सम्बन्धी प्राणों के भय से तुम्हें छोड़कर चल दिये हों, वहाँ एक अपरिचित व्यक्ति क्या किसी लालच से, किसी लालसा से प्राणों को खतरे में डालकर तुम्हें पानी देने आवेगा? यह तो सम्भव नहीं है? अच्छा फर्ज करो, तुम्हीं कभी किसी ऐसे दुखिया की सेवा करने का अवसर पाओ—तब क्या तुम अपनी सेवा के बदले में कुछ लेने की इच्छा करोगे?'

युवक ने झटपट कहा—'कदापि नहीं, मुझे तुम इतना नीच न समझना।'

दूसरे युवक ने साथी के कन्धे पर प्यार से हाथ रखकर कहा—'राजे तब तुम भी किसी उदारात्मा को नीच मत समझो। बदले के लिए जो लोग किसी की सेवा करते हैं, वे तो नौकर हैं, दास हैं। परन्तु जो बिना किसी बदले में किसी की सेवा करते हैं, वे सेवक हैं। सेवक और दास में यही अन्तर है। पर तुम यह न समझना कि सेवक को कुछ मिलता ही नहीं है। उसे वह वस्तु प्राप्त होती है, जो योगी को समाधि की अन्तिम अवस्था में प्राप्त होती है।'

युवक ने कहा—'और वह चीज क्या है?'

'आत्मतुष्टि।' इतना कहकर युवक चुपचाप मित्र के मुख की ओर देखने लगा।

'मैं आत्मतुष्टि का अभिलाषी हूँ और मैं सेवाधर्म को स्वीकार करता हूँ। आओ, आज, अभी इसी क्षण पवित्र गंगा के तीर पर हम दोनों प्रतिज्ञा करें कि हम अपने जीते जी सेवाधर्म में दीक्षित रहेंगे, सेवाधर्म में जीएँगे और सेवाधर्म में मरेंगे।'

इन शब्दों के साथ ही युवक के सुन्दर नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली और वह मित्र की छाती पर झुक पड़ा।

दूसरा युवक जो इतनी देर से इतनी वाग्मिता दिखला रहा था, अवरुद्धकण्ठ हो गया। दोनों ने एक दूसरे का आलिङ्गन किया। दोनों ने एक मन, एक वचन, एक स्वर से प्रतिज्ञा की और दोनों सुन्दर प्रकृति का मोह छोड़कर गम्भीर चिन्ता हृदय में लिए घर को लौटे।

दूसरा परिच्छेद

दिन छिप गया था, दिए जल गए थे, बाबू रानीचरण दोने में दही लिए घर को लौट रहे थे। पीछे से आवाज आई—'बाबू रानीचरणजी!'

बाबू ने लौटकर देखा—उनके दफ्तर का चपरासी भरोसे है। उन्होंने रुककर पूछा—'क्या है?'

'विश्वनाथ बाबू की हालत बहुत खराब है, जरा चलकर देखिए।' चपरासी ने घबरा कर कहा।

'उन्हें क्या हुआ? अभी तो दफ्तर से साथ साथ लौटे थे।'

'वे बेहोश पड़े हैं, घर में चिराग भी नहीं, चिड़िया भी नहीं, मैंने जाकर मुँह

मे पानी डाला तो होश आया, आप जरा चलकर तो देखिए ?'

कालीचरण घबराए। इधर उधर करके बोले—'अभी ता जरा मुझे घर जाना है, तुम उनके चचा राधाचरणजी को खबर दे दो न।'

'वे तो आज देश चले गए ? घरमे ताला पडा है। अभी ती वहासे आरहा हू।'

कालीबाबू ने चलने का उपक्रम करते हुए कहा—'तुम चलो, मैं घर से लोटता हूँ।'

इतने मे सामने से गोपाल बाबू आते दीख गए, उन्हे देखते ही काली बाबू ने उन्हे पुकार कर कहा—'आपने सुना, विश्वनाथ को प्लेग अटक हुआ ?'

'कब, कब ?'

'अभी तो भरोस ने समाचार दिया हे।'

'तब कुशल इसी मे हे कल ही कही चल देना चाहिए, आपने कुछ बदोवस्त किया हे या नही।'

'कुछ भी नही, पर यह विचार कल होगा, अभी तो विश्वनाथ के लिए क्या करना चाहिए यह सोचना उचित है।'

'हम लोग क्या कर सकते हे, यह काम तो वैद्य डाक्टरो का हे।'

'वह हमारा पन्द्रह वर्ष का साथी हे, उसके घर का भी कोई आदमी नही हे। हम मित्र के, पडोसी के या साथी के नाते कुछ नही कर सकते ?'

'पर इस आगमे कूदना तो हमारा काम नही है न, अपना आपा बचाकर औरो का काम किया जाता है, तुम तो जानते ही हो कि यह कैसा बेढब रोग हे। मे भी तो बाल बच्चेदार हू।'

'और फर्ज करो हम पर कभी ऐसी विपत्ति आए, और हमारे मित्र लोग इसी तरह हमे छोड दे, तो ? आखिर मनुष्य ही मनुष्य के काम आता हे और विपत्ति मे तो शत्रु की भी सेवा करनी पडती है।'

'भाई दो चार रुपए की कोई कसर तो मे सह सकता हूँ, और कुछ तो मुझसे होगा सही, इतना कहकर बाबू राधाचरण चलने लगे।'

भरोस ने उन्हे रोक कर कहा—'बाबूजी ! ऐसा तो न होना चाहिए, हाय, इस वक्त उनका कोई नही है। बेचारे कसे भले सीधे आदमी थे, दफ्तर मे कोई नाराज न था, आज वे फँस गये हे, तो हम कुछ करना चाहिए। मौत होगी तो आवेगी, न होगी तो आग मे कूदने से भी न आवेगी। उन्हे इस तरह तो न छोडना चाहिए।'

राधाचरण बाबू ने कहा—'देखो, तुम हो बेसमझ आदमी, मेरी राय मानी तो मै कहूँगा कि तुम म्युनिसिपलिटी मे उनकी खबर करदो, सरकार ने कोरेंटाइन मे सब बन्दोबस्त कर रखा है।'

'बाबूजी मै रात भर बठा रहा हूँ ?'

'कैसा अहमक है, अरे भाई बैठा रहकर क्या होगा ? रोग तो दवा पानी से ही जाएगा।'

'तब आप दवा पानी का बन्दोबस्त कर दें, किसी डाक्टर को बुला दें। क्या वे ऐसे हैं कि किसी का पैसा रख लेंगे ? आराम होते ही पाई पाई चुका देंगे।'

'पर आराम न हुआ तो ?'

भरोसे के मनमें चोट लगी। एक क्षण को वह कम्पित हुआ। फिर उसने सम्हल कर कहा—'यदि ऐसा ही हो तो क्या है ? मनुष्य वही जो विपत्ति में मनुष्यके काम आवे।'

राधाचरणजी कुछ कह रहे थे कि पीछे से दो युवकों ने आगे आकर कहा—'आप लोग किसकी चर्चा कर रहे हैं ?'

राधाचरण चुप रहे। उन्होंने घटना और अपना अभिप्राय बयानकर दिए।

दोनों युवक प्रथम परिच्छेदमें आए हुए राजेन्द्र और गोविन्द थे। उन्होंने कहा—'क्या आप लोग कृपाकर हमें उनका घर बता देंगे।'

भरोसे ने कहा—'चलिए, यही तो सामने घर है।' राधाचरण बाबू की इच्छा कुछ उपदेश करने की थी, पर दोनों युवक जल्दी से भरोसे के साथ चल दिए।

युवकों का कलेजा धड़क रहा था। भावना युवकों की स्वभावसिद्ध वस्तु है। पर वह भावना प्रायः आकाशी पुष्पवत् होती है। प्रत्यक्ष में जब भावना मूर्तिमती होती है, तो बहुत कम नवयुवक हृदय कठिनाइयों के सामने ठहर पाते हैं। कठिनाइयों के मुकाबिले में खड़े होना एक अनुभव जन्य अभ्यास है। जिसे जितना अधिक अनुभव है वह उतना ही अधिक कठिनाइयों में स्थिर रह सकता है। भावना एक कोमल हृदय की लहर है और कठिनाइयों का सामना कठोर हृदय का एक प्रबल रूप है।

युवक दोनों ही हवाई भावनाओं में खड़े हुए उस मूर्तिमान खतरे में जब एकाएक जा खड़े हुए, तब उन्होंने देखा कि घोर अन्धकार में एक मनुष्य की भयङ्कर अस्वाभाविक श्वास चलो चल रही है।

भरोसे ने जब मिट्टी का दिया जलाया, तब उन्होंने उसके कांपते हुए धीमे प्रकाश में देखा कि एक मनुष्य बिलकुल बेसुध धरती पर पड़ा है। उसकी रूप रङ्गरहित फटी हुई लाल लाल आँखें मानों और मानों किसी को निगलना चाहती हैं। दोनों होठ ऊपर को सिकुड़ गए हैं और दांत भी बीच में निकल आए हैं। अत्यन्त भयंकर मालूम पड़ते हैं। वह चलने फिरने की शक्ति में हीन व्यक्ति धरती में मलमूत्र में लतपत पड़ा था, पर भी अस्तव्यस्त था।

दोनों युवकों का मुख सूख गया। क्षण भर के लिए उनके शरीरमें रक्त की गति रुक गई। भय ने दोनों को हतबुद्धि कर दिया।

गोविन्द ने भयसे कम्पित हाथमें साथीका हाथ पकड़कर कहा—'राजेन्द्र' 'यहाँ से चलो।'

इसी एक शब्द से राजे द्र की मानो निद्रा टूटी, उसके मन मे साहस का उदय हुआ। उसने कहा—'भय क्या हे ?'

इसके बाद वह भीतर कमरे मे घुस गया और भरोस से कहा—'इ हे चारपाई पर सुलाना चाहिए।' भरोस ने चारपाई ठीक करने का आयोजन किया। राजेन्द्र ने गोवि दसे कहा—'गोविन्द,तुम जरा बाजार से थोडा दूध तो लाओ। क्या पसे जेब मे है ?'

'हे।' कहकर गोविन्द नीचे चला।

लोटकर गोवि द ने देखा, सब कुछ व्यवस्थित हो गया हे। उसके मन का भी भय कम हो गया था। उसने दूध पात्र मे करके राजे द्र के हाथ मे दिया। राजेन्द्र ने दूध चम्मच से रोगी के मुख मे डालना शुरू किया। तीनो व्यक्तियो ने मनही मन ईश्वर का ध यवाद किया।

राजेन्द्र घर गया और लौटकर एक मात्रा दवा रोगी के मुह मे डाली। तीनो आदमी बारी-बारीसे पहरा देने बठे। भरास ने कहा—'बाबूजी आप सोइए मै बठा हूँ।'

राजेन्द्र ने कहा—'नही, तुम थोडा सोलो, हम बठे है फिर हम तुम्हे जगा लेगे।'

भरोस का यह बात माननी पडी। राजेन्द्र रोगी के पास डट कर बठे। गोवि द ने पूछा—'मे क्या करूँ ?'

राजेन्द्र ने कहा—'तुम घर जाकर सोओ, प्रात काल तुम आना, कल दिन भर तुम्हारी ड्यूटी रहेगी।'

गोवि द ने कुछ विवाद के बाद यह स्वीकार किया।

धीरे धीरे रात बीतने लगी,ऊषा का उदय हुआ। प्रभात आया,जगतमे आलोक और अमृत की वषा हुई। गोविन्द ने आकर देखा—भरोस निस्त द्र कुर्सी पर बैठा है।

उसने पूछा—'रोगी कसा है ?'

भरोस ने उत्साह से कहा—'देवदूतो ने उसकी रक्षा की है, रोगी सो रहा है।'

इतने मे रोगी ने करवट ली। उसके नेत्र और मुख मे वैसी भयकरता न थी। उसने सकेत से जल मागा,भरोस ने जल चम्मच से लेकर रोगी के मुख मे डाल दिया। रोगी ने गोवि द की तरफ देखकर उसे बठ जाने का आदेश किया।

गोवि द खडा रहा। उसके मन मे विचार उत्पन्न हो रहे थे। वह इस समय आकाश म उड रहा था। उसने भरोस को सोने को उठा दिया और आप बैठ गया।

वह सोचने लगा—मनुष्य के द्वारा इतना काम हो सकता है ? यह तो कभी सोचा ही नही था। यही पुरुष कल कैसा था ?

धीरे-धीरे एक परछाइ पीछे देख पडी। लौटकर देखा—राजेन्द्र है। गोविन्द खडा हो गया उसके नेत्रो मे आसू भर आए। उसने कहा—'ओफ! मनुष्य के हाथ मे इतनी शक्ति और इतनी कुदरत है, यह तो मै जानता ही न था।

राजेन्द्र ने कहा—परन्तु स्वार्थ और कायरता के वश होकर मनुष्य कुछ नही करता है। उसके सामने ऐसे पैसे प्रहार नित्य होते है। अगर मनुष्य के हृदय मे साहस और त्याग का उदय हो जाय तो जगत के कितने पाप दूर हो, कितनी हत्याएँ, कितने दुख कट जाय, मनुष्य को कितना सहारा मिले।

इसी बीच मे रोगी ने पानी मागा। रोगी के शब्द अमृत की तरह युवको के कानो मे गए। दोनो ने दोनो को देखा। एक अनिवचनीय तृप्ति और आनन्द की लहर उसके रोम रोम मे रम गई।

गोविन्द ने कहा—'राजे, कल तुमने 'आत्मतुष्टि' का महत्व समझाया था, तब समझ मे नही आया था, आज समझ गया। ओह! यही 'आत्मतुष्टि' है।'

तीसरा परिच्छेद

'अरे बेटे, ओ रामस्वरूप, अरे अधर्मी, अरे निदयी, जरा सुन, ठहर, देख—तेरा भाई ससार से जा रहा है। हाय! यह कहर की घडी है भाई को भाई कब नसीब होता है? ओ पापी। जरा ठहर, अरे सुन तो , यह कहता हुआ एक वृद्ध रोता कलपता एक युवक के पीछे झपटा, पर अधेरे मे एक पत्थर से ठोकर खाकर गिर गया, और 'हाय' करके बेहोश हो गया।

अन्धेरी रात थी। दो बज गए थे। सब तरफ सन्नाटा था। साय साय हवा चल रही थी, बस्ती के बाहर गीदड रो रहे थे, उनकी मनहूस आवाज मन मे भय उत्पन्न करती थी। कभी कभी कोई कुत्ता भूस पडता था। वृक्ष काले काल भूत की तरह धीरे धीरे अपने स्थान पर हिल रहे थे।

युवक ने बाप की तरफ फिर कर नही देखा, वृद्ध सडक पर बेहोश पडा था। अचानक पहरवाले सिपाही को ठोकर लगी। सिपाही ने उससे पूछा—'कौन?'

जवाब नही मिला।

सिपाही ने झुककर देखा, बैठ कर जाच की। मरा न था। उसने उसे उठाकर सहारे से बैठाया और इधर उधर आश्रय और सहायता की खोज मे दृष्टि फैलाई।

वृद्ध ने गहरी सास ली और चैतन्यता लाभ करके एक हाय की। साथ ही उसने पुत्र को गहरे दुख से शाप दिया। इसके बाद वह फिर बेहोश हो गया। पहरेदार ने देखा, बूढे का सिर फट गया है और उससे रक्त की धारा बह रही है। क्षणभर निमूढ रह कर उसने वृद्ध को पीठपर लाद लिया। इतने ही मे वृद्ध ने फिर चैतन्य लाभ किया और 'हाय' की।

मनुष्य की कही गन्ध भी न थी। पहरदार ने उसे लालटेन के खम्भे के सहारे खडा करके पूछा—'तुम्हारा घर कहाँ है बूढे?'

बूढे ने कहा—'मेरा घर अब कही भी नही है।'

पहरेदार भी बूढा था। उसने भी जीवन मे चोटे खाई थी। दुखी का दुख उसने कुछ समझा। उसे ढारस दिया और उसका पता पूछ वह उसे घर की ओर धीरे धीरे ले चला।

गली के भीतरी सिरे पर घर था। देखा कि खपरल की छत वाला मकान है, मनहूस दिया टिमटिमा रहा था और टूटी सी चारपाई पर एक बालक उर्ध्व सास ले रहा था। आखे फैली हुई थी। बालक के स्वास का घराटा द्वार के पास से सुनाई दे रहा था। पहरेदार ने करुण स्वर से पूछा—'क्या वह तुम्हारा लडका है?'

वृद्ध ने शून्य कण्ठ से कहा—'है कहा? कभी था। यह मेरा छोटा अन्तिम बच्चा था। १८वा वर्ष लगा है।'

पहरेदार ने पूछा—'व्याह हो गया है?'

'सिर्फ पाच महीने हुए है। कार्तिकमे गौना करनेका विचार था।' बूढा रोने लगा।

पहरेदार का हृदय भर आया। वह रोगी की खाट के पास गया, उसे देखा, फिर वृद्ध के पास आकर कहा—'तुम्हारा और कोई नही है?'

वृद्ध ने आखे फाडकर पहरेदार की ओर देखा। उसने कहा—'क्या तुमने उस कपूत को नही देखा? वह मेरा बडा बेटा था। तीन दिन मे रात आया था, घण्टे भर बाद चल दिया। उसका कहना था कि प्लेग के बीमार के पास रहना ठीक नही। पापी नही जानता, यह प्लेग का बीमार नही, सगा भाई है। हाय! इसने उसी का झूठा दूध पिया है। इसने उसकी गोद मे किलोल की है। जमादार साहिब! सगा बेटा जब अपना नही है, तब और कौन होगा?'

पहरेदार की आखो मे आसू भर आए। उसने कहा—'खुदा सब खैर करेंगे, तुम घबराओ मत। बच्चे के पास बैठो, मै एक गश्त लगाकर अभी आता हूँ।' यह कह कर पहरेदार उठा। इतने मे ही रोगी को ऊर्ध्व श्वास और हुचकी आने लगी। बूढा चिल्लाकर भीतर दौडा और बालक के ऊपर धडाम से गिर गया। जमादार न जा सका। वह धीरे धीरे जाकर बूढे के पास खडा हो गया और फिर वृद्ध की पीठ पर हाथ रख कर बैठ गया।

कुछ ही मिनट बाद बच्चे का प्राण निकल गया। पहरेदार ने अत्यन्त सहानुभूति से वृद्ध को ढारस दी और कर्त्तव्य का ज्ञान कराया। कर्त्तव्य का ध्यान आते ही अभागे वृद्ध पर वज्र गिरा। वह पागल की तरह जमादार का हाथ पकडकर बोला—'अब मै क्या करूँ?'

पौ फट रही थी। धीरे धीरे ऊषा का आलोक जगत मे विस्फारित हुआ। जगत फिर सुन्दर हो गया। पहरेदार ने ढारस देते हुए कहा—'अब तुम मुहल्ले वालो को और मित्रो को बुला लाओ, मै तब तक यहाँ बैठा हूँ।' निरुपाय बूढा चला। नगे बदन और

नगे सिर। पडौस मे गोवि द ग धी की हवेली थी। उसने उन्ही के द्वार पर जाकर आवाज दी। ग धीजी अभी पीनक मे पडे थे, आवाज सुनकर ऊपर से झाक कर कहा–'कौन है ?' वद्ध को देखकर कहा–'खैराफियत ता है ?' वद्ध बोला–'खैर कहाँ ? छोटका समा गया।'

'ओफ बडा गजब हुआ' यह कहकर ग धीजी ने क्षण भर को गम्भीर चेहरा बना लिया।

उनकी सहधर्मिणी उनके पीछे ही आखडी हुई थी। वद्ध का सन्देश कानो मे पडते ही फिर उन्होने पीछे से बहुत धीमे स्वर मे कहा—'भीतर आओ, गजब हुआ तो तुम क्या करोगे ?'

गन्धीजी खडे रहे। कुछ ठहर कर बोले–'अब क्या करना, यह तो बुरा हुआ ?'

'जो होना था हो गया, अब चलिए उसे ठिकाने पहुँचा आइए ?'

गन्धीजी बोलने भी न पाए थे कि गृहिणी ने पीछे से पल्ला खीच कर कहा—'ना, हमारा कुछ काम नही।' पर गन्धीजी कुछ न बोल सके। वे चुप खडे रहे। वद्ध ने कहा – 'क्या हुक्म हुआ ?'

ग धीजी बोले—'और सबको ता खबर करा।'

'मै जाता हूँ, आप जरा जल्दी आना।' कह वद्ध चल दिया। नत्थू चौधरी के घर आकर पुकारा— 'चौधरी साहिब ! चौधरी साहिब !!' चौधरी साहिब पाखाने मे थे, उन्होने वही से खास कर किवाड ठपठपा दिए। वद्ध समझ कर खडा रहा। चौधरी साहिब अफीम खाते थे, बडी देर तक वे पीनक मे बैठे रहे। वृद्ध को क्षण क्षण कष्ट हो रहा था। अन्त मे चौधरी जी ने निकल कर कहा— 'माजरा क्या है ?' वद्ध ने रोकर कहा—'चौधरी जी ! छोटका समा गया।'

चौधरी का माथा ठिनका। बोले— 'बुरा हुआ लडका कैसा सुन्दर, सुशील और होनहार था।' वद्धने कहा–'जो अब नही है उसका कहना क्या ? अब आप जल्दी चलिए।'

चौधरी ने कष्ट की भावनाएँ मुह पर लाकर कहा–'देखत हो, पन्द्रह दिन से बीमार हू, क्या मुह नही देखते, अठवाडे घर से निकले हो गए, तुम औरो को बुलाओ, रज्जू आ गया ता भेजता हूँ।'

वद्ध आगे चला। पण्डित रामनारायण के घर पर आवाज दी—'पण्डित जी ?'

पण्डित जी पूजा मे बैठे थ, नौकर से पुछवाकर पुकारने वाले का नाम और कारण मालूम करके गुनगुने होकर बोले—'भाड मे जाय। पूजा म विघ्न कर दिया। सवेरे आकर बुरा सन्देश दिया, कहदो कि पण्डित जी घर मे नही है।'

बूढे को रोने की शक्ति और फुसत नही थी। आठ बजे वद्ध तमाम मुहल्ले मे धूमकर अकेला लौट आया। पहरेदार मुर्दे के पास अकेला बैठा था। अकेला लौटते देख

उसने पूछा—'यह क्या ? क्या कोई नही आया ?'

वृद्ध ने टूटे स्वर से कहा—'कोई नही ।'

जमादार बोला— यही तुम्हारा हिन्दूधम हे ? छी !!

वृद्ध इस बात को समझा नही । उसने कहा—'अब क्या करना ?'

जमादार बोला—'मुसलमान कहो तो मैं पचास लाकर हाजिर करूँ ?'

'क्या मेरे बच्चे को मुसलमान उठावेगे ?'

जमादार ने कहा—'क्या मुसलमान आदमी नही है ? रात भर मै तुम्हारे पास रहा, जब तुम्हारा सगा बेटा भाग गया । क्या मुसलमान आदमी नही । जिस धममे आदमी आदमी पर तरस नही खाता, वह भी धम है ? तुम हमे कहते हो कि हम निदयी मुसलमान है, पशुओ पर दया नही करते । मै कहता हूँ तुम हिन्दू हमसे अधिक निदयी हो, तुम मनुष्यो पर, अपने भाइयो पर दया नही करते ?'

वृद्ध कुछ समझा । उसने शून्य दृष्टि से अपने चारो तरफ देखा और जमादार का पल्ला पकड कर रो दिया । उसने कहा—'क्या सचमुच मेरा कोई सहायक सगा नही !'

'है क्यो नही, सब मुसलमान तुम्हारे लिए हाजिर है । तुम्हारे इशारे की देर है ।'

वृद्ध बैठा रहा । दिन चढ रहा था, धूप चमक रही थी, घर मे निर्जीव बच्चा चुपचाप पडा था, वृद्ध के हृदय मे तूफान उठ रहा था । उसने कहा—'आज मेरा कोई नही । वाहरे स्वार्थी पापी हिन्दू धम ? जमादार ! मैं मुसलमान हूँ । लाओ अपना जूठा पानी, मैं अभी पीऊगा फिर तुम्हे मेरे बच्चे की लाश का अख्तियार है, चाहे जो करो ।' वृद्ध उत्तेजना से खडा हो गया ।

जमादार ने फिर ढारस दिया । उसने कहा— क्या मै अपने आदमी लाऊँ ?'

'नही तो क्या यह इसी तरह पडा रहेगा ?'

जमादार चला गया । पास ही एक मस्जिद थी, वहाँ जाकर उसने उपस्थित मण्डली से घटना का जिक्र किया ।

प्रभातकी नमाज खतम होगई थी ।'बिस्मिल्लाह' कहके सारे मुसलमान चल दिए ।

क्षणभर मे ही वृद्ध पुरुष के द्वार पर मुसलमानो की बडी भीड लग गई । दस बज गए थे । वृद्ध मानो पागल हो गया था, उसका शोक कही विलीन हो गया था, वह कुछ बोलना चाहता था, पर उसकी जीभ तालु से सट गई थी । गाँवभर मे इसकी चर्चा हवा मे फैल गई थी । कुछ दशक यह देखने आए कि देखे—हिन्दू के मुर्दे को मुसलमान कैसे उठावगे । वे दूर खडे देख और आलोचना कर रहे थे ।

मुसलमान अपनी तैयारी मे थे । क्षण-क्षण मे उनकी सख्या बढ रही थी । बहुत बार पूछने पर वृद्ध ने भर्राई आवाज से कहा—'मैने लडका तुम्हे दिया, चाहे गाढो चाहे जलाओ ।'

इतना कहकर वह ज्योही चुप हुआ था कि दो वीर युवक भीड़ को चीरकर वृद्ध के निकट आकर बोले 'पिता ! चिन्ता की कोई बात नहीं हम आ पहुचे है ।'

वृद्ध ने आख फाड फाड कर देखा उसके होठ हिल गये । एक युवक ने ललकार कर कहा—'मुसलमान भाईयोकी कृपा के हम कृतज्ञ है पर अब उन्हे कष्ट करनेकी जरूरत नही । हम लोग आगये है, हमारे और साथी आ रहे है । अब आप लोग अपने अपने घर जाइये ।'

क्षण भरको हलचल मच गई । कुछ मुसलमान उत्तेजित भी हुये, परन्तु जमादार ने सबको शान्त कर लौटा दिया । वह अकेला वहा खडा रहा ।

उसने युवको से कहा—'तुम लोग कौन हो ?'

'हम कालेज के विद्यार्थी है ।'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरा नाम राजेन्द्र और उसका गाविन्द है ।'

सिपाही की आखो मे आसू आ गये । उसने कहा – 'तुम धन्य हो, तुम्हारी जननी धन्य है । खुदा तुम्हारा भला करे ।' इतना कहकर सिपाही धीरे धीरे चला गया ।

वृद्ध धरती पर लोटकर रोने लगा । उसने कहा—'ईश्वर ! तेरी माया अपार है, तूने देवदूत भेजकर डूबते ब्राह्मण के धर्म की रक्षा की ।'

चौथा परिच्छेद

९ बज गये थे । रायबहादुर मुकुन्दनाथ अपने बेडौल शरीर को ढीले ढाले मगर कीमती कपडो से ढककर और आबनूसी चरणो कमलो म चमचमाते बूट पहनकर पान कुचरते खडे रामदीन सईस का नाना प्रकार विशेषणो मे श्राद्ध कर रहे थे ।

रामदीन को रात ही हुक्म हो गया था कि सबेरे ९ बजे गाडी तैयार रक्खे—प्लेग कमेटी जाना है । रामदीन ने अधेरे ही उठकर गाडी का सब सामान तयार किया था । अब वह कुछ खाने को बैठा था । परन्तु रामदीन का टिफिन गर्मागर्म तर मालका थोडे ही था । बासी ज्वार की दो रोटिया और प्याज का गठा उसके हाथपर धरा था। वह अपने समस्त इष्ट देवताओ का आशीर्वाद के सहारे उदर गह्वर मे उतार रहा था ।

इतने मे धतूरे दरबान वहा जा धमका । उसने अपनी लम्बी चमन हिलाते हुये कहा—'क्यो रे ! तू यहा भोग लगा रहा है, वहा सरकार खडे खडे लाल हो रहे है।'

रामदीन ने जरा रुखाई से कहा 'तब क्या दिन भर भूखा मरे, सरकार न जाने कब तक लौटे । पेट मे टुकडा पडे बिना क्या शरीर उठता है – मालिक !'

'मालिक' शब्द सुनते ही दरबान तृप्त हो गये । उन्होने नर्मीसे कहा—'रामदीन नौकरी तो नौकरी है तू जल्दी आ, सरकार प्लेग कमेटी मे जा रहे है ।'

रामदीन ने मुह फैलाकर कहा—'प्लेग कमेटी मे ? दयारे ! वहाँ जाने से क्या

प्राण बचेगे ? दादा ! मै प्लेग मे नही जाने का !'

दरबान ने जरा गहराई से कहा—'क्यो रे ? जब सरकार जाते है तो तुझे क्या आफत है रे !'

'वे लोग बडे आदमी ठहरे, उनके आगे पीछे की क्या बात है। उनके बाल बच्चो को किस बात की कमी है, पर हमे कुछ हो जाय तो हमारी महरारू का कही ठिकाना नही।' इतना कहकर रामदीन दीन भाव से अपनी स्त्री और बच्चो की ओर देखने लगा। इस सुअवसर पर रामदीन की स्त्री ने आचल से अपने आसू पोछ डाले।

'तब कह दू कि रामदीन नही जायगा।'

'पापी पेट के लिए सब कुछ करना है।' कहकर रामदीन उठा, कुल्ला किया और अत्य त करुण स्वर मे कहा —'अभी गाडी लाता हूँ।'

स्थानीय टाउनहालमे प्लेग कमेटी की बठक थी। शहरके मा बाप, गुद्गुदे गद्दो पर बठने वाले रायबहादुर, रायसाहब और इन उपाधियो के उम्मीदवार अपने असाधारण चमकदार वस्त्र पहन पहन कर आ रहे थे। प्रत्येक का ठाठ निराला था, प्रत्येक बडे तपाकसे मित्रोसे हाथ मिला रहा था—रग ढग देखकर यह नही कहा जा सकता था कि यह कोई मातमी जलसा है। शहर पर विपत्ति आई है, नगर परेशान हो रहा है, परन्तु इन महा महिमामय पुरुषो के चेहरो पर मलाल नही।

दीवान बहादुर जटल्लूमल सभापति की कुर्सी पर थोद लटका कर बैठे। प्रारम्भिक भाषण मे आपने मेज के सहारे औधे लेटकर होठो ही होठो मे बडबडा कर कुछ कहा, और फिर हाफते हुए कुर्सी पर गिर गये और चश्मा साफ करने लगे।

अब रायसाहब भोदूमल खडे हुए। आपने अपनी पूरी ऊचाई मे तनकर खडे होकर कुछ देर तक मूछे मरोडी, फिर आपने करारी आवाज मे कहा—'नाजरीन !'

पीछे से किसी ने आवाज लगाई—'हाजरीन कहिए साहेब !'

सभापति ने पीछे फिर और घुडक कर कहा—'चुप रहिए।'

रायसाहब फिर बोले—'हाजरीन ! हमारे शहर पर कहर छाया हुआ है।' इतना कहकर आपने सभापति की तरफ घूरकर देखा।

सभापति ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

आप आगे बोले—'और हम शहर के माई बाप है।'

सभापति ने पूर्ण सम्मतिसूचक सिर हिला दिया।

अब आपने फिर कहा—'हमारा फर्ज है कि हम शहर के लिए कुछ करे।'

इसपर आप फिर सभापति को देखने लगे। सभापति ने फिर सिर हिला दिया।

अन्त मे आप बोले—'सुना है, शहरके नौजवानो ने कुछ काम शुरू किया है, मगर वे लोग बिना हम रऊसा की मदद के कुछ नही कर सकते।'

इस पर 'बेशक, बेशक' की आवाज आई और आप आगे कुछ कहने मे असमर्थ होकर बैठ गये।

अब रायबहादुर मुकुन्दरनाथ जी उठे और बोले—'हमारे लायक दोस्त ने बहुत बडी बात कही है कि चन्द नौजवान बिना हम जहादीदा बुजुर्ग और रईसो की मददके कुछ नही कर सकते। इसलिए बहतर है कि वे हमारे जेरसाये काम करें और उनके पास हमारा यह हुक्म पहुँचा दिया जाय।'

इतना कहकर तालियो की गडगडाहट मे बैठगये। अब मुन्शी फजुल्लाखा उठे। आपने फर्माया—

'जनाब प्रसीडेन्ड साहेब और हाजरीने जलसा, यह बडी खुशकिस्मती का दिन है कि आज हम और आप अपने फर्ज अदा करने को इकट्ठा हुए है।'

यह बात जाहिर है कि शहर मे प्लेग का बडा ही जोर चल रहा है और शहर वाले बडी तकलीफ मे है। अगर हम उनकी मदद न करेगे तो कौन करेगा। रायबहादुर रामदेव और प्रजीडेन्ट साहबको जनाब कलक्टर साहब ने भी यही हुक्म दिया है कि वे शहर के लिए कुछ करे और इसीलिए यह मीटिंग की गई है।

मगर जनाब! सच पूछिये तो शहर वाले खासकर हिन्दू अजहद गन्दे और बेवकूफ है। खासकर लाला लोगो को तो गन्दे रहने की आदत पड गई है। ये लोग रातको बर्तनो मे पिशाब करते और सुबह उसे गलीमे फेंक देते है। सस्ती तरकारी और गला हुआ अनाज खाते है। कभी खुदा पाक का नाम नही लेते। जब देखिये कमती तोलना और ज्यादा लेना इनका काम है। बस इसीलिए खुदा पाक इनसे नाराज है।'

आप धुआधार बक रहे थे कि किसी ने पीछे से चिल्लाकर कहा—'जनाब! ज्यादातर मौत अभी मुसलमानो की ही हुई है उन पर क्या शैतान सवार है?'

सभापति ने घंटी बजा दी । खामोश रहने को कहा और मुंशीजी ने रौद्र स्वर मे कहा—'हा इनपर भी खुदा नाराज है क्योकि वे नापाक काफिरो के नजदीक रहते है।' मुंशीजी कुछ और भी कहते पर सभापति के रोकने से आप तावपेच खाते दाढी पर हाथ फेरते बैठ गये।

इसके बाद खास खखार कर गला साफ करके सभापतिजी ने उठकर कहा—मेरे ख्याल मे काफी तकरीरे हो चुकी है। अब हमको यह मुनासिब है कि हम अपनी तजवीजे काम मे लावे।

इसपर 'बेशक, बेशक' की आवाज आने लगी। सभापतिजी ने कहा—'हम एक कमेटी बनानी चाहिए। जिसके मेम्बर शहर मे घूम घूम कर मालूम करें कि मददकी किनको जरूरत है और उन्हे मदद दे। मेरे ख्याल मे रायसाहब भौदूमलजी शहरमे घूमने का काम बहुत अच्छा कर सकते है। कुछ लोग आपकी मदद करने को तयार भी

हो जायेगे, इसलिए बहतर है कि आपकी सरपरस्ती मे यह कमेटी बनाई जाय ।'

रायसाहेब बोले—मुझे तो कोई उजर न था, मगर मे तो कल ही शहर से चार मील दूर बगले मे उठ जाने वाला हूँ । घर के लोग तो सब जा ही चुके है, मै सिफ आज की मीटिग के लिए रह गया था ।'

सभापति जी ने लाचारी दिखाकर कहा— 'तब क्या म रायबहादुर मुकुन्दरनाथ साहिब से दरख्वास्त कर सकता हूँ ?'

'बडी खुशी से, मगर रायसाहबके साथ जो मुसीबत है वही मेरे साथ भी है । मे भी तो शहर से दूर जा रहा हूँ । मेरे रयाल में तो जनाब प्रेसीडेन्ट साहेब ही यह सरपरस्ती मजूर फर्मावे तो बहतर ।'

सभापति महाशय कुछ दबी जबान से बोले–'यह तो कोई बात न थी । मगर मे तो आप जानते ही है कि किसी काम का आदमी नही, बूढा और मरीज हूँ । चलफिर नही सकता ।

हा, आप अगर खजाची जैसा कोई छोटा मोटा काम मेरे सुपुद करेगे तो देखा जायेगा । तब क्या मैं मुन्शी साहेब से दर्खास्त करू, मुन्शी जी इधर उधर देखकर बोले–'यह तो आपकी एक निवाजिश थी, मगर आप देखते ही है कि बिना आप बुजुगान और रऊसान की मदद के हम क्या कर सकने है । मेरी तो एक यही राय है कि फिलहाल जो चन्द नौजवानो ने काम शुरू किया है, हम लोग उन्ही की सरपरस्ती अपने पर लेल और उन्हे आगाह करदे कि हमारी मीटिगने यह तय किया है ।'

इस पर हर तरफ से 'बेशक बेशक' की आवाज आई । एक सज्जन उठकर बोले—'मगर वे लोग नामजूर करे तब ?'

इस पर रायबहादुर ने घुडककर कहा—'यह नामुमकिन है । हमारी सरपरस्ती से इन्कार यदि किया जायेगा तो उसपर जाप्ते की कायवाही होगी ।'

इसके अनन्तर एक प्रस्ताव इसी आशय का पास होकर सभापति को धन्यवाद देकर सभा बखास्त हुई ।

एक विशिष्ट कहानी रचनाकाल १९५०

('भारतीय संस्कृति का इतिहास' रचनाकाल में नौ मास तक आचार्यश्री सांघातिक रूप से रुग्ण रहे। उन्हीं दिनों एक रात्रि दो बजे उठकर उन्होंने अपने सिरहाने बैठे चन्द्रसेन को यह कहानी बोलकर लिखवाई थी।)

ऋतु बडी सुहावनी थी, और मित्र मण्डली मौज मे थी। चाय और सब लवाजमा गरमागरम टेबिल पर सजा रखा था। वसों हो गरमागरम बहस चल रही थी। बीच बीच मे हँसी के ठहाके भी चल रहे थे। मित्र मण्डली बहुत खुश थी। इसी सप्ताह कोई दो लाख रुपए मुनाफे उनकी जेब मे आया था, जो बैंक मे जमा था। किन्तु जिसकी गरमी और स्फूर्ति सबके मस्तिष्क मे थी। सबके व्यंग का केन्द्र रघुनाथ बाबू थे। जितना मित्र लोग उन्हें उत्तेजित कर रहे थे वे प्रसन्न हो रहे थे।

इसी समय एक भिखारी धीरे से वहा आकर खडा हो गया, और अपनी घिनौनी आँखों से टेबिल पर सजी हुई वस्तुओं को ललचाई दृष्टि से देखने और अपने होंठ चाटने लगा, परन्तु कुछ कहने का उसे साहस नहीं हुआ।

रघुनाथ बाबू एकाएक उत्तेजित होकर कुर्सी से उठ खडे हुए और हथेली पर मुक्का मारकर रोषपूर्ण आवेश मे बोल उठे—'यह देखो यह दीन हीन गन्दा घिनौना आदमी जो सामने खडा है, दुनिया की सबसे बडी इकाई है। मै कहता हूँ इसी की विजयानिष्ठा सबसे बडा कार्य है।'

मित्र मण्डली ठहाका मार कर हस उठी, परन्तु रघुनाथ बाबू ने इसकी कुछ परवा न करके उससे कहा—'चले आओ, यहा बैठो।' उन्होंने आगे बढकर उसका हाथ पकड लिया और कुर्सी पर बैठा दिया। चाय का प्याला और नाश्ता उसके आगे पेश करके कहा—'खाओ पिओ दोस्त।'

उस घृणित और अर्ध विक्षिप्त भिक्षु ने यह समझा जैसे स्वर्ग का द्वार खुल गया, और जल्दी जल्दी स्वादिष्ट नाश्ता और चाय गले मे उतारने लगा।

एकदम वातावरण शुब्ध हो उठा। मित्र मण्डली तुरन्त कुर्सियां छोडकर उठ खडी हुई और सब क्रोधभरी आंखों से रघुनाथ बाबू को और इस भिखारी को देखने लगे। गोपाल बाबू ने कहा—'रघुनाथ बाबू, यह तुम्हारा बडा अत्याचार है। तुम्हे यह भी सोचना था कि यह तुम्हारा घर नहीं है।' और फिर एक महाशय ने आगे बढकर टेबिल का सब सामान उस भिखारी की झोली मे डाल दिया और टेबिल को उलट कर कहा—'भाग। भाग। दूर हो यहा से।'

बिचारा भिखारी खाता खाता भयभीत मुद्रा से मित्र मण्डली को देखता हुआ

चला गया। यह देखकर रघुनाथ बाबू ने क्रोध मे आकर कहा—'यही आप लोगो का शिष्टाचार है, और यही सभ्यता है ? कैसी लज्जा की बात है।'

मित्र मण्डली का मूड खराब हो चुका था, और सभी मित्र क्रोध और घृणा से रघुनाथ बाबू को घूरते हुए अपनी अपनी कारो मे बैठकर चले गए। लेकिन रघुनाथ बाबू गुस्से मे भरे हुए कुर्सी पर अचल बैठे हुए थे। मेजवान गोपाल बाबू ने कहा—'रघुनाथ बाबू यह तुम्हारा घोर अत्याचार और अशिष्ट व्यवहार है। तुम्हे इसपर लज्जित होना चाहिए।'

रघुनाथ बाबू ने कहा—'लज्जित तो हूँ किन्तु अपने व्यवहार के कारण नही, तुम्हारे व्यवहार के कारण। तुमने दुनिया की सबसे बडी इकाई की पूजा निष्ठा की भावना हृदय से निकाल दी। कैसी लज्जा की बात है!

यह तुम्हारा कृत्रिम समाज जिसमे एक मनुष्य घृणित, वहिष्कृत और दूसरा समाज का अधिपति है। यह तुम्हारा समाज जीवित प्राणियो का समाज नही है। जैसे गोदाम मे एक के ऊपर दूसरी बोरी लदी रहती है वैसे ही तुम्हारा यह समाज है। जिसमे मनुष्य ही मनुष्य पर लदा हुआ है। यह समाज का सबसे बडा कलकित जीवन है। इस समाज का नाश हो, और विश्वमे मानवप्राणी, जो दुनिया की सबसे बडी इकाई है, सुखी स्वतन्त्र और आनन्द से परिपूर्ण हो।'

गोपाल बाबू ने कहा—'किन्तु तुम समाज का क्या रूप चाहते हो ?'

रघुनाथ बाबू ने उत्तेजित होकर कहा—'मैने तो कह दिया कि वह दीन हीन, घृणित व्यक्ति दुनिया की सबसे बडी इकाई है। उसी की पूजानिष्ठा मनुष्य का सबसे बडा कर्त्तव्य है।' बातचीत मे कुछ रस नही आ रहा था, रघुनाथ बाबू अनमने से उठ खडे हुए और बिना ही कोई शिष्टाचार प्रकट किए चल दिए। गोपाल बाबू ने उन्हे रोका नही।

(आचार्यश्री की लेखनी से लिखी गई सर्वप्रथम कृतियां, जो उनकी स्कूल डायरी से उद्धृत की जा रही हैं। यह बालकाल और प्रारम्भिक स्कूली जीवन की रचनाएँ हैं। स्कूली जीवन के बाद १९२४ में उन्होंने कुछ और पद्य रचनाएं कीं और जब भी भावना उठती वे अपने ढंग की नई पद्य रचना करते थे, परन्तु कुछ को छोड़कर, उन्हें कभी प्रकाशित नहीं कराया, वे कापियों पर लिखी रखी रहीं। आचार्यश्री ने स्वयं को कभी कवि स्वीकार नहीं किया, केवल अपने मनोरंजन के लिए ही वे ऐसी रचनाएँ किया करते थे। वैसे उन्हें सांस्कृतिक संगीत का बहुत चाव था। ५० वर्ष की आयु तक वे अवकाश के समय हारमोनियम पर देर तक पक्के राग अलापा करते थे। अपनी तृतीय पत्नी को, उनकी विशेष अभिरुचि देखकर, वे स्वयं सांस्कृतिक गायन और अलाप की श्रेष्ठ शिक्षा देते थे।)

(सर्व प्रथम रचना रचनाकाल सन् १९०७)

१ छन्द

एक कस्बा है सिकन्दराबाद ताको नाम है।
वा शहर के बीच मित्रो बद्धबाड़ा ग्राम है॥
क्षत्रिय चन्द्रकुल, चतुरसेन मेरा नाम है।
विद्यार्थी हूं सिर्फ पढ़ने का ही मेरा काम है॥
विद्या न बुद्धि पास है, गुण ज्ञान कुछ मुझमें नहीं।
अशरण शरण, परमात्मा की शरण मैंने है गही॥
संग्रह करूं पर वस्तु यह इच्छा मेरे हृदय भई।
ईश्वर का लेकर नाम कर में लेखनी मैंने लई॥

२ दोहा

पूर्ण शोध त्रियोदशी, फाल्गुण कृष्ण मंगलवार।
युग रस ग्रह शशि विक्रमी, संग्रह रच्यो सभार॥

३ प्रार्थना

अजर अमर जगदीश मान,
निर्विकार आनन्द मान,
ब्रह्मरूप प्रकाश मान,
परमानन्द अनादि मान,
सुर मुनहि धरत है ताको ध्यान,
ताहि क्यों न भजत है रे अग्यान,

चतुरसेन मन ताहि मान,
जो ह विद्या बल निधान,
लिखत सग्रह 'चतुर' आन,
जगदीश्वर को मान ध्यान,

४

हे परमानन्द श्री जगदीश्वर,
ब्रह्म रूप दयालु ईश्वर ।
शक्ति मान जगत के कर्ता,
कृपा सिन्धु सुजन दु ख हर्ता ।
आनन्द प्रिय मुद मगल दाता,
विद्या वारिधि बुद्धि विधाता ।
माँगत चतुरसेन कर जोरे,
बसहुँ दयानिधि हृदय मोरे ।

५ विद्यार्थियो को उपदेश

(१)

सुनो सकल भारत के लडको ।
जिससे पावो तुम सब धन को ।
मानी धनी बडे हो जाओ ।
अरु जीवन का लाभ उठाओ ।
सत्पुरुषो के उज्ज्वल काम ।
निज साधो तुम काम तमाम ।
द्वेष ईर्ष्या देई भुलाय ।
सीखो सकल काम मन लाय ।
तुमसे इक विनती हे यार ।
कभी कभी देखो अखबार ।
दुनिया मे क्या होता आज ।
कैसा समय पलटता जाता ।
समय वायु बहता किस ओर ।
मरते कटते है किस छोर ।
भारी युद्ध कहाँ होता है ।
कौन हार विजय लहता है ।

(२)

पढ लिखकर मत बनो गुलाम
चालाकी से साधो काम ।
समाचार सब पढो पढाओ ।
जिससे सभ्य यहा कहलाओ ।
अपना काम करो चित लाय ।
जो होवेगा अति सुखदाय ।
पढ लिखकर जानो इतिहास ।
जिससे नही होवे उपहास ।
जो जो जाति सभ्य कहलाती ।
अखबारो को वह पढवाती ।
बल शिक्षा को वह है देती ।
अगर नही तो जेल भेजती ।
जो जो समय गप्प मे खोते ।
खा पी कर आलस से सोते ।
वही समय पढने मे लाओ ।
समय चूकि नहिं पुनि पछताओ

(३)

जब तुम घर मे पैसा पाओ ।
अखबारो को उसमे लाओ ।
देश बात सब जगह उठाओ ।
शिल्पकला वाणिज फलाओ ।
देश प्रदेश घूमने जाओ ।
विद्या कला यहा पर लाओ ।
जिससे मातृ भूमि कल्याण ।
हो जावे तो अपना मान ।
अखबारो को अगर पढोगे ।
इतिहासो को अगर पढोगे ।
बडो वडो को तब जानोगे ।
सत्पुरुषो को सम्मानोगे ।
मातृभूमि की वृद्धि मनाओ ।
अखबारो म चित्त लगाओ ।
बनो बहादुर वीर साहसी ।
हिम्मत करो न होऊ आलसी ।

(४)

उप याम नही पनो गवाओ ।
दियासलाई सो सब जाले ।
इतिहासा से प्रेम बढाओ ।
जिससे वीर धीर कहलाओ ।
पृथ्वीराज हमीर हठी का ।
प्रताप राना मानसिह का ।
बाबर अकबर शाहजहा का ।
औरगजेब अर सभाजी का ।
हाल पढो सब चालाकी का ।
वीर शिवाजी और कदी का ।
इनके उज्ज्वल यशनामो को ।
ध्वनित करो अपने काना को ।
उठो आयपुत्रा नही साओ ।
समय नही पशुओ सम खोओ ।
भवर बीच म होकर नायक
बनो रहाओ नायक लायक ।

६ उन्मक्त भक्त और भक्त वत्सल

यह भक्ति है वह भक्त है ।
यह देव है वह दास है ।
यह शासक है सब विश्व के ।
वह निबल शासित वापुरा ।
नै भेद है यह बाहरी ।
हृदय धाम मिले दोऊ आर से ।
सतत बह रही दोऊ ओर से ।
विमल धार विशुद्ध प्रेम की ।
उन्मत्त दशा तेही भक्त की ।
हरि को हरि स्वरूप लुभावनो ।
खचित चित्र मनारम है कियो ।
'चतुर' चित्रकार विचित्र ने ।

७

(अपने मित्र पण्डित छोटेलाल को लिखा गया पद्य पत्र लेखन काल २० ७ १९१०)

प्रणय पीयूष निधेश आन द मोदप्रद पण्डित प्रवर ।
श्री युक्त छोटेलाल वाचहु मे नम सविनय प्रवर ॥
प्रिय पत्र तव कर सो परसि वर मोद उर मे है छयो ।
ह त परिमित बुद्धि मम केहि भाति सो जात कह्यो ॥
धन भाग हमारी टीपटाप ऐसी भाई तुम्हरे मना को ।

पढ दोइन को ह्वै गये दग अरु भूल गए अपने तन को ॥
यह स्वाथसिद्धि कहा सीखी है कर दया मिखाय देहु हमको ।
कवि होत हु प कह काय दियो द्व पक्ति न निज अनुचर को ॥
अज्ञात तुम्हारी वाणि योग्य नही रही हमारि योग्यताई ।
बडे बडे सुने तुम्हरी कविता हमसो की पूछ कहा भाई ॥
हे ठीक यही म तव्य चाल दुनिया की यही चली आई ।
किससे करे शिकायत किस पर चाले हमरी प्रभुताई ॥
ऊधोराम स्वनाम योग्य है एक रसिक पडित भारी ।
हमरी भी कई किताब उन्होने ही करवाई ह जारी ॥
भेज देहु उनके जिय मे जो जच जावेगी अति कारी ।
उ ही को छपवाय लेयगे अपर तुमहि मिली हे सारी ॥
महाभाग सौम्य हरिचन्द यद्यपि तव सम्मति सो समरत र हे ।
हमको इहिसो अति गरु अमोह सोभाग्यशालिता किमि ह्वै है ॥
ईश दया अनुकूल पठन पाठन प्रबन्ध सब शुभ रै है ।
कर काय पूण पुनि वेगि लौटि प्रिय जनन मुखहि दशन करि है ॥
खूब उडाहु हमारी हसी प्रियवर अब तुम्हारी आन बनी है ।
कविराज कहो या महान् कवि निज जिह्वा के आपही वनी है ॥
हमहू को कभी अवसर मिली है यह बात बढी बेढग ठनी हे ।
हरिच द टीकाराम आदि सुभ जनन हमार नमोस्तु जनी हे ॥

८ किसी अन्य मित्र को लिखा गया एक और पद्य पत्र

प्रियवर प्रणय अथाह, मोद मूर्ति आन द सदन ।
श्री रघुबीर बहोरि, नमो नमस्ते बाचु मम ॥
पाई पाती आज तव हस्ताकित एक मै ।
छाडि अखिल मम काज प्रमुदित ह्वै वाचन लग्यो ॥
मोर हतो अपराध, ऐहि कारण मागी छमा ।
लजित होत कत साध, तुम्हरो विमि अपराध प्रिय ॥
पत्र सक्यो नहि बाच कहा लिख्यो मे नेक हो ॥

९ अघट घटना

स्वच्छ सरोवर चमक रहा था जोवन मे मस्ताया ।
कमल कली वा खिली खडी थी साजे रूप सवाया ।
एक दृष्टि मे ही मोहित हो तू उस पर भरमाया ।
दिन भर पीता रहा मधुर मधु जब दिन छिपने आया ।

कली सिकुड कर मुडी, तुझे यह एक रोग सा भाया ।
कठिन साल मे सदा सहज मे तने छेद बनाया ।
मृदु बधन मे किंतु प्यारवश पडा रहा अलसाया ।
वही रूप आखो मे था, मन ऐठा था हुलसाया ।
हृत्तन्त्री का तार वहा रक्खा था मिला मिलाया ।
किंतु हुआ क्या ? उसी रात को एक मत्त गज आया ।
उसी नाल को तोड हाय दाता मे दबा चबाया ।
अब तुम तो चल बसे, स्वप्न सा हुआ तुम्हारा साया ।
किंतु तुम्हारी इस घटना ने मुझे जनून चढाया ।
जीवन के जजाल जाल मे मन था सदा फँसाया ।
जीने मे खुश था, मरने का भय था बहुत समाया ।
किंतु तुम्हारा मर मिटना कुछ ऐसा मन को भाया ।
उसी तरह बन्दी होकर मरने को जी ललचाया ।
किसी समय तुम से मिलने का अब जो अवसर आया ।
उसी समय पूछेगे तुमसे उस रहस्य की माया ।
ओ रसिया रस मस्त ! भला उस विष मे क्या रस आया ।
कैसे तने सहा हाय ! घुट घुट कर प्राण गवाया ।

१० अमीरजादे

तोड तर माल लोट मार हम गद्दो पर,
दोस्तो मे बैठ के शतरज ताश खेलेगे ।
देह का दुश्वार भार लाद के चलेगे कहाँ ?
गद्देदार मोटर मे बैठ मजा ले लेगे ।
हम है अमीरजादे नाजुक मिजाज भला,
कचन सी काया से कैसे कष्ट झेलेगे ?
नौकर कमीन काम करेगे हमारे राम,
उन्ही के पेट पै बैठ डड पेलेगे ।

११ बी० ए०

अकड के चलेगे तो कहेगे लोग, अकड़ू है,
इसीलिए कमर कमान सी झुकाई है ।
आखो पर रीझती ही रहे मिस, इस लिए
सोने की कमानीदार 'ऐनक' चढाई है ।

कोट सूट बूट से सुहावना शरीर ढाप,
सभ्यता की शान लेडियो मे दरसाई है।
जीवन की साध पुजी० बी० ए० पास हुए, पर
किस्मत के खेल देखो, नौकरी न पाई है।

१२

अजी रायसाहेब,
तसलीम, अस्सलाम सौ बार।
शुक्रिया लाख बार।
तुम सलामत रहो हजार बरस, हर बरस के दिन हो पचास हजार।
किस तरह बडाई करू ?
आपकी दौडधूप की,
छानबीन की।
बडा किया उपकार, बचाऐ रुपऐ, कटाया टिकट एक पीला,
थडक्लास मे ठूस हमे तरते पर ला लटकाया।
खूब किया मनभाया।
चल पडी रेल,
बलखाती, इठलाती, इतराती, विल्लाती, चिल्लाती,
झोके खाती आग उगलती, धुआ फकती, पानी पीती,
जीती नागिन सी फुफकार मारती।
चोचर, झपताला, चौताला,
इकता लतिताला बेताला,
ठुमक चाल से ठोकर देती,
गाती राग विराग, विहाग सुहाग, सोहनी ध्रुपद,
ख्याल, सुरताल, तान तानारीरी,
धुक् पकर, पकर
धुक् पकर, पकर, पट पड पड पड पड, खड खड खड खड।
सुना हुआ बेहाल।
आए स्टेशन नऐ नऐ।
खाने वाला, दाने वाला, नानी वाला, नाना वाला,
अजनाला, क्या जानू क्या क्या वाला
आला,
कही नदी और नाला।

ढरो पजाबी लाला, खीन बताशे से बिखरे थे,
इधर उधर सब बने हुए गुल्लाला ।
सब दौड पडे,
बिन पूछे घुस पडे,
कुछ गारे कुछ काने, कुछ बीबी बच्चा वाले,
कुछ पागल मतवाले, कुछ डढियल, कुछ मरियल,
कुछ अडियल, कुछ लठियल साले,
गदर सा मचा खुदा की कसम आख बन्द कर,
सास रोक कर, चुपक रहा कोने म मे ।
चल पडी रेल,
कुछ रुकती, कुछ झुकती, पानी पीती, चिल्लाती बिल्लाती ।
जब चाहे बखौफ खडी हो जाती ।
गाड अभागा,
सीटी देता, हरी हरी झण्डी दिखलाता, हाथ हिलाता,
किन्तु, रेल के मनमे होता चलती, अथवा यही खडी रह जाती ।
एक बडे सरदार,
डाटकर ग दासा सलवार,
सिर पर भारी पगडी, मुह पर घास फूस का जगल,
पडे हुये थे औंधे तख्ते पर, जरा उकसकर छोडा गोला,
मे चौंका ।

१३ अलभ्य दान

सुन्दर इस जग म,
स्वर्ण किरण रवि की ।
शशि की रजत सुधा,
ऊषा का दिव्यालोक ।
निशा की सुखद गोद,
यह अनन्द नभ मण्डल ।
हास्यपूर्ण तारागण,
कलरव, जनरव, कलकल ।
जल की जीवन धारा,
पवन प्रवाहित सजीवन ।

१४

हृदय और मस्तिष्क,
निर्माण कल्पना शक्तिमय।
भाव भावना विस्तृत,
अनथक सृष्टि प्रवाह।
नर को नारी नारी को नर,
दोनो को सयुक्त पुत्र ?
नैसर्गिक सयुक्त सूत्र,
प्रेम, त्याग पुरुषार्थ।
माधुर्यपूर्ण यौवन !!!

१५ दाता

यह सुन्दर जग !!!
विश्व विभूति युक्त ?
यह विश्व सम्पदा ?
हम अधम प्राणियो को।
किस परम पुण्य के बदले,
सम्पूर्ण स्वत्व पुत दिया !!!

१६ आँखमिचौनी

अब मैने पहिचाने हो।
कब से पास खडे थे स्वामी ! नीरव निपट अजाने हो।
पगली हुई फिरी जीवन भर, सदा पास ही खडे रहे तुम।
तनक न आहट मिली प्यारे, ऐसे निठुर सयाने हो॥ अब०॥
हृदय धाम मे आग लगी है, अँखियाँ तरस रही है।
अब खो जाओ तो मै जानू, तुम कसे मनमाने हो॥ अब०॥
विकल वेदना लिए फिरी मै रही विपत्ति मे सदा घिरी मै।
सूख गया जीवन रस सारा, क्या इससे अनजाने हो॥ अब०॥
ऐसी आखमिचौनी खेली, हुई पुरानी नई नवेली।
मैने भला कहा सोचा था, तुम ऐसे दीवाने हो॥ अब०॥
अब जीवन के अन्तिम छिन मे, यौवन के अस्सगत दिन मे।
पा पाये हो हे जीवन धन, अब कैसा हठ ठाने हो॥ अब०॥

१७ सजीवन

सजीवन की सुखद कामना हृदय धाम मे वास करे ।
जीवन के सताप नष्ट हो अमृतमय प्रश्वास भरे ।।
बने निरोगी काया, पावे अमित आयु निर्विघ्न सभी ।
न हो विषय वासना प्रवल, दासत्व इन्द्रियो का न कभी ।।
नव्योल्लसित हृदय मे तिल भर भीति मृत्यु की रहे नही ।
वन मे, जन मे, जन पद मे भी शुभ्र भावना रहे सही ।।
दिव्य जगत मे दिव्य देह ले, पा आशामय नवजीवन ।
नव दिन मे आशीर्वाद प्रभु ! हो—पावे हम सजीवन ।।

१८ वह और यह रचना काल १९२०

वह क्या देखेगा दुनिया को जिसने प्रभु को पहचान लिया,
क्यो ककड पल्ले बाधेगा, जिसने हीरा पहचान लिया ।
मन भर छक कर जो तृप्त हुआ, कण पर क्यो मन तरसावेगा,
वह गन्ने को क्या समझेगा, जिसने अमृत का घूट पिया ।
चिन्ता चित म क्यो धारेगा, क्यो फन्द गले म डालेगा,
एक दिन दुनिया से जाना है, जिसने मन मे यह ठान लिया ।
जिसने सत गुरु का ज्ञान लिया, क्यो मोल मुसीबत लेगा वो,
क्यो प्राण अकारथ खोवेगा, जिसने विष को विष जान लिया ।

१९

प्रबोध

सखीरी ! जल्दी खोल किवाड ।
कब से द्वार खडे प्रिय प्यारे,
तुझको रहे पुकार !
सावधान हो चेत सवरा-
समय न बारम्बार ।
चले गये, ले ! मन भर सोले-
पूरे पर पसार ।
आग लगे ऐसी निदिया मे-
बार बार धिक्कार ।

अनुताप

सखीरी मेरी मति बौराई ।
पिया आवन की बाट ताकती
सिगरी रैन गवाई ।
थकित हुए मन शिथिल हुए तन,
पलकन निदिया छाई ।
मै भोरी बेसुध हो सोई,
पिय ने बहुत जगाई ।
लौट गये तब आहट पाई ।।
घबराई, उठ धाई ।

२० ओ अमरकाल !!

(इस कविता का रचनाकाल १९२५ के लगभग है)

। नव्य वेश मे,
ण जरा तज,
ज,
मदिवस के पुण्य योग मे—
त प्रभात मे,
ग की रक्ताभ छटा पर,
ष्णुपादामृत मे प्रश्वासित हो—
न आये हो ?
ओ !
सुम कली का हास्य चूम,
व पल्लव पर स्थिर बैठ,
मो प्यारे, भूमो प्यारे,
प लूटो,
ातृप्ति पिओ,
ो रसिया !
ो अमरकाल !
म सदा पिओ यह अमृत ।
विहङ्ग,
रते जीते अज्ञान जीव ?
ल्लसित, उन्मत्त,
दक ताल पर,
धुर सोहनी के स्वर मे दे रहे,
त्त भरव की तान ।
,
ीण पन्थ का पथिक,
ाजन्म तुम्हारा ऋणी ।
ाकित !
शथिल !!
वच्छिन्न !!!
ाशा विहीन,
निष्प्रभ, आकुल, सजल,
किंतु—
चाहभरे नयनो से,
यह देख तुम्हारा नव्य रूप,
हा ! नव्य रूप !
उस अतीत की मदिरा का मद,
जिसके रग मे जगत रगीला देखा था,
उस दिन का नष्ट स्वप्न,
हा ! नष्ट स्वप्न,
ओफ !!
आज अचानक दीख रहा !
ओ अमर काल !
प्रिय बन्धु ! सच कहो,
कितने यौवन,
कितने सुकुमाय,
कितनी आशा रसपूरण जीती कुसुम कली
तुमने—
इस मुख गह्वर मे लीन करी !
सब के रस का निष्कष पिया ??
अब,
इस रस मे ?
इस रग मे ??
इस ढङ्ग मे ???
यह मनमोहक रूप ?
अति नवीन !
अति अपूव !!
अति सुदर !!!
ओ ! अमरकाल !
तुम आए हो ?
आओ, आओ आओ ।

(आचार्यश्री गाधीजी को युग पुरुष मानते थे। गाधीजी के ऊपर उन्होने कुछ पद्य रचनाएँ की थी, जिन्हे हम यहा एकत्रित करके प्रकाशित कर रहे है।)

२१ नई नजर रचनाकाल १९५२

१

नई नजर,
नई नजर यह तेरी।
दुनिया ने उसको देखा—
वह हँस दी।
हँस हँसकर उसने हाथ बढाया, हाथ मिलाया,
हृदय जुडाया।
युग युग से बिछुडा मिला मानवता का कुल,
आकुल,
व्याकुल,
सत्रस्त,
और सदिग्ध,
जन जन के मन का कलुष गया,
आश्वस्त हुआ वह,
आशा से उल्लसित,
प्यार से छलछल,
वह निकल पडा निर्भय
हँस हँसकर उसने हाथ मिलाया,
हृदय जुडाया।

२

नई नजर यह तेरी थी।
जिसने दुनिया के दृष्टिकोण को बदल दिया।
जीवन को नया सहारा दे न चला प्यार की दुनिया मे।
'जियो और जीने दो'
यह सबको भाई बात तेरी,
सबकी मनचाही बात हुई।
सब बोल उठे भाई भाई, तुम जियो और जीने दो हमको,
जियो और जीने दो।
हम मिल-जुलकर घुल-मिलकर,

हम तुम सब,
शांति मार्ग पर चलें
नवयुग का निर्माण करें,
जहां—
जन जन निर्भय हो।
जन मन स्वतन्त्र हो।
विश्व सिमटकर एक अखण्ड कुटुम्ब बने।
मानव दुनिया भी सबसे बडी इकाई हो।
सबसे बडी इकाई।

३

लोहे से लदा हुआ,
लोहू से भरा हुआ,
अंग अंग मे घायल—
चला जा रहा था मनुकुल।
डग मग उठा पग।
मृत्यु क्षितिज की ओर,
अणुमहास्त्र ने जहां मृत्यु कण बिखराए थे,
जहां प्रलय के ताण्डव का सब साज जुटा था।
जहां मनुष्य नरकुल घाती बनकर,
युग युग समृद्ध,
ज्ञान और विज्ञान विभूषित,
भाव भावना और कल्पना से आपूयमाण
कला कौशल सम्पन्न समूचे नृवंश को—
निश्शेष करने के साधन जुटाए
मृत्यु का माध्यम बना था।

४

बना लिया तूने उनको।
नई नजर देकर अपनी,
अक्रोध किया क्रुद्धों को,
अभय किया भयभीतों को
अब वे हँस-हँसकर हाथ मिलाते हैं,
हृदय जुडाते है,

युग युग से बिछुडे,
आकुल,
व्याकुल,
सत्रस्त,
और सदिग्ध,
विश्व के जन ।
यह नई नजर का चमत्कार है ।
यह तेरी नई नजर है ।

२२ मनुकु १ के अतिरथ

ओ भारत के चौकीदार !
जब
मनुकुल के अति मानव जन—
रणमत्त, विश्व के महाप्राण अतिरथ —
अग्निरथो पर बैठ,
महा महा नरमेध ठानकर अनुष्ठान—
चल खडे हुए,
तब धरणि विकम्पित हुई ।
प्रलय अभ्र उठ चले,
वज्रनाद कर अग्निबाण नभ मे छाए—
भूलोक अग्निमय हुआ प्रकम्पित ।
मृत्यु सुन्दरी लगी नाचने थिरक थिरक,
शकर का खुला तृतीय नेत्र—
महा ज्वाल मे भस्म हुई मानव सम्पद् ।
उद्भासित हो,
अणु महास्त्र ने,
अणु विकीर्ण कर दिए एक क्षण मे
आबाल वृद्ध नर नागर
निर्जीव हुआ वह नगर
यो आकुल मनुकुल—
रक्त स्नान कर पूत हुआ,
अतिमानव जन मरण शरण हो गए ।
दम्भ वितृष्णा प्रतिहिसा ने न्याय तुलापर,

तोला प्राणो को,
लोह लेखनी लेकर भाग्य लेख लिख डाले।
महाराज्य नि शेष हुए ?
दशनीय जनपद चिर खण्डहर हो मूक रुदन रो उठे।
कोटि कोटि जन,
नारी नर बाल वृद्ध—
शिशिर विकम्पित क्षुब्ध क्षुधित
रोग शोक दारिद्रय निपीडित
जीवित मृत हो
लगे भटकने भूतल पर
तब तूने
निश्चल, निद्व द,
उस महाध्वँस से भारत की रक्षा की।
रक्त चिन्ह से दूर,
सयम से पूरित स्वर से—
परिजन समग्र के साथ
रामधुन गागा कर
तू रहा जागता
और जगाता
सावधान रह।
श्वेत दप हो खण्ड खण्ड भू पतित हुआ,
विश्व सम्पदा के अभिलाषी सवस्व हार कर भग्न हुए।
तब तेरा रक्षित भरतखण्ड
एक नया कदम आगे रख—
मुक्त हुआ उन्मुख पथ पर
दुबल तन
निश्चल मन
अडिग आत्मबल–विमल चक्षु,
नव्य काल की कूटनीति और वमनीति का द्दष्टा
तू गाता ही रहा राम धुन—
अपनी धुन मे
वही रामधुन

२३ अग्निरथ अभियान

(गाँधीजी के महाप्रयाण पर लिखित)

१

अग्निरथ अभियान पर तुम चल पडे ?
अभिराम, एकाएक ??
वचक धूर्त लुटेरो ने पा घात,
पातकी जन चल ले,
खुल खेले, क्रूर, अमानुष,
निन्दनीय, अपवित्र
न कहने योग्य खेल
मनुकुल को कलुषित किया
तुम चल पडे, अभिराम एकाएक ??
रामधुन करते रहे,
ठग लिया तुमने हमे,
हम रह गये,
तुम चल पडे,
भू को अरक्षित छोड,
नश्वर—
देह को कर व्याप्त ?
तुमने पुकारा राम,
हमने पुकारा राम,
स्तब्ध तुम बैठे रहे कूटस्थ,
राम का पाया न कुछ सदेश ।
पाया न कुछ सदेश ??
निकल हो देखा हमे,
हमने तुम्हे,
हम क्या करे ?
कैसे हमारे काज साधे राम ?
रामधुन करते रहे हम,
रामधुन ।
मूर्त होकर काल आया,

२

उगलेगी,
लोह नलिका को छिपाकर।
हम खडे थे आसरे,
तुम आरहे थे कुछ अधीर,
राम से अरदास करने,
नित्य प्रति की भाति ।
यह क्या हुआ ?
लोह नलिका ने पुकारा—'राम',
फिर पुकारा—राम,
फिर पुकारा— राम,
झुक गये झुकते गये भूपात कर,
मृदुमन्द स्वर मे कहा—हे राम,
राम को तुम पागये
अर्पण किया निज गात ।
मौनमुद्रा मे अवस्थित,
फिर न खोला नैन,
फिर न बोले बैन ।
राम का ही तेज,
द्रवित ज्वाला बिन्दु बनकर,
छू गया शुभ गात
पा गये प्राप्तव्य, आगये निज धाम,
सफल कर अभियान
अब किया विश्राम ।
पा चुके प्राप्तव्य तुम तो,
किन्तु हम ? राह के राही,
कहा, अब रात काटे,
दूर मजिल, अन्धेरा घोर है,
भय है, थके है, और आहत हैं ।

(आचायश्री की अपने बालका र की मधुर स्मृतियो से ओतप्रोत बाल सुलभ अप्रतिम पद्य रचना। मूल पाण्डुलिपि पर रचना काल नहीं है, परन्तु अनुमानत इसे उन्होने १६०६ के आसपास सिकन्द्राबाद स्कूली जीवनकाल मे लिखा होगा। पाण्डुलिपि का कागज और स्याही अब से पचास वष पुरानी प्रतीत होते है।)

१

कैसा सुदर सूय चमकता था वहा,
हरे भरे कैसे सुदर वे खेत थे।
पीपल का वह वृक्ष बुजुर्गो से बडा,
खडा हुआ झूमा करता था किस तरह।

आधी चलती थी जब आषाढ मे,
कच्ची करी खूब टपकती टपाटप।
नमक जरा सा ले बगिया मे पहुँच कर,
चखचख कर मै खाता था किस मौज से।

उस पीपल की लम्बी लम्बी डार पर,
सावन मे झूला पडती थी ठाठ से।
गाव भरे के बाल बालिका का वहा,
ठठ्ठ लगा रहना था दिन भर बेतरह।

पैग बढाया करता था मै जोर से,
ग्राम बालिकाए कहती थी व्यग्र हो—
'भया ! हमे झुला दो पहले तनिक सा।'
खूब झुलाता था मै सौ सौ बार ही।

गाती थी वे हिलमिल बडे उछाह से,
स्वच्छ गीत सावन के मीठी तान से।
नैसर्गिक आनन्द तरगा से भरा,
रहता था वहा ओत प्रोत वातावरण।

बडे भोर के तडके उठकर पिता जी,
एक चिलम पूरी पी कर आराम से।
सानी कर देते थे पहले भस की,
फिर जगल मे जाते थे शौचादि को।

२

लोट वहा से कुए पर मुह हाथधो,
निरालस्य घर आते थे उत्साह से।
भस मजे मे भर लेती थी पेट को,
धार काढते थे वे फिर तत्काल ही।

इतना काम खतम हो चुकने पर कही,
पौ फटती थी कुछ-कुछ इतनी देर मे।
फिर गाते थे मधुर प्रभाती बैठ कर,
'उठ भया, कहते जाते थे बीच मे।

मिठ्ठू पाजी को कुछ ऐसी टेव थी,
नकल पिता की करता था धुन बाधकर।
पिता पढाते थे बठाकर हाथ पर,
चोच होठ से लगा चूमते थे उसे।

माता उठ कर उनसे भी कुछ पूव ही,
दही बिलो लेती थी एक मटका भरा।
बच्चे बछिया गाय भस के पास जा,
थोडा सा चोकर देती थी प्यार से।

मे मस्तानी निंदिया मे भरपूर ही,
पडा सुना करता था सुख से वह ध्वनि।
कभी धार की धरमर का नाद प्रिय,
कभी रई का घमर घमर गम्भीर रव।

नीद बहुत आती थी मुझको उन दिनो,
छकडो मे चलती थी बस क्या ठीक था।
सोने को दिन रात सदा तैयार था,
खाते खाते ही सो जाता था कभी।

१

नीद उचट जाती थी मेरी जिस घडी,
घुस जाता चुपचाप पिता की गोद मे ।
'कौन चोर आ घुसा अरे ! यह दौडना',
कहते कहते चिपका लेते हृदय से ।

फिर न्हा धोकर संध्या वंदन पूर्ण कर,
चंदन का आलेप लगा कर केसरी ।
चलने की तयारी तब दूकान को,
होती थी, आनन्दभरे उत्साह से ।

माता भरकर एक कटोरा छाछ का,
डाल पात्र पक्का एक लोनी का डला ।
ला देती थी पूज्य पिता के हाथ मे,
यही कलेऊ था गोरस अमृत सना ।

एक बोहरे की कोठी थी पास मे,
पूज्य पिताजी को पूरा ये मानते ।
लेन देन का करते ये व्यापार व,
जमा हुआ साहूकारा दर का ।

बडा प्यार करते थे मुझको पूर्व मे,
पति और पत्नी दोनो सद्भाव मे ।
सदा उठा ले जाते थे व गोद मे,
खुला छोड देते थे गद्दे पर मुझे ।

बडे मौज मे खेला करता था वहा,
ढेर रुपए रखे रहते थे सामने ।
थक कर पीछे जब घर को था लौटता,
भर लाता था कुर्ते मे मै बहुत से ।

बिखरा करते थे एक एक वे रात मे
ला देता था मै अम्मा की गोद मे ।
हस कर कहती माता तब आमोद से,
'भया मेरा बडा कमाऊ पूत है ।'

२

हँसता था मै खूब बजा कर तालियाँ,
लग जाता फिर किसी दूसरे खेल मे ।
माँ कहती 'अब सोजा भैया जरा तो,'
मैं कब सुनता था उसके ये चोचले ।

चदा बनिया बडा काइया था मरा,
एक आँख कानी थी उस कंजूस की ।
हत्या दे बैठा रहता था हर समय,
उसी थान पर निश्चल खूटे सा गडा ।

कभी नही हसकर बोले था किसी से,
सदा रोतनी सूरत रहती थी बनी ।
एक मिर्जई एक धोती पोशाक थी
चीकट हुई बनी रहती थी मैल से ।

फकत एकदम था फक्कड ससार मे,
चूहे का बच्चा भी घर मे था नही ।
पेट काट कर भी करता था जोड कर,
मुह चीरता था कौडी पर नीच वह ।

पक्का पत्थर था पूरा पूरा मूर्ख वह,
काला अक्षर भैंस बराबर था उसे ।
कितु उँगलियो पर गिन सभी हिसाब को,
गाता बात की गल निराले ढग खरी ।

छठे छमाहे दे नाई को दो टका,
कभी खुरचवा लेता था वह चाद को ।
सदा रात को उस मनहूस दुकान मे,
दिया टिमटिमाया करता था मरा सा ।

हक्के का गुल अगर जरा कच्चा रहा,
उसे दुबारा फिर पीता था चिलम मे ।
मुझे लोभ था गुड के जरा लभाव का ।
'चन्दरसेन' कहा करता था इसलिए ।

१

गुड रखा रहता तो था थाली भरा,
किन्तु मुझे पाजी देता था चने सा।
और मागता तो कहता फटकार कर,
'चल चल, नही ठुकेगा मेरे हाथ से।'

दिन भर तो मै रहता था इस्कूल मे,
फिर करता था काम पिता के साथ मे
शाम हुई, कि फिर धीरज था ही नही,
झट कहता था, 'लाओ पैसा शाम का।'

पूज्य पिता जी नित्य नम से शामको,
पैसा एक दिया करते थे चाट का।
भला पैसा क्या लेता ? क्या मूख था ?
खूब चमकता चुन लेता था चाव से।

पसे का तोडा हो जाता था कभी,
पूज्य पिता कहते थे—'देगे कल को।'
'कल को लूगा तीन,' तभी मै बोलता,
'एक कहा जावेगा पसा सूद का ?'

इस पर हँसकर पिता बोलते लाड से,
'कर्जदार तू भारी सब ही से रहा।'
गर्वित सा होकर कहता मै शीघ्र ही,
'तुमने भला मुझे समझा है बावला।'

शिशु शावक सा उछल कूद करता हुआ,
सीधा आता था तब मै बाजार को।
तरह तरह के धरे रहते थे खौमचे,
दही बडे बाबू के बनते थे खरे।

उन्ही बडो की चाट लगी थी जीभ से,
घूमघाम कर अन्त पहुँचता था वही।
किन्तु कभी वाँ पर खाता था मै नही,
घर लाकर खाने ही का आदेश था।

२

काम अधूरा छोड सुशीला पास आ,
कहती, 'भया ! हमे न दोगे तनिक सा।'
जी आता तो देता, वरना टाल कर,
कह देता, 'खासी हो जावेगी तुझे।'

पिता पूछते क्या लाया ?' मैं बोलता—
'खाकर देखो,' कह धर देता सामने।
सच पूछो तो मन रखने ही के लिए,
कभी कभी वे चखते थे मेरी चाट को।

हसी मचल जाती थी मेरी जिस घडी,
किसी तरह भी वह रुकती थी ही नही।
पिता कहा करते, बेटा ! यो हर समय,
नही हँसा करते बेमतलब मूख से।'

इसी बात पर कभी-कभी इस्कूल मे,
पिट जाता था व्यथ बिना अपराध के।
कभी किसी बालक का झूठा नाम ले,
कह देता—'जी ! यही हँसाता है हमे।'

मेले का दिन बडे मौज का रोज था,
उत्सुकता से तका करे था नित्य ही।
उँगली पर गिन कटते थे दिन बीच के,
दो दिन पहले से मच जाती धूम थी।

एक दुअन्नी बची हुई थी चाट की,
खरी परखवा लेता था मै मात से।
धरती मे एक छोटा कुल्हड गाढ कर,
गुल्लक मा ने छोटी सी दी थी बना।

वही तिजोरी वही खजाना था मेरा,
ढेर भरा रहता था पैसो का यहाँ।
छुट्टी के दिन गिनता था उनको सदा,
बडी सावधानी रखता था माल की।

१

नींद उचट जाती थी मेरी जिस घड़ी,
घुस जाता चुपचाप पिता की गोद मे।
'कौन चोर आ घुसा अरे! यह दौडना',
कहते कहते चिपका लेते हृदय से।

फिर न्हा धोकर सन्ध्या वन्दन पूर्ण कर,
चन्दन का आलेप लगा कर केसरी।
चलने की तयारी तब दूकान को,
होती थी, आनन्दभरे उत्साह से।

माता भरकर एक कटोरा छाछ का,
डाल पाव पक्का एक लोनी का डला।
ला देती थी पूज्य पिता के हाथ मे,
यही कलेऊ था गोरस अमृत सना।

एक बोहरे की कोठी थी पास मे,
पूज्य पिताजी को पूरा थे मानते।
लेन देन का करते थे व्यापार वे,
जमा हुआ साहूकारा दर का।

बडा प्यार करते थे मुझको पूर्व मे,
पति और पत्नी दोनो सद्भाव से।
सदा उठा ले जाते थे वे गोद मे,
खुला छोड देते थे गद्दे पर मुझे।

बडे मौज से खेला करता था वहा,
ढेर रुपए रखे रहते थे सामने।
थक कर पीछे जब घर को था लौटता,
भर लाता था कुर्ते मे मै बहुत से।

बिखरा करते थे एक एक वे राह मे
ला देता था मै अम्मा की गोद मे।
हस कर कहती माता तब आमोद से,
'भैया मेरा बडा कमाऊ पूत है।'

२

हँसता था मै खूब बजा कर तालियाँ,
लग जाता फिर किसी दूसरे खेल मे।
माँ कहती 'अब सो जा भैया जरा तो,'
मै कब सुनता था उसके ये चोचले।

चन्दा बनिया बडा काइयाँ था मरा,
एक आँख कानी थी उस कन्जूस की।
हत्था दे बैठा रहता था हर समय,
उसी थान पर निश्चल खूटे सा गडा।

कभी नहीं हँसकर बोले था किसी से,
सदा रोवनी सूरत रहती थी बनी।
एक मिर्जई एक धोती पोशाक थी,
चीकट हुई बनी रहती थी मैल से।

फकत एकदम था फक्कड संसार मे,
चूहे का बच्चा भी घर मे था नही।
पेट काट कर भी धरता था जोड कर,
सूम चीरता था कौडी पर नीच वह।

पढ़ा पत्थर था पूरा पूरा सूम वह,
काला अक्षर भैंस बराबर था उसे।
किन्तु उँगलियो पर गिन सभी हिसाब को,
[illegible] की सदा [illegible] था स्मरी।

[illegible] टका,
कभी गुरचना लेता था वह चाव को।
सदा रात को उस मनहूस दुकान मे,
दिया टिमटिमाया करता था मरा सा।

हुक्के का गुल अगर जरा कच्चा रहा,
उसे दुबारा फिर पीता था चिलम मे।
मुझे लोभ था गुड के जरा लभाव का।
'चन्दरसेन' कहा करता था इसलिए।

१

गुड रखा रहता तो था थाली भरा,
किन्तु मुझे पाजी देता था चने सा।
और मागता तो कहता फटकार कर,
'चल चल, नही ठुकेगा मेरे हाथ से।'

दिन भर तो मै रहता था इस्कूल मे,
फिर करता था काम पिता के साथ मे
शाम हुई, कि फिर धीरज था ही नही,
झट कहता था, 'लाओ पैसा शाम का।'

पूज्य पिता जी नित्य नैम से शामको,
पैसा एक दिया करते थे चाट का।
मैला पैसा क्यो लेता ? क्या मूख था ?
खूब चमकता चुन लेता था चाव से।

पैसे का तोडा हो जाता था कभी,
पूज्य पिता कहते थे—'देगे कल को।'
'कल को लूगा तीन,' तभी मै बोलता,
'एक कहा जावेगा पैसा सूद का ?'

इस पर हँसकर पिता बोलते लाड से,
'कर्जदार तू भारी सब ही से रहा।'
गर्वित सा होकर कहता मै शीघ्र ही,
'तुमने भला मुझे समझा है बावला।'

शिशु शावक सा उछल कूद करता हुआ,
सीधा आता था तब मै बाजार को।
तरह तरह के धरे रहते थे खौमचे,
दही बडे बाबू के बनते थे खरे।

उन्ही बडो की चाट लगी थी जीभ से,
घूमघाम कर अन्त पहुँचता था वही।
किन्तु कभी वाँ पर खाता था मै नही,
घर लाकर खाने ही का आदेश था।

२

काम अधूरा छोड सुशीला पास आ,
कहती, 'भया ! हमे न दाग तनिक सा।'
जी आता तो देता, वरना टाल कर,
कह देता, 'खासी हो जावेगी तुझे।'

पिता पूछते क्या लाया ?' मे बोलता—
'खाकर देखो,' कह धर देता सामने।
सच पूछो तो मन रखने ही के लिए,
कभी कभी वे चखते थे मेरी चाट को।

हसी मचल जाती थी मेरी जिस घडी,
किसी तरह भी वह रुकती थी ही नही।
पिता कहा करते, बेटा ! या हर समय,
नही हँसा करते बेमतलब मूख से।'

इसी बात पर कभी कभी इस्कूल मे,
पिट जाता था व्यथ बिना अपराध के।
कभी किसी बालक का झूठा नाम ले,
कह देता—'जी ! यही हँसाता है हमे।'

मेले का दिन बडे मौज का रोज था,
उत्सुकता से तका करे था नित्य ही।
उँगली पर गिन कटते थे दिन बीच के,
दो दिन पहले से मच जाती धूम थी।

एक दुअन्नी बधी हुई थी चाट की,
खरी परखवा लेता था मे मात से।
धरती मे एक छोटा कुल्हड गाढ कर,
गुल्लक मा ने छोटी सी दी थी बना।

वही तिजोरी वही खजाना था मेरा,
ढेर भरा रहता था पैसो का यहाँ।
छुट्टी के दिन गिनता था उनको सदा,
बडी सावधानी रखता था माल की।

१

चोरी का सदेह सुशीला पर मुझे,
कभी कभी हो जाता था सच ही कहूँ ।
किन्तु चुराने का कुछ भी प्रमाण एक,
किसी तरह भी दे सकता था मै नही ।

तीव्र दृष्टि से गुल्लक को तकती हुई,
फिरा करे थी उस गुल्लक के पास ही ।
उसकी गुल्लक भी थी, पर वैसी नही,
कभी कभी ही पैसा मिलता था उसे ।

किन्तु उसी को रखती थी वह जोडकर,
कभी नही खाती पीती थी वह उसे ।
पिता मिठाई लाते थे घर मे कभी,
बडी कठिनता से लेती अनुरोध मे ।

छठे छमासे माता के अनुरोध से,
तो लेती कुछ पैसे धेले का कभी ।
भाग बना कहती थी माता से सदा,
'अम्मा ! रख दे यह भैया के वास्ते ।'

पढ कर आता था जब मै इस्कूल से,
ठिनक ठिनक कर कहता मा से लाड मे ।
साग पात तो कुछ भी घर मे है नही,
भूखा हूँ, क्या खाऊँगा ! अब यह बता ।

कैसा सुन्दर नीबू का आचार है,
खस्ता पूरी नरम भरी नमकीन है ।
स्वाद बनेगा कैसा सुन्दर चटपटा,
ले ले भीतर से लाकर निज हाथ ता ।

मेरा मन्सूबा होता कुछ और ही,
कहता मै मुख पर ला कुछ गम्भीरता ।
खाँसी जो हो जावे इस आचार से,
दोष न देना तो फिर मुझ को तू जरा ।

२

बात ताड हँसकर कहती मा देख कर,
हा भैया ! यह सच्ची तेरी बात है ।
घी बूरा ले ले थोडा सा और क्या ।'
सिद्ध मनोरथ होता था पूरा मेरा ।

घर मे थी दो भैंस और एक गाय थी,
दूध दही की रेहल रहती रोज थी ।
छक जाते थे पास पडोसी छाछ से,
दूध दही भी कभी पहुँचता था उन्हे ।

खिडकी मे घी रखा था काफूर सा,
एक हाथ भरपूर भरा उसमे, तथा
ऊपर से शक्कर थोडी सी डाल ली,
उसके ऊपर थोडी सा घी और रख ।

दिखा मात को कहता भोले भाव से,
'मा ! इतना सा लिया हुआ क्या बहुत है ?
देखभाल वह कुछ भी करती थी नही,
कहती थी—'जा खाले भीतर बैठ कर । '

बात समझ जाती थी सारी चाल की,
मन मे हँस लेती थी मेरी चाल पर ।
पास पडोसिन से कहती थी हास्य से—
'बडा चटोरा है यह बालकिया मेरा ।'

'सुअर पाजी' ताऊ कहते थे सदा,
यही लाड का उनका रखा नाम था ।
खाने आते तो कहते थे छूटते—
'सुअर पाजी कहा गया उसका बुला ।'

ताई कहती थी तब नकली क्रोध से,
'क्यो गाली देते हो तुम लाल को ।'
हँस देते थे और पकड लेते मुझे,
मसल मसल कर करते चकनाचूर थे ।

१

पूज्य पिता बूढे मित्रो के बीच मे,
बने मुकद्दम फुरात मे जब बैठते ।
हुक्का ताजा कर रख देता था वहा,
भर देता था चिलम तवे की डाटकर ।

फिर चलती थी तरह तरह की वारता,
सब अपबीती होती थी उनकी कथा ।
वे उत्तेजक रुचिवधक सच्ची कथा,
स्वावलम्ब के जीवन की थी सीढिया ।

कही दया की दिव्य दवाई थी वहा,
कही प्रेम का नैसर्गिक आलोक था ।
कही वम की गुथी हुइ थी ग्रन्थिया,
कही वीरता की नगी तलवार थी ।

कही सत्य की निभय छाती थी अडी,
कही परिश्रम के उज्ज्वल प्रस्वेद थे ।
किन्तु कही भी दुख चिन्ता और रोग का,
नाम मात्र को लेश नही था छू गया ।

नीरव बैठा कौने मे सिकुडा हुआ,
बडे चाव से सुनता था तल्लीन हो ।
अमिट लीक हृत्पट पर पड़ जाती अहो,
मन मे भर जाते थे बैढब होसले ।

सदा सोचता रहता था मन मे यही,
ऐसा दिन आवेगा कितनी देर मे ।
शीघ्र बडा होकर मैं भी ससार मे,
इससे बढकर काम करूगा बेधडक ।

भूल नही सकता मैं दु ख इस्कूल का,
बडे बुरे थे गोवरधन जी मास्टर ।
'सबक सुना,' बस ये ही उनकी धौस थी,
जान सूखती थी सबकी इस धौस से ।

२

कभी पढाते तो थे ही नही प्यार से,
गलल गलत जल्दी जल्दी थे बोलते ।
एक वात मे जर्दे की बौछार सौ,
आ पडती थी सबके मुह पर थूक की ।

दात बीच के दोनो थे टूटे हुए,
हवा निकल जाती थी उनमे फुस्स हो ।
थोद थलथलाती थी उनकी ढोल सी,
कस लेते थे बटन कोट का भीच कर ।

लिखने का अभ्यास मुझे कम था जरा,
कान मले जाते थे इस पर खूब ही ।
सारे दिन मे पूरी पट्टी एक भी,
नही लिखी जाती थी मुझ से शाम तक ।

गोवरधन चिल्ला कर कहते देखकर,
'अरे कोई लाओ तो कम्मच तोड कर ।'
कम्मच लाने के सर्व्वोत्तम काम को,
उत्सुक बैठे रहते थे लडके सदा ।

'मै लाया जी,' कह कर सरपट दौडते,
जान सूख जाती थी मेरी उस समय,

बिजली का बल आ जाता था हाथ मे,
टेढे सीधे लम्बे और छोटे बडे ।
धुन बाधे लिखता जाता था उस समय,
पट्टी पूरी होती ही थी दीखती ।

कम्मच आने से पहले पहुँच कर,
बडे धैर्य से जा दिखलाता मे लिखा ।
किन्तु नई कम्मच का कडुआ स्वाद वह,
बिना चखे पर पिण्ड छूटता था नही ।

१

जरा जरा सी गलती पर न क्रुद्ध हो
मार शपाशप देते थे बेभाव की।
हसी उडाते थे बच्चा के कष्ट की।
पत्थर के थे असल कसाई मास्टर।

खाल बिलबिला उठते थे तडपडा कर,
दूवर हो जाती थी हा! कोमल कमर।
कभी बनाते थे मुर्गी दो चार को,
मुझे बहुत बेढब जचती थी यह सजा।

सील भरे छोटे कमरो मे पाति स,
कडी चीढ की बचो पर बठे हुए।
हिला हिलाए दुबल परो को भय भरे,
खात थे हम मार शपाशप बेत की।

पढ पत्थर थे असल बात तो थी यही,
क्या पढ़ाते, खुद भी वे क्या थे पढे।
बीस रुपल्ली मिलती थी उनको फक्त,
यही लियाकत की खुचन का मोल था।

कभी अग्रेजी दा बनने की डीग म
भ्सा करते थे घण्टो बुलडौग हो
उसी तरह उच्चारण करने को हम
ठोक पीट कर करते थे लाचार वे

पाठ पढ़ा नही शिक्षा पाने के लिए
याद किया नही कभी सीखने के लिए
पढने लिखने का बस यह ध्रुव ध्येय था
फल कभी हो जाय न हम इम्तिहान मे

कभी समझने की कोशिश की भी जरा
तभी डपट कर कह देते थे—
'याद करो बस, समझ नही सकते अभी—'
समझाते क्या, करते थे गुमराह वे

२

पहली विद्या के टिक्कड को उस तरह
धकापेल कर ढुकाते थे गले से
गोबरगन की कुछ फूहड गाली के सिवा
न था वहाँ स्वादिष्ट मसाला और कुछ

किसी तरह पूरे कर घण्टे पाच वे
भूखे प्यासे निकल सिह की माँद से
अधा साम लेते थे आ मैदान म
बडी कठिनता से तब आती थी हसी

शुद्ध हृदय पट पर इस भोडे हाथ से
चित्र बनाने के मिस होती थी खलिश
यही हमारी शिक्षा का आरम्भ था
महा कठिन थी जीवन की तैयारियाँ

महा गौरवान्वित गुरु के अधिकार को,
हथिया बठा था यह भाडे का गधा।
हृदय नदिनी विद्या के स्थान पर,
आ बैठी थी अग्रेजी वाराङ्गना।

मरी पडी थी प्रतिमा रुचि मन भावना
वातावरण नही कुछ भी अनुकूल था
ऐसे शिक्षालय म मै झकमार कर
मूख न रहता तो क्या होता सद्गुरु

इस्कूली शिक्षा के इस कडवाम मे
शहद भाग्य ने मिला दिया था जरा सा
उसी शहद की मधुराई के लोभ स
सदा चाव स पीता था वह क्वाथ कटु

काल बली की ठोकर म प्रारब्धवश
शीशी चकनाचूर हुई वह मधुभरी
मिट्टी म मिल गया बिखर कर कभी का
किन्तु आज तक हृदय भरा है याद से

१

तत्ववेत्ताओ का यह सिद्धान्त है,
भूल जीव का स्वाभाविक एक रोग है।
किन्तु याद का कठिन रोग पल्ले पडा,
लाख भुलाने पर अब तक भूला नही।

किन्तु काल ने कली कली उस फूल की,
निठुराई से मसल नष्ट की अन्त मे।
अन्तरात्मा मे सौरभ उसका अभी,
देता है झकझोर पुराने प्यार को।

नाम होठ तक आकर भी आता नही,
होठ फडक कर रह जाते इस नाम पर।
राजा है बस अन्तस्तल के राज्य का,
हृदय हरा रहता है उसके वास से।

बाल काल की वह प्यारी घटनावली,
हीरे सी आदिप्त अधेरे हृदय मे।
जल रेखा क्षणभर को वह सुखदायिनी,
बिजली सी लहरा जाती हे जब कभी।

२

जाग उठा था बालपने की शय्या से,
यौवन की शुभ धूप चढी थी तनिक सी।
बस बडी निश्चिन्तताई से सो गया,
सुनते सुनते ही निज जीवन की कथा।

कोई दूल्हा भी यो रातो जागकर,
कभी नही सोता है ऐसा बेखबर।
रग बिरगे वस्त्रो को पहने हुए,
नई आस के फूलो को रख गोद मे।

रग बिरगे वस्त्रो को पहने हुए,
सबके ऊपर श्वेत ओढनी ओढली।
एक साथ ढके गये। उसी की ओट मे,
गया सदा को नित्य देखने योग्य मुख।

प्यार किया मुस्काया रोये बहुत से,
याद दिलाई खेलकूद की कहा कहा।
झूठे सच्चे तरह तरह के लोभ भी,
दिये, किन्तु वह हिला डुला बिल्कुल नही।

हृदय द्वार बस उसी दिवस से बन्द है,
इस्तीफा है हसी खुशी की बात को।
विकल पडे यह चाह रहे है चाव से,
किसी तरह वह मस्त नीद आवे हमे।

कालीरात

(तिलक निधन के बाद लिखी गई भावपूर्ण कविता। उन दिनो आचार्य श्री बम्बई मे रहते थे और तिलक के चिकित्सको की परामर्श समिति मे थे।)

१

काल सी काली अंधेरी रात थी,
ओढनी ओढे हुए काली महा।
काम काला जो हुआ उस रात को,
कालिमा गहरी हुई थी और भी।

शुभ्रता तो नाम को भी थी नही,
छा रही थी कालिमा सर्वत्र ही।
भैरवी के वेश मे बाहर खडी,
भीषणा चण्डी बनी निस्तब्धता।

मेघ के दो चार टुकडे खिन्न से,
हडबडाए घूमते थे अभ्र मे।
रोकते थे, किन्तु रुकती थी नही,
आसुओ की बूद जाती थी टपक।

चन्द्रमा भयभीत सा था सिंह से,
क्षीण बैठा था मघा के द्वार पर।
तारका थी हस रही फीकी हसी।
भूमि पर आकाश का सिर था झुका।

बह रही थी कापती ठण्डी हवा,
खीचती थी आह की सिसकारिया।
मूर्छिता धरती पडी थी ध्वान्त मे,
वारिधि अचल था यह देख कर।

भीम रूपा रात अपना काम सब,
पूर्ण कर [illegible] की आड मे।
गड गई थी ग्लानि से पाताल मे,
कालिमा थी रह गई पीछे पडी।

२

तेज की एक झिलमिलाती जोत को,
खूब छाती मे छिपाए यत्न से।
गा रही ऊषा वधू थी जिस घडी,
उस समय तक हो चुका था शेष सब।

आज ऊषा ने रिझाने के लिए,
हाय! सारी की करी तैयारिया।
दिव्य थी उसकी लजीली लालिमा,
रग थी उसकी रगीली वो छटा।

मोह का कमजोर तागा तोडकर,
वीतरागी चल दिए ठहरे नही।
लोक मे आलोक था जो उस घडी,
ठाठ खुण्टी पर टगा ही रह गया।

खण्डिता अपमानिता ऊषा वधू,
देर तक हा! आस के आसू भरे।
एकटक तकती रही खिसियानी,
रग फीका हो गया सब गाल का।

भोर ने भेजी नयी पहली किरण,
भारती की भूमि पर आलोक की।
उस समय से पूर्व ही उस लोक से,
आत्मा आलोक मे थी जा चुकी।

हाथ फेरा रश्मियो ने प्यार से,
पक्षियो ने गीत गाये सकडो।
लोरिया गाने लगी ठण्डी हवा,
व्यर्थ था, वे वीर फिर जागे नहीं।

१

नेत्र दोनो शान्त थे और बन्द थे ।
शान्त मुद्रा थी अनोखी सर्वथा ।
इन्द्रिया भुगतान थीं सब कर चुकीं,
थीं पडी स्वच्छन्दता से मौन मे ।

जीर्णता को कार्यबाधक जानकर ।
गात को अवकाश दे विश्राम का,
ढूढने पुरुषार्थ के मध्यस्थ को ।
कौन जाने रम गई किस लोक मे ।

बात की ही बात मे बस यह खबर,
छा गई हर ओर आधी की तरह ।
बम्बई के ठाठ सब फीके पडे,
हो गई हडताल क्षण मे सब जगह ।

जो दुकाने हँस रही थीं मौज से,
जगमगाती थी सजी जिनकी छटा ।
देखते ही देखते जादू हुआ,
मूर्छा मे आ गइ या सो गइ ?

दनदनाता एक गोली की तरह,
घुस गया मस्तिष्क मे सवाद यह ।
चेतना जाती रही सौभाग्य की,
लीडरो की रीढ की हड्डी कटी ।

हाय ! करके रो उठे छोटे बडे,
पागलो की भाति चिल्लाते चले ।
स्त्रिया श्रृङ्गार करना छोड कर,
काठ की पुतली बनी सी रह गइ ।

बालको ने फेक दी निज टोपियाँ,
धज्जिया काली गले मे बाँधली ।
छातियो को कूटते रोते हुए,
कीर्तन गाते हुए फिरने लगे ।

२

भाग्य म मरदारगृह के था यही,
तीर्थ होगा राष्ट्र का वह एक दिन ।
क्यो भला भगवान् इस आवास म
शान्त होते आज पूना छोड कर ?

देखने झाकी अलौकिक आखिरी,
बारजे मे देह पधराई गई ।
दिव्य दर्शन देखने को सब कोई,
टूटते थे आदमी पर आदमी ।

सामने आसीन निश्चल मूर्ति ,
दे रही थी मूक यह उपदेश सा—
मृत्यु तक तो धर्य से हटना नही,
मृत्यु पर भी धर्य को तजना नही ।

उस बडे मदान की ताजी हवा,
भर गई थी सास की दुर्गन्ध से ।
बम्बई के प्राण ही उस ठोर पर,
आ जुटे थे, आ रहे थे और भी ।

भर रहे थे लोग यो सिसकारिया,
वृद्ध गण भी रो रहे थे जोर से ।
बालिकाएँ द्वार पर चुप थी खडी,
खिडकियो मे रो रही थी नारिया ।

भव्य वकुण्ठी बनाई फूल की,
ला धरी पद्मासनस्थ देह वह ।
शान्ती का पाठ पढ कर वेद से,
यात्रा आरम्भ की भूलोक स ।

बादलो के थे कलेजे फट गये,
खून पानी हो गया था सर्वथा ।
देखते ही हाय की और रो उठे,
आसुओ का मेह बरसाने लगे ।

१

सूर्य ने साहस किया जी थाम कर,
झाँक कर देखा जरा उस दृश्य को।
देखने की ताव थी उसमे कहा!
जा छिपा, उस रोज फिर दीखा नही।

घोष जय जयकार का छाया हुआ,
था हवा मे भूमि से आकाश तक।
कीर्तन का नाद बिजली की तरह,
खून को लहरा रहा था गात मे।

भीड होगी अधिक ही दो लाख से,
मील भर लम्बा बडा हुज्जूम था।
था समुंदर सा भरा नर मुण्ड का,
आ रहा था वेग से उमडा हुआ।

सिंहनी के पूत पजाबी धुरी,
दौड आये पर लगा कर एक दम।
केसरी के लाल को अन्तिम समय,
केसरी के लाल ने कन्धा दिया।

था नमूना रक्त के आवेश का,
था नमूना एकता के सूत्र का।
था नमूना जिन्दगी के जोम का,
था नमूना पुण्यमय आदर्श का।

चौक चौपाटी चुना तीर्थत्व को,
स्वर्ग सिंहासन बनाया यत्न से।
भाग्य मे छोटे बडे के आज तक,
मान यह हरगिज मिला ही था नही।

दिव्य वेदी स्वच्छ चन्दन की बनी,
वेद विधि से पूज कर के ठाठ से।
देह चन्दन चर्चिता सद्भक्ति से,
स्वर्ग सीढी पर चढाई चाव से।

२

वारिधी ने हर्ष से चूमे चरण,
इन्द्र ने अभिषेक का सिंचन किया।
अग्नि ने प्रत्यक्ष अपने हाथ से,
दे दिया अभिषेक का सच्चा तिलक।

तेज की तेजस्विनी वह मूरती,
बैठ कर कुछ देर उसकी गोद मे,
तेज का आलोक दिखलाती हुई,
हो गई उस तेज ही मे लीन तब।

कर्म के अनुरोध से निःस्वार्थ हो,
यातनाएँ भोगकर इस लोक की।
देश को कल्याण का रस्ता बता,
देवता ने आज नव जीवन लिया।

तीसरे दिन दिव्य झाँकी देखने,
जी न माना, पुण्य-भूमि पर गया।
शान्त सागर मुह फुलाए था पडा,
राख बनकर थी पडी ठण्डी चिता!!

घेर कर उस ठौर को दस बीस जन,
थे खडे, कुछ रो रहे थे, एक दो।
भग्न मन से और प्यासी दृष्टि से,
देखते थे भस्म के अवशेष को।

स्त्रियो का तार तो बेटूट था,
आ रही थी, जा रही थी, सैकडो।
दूर से ही हाथ दोनो जोड कर,
भूमि छू कर ढोक देती थी सभी।

बालिकाए थी चढाती भक्ति से,
फूल फल और नारियल पैसे टका।
झाडती थी एक दो श्रद्धावती,
रम्य बालो से अहो, उस ठौर को।

१

बालको के वास्ते रक्षा कवच,
स्वस्ति का तावीज भरने के लिए।
एक दो ले जा रही थी भस्म को,
आँचलो मे बाँध करके यत्न से।

भक्ति करुणा का अलौकिक दृश्य यह,
आत्मा मे आग सुलगाने लगा।
आँख मे आँसू उमड आए अहो,
लाख रोका, रो उठा जी तोड कर।

भावना का भाव जो ऊँचा हुआ,
आ गया प्रत्यक्ष मे बीता हुआ।
खो गए आसू बडी गम्भीरता,
आँख आगे फिर गई घटनावली।

देश से इग्लैण्ड तक जिस वीर की
गजना की गूज है छाई हुई।
भस्म का अवशेष जो यह है पडा,
सत्य ही क्या उस तिलक का अन्त है ?

देख कर जिस को हमारे बीच मे,
भूत के सी भावना मन मे भरे।
शकिता रहती सदा सरकार थी,
चार मुटठी राख की औकात थी ?

मृत्यु पीछे शत्रुता और मित्रता,
भूलकर, समवेदना सद्भाव से।
दुख मरो के साथ दर्शाना सदा,
सभ्यता की एक छोटी बात है।

शोक मे डूबा हुआ था देश जब,
घाव ताजा था कलेजे का हरा।
खेद का एक शब्द भी सरकार से,
माग कर दुर्भाग्य ने पाया नही !

२

बीट खा अविकारियो की जी रहे,
भारती गोरे भला क्यो चूकते ?
फोडने दिल के फफोलो को यही,
आ लगा था पुण्यपूरित पव ही।

गालियाँ दी ? कोसने कोसे गए।
फबतियाँ छोडी। उडाई दिल्लगी।
सखिया सौजन्य को देकर अहो !
सभ्यता की धूल यो भाडी गई।

राज तप तापा, सुखाया गात को,
यश नदी मे केश धो धौले किए।
देखना प्रत्यक्ष वह तप मूरती,
स्वप्न के सी बात अब तो हो गई !!!

योगियो ने योग आसन साध कर,
योग बल से, गूढ द्वापर अन्त मे।
कृष्ण के आचार आँखो देख कर,
धर्म के जो तत्व थे निश्चय किए।

आपदाओ के कठिन तूफान मे,
लोप थे चिरकाल से जो हो गए।
जेल मे इस कलियुगी अवतार ने,
गुत्थिया उस तत्व की खोली अहो !

शत्रुओ के सामने जिस वीर की,
वीरता का ओज रहता था खरा।
हारने और जीतने की बात की,
स्वप्न मे भी चाहना तो थी नही।

हिन्दुओ के अधमरे हिन्दुत्व पर,
लाल पगडी की ललाई देखकर।
गव से अकडा हुआ लन्दन नगर,
देखता ही रह गया आश्चर्य से !

१

सूय ने साहस किया जी थाम कर,
झाँक कर देखा जरा उस दृश्य को।
देखने की ताव थी उसमे कहा !
जा छिपा, उस राज फिर दीखा नही।

घोष जय जयकार का छाया हुआ,
था हवा म भूमि से आकाश तक।
कीतन का नाद बिजली की तरह,
खून को लहरा रहा था गात मे।

भीड हागी अधिक ही दो लाख से,
मील भर लम्बा बडा हुजूम था।
था सम दर सा भरा नर मुण्ड का,
आ रहा था वेग से उमडा हुआ।

सिहनी के पूत पजाबी धुरी,
दोड आये पर लगा कर एक दम।
केसरी के बाल को अन्तिम समय,
केसरी के लाल ने कन्धा दिया।

था नमूना रक्त के आवेश का,
था नमूना एकता के सूत का।
था नमूना जिन्दगी के जोम का,
था नमूना पुण्यमय आदश का।

चौक चौपाटी चुना तीथत्व को,
स्वग सिहासन बनाया यत्न से।
भाग्य मे छोटे बडे के आज तक,
मान यह हरगिज मिला ही था नही।

दिव्य वेदी स्वच्छ चन्दन की बनी,
वद विधि से पूज कर के ठाठ से।
देह चन्दन चर्चिता सद्भक्ति से,
स्वग सीढी पर चढाई चाव से।

२

वारिधी ने हष से चूमे चरण,
इन्द्र ने अभिषेक का सिचन किया।
अग्नि ने प्रत्यक्ष अपने हाथ से,
दे दिया अभिषक का सच्चा तिलक।

तेज की तेजस्विनी वह मूरती,
बैठ कर कुछ दर उसकी गोद म,
तेज का आलोक दिखलाती हुई,
हो गई उस तेज ही म लीन तब।

कम के अनुरोध से नि स्वाथ हो,
यातनाएँ भागकर इस लोक की।
देश को कल्याण का रस्ता बता,
देवता ने आज नव जीवन लिया।

तीसरे दिन दिव्य झाकी देखने,
जी न माना, पुण्य भूमि पर गया।
शान्त सागर मुह फुलाए था पडा,
राख बनकर थी पडी ठण्डी चिता !!

घेर कर उस ठौर को दस बीस जन,
थे खडे, कुछ रो रहे थ, एक दो।
भग्न मन स और प्यासी दृष्टि से,
देखते थ भस्म के अवशेष को।

स्त्रियो का तार ता बटूट था,
आ रही थी, जा रही थी, सैकडा।
दूर स ही हाथ दाना जोड कर,
भूमि छू कर ढोक देती थी सभी।

बालिकाएँ थी चढाती भक्ति से,
फूल फल और नारियल पैसे टका।
झाडती थी एक दो श्रद्धावती,
रम्य बालो से अहो, उस ठौर को।

१

वालको के वास्ते रक्षा कवच,
स्वस्ति का तावीज भरने के लिए।
एक दो ले जा रही थीं भस्म को,
आचलो मे बाँध करके यत्न से।

भक्ति करुणा का अलौकिक दृश्य यह,
आत्मा मे आग सुलगाने लगा।
आँख मे आँसू उमड आए अहो,
लाख रोका, रो उठा जी तोड कर।

भावना का भाव जो ऊँचा हुआ,
आ गया प्रत्यक्ष मे बीता हुआ।
खो गए आसू बडी गम्भीरता,
आँख आगे फिर गई घटनावली।

देश से इग्लण्ड तक जिस वीर की
गजना की गूज है छाई हुई।
भस्म का अवशेष जो यह है पडा,
सत्य ही क्या उस तिलक का अन्त है ?

देख कर जिस को हमारे बीच मे,
भूत के सी भावना मन मे भरे।
शकिता रहती सदा सरकार थी,
चार मुटठी राख की औकात थी ?

मृत्यु पीछे शत्रुता और मित्रता,
भूलकर, समवेदना सद्भाव से।
दुख मरो के साथ दशाना सदा,
सभ्यता की एक छोटी बात है।

शोक मे डूबा हुआ था देश जब,
घाव ताजा था कलेजे का हरा।
खेद का एक शब्द भी सरकार से,
माग कर दुर्भाग्य ने पाया नही !

२

बीट खा अधिकारियो की जी रहे,
भारती गोरे भला क्यो चूकते ?
फोडने दिल के फफोलो को यही,
आ लगा था पुण्यपूरित पव ही।

गालियाँ दी ? कोसने कोसे गए।
फबतियाँ छोडी। उडाई दिल्लगी।
सखिया सौजन्य को देकर अहो !
सभ्यता की धूल यो झाडी गई।

राज तप तापा, सुखाया गात को,
यश नदी मे केश धो धौले किए।
देखना प्रत्यक्ष वह तप मूरती,
स्वप्न के सी बात अब तो हो गई !!!

योगियो ने योग आसन साध कर,
योग बल से, गूढ द्वापर अन्त मे।
कृष्ण के आचार आँखो देख कर,
धर्म के जो तत्व थे निश्चय किए।

आपदाओ के कठिन तूफान मे,
लोप थे चिरकाल से जो हो गए।
जेल मे इस कलियुगी अवतार ने,
गुत्थियाँ उस तत्व की खोली अहो !

शत्रुओ के सामने जिस वीर की,
वीरता का ओज रहता था खरा।
हारने और जीतने की बात की,
स्वप्न मे भी चाहना तो थी नही।

हिन्दुओ के अधमरे हिन्दुत्व पर,
लाल पगडी की ललाई देखकर।
गव से अकडा हुआ लन्दन नगर,
देखता ही रह गया आश्चर्य से !

१

लेडिया के हास्य के डर से डरे,
टाग टक कर सज की पतलून गे।
मूख सिर पर हैट की रख टोकरी,
साहबी के वश मे रह कर सगे।

देश हित की डीग है जो हाकते,
पूज्य गुरु से एक शिक्षा ल जरा।
देश की पोशाक पर श्रद्धा नही
देश उनसे और क्या आशा करे ?

रोटियो के दास टुच्चे क्षुद्र मन,
नोकरी पाकर जरा सरकार की।
जान कर, तो बस हमी सरकार है,
पैर धरती पर नही थे टकते।

दिन दहाडे न्याय को फासी लगा,
ये नवाबी कर रहे थे बेधडक।
दीनताई दुखभरे इस देश की,
दिल्लगी की चीज थी इनके लिए।

तग होकर यातना मे जा कभी,
की किसी ने भी जरा आलोचना।
राज विद्रोही बना कर एक दम,
जेल जुमाने रक्खे घूस मे।

जेल पाई और जुमाने दिए,
मान और अपमान की परवा न की।
अन्त तक लडते रहे पाई विजय,
दे उखाडी हाकिमो की हेकडी।

आज ऐसी बात अब भी याद है,
हाथ मे थी हथकडी लाती हूँ।
पैर मे थी बेडिया फौलाद की,
घोटती थी दम कठर की हवा।

२

न्याय पर बैठा हुआ था मुद्दई,
फसला कानून के आधीन था।
नीतिमत्ता मुह छिपाए थी खडी,
नाचती थी खूब स्वेच्छाचारिता।

द्वेष मत्सर दम्भ दुर्गुण नीचता,
ओढकर गम्भीरता की ओढनी।
आख पर चश्मा चढाकर न्याय का,
सभ्यता की दुम हिलाती थी खडी।

आख कानो से जरा छिपते हुए,
बुद्धिमानो के पकडने से डरे।
चोर से चहुँ ओर चौकन्ने बने,
शब्द कानूनी अहो! चुनने लगे।

अर्थ को कजूस बनिए की तरह,
नाप कर अन्दाज से देने लगे।
चील सा उन पर झपट्टा मार कर,
सभ्य लीडर चोच से खाने लगे।

ख्याति है विख्यात जो सरकार की,
न्याय मे जिस जाति की श्रद्धा नही।
शक्तिमान ही उस अदालत का अहो!
सज्जनो! बस सत्य ही यह रूप था।

न्याय घर मे न्याय के कल्याण का,
हो रहा था न्याय का बलिदान यो।
न्याय पर आ जूझ मरने के लिए,
यह अकेला वीर लडता था खडा।

हास्य-रस के भण्ड उस पाखण्ड का,
मरहठे पर हाल क्या होता अगर।
तुच्छता की दृष्टि से ग्लानी भरा,
बन्दरो का नाच था यह देखता।

१

यातना की यात्रा पर धय मे आरूढ हो,
सत्य को सीचा सदा निर्भीकता के ओज से
न्यायको इस वीरतासे जा मिलाया नीतिमे
झाकना कानून बगले मिसमिसाता रहगया

पक्ष सत्ताधारियो का वार कर,
ओट मे कानून की छिपता हुआ।
राजनैतिक छल, सदा से खेलता,
निबलो के स्वाथ का आखेट था।

दीन बेचारे पनपते थे नही,
शक्तिया बेतोल थी अधिकार की।
कान कायर का पकड कर आपने,
सभ्यता के सामने हाजिर किया।

घूमता है चक्र इस ससार का,
कौन रहता है सदा इस ठौर पर ?
फूल का जो खीच लेते है अतर,
सूखने पर गन्ध देता है वही।

बीज बोया आपने जो यत्न से,
लहलहाता आ रहा था वो उठा।
एक दो कलिया अभी थी खिल चुकी,
ओर गदराने लगी थी बौरियाँ।

फूलने मे और दो दिन थे अभी,
आस मे बठे हुए ये चाव से,
आप बाटेगे हमे निज हाथ से,
हम चुरा लेगे जरा सा और भी।

२

खा रही ह आपकी म तान यह,
देख लेते आप जो एक दृष्टि स।
तृप्त हो आसीस दे जाते हमे,
भाग्यशाली कौन था हममे वडा ?

आख मे वह घूमती तस्वीर है,
कान मे है गूजते उपदेश वे।
जागती है जोत दिल मे आपकी,
आपकी ही है विभूति भारती।

ग व गावो की रहगी कब तलक,
जब तिलक मस्तिष्क पर से पुछ गया !
सिर मुकुट तो मिल चुका था धूल म,
एक तिलक था, आज वह भी पुछ गया।

भाग्य मे जो कुछ हमारे था बदा,
हो चुका, अब शोक करना व्यथ है।
युद्ध जय मे काम थोडा है बचा,
पूरा करना ही बडा कतव्य है।

भाग्य पर आसू बहाना सज्जनो !
कायरी का काम है ससार मे।
धीरता से पग बढाना ही सदा,
वीरता की शान हे इतिहास मे।

युद्ध के मैदान मे अब तक अहो,
था अकेला वीर वह लडता रहा।
क्या हुआ ? जो आज वो या है नही,
मोरचा तो तोडने देगे नही।

गोलियो की मार मे जो आज तक,
थी अकेले वीर की छाती अडी।
आज से होगी करोडो छातिया,
देश के प्रत्येक सच्चे पुत्र की।

रक्ताश्रुबिन्दु

(लाला लाजपतराय के निधन पर लिखी गई)

रक्ताश्रु बि दु यह कैसे ?
तुम रोती हो !
ओ वसुन्धरे मा !
यह शस्य श्यामला पवन विकम्पित अञ्चल—
रुधिराप्लावित सा क्यो है ?
ऐ !
इस अचल मे क्या है ?
यह कौन यहा सोता है ?
यह सुखद नीद इस मृदुल अक म !
अरे !
यह पजाबकेसरी है ?
जो रहा निरतर जागृत,
उन्निन्द्र कूट स्थित अर्द्धशताब्दि समाप्त करी।
भूतल पर जिसके चरण चि ह धस गए !
अमर से हुये !
पजाबकेसरी वही,
यहा सोता है शिशु सा।
सुखद नीद मे,
अरी उठा दे, वसुन्धरे !
यह बाघ हमारा रक्षक है।
ओ केसरी !
यह बनस्थली अब शू य हुई सी दीख रही है।
वह वज्र गर्जना करो।
वन पर्वत कम्पायमान होकर प्रतिध्वनित हुए से बोल !
वह शिशिर विकम्पित श्वेत दप।
मूर्च्छित सा होकर फिर कब रूदन करेगा ?
ठहरो !
नीलकठ शिव सोये है क्या ?
क्या ताण्डव हो चुका ?
प्रलयोद्भव क्या सम्पन्न हुआ ?

तव कृष्णाचि ह्न ये कंठदेश और वक्षस्थल पर कसे हुए,
सुशोभित !
अरी वेदने ! ठहर,
चक्षु श्रोतवाही जलकण तुम असमय मे कहा निकल आये ?
नही, नही, पंजाबकेसरी ही है यह,
यह चिरनिद्रा मे सोता है, जो कभी समाप्त न होगी !
अब ? किसके बल से यह, वृद्ध, दरिद्र स्वदेश,
आशा के अवशिष्ठ तन्तु ले—
दूर देश कूटस्थ ज्योतिपर अन्तिम प्राण तजेगा ?

बापू ! ओ बापू !

ओ राष्ट्र कूट,
ओ देव दूत,
तू अति महान्
तू महत ज्ञान
तू चमत्कार
तू भू अधार
तू क्रांतिदेव-
तू आत्मपूर्ण
तू शुद्ध बुद्ध
तू सत्व शुद्ध
ओ तप पूत
ओ आत्म हूत
हिमगिरी समान
तू भासमान
तू निर्विकार
तू शांति देव
तू ज्योति पुञ्ज
तू पूज्य पूज्य
तू भुक्त मुक्त,
तू आत्म मुक्त।

वृद्ध व्याघ्र

(पंडित मोतीलाल नेहरू के स्वर्गारोहण पर लिखित)

१

ओ वृद्ध व्याघ्र !
किस वनस्थली के नाहर थे तुम ।
कहाँ लीन हो गए !!
अभी तो थे ,
अरे तुम घायल थे,
मर्माहत थे, निःश्वास कष्ट से लेते थे ।
उन निःश्वासों से आश्वासित थे हम !
वे जीवन की रखवाली मानो
किस अदृष्ट बल से अदृष्ट हो गए हाय !!
ओ वृद्ध व्याघ्र !

२

मत्त हाथियों के गंडस्थल तुमने,
अनायास ही विदीर्ण कर डाले ।
निज गर्जन से
भू लोक प्रकम्पित किया,
धमक चाल जब चली अरे !
भूतल पर चरण चिह्न बस गए !

३

अर्द्ध शताब्दि व्यतीत हुई
इस युग में,
अरे केसरी !
किसे प्राण भारी थे ?
किसे अरे साहस था,
जो हृद-कंप हुए बिन सम्मुख तेरे आता ?

४

महासाम्राज्ञों के सिंहासन
तेरी धमक चाल से हिले ।
तेरे घोर गर्जन से पवन प्रकंपित हुई ।
आज वन के भय से वे,
भयभीत हुए बैठे हैं ।

५

उस व्याधा ने कौशल बल से
आबद्ध किया था तुमको ।
उस लोह पींजरे में,
भाग्य रेख से बद्ध बसेरा किया !
अधम दर्शकों की क्रीडा के जीव बने !!

६

पर,
बद्ध बसेरे में बैठे तुम,
दुस्साहस करते रहे ।
अरे !
इन टूटे नख रद के बल पर,
इस पुरुषार्थ पुराने के बल पर,
तुम लक्ष्य वेध सा किए हुए,
ध्रुव ध्येय खोजते रहे सदा ।

७

अरे नाहरों के वंशज,
तुमने जब उसी पींजरे में,
फिर वज्र गर्जना की,
पद प्रहार से धसी धरा !
वह उत्पाती दुर्ग हिला जड़ से,
बन पर्वत कंपायमान होकर
प्रतिध्वनित हुए से बोले !!
वह शिशिर विकंपित श्वेत दर्प,
मूर्च्छित हो तेरे पाद पद्म में लोटा !!!

८

वह सिंहों का काल रूप,

कलुषित लोह पीजरा,
छिन्न भिन्न हो ध्वसित हो गया !

९

कितने विकराल व्याघ्र,
कितने नाहर के जाए,
कितने वीर केहरी
वनस्थली के मुखद और स्वच्छ द
निजू विचरण से वचित होकर,
इमी घृणित पापिष्ट पीजरे मे घुट घुटकर
वीर प्राण दे गए !

१०

अपनी मफल कुशलता पर
वह व्याधा हँसता था,
यह हास्यास्पद स्पधा !
'व्याघ्र बद्ध कर लिया',
कुटिल का यह ही हास्य विषय था।

११

यह छल-बल का अभ्यासी था,
जो लोकोत्तर तप तेज पुज को
क्रय विक्रय करता था !
वह अब तक तो हँसता था,
अब उस पर जगत् हँसेगा !!

१२

तुम कहा लीन हो गए !
अरे, यह कैसी आखमिचौनी !!
यह वनस्थली अब शू य हुई रोती हे।
शश, मृग, शृङ्गाल,
यहा निभय विचरण करते है !!

१३

उस सुदूर नभ मे,
रवि मण्डल के पार खडे।
क्या मोच रहे हो ?
क्या ताक रह हो ?
यह वज्र दृष्टि तो अग्नि बाण सी
हृदय वेधकर आरपार जाती हे।
किस अहार पर दृष्टि दिए बठे हो !
वह अदृष्ट आखेट कहा है ?

१४

मृत्यु सिह शिशुओ का क्रीडाकदुक हे।
अरे सिह,
तुम्हे मृत्यु का भय क्या था !
वह अब आई या क्षण भर पीछे आती !!
वह क्षण भी क्षण मे आया,
अथवा युग व्यतीत होने पर आता।
इम कालभेद पर
तुम्हे सोचने का अवकाश कहा था !!

१५

यह शरीर तो नश्वर था।
फिर !
सिह पतरा बदल नही सीखे बचना,
वे गोली खा वक्षस्थल पर
तडिद्गामिनी की द्रुतगति से
भीषण गजन करके,
टूट शत्रु पर, नख रद से,
हृत् विदीर्णकर उष्णरक्त पीते पीते मरते हे।

१६

तुम जहा कही भी रहो,
असल केसरी कहलाओगे।
तुम कभी मरोगे नही,
भले ही यह शरीर ध्वसित हो,
ओ नाहर के वशज,
ओ वृद्ध व्याघ्र !

(भद्रसेन की पुत्री शरदकुमारी का केवल दो वष की शिशुवस्था मे ही निधन हो गया। आचायश्री उस शिशु पुत्री के वियोग मे अत्यन्त शोकपूरण और दग्ध-हृदय रहे। उसीकी स्मृति में उन्होने एकदिन अधरात्रि के एकान्त नीरव क्षणो मे बठकर अश्रुपूरण नेत्रो से इन पक्तियो को लिखा था)

शरत्कुमारी

१

अरी शारदे !
शुभ्र शरद् घन शुभ्रे,
शरच्चन्द्र प्रतिबिम्बे !
टुक बोल,
इधर तो देख तनिक—
कुछ हकारे तो भर,
अरी मेरी नन्ही तू किस सोच-सरित मे मग्न हुई।

२

ले हँस दे,
ले हस दे,
उस मृदुल हास्य मे—
घनपूरित गगन पटल पर—
तडिद्दामिनी की वह अस्थिर छटा दिखा दे।

३

अरे ?
ऐसी निश्चल निस्पन्दित ?
कनक रेख सी अथवा—
पुष्प छडी सी पड़ी हुई—
चैतन्य सत्य म जडवत्
प्रकृति नटी सी—
क्या गहन नाट्य सा करती है ?

४

ओ नन्ही बिटिया !
ये मृणाल भुज ऊँचे कर,
पाद पद्म को उठा,

गोद मे आने को—
वह सबल और अभ्यस्त यत्न तू आज नही करती री ?

५

तू रोती भी तो नही ।
अरी पगली,
ले कूद मेरे वक्षस्थल पर,
एक लात मार,
दो चार मार, मार,
मार सुखद ये लाते
हुकारे भर, हम,

६

लोल नयन की पूत दृष्टि से पुनरुज्जीवित कर,
इस धराधाम के पाप ताप से,
तप्त,
भग्न,
अन्तस्तल को ।

७

बस तुझे देखकर,
दुख खाकर,
शोकाश्रु पानकर,
अमित वेदना, चिन्ताओ की शिला हृदय पर रहते,
मै जीऊगा,
मैं जीऊँगा,
एक कल्प तक,
अथवा अधिक काल तक ।

८

पर तू हँसती जा,
कुछ कहती रह,
हुकारे ही भर ?

९

अरी बहू !
ले नए वस्त्र तो दे दे,

इस बिटिया को,
इस नन्ही सी नादान कुसुम कलिका को,
इस अमल धवल अस्फुटित कुन्द कलिका को।

१०

यह अभी खिलेगी,
तब सौरभ फूट पडेगा।
फिर सुरभित होगा यह लोक।

११

और,
हमारा चिर विदग्ध,
चिर भग्न हृदय,
शक्ति सुधा सजीवन पाकर,
जीवन सचार करेगा।

१२

हम,
इस जीवन के क्षुद्र छोर पर
पवनो मुख बठे हे फिर भी —
हम सच्चा हास्य हसगे,
हम सुख स्पश कर पावगे
अज्ञेय सुधा का।

१३

ले जरा सजादे,
ला अलकार ला,
गन्ध ला,
अरी मूढ सी क्यो ही रह गई??

१४

हा?
तू रोता है?
अम्बा लोरी गा गा कर सुख नीद सुलाती है बिटिया को।

१५

क्या नित्य यही करती थी?
यह कैसी लोरी?

यह कसी सुख नीद ?
मेरा हृत्पिण्ड प्रकम्पित हुआ,
एक अशुभ भावना—
आशका,
लहर मारती है ।

१६

ना, इसे जगादे,
खूब सजादे,
अलकार से वस्त्रो से फूलो से,

१७

मै खेलूगा,
मै वक्षस्थल पर इसे उछालूगा,
यह उछलेगी,
कूदेगी ।
यह हँस हँस कर किलकारी भरकर पादाघात करेगी ?

१८

मैं बाजार ले जाऊँगा,
वह उसी तरह,
ऊँ ऊ करके,
चम्पक सी नन्ही ऊँगली से जो जो सकेत करेगी,
वही मोल ले दूगा ।

१९

आज मै झोली भर लाऊँगा,
सभी चीज जो मागेगी ।

२०

ले उठ, इसे हिलादे,
खूब सजादे,
यह रुनुक झुनुक घुटनो के बल दौडेगी ।

२१

अरे !
तू रोती ही बठी है ?
यह क्या ?

सब रोते हो !
यह क्रन्दन !
यह असह्य चीत्कार !
अरी जरा तो धीरे से,
ओ धीरे से,
यह बिटिया जाग उठेगी ?

२२

यह रुदन प्रवाह तो मुझे डुबा ले चला
वह देखो वह धैर्य गया,
वह संयम का पुल टूटा,
वह शोकोद्वेग ले चला बहाकर –
सब पौरुष,
स्थैर्य,
धैर्य, जीवन,
विवेक ।

२३

अरे रोको रोको,
मैं मरा
यह सहस्र शत सर्पदंश,
नस नस से प्राण निकलते हैं,
हाय वेदना !!!
अमित शून्य में डूब चला मैं ।

२४

क्या बिटिया चल दी ?
क्या यह चिर निन्द्रा है ?
अब कभी न उठ कर बोलेगी ?

२५

ओह ! अरे मैं समझा ।
अब समझा ।

२६

अरी योग माया !
खूब योग साधा तूने,

उड गई हवा मे ऐसे—
जसे हविष्य की गन्ध।

२७

प्रवञ्चिके!
खूब छना तने हम को—
उस सत्य प्रेम के बदले
हम यही देखते रहे,
हम यही समझते रहे, तैने यह आखमिचानी खेली।

२८

तब तू चल ही दी?
उस सुदूर तारागण की उस वज्रपक्ति मे जा बैठी?

२९

वह सूक्ष्म तत्व, जो कभी न देखा समझा था।
अज्ञान रीति से,
किस कोशल से ले भागी?
सब कुछ तो उसी तत्व के सग गया!

३०

पर यह स्वर्णगात तो बिटिया तेरा यहीं रहा,
यह मधुर खिलोना,
अब इसका क्या होगा?

३१

ले इसको भी लेती जा,
हम इसे अग्नि के कण पर,
रवि रश्मि पथ पर रवि मण्डल मे—
भेज रहे हैं,
स्वाहा से सयुक्त,
वही से लेना।

३२

जाओ बिटिया,
उस दिव्यलोक मे,
हमसे भी पहिले,
जाओ।

३३

जहा—
मृत्यु नही,
भव ताप नही,
वाधक्य नही,
इच्छा द्वेष प्रयत्न दुख सुख का किचित अवशेष नही,

३४

वहा,
पारजात की तरह खिला,
अक्षय अम्लान रहा,
उस सुदूर तारे के दीप्त झरोखे से,
उस कनक रेख सी मृदु मुस्कान की एक क्षणिक झलक
जब तक हम भोगवाद मे ग्रसित,
यहा जीवित रहने को वाध्य रहे दिखलाती रहना।
ओ न हो बिटिया !!
सदा याद रखना हमको।

३५

वहा तुम्हारी ज्येष्ठा मा है,
उनकी भी मा है,
ओर सगे है,
वे सदा तरसते गये गोद म तुझे खिलाने को।
उन महा प्रतिष्ठित प्राणो के दिव्याञ्चल मे
महाप्रलय तक—
तुम सदा फला फूला करना।

स्वप्न !

सत्य जग को स्वप्न जाना।
प्रत्यक्ष को अनुमान जाना।
जानकर भी कुछ न जाना।
कुछ न खोना कुछ न पाना।
मृत्यु के उस पार जाकर लौट आना।
दुख को सुख, मरण को अवसान माना।

गाण्डीवदाह

(मद्य के पातक से मत्त यादव जब प्रभास मे आपस मे कट मरे, दाऊ समुद्र गर्भ मे अन्तर्धान हुए, और महाप्राण, कृष्ण विधि विडम्बना से एक अधम व्याधा के बाण से विद्ध हो परमधाम सिधारे, तब दवकोप से कुपित समुद्र मे द्वारिका डूब गई। देव दत्य मानव व द्य श्रीकृष्णचन्द्र की अन्त पुरवासिनी राजकुलवधू निराश्रय रह गइ। तब उद्धव के आमन्त्रण पर अर्जु न उन्हे हस्तिनापुर ले चले। माग मे आभीरो और जाटोने उन्हे लूट लिया। भग्न हृदय, शोक सतप्त महावीर अर्जु न ऐसे निस्तेज हुए कि धनुष की डोरी भी न चढा सके, वे हाय करके सिर धुन कर रह गए। इसी करुण घटना का हृदयग्राही वणन आचायश्री की समथ वाग्धारा में यहाँ वर्णित हे।

१

रोक दो रथ, सब कटक
अश्व गज रथ शकट शिविका,
सार्थपति जो हो, अभी वह—
दात मे तृण दाब शरणागत हमारा हो, तुरत निज प्राण भिक्षा माग ले,
वद्धाञ्जलि हो हम आभीरो, जातपुत्रो के कुलपति से,
और, ये सब अश्व रथ गज, स्वण मणि,
माणिक्य हीरक सी प्रभामय,
रूप गुण गरिमामयी,
चम्पकाभा, गौरवर्णी,
ललित लीलामय नयन मे मदनमद आपूण भर मृदु मधुर चितवन फेंकती सी,
आभरण के भार से भुक झूमती सी,
कुसुम गुम्फित डालियो की शुभ्र शोभा धारती सी,
नयन धनु से मयन शर से मारती सी,
म द मृदु मुस्कान से ब्रीडाभरी, हीरक जडी,
ये दिव्य बालाऐ हमे दो,
प्राण ले भागो यहा से,
यह हमारा, जातपुत्रो का आभीरो का तुम्हे आदेश हे।

२

रे अधम तस्कर,
तुझे क्या मृत्यु का भय ही नही ?

जो अप्रता अशम्य ऐसी कर रहा है, अभय हो ?
पार्थ हूँ मै, विश्वजित,
दिव्य अस्त्रो का प्रयोक्ता,
क्या नही तुमने कभी गाण्डीव की महिमा सुनी ?
जिसके विकट शर,
मृत्यु के स देश वाहक लोक मे, परलोक म, त्रलोक्य मे विख्यात हे।
जो महत् रथियो, महारथिया,
छत्रधारी भूमिपतिया के प्रतापी मस्तका का भूमिलठित कर,
रक्त के आजानुनद म स्नान कर,
नरहीन कर इस वसुन्धरा को।
भोग करता है ससागर भरतखण्ड अखण्ड को।
नरपति, शत सहस्र,जिसके चरण मे मुकुट मण्डित सिर झुका,
आदेश पाकर धन्य होते,
प्रसाद पा कृतार्थ होते।
द्रोण से धनुधर, जयद्रथ कुटिल,
कर्ण अभिमानी,
शक्ति वर सम्पन्न,
मृत्युञ्जय पितामह भीष्म,
भू लुण्ठित हुए जिनके शरो से,
वही पार्थ हूँ,
रे तस्कर ! रे अधम !

३

ये महामहिम महिला,
असूर्यंपश्या,
द्वारिकेश श्रीकृष्णचन्द्र की धर्मसखी,
पुत्र पौत्र परिजन वधूटिया हे,
जिनके शौर्यपूर्ण उद्दाम चरित,
धर्म कर्म सिद्धान्तवाद,
लोकोत्तर दैवी सम्पद्,
ज्ञान ज्योति,
आजीवन जन जन को अर्पित है,
युग युग को,

वह पुण्यनाम क्या तूने नही सुना ?
रे तस्कर, रे अवम ।

४

कुरु समराङ्गण मे,
निश्शस्त्र जिन्होने,
युग सचित रूढि विभाजन भग किया ।
चतुरङ्ग चमू की अष्टादश अक्षोहरिण,
भू लुण्ठित कर,
दलित तिरस्कृत पाण्डुसुतो को—
भूतल का साम्राज्य दिया ।

५

जो विश्ववन्द्य,
आध्यात्म तत्त्व के मध्यविन्दु,
कमयोग आविष्कारक, गोरक्षक,
प्रतिपालक चरण शरण के थे,
ये उन्ही कृष्ण की पूजित पत्नी, धर्मसखी,
पुत्र पौत्र परिजन वधूटिया—
भाग्यदोष से हीन गृहा,
असहाया हो,
प्रभास के पातक का—
कज्जल मिश्रित नयन नीर से तपरण कर,
जहाँ मदो मत्त मद्यप यादव कट मरे,
परस्पर कलह ठान, मद पी पी कर, हा हन्त,
श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द,
नरपति, नरपति पति,
देवासुर वन्द्य, मुनिगन जन पूजित,
महाप्राण,
एक क्षुद्र वधिक आखेटक का—
साधारण सा शराघात खा,
अकस्मात् निष्प्राण हुए !!

६

यो महामहिम अस्तित्व—

अतर्कित अन्तर्धान हुआ !!
सूनी मथुरा
श्रीहीन द्वारिका,
प्रियहीन पार्थ,
खोए से परिजन –
हुए।
दाऊ पीत समुद्रगर्भ में कहाँ गए ?
इस पार रहे, उस पार गए या नहीं रहे ?
यह कौन कहे ?

७

फिर, उसी रात को प्रलय हुआ।
क्रुद्ध सागर की उत्तुङ्ग तरङ्ग,
पर्वत की चट्टानों सी,
वन जन पशु पक्षी मानव सबको समेट,
हर्म्य, सौध, हाट वनवीथी,
सबको लपट,
हुङ्कृत,
प्रचण्ड
दुर्धर्ष,
जब लौट गई,
तब सब कुछ उनके साथ गया !!

८

यह अभाग्य महाभागों का ?
यह नियति नियत था कर्मभोग,
यह विधि विडम्बना निष्ठुर
या मायामय की माया जाल !!
किन्तु जो होना था हुआ,
भला अब उसका क्या ?
अभी मैं जीवित हूँ,
मैं पार्थ, गाण्डीव धनुर्हस्त।
मेरी आजानु बाहु,
मेरा लोकोत्तर शौर्य–

अभी हे,
क्या हुआ सखा माधव अब नही रह
क्या हुआ हृदय के खण्ड खण्ड हो गए
क्या हुआ, जीव जीवन सब नीरस हुआ ?
विश्व विषमय, भोग दुखप्रद,
प्रियजन आखो के शूल हुए,
इन प्राणो का बोझ लिए, मै पाथ,
अभी जीवित हूँ,
वही मेरा गाण्डीव,

८

वही हस्तलाघव मेरा,
वही अडिग रणरङ्ग,
अभी मेरी नस नस मे है।
सो हे तस्कर, हे अधम,
दूर रहो,
दूर रहो पथ से,
तुझ नगण्य से वन्य तस्करो पर हाथ उठाना वीर पाथ के योग्य नही।
यह अशुभ अशोभायुक्त काय है,
दूर रहो,
दूर रहो पथ से,
तुम्हे, पाथ—मै, कुरुकुल अधिपति, प्राणदान देता हूँ।

९

तुम पाथ हो या साथ, हमे इससे क्या ?
और प्राणदान की खूब रही ?
यह अपने ही मुह खरा मियामिठ्ठू बनना क्या ?
अजी,
पाथ या साथ,
तुम्हारा जो कुछ उच्चारण हो,
यह आभीरो का,
जातसुतो का जनपद है,
यह नही तुम्हारा हस्तिग्राम,
यह नही तुम्हारा कुरुक्षेत्र,

ई द्रप्रस्थ,
कृष्ण मर या जिए, हम इससे क्या ?
पुरी द्वारिका डूब गई तो कहो हम क्या ?
होगा कुछ गाण्डीव खिलौना,
अरे भाई,
तुम पार्थ साथ जो कुछ भी हो,
झटपट मुख मे तृण दाब,
उतरो रथ से,
नगे पैरो,
चलो हमारे कुलपति के सम्मुख,
प्राणदान माँगो ।
और,
ये शकट, शस्त्र, मणि माणिक,
स्वर्ण रत्न, रथ वाहन,
हाथी, घोडे,
कौशेय, वस्त्र, काशिक,
ये चपला तरुणी बाला,
सब कुछ हमको दो ।
यह तुम्हे भले की सीख हमारी,
यदि भल बुरे की समझ तुम्हे हो -
मानो,
मत मानो ।
क्षण भर मे कुलपति,
जातो, आभीरो के तरुणो का जत्था लेकर,
ले ले मोटे लट्ठ,
टूट पडेगे, हड्डी पसली चूर चूर कर देगे ।
भेजा निकाल रख देगे,
सब अग भग कर देगे,
फिर करते धरते कुछ न बन पडेगा तुमसे,
तब रोना मुँह पकड कर,
ओ पार्थ,
अपना साथ जो कुछ भी तुम हो,

तुम सुनो हमारी सीख भली,
सब कुछ चुपके से दे लेकर,
हस्तिग्राम का,
इन्द्रप्रस्थ को,
अथवा जहा रुचे,
भग जाओ।

१०

यह कैसा उत्पात ?
अनयनाद कसा यह ?
कभी हुँकृति,
वज्र गजना,
असमय के ये मेघ—
जिन्होने भास्वान् का तेज तिमिर मे ढाप लिया।
अब समझा
समझा।
यह आभीरो के जातसुतो के दल बादल
आ रहे,
अरे ठहरो ठहरो,
लाओ तो गाण्डीव,
तस्करो का विध्वस करूँ,
मे पार्थ धनञ्जय त्रिभुवन विश्रुत
आभीरो को, जातसुतो को
इसी समय निवश करूँगा।

११

किन्तु अरे,
यह कसी सिहरन ?
भय की काली छाया—
नेत्रो मे आ घूमी।
हस्त प्रकम्पित होता है,
ज्या चढी नही।
क्या हुआ कुतूहल अद्भुत अति,
गाण्डीव का यह गुरुत्व इतना कैसे बढ गया ?

स्रस्तहस्त गाण्डीव खसकने लगा ??
अरे, ठहरो, ठहरो,
ओ तस्कर,
ओ पामर,

१२

वह अन्त पुर है,
वहाँ हे महामहिम महिला,
राजकुलो की मर्यादित,
उधर कहा जाते हो,
उनका रक्षक—
अभी मैं पाण्डुपुत्र अर्जुन
एक एक को बाणविद्ध कर—
भूलुण्ठित कर दूगा ।

१३

कि तु वह हृदय वेदना कैसी ?
विज्वर शरीर,
पर—
ज्वराक्रान्त सा अनाहूत अवसाद,
प्राण को, जीवन को,
प्रत्येक श्वास को,
शीतल सा करने लगा ?
जैसे,
रक्त नही बह रहा धमनियो म, शीतल जल है,
अथवा,
यह नही पार्थ का यश पूर, विक्रमस्नात,
वह वज्रदेह,
यह मिट्टी का ढेर,
अथवा निर्जीव लोथ कायर पशु की ।

१४

खिच रहे प्राण,
नस नस से ।
यह दुर्भाग्य पार्थ का देखे सब —

लोकपाल, दिकपाल,
व्योमविहारी देव वन्द,
सहस्राक्ष,
रविमण्डलवासी पितृ पिता,
नाग, दत्य दानव, मानव,
मे पात्र आज से सत्य सत्य—
सत्याथ भाव मे क्लीव हुआ।

१५

ये श्रम सीकर झर झर झर झर—
वह चले भाल से,
अश्रु नयन से,
आज विदा पुरुषाथ हुआ।
मर गया पाथ गाण्डीवराज
उसी का शव यह जीवित सा—
प्रतिभास रहा है,
देखो यह चमत्कार अद्भुत
अरे—अरे—अरे,
ले चले उठाकर,
कुलवधुओ को ?
महामहिम महिलाओ को।
राजकुलो की मयादा का कुछ तो ध्यान करो,
उन्हे छोड दो,
मुझे बाध ले चलो,
दास की भाति, पाथ मे—
सब सेवाएँ तन मन से सम्पन्न करूँगा।

१६

दुर्योधन का दास्य रोषवश,
अस्वीकार किया था—
किन्तु, तुम्हारा एकनिष्ट मै सेवक हूँगा,
सब सेवाएँ तन मन से,
मे पार्थ बजा लाऊँगा।
तुम यही करो केवल—

कौरव कु ा की पताका को
ग्ला ि ा गत त गो,
ारे, गो आ ारी ने ा नपतिगा,
गा हान रा पति ा मग,
तब गया कृष्णा की उस असहाया—
निस्पाया, हतभाग्या
कुलवधुआ का—
जो ोना गो गो हा ।

१७

नहीं सुनता कुछ,
करती मनमानी,
न देने उत्तर,
बलात्कार से राजकु ी की
कुलवधुआ का ?
हा.य, हाय, हतभाग्य ाग
पाण्डव,
लज्जित कुराग हुआ ।
न ु ा यता न गुरुजन का
घात कता,
पातक पृ ा,
गा ाम ान ाग हा
नष्ट हा गया पाज ा ग
पाण्ड पुत्र ।

१८

ा ा, ा ा ार ा ाा ापुर आकर,
ृ ा ा ाारा,
गा ाार, ारा ा ा ा ा गया ?
ीस ा ाग
ाया ामा ा ा ?
ा ा गुरुजन ा ा ा ा ा ?
उपहास का ा ा ा ाुल
द्रुपद क ाा मुख ढाप ा ा ा -

रुदन करेगी,
ग्रौर सुभद्रा मातृपदो का कुशल क्षेम—
सुन ऐसा अद्भुत,
अर्घ्य पाद्य से सत्कारेगी
वीर पार्थ को,

१६

पुरजन परिजन, कुरु,
पौरवधू,
सुनकर मेरी गरिमा गुनमय,
लाज पुष्प वर्षाकर—
अभिनन्दित कर हर्षित होगी ।
हा । हा । हा । हा ।
नहीं, नहीं,
मैं जाऊँगा नही
क्या काम मेरा कुरुराज नगर मे,
यह कलुषित मुख,
कहो किसे—
दिखलाकर जीवित हूगा ?
नहीं, नहीं,
मर गया पार्थ,
हत भाग्य,
मृत्यु किन्तु, अब भी दुर्लभ है,

२०

कौरव,
कौरव कुलपति,
भीष्म द्रोण अधिरथ सुत,
अभिमान मेरु दुर्योधन—
सौभाग्य मृत्यु का वरद हस्त,
ले समराङ्गण मे खेत रहे ।
यश पताका फहराते,
दिव्य विमानो मे,
सुरपुर पहुँचे ।

रह गया ग्र म म
ाीव पा व,
दखने कुदिन ग्राज रा गनुभ,
ानि्ति करने ा ा ुन,
हरे कृष्ण,

२१

ामा रो,
क्षमा करो, उस न्फिर ा ा,
उस ग्र म नरा म ग्रजन ा,
जिगे तुमने पृथ्वी जयन र ली,
ग्रोर जिस ा—
लाज नुटाई कृष्ण वश की,
कुरनुल की,
क्षत्नियत्व की,
ग्र म तस्करा, ग्राभीरा के ग ज प म।

२२

यह वज्र गजना कमी ?
सूय तिरोहित हुग्रा।
प्रलय के भय,
ग्रथवा य उल्कापात।
शा सहस्र पादिक ग्र ारथ
वउवाग्नि उठी क्या यहा ?
ग्रथवा मृत कौरव,
ुरक्षत्र भूमि की चिता गुनाग ी त्याग,
किगी दत्य स ग्र ाभशापि ा स,
पुनरुज्जीवित ह।,
कृष्ण सखा क गत होने पर,
मृत्युदूत, ग्रथवा मृत कौरव,
भिन्न भिन्न पुरुषाथ पा व स युद्ध करगा।
पुनरुज्जीवित हो,
कुरुक्षेत्र म निकन त्रिताप उन ा ु ा ुगो को कुनवन,
एक बार काजल को ग्रश्रुनीर से काजल दगी।

(भारतीय सरकार के विज्ञान मत्रालय मे भार ग्रहण करने के पश्चात आचायश्री के बालसखा डा० एस० एस० भटनागर ने आयुवद विज्ञान को नियमित और प्रामाणिक करने का भार उनपर डाला और विधान सभा मे पारित करने के लिए तत्सम्बन्धी एक अधिनियम बनाने का अनुरोध किया। आचायश्री ने बडे परिश्रम से अधिनियम तयार करके डा० भटनागर के पास भेज दिया था और वे इसका मनन कर ही रहे थे कि अकस्मात उनका देहावसान हो गया। आयुर्वेद-कल्याण के हिताथ आचायश्री के इस परिश्रम को प्रकाशित किया जा रहा हे।)

प्रस्तावित

भारतीय औषध निर्माण नियन्त्रण बोर्ड अधिनियम (बिल)

प्रस्तोता

आचार्य चतुरसेन

केन्द्रीय धारा विधानसभा की स्वीकृति के लिए

द्वारा

श्री डा० एस० एस० भटनागर

भारतीय औषध निर्माण नियन्त्रण बोर्ड

प्रस्तावना

आयुर्वेदिक औषधि शास्त्र अब से तीन हजार वर्ष पुराना है। उसमे पिछले पाच हजार वर्षों के उन सब गवेषणाओ और वैज्ञानिक आविष्कारो का परिपक्व रूप प्रकट है, जो रोम, मिश्र, चीन, यूनान, अरब, तिब्बत और भारतवर्ष मे समय समय पर विकसित होते रहे। वह एक प्रभावशाली व्यवहारिक शास्त्र है और उन प्राकृतिक गाथा के अति निकट है जो जीवशास्त्र और भौतिकशास्त्र से सम्बन्धित है। आयुर्वेदिक औषधि हजारो वर्षों से भारत के करोडो नर नारियो के जीवन की रक्षा करती आ रही है। वह सरल, नैसर्गिक और सुलभ सस्ती और सर्वथा हानिरहित है।

मुसलमानो एव अँग्रेजो के एक हजार वर्ष के राज्य काल मे उसके प्रति पूरी उपेक्षा रही और उसे तनिक भी राजाश्रय नही प्राप्त हुआ। फिर भी वह आज तक करोडो भारतीयो के जीवन की रक्षा करता चला आ रहा है। यदि आज आयुर्वेद चिकित्सा और औषध को बन्द कर दिया जाय तो सरकार अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी केवल एलोपैथिक चिकित्सा और औषधो के द्वारा भारत के सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा नही कर सकती।

दुर्भाग्य से आज भारत मे एक भी ऐसा औषध निर्माण करने वाली निर्माता फर्म नही है जहा शुद्ध और वैज्ञानिक शोध के द्वारा आयुर्वेदिक औषधि का निर्माण होता हो तथा वह सही और शुद्ध वैज्ञानिक रूप मे यथावत् सर्व साधारण को उपलब्ध हो। केवल यही नही, कि अनाडी और अनभिज्ञ वैद्य लोग मनमानी रीति पर उन औषधियोको पुराने और अपूर्ण तरीको पर तैयार करते और आमतौर पर सर्वसाधारण को ठगते है। अपितु इस समय देश मे जो बडी बडी आयुर्वेदिक औषधि निर्माण करने वाली फर्मे है, वे भी इन औषधियो को सर्वथा अवैज्ञानिक और पुराने तरीको पर बनाती और बेचती है। उनकी वैज्ञानिक प्रामाणिकता तथा शुद्ध वास्तविकता के परीक्षण का कोई उपाय नही है और इन कारणो से न केवल देश का करोडो रुपया झूठी और नकली दवाइयो की खरीद मे बर्बाद होता है, अपितु उनके सेवन से सर्वसाधारण को कोई लाभ नही होता, वरन् उन्हे अनेक हानिकारक परिणामो को भोगना पडता है, जो साधारणतया खतरनाक है और कभी कभी प्राणघातक भी हो जाते है।

ऐसी ही दशा यूनानी और तिब्बी दवाइयो की भी है। मुसलमानी राज्यकाल मे उसे प्रश्रय मिला, परन्तु अब उसकी दशा आयुर्वेदिक औषधि से भी बदतर हो गई

है। इससे आयुर्वेदिक औषधि की भांति भारत की जनता की हानि हो रही है। अब भारत की मुक्ति के बाद इन भारतीय औषध-शास्त्र और और औषध निर्माण को पूर्ण वैज्ञानिक और आधुनिकतम बनाना देश की सम्पूर्ण आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था को समुन्नत करने की अपेक्षा सर्वोपरि है। क्योंकि देश के करोड़ों नर नारियों के स्वास्थ्य और जीवन की रक्षा तथा सामूहिक स्वास्थ्य की उन्नति उनपर निर्भर है। यदि ये क्रियमाण औषधि शास्त्र वैज्ञानिक शोध के अनुसार आधुनिकतम नहीं किए गए तो निश्चय ही आगामी दस वर्षों में यह प्राचीन और उपयोगी विद्या समूल नष्ट हो जायगी और देश के करोड़ों नर नारियों को स्वस्थ और प्राकृत रूप में इन औषधियों के लाभ से वंचित रहकर विदेशी औषधि पर निर्भर रहना होगा, जो न केवल महंगी और स्वभाव विरुद्ध है अपितु सम्पूर्ण देश की आरोग्यरक्षा के लिए सर्वथा अपूर्ण है।

एक अधिनियम

क्योंकि यह उचित और आवश्यक है कि भारतीय औषध शास्त्र और औषध निर्माण को सर्वथा आधुनिकतम वैज्ञानिक आधारों पर व्यवस्थित करके सम्पूर्ण भारत में औषध निर्माता और विक्रेताओं को उसी के आधार पर औषध निर्माण करने तथा उक्त विधि पर निर्मित औषधों की ही बिक्री करने के लिए नियंत्रण में रखा जाए, इसलिए निम्नलिखित अधिनियम बनाया जाय।

भाग १

अध्याय १

आरम्भ

१—(क) यह अधिनियम 'भारतीय औषध निर्माण नियन्त्रण अधिनियम' कहलाएगा।

(ख) यह सारे भारतवर्ष पर लागू होगा।

(ग) इस अधिनियम का भाग १ उस तारीख से लागू होगा जिसे केन्द्रीय सरकार स्वीकृत कर सरकारी गजट में विज्ञप्ति देकर नियत करे। भाग १ के लागू होने की तारीख से दो वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भाग २ उस तारीख से लागू होगा जिसे केन्द्रीय सरकार धारा ५६ के अनुसार विज्ञप्ति द्वारा सूचित करे।

२— इस अधिनियम में जब तक कि कोई बात उसके विषय या संदर्भ के विपरीत न हो —

(क) बोर्ड का तात्पर्य 'भारतीय औषध निर्माण नियन्त्रण बोर्ड' से है, जो इस अधिनियम के आदेशों के आधीन बनाया गया हो।

(ख) 'अधिपति' का तात्पर्य बोर्ड के चेअरमैन से है।

(ग) 'भारतीय औषध' का तात्पर्य आयुर्वेदिक और यूनानी औषध शास्त्र से

हे, जिसमे प्राणी विज्ञान, बनस्पति विज्ञान, रसायन शास्त्र और रस-शास्त्र भी सम्मिलित है।

(घ) 'सदस्य' का तात्पय बोड के किसी सदस्य से है।

(ङ) 'निर्धारित' का तात्पर्य इस अधिनियम क आधीन बनाए हुए नियमो द्वारा निधारित से हे।

(च) 'सरकार' से तात्पय केन्द्रीय सरकार से है।

(छ) 'रजिस्टर' का तात्पय भारतीय औषध निमाताओ के उस रजिस्टर मे है, जो तत्सम्ब धी धारा के अधीन रखा जाय।

(ज) 'रजिस्टड ओषध निमाता" का तात्पय भारतीय औषध निमाता ऐसी सस्था से है, जिसका नाम इस अधिनियम क आदेशो के आधीन रजिस्टर मे दज हो।

(झ) 'रजिस्ट्रार' का तात्पय इस अधिनियम के आधीन नियुक्त किए गए रजिस्ट्रार से हे।

अध्याय २

बोड की स्थापना और सगठन

३—केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट मे विज्ञप्ति द्वारा उस विधि के अनुसार, जिसकी आगे चलकर व्यवस्था की गई हे, एक बोड जिसका नाम 'भारतीय औषध नियत्रण बोड' होगा, इस अधिनियम के उद्देश्यो को कार्यान्वित करने के लिए सस्थापित करेगी। बोड एक सभूयकारी (कारपोरेट) सस्था होगी, जिसका अनुक्रम निरतर चलता रहेगा और जिसके पास सभूयकारी सस्था की एक मुहर होगी। बोड उपरोक्त नाम से नालिश दायर कर सकेगा और इसी नाम से उस पर नालिश दायर हो सकेगी।

४—बोड मे १५ सदस्य होगे, जो निम्नलिखित रीति पर नियुक्त किए जावेगे।

(क) ऐसे वद्य और हकीम जिन्हे केन्द्रीय सरकार नामजद करेगी।

(ख) तीन ऐसे सदस्य जिन्हे केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत भारतीय औषध निर्माता सस्थाएँ निर्वाचित करे।

(ग) एक हाईकोट के जज।

(घ) एक वैज्ञानिक।

(ङ) एक डाक्टर (एलोपथिक)।

(च) एक केन्द्रीय धारासभा का सदस्य।

(छ) डाइरेक्टर जनरल।

(ज) डाइरेक्टर (एक्स ओफिशिओ)।

(ज) निर्वाचन नाम्य खण्ड (ग) के अधीन निर्धारित रीति के अनुसार किए जाएंगे।

५ बोर्ड के अधिपति 'डाइरेक्टर जनरल' तथा उप ।धि।ति ।। को अपने सदस्यो म से चुनेगा।

६—बोर्ड के सदस्य के पद की अवधि (जिसके अन्तगत उपअधिपति भी होगा) सदस्य के रूप म उसके निर्वाचित या नामजद होने के दिनाक से तीन साल की होगी। पद पर न रहने वाले उपअधिपति या सदस्य यदि अन्य प्रकार योग्य होगे तो उपअधिपति या सदस्य के रूप म फिर निर्वाचित किए जाने या नामजद किए जाने के अधिकारी होगे।

७— इस अध्याय म किसी बात के होते हुए भी भाग ४ के लागू होने के बाद सघठित प्रथम बोर्ड जिसके अन्तगत अधिपति भी होगा, केन्द्रीय सरकार द्वारा नामजद किया जायगा, और उनके पद की अवधि बा के सम्बन्ध म या उस समय से जिसे के ीय सरकार द्वारा आदिष्ट करे, दो साल की होगी।

८ (क) उपअधिपति या कोई भी सदस्य उसी समय ना अधिपति को पत्र भेज कर अपना पद त्याग कर सकते है। उक्त त्यागपत्र का प्रभाव उस दिनाक से होगा जब बा उसे स्वीकार करे।

(ख) यदि अधिपति त्यागपत्र देगा तो वह अपने लिखित त्यागपत्र को केन्द्रीय सरकार के पास भेजेगा।

(ग) त्यागपत्र का प्रभाव उस दिनाक से होगा जब उसकी स्वीकृति केन्द्रीय सरकार द्वारा सरकारी गजट म विज्ञप्ति की जाय।

(घ) अधिपति की अनुपस्थिति म उपअधिपति कार्यवाहक होगा।

९ (क) यदि बोर्ड का कोई सदस्य, उपअधिपति मर जाय या त्यागपत्र दे दे या उसी कारण से यथास्थिति सदस्य या उपअधिपति न रहे तो उस प्रकार उत्पन्न रिक्तता की पूर्ति यथास्थिति निर्वाचन या नामजदगी द्वारा ऐसी अवधि के भीतर जो निर्धारित की जाय, शेष अवधि के लिए की जायगी।

(ख) उप धारा (१) म निर्दिष्ट रिक्तता की पूर्ति के लिए निर्वाचित या नामजद सदस्य या उपअधिपति के पद की अवधि उस सदस्य या उपअधिपति की शेष पद अवधि होगी जिसके स्थान पर वह उक्त प्रकार निर्वाचित या नामजद किया गया हो। किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि यदि निर्वाचित या नामजद सदस्य की दशा म रिक्तता ६ मास या उससे कम के लिए हो तो बोर्ड या सरकार क्रमश यह आदेश दे सकती है कि उक्त रिक्तता की पूर्ति शेष अवधि के लिए न की जाय।

१०—(१) यदि कोई सदस्य, ऐसी अवधि के भीतर जिसके लिए वह नामजद था

निर्वाचित किया गया है—

(क) बोड की तीन लगातार साधारण मीटिगो मे बिना किसी उपयुक्त कारण अनुपस्थित होता हो, अथवा

(ख) धारा १७ मे कही गई किसी अयोग्यता के आधीन आ जाता हो, अथवा

(ग) बोड के विरुद्ध किसी दीवानी या फौजदारी मुकदमे या कारवाई मे कार्य करता हो, अथवा

(घ) बोड के आधीन कोई नियुक्ति (एम्प्लायमेट) प्राप्त करता या केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृतिके बिना साक्षात् या अन्यथा स्वय या किसी हिस्सेदार के द्वारा बोडके साथ उसके द्वारा या उसकी ओरसे किसी सविदा(काट्रेक्ट) मे कोई अश या हित (शेयर या इटरेस्ट) प्राप्त करता हो, तो बोर्ड उसे सदस्यता से हटा सकता है।

(२) किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि इस धारा के पूर्वोक्त उपबधो के आधीन यदि बोड कोई काय करना चाहता है तो तत्सम्बन्धी सदस्य को स्पष्टीकरण का अवसर दिया जायगा और यदि उक्त प्रकार का काय किया जाय तो उसके करने का कारण अभिलिखित किया जायगा।

११—(१) केन्द्रीय सरकार ऐसे अधिपति तथा सदस्य को हटा सकती है जिसने उसकी राय मे किसी ढग से अपने पद का ऐसी उद्दण्डता से दुरुपयोग किया हो जिससे उसका पद पर बना रहना सावजनिक हित के लिए हानिकारक हो जाय या जो अपने कतव्य के निष्पादन मे स्वभावत असफल रहा हो।

(२) किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि केन्द्रीय सरकार इस धाराके आधीन काय करना चाहे तो उस आचरण के स्पष्टीकरण के लिए अधिपति या उपअधिपति या सदस्य को अवसर देगी, जिसके कारण वह उसे हटाना चाहती हो। और यदि केन्द्रीय सरकार कोई काय इस सम्बन्ध मे करे तो ऐसा करने के कारण को अभिलिखित करेगी। इस सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार के निर्णय के विरुद्ध किसी अदालत मे कोई आक्षेप नही किया जा सकेगा।

(३) केन्द्रीय सरकार किसी ऐसे सदस्य या अधिपति या उपअधिपति को मुअत्तिल (सस्पड) कर सकती है, जिसके विरुद्ध सदस्य या अधिपति के रूप मे अपने पद का दुरुपयोग करने के सम्बन्ध मे किसी अदालत मे अथवा केन्द्रीय सरकार या बोर्ड की आज्ञाके आधीन जाच होरही हो। यह मुअत्तिली तब तक रहेगी जब तक यथास्थिति कानूनी कायवाही या जाच के बाद कोई अतिम आज्ञा पारित न हो जाय। उक्त सदस्य या अधिपति या उपअधिपति मुअत्तिली की अवधि मे बोड की किसी कायवाही मे भाग

नहीं न करेगा —

१२—अधिपति का कर्तव्य होगा कि

(क) जब तक इस अधिनियम में अन्यथा आदेश न हो या समुचित कारणों के आधार पर ऐसा करने से (उसे) रोका न जाय —

(१) वह बोर्ड की मीटिंग बुलाए तथा उसका सभापतित्व करे।

(२) वह और तरीके से बोर्ड की समस्त मीटिंगों में की जानेवाली कार्यवाहियों का किसी ऐसे विनियम (रेग्युलेशन) के अनुसार नियंत्रण करे जो इस सम्बन्ध में बनाए जाय।

(ख) बोर्ड के आर्थिक तथा शासनीय प्रबंध की देखरेख तथा नियंत्रण करे और उसमें जो कुछ दोष हों उन्हें बोर्ड के ध्यान में लाए।

(ग) ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करे, जिनके किए जाने का उस अधिनियम अथवा उसके अन्तर्गत बनाए गए नियमों के अधीन आदेश हो या जो इस अधिनियम या उक्त नियमों द्वारा उसे सौंपा गया हो।

१३—(१) बोर्ड अधिपति को यह आदेश दे सकता है कि वह उसे—

(क) बोर्ड के शासन प्रबन्ध से सम्बन्धित किसी मामले के बारे में कोई नक्शा, अनुमान, आंकड़े या अन्य सूचना दे।

(ख) उपरोक्त किसी मामले के सम्बन्ध में कोई रिपोर्ट दे या स्थिति विशेष का स्पष्टीकरण करे, और

(ग) किसी ऐसे रिकार्ड (कागज) पत्र-विनिमय या नक्शा या अन्य किसी लेख की प्रतिलिपि दे जो अधिपति होने के कारण उसके अधिकार या नियंत्रण में हो या जो बोर्ड के किसी कर्मचारी के विभाग में लेखबद्ध हो या दाखिल की गई हो।

(२) अधिपति अनुचित विलम्ब किए बिना ऐसी प्रत्येक माँग की पूर्ति करेगा जो उपधारा (१) के अधीन की जाए।

(३) इस धारा की किसी बात या इस धारा के अधीन किसी आदेश से यह न समझा जायगा कि वह बोर्ड को ऐसे विनियम (रेग्युलेशन्स) बनाने से रोकता है, जिसके द्वारा सदस्यों को उसकी मीटिंग में प्रश्न करने का अधिकार ऐसे प्रतिबन्धों तथा बन्धनों के अधीन दिया गया हो, जो उक्त नियमों या विनियमों (रेग्युलेशन्स) में निर्धारित किए जाएँ।

१४—(१) अधिपति साधारण या विशेष आज्ञा द्वारा धारा १२ के वाक्य खण्ड (क) और (ख) में वर्णित अधिकारों, कर्तव्यों या कार्यों को, जो उसके आधीन हों प्रयोग में लाने के लिए उपअधिपति (वाइस चेयरमेन) को अधिकृत

कर सकता है।

(२) उपधारा (१) के आधीन अधिपति द्वारा दी गई कोई आज्ञा किसी अधिकार को प्रयोग मे लाने किसी कर्तव्य को पालन करने या किसी कार्य के सम्पादित करने के सम्बन्ध मे कोई बन्धन नियत कर सकती है, तथा कोई प्रतिबन्ध लगा सकती है।

(३) विशेष रूप से ऐसी आज्ञा किसी ऐसे प्रतिबन्ध को निर्धारित कर सकती है कि उपधारा (१) द्वारा उसे प्राप्त किसी अधिकार को उपयोग मे लाते हुए उपअधिपति द्वारा दी गई कोई आज्ञा अधिपति द्वारा खडित या सशोधित की जा सकती है, जब नियत समय के भीतर उसके विरुद्ध अपील की जाय।

१५—उपअधिपति (वाइस चेयरमैन)

(क) बोर्ड की किसी मीटिंग मे अधिपति की अनुपस्थिति मे, यदि वह किसी उचित कारणवश ऐसा करने मे असमर्थ न हो, उस मीटिंग का सभापतित्व करेगा, उसकी कार्यवाहियो को नियमपूर्वक कराएगा और उसमे व्यवस्था बनाए रक्खेगा।

(ख) अधिपति का पद खाली रहने के समय मे या तो अधिपति की असमर्थता या अस्थायी अनुपस्थिति के समय मे वह अधिपति के किसी अन्य अधिकार या व्यवहार या कर्त्तव्य का पालन करेगा।

(ग) किसी भी समय अधिपति के किसी ऐसे कर्त्तव्य का पालन करेगा और जब कभी अवसर पडे उसके किसी ऐसे अधिकारका व्यवहार करेगा, जिसे अधिपति ने धारा (१४) के आधीन उसे सौंपा हो।

१६—यदि कोई चुनाव करने वाली सस्था, जिसका उल्लेख धारा ४ मे किया गया है, ऐसी तारीख तक जो निर्धारित की जाय, किसी रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए सदस्य या सदस्यो की आवश्यक सख्या न चुने तो केन्द्रीय सरकार को अधिकार होगा कि ऐसे रिक्त स्थान या स्थानो की पूर्ति किसी ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियो की नामजदगी करके करे, जो उस चुनाव की विशेष सस्था चुने जाने योग्य हो।

१७—कोई व्यक्ति बोर्ड का सदस्य होने या रहने या उसके लिए नामजद किए जाने के अयोग्य होगा यदि—

(क) उसे किसी फौजदारी की अदालत ने किसी ऐसे अपराध के लिए, जिसमे नैतिक पतन पाया जाय और जो बोर्ड की राय मे उसके चरित्र मे ऐसे दोष का सूचक हो, जिसके कारण उसका बोर्डमे कायम रहना अवाञ्छनीय

[illegible] नजरसानी [illegible], जिसे देने [illegible] सम्बन्ध [illegible],

(ख) [illegible] यह मौका दिया गया [illegible] पेश करे) ऐसे [illegible] और जिन्होंने [illegible] दुराचरण [illegible] है,

(ग) [illegible], या

(घ) [illegible] करार दे दिया हो,

(ङ) [illegible] व्यक्ति हो,

(च) [illegible] रोक दिया गया [illegible],

(छ) [illegible], जिस [illegible] उपहार स्वरूप या [illegible]

परन्तु [illegible] ( ) [illegible] ( ) [illegible] उस सम्बन्ध [illegible] जा सकती है।

१८ [illegible] सम्बन्ध में तथा [illegible] सदस्य अथवा अधिपति के [illegible]।

१९ (१) [illegible] दिए जायगे जो [illegible] मण्डल [illegible]।

(२) [illegible] जायगा।

परन्तु [illegible] को जाए।

अध्याय ३

[illegible]

२०--(१) [illegible] पर [illegible] होगा और उस की [illegible] अनुसार बुलाई जायगी, जिसके सम्बन्ध में बाद

द्वारा बनाए गए विनियमो (ऐयुलेशन्स) मे आदेश है।

(२) बोड की किसी मीटिग मे तब तक कोई कायवाही न की जायगी, जब तक कि उसमे पाच सदस्य उपस्थित न हो।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि जब कोरम को पूरा न होने के कारण किसी मीटिग की किसी कार्यवाही को स्थगित करना आवश्यक हो तो— अध्यक्ष अ‍न्य तारीख के लिए मीटिंग को स्थगित कर देगा और वह कार्यवाही जो कोरम के पूरा न होने से स्थगित कर दी जाय, बिना इस बात का विचार किए—कि उपस्थित सदस्योकी सख्या कम है, ऐसी अ‍न्य तारीख को या मीटिग को पुन किसी बाद की तारीख को स्थगित कर देने की दशा मे, ऐसी बाद की तारीख को की जायगी।

२१—यदि किसी मीटिग मे अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष उपस्थित न हो तो उपस्थित सदस्य अपने मे से एक सदस्य को अध्यक्ष चुन लेगे और ऐसा अध्यक्ष मीटिग का सभापतित्व करते समय बोड के समस्त कत्तव्यो का पालन करेगा और समस्त अधिकारो को काम मे ला सकता है।

२२—जब बोड की किसी मीटिंग मे कोई सदस्य अध्यक्ष की ऐसी किसी आज्ञा की अवहेलना करे, जिसके द्वारा वह किसी कार्यवाही अथवा वाद विवाद या विषय को नियम विरुद्ध घोषित करे अथवा किसी अ‍न्य रूप से सदस्यो के व्यवहार या कायवाही के चालन को अनियमित करे अथवा जबकि कोई सदस्य जानबूझकर मीटिग मे विघ्न डाले, तो अध्यक्ष को अधिकार होगा कि वह ऐसे सदस्य को मीटिग से चले जाने का हुक्म दे और उसके ऐसा न करने पर वह मीटिग से हटाने या निकालने के लिए उसके विरुद्ध ऐसी शक्ति का प्रयोग करे, जो आवश्यक हो वा जिसे वह नेकनीयती के साथ आवश्यक समझे।

२३—(१) ऐसे समस्त प्रश्न, जो बोड की किसी मीटिग के सामने आएँ, वोट देने वाले उपस्थित सदस्यो के बहुमत से निर्णय किए जायेगे।

(२) ऐसी दशा मे जबकि वोट बराबर हो, अध्यक्ष को एक दूसरा अथवा निर्णायात्मक वोट देने का अधिकार होगा।

२४—(१) बोर्ड की किसी मीटिग मे उपस्थित सदस्य के नाम, उनमे की गई कायवाही तथा स्वीकृत प्रस्ताव एक पुस्तक मे चढाए जायेगे, जिसे मिनट बुक कहा जायगा।

(२) पिछली कायवाही का लेखा उस मीटिग मे अथवा दूसरी होने वाली मीटिंग मे पढा जायगा और उन सदस्यो (या उनमे से अधिकाश) द्वारा, जो उसके पढते समय उपस्थित हो, उसके सही मान लिए जाने पर उस

मीटिंग का, जिसमें वह कार्यवाही स्वीकृत की गई हो, उसके प्रमाण स्वरूप कि वह स्वीकृत कर ली गई है अपना हस्ताक्षर कर देगा।

(२) बोर्ड की प्रत्येक मीटिंग की कार्यवाहियों की एक प्रतिलिपि मीटिंग होने की तारीख से १५ दिन के अन्दर केन्द्रीय सरकार अथवा इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा नियुक्त किए गए किसी अन्य अधिकारी (अधिकारियों) के पास भेजी जायगी।

२५—(१) उन नियमों के आधीन, जिन्हें केन्द्रीय सरकार ने इस प्रयोजन के लिए बनाया हो, बोर्ड किसी भी उद्देश्य के लिए, जिसके लिए इस अधिनियम में आदेश हो, इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव द्वारा एक ऐसी परामर्शदात्री या कार्यकारिणी कमेटी नियुक्त कर सकता है, जिसमें उतने ही सदस्य या ऐसे बाहरी व्यक्ति, जिन्हें उस उद्देश्य के लिए सम्मिलित किया गया हो या जाता होगे, जिनके सम्बन्ध में बोर्ड निर्णय करे और एक संयोजक नियुक्त कर सकता है, जो ऐसी कमेटी की मीटिंगों का सभापतित्व करेगा। संयोजक की अनुपस्थिति में कमेटी अपने सदस्यों में से किसी को इस उद्देश्य के लिए चुन सकती है।

(२) कमेटी की किसी मीटिंग के समक्ष आने वाले समस्त प्रश्न वोट देने वाले उपस्थित सदस्यों के बहुमत से निर्णय किए जायगे। ऐसी दशा में जबकि वोट बराबर हों, सभापतित्व करने वाले व्यक्ति को एक निर्णयात्मक वोट देने का अधिकार होगा।

(३) कमेटी की किसी बैठक में कोई कार्यवाही न की जायगी, जब उसमें दो से कम सदस्य या जिसके सदस्यों की संख्या कमेटी की, उसके एक चौथाई से कम सदस्य जो भी संख्या में अधिक हो, उपस्थित हो।

(४) प्रत्येक कमेटी की कार्यवाहियां बोर्ड के समक्ष रखी जायगी और बोर्ड को अधिकार होगा कि वह उन पर कोई भी कार्यवाही करे, जिसे वह आवश्यक समझे और कमेटी का यह कर्तव्य होगा कि वह बोर्ड के आदेशों का पालन करे।

२६ (१) बोर्ड अथवा कमेटी में कोई रिक्त स्थान होने के कारण बोर्ड अथवा ऐसी कमेटी की कोई कार्यवाही या काम अवैध न होगा।

(२) बोर्ड के सदस्य की हैसियत से अथवा किसी बैठक के अध्यक्ष या अध्यक्षता करने वाले अधिकारी की हैसियत से काम करने वाले किसी भी व्यक्ति की कोई अयोग्यता या उसके निर्वाचन या नामजदगी में किसी दोष के कारण बोर्ड की कोई कार्यवाही या काम के सम्बन्ध में, जिसमें ऐसे व्यक्ति

ने भाग लिया है यह न समझा जायगा कि वह कार्यवाही या काम अवैध है, यदि जिन सदस्यो ने उस कार्यवाही या काम मे भाग लिया था उनमे से अधिकाश ऐसे थे, जो नियमानुसार योग्यता रखते थे ।

अध्याय ५

बोर्ड के उद्देश्य और कार्य

२७—बोर्ड के नीचे लिखे उद्देश्य होगे —

(१) भारतीय औषध शास्त्र और औषध निर्माण विधि को आधुनिकतम पूर्ण वैज्ञानिक रूप देना ।

(२) भारतीय औषध शास्त्र और औषध विज्ञान को जनता के लिए शुद्ध वैज्ञानिक रूप मे प्रस्तुत करना ।

२८—बोर्ड के कार्य निम्नलिखित होगे —

(१) अन रजिस्टर्ड अप्रामाणिक और जाली औषध निर्माता और विक्रेता फर्मो तथा व्यक्तियो पर कानूनी रोक, नियन्त्रण और दण्ड ।

(२) प्रामाणिक भारतीय औषध निर्माण करने वाली फर्मो और व्यक्तियो को प्रमाण पत्र देना तथा रजिस्ट्री करना ।

(३) प्रामाणिक रजिस्टर्ड फर्मों तथा व्यक्तियो को माडर्न रीति पर औषध निर्माण के वैज्ञानिक तरीके सिखाना, औषध निर्माण करने की नवीन विधियो का आविष्कार करना तथा इन नवाविष्कृत रीति पर तैयारशुदा औषधियो को लखनऊ ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे परीक्षित कराकर प्रामाणिक होने पर उसी विधि तथा प्रक्रियाओ द्वारा सब रजिस्टर्ड स्वीकृत भारतीय औषध निर्माता फर्म और व्यक्ति औषध तयार करे तथा उन्हे लखनऊ ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे परीक्षित कराने तथा प्रमाण पत्र लेकर बेचने को विवश करना ।

(४) यदि ये फर्म और व्यक्ति ऐसा न करे तो उन्हे दण्ड देना ।

(५) भारतीय औषध-शास्त्र तथा बनस्पतियो की खोज के लिए एक रिसर्च विभाग स्थापित करना ।

(६) भारतीय औषधियो को आधुनिक वैज्ञानिक रीतिपर तैयार करने की विधि निर्णीत करने तथा औषध निर्माण के परीक्षण करने और फार्मूले स्थिर करने के लिए एक आधुनिकतम वैज्ञानिक साधनो से सुसज्जित लेबोरेटरी स्थापित करना ।

(७) आधुनिकतम वैज्ञानिक शोधके अनुसार भारतीय औषध निर्माणकी विधिया सिखानेके लिए एक ट्रेनिग स्कूल की दिल्लीया लखनऊमे स्थापना करना ।

(८) ट्रेनिंग मे शिक्षा प्राप्त स्नातको को प्रमाणपत्र देना ।

(९) प्रामाणिक भारतीय औषध निर्माता फर्म अथवा व्यक्तियो को केवल इन स्नातको तथा इन जैसे अन्य प्रामाणिक वैज्ञानिको की निगरानी मे औषध निर्माण करने की शर्त अनिवार्य करना ।

(१०) हिमालय या विन्ध्य प्रदेशमे भारतीय वनस्पतियोके उद्यान स्थापित करना और प्रसिद्ध और दुष्प्राप्य जडी बूटियो की खोज और उनके गुण दोषो की खोज कर उनके 'बोटानिकल' नामकरण करना ।

(११) आधुनिकतम वैज्ञानिक खोज के आधारोपर आयुर्वेदिक निघण्टु-शास्त्र और भारतीय औषधि शास्त्र का सशोधित सस्करण प्रकाशित करना ।

(१२) भारतीय औषधि शास्त्र तथा औषधिनिर्माण विषयक एक मासिक या त्रय मासिक गवेषणा पत्रिका भारतीय भाषाओ मे प्रकाशित करना ।

(१३) अन्य वे सब उपाय और साधन काममे लाना जिनसे भारतीय औषध निर्माण को वैज्ञानिक और सर्वजन उपयोगी बनाने मे सहायता मिल सके ।

अध्याय ६

कार्यो का विवरण और व्यवस्था

२९—बोर्ड एक रिसर्च विभाग स्थापित करेगा । जो—

(१) आयुर्वेदिक निघण्टु मे वर्णित वनस्पति और खनिज औषधियो के वैज्ञानिक आधार स्थापित करेगा जिसका प्रधान कार्यालय लखनऊ दिल्ली रहे ।

(२) प्रसिद्ध और दुष्प्राप्य औषधियो की खोज करेगा, तथा प्राप्त वनस्पतियो के बोटानिकल नामकरण करेगा ।

(३) खनिजो और रासायनिक द्रव्यो तथा रस शास्त्र की वैज्ञानिक आधारो पर जाच पडताल करेगा तथा अपने सिद्धान्त स्थिर करेगा ।

(४) विन्ध्य और उत्तरप्रदेश मे स्थापित वनस्पति उद्यानो पर नियन्त्रण रखेगा ।

(५) नवीन प्राप्त औषध के गुण दोषो का विवरण प्रकाशित करेगा ।

(६) गवेषणा सम्बन्धी मासिक तथा त्रय मासिक पत्रिका भारतीय भाषाओं मे प्रकाशित करेगा ।

३०—बोर्ड एक लेबोरेटरी दिल्ली या लखनऊ मे प्रकाशित करेगा —

(१) आयुर्वेदिक अधिकृत गणो आसव, अरिष्ट, वटी, गुटी, रस रसायन की आधुनिकतम वैज्ञानिक निर्माण विधि के परीक्षण किए जाएँगे तथा उपयुक्त औषधो के मिश्रित फार्मूले तथा विधियाँ निर्णीत की जावेगी ।

(२) यूनानी औषध शर्बत, खमीरा, अर्क आदि के सम्बन्ध मे भी उपधारा (१) के अनुसार व्यवहार होगा ।

(३) लेबोरेटरी दो भागोमे विभक्त रहेगी,जिसमे एक मे रसायन और दूसरी मे बानस्पतिक औषधो के फार्मूले निर्णीत किए जावेगे ।

३१—(१) बोड दिल्ली या लखनऊ मे एक ट्रेनिंग स्कूल की स्थापना करेगा। जिसमे बोड के द्वारा निर्णीत योग्यताओ के छात्रो को एक निर्धारित अवधि तक भारतीय भेषज निर्माण की शिक्षा लेनी पडेगी, तथा उत्तीर्ण होने पर बोड इन छात्रो को स्नातक होने का प्रमाणपत्र देगा ।

(२) इन प्रमाणपत्र प्राप्त स्नातको को बोड 'भिषकशास्त्री'की उपाधि देगा ।

३२—इन सब विभागो और कार्यो का सचालन और व्यवस्था एक डाइरेक्टर की आधीनता मे रहेगी । यह डाइरेक्टर बोड का (एक्सआफीशिओ) सदस्य रहेगा तथा बोड के प्रति उत्तरदायी रहेगा ।

अध्याय ७

कमचारी (स्टाक) और फर्मों की रजिस्ट्री

३३—(१) बोड को अधिकार होगा कि वह सरकार की पूव स्वीकृति से एक रजिस्ट्रार नियुक्त करे, जो बोड का सेक्रेटरी होगा । रजिस्ट्रार को ऐसा वेतन और भत्ते मिलेगे जो निर्धारित किए जाएँ । अध्यक्ष को अधिकार होगा कि वह उसे (रजिस्ट्रार को) समय समय पर छुट्टी दे और उसकी जगह काम करने के लिए अस्थायी रूप से किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करे । कोई भी व्यक्ति, जो रजिस्ट्रार की हैसियत से काम करने के लिए नियुक्त किया जाय, इस अधिनियम के समस्त प्रयोजनो के लिए रजिस्ट्रार समझा जायगा ।

(२) रजिस्ट्रार के नियुक्त करने, दण्ड देने या उसे अपने पद से हटाने के सम्बन्ध मे बोड की कोई भी आज्ञा केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के आधीन होगी ।

(३) बोड को अधिकार होगा कि वह ऐसे अफसर और नौकर नियुक्त करे, जो इस अधिनियम के प्रयोजनो को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हो ।

परन्तु प्रतिबन्ध यह भी है कि बोड के किसी भी अफसर या नौकर को दण्ड देने, पदच्युत करने, निकालने और हटाने के सम्बन्ध मे बोड के अधिकार, नियमो विनियमो (रूल्स, रेग्युलेशन्स) के अनुसार होगे ।

(४) कमचारियो के बारे मे भर्ती, तरक्कियो, छुट्टी, प्राविडेन्ट फन्ड और नौकरियो की अन्य शर्तों के सब मामले नियमो के अनुसार तय किए जाएगे ।

(५) इस धारा के आधीन नियुक्त किया हुआ रजिस्ट्रार या कोई अन्य अफसर या नौकर भारतीय दण्ड विधान (इन्डियन पैनल कोड की धारा २१) के

अन्तर्गत सरकारी नौकर (पब्लिक सर्वेन्ट) समझा जाएगा।

३४—(१) बोर्ड इस अधिनियम के लागू होने के बाद ज्यों ही सुविधाजनक मालूम हो और समय समय पर आवश्यकता के अनुसार भारतीय औषध निर्माताओं का एक रजिस्टर नियमित रूप से रखाने के लिए आदेश देगा।

(२) उक्त रजिस्टर उस रूप में रखा जाएगा, जैसा निर्धारित किया जाए।

३५—(१) इस अधिनियम के आदेशों की पाबन्दी के साथ और बोर्ड की साधारण या विशेष आज्ञाओं की पाबन्दी के साथ, रजिस्ट्रार का यह कर्तव्य होगा कि वह रजिस्टर रखे और ऐसे कामों का सम्पादन करे, जो इस अधिनियम के आधीन या राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार उसे सम्पादन करते हों।

(२) रजिस्ट्रार को उचित होगा कि वह, जहाँ तक व्यवहारसंभव हो, रजिस्टर को ठीक और पूर्णरूप से भरा हुआ रखे और समय समय पर उसमें निर्माताओं के पतों और योग्यताओं में आवश्यक परिवर्तन करे। उसे यह भी अधिकार होगा कि वह ऐसी रजिस्टर्ड फर्मों और व्यक्तियों का नाम रजिस्टर से निकाल दे जो रजिस्टर्ड फर्म के अनुरूप कार्य करने योग्य न रहें, दिवालिए हो जाएँ, या काम बन्द कर दें।

(३) राज्य सरकार यह आदेश दे सकती है कि अतिरिक्त योग्यताओं के सम्बन्ध में इन्दराजों में कोई परिवर्तन न किया जाएगा जब तक कि ऐसी फीस, जो निर्धारित की जाय, अदा न की जाए।

(४) इस धारा के प्रयोजन के लिए रजिस्ट्रार को अधिकार होगा कि वह किसी रजिस्टर्ड निर्माता को उस पते पर, जो रजिस्टर में दर्ज हो, यह जानने के लिए चिट्ठी लिखे कि उसने प्रैक्टिस करना बन्द तो नहीं कर दिया है या उसने अपना स्थान बदल तो नहीं दिया है और यदि तीन मास के भीतर उक्त चिट्ठी का कोई उत्तर न मिले तो रजिस्ट्रार एक उद्बोधक पत्र (रिमाइंडर) लिखेगा और यदि इस उद्बोधक पत्र के भेजने की तारीख से एक महीने के भीतर कोई उत्तर न आए तो उसे अधिकार होगा कि वह उक्त निर्माता का नाम रजिस्टर से निकाल दे।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि बोर्ड, यदि उचित समझे तो यह आदेश दे सकता है कि निर्माता का नाम रजिस्टर में फिर से लिख लिया जाय।

३६—(१) हरएक व्यक्ति और फर्म, जिसको परिशिष्ट में दी गई योग्यता प्राप्त है, इस अधिनियम में दिए हुए आदेशों के आधीन और ऐसी फीस देने पर, जो इस सम्बन्ध में निर्धारित की गई हो, रजिस्टर में ऐसी पाबन्दियों के साथ,

जिनको बोर्ड उचित समझे, अपना नाम लिखाने के अधिकारी होगे ।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि रजिस्टर मे नाम लिखने का किसी ऐसे व्यक्ति का प्रार्थना पत्र, जिसका मामला इस अधिनियम या इस अधिनियम के आधीन बने हुए नियमो तथा विनियमो के अन्तर्गत नही आता, बोर्ड के पास ऐसी कार्यवाही के लिए भेजा जाएगा, जिसे वह उचित समझे ।

(२) कोई व्यक्ति या फर्म, जिसे किसी व्यक्ति या फर्म का रजिस्टरी के सम्बन्ध मे या रजिस्टर मे कोई लेख लिखने या मिटाने के सम्बन्ध मे दिए गए रजिस्ट्रार के निर्णय से क्षति पहुँची हो, ऐसी रजिस्ट्री या लेख के ६० दिन के भीतर बोर्ड को अपील कर सकता है ।

(३) बोर्ड निर्धारित विधि के अनुसार ऐसी अपील की सुनवाई करेगा और उसपर निर्णय देगा ।

(४) बोर्ड को अधिकार होगा कि वह अपनी ओर से या किसी व्यक्ति के प्रार्थना पत्र पर और सम्बन्धित व्यक्ति से जवाब तलब करने और उस पर विचार करने के उपरान्त किसी लेख को काट दे या बदल दे, यदि बोर्ड के मत मे ऐसा लेख धोखा देकर या अशुद्ध लिखवाया गया हो ।

३२—बोर्ड को अधिकार होगा कि वह किसी भारतीय औषध बनाने वाली सस्था फर्म या व्यक्ति का जो रजिस्टर्ड हो या होना चाहे, प्रबन्धकारिणी समिति या अधिकारियो को यह आज्ञा दे कि वे—

(क) ऐसी रिपोर्ट, नक्शे, या दूसरी सूचना दे, जिसकी बोर्ड को इसलिए आवश्यकता हो कि वह इसकी जाँच कर सके कि इन सस्थाओ मे ठीक ठीक औषध निर्माण की वैसी ही व्यवस्था है, जैसी परिशिष्ट मे दी गई व्यवस्था है, तथा उसकी आर्थिक और प्रबन्ध सम्बन्धी दशा भी वैसी ही है ।

(ख) ऐसी फर्म, सस्था या व्यक्ति उपधारा (क) मे लिखित बातो की जाचपडतालके लिए जिस कर्मचारी को बोर्ड भेजे उसे उसके कार्यमे सुविधाएँ दे ।

३३—हरएक ऐसे व्यक्ति या फर्म को जो भारतीय औषध निर्माताओ के रजिस्टर मे अपना नाम रजिस्टर्ड कराने के लिए दर्खास्त दे, बोर्ड को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि उसकी प्रबन्ध व्यवस्था और आर्थिक स्थिति वैसी ही है, जिसका उल्लेख परिशिष्ट मे किया गया है, और उसके लिए यह आवश्यक है कि वह रजिस्ट्रार को उन सब बातो का सही विवरण बतावे जिसके आधार पर वह इस अधिनियम के आधीन रजिस्टर किए जाने का अधिकारी है, और रजिस्ट्रार को ऐसी कोई सूचना भी दे जो रजि-

द्वारा उससे मांग और जिससे वह अधिनियम के आधीन अपना कर्त्तव्य पालन कर सके।

३४—(१) हर एक ऐसे व्यक्ति या फर्म के लिए जो इस अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड हो, यह अनिवार्य होगा कि वह प्रत्येक औषध बोर्ड की लेबारेटरी में निर्धारित पद्धति पर बनाए और उसका एक प्रमाणपत्र लखनऊ ड्रग रिसर्च इन्स्टीटयूट से प्राप्त करले।

(२) बिना इस प्रमाणपत्र का प्राप्त किए कोई औषध वे औषधा निर्माता, जो इस अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्ट्री होंगे, बेच नहीं पावेगे।

(३) बोर्ड समय समय पर उपधारा (क) और (ख) में वर्णित बातों की जांच पड़ताल करने जो कर्मचारी भेजे उसे उसके कार्य में सहयोग देंगे।

३५—बोर्ड को अधिकार है कि वह किसी ऐसी फर्म या व्यक्ति का नाम रजिस्टर में दर्ज करने की मनाही करदे, या रजिस्टर से उसका नाम निकाल दिए जाने की आज्ञा दे दे—

(क) जिसको बोर्ड इसी कार्य के लिए नियुक्त कर्मचारियों की जांच पड़ताल के बाद असंतोषजनक, अपर्याप्त या अयोग्य समझे।

(ख) या जिसकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो।

(ग) या जिसे बोर्ड ने धारा ३६ के अनुसार अपराधी पाकर कैद या जुर्माने की सजा दी हो या जिसका माल जब्त कर लिया हो।

३६ (१) बोर्ड को अधिकार है कि वह ऐसे व्यक्ति या फर्म के मालिक और संचालक को जो चाहे इस अधिनियम के आधीन रजिस्टर्ड हो या रजिस्टर्ड न हो अनधिकृत रूप से औषध निर्माण करता रहे, उसे बोर्ड तीन मास का नोटिस दे कि वह अनधिकृत औषध बनाना बन्द करदे और यदि इस अधिनियमके आधीन उसने अपना नाम रजिस्ट्री नहीं कराया है तो करले।

(२) यदि वह फर्म या व्यक्ति नियत अवधि में ऐसा न करे तो बोर्ड उसे जुर्माना या कैद अथवा दोनों दण्ड दे सकता है। तथा अनधिकृत तैयार माल की जब्ती भी कर सकता है और फर्म पर काम बन्द करने की आज्ञा लागू कर उसपर अपनी सील लगा सकता है।

(३) बोर्ड अपने को संतुष्ट कर लेने के बाद—जबकि व्यक्ति या फर्म ने जो उपधारा (२) के अनुसार दण्डित होने पर व्यक्तिगत रूप से या किसी कौन्सिल वकील अटर्नी, प्लीडर के मार्फत उपस्थित होकर अपनी सफाई पेश करने के लिए अपील की हो और उन सदस्यों की संख्या दो तिहाई बहुमत से, जो उस मीटिंग में उपस्थित हो और जिन्होने अपना वोट दिया

हो, निर्दोष प्रमाणित हो तो उस व्यक्ति या फम का नाम रजिम्टर मे दुबारा दज करने का आदेश दे सकता है।

३७—(१) यदि कोई व्यक्ति या फम जो इस अधिनियम के आधीन रजिस्टड हो, यह प्रमाणित होने पर कि उसने अनविक्रृत औषध निमाण की या बेची है,अथवा निर्माण कर और बेच रहा है तो उसे ५ हजार रुपया तक जुर्माना अथवा तीन वष तक की कद या दोनो दण्ड और अनविकृत माल की जब्ती का दण्ड दिया जा सकेगा।

(२) यदि कोई व्यक्ति या फम अपना नाम इस अधिनियम के आधीन बिना रजिस्टड कराये औषध निर्माण या बिक्री करेगा उसपर भी उपधारा (१) का दण्ड लागू होगा।

(३) यदि कोई व्यक्ति या फम इस अधिनियम के आधीन उक्त रजिस्टर मे दज न होने पर भी झूठे तरीके से यह प्रकट करे और अपने नाम तथा कारबार मे ऐसे शब्दो या अक्षरो का प्रयोग करे जिससे यह प्रकट हो कि उसका नाम रजिस्टर मे दज है तो चाहे ऐसा करने से कोई व्यक्ति धोखा खाये या न खाये, उसको भी उपधारा (१) का दण्ड दिया जा सकेगा।

३८— धारा ३४ की उपधारा (३) के आधीन की जाने वाली किसी जाच के प्रयोजन के लिये बोड या कमेटी को, जैसी अवस्था हो, वही अधिकार प्राप्त होगे जो पब्लिक सर्वेन्टस इन्क्वारी ऐक्ट १९५० के आधीन नियुक्त कमिश्नर को प्राप्त होते हे, और उक्त अधिनियम की धारा ५, ८ से १० तक और १४ से १६ तक और १९ और २० तक की शर्तें, जितनी हो, ऐसी प्रत्येक जाच और अपील पर लागू होगी।

३९—(१) रजिस्ट्रार को मान्य होगा कि वह प्रति वष और समय समय पर जब आवश्यकता हो किसी ऐसी तारीख को या उससे पूव जो बोड इसके सम्बन्ध मे नियत करे, सरकारी गजट मे या किसी ऐसे ढग से जिसे बोड निधारित करे, रजिस्टर मे उस समय के लिए लिखित व्यक्ति तथा फर्म की पूण या पूरक सूची प्रकाशित करे और उसमे नीचे लिखी हुई बाते दी जायगी—

(क) रजिस्टर मे दज सब लोगो के नाम वर्गावलि के क्रम से लिखे जायेगे।

(ख) हर उस व्यक्ति का या फम का, जिसका नाम रजिस्टर मे दर्ज हो, रजिस्टर मे दज किया हुआ पता और व्यक्ति या फम की हैसियत का विवरण।

ग्रौर उसमे माग और जिसगे वह ग्रधिनियम के आधीन अपना कर्त्तव्य पालन कर सके ।

३४—(१) हर एक ऐसे व्यक्ति या फम के लिए जो इस अधिनियम के अ तगत रजिस्टर्ड हो, यह अनिवाय होगा कि वह प्रत्येक औषध बोड की लेबोरेटरी म निर्धारित पद्धति पर बनावे और उसका एक प्रमाणपत्र लखनऊ ड्रग रिसर्च इ स्टीटयूट से प्राप्त करले ।

(२) विना इस प्रमाणपत्र का प्राप्त किए कोई औषध वे ओषधा निर्माता, जो इस अधिनियम के अ तगत रजिस्ट्री होगे, बच नही पावगे ।

(३) बोड समय समय पर उपधारा (क) और (ख) मे वर्णित बातो की जाच पडताल करने जो कमचारी भेजे उमे उसके काय म सहयोग देगे ।

३५—बोड को अधिकार है कि वह किसी ऐसी फम या व्यक्ति का नाम रजिस्टर मे दज करने की मनाही करदे, या रजिस्टर स उसका नाम निकाल दिए जाने की आज्ञा दे दे—

(क) जिसको बोड इसी काय के लिए नियुक्त कमचारियो की जाच पडताल के बाद असन्तोषजनक, अपर्याप्त या अयोग्य समझे ।

(ख) या जिसकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो ।

(ग) या जिसे बोड ने धारा ३६ के अनुसार अपराधी पाकर कैद या जुर्माने की सजा दी हो या जिसका माल जब्त कर लिया हो ।

३६—(१) बोड को अधिकार है कि वह ऐसे व्यक्ति या फम के मालिक और सचालक को जो चाहे इस अधिनियम के आधीन रजिस्टड हो या रजिस्टड न हो अनधिकृत रूप से औषध निमाण करता रहे, उसे बोड तीन मास का नोटिस दे कि वह अनधिकृत औषध बनाना बन्द करदे और यदि इस अधिनियमके आधीन उसने अपना नाम रजिस्ट्री नही कराया है तो करले।

(२) यदि वह फम या व्यक्ति नियत अवधि म ऐसा न करे तो बोड उसे जुर्माना या कैद अथवा दोनो दण्ड दे सकता है । तथा अनधिकृत तैयार माल की जब्ती भी कर सकता है और फम पर काम बन्द करने की आज्ञा लागू कर उसपर अपनी सील लगा सकता है ।

(३) बोड अपने को सतुष्ठ कर लेने के बाद—जबकि व्यक्ति या फम ने जो उपधारा (२) के अनुसार दण्डित होने पर व्यक्तिगत रूप से या किसी कौन्सिल वकील-अटर्नी, प्लीडर के मार्फत उपस्थित होकर अपनी सफाई पेश करने के लिए अपील की हो और उन सदस्यो की सख्या दो तिहाई बहुमत से, जो उस मीटिंग म उपस्थित हो और जिन्होने अपना वोट दिया

हो, निर्दोष प्रमाणित हो तो उस व्यक्ति या फर्म का नाम रजिस्टर मे दुबारा दर्ज करने का आदेश दे सकता है ।

३७—(१) यदि कोई व्यक्ति या फर्म जो इस अधिनियम के आधीन रजिस्टर्ड हो, यह प्रमाणित होने पर कि उसने अनधिकृत औषध निर्माण की या बेची है,अथवा निर्माण कर और बेच रहा है तो उसे ५ हजार रुपया तक जुर्माना अथवा तीन वर्ष तक की कैद या दोनो दण्ड और अनधिकृत माल की जब्ती का दण्ड दिया जा सकेगा ।

(२) यदि कोई व्यक्ति या फर्म अपना नाम इस अधिनियम के आधीन बिना रजिस्टर्ड कराये औषध निर्माण या बिक्री करेगा उसपर भी उपधारा (१) का दण्ड लागू होगा ।

(३) यदि कोई व्यक्ति या फर्म इस अधिनियम के आधीन उक्त रजिस्टर मे दर्ज न होने पर भी झूठे तरीके से यह प्रकट करे और अपने नाम तथा कारबार मे ऐसे शब्दो या अक्षरो का प्रयोग करे जिससे यह प्रकट हो कि उसका नाम रजिस्टर मे दर्ज है तो चाहे ऐसा करने से कोई व्यक्ति धोखा खाये या न खाये, उसको भी उपधारा (१) का दण्ड दिया जा सकेगा ।

३८—धारा ३४ की उपधारा (३) के आधीन की जाने वाली किसी जाच के प्रयोजन के लिये बोर्ड या कमेटी को, जैसी अवस्था हो, वही अधिकार प्राप्त होगे जो पब्लिक सर्वेन्टस इन्क्वारी ऐक्ट १९५० के आधीन नियुक्त कमिश्नर को प्राप्त होते है, और उक्त अधिनियम की धारा ५, ८ से १० तक और १४ से १६ तक और १९ और २० तक की शर्तें, जितनी हो, ऐसी प्रत्येक जाच और अपील पर लागू होगी ।

३९—(१) रजिस्ट्रार को मान्य होगा कि वह प्रति वर्ष और समय समय पर जब आवश्यकता हो किसी ऐसी तारीख को या उससे पूर्व जो बोर्ड इसके सम्बन्ध मे नियत करे, सरकारी गजट मे या किसी ऐसे ढग से जिसे बोर्ड निर्धारित करे, रजिस्टर मे उस समय के लिए लिखित व्यक्ति तथा फर्म की पूर्ण या पूरक सूची प्रकाशित करे और उसमे नीचे लिखी हुई बाते दी जायगी—

(क) रजिस्टर मे दर्ज सब लोगो के नाम वर्णावलि के क्रम से लिखे जायेगे ।

(ख) हर उस व्यक्ति का या फर्म का, जिसका नाम रजिस्टर मे दर्ज हो, रजिस्टर मे दर्ज किया हुआ पता और व्यक्ति या फर्म की हैसियत का विवरण ।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि रजिस्ट्रार समय समय पर सरकारी गजट में ऐसे व्यक्ति या फर्मों के नाम जिनका नाम इस अधिनियम की किसी शर्त से नियमानुसार हटा दिया गया हो, प्रकाशित करेगा।

(२) किसी कार्यवाही में यह समझा जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति या फर्म जिसका नाम ऐसी सूची में दर्ज है वह रजिस्टर्ड फर्म या निर्माता है और कोई व्यक्ति या फर्म जिसका नाम इस प्रकार दर्ज नहीं है वह रजिस्टर्ड निर्माता फर्म या व्यक्ति नहीं है।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे निर्माता व्यक्ति या फर्म की अवस्था जिसका नाम अंतिम सूची के प्रकाशित होने के बाद रजिस्टर में दर्ज हुआ है, नाम के इन्दराज की एक प्रमाणित प्रतिलिपि, जिसपर रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर हों, इस बात का प्रमाण होगी कि, उस व्यक्ति का नाम इस अधिनियम के आधीन रजिस्टर्ड है। ऐसा प्रमाणपत्र निःशुल्क दिया जायगा।

अध्याय ५

डाइरेक्टर, उसका स्टाफ और उसके द्वारा संचालित संस्थाएं

४०—(१) बोर्ड को अधिकार होगा कि वह केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति से एक डाइरेक्टर की नियुक्ति करे, जो बोर्ड की इस अधिनियम में वर्णित संस्थाओं का संचालन और व्यवस्था करे और संचालित संस्थाओं का सर्वोपरि अधिकारी हो, तथा बोर्ड का (एक्स आफीसियो) सदस्य भी हो। डाइरेक्टर को ऐसा वेतन और भत्ते मिलेंगे जो निर्धारित किए जाएं। अध्यक्ष को अधिकार होगा कि वह उसे (डाइरेक्टर को) समय समय पर छुट्टी दे और उसकी जगह काम करने के लिए अस्थाई रूपसे किसी अन्य व्यक्ति को नियत करे। कोई भी व्यक्ति, जो डाइरेक्टर की हैसियत से काम करने के लिए नियुक्त किया जाय, इस अधिनियम की समस्त संस्थाओं और उनके प्रयोजनों के लिए संचालक समझा जाएगा।

(२) डाइरेक्टर को नियुक्त करने, दण्ड देने या अपने पद से हटाने के सम्बन्ध में बोर्ड की कोई भी आज्ञा केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के आधीन होगी।

(३) डाइरेक्टर को अधिकार होगा कि वह ऐसे अफसर, और कर्मचारी नियुक्त करे, जो इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हों।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे अफसरों और नौकरों की संख्या, पद, वेतन और भत्ता बोर्ड की पूर्व स्वीकृति से नियत किए जाएंगे।

परन्तु प्रतिबन्ध यह भी है कि ऐसे किसी भी अफसर या नौकर को दण्ड देने, पदच्युत करने, निकालने और हटाने के सम्बन्ध मे बोर्ड के अधिकार नियमो तथा विनियमो (रूल्स एण्ड ऐग्यूलेशन्स) के अनुसार होगे।

(४) अफसरो और कर्मचारियो के बारे मे भर्ती, तरक्किया, छुट्टी, प्राविडेन्ड फण्ड और नौकरियो की अन्य शर्तों के सब मामले नियमो के अनुसार तय किए जाएगे।

(५) इस धारा के आधीन नियुक्त किया हुआ डाइरेक्टर या अन्य कोई अफसर या कर्मचारी या नौकर भारतीय दण्ड विधान की धारा २१ के अन्तर्गत सरकारी नौकर (पब्लिक सर्वेन्ट) समझे जायेगे।

४१—(१) इस अधिनियम के लागू होने के बाद बोर्ड के आदेशो पर जैसे जैसे सुविधा होगी और समय-समय पर आवश्यकताके अनुसार डाइरेक्टर उन संस्थाओ की स्थापना और व्यवस्था करता चला जायगा जो सम्भव हो।

(२) उक्त संस्थाएं उसी रूप मे चालित होगी, जैसा निर्धारित किया जाए।

४१—(१) अधिनियमके आदेशो की पाबन्दीके साथ और बोर्ड की साधारण या विशेष आज्ञाओ की पाबन्दी के साथ, डाइरेक्टर का यह कर्तव्य होगा कि वह व्यवस्थित रूप से ऐसे सब कामो का सम्पादन करे, जो उन संस्थाओ को ठीक-ठीक चलाए रहने मे सहायक हो, जिन्हे इस अधिनियम मे स्वीकृत किया गया है तथा इस अधिनियम के आधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए अधिनियमो के अनुसार उसे सम्पादन करने हो।

(२) डाइरेक्टर को यह उचित होगा कि वह इन संस्थाओ के कार्यकलाप यथा सम्भव ठीक-ठीक पूर्णरूपसे लिखित रखे तथा समय समय पर कार्यकलापो की प्रगति की नई नई योजनाओ को बोर्ड के समक्ष रखता रहे तथा संस्थाओ की सफलता के लिए आवश्यक परिवर्तन करे।

४२—डाइरेक्टर की आधीनता मे एक लेबोरेटरी स्थापित की जाएगी, जहा भारतीय औषध निर्माण सम्बन्धी परीक्षण आधुनिक वैज्ञानिक आधारो पर किए जाएगे। लेबोरेटरी पाच विभागो मे विभक्त होगी—

(१) आयुर्वेदिक बनस्पतियो तथा अविकृत गणो और नुसखो के परिष्कार और संशोधन एवं आधुनिकीकरण के लिए।

(२) आयुर्वेदिक रस-रसायनो के परीक्षण तथा आधुनिक विधि से निर्माण करने की विधि निश्चित करने के लिए।

(३) यूनानी औषध निर्माण और खोज की आधुनिकीकरण के लिए।

(४) उपर्युक्त तीनो विभागो द्वारा परीक्षित तथा निर्मित औषध की रासायनिक

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि रजिस्ट्रार समय समय पर सरकारी गजट मे ऐसे व्यक्ति या फर्मों के नाम जिनका नाम इस अधिनियम की किसी शर्त से नियमानुसार हटा दिया गया हो, प्रकाशित करेगा।

(२) किसी कार्यवाही मे यह समझा जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति या फर्म जिसका नाम ऐसी सूची मे दर्ज है वह रजिस्टर्ड फर्म या निर्माता है और कोई व्यक्ति या फर्म जिसका नाम इस प्रकार दर्ज नही है, वह रजिस्टर्ड निर्माता फर्म या व्यक्ति नहीं है।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे निर्माता व्यक्ति या फर्म की अवस्था जिसका नाम अंतिम सूची के प्रकाशित होने के बाद रजिस्टर मे दर्ज हुआ है, नाम के इन्दराज की एक प्रमाणित प्रतिलिपि, जिसपर रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर हो, इस बात का प्रमाण होगी कि, उस व्यक्ति का नाम इस अधिनियम के आधीन रजिस्टर्ड है। ऐसा प्रमाणपत्र नि शुल्क दिया जायगा।

अध्याय ५

डाइरेक्टर, उसका स्टाफ और उसके द्वारा सचालित सस्थाऐ

८०—(१) बोर्ड का अधिकार होगा कि वह केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति से एक डाइरेक्टर की नियुक्ति करे,जो बोर्ड की इस अधिनियम मे वर्णित सस्थाओ का सचालन और व्यवस्था करे और सचालित सस्थाओ का सर्वोपरि अधिकारी हो,तथा बोर्ड का (एक्स आफीसियो) सदस्य भी हो। डाइरेक्टर को ऐसा वेतन और भत्ते मिलेगे जो निर्धारित किए जाए। अध्यक्ष को अधिकार होगा कि वह उसे(डाइरेक्टर को)समय समय पर छुट्टी दे और उसकी जगह काम करने के लिए अस्थाई रूपसे किसी अन्य व्यक्ति को नियत करे। कोई भी व्यक्ति, जो डाइरेक्टर की हैसियत से काम करने के लिए नियुक्त किया जाय इस अधिनियम की समस्त सस्थाओ और उनके प्रयोजनो के लिए सचालक समझा जायगा।

(२) डाइरेक्टर को नियुक्त करने,दण्ड देने या अपने पद से हटाने के सम्बन्ध मे बोर्ड की कोई भी आज्ञा केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के आधीन होगी।

(३) डाइरेक्टर को अधिकार होगा कि वह ऐसे अफसर, और कर्मचारी नियुक्त करे, जो इस अधिनियम के प्रयोजनो को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक हो।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे अफसरो और नौकरो की सख्या,पद, वेतन और भत्ता बोर्ड की पूर्व स्वीकृति से नियत किए जाएगे।

परन्तु प्रतिबन्ध यह भी है कि ऐसे किसी भी अफसर या नौकर को दण्ड देने, पदच्युत करने, निकालने और हटाने के सम्बन्ध मे बोर्ड के अधिकार नियमो तथा विनियमो (रूल्स एण्ड रेग्यूलेशन्स) के अनुसार होगे।

(४) अफसरो और कर्मचारियो के बारे मे भर्ती, तरक्किया, छुट्टी, प्राविडेण्ड फण्ड और नौकरियो की अन्य शर्तों के सब मामले नियमो के अनुसार तय किए जाएगे।

(५) इस धारा के आधीन नियुक्त किया हुआ डाइरेक्टर या अन्य कोई अफसर या कर्मचारी या नौकर भारतीय दण्ड विधान की धारा २१ के अन्तर्गत सरकारी नौकर (पब्लिक सर्वेन्ट) समझे जायेगे।

४१—(१) इस अधिनियम के लागू होने के बाद बोर्ड के आदेशो पर जैसे जैसे सुविधा होगी और समय समय पर आवश्यकताके अनुसार डाइरेक्टर उन संस्थाओ की स्थापना और व्यवस्था करता चला जायगा जो सम्भव हो।

(२) उक्त संस्थाएं उसी रूप मे चालित होगी, जैसा निर्धारित किया जाए।

४१—(१) अधिनियमके आदेशो की पाबन्दीके साथ और बोर्ड की साधारण या विशेष आज्ञाओ की पाबन्दी के साथ, डाइरेक्टर का यह कर्तव्य होगा कि वह व्यवस्थित रूप से ऐसे सब कामो का सम्पादन करे, जो उन संस्थाओ को ठीक ठीक चलाए रहने मे सहायक हो, जिन्हे इस अधिनियम मे स्वीकृत किया गया है तथा इस अधिनियम के आधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए अधिनियमो के अनुसार उसे सम्पादन करने हो।

(२) डाइरेक्टर को यह उचित होगा कि वह इन संस्थाओ के कार्यकलाप यथा सम्भव ठीक ठीक पूर्णरूपसे लिखित रखे तथा समय समय पर कार्यकलापो की प्रगति की नई नई योजनाओ को बोर्ड के समक्ष रखता रहे तथा संस्थाओ की सफलता के लिए आवश्यक परिवर्तन करे।

४२—डाइरेक्टर की आधीनता मे एक लेबोरेटरी स्थापित की जाएगी, जहा भारतीय औषध निर्माण सम्बन्धी परीक्षण आधुनिक वैज्ञानिक आधारो पर किए जाएगे। लेबोरेटरी पाच विभागो मे विभक्त होगी—

(१) आयुर्वेदिक बनस्पतियो तथा अविकृत गणो और नुसखो के परिष्कार और संशोधन एव आधुनिकीकरण के लिए।

(२) आयुर्वेदिक रस-रसायनो के परीक्षण तथा आधुनिक विधि से निर्माण करने की विधि निश्चित करने के लिए।

(३) यूनानी औषध निर्माण और खोज की आधुनिकीकरण के लिए।

(४) उपर्युक्त तीनो विभागो द्वारा परीक्षित तथा निर्मित औषध की रासायनिक

परीक्षण के लिए।

(४) उपयुक्त रासायनिक परीक्षणों पर प्रमाणित औषधियों को प्राणियों पर प्रयोग कर उपयोगी सिद्ध करने के लिए।

४३—(१) उपयुक्त लेबोरेटरी के पाचों विभाग एक आफिसर की अधीनता मे होंगे जो पृथक् पृथक् विभागों के रासायनिकों, कर्मचारियों और नौकरों की सब प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्था रखेगा। यह अफसर हेड आफ डिपार्टमेन्ट कहलाएगा, इसकी अधीनता में निम्न कर्मचारी होंगे—

१—प्रधान वैद्य

२—रासायनिक

३—रस वैद्य

४—प्राणी विज्ञान का विशेषज्ञ

५—स्टोरकीपर

कर्मचारी, सेवक और गवेषणा करनेवाले।

(२) इन सब कर्मचारियों के वेतन, भत्ता, छुट्टी नियुक्ति और मुक्ति उपयुक्त हेड आफ डिपार्टमेन्ट डाइरेक्टर की पूर्व स्वीकृति से करेगा, तथा लेबोरेटरी के संचालन, हिसाब-किताब, व्यवस्था आदि सब अपने सहायकों की सहायता से रखेगा।

(३) इसी के अधीन विन्ध्यप्रदेश और हिमाचलप्रदेश में वनस्पति उद्यान भी रहेंगे, जिनकी देखभाल, व्यवस्था और सुदशा का वह खयाल रखेगा।

४५—बोर्ड के अधिनियमों के अनुसार डाइरेक्टर एक खोज विभाग की स्थापना करेगा, जिसकी देखभाल वह स्वयं करेगा। इस विभाग का कार्य इस प्रकार होगा—

(१) आयुर्वेदिक निघण्टु शास्त्र का नूतनीकरण आधुनिक वनस्पति शास्त्र के आधारों पर।

(२) रसशास्त्र और रसायनशास्त्र को आधुनिक, वैज्ञानिक परिधान देना।

(३) प्राचीन प्रयोगों और ग्रन्थों को, जिनका सम्बन्ध भारतीय औषधशास्त्र से है, छानबीन कर उनका आधुनिकीकरण करना।

(४) एक त्रयमासिक खोजसम्बन्धी पत्रिका भारतीय भाषाओं में प्रकाशित करना।

४६—बोर्ड दिल्ली या लखनऊ में एक ऐसे ट्रेनिंगस्कूल की स्थापना करेगा, जिसमें आधुनिक रीतियों पर भारतीय औषध-निर्माण विधि तथा चिकित्सा रसायन की शिक्षा दी जायगी।

(१) इस स्कूल की देखरेख और व्यवस्था डाइरेक्टर के अधीन होगी।

(२) डाइरेक्टर इस स्कूल के अध्यापकों, कर्मचारियों और छात्रोंको उन नियमों

और उपनियमोके आधीन रख और निकाल सकेगा जो बोड द्वारा नियत हो।

(३) प्रत्येक छात्र जो इस ट्रेनिग स्कूल मे प्रविष्ट होना चाहेगे, उनकी भर्ती रजिष्ट्रार करेगा, तथा उत्तीण छात्रो को डिग्री डिप्लोमा अपने हस्ताक्षर से देगा। तथा उनका एक रजिस्टर रखेगा। छात्रोकी भर्ती की तिथि परीक्षा तिथि तथा उत्तीण छात्रो की सूची यथानियम यथासमय सरकारी गजट तथा सामयिक पत्रो मे प्रकाशित करेगा। रजिस्ट्रार यह भी देखेगा कि छात्रो ने उन नियमो का यथावत पालन किया हे या नही जो उनके भर्ती होने तथा डिप्लोमा प्राप्त करनेके लिए बोड द्वारा निर्धारित किए गए है। उसे यह भी अधिकार होगा कि वह उपयुक्त कारण होने पर किसी भी छात्र को भर्ती करने या परीक्षा मे सम्मिलित होने से रोक दे।

(४) ट्रेनिग स्कूल मे निम्नलिखित छात्र प्रवेशिका परीक्षा देने के बाद उतीण होने पर बैठ सकते है—

(क) वे जिहोने विज्ञानसहित कम से कम इन्टरमीडीएट पास किया हो तथा जिन्हे हिन्दी और सस्कृत का उपयुक्त ज्ञान भी हो।

(ख) वे जिन्होने किसी भी प्रमाणित सस्था से आयुर्वेदिक या तिब्बी सर्वोच्च शिक्षा पाई हो और डिग्री ली हो, तथा अग्रेजीम मट्रिक तक की योग्यता रखते हो।

(ग) वे जिन्होने किसी भी औषध निर्माण करनेवाली सस्था मे या किसी वैज्ञानिक लेबोरेटरीमे कम से कम छ वष काय करके व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त किया हो तथा जिन्हे अग्रेजी हिन्दी, सस्कृत तथा उदूका उपयुक्त ज्ञान हो।

(घ) किसी भी छात्र की अवस्था २८ वष से अधिक नही होनी चाहिए।

७४—(१) प्रत्येक छात्र वह फीस और खर्चा अदा करेगा जो बोडके बनाए या बनाए जाने वाले नियमो तथा उपनियमो मे वर्णित हो।

(१) उसे स्कूल के नियमो और विधानो को मानना तथा उनका पालन करना पडेगा।

४८—(१) ट्रनिग की अवधि एक वष होगी।

(१) छात्रो की त्रयमासिक परीक्षाए होगी। अन्तिम परीक्षा फरवरी मे होगी तथा परिणाम माच मे प्रकट हो जाया करेगा।

(३) अप्रेल से नया साल चालू होगा।

(४) परीक्षा मे वे नियम पालन किए जाएेगे जो बोर्ड इस सम्बन्ध मे स्वीकृत करेगा।

(५) अनुत्तीण छात्र अनुत्तीण विषयो मे तीन मास बाद विशेष फीस दाखिल

करके फिर परीक्षा मे बैठ सकेगे।

(६) उत्तीर्ण स्नातकों को डिप्लोमा तथा प्रमाणपत्र मिलेगा, तथा बोर्ड प्रामाणिक औषध निर्माता फर्मा मे इन स्नातकों को निर्माण की देखभाल करने की शिफारिश करेगा, जहाँ उन्हे ३००) रु० तक वेतन भत्ता के अतिरिक्त मिलेगा।

४६—(१) डाइरेक्टर को यह अधिकार होगा कि वह स्कूल के नियमो उपनियमो मे फेरफार करे, जिसकी वह आवश्यकता समझे और उसकी परिस्थिति और कार्यकारिता को बोर्ड के सम्मुख समय समय पर रखता रहे।

(२) वह (डाइरेक्टर) स्कूल के अध्यापकों, तथा कर्मचारियों को छुट्टी देने, भर्ती करने, तरक्की देने प्राविडेंट फण्ड आदि बात नियमो के अनुसार अमल मे लावेगा।

अध्याय ५

बोर्ड के अधिकार और आय व्यय

५०—बोर्ड के अधिकार निम्नलिखित होंगे—

(१) भारतीय औषध निर्माता फर्मों और व्यक्तियों को रजिस्टर्ड करना।

(२) उन्हे आधुनिकतम वैज्ञानिक औषध निर्माण की विधि बताना।

(३) उन्हे केवल उसी विधि पर बनाई और परीक्षित औषध बेचने और बनाने देना।

(४) अनधिकृत और गैररजिस्टर्ड फर्मों और व्यक्तियों को भारतीय औषध बनाने और बेचने पर प्रतिबंध रखना।

(५) जो अधिनियम के अनुसार ऐसी फर्मा तथा व्यक्तियों को दण्ड देना जो इसके अधिकारी हो।

(६) अधिनियम मे अंकित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक खोज विभाग वनस्पति विभाग एक लेबोरेटरी और एक ट्रेनिंग स्कूल स्थापित करना तथा संचालन करना।

(७) ट्रेनिंग स्कूल के स्नातकों को प्रमाणपत्र और डिग्री देना, तथा इस कार्य के लिए पाठ्यक्रम बनाना।

(८) विद्यार्थियों तथा रजिस्टर्ड होने वाले व्यक्तियों तथा फर्मों से ऐसा शुल्क मांगना और प्राप्त करना जो बोर्ड की परीक्षाए, ट्रेनिंग स्कूल एवं रजिस्टर्ड होने के लिए निर्धारित हो।

(६) ट्रेनिंग स्कूल के विद्यार्थियों के रहन सहन और अनुशासन के प्रबन्ध की देखरेख करना और उनके स्वास्थ्य और साधारण भलाई की उन्नति के

लिए प्रब ध करना ।

(१०) परीक्षको को नियुक्त करना और उन परीक्षाओ के परीक्षा फल प्रकाशित करना, जो बोड ले ।

(११) किसी ऐसी फम का व्यक्ति की रजिस्ट्री की स्वीकृति का स्थगित करना या वापस लेना, जिसका प्रबन्ध इस अधिनियम मे या उसके आधीन बनाए गए नियमो मे निर्धारित शर्तो के अनुसार न हो रहा हो ।

पर तु प्रतिब ध यह है कि किसी ऐसी फम या व्यक्ति की प्रब ध कारिणी या प्रतिनिधि को कोई ऐसा प्राथनापत्र प्रस्तुत करने का, जिसे वह उचित समझे, अवसर दिए बिना कोई ऐसी कायवाही न की जायगी ।

(१२) भारतीय औषध निर्माता सस्थाओ और व्यक्तियो के निरीक्षण के लिए इ सपेक्टरो की नियुक्त करना ।

(१३) इस अधिनियम के उद्देश्यो के प्रसार के लिए ऐसे कार्यो का करना जो इस अधिनियम के उपब धो के प्रतिकूल न हो ।

५१—(१) बोड प्रत्येक वष ऐसी तारीख के पूव, जो इस सम्बन्ध मे नियमो के अनुसार निर्धारित की जाय और उक्त तारीख के बाद अगले ३१ माच को समाप्त होने वाले वष के सम्ब न्ध मे, वास्तविक आय और सक्षिप्त प्राप्तियो तथा व्ययों का पूरा पूरा विवरण और उसके साथ ही आगामी १ अप्रल से प्रारम्भ होने वाले वष के सम्ब ध मे एक वजट, जिसमे बोड की आय और व्यय का आनुमानिक विवरण दिया गया हो, तयार करायगा और बैठक के सामने प्रस्तुत कराएगा ।

(२) ऐसी मीटिग मे बोड विशेष काय के लिए निर्दिष्ट धन और आनुमानिक बजट मे दिए हुए साधनो को तय करेगा और बजट को स्वीकार करेगा, जो केन्द्रीय सरकार के पास या ऐसे अधिकारी के पास जिसको के द्रीय सरकार आदेश दे, उस मीटिग के पन्द्रह दिन के अ दर, जिसमे वजट पास हुआ हो, भेजा जायगा ।

(३) बोड समान शर्तों के आधीन समय समय पर अवस्थानुसार, जैसा करना उपयुक्त समझे, उपधारा (२) के आधीन स्वीकृत वजट को परिवर्तित कर सकता हे ।

५२—अक्टूबर के बाद जितना शीघ्र हो सके, वष के लिए सशोधित वजट तैयार किया जायगा और ऐसे सशोधित वजट पर जहा तक हो सकेगा, धारा ५१ के आधीन बने हुए वजट पर लागू होने वाली शर्तें लागू होगी ।

५३—एक भारतीय औषध निर्माण नियन्त्रण फण्ड स्थापित किया जायगा और उसमे

रखी जायगी —

(क) केन्द्रीय सरकार से प्राप्त ग्रान्ट और ऋण।

(ख) रजिस्ट्री और ट्रेनिंग स्कूल एवं परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिए बोर्ड द्वारा प्राप्त सभी फीस।

(ग) अन्य अयाचित आकस्मिक आय।

५४—यह आवश्यक होगा कि भारतीय औषध नियन्त्रण फण्ड इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया में जमा की जाय या केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेकर अन्य किसी बैंक में।

अध्याय ६

रजिस्टर्ड फर्मा, निर्माताओं एवं ट्रेनिंग के स्नातकों के विशेषाधिकार

५५—किसी अन्य कानून में, जो कि उस समय के लिए लागू हो, कोई अन्य उपबन्ध होने पर भी—

(१) शब्दावली 'वैज्ञानिक रूप से योग्य (मेडिकली क्वालीफाइड) निर्माता' या "उचित रूप से योग्य निर्माता" या कोई शब्द, जिससे यह अर्थ निकलता हो कि अमुक व्यक्ति या फर्म कानून द्वारा भारतीय औषध निर्माण का अधिकारी स्वीकार कर लिया गया है, सम्पूर्ण भारत में लागू होने वाले सब अधिनियमों में जहां तक ऐसे अधिनियमों का सम्बन्ध भारतके संविधान की सातवीं सूची की लिस्ट २ या ३ में विशेष रूपसे कहे हुए किसी मामले से हो, यह समझा आवश्यक होगा कि वह रजिस्टर्ड औषध निर्माता के अन्तर्गत है।

५६—यह आवश्यक होगा कि किसी स्नातक व्यक्ति को, किसी भारतीय औषध निर्माता फर्म या संस्था में या किसी सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त ऐसी हो संस्था में औषध निर्माण के सुपरिन्टेन्डेन्ट के तौर पर नियुक्त किए जाने योग्य समझा जाय।

५७—रजिस्टर्ड फर्मों या व्यक्तियों को वही विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, जो आबकारी एक्ट या किसी अन्य अधिनियम के आधीन, जो उस समय लागू हो, प्राप्त होते हैं।

अध्याय ७

विविध

५८—(१) किसी ऐसे निर्णय को छोड़कर, जो बोर्ड ने अपील सुनने वाले अधिकारी के पद से किया हो, इस अधिनियम के आधीन किए हुए बोर्ड की प्रत्येक आज्ञा के विरुद्ध अपील केन्द्रीय सरकार के सामने की जा सकेगी।

(२) उपधारा (१) के आधीन प्रत्येक अपील ऐसी आज्ञा की सूचना की तारीख

से तीन मास के भीतर प्रस्तुत की जायगी।

५६—(१) केन्द्रीय सरकार के विरुद्ध उसके किसी ऐसे काम के लिए, जो उसने उन अधिकारो को प्रयोग मे लाने के लिए किया हो, जो इस अधिनियम के आधीन प्राप्त हे, कोई मुकदमा या कानूनी कायवाही न की जा सकेगी।

(२) बोड या बोड के किसी सदस्य या किसी अफसर या नोकर या किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जो बोड या उसके अध्यक्ष या किसी अफसर या बोड के नौकर के आदेशानुसार काम करता हो उसके लिए किसी ऐसे काम के सम्बन्ध मे, जो उसने इस अधिनियम के आधीन कानूनी तौर पर आर नेकनीयती से तथा उचित सावधानी आर ध्यान से किया हो, काई मुकद्मा या कानूनी कायवाही न की जायगी।

६०— किसी कायवाही रसीद, प्राथनापत्र, खाका, नोटिस, आज्ञा, रजिस्टर इन्दराज या अन्य लेखपत्र की कोई प्रतिलिपि, जो बोड के अधिकार मे हो, यदि बाड के रजिस्ट्रार ने या बोड से अधिकार प्राप्त किसी दूसरे व्यक्ति ने उसका उचित रूप से प्रमाणित किया हो, उस इन्दराज (लेखा) या लेखपत्र के मौजूद होने के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप मे मानी जायगी और ऐसे इन्दराज या लेखपत्र और उन सब मामलो के सम्बन्ध मे, जो उसमे लिखे हो, प्रत्येक मामले मे उसी प्रकार और उसी हद तक प्रमाण म स्वीकार की जायेगी जितना और जिस हद तक असली इन्दराज या लेखपत्र यदि ऐसे मामलो के प्रमाण मे प्रस्तुन की जाती, स्वीकार की जाती।

६१—किसी ऐसी कानूनी कायवाही मे, जिसमे बोड किसी पक्ष मे न हो, उस समय तक किसी बोड के या किसी सदस्य या अफसर या नौकर को किसी सदस्य या किसी रजिस्टर या लेखपत्र को प्रस्तुत करने के लिए या उसमे लिखी हुई बातो को ठीक सिद्ध करने के लिए प्रमाण के रूप म अदालत मे बुलाया न जायेगा, जब तक अदालत ने किसी विशेष कारण के आधार पर ऐसा करने की आज्ञा न दी हो।

६२—यदि किसी समय केन्द्रीय सरकार को प्रतीत हो कि इस अधिनियम के आधीन या इसके अनुसार बोड को जो अधिकार दिया गया है उसने उसका व्यवहार नही किया या अपनी अधिकार सीमा का उल्लघन किया हे या अपने अधिकार का दुरुपयोग किया है या इस अधिनियम के आधीन उसके लिए जो कर्त्तव्य नियत किया गया हे उसका पालन नही कर सका है, तो केन्द्रीय सरकार को अधिकार होगा कि यदि वह यह समझे कि इस प्रकार अधिकार का उपयोग न करना, अधिकार सीमा का उल्लघन करना या उसका दुरुपयोग करना अत्यन्त

महत्त्व रखता है ता इस गत गा।। की सूचना आ ता दे और यदि बोड उसे समय के भीतर, जो केन्द्रीय सरकार उसके लिए नियत करे, उस दोष, सीमा उल्लघन या अधिकार के दुरुपयोग का परिहार न करे ता केन्द्रीय सरकार को अधिकार होगा कि बोर्ड का तोड दे और बोर्ड के सब या कुछ अधिकारो और कर्त्तव्यो को व्यवहार मे लाने या पालन करने के लिए कोई ऐसी सस्था उस समय तक के लिए जिसे वह उचित समझे नियत करे।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि वह इस अधिनियम के आदेशो के अनुसार ६ मास के भीतर एक नया बोर्ड बनाने के लिए कार्यवाही करेगी।

६३—(१) प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अदालत को छोडकर कोई अन्य अदालत इस अधिनियम के आधीन किये हुए अपराधो की न सुनवाई कर सकती है और न उनकी सुनवाई का अधिकार रखती है।

(२) कोई अदालत इस अधिनियम के आधीन किये हुए किसी अपराध की सुनवाई का अधिकार न रखेगी, उस दशा को छोड कर जब इस सम्बन्ध मे बनाये हुए नियमो के अनुसार किसी अफसर से लिखित अभियोग पत्र प्रस्तुत किया जाये।

६४—इस अधिनियम के आदेशो और उसके आधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाये हुए नियमो के आधीन बोर्ड निम्नलिखित बातो को नियमबद्ध करने के लिए विनियम बना सकता है, अर्थात्—

(१)(क) ट्रेनिंग स्कूल की शिक्षा या विद्यार्थियो के उसमे प्रवेश के लिए,

(ख) वह प्रतिबन्ध नियत करने के लिए जिनके आधीन विद्यार्थी डिग्री या डिप्लोमा या प्रमाणपत्र या कोर्स और बोर्ड की परीक्षाओ मे दाखिल हो सकेगे और जिनके आधीन विद्यार्थी डिग्री, डिप्लोमा, और प्रमाणपत्र पाने के योग्य होगे।

(ग) बोर्ड से सम्बद्ध शिक्षा अथवा ट्रेनिंग स्कूल के विद्यार्थियो के निवासस्थान के प्रतिबन्धो को नियत करने और उस निवासस्थान का शुल्क वसूल करने के लिए,

(घ) बोर्ड से सम्बद्ध ट्रेनिंग स्कूल अध्यापको की सख्या, योग्यता और वेतन को नियत करने के लिए,

(ङ) ट्रेनिंग स्कूल मे विषयो की पढाई के लिए और बोर्ड की परीक्षाओ मे बैठने, डिग्री, डिप्लोमा और प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए शुल्क नियत करने के लिए,

(च) उन प्रतिबन्धो और उस ढग को नियत करने के लिए, जिनके अनुसार

परीक्षक नियत किये जायेगे और परीक्षाये ली जायेगी और परीक्षको को कत्त व्य का नियत करने के लिए। पर तु प्रतिब ध यह है कि विनिमय (रेगूलेशन्स) बनाने मे बोड साधारण रूप से किसी की आर्थिक और अन्य वत्तमान दशाओ का ध्यान रखेगा।

(२)(क) समय और स्थान, जहा जहा बैठक की जायेगी,

(ख) ऐसी बठको को आमन्त्रित करने की सूचनाएँ निकालना,

(ग) वहा कायवाही करना,

(घ) और डाइरेक्टर के अतिरिक्त बोड के अफसरो और कमचारियो के वेतन, भत्ते और नौकरी के अ य प्रतिब ध,

(ङ) दूसरे समस्त अ य मामले, जो इस अविनियम के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए आवश्यक हो।

(३) ऐसे समस्त विनियम सरकारी गजट मे प्रकाशित किए जायेगे।

(४) केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह सरकारी गजट मे विज्ञप्ति प्रकाशित करके कोई विनियम रद्द या सशोधित करे।

६५—(१) के द्रीय सरकार समय समय पर इस अविनियम के अनुकूल नियम बना सकती है।

(२) विशेष रूप से और उपरोक्त अधिकार के आशय के साधारणत विपरीत गए बिना, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित किसी विषय पर नियम बना सकती है—

(क) धारा ४ के आधीन किस समय, किस स्थान पर और किस प्रकार चुनाव होगा,

(ख) इस अधिनियम के आधीन चुनाव के नियत्रण के लिए,

(ग) बोड की बैठक की कायवाहियो के चलाने और विवरण को भली भाति रखने के लिए,

(घ) धारा ९ के आधीन रिक्त स्थानो की पूर्ति किस भाति की जायेगी,

(ङ) डाइरेक्टर तथा अ य कर्मचारियो के अधिकार, वेतन, भत्त और सेवा सम्बन्धी शर्तें,

(च) बोर्डों द्वारा हिसाब रखना और किस प्रकार इन हिसाबो का आडिट किया जाएगा और इ हे प्रकाशित किया जाएगा और ऑडिट, डिसएलाउन्स तथा सरचाज के सम्बन्ध मे आडीटरो के अविकार,

(छ) वह तिथि, जिसके पूव ही बजट स्वीकृति के लिए मीटिग की जाएगी,

(ज) बजट तैयार करनेमे किन फार्मो ओर रीतियो का उपयोग किया जाएगा,

(झ) वे नक्शे, परिशिष्ट और रिपोर्ट, जि ए सभी बोर्ड भेजेंगे,

(ञ) इस अधिनियम के अाधीन औषध निमाताओं के रजिस्टर का फाम और याग्यताओं के आधार पर उनका दो या अधिक वर्गों म वर्गीकरण,

(ट) इस अधिनियम के अाधीन दिए शुल्क और उनका उपयोग,

(ठ) धारा ३१ के आधीन रजिस्ट्रार के निर्णय के बोर्ड द्वारा अपीलें सुनने की विधि,

(ड) बोर्ड के सदस्यों और सभापति को मिलने वाले भत्ते

(ढ) अध्यक्ष को मिलने वाला पारिश्रमिक,

(ण) शिक्षण संस्था अथवा परीक्षण सं था के रूप में बोर्डके लक्ष्यों का उत्थान,

(त) निर्धारित फाम में निमाताओं द्वारा निमाताओं के रजिस्टर का रखा जाना,

(थ) बोर्ड अथवा केंद्रीय सरकार द्वारा अपने अधिकारों का सौंपा जाना,

(द) इस अधिनियम के और किसी लक्ष्य का उत्थान ।

(३) सभी ऐसे नियम सरकारी गजट में प्रकाशित किए जायगे ।

६६—केन्द्रीय सरकार का नियम बनाने का अधिकार और बोर्ड का विनियम बनाने का अधिकार इस प्रतिबन्ध के आधीन है कि नियम तथा विनियम पहले आलोचनार्थ प्रकाशित किए जाय और लागू होने से पूर्व सरकारी गजट मे छापे जाएँ तथा विनियम तब तक लागू नहीं होंगे जब तक राज्य सरकार उन्हें ठीक न मान ले ।

६७—जब तक कि इस अधिनियम में इसके विपरीत स्पष्ट आदेश न हो, इस अधिनियम के किसी आदेश का प्रभाव इस अधिनियम के आधीन किसी रजिस्टर्ड भारतीय औषधि निर्माता के अतिरिक्त निर्माता पर न पड़ेगा।

६८—केन्द्रीय सरकार उस तिथि से जो इस की स्वीकृति के पश्चात् जब यह प्रथम भाग लागू हो, सरकारी गजट में विज्ञप्ति द्वारा, इस भाग के आदेशों को या उसके किसी अंश को सारे भारत पर उस तिथि से लागू कर सकती है जो उसमें वर्णित हो । परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि केंद्रीय सरकार इस विज्ञप्ति को अन्य साधनों द्वारा, जो कि उसे उचित प्रतीत हो, विस्तीर्ण रूप में प्रकाशित करेगी ।

६९—(१) धारा ६५ में वर्णित विज्ञप्ति के प्रकाशन के पश्चात् रजिस्ट्रार जो उस तिथि को जो उस विज्ञप्ति में दी हुई हो, एक सूची तैयार करेगा और रखेगा, जो 'भारतीय औषध निर्माण करने वाले व्यक्तियों और फर्मों की सूची' कहलायेगी ।

(२) प्रत्येक व्यक्ति या फम, जो इस अधिनियम के अनुसार रजिस्टर्ड होने के

योग्य नहीं है, इस भाग से लागू होने की तिथि तक यदि एक वर्ष के अन्दर रजिस्ट्रार को इस बात से सन्तोष दिला देता है कि उपधारा (१) में लिखित तिथि तक उसने नियमित रूप से दस वर्ष तक औषध निर्माण की है, पांच रुपया देने पर उक्त सूची में अपना नाम लिखवा सकेगा।

(३) धारा ३० की उपधारा (२) और (४) और धारा ३१ की उपधारा (२), (३) और (४) और धारा ३६ की उपधारा (१) के आदेश, जहां तक सम्भव होगा कथित सूची पर लागू होंगे।

७०—उस व्यक्ति या फर्म के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति, जिसका नाम इस अधिनियम के भाग १ में रजिस्टर्ड है या धारा ६९ के आधीन जिसका नाम सूची में लिखा है, न तो निर्माण कर सकेगा और न प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से इस बात को लक्षित कर सकेगा कि वह निर्माण कर सकेगा।

७१—कोई भी व्यक्ति या फर्म जो धारा ७० का उल्लंघन करता है, प्रत्येक अपराध के सम्बन्ध में अभियुक्त सिद्ध होने पर ५००० रुपया तक जुर्माने अथवा ३ वर्ष तक की कैद अथवा दोनों सजाओं से दण्डनीय होगा।

७२—इस अधिनियम की किसी भी धारा में किसी भी बात के होते हुए कोई भी व्यक्ति या फर्म जो इस अधिनियम भाग २ के लागू हो जाने की तिथि से एक वर्ष के पूरे होने पर, तब तक रजिस्टर में रजिस्टर्ड निर्माता के रूप में न लिखा जायेगा, जब तक वह बोर्ड द्वारा स्वीकृत पद्धति पर औषधि निर्माण का प्रमाण पत्र इन्डियन रिसर्च इंस्टीटयूट लखनऊ से प्राप्त न करले।

७३—धारा ७० और ७१ में उल्लिखित कोई भी बात ऐसे व्यक्ति या फर्म पर लागू न होगी—

(क) जो पटेन्ट औषध बनाने की कला तक ही अपने को सीमित रखता हो।

(ख) जो इस अधिनियम की धारा ७२ के अन्तर्गत रजिस्टर्ड होने के योग्य हो।

(७४) (१) इस अधिनियम के आधीन बोर्ड द्वारा स्वीकृत फर्म या निर्माता व्यक्ति के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति या फर्म किसी भी ऐसे प्रमाण पत्र या लाइसेंस या अन्य कागज पत्र, जिन से ये प्रकट होता हो या जिसमें ये लिखा हो कि उक्त फर्म या व्यक्ति अथवा उसका प्राप्तकर्त्ता औषधि निर्माण करने का अधिकारी है, न दे सकेगा।

(२) जो भी इस धारा के आदेश का उल्लंघन करेगा वह जुर्माने की अथवा कैद की सजा से दण्डनीय होगा जो क्रमशः ५००० रुपए तक अथवा

३ वर्ष तक अथवा दोनों ही की होगी। यदि ऐसा उल्लंघन किसी फर्म के द्वारा हुआ तो उस फर्म के प्रत्येक उस व्यक्ति को, जो जान बूझकर और समझकर ऐसे उल्लंघन के प्रति आज्ञा देता है या कार्य को अमल में लाता है, जुर्माना या कैद का दण्ड दिया जायगा, जो क्रमशः १००० रुपया या ६ मास की सजा अथवा दोनों ही सजाओं का अधिकारी होगा।

७५—जो कोई व्यक्ति या फर्म जान बूझकर झूठा प्रमाणपत्र, जिससे यह प्रकट हो कि उसे ऐसा प्रमाणपत्र उस फर्म या व्यक्ति से प्राप्त हुआ है, जिसे बोर्ड ने इस अधिनियम के आधीन स्वीकृत किया है या वह इस अधिनियम के आधीन निश्चित प्रणाली के अनुसार औषध निर्माण करने योग्य है तो वह जुर्माने की सजा द्वारा दण्डनीय होगा और वह इस अधिनियम के आधीन अपराध के लिए १०० रु० तक दण्ड का अधिकारी होगा और बाद को किये जाने वाले प्रत्येक अपराध के लिए ५०० रुपया होगा।

विचार

(सन् १६५६ के आरम्भकाल मे लखनऊ से डा० शुभकार कपूर एम० ए० पी० एच० डी० आचार्यश्री के पास 'आचाय चतुरसेन का कथा साहित्य' विषय पर थीसिस लिखने के सम्ब ध मे उनके राजनीतिक एव साहित्यिक विचार प्राप्त करने के लिए शाहदरा 'ज्ञानधाम मे आकर दो सप्ताह ठहरे थे। उ होने प्रश्न किए और आचार्यश्री ने उनके उत्तर दिए। आचार्यश्री की यह उच्चतम और पनी विचारशक्ति थी कि चार वष बाद घटित राजनतिक सघष की सही कल्पना उ होने तब की थी। पाठको के ज्ञान वधन के लिए उन विचारो का कुछ अ श यहा दिया जा रहा है।)

श्री नेहरू और गाधीवाद को आप क्या समझते है ?

सन् १६२६ मे लाहौर काग्रेस मे नेहरू पहिली बार अध्यक्ष पद पर बठे। उ होने तब काग्रेस का चार्ज अपने पिताश्री से लिया, जो एक वष पूव कलकत्ता काग्रेस की अध्यक्षता कर चुके थे। यही वह अधिवेशन था जिसमे मोतीलाल नेहरू ने भारत के सविधान के बारे मे 'नेहरू आयोग' की रिपोट पेश की थी, परन्तु यह रिपोट एक उप-निवेशिक दर्जे के आधार पर तयार की गई थी। इसलिए उनकी सब शिफारिसे भी उसी ढग की थी। उस समय सुभाषचन्द्र बोस ने उसका विरोध किया था और कहा था कि यह एक प्रकार से विदेशी बन्धन मे बधे रहने की स्वीकृतिमात्र ही थी—बस, जरा से ब धन ढीले करने भर की माग थी। सुभाषच द्र चाहते थे कि भारत को पूरा स्व-राज्य की प्राप्ति हो। उस समय तक गाधीजी भी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल मे बँधे रहना श्रेयस्कर समझते थे, परन्तु सुभाष ने उनसे भी टक्कर ली। उस समय काग्रेस मे फूट पडते पडते रह गई और यह तय किया गया कि यदि भारत सरकार एक वषकी अवधि मे भारतको औपनिवेशिक दर्जा न दे तो पूरा स्वराज्य का झण्डा खडा कर दिया जाय।

उस समय नेहरू भी सुभाष के साथ थे, पर वह अपने पूज्य पिता और गाधीजी का विरोध न कर सके। गाधीजी ने भी उन्हे इसका मूल्य चुका दिया, उ हे ही आगामी अधिवेशन का अध्यक्ष बना दिया। काग्रेस के उस अधिवेशनमे उ होने पूरास्वराज्य की मॉग की और समाजवादी परिपाटी भी अपनाई, पर गाधीजी के विरोध से वह लाचार थे। उन्हे सबसे मिलकर काम करना पडा। पर उनमे गाधीजी की हँस बुद्धि का अभाव रहा। गाँधीजी ने हँस की भाँति मोती चुगे थे, सभी प्रा तो से चोटी के उत्तम पुरुषो को चुनकर अपना अनुयायी और साथी बनाया था। मद्रास से राजाजी, बम्बई से सरदार पटेल, बगाल से चितरजनदास, उत्तरप्रदेश से मोतीलाल नेहरू और पजाब

से लाला लाजपतराय। और ये सब अपने जीवन के अन्त तक उनके साथ रहे, उनके प्रति एकनिष्ठ रहे। परन्तु नेहरू के साथ आज एक भी गांधीभक्त नहीं है, न उन्होंने अपने भक्तों का कोई निष्ठावान दल ही बनाया है।

सन् १९४७ के अन्त तक नेहरू और पटेल एक दूसरे से प्रथक् हो चुके थे। यहां तक कि सरदार ने गांधीजी के समक्ष कांग्रेस से त्यागपत्र देने का इरादा प्रकट किया था और गांधीजी भी यह मत प्रकट कर चुके थे कि दोनों एक साथ नहीं रह सकते, दोनों में से एक को हट जाना होगा। सरदार ही हट जाने को तयार हो गए थे तब। शायद वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से मिल जाते और उस दल का नेतृत्व करते। ऐसे ही कुछ विचार उन्होंने लखनऊ में प्रकट किए थे। परन्तु गांधीजी की अकस्मात् हत्या हो जाने से यह बात न हो सकी और नेहरू–पटेल दोनों ही ने एक समझौता कर लिया तथा देश के कल्याण को दृष्टि में रखकर मतभेद होने पर भी सरदार जीवन के अन्त तक उनसे मिलकर काम करते रहे।

भारतीय राज्य की बागडोर सम्हालने के बाद पटेल केवल तीन ही वर्ष जीवित रहे और इन तीन वर्षों में उन्होंने वह काम किया जो इतिहास में अद्वितीय है। उन्होंने अपनी सामर्थ्य से इतना बड़ा भारत राज्य संगठित किया जितना न रामका था, न कृष्ण का न अशोक का था, न अकबर का और न लहरों पर हुकूमत करने वाले अंग्रेजों का। इतने पर भी नेहरू से उनका मतभेद रहा। पर वे परस्पर एक दूसरे के काम में हस्तक्षेप करने से बचते रहे। परन्तु दुनियाँ ने देख लिया कि उनकी गृहनीति जितनी सफल एवं शानदार रही, उतनी नेहरू की विदेश नीति न रही।

आज भी नेहरू की वाणी पर गांधीजी हैं, पर सभी गांधीभक्तों से वह कट चुके हैं। इतना ही नहीं–गांधी भक्तजन अब उनपर गांधीजी के दृष्टिकोण को समाप्त करने का आरोप लगा रहे हैं और देशमें एक नेहरू विरोधी शक्ति गांधीवादीजनों की खड़ी हो रही है, जिसका ज्वलन्त उदाहरण स्वतन्त्र पार्टी है, जिसका संगठन आज अस्सी वर्ष की आयु में राजाजी ने किया है। उधर आचार्य कृपलानी सोशलिस्ट पार्टी में चले गए, विनोबा तटस्थ हो गए, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति होने के नाते मुँह पर ताला जड़े बैठे हैं। यह वही मौसल का युग है जो महाभारत की समाप्ति के बाद आया था और जिसने विवश हो पाण्डवों को राजपाट त्याग कर हिमालय गलने जाना पड़ा था। नेहरू अपने को गांधीवादी ही कहते हैं, पर गांधीदर्शन के मूलाधार के अनुसार उनका आचरण नहीं है।

यह आप किस आधार पर कह रहे हैं?

गांधी दर्शन का मूलाधार यह है कि काम का ढंग और उद्देश्य दोनों ही पवित्र होने चाहिए। वह कम्युनिस्टों के पक्ष में तो हैं पर उनके हिंसात्मक ढंग के विरुद्ध हैं।

गांधीजी यह कभी पसन्द न करते।

परन्तु कम्युनिज्म तो जीवित ही वर्गीय संघर्ष पर है, इसलिए हिंसा के बिना उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यदि कम्युनिज्म में से वर्गसंघर्ष निकाल दिया जाय तो उसमें पूंजीवाद से कोई अन्तर नहीं रह जाता?

यही बात है। इसीसे तो विनोबा कहते हैं कि गांधीवाद का अन्त हो गया है। आपने सुना नहीं—गांधीजी की परम शिष्या मीरा भारत छोड़कर चली गई। वह एक अंग्रेज एडमिरल की पुत्री थी। ब्रिटेन के ऊंचे वर्ग में उनकी गणना थी। किसी लार्ड के साथ उनका विवाह हो सकता था, परन्तु आज से पच्चीस वर्ष पूर्व वह गांधीजी की आवाज पर सब कुछ त्यागकर एक साधारण भारतीय ग्रामीण महिला की भांति पड़ी रहने लगीं। अपने बाल उन्होंने कटवा दिए और एक भिक्षु का जीवन उन्होंने धारण किया। गांधीजी की मृत्यु के बाद उन्होंने अपना आश्रम ऋषिकेश में स्थापित किया, और गांधीजी के नाम पर जो धोखा हो रहा है, उससे खिन्न होकर चुपचाप वहां से चली गईं।

इस समय नेहरू का पंचशील का सिद्धान्त खतरे में है। नेहरू ने उसे खतरे से बचाने के लिए चीन का अतिक्रमण चुपचाप सह लिया। परन्तु अब तो वह, उस भाग को जो चीन ने हड़प लिया है, वापस लेने का इरादा कर रहे हैं। सम्भव है चीन और पांव फैलाए। सम्भव है, वह भूटान पर चढ़ दौड़े, तब नेहरू क्या करेंगे? यह प्रश्न उनके राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में कठिनाई ला रहा है, जिसका कोई हल अभी नहीं सूझ पड़ रहा है। नेहरू कहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी में कमी चीन को पसन्द नहीं है। चीन का झुकाव उन राजनीतिक लहरों से है, जो विश्व में तनाव जारी रखते हैं। चीन की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। उद्योग बढ़ रहे हैं और एशिया में चीन के प्रति आशंका के वातावरण उत्पन्न हो रहे हैं।

कांग्रेस एक ऐसी राजनैतिक राष्ट्रीय संस्था थी जिसका उद्देश्य भारत को विदेशी दासता के चंगुल से छुड़ाना था। अब जब अंग्रेजों ने भारत छोड़ दिया, तो कांग्रेस ही के हाथ उन्होंने राजसत्ता सौंप दी। ऐसी हालत में कांग्रेस भारत सरकार से मोर्चा लेने वाली संस्था न रह गई, भारत सरकार ही बन गई। इस पर गांधीजी ने तभी कहा था कि अब कांग्रेस को तोड़ देना चाहिए क्योंकि कांग्रेस का संगठन इस कारण सुदृढ़ है कि इसके विभिन्न तत्त्व विदेशी शासन के विरोध में एकत्र हुए हैं। अन्यथा यह किसी एक स्थान पर एकत्र नहीं हो सकते थे। इसलिए जब देश स्वाधीन हो गया तो उसके उद्देश्य की पूर्ति हो गई, अब इसे भंग कर देना चाहिए। परन्तु उनकी दूसरी सलाहों के अनुसार ही उनकी यह सलाह भी नहीं मानी गई और कांग्रेस ज्यों की त्यों कायम रही। परन्तु यदि कांग्रेस को कायम रहना ही था तो अब कांग्रेस

का अध्यक्ष प्रधान मन्त्री से ऊपर होना चाहिए था। क्योंकि वह उस पार्टी का प्रधान है जो सत्तारूढ है। पर ऐसा नहीं हुआ। कुछ दिन तो नेहरू ही प्रधान मन्त्री और कांग्रेस अध्यक्ष साथ साथ रहे। यह एक गलत और अवैध तरीका था। परन्तु बाद मे आगे पीछे जो भी कांग्रेस के अध्यक्ष होते रहे—वे प्रधान मन्त्री के आज्ञानुवर्ती ही रहे। यह और भी गलत चीज थी। सरदार पटेल के देहावसान के बाद नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष बन और उस दिन से कांग्रेस का शासन मुगल शासन म परिवर्तित हो गया।

नेहरू का व्यक्तित्व और उसका प्रभाव सर्वत्र ही सर्वोपरि रहता रहा है। एक सरदार पटेल से वह कुछ दबते थे, पर उनके बाद तो उनपर किसी का दबाव रहा ही नही। प्रधानमन्त्री की सत्ता अपने हाथ म रखकर नेहरू जो चाहते है वही कर डालते है, किसी मे उनके सम्मुख खड़े होने का साहस तो दूर दूर की बात है—अपना स्वतन्त्र मत भी कोई नही रख सकता। इन कारणो से कांग्रेस का अध्यक्ष और उसकी आधीनता म कांग्रेस की आवाज सर्वथा थोथी और पोच ही रहती है। यह स्पष्ट है कि कांग्रेस का प्रधान बिना नेहरू की स्वीकृति और पसन्द के नही हो सकता।

क्या आप समझते है कि कांग्रेस नेहरू ही के दम से जीवित है ?

यह तो मैं नही कहना चाहता। परन्तु म यह कह सकता हू कि इस समय देश की कोई पार्टी देश का शासन सम्हाल सकने के योग्य होती तो कांग्रेस का तख्ता अब तक उलट जाता, और यदि कांग्रेस ही म नेहरू के पाए का कोई तेजस्वी व्यक्ति होता तो कांग्रेस सरकार भले ही जीवित रह जाती—नेहरू देश के प्रधान मन्त्री न रह पाते। परन्तु इस समय तो नेहरू एक द्विविधा मे फसे हैं। उनकी दशा अर्जुन के समान हो रही है। जैसे अर्जुन ने सोचा था कि मैं कैसे राज्य के लिए बन्धु बान्धवो से युद्ध करू ? नेहरू के आगे इधर तो पंचशील का मार्ग है, वे किसी देश की गुटबंदी मे शरीक नही हो सकते, न किसी देश से सन्धि विग्रह कर सकते है। दूसरी ओर चीन की आक्रामक कार्यवाही है जो पंचशील को विमुख बनाने पर तुली बैठी है। अब यदि नेहरू चीन से अपना राज्य वापस नही ले पाते है तो दुनिया देखेगी कि उनका पंचशील का सिद्धान्त खत्म हो गया और उनकी विदेश नीति विफल हो गई।

ई० पूर्व चौथी शताब्दी म चीन अपने को न केवल राज्य अपितु एक साम्राज्य मानता था। उस समय चीनी लोग और चीन का शाह अपने को 'चगकुओ' कहते थे, उसका अर्थ था 'मध्यवर्ती साम्राज्य'। उन दिनो चीन वाले अपने राज्य को दुनियाँ का केन्द्र समझते थे, और चीन का शाह ईश्वर पुत्र समझा जाता था। उसकी मान्यता थी कि वही उस समय समस्त सभ्य ससार का सम्राट है। जैसा कि नियम है चीन का यह साम्राज्य भी दूसरे देशो को जीतकर कायम हुआ था। चीन का पहिला शाह

जो अपने आपको 'हुआग ची' कहता थ , अत्य त कठोर और निदय प्रकृति का व्यक्ति था । उसने घोर कृत्य करके अपने साम्राज्य की स्थापना की । उसने बहुत से किले बनवाए और गढबदिया की । चीन की दीवार का एक हिस्सा उसीका बनवाया हुआ है । उसने चीन को एक किया और उसकी सीमाओ का विस्तार किया । ई० पू० २१० मे एक जबर्दस्त गृहयुद्ध म यह सम्राट मारा गया । बाद मे उसके साम्राज्य को हानवश के राजा चलाते रहे । हानवश के पतन के बाद बहुत समय तक चीन मे कोई शक्ति-शाली सत्ता कायम न हो सकी । पर तु जब तागवश का अभ्युदय हुआ तो सत्ता फिर चमकी और उस काल मे चीन साम्राज्य का और भी विस्तार हुआ । ताग साम्राज्य के अ तगत समूचा चीन तो था ही,वह दक्षिण मे हि द चीन की सीमा को छू रहा था । इसके बाद मगोल वशकी सत्ता स्थापित हुई । इस काल मे और भी चीन साम्राज्य का विस्तार हुआ । चीन का मगोल साम्राज्य तो ससार भर का सबसे बडा साम्राज्य था । इस वश का कुबलाई एक ऐस विराट साम्राज्य का स्वामी था, जो इस समय सोवियत मध्य ऐशिया कहे जाने वाल क्षेत्र से लेकर पश्चिम म ईरान और मसोपोटामिया और पूव मे चीन सागर तक फैला हुआ था ।

माचू वश ने तिब्बत पर अधिकार करके उस साम्राज्य को और बढाया । उसने बर्मा को भी कर देने को विवश किया । अनाम को चीनी सत्ता स्वीकार करनी पडी और फारमोसा चीनीसाम्राज्य का अग बन गया । चीन सम्राट अपने अधिकृत देशो को हीन और तुच्छ समझते थे । उन दिनो चीनी सम्राट से अधिकृत देशोमे राजा जो पत्र-व्यवहार करते थे,उनमे चीनी सम्राट का नाम सर्वोपरि ही रहता था । यो चीनी सम्राट अपने साम्राज्य को एक परिवार कहते थे, पर तु हकीकत यह थी कि इन अधिकृत राजाओ की कोई औकात न थी ।

बीसवी शताब्दी के आरम्भ ही मे एक क्रा ति होकर मचू साम्राज्य भिन्न भिन्न हो गया, तथा चीनियो ने गणराज्य की स्थापना करली । उस समय गणराज्य के आरम्भ काल ही मे तिब्बत और बाहरी मगोलिया प्रथक हो गए थे, पर नये गण-राज्य ने फिर तिब्बत पर अपना अधिकार जमाया । मचूरिया के अलग होने पर चीनी राष्ट्रवादियो ने इतिहास की आड लेकर ऐसे क्षेत्रो पर अधिकार की चर्चा शुरू की, जो कभी चीनी साम्राज्य के अग थे ।

अब चीन के आजके शासको को कहना तो यह हे कि उ होने पुरानी साम्राज्य-शाही नीति को छोड दिया है, पर उनकी चेष्टाओ से यह प्रकट है कि वे पुराने साम्रा-ज्यशाही दावो से चिमटे हुए है । तिब्बत मे अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद उन्होने अब उत्तर और उत्तर पूव मे भारत की परम्परागत सीमाओ का उलघन किया है । बर्मी चीनी सीमा क्षेत्र पर भी चीनी विस्तारवादी आकाक्षाओ का प्रभाव साफ दीख रहा है ।

कुचिन क्षेत्र में चीनी भारत बर्मा सीमा पर स्थित ताजाराग दर तक अपना हक समझते है। दक्षिण मे वे शाम और राज्यो के उन हिस्सो को अपना बताते है, जो सालवीन के पूर्व मे है। ताय्राम, कम्बोडिया, और श्याम को भी चीन से शिकायत होने लगी है। वास्तव मे चीन की इस विस्तारवादी हरकत का न तो अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद ही से कुछ सम्बन्ध है, न चीन के साम्यवाद से। यह तो उसकी वह परम्परागत विस्तारवादी मनोवृत्ती है जो गत दो हजार वर्षों से चली आ रही है

कुमायू के तीन जिलो अल्मोडा, टिहरी गढवाल और पौढी गढवाल की सीमाये तिब्बत सीमा से मिलती है। दोनो देशो की सीमा को हमेशा से काली, अलकनन्दा और भागीरथी नदिया अलग करती है। उधर चीन ने पौढी गढवाल के चमोली तहसील के इत्मीनान क्षेत्र बढाहोती पर अपना दावा पेश किया है। वह अल्मोडा जिले का भी कुछ हिस्सा दबोचना चाहता है। चीन ने लगचा, मल्ला, और बल्चा धुरा के दर्रे के निकट लथ पत्ता व टिहरी गढवाल के नीलिंग जाधंग गावो पर अपना क्षेत्र होने का दावा किया है।

सन १९५४ के चीन भारत समझौते मे उत्तरप्रदेश से तिब्बत जाने के लिए माना, नीती, कुगरी, बिगरी, दारमा और लिपुलेख दर्रो का उल्लेख हुआ है। दोनो देशो के बीच इनके अतिरिक्त और भी दर्रे है। लिपुलेख दर्रा सबसे कम ऊचाई पर है, जो १६७८० फुट पर स्थित है। दक्षिण पश्चिम तिब्बत से आसानी से इस दर्रे द्वारा भारत मे प्रवेश किया जा सकताहै। लिपुलेख के पास भारत, तिब्बत और नेपाली सीमाएं मिलती है। इस दर्रे से सबसे निकट का स्टेशन टनकपुर है, जो दर्रे से २२२ मील दूर है। इस स्टेशन से यात्री और सामान अस्कोट तक लारियो, कुलियो और खच्चरो द्वारा पहुँचाया जाता है। इस सडक से एकतरफा यातायात होता है। सडक अत्यन्त खतरनाक है। अस्कोट से लिपुलेख ९५ मील है। इस ९५ मीलके ऊबड खाबड मार्ग को पैदल ही पार किया जाता है। इस प्रकार लिपुलेख से अल्मोडा सदर मुकाम तक पहुँचने मे १३ से १५ दिन लग जाते है। तार की लाइन पिथौरागढ मे खत्म हो जाती है, जो टनकपुर से ९४ है। सिर्फ हरकारे ही आगे सम्बन्ध कायम रखते है। पिथौरागढ से आगे जरूरी खबर, सरकारी सन्देश, पुलिस को बेतार के तार व्यवस्था से पहुँचाये जाते है।

निस्सन्देह टनकपुर लिपुलेख मार्ग का सामरिक महत्व बहुत अधिक है। शताब्दियो से भारत,तिब्बत,चीन और सिक्याग के बीच व्यापार और तीर्थयात्रा इसी मार्ग से होती रही है।

१९४६ मे सरकार ने टनकपुर से पिथौरागढ तक मोटर सडक बनाने का काम शुरू किया था। तब इस सडक का सरकारी दृष्टि से विशेष सामरिक महत्व नही

था। इस सडक को बनाने का उद्देश्य मैदानी हिस्सो से घर लौटने वाले कुमाऊँनी सिपाहियो की मलेरिया से रक्षा करना था। महायुद्ध से पूव ही इस सडक के निर्माण की योजना बन चुकी थी।

चीन ने अपनी सीमा मे तकलाकोट मडी तक, जो तिब्बतम समुद्र की सतह से १६ हजार फुट की ऊचाई पर है, मोटर सडक बनाली है और इस माग से मोटर यायायात जारी है। यह मडी लिपुलेख दर्रे के अति निकट है। तकलाकोट तक सडक बनाने के लिए चीनियो को ऊची पहाडियो को नही काटना पडा। इस भूमिम अधिकतर वलुही भूमि है।

चीन ने लद्दाख के आठ हजार वग मील लम्बे चौडे भारतीय क्षेत्र को चीनी नक्शो मे अपना वतलाया है तथा दो सौ से अधिक मील पर कब्जा कर लिया है और अब लद्दाख स्थित भारत चीन सीमा पर चीन सरकार भारतीय क्षेत्र मे अपने सशस्त्र सनिको को जमाकर रहा हे। उन्होने पूर्वी तथा उत्तरी लद्दाख के क्षेत्र मे सडके बनाली है। पश्चिमी तिब्बत मे चीनियोमे सिक्याँग और ल्हासा की सडक, गार्टोक तथा तकला कोट से जोडने वाली सडक बनाली है।

भारत के शताब्दियो पुराने मित्र चीन ने, अकारण ही जबकि भारत ने किसी प्रकार की उत्तेजना प्रकट नही थी—भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा का अतिक्रमण किया और उसने ऐसे प्रश्न पर भारत के साथ विवाद खडा कर दिया, जिसे शान्तिपूवक हल किया जा सकता था। हम न तो कोई सामरिक तैयारी कर रहे थे, न हमने अनधिकृत रूप से किसी ऐसे अचल पर अधिकार करने की चेष्ठा की थी जो हमारा न था। न हमारी चीन के प्रति कोई ऐसी दुर्भावना ही थी जिसने चीन को ऐसी अनुचित कायवाही करने को विवश किया। सबसे बडी बात यह कि उसने उस विवाद को सुलझाने की भी कोई चेष्टा नही की जो स्वय उसीने खडा किया था। उसने कूटनीति का सहारा लेकर कानून को अपने हाथ मे ले लिया और ऐसे ढग से काम किया कि जो उसकी महान सभ्यता और सस्कृति के सवथा विरुद्ध था। वास्तव मे चीन की यह कायवाही शत्रुतापूण थी, जो न केवल भारत के प्रति, अपितु उन सभी देशो के प्रति भी, जो सयुक्तराष्ट्र सघ मे उसे प्रविष्ट कराने मे प्रयत्नशील रहे है। निस्सदेह चीन की यह आक्रामक कायवाही एशिया और अफ्रीका के उन देशो को अपने निणयो पर फिर से विचार करने के लिए बाध्य करेगी, जो उन्होने बाडुग सम्मेलन मे तय किये थे। क्योकि चीन की इस कायवाही ने एशिया के अ य सभी पडोसी राष्ट्रो को उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध मे आशकित कर दिया है। खासकर इसलिए भी चीन की यह कायवाही अनुचित है जबकि रूस और अमेरिका पश्चिम के शीतयुद्ध को समाप्त करने का जीजान से प्रयत्न कर रहे है।

कुचिन क्षेत्र में चीनी भारत बर्मा सीमा पर स्थित काचोकाग दर्रे तक अपना हक समझते है। दक्षिण में वे शाम और राज्यो के उन हिस्सो को अपना बताते है, जो सालवीन के पूर्व में है। ताओग, कचानिया, और वयाग को भी चीन से शिकायत होने लगी है। भारतवर्ष में चीन की इन विस्तारवादी हरकतों का न तो अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद ही से कुछ सम्बन्ध है, न चीन के साम्यवाद से। यह तो उसकी वह परम्परागत विस्तारवादी मनोवृत्ती है जो गत दो हजार वर्षों से चली आ रही है

कुमाय के तीन जिलो अल्मोडा, टिहरी गढवाल और पौढी गढवाल की सीमाय तिब्बत सीमा से मिलती है। दोनो देशो की सीमा को हमेशा से काली, अलकनन्दा और भागीरथी नदिया अलग करती है। इधर चीन ने पौढी गढवाल के चमोली तहसील के डेल्मीनके क्षेत्र बढाहाती पर अपना दावा पेश किया है। वह अल्मोडा जिले का भी कुछ हिस्सा हथियाना चाहता है। चीन ने शगरा, मन्ना, और बल्चा धुरा के दर्रे के निकट तथा पत्ता व टिहरी गढवाल के नीलिंग जाधेका गांगा पर अपना क्षेत्र होने का दावा किया है।

सन १९५४ के चीन भारत समझौते में उत्तरप्रदेश से तिब्बत जाने के लिए माना, बीती, कुगरी, बिगरी, दारमा और लिपुलेख दर्रों का उल्लेख हुआ है। दोनो देशो के बीच इनके अतिरिक्त और भी दर्रे है। लिपुलेख दर्रा सबसे कम ऊचाई पर है, जो १६७८० फुट पर स्थित है। दक्षिण पश्चिम तिब्बत से आसानी से इस दर्रे द्वारा भारत में प्रवेश किया जा सकता है। लिपुलेखके पास भारत तिब्बत और नेपाली सीमाए मिलती है। इस दर्रे से सबसे निकट का स्टेशन टनकपुर है, जो दर्रे से २२२ मील दूर है। इस स्टेशन से यात्री और सामान अस्कोट तक लारियो, कुलियो और खच्चरो द्वारा पहुँचाया जाता है। इस सडक से एकतरफा यातायात होता है। सडक अत्यन्त खतरनाक है। अस्कोट से लिपुलेख ९५ मील है। इस ९५ मीलके उत्तर मार्ग को पैदल ही पार किया जाता है। इस प्रकार लिपुलेख से अल्मोडा शहर मुकाम तक पहुँचने में १३ से १५ दिन लग जाते है। तार की लाइन पिथौरागढ में खत्म हो जाती है, जो टनकपुर से ९८ है। सिर्फ हरकारे ही इन सम्बन्ध बनाए रखते है। पिथौरागढ से आगे जरूरी कागज, सरकारी सन्देश, पुलिस की खबरें का तार व्यवस्था से पहुँचाये जाते है।

निस्सन्देह टनकपुर लिपुलेख मार्ग का सामरिक महत्व बहुत अधिक है। शताब्दियो से भारत तिब्बत,चीन और सिक्यांग के बीच व्यापार और तीर्थयात्रा इसी मार्ग से होता रही है।

१९४६ में सरकार ने टनकपुर से पिथौरागढ तक मोटर सडक बनाने का काम शुरू किया था। तब इस सडक का सरकारी दृष्टि से विशेष सामरिक महत्त्व नही

था। इस सडक को बनाने का उद्देश्य मैदानी हिस्सो से घर लोटने वाले कुमाऊँनी सिपाहियो की मलेरिया से रक्षा करना था। महायुद्ध से पूव ही इस सडक के निर्माण की योजना बन चुकी थी।

चीन ने अपनी सीमा मे तकलाकोट मडी तक, जो तिब्बतम समुद्र की सतह से १६ हजार फुट की ऊचाई पर है, मोटर सडक बनाली है और इस माग से मोटर यायायात जारी है। यह मडी लिपुलेख दर्रे के अति निकट है। तकलाकोट तक सडक बनाने के लिए चीनियो को ऊची पहाडियो को नही काटना पडा। इस भूमिमे अधिकतर वलुही भूमि है।

चीन ने लद्दाख के आठ हजार वग मील लम्बे चौडे भारतीय क्षेत्र को चीनी नक्शो मे अपना वतलाया है तथा दो सौ से अधिक मील पर कब्जा कर लिया है और अब लद्दाख स्थित भारत चीन सीमा पर चीन सरकार भारतीय क्षेत्र मे अपने सशस्त्र सनिको को जमाकर रहा हे। उन्होने पूर्वी तथा उत्तरी लद्दाख के क्षेत्र मे सडके बनाली है। पश्चिमी तिब्बत मे चीनियोमे सिक्याँग और ल्हासा की सडक, गार्टोक तथा तकलाकोट से जोडने वाली सडक बनाली है।

भारत के शताब्दियो पुराने मित्र चीन ने, अकारण ही जबकि भारत ने किसी प्रकार की उत्तेजना प्रकट नही थी—भारत की उत्तर-पूर्वी मीमा का अतिक्रमण किया और उसने ऐसे प्रश्न पर भारत के साथ विवाद खडा कर दिया, जिसे शान्तिपूवक हल किया जा सकता था। हम न तो कोई सामरिक तैयारी कर रहे थे, न हमने अनधिकृत रूप से किसी ऐसे अचल पर अधिकार करने की चेष्ठा की थी जो हमारा न था। न हमारी चीन के प्रति कोई ऐसी दुर्भावना ही थी जिसने चीन को ऐसी अनुचित कायवाही करने को विवश किया। सबसे बडी बात यह कि उसने उस विवाद को सुलझाने की भी कोई चेष्टा नही की जो स्वय उसीने खडा किया था। उसने कूटनीति का सहारा लेकर कानून को अपने हाथ मे ले लिया और ऐसे ढग से काम किया कि जो उसकी महान सभ्यता और सस्कृति के सवथा विरुद्ध था। वास्तव मे चीन की यह कायवाही शत्रुतापूरण थी, जो न केवल भारत के प्रति, अपितु उन सभी देशो के प्रति भी, जो सयुक्तराष्ट्र सघ मे उसे प्रविष्ट कराने मे प्रयत्नशील रहे हे। निस्सदेह चीन की यह आक्रामक कायवाही एशिया और अफ्रीका के उन देशो को अपने निणयो पर फिर से विचार करने के लिए बाध्य करेगी, जो उन्होने बाडुग सम्मेलन मे तय किये थे। क्योकि चीन की इस कायवाही ने एशिया के अन्य सभी पडोसी राष्ट्रो को उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध मे आशकित कर दिया है। खासकर इसलिए भी चीन की यह कायवाही अनुचित है जबकि रूस और अमेरिका पश्चिम के शीतयुद्ध को समाप्त करने का जीजान से प्रयत्न कर रहे है।

हम निस्सन्देह युद्ध से घृणा करते हैं और निश्चय ही हम युद्ध करना नही चाहते, परन्तु अपनी सीमाओ की रक्षा के लिए हमे अनिवार्य रूप से सक्रिय कार्यवाही करनी चाहिए जिससे कि हमारे सीमान्त मे रहने वालो के हृदयो मे आत्मविश्वास का जागरण हो जाय। इसके अतिरिक्त भारतीय राष्ट्र का एक सुदृढ चट्टान की भाति सगठित हो जाना भी चाहिए जिससे यह आक्रमण हमारे विनाश का कारण न बन जाय और हमारी निष्क्रियता चीन के आक्रामक इरादो को अधिक गति न दे सके। इस समय यह भी आवश्यकता है कि भारत और पाकिस्तान परस्पर मित्र हो जाय, और काश्मीर समस्या तत्काल सुलझा ली जाय, जिससे काश्मीर अचल मे पडी हुई दोनो देशो की सशस्त्र सेनाए सीमान्त की रक्षा के लिए खाली हो जाय। भारत भूटान, सिक्किम और नेपाल का भी रक्षक है। भारत पाकिस्तान सीमा सुरक्षा का प्रश्न दोना देशो का सयुक्त प्रश्न है। सीमा की सुरक्षा दोनो ही देशो के लिए वास्तविक महत्त्व की बात है। इसलिए भारत पाकिस्तान दोनो ही की सीमा रक्षा के लिए सम्मिलित रक्षापद्धति तयार करनी करनी चाहिए। हम यह न भूलना चाहिए कि यह भारत एव पाकिस्तान के करोड़ा नागरिको की सुख समृद्धि एव सुरक्षा का सयुक्त प्रश्न है।

चीन या किसी भी हमले से बचने का एकमात्र यही उपाय है कि हम देश को आर्थिक दृष्टि से मजबूत करे और हमारे पास ऐसे उद्योग हो, जहा आधुनिक प्रकार के हथियार तयार हो सके। इसके लिए हम विदेशो पर निभर नही रह सकते। चीन ने अपने यहा भारी उद्योगो के विकास को प्राथमिकता दी। आधुनिक शस्त्रास्त्रो के मामलो मे भी भारत का आत्मनिर्भर रहना ही आवश्यकता है। सनिक दृष्टि से भारत कमजोर देश नही है। वह किसी भी हमले का मुकाबिला कर सकता है। परन्तु ससार की बडी से बडी सेना भी तब तक कुछ नही कर सकती जब तक उस देश मे भारी उद्योगो की मजबूत बुनियाद न हो।

क्या हम विदेशी सहायता ले सकते है

ने मानते है और मे जानता हू कि विदेशी सरकारे हम तरह की सहायता देने को तैयार हो जायगी। परन्तु हम यदि अमेरिका या योरोप से आधुनिक शस्त्रास्त्रो की सहायता लेते है, तो उससे बडे खतरे पैदा हो जाने का भय है। ज्ञात होना चाहिए कि शस्त्रास्त्रो के निर्माता बडे व्यापारी, अपनी निजी शर्ते खरीदार देश पर थोपने लगते हैं। वे अपना माल मनमाने मूल्य मागते है। किसी देश के सकटग्रस्त हो जाने का मनमाना लाभ उठाते है। ये कारखाने विश्वभर मे अपनी शर्तों को थोपने के लिए कुख्यात है। इनसे बचने का एकमात्र उपाय, इस दिशा मे स्वावलम्बी बनना है। किन्तु चीन का विश्वासघात अक्षम्य है। हमने उस समय उसके सामने मैत्री का हाथ बढाया— जब अधिकाश देश उसके विरोधी थे। किन्तु हमारी मैत्री का उत्तर चीन ने

हम पर आक्रमण करके दिया।

किंतु हम सैनिक दृष्टि से हर आक्रमण का मुकाबिला करने मे समर्थ है ?

बेशक अब तो आवश्यकता इस बात की है कि हम देश को हर दृष्टि से आक्रमण का मुकाबिला करने मे समर्थ बनाये।

लेकिन क्या इस स्थितिमे भी हम तटस्थता की नीति को अपनाए रह सकते है ?

यदि हम ऐसा न करेगे तो भारत के महत्त्व को ही खो देगे। तटस्थता को छोडकर और कोई नीति हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल नही हो सकती। न हम सैनिक सहायता के लिए दूसरो पर निर्भर रह सकते है। पहिले हम इसी प्रकार की सहायता के चक्कर मे पडकर अपनी आजादी खो चुके है।

आपका क्या खयाल है कि स्वतंत्र पार्टी का सगठन देश के लिए हितकर होगा ?

नही हो सकता। उसमे कुछ पुराने लोग सम्मिलित हुए है, जो ऊपर से देखने मे तो बुद्धिमान प्रतीत होते है पर वे आधुनिक ससार की वास्तविकता से सर्वथा अनभिज्ञ है। हम सहअस्तित्त्व की नीति पर चल रहे है। इसी से ससार मे शांति स्थापित हो सकती है। चीन ने इस नीति को क्षति पहुँचाई है, तो भी हम इसी नीति पर चलते रहेगे।

नए युग के युद्ध ने राष्ट्रो की रक्षा का दृष्टिकोण बदल दिया है। आप चीन ही की बात लीलिए—वह चीन जिसे च्याग काई शेक का चीन कहते है, अपने ही हाथो से नष्ट हो गया। उसका ऐसा पतन हुआ कि अमेरिका ने कम्युनिस्ट चीन के मुकाबिले के लिए जो सैन्य सामग्री भेजी, वह कम्युनिस्ट चीन के हाथो बेच दी गई। उसकी मुद्रा का मूल्य शून्य रह गया। उन नोटो से कोई चीज नही खरीदी जा सकती थी और वे नोट आग जलाने के काम मे लाए गए। कम्युनिस्टो का चीन पर कब्जा हो गया और च्याग काई शेक को वहा से भागना पडा और अब वह फारमोसा मे अमरीका की शरण मे छिपा बैठा है।

हमारे देश मे स्वतन्त्रता आई और अपने आचल मे दुनिया भर की बुराइया लेती आई। हमने आज तक यह जाना ही नही कि हम स्वतन्त्र हो गए है। न हम आज तक यही जान सके कि हमारा देश के प्रति कर्त्तव्य क्या है ? हम तो अब केवल अपनी स्वार्थसिद्धि ही मे लग गए।

आप समझते है कि अनैतिकता हममे अपने ही भीतर से उभरी ?

आपने क्या देखा नही कि हमारी योजनाये लाखो, करोडो, अरबो तक जा पहुँची है, परन्तु पूरी एक भी नही हुई। आप बता सकते है इसका कारण क्या है ?

आप ही कहिए ?

स्पष्ट है कि ऊपर से नीचे तक छोटे से बड़े तक किसी भी सरकारी कर्मचारी का मन सेवाभाव, कर्तव्य और निस्स्वार्थ भावना से पूरित नहीं है। प्रत्येक वर्तमान कर्मचारी की बेईमानी का फल सम्पूर्ण भारत को भोगना पड़ रहा है। भले ही वह बेईमानी छोटी हो या बड़ी। जीवन का प्रत्येक विभाग भ्रष्टाचार से परिपूर्ण है। प्रत्येक नागरिक दूसरे को लूटने की ताक में है। फाइल उस समय तक निर्जीव पड़ी रहती है, जब तक कि आप रिश्वत नहीं देते। हर काम का मूल्यांकन कीजिए जिसका रेट भी निर्धारित है। सरकारी दफ्तरों में बेशुमार स्टाफ भरा है पर ये कर्मचारी जानते हैं कि वह बेकारी का नाश मिटाने को भरा है, काम करने को नहीं।

कम्युनिस्ट संसार यह भलीभांति जानता था कि कामरेड एम० एन० राय पहिले विदेशी थे, जिन्हें लेनिन ने अपने विश्वास में लिया और वह भी एक समय था जब वह रूस के बड़े बड़े कम्युनिस्ट नेताओं के समान ही समझे जाते थे। तब लेनिन ने ही उन्हें चीन के लोगों के विचारों का अध्ययन करने के लिए चीन भेजा था। लेकिन शीघ्र ही उन्हें कम्युनिस्टों के चरित्र और इरादों का पता लग गया और उन्होंने अपना शुद्ध समाजवादी दृष्टिकोण उनके सम्मुख रखा। इसका दण्ड उन्हें यह मिला कि उन्हें कम्युनिस्ट पार्टी से निकाल बाहर कर दिया गया। तभी उन्होंने एक भविष्यवाणी की थी। यह बात जून सन् १९५१ की है और यह भविष्यवाणी उनके पत्र, 'रेडिकल कम्युनिस्ट' में छपी थी।

मई सन् १९५१ के अन्त में पेकिंग से घोषणा की गई कि तिब्बत को चीनी सेनाओं ने शान्तिपूर्वक स्वतन्त्र कर दिया है। यह भारत और चीन के मैत्री सम्बन्धों में एक काँटे के समान गड़ा था। यह नेहरू की एशियाटिक डिप्लोमेसी के विपरीत बात थी। नेहरू कम्युनिज्म के प्रति प्रियभाव रखते थे क्योंकि यह साम्राज्य विरोधी संगठन था। पर वह जब तक भारत को न छुए, तभी तक नेहरू को प्रिय हो सकता था। यह स्पष्ट था कि कम्युनिस्ट का नेहरू को खुश करने का इरादा न था। परन्तु कम्युनिस्ट भी यह डिप्लोमेसी अपनाए हुए थे कि जब तक उनकी अभीष्ट सिद्धि नहीं हो जाती वह ऐसा ही करते रहेंगे। तिब्बत की शान्तिपूर्ण मुक्ति के समझौते के अनुसार चीनी सेनाएँ तिब्बत में प्रविष्ट होंगी और साम्राज्यवादी प्रभाव को नष्ट करेंगी। चीनी यह भलीभांति जानते थे कि अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद तिब्बत में कोई विदेशी प्रभाव न था। न वहाँ तक अमरीका की पहुँच थी। इस प्रकार यह भारत पर पीछे से प्रहार था क्योंकि नेहरू तो यह स्वप्न देख रहे थे कि वह जाग्रत एशिया के नेतृत्व में साम्राज्य नाश के भागीदार होंगे और संसार में नैतिकता का वातावरण स्थापित करने में स्टालिन का हाथ बटावेंगे। तिब्बत में कम्युनिज्म का प्रतिनिधित्व चीन की बढ़ती हुई सैन्यशक्ति करेगी। कम्युनिज्म का यह नया सैनिक रूप

कोरिया मे चीनी पराजय का बदला लेने के लिए एशिया मे और कई अनेक विजय प्राप्त करने का सूचक है। सभव है कि भारत की बारी शीघ्र न आए पर तु भारत को होशियार रहने की तो आवश्यकता है ही। चीन विश्व का सबसे खतरनाक आक्रामक और विस्तारवादी देश है। इसलिए चीन की विस्तारवादी प्रवृत्ति को रोकना न केवल भारत की समस्या है, अपितु अमरीका और सोवियत रूस जसे महान देशो को भी उसका निकट भविष्य मे सामना करना पडेगा।

आपके रयाल मे क्या रूस को यह बात मालूम है ?

अवश्य मालूम है और वह इस प्रश्न को नजरअ दाज नही कर सकता। देखा जाय तो चीन और रूस की सीमाए भारतीय सीमा त से भी अधिक अनिश्चित और अनिधारित है। इसलिए भारत चीन सीमा विवाद से रूस का चिंतित होना स्वाभाविक है और वह पूरी तरह सजग है।

पर तु सोवियत रूस और चीन तो परस्पर मित्र है ?

जरूर है। पर तु आप शायद यह बात नही जानते कि दोस्ती केवल सिद्धा तो पर निभर नही रहती, खासकर राजनतिक मैत्री।

तो आप समझते है कि भारत की तटस्थता नीति ठीक है ?

निस्सदेह। हमे यह न भूलना चाहिए कि भारत एशिया का अग्रणी राष्ट्र है। इसे सोवियत रूस और अमेरिका दोनो ही जानते मानते है और चीन भी जानता है। तभी तो चीन भारत मे उलझ रहा है। वह स्वय एशिया के नेतृत्व के सुपने देख रहा है और भारत पर उसके गुस्से का कारण यही है।

तब तो भारत यदि अपनी तटस्थता की नीति त्याग देता है तो वह एशिया का नेतृत्व नही कर सकता ?

कसे कर सकता है ? उदग्र एशिया अब न सोवियत रूस की दासता पसन्द करता है, न डालर व अनी अमेरिका की। वह तो स्वतन्त्र भारत का अनुगामी होकर अपने ही मे सत्रशक्ति सम्पन्न होना चाहता है।

किन्तु चीन बौद्ध देश है। स्वाभाविकतया सब एशियाई बौद्ध देश उसके साथ हो जाएगे ?

माओत्सेतुग को जो जीवित बौद्ध घोषित किया गया है, इसी से आप ऐसा कह रहे है। यह चीन वास्तव मे न बौद्ध देश है न बौद्ध हितैषी देश है। वह तो बौद्ध धम के मूल को ही विनाश करने पर आमादा है। इसीसे उसने वतमान बौद्धो के देश तिब्बत पर अपना प्रहार किया है और दलाईलामा जो सम्पूण बौद्ध जगत मे जीवित बुद्ध माने जाते है उनके स्थान पर माओत्सेतुग स्वय जीवित बन गए है।

पर तु आखिर इसकी जड मे गहरी बात क्या है ?

क्या आप अभी तक नहीं समझे यह बात ?

नहीं, मैं तो नहीं समझा ?

खैर तो सुनिए। मैं विस्तार से यह गम्भीर रहस्य आप पर प्रकट करता हूं। सन् १९२६ में जब जिन्ना ने पहिले पहिल भारत की ओर से मुंह मोड़कर दुनियाँ के मुसलमानों का एक संगठन पानिस्लाम के नाम से करना ठाना, तभी महामना मालवीय जी ने उस आन्दोलन की गहराई पर विचार किया और उन्होंने सोचा कि यदि जिन्ना उस आन्दोलन में सफल हुए और उन्होंने दुनियाँ के मुसलमानों का संगठन कर लिया तो हिन्दुओं का कहीं ठौर ठिकाना न रह जायगा। उन्होंने एक नई सूझ बूझ का परिचय दिया, कि एशिया के सब उन देशों को, जिनके निवासी बौद्ध हैं, भारत के प्रति अभिमुख किया जाय—यह कहकर कि भारत बुद्ध का जन्मस्थान होने के कारण बौद्ध देशों के लिए पवित्र तीर्थ है। उन्होंने बौद्ध गया का उद्धार किया, काशी में सारनाथ में बौद्ध केन्द्र की स्थापना की, दिल्ली में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर के साथ बुद्ध का मंदिर भी बनवाया, तथा हिन्दूमहासभा के प्रधान पद के लिए बौद्धस्थविर को लंका से बुला भेजा। इन सब प्रयत्नों का यह शुभ परिणाम हुआ कि समस्त बौद्ध एशिया सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के प्रति उन्मुख हुआ। जिन्ना का पानिस्लाम तो महायुद्धों के चक्कर में फंसकर हवा हो गया, पर भारत एशियाई बौद्ध देशों का तीर्थ बन गया। इसके बाद जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो एशियाई बौद्ध देशों के अतिरिक्त और बौद्ध देशों का भी वह राजनीतिक तीर्थ बन गया।

इस बात को भला चीन कैसे सहन कर सकता था, जब वह स्वयं एशिया का नेतृत्व करने का स्वप्न देख रहा था। खासकर इसलिए भी कि उसे सोवियत रूस का सान्निध्य विश्वास और राजनीतिक सहयोग प्राप्त था। उसने निश्चय किया कि पहिले बौद्ध धर्म का ही मूलोच्छेद किया जाय और उसने तिब्बत पर अपने खूनी पंजों का प्रहार किया। उसका उद्देश्य दलाईलामा के सब प्रभावों को नष्ट कर देना था, पर दलाईलामा भाग कर साफ बचकर भारत में आ गए। भारत ने उन्हें शरण दी, जो अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टाचार था। इस पर चीन भारत से खार खाने लगा और उसने भारतीय सीमाओं का अतिक्रमण करके अपनी खीझ उतारी।

परन्तु नेहरू का तो यह कहना है कि हम न किसी के शत्रु हैं न मित्र। केवल पाकिस्तान ही हमें शत्रु समझता है और कोई देश नहीं ?

लेकिन यदि यही बात है तो हमारे मित्र कौन हैं ? अब तक तो हम चीन और सोवियत संघ को अपना मित्र समझते रहे हैं और अमरिका तथा ब्रिटेन से चौकन्ने से होते रहे हैं। अब चीन तो खुल्लमखुल्ला हमपर आक्रमण कर रहा है और हमारा मित्र सोवियत संघ उसकी इन आक्रामक कार्यवाहियों को चुपचाप देख रहा है। वह चीन

की निन्दा करने को तैयार नही है। हम अभी तक राष्ट्रमण्डल मे है, इसलिए सम्भवत नेहरू उन्ही देशो को अपना मित्र समझते है, जो राष्ट्रमण्डल मे सम्मिलित है।

लेकिन नेहरू तो निरपेक्ष दृष्टि रखते है ?

पर रख कसे सकते है ? जब हमने कुछ देशो को मित्र मान लिया तो अपने आप ही कुछ देश हमारे शत्रु बन गए।

पर हम तो अपने मित्रो के गुट मे भी सम्मिलित नही है ?

तो इस मित्रता से क्या लाभ है, जब वे समय पर हमारे काम न आएं ? मित्र तो वह जो कठिन समय पर हमारा हाथ दृढता से पकडे। यदि वह ऐसा नही करता तो वह मित्र नही। अब आप बताइये, भारत का वह कौन मित्र है, जो यदि आज भारत पर सकट आए तो उसके आडे आए ?

दूसरे महायुद्ध की समाप्ति पर सोवियत सघ ने कई देशो पर अधिकार कर लिया था। पोलैण्ड, बाल्टिक राज्य, रूमानिया, बलगेरिया, अल्बानिया, हगेरी और कोरिया ये सब प्रदेश आज उसके हाथ मे है। उसने अरब देशो मे से सीरिया पर अधिकार करना चाहा और अब इराक पर उसकी नजर है। जहा जहा उसका अधिकार है, उसने सैनिक शक्ति से अपना प्रभुत्व कायम रखा है, लेकिन अमरीका ने जिससे नेहरू दूर ही दूर रहते रहे है किस देश पर अपना अधिकार किया है ?

आप क्या नही जानते कि दूसरा विश्वयुद्ध न ब्रिटेन ने, न फ्रान्स ने, न सोवियत सघ ने जीता है। इन सबको तो हिटलर समूचा ही निगल गया होता। उसने तो अमेरिका के आगे ही हथियार डाले। जब हिटलर अफ्रीका तक जा पहुचा तो उसे वहा से निकालने के लिए अमरीका सातसौ समुद्री जहाजो का बेडा लेकर वहा जा धमका। जनरल रोमेल की सेना दोनो ओर से घिरगई और उसके लिए अपनी सेनाओको जहाजो मे बठाकर इटली भाग जाने के सिवा कोई चारा न रहा। जापान से अमेरिका अकेला ही निबटा। सोवियत सघ ने तो कह दिया कि वह केवल जमनी से ही मुकाबला कर सकता है। युद्ध के दौरान मे अमेरिका ने और भी कई देशो की सहायता की और कई स्थानो पर अपने सनिक अड्डे स्थापित किए, लकिन किसी देशपर अधिकार नही किया। यदि हम चीन के विरुद्ध अमेरिका से सहायता लेते है, तो उससे हमे यह डर नही है कि वह हमारे देश मे पाव पसार बठेगा। वह यदि हमारे लिए युद्ध मे कूदता है तो हमारी रक्षा के लिए नही— कम्युनिज्म की जड उखाड फकने के लिए।

क्या विश्वशाति के लिए युद्ध अनिवाय है ?

अब युद्ध निस्स देह एक बीते हुए युग की कहानी रह गई है। आज ससार एक नए मोड पर आ खडा हुआ है। इसीसे रूस और अमेरिका जिनकी पाकेट मे अनगिनत विश्व सहारक शस्त्रास्त्र पडे है, अब शाति का मतलब समझते जा रहे है और

निःशस्त्रीकरण पर विचार कर रहे है। इसका यह मतलब नही है कि रूस या अमेरिका प्रेम या अहिंसा की भाषा सीख गए है, बल्कि वह यह अनुभव करने लगे है कि विज्ञान का उन्होने जिस ढग पर उपयोग किया है, उससे निश्चय ही उनका सर्वनाश हो जायगा।

आप समझते है कि बिना ही युद्ध के दुनियाँ की सब समस्या सुलझ जायेगी और दुनियाँ मे शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जायगा ?

समस्याएँ तो युद्ध से भी न कभी सुलझी, न सुलझेगी। युद्ध के सदैव यही परिणाम होते रहे कि दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ टकराती रही और फिर से सशक्त होने तक चुप पडी रही। शक्ति सचय करके फिर लड पडो। लडने के कारण सदैव ही बने रहे। परन्तु अब राजाओ का स्वेच्छाचारी शासन दुनियाँ मे नही है। जनता का अपने पर शासन है। इसलिए अब तो मानव-समाज को यही विचार करना है कि सब लोगो को जीवन की सुविधाएँ प्राप्त होती रहे। जब तक समाज के जीवन मे विषमता है, एक धनी है एक भिखारी, एक सम्पन्न है एक भूखा, तब तक मानव समाज मे शान्ति की स्थापना नही हो सकती और उसका एकमात्र उपाय है सर्वोदय। सबकी एक साथ उन्नति, सबका एक साथ विकास।

क्या भारत सरकार सर्वोदय का कार्य कर रही है ?

भारत सरकारके पास ५५ लाख कर्मचारी है और अरबो खरबो रुपया है। रुपए की आमद का प्रवाह अटूट है। परन्तु यह सत्ता की सरकार है, जनता की नही। इसीसे उसके विकास मे बाधा पड रही है और उसकी बहुत सी शक्ति भीतरी सघर्ष मे समाप्त होती रहती है।

योजनाओ को असली जामा अभी तक क्यो नही पहनाया जा सका ?

धन की कमी से। कही बिना धन के भी कुछ होता है? जब बिना धन के उन्नति की ओर एक कदम भी नही उठाया जा सकता था, तो पूजीपति क्यो बुरे है ? हाँ एक बात है। धन का सदुपयोग हो। गांधीजी कहते थे धन दूसरो की धरोहर है, सौ हाथो कमाओ और हजार हाथो से बाँटो। अमेरिका का उदाहरण लो, भारत की अपेक्षा वहाँ करो का भार कम नही। इस पर भी वहाँ इतने बडे बडे कारखाने बन गए है जिन्होने ससार भर का व्यापार अपने हाथो मे ले लिया है।

आपकी समझ मे इसका कारण क्या है ?

यही कि वहा की सरकार लोगो को उनकी सामर्थ्य के अनुसार अधिक से अधिक कमाने का अवसर देती है। इसके विपरीत अभी हमारा देश अपने पाँव पर खडा भी नही हुआ और उस पर उन नीतियो के परीक्षण हो रहे हैं जो उन्नत देशो मे, जिनकी अर्थ व्यवस्था किसी मार्ग पर बढ गई है, अमल मे लाई जा सकती है।

तो आप समाजवादी सिद्धा तो के विरोधी है ?

यदि समाजवाद का यही अभिप्राय हो कि जनता की जेबो मे जो कुछ हो निकल कर सरकार की जेबो म चला जाय और सरकार योजनाओ के नाम पर बेरहमी से उस रकम को पेटू और बईमान ठेकेदारो की जेबो मे ठूसदे तो बेशक वह समाजवाद जनता के हित मे नही हे न ऐसी सरकार जनता की भलाई कर सकती हे ।

आज के भारतीय नवयुवको के सामने जीवन का कोई उद्देश्य नही है न उनमे वह उत्साह और सरगर्मी हे जा स्वत त्रता से पहिले जीवन के प्रत्येक अग मे दिखाई देती थी । दूसरे शब्दा म नवयुवक जीवन की गाडी मे सवार है तो, परन्तु नही जानते कि उनका ग तव्य स्थान कहा हे ?

आप यह कहते हे—पर मै ता ऐसा नही देखता । मुझे तो ऐसा प्रतीत होता हे कि विद्यार्थी अपने जीवन का लक्ष्य बता रहे है । वे रेलगाडियो का चलना रोक देते हे । सिनेमावाले उ हे रियायती टिकटे न द तो उन पर टूट पडते हे, उन्हे क्षति पहुँचाते हे । पुलिस स टक्करे लते हे । दश की सम्पत्ति को हानि पहुँचाने मे नही झिझकते । स्कूलो मे कालेजो मे आए दिन हडताले होती है । वाइसचासलर और प्रिन्सिपल को कमरो मे बन्द कर दिया जाता है । कभी कभी तो अध्यापको का कत्ल कर दिया गया हे । यह लोकत त्र का चमत्कार है । भविष्य की भविष्यवाणिया हैं । आजके विद्यार्थी जो स्कूलो कालिजो मे हगामा करते है, हडतालें करते हे, कल वे कारखानो मे, उद्योग केन्द्रो मे हगामे करेगे और देश को अराजकता मे आ पटकेंगे ।

अग्रज चले गये पर अग्रजियत हमे दबोचती चली आ रही है । हमारा खान पान, रहन सहन सब कुछ बदल रहा हे । हमारा अभिजात्य वग और भी तेजी से उधर जा रहा हे । घरेलू जीवन का ढाचा बदल रहा है । पहिले हमारे आन द और मनोरजन का केन्द्र हमारा परिवार था । सब हँसी खुशी मिल जुल कर रात को बैटते, खातेपीते, विनोद करते थे । अब हमारे सामाजिक जीवन का केन्द्र होटल और रेस्टो रेन्ट हो गए हे । अब हम अपने अतिथि का सत्कार घर मे नही—होटल मे करते हैं । हमारी वेष भूषा तेजी से बदल रही है । पुरुषो के वेश मे पतलून ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया हे । चपरासी और मेहतर भी पतलून पहिनते है । स्त्रियाँ भी अधनग्न होचुकी है । आगे क्या होगा—यह अब देखना है । ज्यो ज्यो नैतिकता का स्तर गिरता जाता है, कामुक भावनाएँ बढती जाती है । स्त्रियो के अग नगे होते जाते है । वे अब खुल्लम-खुल्ला सिगरेट पीती है । हाल ही मे जो नानावती मुकदमा चला ह, उसने हमारे वतमान सामाजिक जीवन पर पूरा प्रकाश डाला है । बथ कन्ट्रोल के क्लीनिको ने नैतिकता के पतन की ओर एक धक्का दिया है । इस प्रकार हमारा सामाजिक जीवन बर्बाद हो रहा है ।

साहित्य में शृङ्गार के सम्बन्ध में आपका क्या कहना है?

शृङ्गार के नाम पर हमने नग्न अतिशय का चित्रण किया। उसपर मुगल दरबार के विलास का पूरा प्रभाव है। क्योंकि सम्पूर्ण रीति शास्त्र ही मुगल दरबार से प्रभावित राजाओं के आश्रित कवियों द्वारा निर्मित हुआ। अब आप जब स्त्री तत्त्व को जीवन सगीनी बना रहे हैं, इस शृङ्गार का अन्धानुकरण करते रहेंगे? यदि आप ऐसा करेंगे तो सम्भवतः अपनी ही पत्नियों से आप मार खाएँगे।

छायावाद और रहस्यवाद के सम्बन्ध में आप क्या कहते हैं?

तीन को फासी और शेष सबको कालापानी। सबश्री प्रसाद, महादेवी वर्मा और पंत को फासी और बाकी छायावादियों को कालेपानी का पहली कलम हुक्म दूँ, यदि अधिकार पाऊँ। यह जो यह धारा बही है, जीवन की बाढ़ है, जिसमें रुदन, पीड़ा, विरह और वासना के ऐसे भाव-प्रतिभाव हैं जो कल्पित, असत्य, अस्थिर और बेसमझी से भरे हुए हैं। उस कविता को पढ़कर पाठक को न आनंद आता है, न उसे जीवन को कोई राह मिलती है। वह तो कविता पढ़ता है और भौंचक सा कवि को देखता रह जाता है।

आपने अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' में तो इनकी बड़ी प्रशंसा की है?

वह प्रशंसा नहीं विश्लेषण है। शरीर के मल, मूत्र, मज्जा और रक्त का जब विश्लेषण होता है, तो उसमें बड़े बड़े तत्त्वों को प्रकट करना होता है, पर उसी से रोग का निदान प्रमाणित किया जाता है। आप इस बात को मत भूलिए कि विज्ञान दार्शनिक तत्त्वों का शत्रु है। अज्ञेय तत्त्वों की बाबत मीमांसा होती है, परन्तु उनका प्रत्यक्ष प्रयोग विज्ञान है। विज्ञान शास्त्र ज्यों ज्यों मनुष्य के निकट आता जाएगा, दार्शनिक शास्त्रों की धज्जियाँ उड़ती जाएँगी। जीवन का स्थिर सत्य विज्ञान में है दर्शन में नहीं। इसलिए हमारी कविता और साहित्य भी विज्ञान पर आधारित होने चाहिएँ जिसमें जीवन का स्थिर सत्य हो, विचार हो, प्रगति हो, हास्य हो, संगीत हो, रति हो, अनुराग हो, ज्योति हो, प्रकाश हो।

प्रगतिवाद के सम्बन्ध में आप क्या कहते हैं?

वाद में नहीं प्रगति में तो आशा ही आशा है। पर यह तथाकथित प्रगतिवाद तो राजनीतिक गुलामी में जकड़ा हुआ है। सच तो यह है प्रगति के बिना क्रांति हो नहीं सकती। सक्रांति और विश्व-दर्शन ही प्रगतिवाद के जन्मदाता हैं। फ्रांस और रूस की सक्रान्तियों ने ही इन दोनों देशों के साहित्य को प्रगतिशील बनाया। आज के हिंदी के साहित्यकार वास्तव में अधिकांश अंग्रेजी के पण्डित हैं। वे अंग्रेजी में सोचते हैं और अनुवाद करके हिन्दी में लिखते हैं। इसीसे उनकी लेखनी का चमत्कार फीका

रहना है।

क्या हि दी मे कोई ऐसा साहित्यकार नही, जिसे हम दूसरी भाषा के साहित्यकारो के समक्ष रख सके ?

नही, ऐसा नही है। सवश्री मथिलीशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी और राहुल जी हिन्दी के प्रतिनिधि साहित्य अतिरथी है। 'मिश्रब धु हिन्दी के भीष्म पितामह है, जिनके साथ रामचन्द्र शुक्ल और महावीरप्रसाद द्विवेदी एण्ड कम्पनी ने अन्याय करके उन्हे पीछे धकेला है। उनकी निस्वाथ हिन्दी सेवा अमूल्य है।

आप साहित्यकार कसे बने ?

मे जन्मजात साहित्यकार हूँ। कभी मेने ध्यान से साहित्य का अध्ययन नही किया, न मेने उसके नियमो की परवाह की। साहित्य जसे मेरे जीवन मे पहले ही प्रविष्ट था। मे अपने बाल मित्रो को गद्य पद्य मे लम्बे लम्बे पत्र अतिरजित भाषा मे लिखा करता था। अपने रचे छन्द हारमोनियम पर गला फाड फाडकर गाया करता था। मेरी पहली पद्य रचना सम्भवत सन् १६०६ मे लाजपतराय के माण्डले निर्वासित होने पर 'श्रीवक्टेश्वर' पत्र मे छपी थी।

आपको गद्य काव्य की प्रेरणा कहा से मिली और आपने पद्य न लिखकर गद्य काव्य ही क्यो लिखा ?

मुझे कभी किसी से कोई प्रेरणा नही मिली। मेरे मन मे लहर आई और मैंने लिख डाला। मेरी अन्त वासना ही मेरी प्रेरणा है। बचपन मे मै कविता ही लिखता था। अब भी कभी कभी लिखता हूँ, पर छपाता नही। मुझे कविता के लिए तुतलाकर बोलना तथा भाषा के प्रवाह को तोड मरोडकर गठरी बाधना अच्छा नही लगता। मेरा विचार है कि साहित्य का नैसर्गिक सौदय गद्य मे है, पद्य मे नही। मै अप्रतिहत गति से लिखता हूँ, मेरा वेग बहुत है। स्वामी दशनानन्द को मैने एक रात मे एक पुस्तक लिखते देखा था। बचपन का मेरा वह प्रभाव कायम है। और मेने भी एक रात मे एक पुस्तक लिखी है। १००-१०० पृष्ठ फुलस्केप के ढेर मैने एक-एक रात मे लिखकर किए है। वह वेग अब धीमा हो गया है। तब आवेग मे लिखता था, अब सोचकर। शायद यही कारण है कि पद्य लिखने म मेरी प्रवत्ति नही हुई। क्योकि वहा तो भाषा की बाध बूध करनी पडती है, पद पद पर अटकना पडता है। अटक अटककर चलना मेरा स्वभाव नही। इसी से मेरे गद्य मे ही पद्य का भाव सौन्दय आगया। यही गद्य काव्य के जन्म का कारण हुआ।

आपको लोह लेखनी का धनी क्यो माना जाता है ?

मेरी भाषा के तीखेपन और विचारो की उग्रता के कारण मुझे लोहलेखनी का धनी कहा गया। मेरी स्पष्ट और सीधी तीर सी चुभनेवाली वाणी भी इसका कारण

हो गया तो है। इसका कारण यह है कि मेरा सारा ध्यान ... पना ... और स्थिर चिर सत्य ... गया है। मैं ... । गति कामना भी है। ... मुझे ... नहीं गाता। परन्तु मैं मनुष्य ... पीड़ा ... और ... पर मेरा ... मोह है। उनके दुःख दर्द ... देखते ही मैं आपे से बाहर हो जाता हूँ। ... दरिद्र हूँ। दरिद्रता ... भोगा ... माता पिता ... है। ... जनों के क्रूर और स्वार्थी जीवन ... स्वभावतः क्रुद्ध हूँ। यही कारण है कि जब ... प्रसंगों पर ... तो मैं अत्यन्त उत्तेजित और असंयत हो उठता हूँ। ... मेरी भाषा और भावों में ... सत्य और ओज के दर्शन हो जाते हैं। उसी ... यह ... उपाधि मुझे ... नी।

क्या आप ... से प्रभावित हैं ?

बिलकुल नहीं। मैं अपने ही ... हूँ। मेरा साहित्यसम्पदा मेरी अपनी है। उसमें किसी का साझा नहीं। ... मैं ... से स्पर्द्धा करता हूँ और हजारी प्रसाद द्विवेदी ... उनकी 'बाणभट्ट की आत्म कथा' बेजोड़ है। ... मधुसूदन को ... मानता हूँ। ... मुझे प्रिय है, और रवीन्द्र के कथा ... दृष्टि से ... संस्कृत में भास जैसा भाषा सौष्ठव अन्यत्र नहीं है। ... और शिष्टाचार ... पर खत्म है। ... प्रकृत कवि ... प्रतिष्ठा भूमि पर है। ... साहित्य ... है। वह है तुलसीदास। ... विश्व साहित्य में दूसरा नहीं हुआ। उसके अमरत्व और ... कारण उसकी अखण्ड अपरिसीम तल्लीनता है, जिसमें भक्ति, पाण्डित्य, भाषा अधिकार, ... कल्पना और प्रतिभा ... अमरत्व उत्पन्न कर दिया है। ... विशिष्ट जनों के लिए नहीं, सवजन ... लिए ... वितरण किया।

'... भूति ... भाई।
सुरसरि सम सब ... हित होई ॥'

... पाकर भाषाएँ ... फूल ... हो जाया करती हैं, पर जब कभी हिन्दी पर यह संकट आयेगा तो तुलसी की भाषा उसे ... में बहुत सहायक होगी। हिन्दू धर्म का ... स्थायी ... तुलसी ... किया है।

आप लिखते कैसे है ?

उसका वास्तव में कोई नियम नहीं है। कभी कभी तो मैं ... दिन रात सोता रहता हूँ और कभी लिखने में दिन-रात ... हुए, उसका ज्ञान नहीं रहता। लिखते समय मैं केवल लेखक ही नहीं रहता, अपनी सृष्टि का द्रष्टा भी रहता हूँ।

भावुकता के नाजुक प्रसगो पर कभी कभी तो मेरी हालत ऐसी खराब हो जाती है कि मै कई दिन तक किसी से बातचीत करने के योग्य भी नही रहता। लिखने से पहले मे कोई तयारी नही करता—खासकर कथा साहित्य की रचना मे। सिर्फ विरोधी तत्त्वो का मन मे उद्दीपन करता हूँ। सुलगने लगता हूँ, तो कलम उठाता हूँ। फिर वह कलम नही, दुधारा खाण्डा हो जाता हे। मै आगा पीछा नही सोचता। चौमुखी मार करता हूँ। ऐतिहासिक उपन्यासो मे मै ऐतिहासिक तथ्यो को पीछे बैक ग्राउन्ड मे फेक देता हूँ और स्थिर सत्य के आधार पर कल्पना मूर्तियो को आगे ले आता हूँ। मेरी वह कल्पना मूर्ति बनती हे दूल्हा, और ऐतिहासिक तथ्य बन जाते है बराती। बस यही मेरे कथा साहित्य का टेकनीक है। कहानी मे मै मानव चरित्र को नही—चरित्र के प्रेरक भावो को अधिक विकसित करता हूँ। परन्तु विशद् व्याख्यात विषयो पर मे खूब अध्ययन और प्रमाणो की धूम धाम से आगे बढता हूँ, आलोचक के लिए इतनी सी भी सन्धि नही छोडता।

क्या साहित्य से जीविकोपार्जन हो सकता हे ?

देख तो रहे हो मेरा घर। कोई कल्पना कर सकता है कि यहा कोई भला आदमी रहता होगा। परन्तु समाज मे जिस आदमी की कोई जरूरत नही है, जो न रिश्वत दे सकता है न सिफारिश करा सकता हे, न खुशामद कर सकता है, न तिकडम, यह उस साहित्यकार का जीवन है। असहाय और एकाकी। सन '३६ मे मैने प्रक्टिस छोडी। तब मेरी ३००० मासिक की प्रक्टिस थी। मुलाकात की फीस लेता था। एक बार श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन को भी मुझसे मिलने के लिए तीन दिन प्रतीक्षा करनी पडी थी। परन्तु मुझे साहित्य और प्रक्टिस दोनो मे से एक वस्तु चुननी थी। मैने साहित्य चुना। चुना नही, उसे त्यागने से इन्कार कर दिया। इससे और सब स्वय ही छूट गया। अब मे सोलह आने प्रकाशको की दया पर निर्भर हूँ। परन्तु मुझे दुःख नही। मे इच्छा दरिद्र पुरुष हूँ और अपनी साहित्य सम्पदा से सम्पन्न हूँ।

आपके मनोरजन का विषय क्या है ?

उत्तम व्यजन अपने हाथ से बनाकर मित्रो को खिलाना या बच्चो के साथ गप्पे उडाना।

क्या आप साहित्य से ऊबे नही ?

मैने जीवन से ऊबना नही सीखा, उससे खेलना सीखा है। साहित्य मेरा जीवन हे, जीवन का शृङ्गार हे, उससे ऊबना कैसा ?

आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना कौन सी हे ?

'वैशाली की नगरवधू' जिसपर मैने अपनी ८० वर्ष की सचित चालीस साहित्य-सम्पदा लुटादी है।'

क्या साहित्य से साधारण आदमी [illegible] ?

हाँ, जो सच्चे [illegible] साहित्यकार [illegible] लिखेगा वह साहित्य नहीं लिखेगा, रोटियाँ लिखेगा। आजीविका के प्रलोभन में लिखा [illegible] नहीं सकता। उत्तम साहित्य की रचना के लिए तीन बातों की आवश्यकता है — १ — आत्मा में पूर्णानन्द की अनुभूति, २ — महामानवता की उच्चतम भावना और ३ — सहज तल्लीनता। ये तीनों वस्तु आजीविका के सम्मुख कायम नहीं रह सकतीं। फिर साहित्यकार सुख दुख, रति विरति, पाप पुण्य का स्रष्टा दृष्टा होता है। यदि सुख दुख, रति विरति, पाप पुण्य यदि उसके भीतर हो तो वह उनका ठीक ठीक चित्र नहीं खींच सकता। मैं साहित्यकारों से कहूँगा कि वे साहित्य से अपने जीवन का शृंगार करें, उससे पेट भरने की कोशिश न करें। इसके अतिरिक्त उनमें अनुशासन, संगठन, निष्ठा, और आत्म विश्वास की बड़ी आवश्यकता है। विशेषकर नये लेखकों को साहित्यकार बनने से प्रथम किसी साहित्यकार का अन्तेवासी बनना चाहिए। और एक बात है। आज का कवि आत्मा से भोगी है। वह सर्वदा वासना की कल्पना में डूबा रहता है। इससे उसका चरित्र तथा शरीर कभी स्वस्थ नहीं रह सकता।

आप उपन्यास कम लिखते हैं ?

आपको सुनकर आश्चर्य हो सकता है कि मैंने विश्व के बहुत कम नामांकित उपन्यास पढ़े हैं और बहुत कम प्रसिद्ध उपन्यासकारों के नाम जानता हूँ। अभारतीय भाषाओं के उपन्यासों की बात दूर, भारतीय भाषाओं के भी उपन्यासों और उनके रचयिताओं से मैं बहुत कम परिचित हूँ। यहाँ तक कि यही बात सच्चे अर्थों में हिंदी भाषा के उपन्यासों और उनके लेखकों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। प्रेमचंद तक के पूरे उपन्यास मैंने नहीं पढ़े। उनके 'गोदान' का देश विदेशों तक में डंका बज रहा रहा है पर मैंने अभी तक उसे पढ़ा ही नहीं, पढ़ने की प्रवृत्ति मन में हुई ही नहीं। अज्ञेय जी के 'नदी के द्वीप' और बहुत से अन्य उपन्यास जिनकी आलोचना जगत् में निरंतर चर्चा चलती रहती है, उनके भी मैंने दर्शन नहीं किए और यदि वे मेरे सम्मुख कभी आ भी जाएँ तो वे बिना ही पढ़े मेरे पास उधर उधर पड़े रहेंगे, जैसे प्रेमचंद का ख्यातिलब्ध गोदान। यदि आप मुझसे पूछें कि हिंदी में कौन कौन अच्छे उपन्यास और उपन्यासकार हैं तो सचमुच मैं बगलें झाँकने लगूँगा। हाँ, अपने उपन्यासों को तो मैं दस बीस, सौ पचास बार पढ़ चुका हूँ, पढ़ता ही रहूँगा, कभी नहीं ऊबता। हर बार उनमें मुझे नया रस मिलता है।

भारतीय और अभारतीय उपन्यासों के प्रति मेरी यह उदासीनता और अज्ञान और अपने उपन्यासों के प्रति यह आसक्ति न तो आलस्य और आत्मनिष्ठा पर आधारित है, न जड़ता और अहम्मन्यता पर। असल बात यह है कि उपन्यासों के पढ़ने में

मेरा मन ही नही लगता । दो चार पृष्ठ पढने के बाद ही जी घबराने लगता है । ऐसा प्रतीत होता है जसे व्यथ समय नष्ट हो रहा है । एक बात और कह दू—ताश-शतरज या दूसरे ऐसे ही हल्के भारी खेल भी म पूर मनोयोग से नही खेल सकता । दम पाच मिनटमे ही मेरा जी ऊब जाता है । इसी से सदैव इन खेलोमे बाजी हार जाता हूँ । ठीक वसी ही मनोवृत्ति मेरी उप यासो के पढने क समय हो जाती है । भीड भाड स म भी बहुत घबराता हूँ । मेले ठेले मे बहुधा नही जाता, कभी कभार मुझे कायवश शहर जाना पडता है तो मै बहद परेशान हो उठता हूँ । शात, एका त, निस्तब्ध वातावरण मे मे प्रसन्न रहता ह । बहुधा उप यासो के पढने म मुझे भीड भाड मे फस जाने जसी ही परेशानी अनुभव हाती है । ऐसा प्रतीत होता है कि जस म रेलगाडी के ठसाठस भरे डब्बे मे बठा हूँ—तीसरे दर्जे के डब्बे मे – जहा कुछ देहाती किसान, कुछ बेतुके से उट पटाग स्त्री पुरुप अपनी अपनी हाक रहे है । कोई मुकदमे की चचा करता है, कोई घर गिरस्ती का रोना रो रहा है, कोई छन नइनवेली का लिए प्रेमापलाप कर रहा है, कोई थूक रहा है, कोई खास खखार रहा है, कोई ताश खेलता—बीडी पीता है, कोई हँसता है, कोई लडता झगडता है । स्टेशन आ रहे है, एक उतरता है, दूसरा चढता है । मेरी क्या दिलचस्पी हा सकती है भला इन सबसे ? हा, बहुत लोग सहयात्रियो से तुर त दोस्ती गाठ लेते है, पर मे उन सबसे जुदा आदमी हूँ । सदैव ऊब जाता हूँ और जान बचाने को छटपटाने लगता हूँ ।

अपने उप यासो की बात बिल्कुल जुदा है । उनका जब कोई भी पृष्ठ खुला किसी भी पक्ति पर मेरी दृष्टि पडी, मरा चित्त प्रसन्न हो जाता है । मुझे ऐसा प्रतीत होता है जसे मे आत्मीयो मे आ गया । अपने घर मे आ पहुचा । ये मेरे परिजन है, बच्चे है, सम्बन्धी, रिश्तेदार, भाईबन्द है । अकस्मात आ मिले है । मुझसे मिलकर ये खुश है, उनसे मिलकर मे खुश हूँ । बहुधा मैं दो चार प ने पढता चला जाता हूँ, किसी खास मतलब से नही, यो ही जैसे किसी आत्मीय दोस्त से बात करते करते कुछ दूर तक टहलने चला जा रहा होऊँ । यह कुछ विचित्र सी ही बात आपको लगेगी । पर हकीकत यही है । बचपन म 'च द्रकान्ता' और 'च द्रका ता सतति' मैने चाव से पढा था । उन दिनो मे पाचवी या छठी कक्षा मे पढता था । उसके बाद बकिम के दो चार उप यासो मे मेरा मन लगा । 'आनन्दमठ' मुझे बहुत भाया । पर वह भी बचपन की ही बात कहनी चाहिए । थाडा समझदार होने पर शरत और रवीन्द्र के कुछ उप यास पढ । शरत मे मेरा मन लगा, रवी द्र के दो ही उप यास मुझे अच्छे लगे 'आख की किरकिरी' और 'कुमुदिनी' । प्रेमचन्द के उप यासो मे मेरा मन नही लगा । वृन्दावन-लाल वर्मा का 'गढ कुडार' अवश्य मैने रुचि से पढा । 'लण्डन रहस्य' जब रामलाल वमन छाप रहे थे, तब चाव से पढा था । मुझे याद है जब वे एक लाख रुपये के मूल्य

की होने की गलती पहले कर [illegible] फिर [illegible], तब मुझे भी सीरीज का ग्राहक बना गए [illegible] 'परख' भी [illegible] आलोचना तो कभी [illegible] मेरी [illegible] गुजर [illegible], पर 'परख' [illegible] मेरा परिचय है और जब [illegible] 'कहानी' [illegible] मैं अच्छी तरह जानता हूँ। इतिहास और [illegible] कारण [illegible] और उथली चीज मुझे जँचती ही नहीं। [illegible] दार्शनिक [illegible] हूँ। [illegible] शास्त्र पर श्रद्धा भी नहीं रखता हूँ, पर मैंने [illegible] पढ़े और समझे हैं। इसीसे मेरी दार्शनिक दृष्टि [illegible] समीक्षा दृष्टि बन गई है। जीवन के प्रत्येक भाग को मैं दार्शनिक समीक्षा पर जाँचने का आदी हो गया हूँ। [illegible] उपन्यास [illegible] मुझे भाते नहीं, उनकी बातों में रस आता नहीं, पाता नहीं। शायद इसी कारण मेरा दृष्टिकोण जीवन की व्याख्या के सम्बन्ध में उतना [illegible] और निगूढ़ हो गया है। मैं उपन्यास के टेकनिक का कुछ भी नहीं जानता। उस सम्बन्ध में मैंने कोई साहित्य, [illegible] पढ़ा नहीं। मैं नहीं जानता कि विश्व के नामांकित उपन्यास [illegible] उपन्यास कैसे लिखते हैं। मैंने यह विद्या कहीं किसी से सीखी नहीं है, मैं उस विषय में कुछ जानता भी नहीं हूँ। [illegible] लोग खास कर छात्र, जो अध्ययन की दृष्टि उपन्यासों पर रखते हैं, बहुधा इसी प्रकार के प्रश्न पूछते हैं तब मुझे बगलें झाँकनी पड़ती हैं। अन्तत: कुछ कह देता हूँ। तब या तो वे लोग मेरे सद्भाव में आ जाते होंगे या पीठ मोड़ कर मेरी मूर्खता और अज्ञान पर हँसते होंगे। फिर भी मैं अपने उपन्यासों के लिखने के विषय में तो जानता ही हूँ। यद्यपि बिल्कुल ठीक ठीक नहीं बता सकता, पर कुछ तो बता ही सकता हूँ। सबसे बड़ा प्रभाव तो मेरे उपन्यासों पर मेरे ही जीवन का है। एक दरिद्र [illegible] मजदूर माता पिता के घर जन्म लेने के कारण बचपन से ही मुझे अभाव [illegible] हुआ। मेरे बचपन के अभाव के स्पर्श का दाग तो अब तक मेरे दिल पर है। मेरी माता चिररोगिणी रहीं। वह लगभग १८ वर्ष रोगाक्रान्त रहीं। यह वह समय था जब मेरी समझ जरा पक रही थी, मैं तीसरी चौथी कक्षा में पढ़ रहा था। तब तीन बातों से मेरा परिचय हुआ—अभाव, रोग और श्रम।

मैंने बहुत बार देखा कि मेरे पिता जी रोगिणी माता के लिए समय पर ठीक ठीक पथ्य और औषध भी न जुटा सकते थे। [illegible] पर वे हम लोगों को पड़ोसियों से उधार माँग लाने भेजते और हम लोग वहाँ से नकार लेकर प्राय लौटते। उन दिनों यह अभाव मुझे कुछ विशेष नहीं खलता, पर बाद में तो उसने एक स्थायी दर्द की उत्पत्ति मेरे मन में कर दी। मैं बालक था, पर एक दृश्य नहीं भूल सकता – जब सब ओर से नकार ग्रहण कर पिताजी अर्द्धमूर्छित माता का सिर गोद में लिए जरा जरा पानी चम्मच से उनके मुँह में डाल रहे थे, तब जैसे वह नकार

मूर्छित माता के अन्तस्तल को भी छू गया था। उन्होने बहुत यत्न से बहुत देर तक इगित किया, पर वह इतना अस्पष्ट था कि पिताजी बहुत ही कठिनाई से समझ पाए और तब उ होन सकेतस्थल से दीवार की एक दरार से मैले कपडे मे लिपटी एक पोटली निकाली, जिसमे कुछ रुपये थे। शायद दो चार। उनमे से एक तुडाकर माता के लिए दूध मँगाया गया। दूव तब चार पैसे का सेर मिलता था। पर आज भी मैं उस एक पाव दूध की कीमत का अनुमान नही लगा सकता। एक पसे के उम दूध के लिए पिता जी को दो घण्टे सघष करना पडा था, बीस जगह हाथ फलाकर नकार प्राप्त किया था। यह था मेरे जीवन पर अभाव का स्पश।

सेवा मेने पिताजी की देखी। चौदह वष निरन्तर अनवरत, वे माता को अना याम ही फूल की डालीकी भाति गोदमे उठा लेते। सेवा, सुश्रुषा, सफाई और जाने क्या क्या उन्हे करना पडता था, जिसे तब नही समझा था, बाद मे जीवनभर समझा। यह हुआ मेरे जीवन पर सेवा का स्पश। श्रम हम सभी को करना पडता था। हमारी ५ ७ वष की बहिन प्रौढा गृहिणी की भाति उन दिनो हमारी सारी गृहस्थी चला रही थी। उन्ही दिना मुझे भी अपने हाथ से काम करने और रसोई बनाने का अभ्यास हो गया, जो आज भी है। इस प्रकार अभाव, सेवा और श्रम इन तीनो ने मेरे बालभाव का शृङ्गार किया।

अब चौथी वस्तु आई विद्रोह। पिताजी आयसमाजी थे। पर अधिक पठित नही थे। उनकी युक्तिया लठ के बराबर मोटी होती, वसी ही चोट करती थी। समाज की प्रत्येक रूढि का विद्रोह मेने उन्हे करते देखा था और वह विद्रोह मेरे रक्त मे घर कर गया। आगे चलकर उसमे साहस ने योग दिया जब काशी और जयपुर मे ब्राह्मण न होने के कारण सस्कृत अध्ययन के क्षेत्रमे मुझे उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पडा। इस प्रकार मै अपने जीवन की दहरी पर खडे होने योग्य हुआ। मैं एक असा धारण तरुण था, जिसके शरीर मे अभाव, श्रम और सेवा के स्पश चिह्न थे और आत्मा मे विद्रोह का साहस। परिस्थितिवश मैने चिकित्सा सीखली और जीवन एक चिकि त्सक के रूप मे आरम्भ किया। इस समय ये चारो तत्व —सेवा, श्रम, अभाव और साहस मेरे बडे काम आए। कहना चाहिए वही मेरे सब कारोबार की पूजी थे।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर, मुझे भयानक महामारी इन्फ्लुएन्जा और उनके बाद प्लेग के दिनो मे प्रतिदिन दो सौ, तीन सो नर नारियो को भीषण यन्त्रणाओ मे छटपटाते हुए मृत्यु का ग्रास होते और उनके प्रियजनो के क्रन्दन आतनाद को अति निकट से देखने का अवसर मिला। मेरे जसे तरुण के लिए, जिसके हृदय मे साहित्य की भावना सोई पडी थी, तीन तीन सौ नर नारियो का नित्य मेरी आखो के सामने छटपटा कर प्राण त्यागना, प्राण बचाने के भागीरथ प्रयत्नो के बावजूद भी निराश

गा ा नो- सा ारण ा । । ी । म ा मरी गम्पूण ा ा ा ा श्रा त कर दिया । मे उत ि ा ा ा भ्र ी त ा गत ा, ज राय । ि श्री ग जगर म रात ि एक के बा दूसर सा ा ि ा गिया ा ा ा, उ ार ा ा ा ा ा ा । ा ई ा ई मृत्यु तो अतिशय भयानक, ह्रदयविदार गमा ा पा ा ा होती थी । उन दिनो तक भी मेरा साहित्यकारभाव मा ा ा ा म था । यद्यपि कुछ न कुछ मै लिखता रहता था, पर उप यास या ा ानो नही । ि ि ाया सामाजिक कुरीति सम्ब धी लख लिखता था । चिकित्सक ा ा ना ा या आयसमाजी ा न के ा उन दोना विषयो पर मरी कलम चलती रहती थी । ा ा पर ा 'प ा ाप म कभी कभार मेर लेख छप जाते थ । उन दिना म अजमर म प्रति ा ा ा ा । सबस प्रथम कथा का रूप मेरे उस एक लख ा ारण किया जा मैन ए ा ा ा ा ा ा ा ा ा बालिकासे विवाह ा विरा म लिखा था । ा ा ा ा ी-सच्ची घटना थी । 'प्रताप' मे वह छपी और उसपर ा ा ा ा । उसी ा ा ा ा ा और प्लेग ने मरी चेतना को आ ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा उप यास लिखा । उसम मैन अत्य त मर्मा त ा ा और ा ा ा ा ा ा ा ा विवरण दिए, जो मेरे आ ा ा ा ा ा ा ा । ा पहले मैने पृथक विवरणो म लिखा, फिर ा ा ा ीन तीन या चार चार ा ा ा ा ा । उन टुकडो के बीच म दूसर प्रसगो के टुक ा ा ा मैंने उस पर विवरण ा ा उप यास का सा रूप ा ा । यह रूप ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ' ा ा ा ा ा सर्तान' की पद्धति पर ा ा रहा । उसी ा आकरण पर ा ा विवरण ा ा ा परस्पर बीच मे ा ा ा ा ा । आरम्भ म ए ा विवरण ा ा ा ा ा, फिर उस ा ा दूसरे, तीसरे, चौथ विवरण ा ा ा । फिर ा ा ा ा ा ा ा ा । ी प्रकार पूरा उप यास तैयार हो गया । उसी ा ाम मै ा ा ा ा ा ' ा ा विभाद' । उन दिना 'प्रताप ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा हो गया था । उन्ही ा ा ा ा ा ा उप यास मै ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा । उस उन्होने शायद ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा, पा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा खो गई । इस प्रकार मेरे उस ा ा ा ा प्रथम उप यास रूपी शिशु ा ा ा ा ा ा हो गया । इसके खो जाने का दुःख बहुत हुआ । ा ा ा ा ा ा ा ा ा भी ा ा हुई । पर जो खो गया, वह खो गया । फिर भी उसके ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा पर गहरा प्रभाव छोड़ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा देखा था उसीका ा बहुत दिन तक उनके ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा रहे और मेरी मनोवृत्ति और चेतना म ा ा ा ा ा भूमिका बनाने लगे । बहुधा सोचने लगता, यदि यह न होकर वह होता, ऐसा न करके ऐसा किया जाता तो ा ा ा ा ा ा ा होता । यद्यपि ये सब

विकल्प चिकित्सा से सम्बधित थे, पर उनमे से कल्पनाऐ मूत हो उठी। इस प्रकार आखो देखे सच्चे रेखाचित्रो के साथ ही साथ काल्पनिक रेखाचित्र भी उभरने लगे। वे अधिक सशक्त थे, प्रिय थे। इससे सच्चे घटित रेखाचित्रो के ऊपर काल्पनिक चित्रो की प्रतिष्ठा मेरे मानस मे होती चली गई। इस प्रकार अभाव, सेवा, श्रम और विद्रोह मे दो वस्तुतत्व और आ मिले—वेदना और कल्पना। वेदना सत्य पर आधारित थी और कल्पना वेदना की प्रतिक्रिया स्वरूप। पर तु इसमे कही उप यास तत्व पनप रहा है, यह तब भी मै समझ नही रहा था।

इस समय मेरे एक मित्र अतिथि रूप मे मेरे घर आए। वे कोइ साहित्यिक न थे, साहित्य रसिक थे। उ होने 'मेरी कारोली का कोइ उपन्यास तभी पढा था। एक दिन रात को बातो ही बातो म उ होने मुझे उस उप यास का पूरा मसौदा जबानी कह सुनाया। उसमे म इतना प्रभावित हुआ कि तत्काल ही उसे मेने अपने टग पर लिख डाला ओर वह मेरा प्रथम उपन्यास बन गया, जो बम्बई मे श्री नाथूराम प्रेमी ने 'हृदय की परख' के नाम से छापा। बाद मे उसके दस बारह सस्करण हुए। अपनी इस प्रथम रचना को देखकर मै बहुत प्रसन्न हुआ था।

चिकित्सक के नाते धीरे धीरे राजस्थान के राजवर्गीजनो से मेरा सम्पक बढा और शीघ्र ही नामाकित राजा ठाकुर जागीरदार महाराजो के रनवास मे मेरी पैठ हो गई। चिकित्सा का काय कितना नाजुक और रहस्यमय होता है, यह कदाचित सब लोग नही जानते। बडे बडे अनहोने चित्र और मानव चरित्र मेरे सामने आए। बडे बडे पेचीदे मामले मुझे सुलझाने पडे। बहुत से राजा, महाराजाओ के, रानियो के, तथा अति सम्भ्रान्त प्रभावशाली जनो के भीतरी आतनाद, दुबलताऐं मूखताएँ, कुत्साएँ मुझ पर प्रकट होने लगी। लोगो के सम्मुख वे महामा य, शान और ऐश्वययुक्त प्रभावशाली पुरुष थे, पर तु मेरे निकट वे अति दीनहीन निकृष्टतम व्यक्ति थे। उन दिनो दजनो बडे बडे सम्भ्रा त पुरुषो स्त्रियो की इज्जत आबरु मेरी जेबो मे पडी रहती थी। कुछ राजा महाराजा, रानी महारानियो की ही नही, बडे बडे अनेक पुरुषो, प्रसिद्ध नेताओ, राजपुरुषो, विद्वानो, अध्यापको, हाईकोट के महामा य जजो, करोडपति सेठो की अपनी वासनाएँ, कुत्साएँ दुरवस्थाऐं, मूखताऐं, दुरभिलाषाऐं हिसक प्रवृत्तिया मेरे सामने नग्न होने लगी। वे एक दीन, हीन भिखारी के समान मेरी कृपा के याचक बन मेरे सम्मुख आते थे। इनमे से बहुत सी बाते बडी चमत्कारिक असाधारण, प्रभावशाली और कभी अति भयानक, जघ य अपराधो की सीमाऐं लाघ जाती थी। मुझे इन सबको नितान्त गोपनीय रखना पडता था, भारी भारी व्यवस्थाएँ करनी पडती थी, असाधारण उद्योग करने पडते थे, जिन सबका मेरे मन पर कभी कभी इतना दबाव पडता था कि बहुधा मैं असयत हो उठना था। इन सब बातो ने और दो नए तत्वो को मेरे

मानस पर गी । हिगा निर्त और सयम । ग मेरा नम ना नतन्त्र आठ तत्व कर र र गभाव, ता, श्रम, ा, र ा ा विरत गीर सयम । यद्यपि इस समय तक भी म न उत्तम उपयोग ा िग गया था पर ग तत्व मेरे नित्य के जीवन म ओत प्रोत रहते थे फिर ग मुझे ाी गार यरता पड़ती रहती थी, अपने गम्भीर गीर जटिल व्यवसाय म । गग पतर तन्त्र ना दरगन ना मेरा अपना एक स्वत त्र ही दृष्टिकोण न गया था ।

बचपन म ब्राह्मण न हान के कारण जयपुर और बनारस म मुझे जाति अभिमान का शिकार होना पड़ा । वह अपमान मुझ गग र ाग आनन्द कर गया, कभी मै उसे भूला नहीं । गार गार गार ग भावना ा कि ज म त म क्षत्रिय हूँ, मेरा ममत्व क्षत्रियत्व पर उमड़ आया । ब्रजरा ा ग ग अरी नी पुस्तक मेवाड़ का इतिहास कही से मेरे हाथ आ लगी थी । आगर म रह गी ी । उस मैने हजार, पाच सौ बार पढ़ा होगा । उन िा रात को मा ा ा पिताजी को उसे पढ़ कर सुनाया करता था । उसमे वर्णित वीर चरित कुछ एग मेरे मन पर गहिर ा गए और मेरे मन के क्षत्रियत्व का ममत्व उसमे मिलकर बन्ा ा गया कि उसम उ प ा कर गया कि इस समय भाव व्यक्तिकरण म समर्थ होकर म राजपूत शौर्य और उत्सर्ग के रेखाचित्र कहानियो मे अंकित करने लगा । मेरी राजपूत वातावरण की कहानियां खूब उभरी । राजपूती का बखान करते करते स्वाभाविक ी गा ि पर मेरी नम मुगल वैभव पर रपट गई और उस प्रकार मुगल जीवन पर लिखी गई कहानी । मेरी कहानियां भी खूब प्रौढ़ हो गई । परन्तु ा ा ा स्त्रियो पर उपयोग लिखना मेरे ा ा ा काम न था । लेकिन मेरे मानस भण्डार म पुर्वाक्त आठ तत्व म ा ा ा ा गौर आ मिला और उसके साथ ही गे गुण भी आ ौर्य और शृगार । राजाओ के वैभव भी मै ा ा ा देख रहा था । मेरी ा ा ा ा ा ा ा । गजम ा म हो चुकी थी, जहा मुझ ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा । ालो मे गार गार रियो म ा ा ा ा ा । ा ा ा ा ा ा की भाति ा ा ा ा ा । ा ा ा ा ा ा ा ा ा बात कम प्रभावशाली ा थी । ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा मेरे मानस पटल पर ा गया कि उस म ा अपनी कहानियां म ा ा ा ा ा ा । एक रोगिणी ा ा मारी ा ा ा जब मै ा ा ा पुर म ा ा ा ा ा ा ा ा ा जाने के समान परिधान म एक प्रकार से ा ा ा ा ा ा ा ा ा थी और उसके अग पर लाखो रुपया के जवाहरात थे । ा ा ा ा ा ा ा मैने कभी ा देखे थे, अगूर के बराबर । 'दुखवा मैं कासो कहूँ' कहानी म मैने उसी राजकुमारी को, उसी सारे ही शृङ्गार विलास सहित, अपने पाठको के सम्मुख ला खड़ा किया है ।

आर्थिक अवस्था मेरी सुधर रही थी, नोटो के गड्डर मेरी जेबा मे आ आकर ठम रह थे। पर मे नही जानता था कि उ हे कसे खच किया जाए। रहन महन मेरा अभी भी साधारण व्यक्तियो जैसा था और उस वातावरण मे, जब बडे बडे लोग मेरे सम्मुख दयनीय हो रहे थे, मेरी सहायता के भिखारी थे। यहा तक कि जब युवक राजा का विवाह होता है एक बहुत बड छत्रधारी की कुमारी से, लाखो का दान दहज नगर मे महीनो जशन, धूमधाम, मगर तरुण राजा एकात मे मेरे सम्मुख खडा होकर आखो मे आसू भरकर ओर हाथ जोडकर कहता है— आज मेरी सुहागरात है मेरी लाज रख लीजिए। नई दुलहिन के सामने जिससे मेरी लाज रह जाए, दया कीजिए, मे किसी योग्य नही रह गया हूँ।' भला कहिए, यह कितनी प्रभावशाली बात थी। ऐसी ऐसी अनेक घटनाओ ने मेरे मन का 'अह' जगा दिया और तब मेरी कलम उप यास के रूप मे 'अह' का चित्रण करने लगी। मेरा दूसरा उपन्यास 'हृदय की प्यास' और तीसरा आत्मदाह' मोलह आना 'अह' है। उसका केवल परिधान ही उप यास का है। परतु जसा कि मे कह चुका हूँ कि रजवाडो के विलास और ऐश्वय का अभी म साक्षी ही था, अपन जीवन म साधारण ही व्यक्ति था, विलास ने मेरे जीवन को स्पश नही किया था। इसीसे इन दोनो उप यासो मे मेरे 'अह' मे विलास हे ही नही, वही अभाव, श्रम, सेवा और विद्रोह, कही कही साहस का पुट। मेरा यह अह' दलितो का सरक्षक भी हो उठा। इसी भाव से प्रेरित होकर मैंने 'अमर अभिलाषा उप यास लिखा, जो अब 'बहते आसू' के नाम से छप रहा है। इसमे केवल हि दू विधवा की हिमायत है। मेरे यह तीनो उप यास उपन्यास तत्व मे अपूण है, क्योकि तब तक मेरे मस्तिष्क मे उप न्यास तत्व परिपक्व नही हुआ था। मेरा गुरु तो कोई था ही नही, केवल ज्यो ज्यो मेरा जीवन नए मोड लेता जाता था, मेरी प्रतिभा भी अपना काम करती जाती थी। इसीसे ये उपन्यास अति साधारण कोटि के थे।

बम्बई प्रवास काल म एक सेठानी का मेने देखा, जिसकी ओढनी म सच्चे मोती टके थे, पर वह ओढनी सिर के तेल की चिकनाई स जगह जगह ग दे दागो से भरी थी। एक सेठानी को देखा, जिसका वजन साढे तीन मन से भी ऊपर था, जो अस्सी गज कपडे का घाघरा पहनती थी और जब कभी बाहर निकलती थी तो दो ब्राह्मणिया उसके शरीर को दोनो ओर से थामे रहती थी। एक रायबहादुर सेठ थे, जिनका नीचे का मोटा होठ नीचे लटका रहता था और एक नौकर उनके साथ केवल इसीलिए तनात रहता था कि तत्काल करे—मापने (होठ भीतर)। एक सेठसाहब कहारो की जूठी चिलम पिया करते थे। एक सेठ ने अपनी पत्नी की अस्वस्थता का समाचार पढकर उसके पीहर मारवाड मे मुझे देखने भेजा। मैंने देखा तो कहा—तपेदिक है। उसके पिता को मेरा यह कहना अच्छा नही लगा। लडकी को हठपूवक पीहर म रखा गया था और यह उनके खयाल

म ग्या। बदनामी भी ताता था। इ...द्र गा... सामाजिक... मुझसे ला भिगाया, जिसमें... ा मग्रज भी रे।... मुझ मे... ज्जा की, गर... ग्त रोग और फीग पाकर। उस काम मे... अपने... अभी ... और उन्होंने मुझे चिकित्सा नहीं करने दी। ... वह स्त्री उसी रोग में मर गई। इन सब बातों ने मेरे मन में... कुत्सा और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह उत्पन्न कर दिया। उसी से प्रेरित हो मैंने 'चाँद' का 'मारवाड़ी विशेषांक' सम्पादित किया।

हिन्दी साहित्य में सबसे महान और अप्रतिम व्यापक उपन्यास 'सोना और खून' की पृष्ठभूमि क्या है ?

सोने का रंग पीला होता है और खून का रंग सुर्ख। पर तासीर दोनों की एक है। खून मनुष्य की रगों में बहता है और सोना उसके ऊपर लदा हुआ है। खून मनुष्य को जीवन देता है और सोना उसके जीवन पर खतरा लाता है। पर आज के मनुष्य को खून पर मोह नहीं है, सोने पर है। वह एक-एक रत्ती सोने के लिए अपने शरीर की एक-एक बूँद खून बहाने पर आमादा है। जीवन को सजाने के लिए वह सोना चाहता है और उसके लिए खून बहाकर वह जीवन को खतरे में डालता है। आज के सभ्य संसार का सबसे बड़ा कारोबार है, सबसे बड़ा धंधा है—खून देना और सोना लेना!

सोना और खून के लेन-देन ने मनुष्य को मनुष्य का सबसे बड़ा खतरा बना दिया है। उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि वह बुद्धिमान है। सोना और खून के इस कारोबार ने उसके सारे बुद्धिबल को उसके अपने ही विनाश में लगा दिया है और अब विनाश ने उसे चारों ओर से घेर लिया है। जिन्दा रहने की उसकी सारी चेष्टाएं ही अब हास्यास्पद हो गई हैं।

असभ्य युग का आदमी मूर्ख था और कमजोर, और आलसी था। वह जो देखता था उसे ही समझता था। ... भावनाओं और अलौकिक पूजा ... पर ... शक्ति की उपासना करता रहा। ... बुद्धि विकसित हुई। मन शरीर का सहायक बना, विचार और परिश्रम एक हुए, मनुष्य की उन्नति का सूत्रपात हुआ कि उसे सोना मिल गया और उसने ... आरम्भ कर दिया और इसके ही ... युग में आ फंसा।

इसी समय उसे देवता के रूप में नए युग का नया देवता मिला। इस देवता ने इस सभ्य युग में जन्म लेकर ... के सब देवताओं को पीछे धकेल दिया। आज वह संसार के सब मनुष्यों का सबसे बड़ा देवता है। असभ्य युग में असभ्य जातियों ने कभी भी किसी देवता को इतनी भारी नरबलि न दी थी, जितनी इस सभ्य युग में इस खूनी और हत्यारे देवता को मनुष्य ने दी है और देता जा रहा है। इस भयानक देवता की

खून की प्यास का मानो अन्त ही नही है। बलिदान की पुरानी तलवार के स्थान पर मनुष्य ने अपना सारा बुद्धिबल खर्च करके एक से बढकर एक खूनी हथियार इस देवता को नरबलि से सन्तुष्ट करनेको बनाया है, जिनका प्रदर्शन गत दो महायुद्धोमे हो चुकाहै।

मेरे इस उपन्यास के प्रथम भाग मे खास तौर पर १८वी शताब्दी के अंतिम चरण पर प्रकाश डाला गया है। १८वी शताब्दी के अंतिम चरण मे सभ्यता ने करवट बदली और उसके प्रभाव से जो हवा पश्चिम मे बही, उसने भारत को भी छू लिया। स्वतन्त्रता, समता और मनुष्य मात्र के बन्धुत्व की एक धीमी हलकी आवाज सभ्य ससार मे उठी और दुनिया ने देखा कि अमेरिका ने बिना राजा का नया राज्य कायम कर लिया है। फ्रास ने अपने राजा का सिर काटकर प्रजातन्त्र की स्थापना कर ली। इसने आधे यूरोप के कान खडे कर दिए और लोग नए दृष्टिकोण से मनुष्य के अधिकारो को देखने परखने लगे। राजनीतिक क्षेत्र म इस क्राति ने मानव उन्नतिके एक युग को पूरा कर दूसरे युग की सीमा मे धकेल दिया।

उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ ही मे दुनिया के जीवन का नया दौर शुरू हो गया। भारत और योरोप—सर्वत्र उन दिनो खूनखराबी का बाजार गर्म था। इनदिनो ब्रिटेन विश्व का राजनीतिक नेता बन रहा था। नई दुनिया प्रकट हो रही थी और ब्रिटेन यूरोप की अन्य उदग्रीव जातियो को पीछे धकेल कर उनपर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की प्राणप्रण से चेष्टा कर रहा था।

इस नए दौर मे अग्रेजो ने दो महत्वपूर्ण कार्य किए। एक यह कि उन्होने केनेडा और आस्ट्रेलिया के सीमारहित विस्तार पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। दूसरे उनकी केवल एक व्यापारिक कम्पनी ने बीस करोड भारतीयो पर विजय प्राप्त कर ली थी। ससार इग्लड के दोनो कामो को आश्चर्यचकित होकर देख रहा था। उस समय अग्रेजो ने यह नही सोचा था कि क्लाइव और हेस्टिग्स ने यह सृष्टि क्रम से विरुद्ध घोर कर्म किया है, जो एक शताब्दी की प्रत्यक्ष सफलता के बाद अन्त मे निष्फल हो जायेगा। उस समय वे समझते थे कि हम भारत म पूर्व और पश्चिम के मेल का सूत्रपात कर रहे है। परन्तु आश्चर्यजनक बात यह थी कि उस काल मे एक ओर जहा ब्रिटिश राष्ट्र का एक हाथ भूमण्डलके भविष्य की ओर फल रहा था, और जो यूरोप और नई दुनिया के बीच मध्यस्थ का पद ग्रहण कर रहा था, उनका दूसरा हाथ अत्यन्त प्राचीनकाल की ओर फलता हुआ एशिया का विजेता और महान मुगल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बन रहा था। एक तरफ वह एकही कालमे एशियामे स्वेच्छाचारी और दूसरी तरफ आस्ट्रेलिया म प्रजासत्ता परायण। एक तरफ पूर्वमे ससारकी सबसे बडी दो शक्तियो इस्लाम और हिन्दुओ के मस्जिदो और मन्दिरो का सरक्षक और दूसरी तरफ पश्चिम मे स्वतत्र विचारो और आध्यात्मिक मत का सबसे बडा समर्थक, एक तरफ मध्य एशिया मे रूस

। नहा हग दम ा गर ा र ाि ा ाा ाा गाम्राज्य ा ाग ाः, और दूसरी तरफ ितती स्रा । र्गा ा ा ा ा गम ाा ा ा ा । गत्पम कहा जा सकता है ि ि म्र आरम्भ ा ा ा ा ा ा ग ा ा ा गार ाि अपन ऊपर नहीं लिया था, ा ाभी ि ा ा ा ा ा ा ा िगाय । पर गुमण न ा ात अधिक भाग ा ा ारी प्र ा ा ा ा ा ा ा । ा ा ा ा ा, ा भार जिसक िाए अ ा ाि आर अगा ा ा ा ा ग ा ा ा है।

ब्रिटन न जो अ य उपि ा ा ा ा ा ा ा गग और भारत पर अधिकार करन म ाा प्र तर है। उपनि ा ा ा ा ा ा ा ा । भूमि पर अधिकार किया गया ा, पर ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ब्रिटन का जिन कठिनाइया ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा, यद्यपि अ य योरो पियन राष्ट्रा की प्र ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा उनम सबथा भिन्न थी। ा ा ा ा ा ा ा, ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा योरोप क प्राचीन तम ा ा ा ा ा ा ा और ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा को जीतना जितनी भाषा और म आक्रमण ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा था। ा ा की समूची शक्ति अ ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा जीत ा ा ा । ा अति रिक्त जिग समय भार ा ा ा ा ा ा ा ा, ा समय ा ा अपनी ही जाि ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा अयोग्य प्रमाणित ा ा था। अमरिका ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा परिजय िया था, उनको अयोग ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा प्रकट ा ा था कि उनकी ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा समय म भारत म दुष्प ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा स्मरणपूर्ण बात थी। भारत म ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा अंगजो ा ा, अपन ा अंग्रजो ा भारत ा ा ा ा ा ा ा जिग समय म ा ा आरम्भ ा ा समय अंग्रजा को ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ब्रिट। योरोप म ी अनेक ा ा म फसा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा, ा समय योरोप म अंग्रज ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा, और ा ा ा ा ा ा ा ा राजाओं और रिया सतो ा ा ा ा ा ा ा अंग्रजी साम्राज्य ा ा िस्तार ा ा ा ा था, तब भी योरोप मा महान ा ा ा ा ा ा अंग्रज ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा भी ओ अगुआ नहीं रहे, न अँग्रजो ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा था।

योरोप ी ा ा ा ा ा ा ा अपा समुद्री बेड ा ा ा ा ा पर लडते भिडते रहे, और जब कभी स्थल युद्ध का अवसर आया ता किसी मित्र सनिक राज्य को भारी

रकमे देकर उससे सनिक मदद लेते रहे। कभी एशिया से,कभी अन्य देशो से। इतनी कमजोरी होनेपर भी अग्रजो ने भारत के बडे भाग को जीतने का बन्दोबस्त किया, जहा का क्षेत्रफल दस लाख वर्गमील और जन सख्या बीस करोड थी। इस समय योरोप ही की लडाई के कारण ब्रिटेन इस कदर कर्जदार हो गया था कि वह कभी अपना कर्जा ही नही चुका सका। परन्तु भारतीय युद्धो ने न तो ब्रिटेन का राष्ट्रीय ऋण बढाया, न हानि का कोई चिह्न पीछे छोडा।

सन् १७७३ ई० मे जब पहले पहल ब्रिटिश भारत बना, तो कम्पनी की सेना मे उस समय ९,००० अँग्रेज और ४२,००० देशी सनिक थे। इनमेभी अधिक व नाविक थे, जो तटवर्ती जहाजो के काम से बुलाए जाते थे तथा जिन्हे एजेन्ट लोग बहका कर इग्लैण्ड से कम्पनी के जहाजो पर लिवा लाते थे। हकीकत तो यह थी कि अरकाट, पलासी और बक्सर के युद्धो मे योरोपियन की अपेक्षा भारतीय सिपाही ही अधिक थे,जो अग्रेजो के समान ही उत्कृष्ट सनिक थे। यद्यपि यह सच है कि अँग्रजी सेना ने अपने से दस गुनी भारतीय सेना को हराया, पर इसका कारण वीरता नही थी, व्यवस्था और सनिक विज्ञान और साथ ही कूटनीति भी उसका एक प्रमुख कारण थी। ऐसी अवस्था मे यह नही कहा जा सकता कि अँग्रजो ने भारत को हराया। कहना यह चाहिए कि भारत ने स्वय अपने को हराया।

भारत के पराजित होने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण भी था। वह यह कि उस समय भारत राजनीतिक ज्ञानपूर्ण कोई राष्ट्र न था। उन दिनो भारत नाम केवल एक भौगोलिक सत्ता का था। इसी से भारतपर अँग्रेजोने आसानीसे अधिकार करलिया।

जिस तरह नेपोलियन ने देखा कि मध्य योरोप मे विजय प्राप्त करने के साधन तयार है, उसी तरह भारत मे अग्रजो से पहले ही फ्रन्चो ने यह देख लिया था, कि भारत मे साम्राज्य स्थापना करनेके लिए किसी भी योरोपियन राष्ट्र के लिए माग खुला पडा है। उनकी पनी बुद्धि ने यह भाप लिया कि भारत की अवस्था ही ऐसी है कि वहा एक भारतीय राज्य दूसरे से लडता रहता है। इसलिए उसने यह नीति अपनाई कि उनके झगडो के बीच मे पडकर तुल्य भारता कायम करे। सबसे पहले निजामुलमुल्क की मृत्यु के पश्चात, हैदराबाद राज्य के उत्तराधिकारी बनने के लिए जब युद्ध छिडा तो फ्रचो ने उसमे हस्तक्षेप किया। यह घटना १८वी शताब्दी के मध्य भाग मे हुई थी, जिन दिनो भारत मे नितान्त राजनीतिक मृतक अवस्था थी, जो पूरे १०० वर्षो तक कायम रही—जब तक कि १८५७ के विद्रोह को कुचल कर ब्रिटेन ने भारत को अँग्रजी साम्राज्य के शिकजे मे कसकर न बाध लिया। इसी से यह चमत्कारिक बात हुई कि अँग्रजो ने भारत को उन सेनाओ से जीत लिया, जिसमे औसतन एक अग्रज सनिक के पीछे पाच भारतीय सनिक थे।

ग ाा म ि ाा ा ा भारत म ाा ा ा ा भार त ाे थ, क्योंकि राष्ट्रीयता ा ाा ाा ा ा ा ा ा ा ा । इस ाा ा म ा ी बहुत सी पेशेवर सनिक दुकड़ी ाा ा, जो ा ा ा ा ा ा ा ा ा किसी भी राज्य के विरुद्ध या किसी भी राज्य ा ा ा म ा ा ा ा ा पूर्वक ा ा ी, जो उन्हें तनख्वाह देने वाला देश ा या ि ी । जिसका ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ि ा ईमानदारीपूर्वक प्राण त युद्ध करना ा अपना ा म ा ा ा और उस ा ा ा ा ा ा ा नामसे पुकारते थे। नमक हलाली की यह भावना उनके मन म ा ा ा ा द ा ा ा भी ी कि नमकहराम कहना सबसे बड़ी गाली समझा जाता था।

हालत तो यह ी ि अंग्रेजों ने भारत म पहली ही बार विदेशी राज्य की स्थापना नहीं की थी। यह ाा ा ा ा ा ा ा ा था। केवल इतना ही नहीं कि ाा वीं शताब्दी म ा ा ा ा ा आक्रमण ा ा ा ा, उससे बहुत पहले ही अनेक जातियों का भारत म मिश्रण हो चुका था। आर्यों म जातीय-एकता जरूर थी, परन्तु भारत को एकता तो आर्य ा ा ा ा ा ा, क्योंकि आर्येतर जातियाँ उनसे अ तत पृथक् हो रही और उस समय ा ा ा ा ा ा ा थी कि समूचा हिन्दू धर्म मात्र मिथ्या विश्वासों का ा ा ा ा ा ा रूप ा रहा था।

इस तरह सच्चे अर्थ में ा ा और भारत ा ा ा म लड़ाई तो हुई ही नहीं। इंग्लैण्ड के राजा ने मुगलों या भारत ा अन्य राजा या ा ा ा के विरुद्ध युद्ध घोषणा नहीं की। भारत म विजय प्राप्ति ा आरम्भ म ा ा ा ा ा ा ा ब्रिटिश राज्य का लगभग कोई ा ा ा नहीं था। वास्तविक बात यह ी ि एक अंग्रेज व्यापारिक कम्पनी ने आर्थिक रूप म सैनिक रूप धारण ा ा ा और भारत ा भूमि प्राप्त कर ली। यह वास्तव म मुगलों के पतन ा ा ा ा ा ा ा ा था।

यह ा ा ा ा मुगल साम्राज्य ा पतन ा ा ा ा औरंगजेब की मृत्यु के बाद स हो आरम्भ हुई। ा ा ा ा पर ा साम्राज्य ा अधिकार उठ गया, तो छोटी ा ा ा । अपना ा ा उठाए, जिनम बहुतसी ा ा ा ा ा ा ा ा रूपम थी और ये सब आपस म निरन्तर ा ा ा ा ा । ा राज्य ा ा स्थापना ा लिए यह स्थिति बहुत अनु ा थी। इसी अवसर म जिन विदेशी व्यापारियों ने लाभ ा ा, उनम अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी अधिक भाग्य ा ा प्रमाणित हुई और उस ा भारत म अंग्रेजी साम्राज्य की नींव ा ी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पास ऐसे साधन उपस्थित थे। उसके पास धन था, दो तीन किले भी उसके हाथ म थे। समुद्र पर उसका अधिकार था, फिर भी भारत म ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना एक आश्चर्यजनक घटना थी। परन्तु इससे अधिक आश्चर्यजनक घटना इसी बात की यह थी कि कोर्सिका के एक

गरीब घर का छोटा सा लडका बोनापाट एकत त्र स्वत न्त्र हो अधिकाश योरोप पर बिना मित्रो और बिना जेब म एक पाई रखे अधिकार कर ले और सम्राट बन जाए। भारत म भी हैदरअली सिंधिया और होलकर का उत्थान वसा ही आकस्मिक और आश्चय जनक था। इनके पास तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बराबर भी साधन न थे। इन सब बातो पर विचार करके हम कह सकते हे कि भारत पर अग्रजो की विजय एक राज्य पर दूसरे राज्य की विजय न थी। न इस घटना से भारतीय राज्य का ब्रिटिश राज्य से प्रत्यक्ष सम्बन्ध था। यह आकस्मिक भारतीयक्रांति थी,जिससे अँग्रजाने लाभ उठाया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का योरोप के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसी मे वह भारतीय युद्धो मे योरोप की सनिक व्यवस्था और विज्ञान काम मे ला सकी, जो स्पष्टत भारत के सैनिक विज्ञान और व्यवस्था से उत्कृष्ट था। फ्रैंच डुप्ले ने इस महत्व की बात को ठीक-ठीक समझ लिया था। उसने यह भी जान लिया कि देशी सेनाए योरापीय सेनाओ के सामने क्षण भर भी नही ठहर सकती। परन्तु उसने यह भी देखा कि भारतीय जन योरापीय व्यवस्था ग्रहण करने और योरोपीय देवता से युद्ध करना सीखने के सवथा योग्य हे। यही कवच था जिससे कम्पनी को विजयो पर विजय दिलाई। जैसा कि पहिले कहा गया है अँग्रजा की भारत विजय नतिक तथा शक्ति की महत्ता से नही हुई, व्यवस्था और सनिकशक्ति तथा कूटनीतिक चालो से हुई।

पलासी के निर्णायक युद्ध मे अग्रजी राज्य की नीव भारत मे सुदृढता से स्थापित हो गई। आज इस राज्य का और कल उस राज्य का पक्ष लेकर उन्होने अन्तत सारा भारत अपने कब्जे म कर लिया। इसके बाद उन्होने रजवाडो को हडपने की चेष्टा की, जिसके फलस्वरूप सत्तावन का विद्रोह उठ खडा हुआ,जिसमे फासी और तोप के मुह पर बाधकर जीवित मनुष्यो को उडा कर नरवध का महाताण्डव करके अँग्रेज भारत के एकनिष्ठ अधिराज बन बठे।

अठारहवी शताब्दी के प्रथम चरण तक योरोपीय राष्ट्र परस्पर लडते झगडते और स्पर्द्धा करते रहे। इसी बीच पूव मे अग्रेजी साम्राज्य की स्थापना हो गई और अब योरोप के परस्पर युद्ध बन्द हो गए। तथा योरोप और अमेरिका के विद्वानो की सम्मिलित वज्ञानिक खोजो ने एक के बाद एक नए नए आविष्कार किए, जिससे पजी का विकास हुआ और अब इन देशो के अधिक स्वाथ परस्पर मे टकराने लगे, जिसने एक नये सघष को जन्म दिया।

समय बीतता गया और इस वतमान सदी मे रूजवेल्ट ने अमेरिका के सिहासन को सुशोभित किया। यह पहला अमेरिकन राष्ट्रपति था, जिसने दुनिय के मामलो मे खुलकर हिस्सा लिया। पर अब दुनिया बदल रही थी, एशिया जाग रहा था, सोवियत रूस इस समय समूचे उत्तरी एशिया मे एक ससार निर्माण कर रहा था। वह एक प्रकार

श ा ग ात ण मम्प मगार ।। ।।।। र । ना, ग । म ी श्रोर ाकारी पजी ताद का गना ार र । ा । ामगत ो ाा । । माा । र ााशाायत मत्र के नाश म श्राा, ताि श्रोर ाता, ाार ाा र । । गर्मी । र पर उन दिना शाति मरकट । ाात म र । । ा श्र । म । मगार ना मुखिया नहीं रह गया था, उसकी ताहरा पर ाि ाूमत म । ।। ।। । ाम ा ाियो से सिकुड कर अपने साम्राज्य म सीमित हो गया था और ाता ाा । ाा ागमगा रहा था। उस समय सार ससार के सार ा ाँतर राषा ा ा पर ा ा ार युद्धस्थली पर ाकत होन जा र । ा ात । ा ााग ा ा ााागार । उार बक्त लिए जा र ो ाा । मान के म ाा । ा ााग ा ार । ाम । । । ।ाताजा रक्त भरा जा ताता था।

श्रोर श्र त म ा गा ा ाा ा ा ा ा महा ा ार ा मनुष्यो र रक्त से भरे गए, जिनम हिटलर और मुसा ा ाा भी । ।म । पर ा ा ा ाा ख़ून स सीचा हुआ राष्ट्रवाद दुनिया के म ा ा ।। ा ााा श्रौर ा ाा । । ा अब भी कायम है और वह समू । श ा ााा ा ा ा म ा ाुद्ध ी रगभूमि पर खींच लिए जा रहा है—जहा अब सोने ा ाण्ण ाू ा । ा र जाएग श्र ा ाू ा ौर ााना पिघलकर एक नई ा ो ज म । ा । ममार । ।। ार जाएग , ा ाा ा जाएगे, सगार का मारा जी ा माा । ा जाएगा । र, जा ा ा ा ाु ार ा ा असख्य पर्वतो क ा ग, जिनका रग ला ा श्रोर पा ा रग ा । मिश्रित होगा और ा ाा सगार म सूय की धूप म ाब चमकते र ा । ा ा ा ा ा ाा ाग श्राग पूर कुनी होगा, समझने वाले गब ह ा जल । र ाा ा ा ा ाग, ाा ाा ाा ाा नष्ट कर ााा ा ा मूल्य चुका ा ाे ।।।

य ो ाा ा श्रौर ाू ा ा ा ा ा ा है, यह । ार ग ाा उपन्यास की आधार भूमि है । उप ाास ा ग ाााा म ामपूण ाा ा । जिसम २०० वर्षों का इतिहास, ग ार ाा म ाा ाा ाा ाा ा ा है । अगर ाा ााी बरार है तो यह ाा ाूरा ाा ाा, ाजग ााा ा ा ार ाा ााा ाााा ाा । अभी पहला भाग सम्पूर्ण ाा ा ा ाा ााग ा ाा ाा । ा ााग म यूरोप की जनक्रान्ति ा ाा ा श्रोर ाााा ाा ााष्ट्रा ा ा पृष्ठभूमि म ाा ार भारत म ईस्ट इण्डिया ाा ाा ाा ााग ाा ाौर उसा ााग ाााा ाा ाा है, जिसम युद्द की बात मेर ाी ा ाार ा ा ाा ा ाा भारत ाा अग्रजा ाा जय किया ? ाी । द्वितीय—क्या ५७ ाा ाा ाा ा स्वतन्त्रता का युद्ध था, ाी । ाा ाग ााा वत्तमान भारत मुक्ति पर ५७ का निर्दा ाा प्रभाव है ? ाी ।

समू ाा उप ााग ाा ाु ऐतिहासिक श्रौर श्राथिक अध्ययन पर श्राधारित है।

पत्रव्यवहार

आचार्यश्री के पत्रव्यवहार का कुछ विशेष अ श यहा प्रकाशित किया जा रहा है। इस अ श मे राजपुरुषो और साहित्यिक पुरुषो के केवल उन्ही पत्रो का समावेश है, जिनका 'मेरी आत्मकहानी' से सम्ब ध है। यो उनका पत्रव्यवहार बहुत विस्तृत है और वह समस्त पत्रव्यवहार पृथक से प्रकाशित किया जायगा।

(प ाब प्रा ाय हि ी साहि य सम्मे न के ा र्षि । अधि ेशन ा ा १० ११ अप्रैल १९५४ ा ाा ी ाा ामा ारम्भ ारा । जिसकी अ यक्षता के लिये मुझे ाम ित्र िया गया था । स्वागताध्यक्ष सत्यपाल की अध्यक्षता म म प ा गया । उसमें आशातीत भीड़ थी । सारा ा ावरण ऐसा था जैसे सम्मेलन ा ह्रदय मे उत्साह ा सागर लहरा रहा हो। सभी श्रो ा, उनमें स्वागत ा सदस्य भी जिनमें स्त्रियां भी थीं प्र ा मान । ा ा श्रोताओं पर मे भी ा अ यक्षीय भाषण ा ा ा ने अपना सब सम्म प ा ा । ऐसा व हार यहां दिया जा रहा है । पजाबवासियों ने इस अवसर पर सम्मेलन द्वारा सार्वजनिक रूप से सम्मान तथा पुर ा प्र ाि ो ा ा स्वाग भी किया था)

मा यवर श्री आचार्य जी

आपका कृपापत्र मिला । पजाब हि ी साहि य सम्मेलन का प्रधान चुना गया है । इस स म आपको पूर्ण सहायता चाहता हूँ । अ यक्षीय भाषण तैयार करने में आपकी स ायता चाहता हूँ । आशा है आप स्वीकार करेंगे । ह ा ा दर एव प्रेम सहित ।

— आपका भाई, सत्यपाल

प्रिय सत्यपाल साहब

आपका कृपापत्र मिला । यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप पजाब हि दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के ा ा हैं । बहुत धन्यवाद । इस सम्बन्ध में आप ी यह चाहते हैं कि मैं सा ारण रूप से भाषण में ा ा दूंगा । अ यक्षीय भाषण मे पंजाब की समस्या ा ि ि प्रदेश की समस्या ा ा ा पजाब की विगत और वर्तमान हि ी भाषा और हि ी साहित्य सम्बन्धी प्रगतियां और उसके विरोधी तत्वों ा ा ा ी विवरण ा ा ा सर्वत्र आप मुझे लिखकर भिजवा दीजिए । साथ ही यह भी लिख ा ा ा ि आपका विचार पूर्ण हो जाएगा । यदि आपको हि दी लिखने में ि ा ा ा आप संस्कृत में अपना मनोभाव लिखकर भिजवा दीजिए ।

भवदीय, चतुरसेन

मा यवर ी ा ा ा जी ,

हि दी सम्मेलन १० ११ अप्रैल को हो रहा है । आप एक मनोरंजक ा ा ा ा भाषण तैयार कर लीजिए । पजाब की समस्याएं यहां जोड़ ली जायगी । आप ि ा ा प्रति ा ा ा भाषण लिख कर दीजिए ा ा ा ा ा ा ा आप पर मुझे भरोसा है । आपको सम्मेलन में केवल निमन्त्रित ही नहीं किया जाएगा, बल्कि आपको विशेष मान भी दिया जाएगा । आप ी सम्मानित ा ा ा ा । मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूँ । यह मेरे अहोभाग्य हैं कि आप जैसे ि ा ा ि से मेरा पत्र द्वारा सम्बन्ध हुआ । जल्दी ही आपके दर्शनों से अपने आपको कृतार्थ करूँगा । मैं फिर यह निवेदन करूँगा कि आप औरों के

लिए भले ही विरत हो गए हो, पर मेरा भाव आपसे उठाना ही पडेगा और मेरा शारीरिक तथा मानसिक कल्याण करना ही होगा।

मेरे मनमे आपके प्रति प्रेम भक्ति तथा श्रद्धाके भाव है। आपको मिलकर शरीर, मन तथा आत्मा को लाभ पहुँचेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य लिखिए और मुझे पूर्णरूप से अपना दास जानिये। बहुत आदर के साथ।

—आपका भाई, सत्यपाल

मान्यवर श्रीआचार्यजी जयहिन्द,

आपकी पुस्तक 'जिन्दगीकी कराह' व भाषण की पहुँच मे भेज चुका हूँ। पुस्तक मैने ध्यान से पढी है। मै आपको बधाई देता हू कि आपने बहुत साहस से अपने विचारो को प्रकट किया है। यह आपही का हौसला है कि कई अप्रिय बाते आपने बडी दिलेरी मे लिखी है। आपकी लिखने की शैली बहुत सराहनीय है। बडे जोरदार शब्दो का आपने प्रयोग किया है। आपके कई विचारो से सहमत न होते हुए भी आपकी स्तुति व श्लाघा किये बिना नही रह सकता, जो कोई भी इस पुस्तक को ध्यान से पढेगा।

—आपका भाई, सत्यपाल

मान्यवर भाई चतुरसेनजी जयहिन्द,

डाक्टर साहिब ने और मैने आपसे देहली मे ही सम्मेलन पर पधारने की प्रार्थना की थी। आशा है आप अवश्य पधारकर सम्मेलन की शोभा को बढाएगे। सम्मेलन १०, ११ अप्रल को हो रहा है। कृपया अपने आने की तिथि से सूचित करे ताकि आपके स्वागत तथा आतिथ्य का प्रबन्ध कर सके। योग्य सेवा।

—आपकी बहन, शन्नोदेवी

बहिन,

मै १० अप्रेल को सुबह फ्रन्टियर मेल से अमृतसर पहुँच रहा हूँ। मेरे जसे अनुगत दास के स्वागत तथा आतिथ्य का कोई प्रश्न ही नही है। हा, सेवा से अवश्य कृतार्थ करे।

—भवदीय, चतुरसेन
चडीगढ
१४ ४ ५४

श्रीयुत आचार्यजी,

जय हिन्द। मै आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि आपने मेरे निवेदन को स्वीकार कर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के समारोह पर पधारने की कृपा की। आपने जो निबन्ध वहा पर पढा वह बहुत मनोरजक था किन्तु आश्चयजनक भी। यद्यपि वह आपकी विद्वत्ता का एक प्रमाण था, तो भी एक बात मुझे विशेषकर बडी खटकी जो आपने

[illegible] विवाह की [illegible] क्या कहा, [illegible] के साथ [illegible] और [illegible] आकर एसी [illegible] आया तथा [illegible] आप [illegible] चकित रह गये। यदि आप [illegible] कि इस [illegible]।

[illegible] मेरे साथ रहेगा क्योंकि [illegible] आप [illegible] काम [illegible] होगी। निजी तौर पर [illegible] आप [illegible] और सत्काम्युत [illegible] करता [illegible]।

[illegible]।

भवदीय, सत्यपाल

प्रिय [illegible] साहब,

[illegible] समय आपसे [illegible] याचना के तौर पर मैं अभी आपको एक पत्र [illegible] रहा [illegible] कि आप [illegible] मुझे मिला। [illegible] प्रति मेरा [illegible] आप [illegible]। परन्तु यदि आप उस [illegible] उपस्थिति के [illegible] आप [illegible] अशिष्ट [illegible]।

[illegible] साहित्य [illegible] मेरी दृष्टि में [illegible] समारोह था। [illegible] राजपुरुष सम्मिलित [illegible] प्रतिष्ठा है, [illegible] प्रतिष्ठा [illegible] है। परन्तु [illegible] अपना राजकीय परि[illegible] सभाओं में आना चाहिए। [illegible] के अगाध पाण्डित्य और असाधारण [illegible] अनन्य देश भक्ति [illegible] और उनके [illegible] गुणों [illegible] सम्मान [illegible] भी मैं [illegible]। परन्तु [illegible] श्रीनेहरू, मैं [illegible] साहित्य समारोहों में उनका राजकीय दम्भ [illegible] नहीं कर सकता।

जब आपने मुझे निमन्त्रण भेजा था, तो आपने भी और इसके बाद बहिन शन्नो-देवी ने मुझे सूचित किया था कि स्टेशन पर आप लोग मेरा स्वागत अभ्यर्थना करेंगे और तभी मैंने ऐसा न करने के लिए आपको और बहिन शन्नोदेवी को भी पत्र लिख दिए थे, क्योंकि मैं इस प्रकार के पाखण्ड प्रदर्शन का सख्त विरोधी हूँ। परन्तु जब हमारी ट्रेन ने अमृतसर का प्लेटफार्म छुआ तो मैंने उड़ती नजर से स्टेशन पर बहुत भारी भीड़भाड़ और धूमधाम देखी, घबराया भी, परन्तु जब तक मैं ट्रेन से बाहर जाऊँ और कुली के द्वारा अपने सामान की व्यवस्था करूँ, तब तक आप सब लोग जा चुके थे। उस भागदौड़ में क्षणभरके लिए आपकी एक झलक जरूर मैंने देखी और तब मैंने समझा कि वह सारी धूमधाम, फूलमालाएँ, स्वयंसेविकाएं और आप महानुभावों का वहाँ आगमन हम साहित्यकारों के लिए नहीं, श्रीमावलकर और उनकी धर्मपत्नी के लिए था। मैं यह देखकर दंग रह गया कि स्वागतकारिणी की मंत्रिणी ही नहीं, सम्मेलन के मनोनीत अध्यक्ष भी उस स्वागत में भाग ले रहे थे। जबकि समारोह के सबसे पूज्य पुरुष सम्मेलन के मनोनीत अध्यक्ष थे, जिनकी अभ्यर्थना के लिए सब लोगों को स्टेशन पर जाना चाहिए था।

स्टेशन पर और भी कवि और साहित्यकार जो उसी ट्रेन से आए थे, खड़े हुए थे और मैं भी उन्हीं के साथ जा खड़ा हुआ, जब तक कि एक नवयुवक ने मुझे रिक्शे में बैठाकर मेरे मेजमान के घर पर न पहुँचा दिया—जहाँ मुझे अपने घरके समान आराम और व्यवस्था मिली कि जिसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। इसके बाद जब सभा का खुला अधिवेशन हो रहा था और श्रीमावलकर के आने का समय था तो आपने आदेश दिया कि सब लोग खड़े हो जाएँ। आपको स्मरण होगा कि मैंने इसपर आपत्ति की थी। मेरे लिए यह एक धर्मसंकट था। मैं किसी ऐसे व्यक्ति का सत्कार नहीं करता, जो समानता से उतना ही मेरा सत्कार न करे। मेरे लिए श्रीमावलकर के लिए खड़े होकर अभ्यर्थना करना—जबकि मेरा उनसे व्यक्तिगत परिचय नहीं, एक बहूदासी बात थी। सारी सभा का खड़ा होना और उसके साथ मुझे भी, तो सर्वथा एक लज्जाजनक चीज थी। मेरे लिए यह भी कठिन था कि मैं स्टेज से उठकर चल दूं। ऐसा करना मैंने आपके प्रति अभद्र समझा और जब श्रीमावलकर का आगमन हुआ, तब सारी सभा के साथ मुझे भी खड़ा होना और केवल इतना ही नहीं, उनके बैठने तक माननीय सभापति को भी अपना भाषण बीच ही में रोक देना पड़ा। इतना ही नहीं, सारी सभा पर हथियारबन्द पुलिस आ गई। यह हद दर्जे का लज्जाजनक दृश्य था। यदि आप मुझसे मेरे मन की बात पूछें और मुझे स्पष्ट कहने की आज्ञा दें तो मैं कहना चाहूँगा कि उस समय मुझे सबके साथ खड़े होने में उतना ही कष्ट और अपमान का अनुभव हुआ, जितना कि उसी अमृतसर की गलियों में कभी डायरशाही में भद्रजनों को गली में

रगकर चनो मे ग्गा होगा।

मरे िवार म ीमानतर रा यर न।र गस्मात होता ि सभा की ओर रा ।त पातीय गभार्गी ी र गोकर उनरा स्वागत रर। परन्तु इतने ही पर वात खतम नही ।सम्मेलन और सभापति मगोग्य रा स्वागतकारिणीकी अध्यक्षा महोदया का भी सारा ध्या। ।भानतर र गर्री रा न समारोहा गौर गोष्ठामो मे लगा रहा ि जिनरा साहित्य सम्मान म कुछ सरोकार ी न था और हम साहित्यकारो का जो तर्नीफ और अपमान भी मानतर के कारण इस साहित्य-समारोह मे प्रदर्शित रस्ना पड़ा, उसका पत गरत ाना ो ग्या काफी होगा कि मुझे स्वय पुलिस के सिपाही ने ाहरी गग ि ाहिर ा र जा ो ो मजबूर किया और किसे को भीतर नही जाने ि या। ायकि पाप लोगो की कार ने ी पुलिसवालो की सरक्षता म ा, ग्रा जा र ी थी। लि ग मे भरी गराम यह अनुभार उपस्थित करना पडा कि यह तथाकथित गार ि ी साहित्य सम्मा ा रा समारोह श्रीमानकर और श्रीमती मा ा र र ा ुभ विवाह रा समारो है, जिसम ू ा है श्रीमावलकर, दूल्हे ि पिता है भी गार्य सत्यपाल, बाराती है ि ियारत पार्लाम ी दुलहिया और हम ाग साहित्यकार है ताो वाल, ा ा, गा जा ऑ मुजरा करने वाले। सब अद्भुत और महिमाग, खत्र और आाम है उस समारोह की दशक दर्शिका।

इस प्रकार की ाग गास्कृतिक और सार्वि , समारोहो म अक्सर होती रही है और य । ि पुत्र सब जगह अपनी राज परि। का दम्भ लेकर पहुँचा और जा ा ासना म असहायिता ी रसर स्थान । मुगल बादशाहो का एक ा साग रा ग गार ग्रजी ी ा ग ा ा ा गुलामी र सामने जनता का जा ग ा ा ा ा िगा रह मा ाा ि ा, क्योंकि हम उन्हे अत्याचारी समझ ार। पर त ा ा ाज्य म जनता ी ा ा जो कि समानता और स्वा ा ा ा ा ा है और पा ा ा ा ा ाता ढोंग करत ा सास्कृतिक और सार्वि ी समारोहो म ा है ता राजपरि दका दम्भ साथ ा है। ा ि ा ासमा ा ा ा ा ा ा ा ा ा जाता यह उसी समारोह और । ा ा म भरा मगल म ा गाा। ा ारा आदमियो को ा ा ा, ा ा ा ा ा ा सम्मान हो सकता है—मै उस ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा समाज की उस अवस्था म ा ा दिया है ि ि जिस प्रकार गा म ाज ा ा भर ा ा ा ा ा ा भरे रहते है—एक के उपर एक। जो बोरा ा ा ा ा ा होता है उस ऊपर ा ा ा ा बोझ बरदाश्त करना होता है। यद्यपि अनाज उसमे भी वही है जो ऊपर ा ा ा ा म है। ऊपर वाले बोरो म और नीचे वाले बोरो म कुछ भी अन्तर नही। क्या मनुष्य का मनुष्य के ऊपर लद

कर बैठना इसी प्रकार चलता रहेगा। दूसरो को अपमानित करके छोटा बनाकर अपने को सम्मानित करना,बड़ा बनाना इस स्वतंत्रता और समानता के युग मे कब तक बर्दाश्त किया जा सकता है।

आपने तो मेरी पुस्तक पढी है, आप भलीभाति जानते है कि मै मनुष्य का पुजारी हूँ। मनुष्य की पूजा ही मेरा धर्म कर्म है। सो क्या बातो ही मे, कर्म मे नही? मै कोई भी ऐसा काम बर्दाश्त नही कर सकता, जिसमे मनुष्य को छोटा बनना पडे कि उसे सिर झुकाना पडे। इसीसे मै ईश्वर से मुनकिर हूँ, क्योकि जब तक ईश्वर है मनुष्य का सिर झुका ही रहेगा, जिसे मे अपनी आँखो से देख नही सकता।

अभ्युत्थानपूर्वक आगतजनो को आसन देना परम शिष्ट व्यवहार है। आप मेरे घर आइए और देखिए, कि मैं प्रत्येक छोटे बडे को खडे होकर बैठाता हूँ। उनके बैठने पर बैठता हूँ। यह मेरी आदत होगई है, परन्तु यह श्रद्धा और आदर का शिष्टदान है। जिसे यह दिया जाए, वह उसे उतनी ही श्रद्धा और आदर एव नम्रता से स्वीकार करे, तभी इस सिद्धान्त का, शिष्टाचार का, शिष्टरूप व्यक्त होता है। इस अवस्था मे यह आदर देने वाले दाता की प्रतिष्ठा भूमि पर अवस्थित है। अब यदि आदर ग्रहण करने वाला नम्रता और श्रद्धापूर्वक आदर को दान की भाति ग्रहण न करे, टक्स की भाति,कर्जे की भाति दम्भ और अहकार से उस पर अपना अधिकार समझे। यह समझे कि उन्हे ऐसा करना ही चाहिए, तो यहा मेरा विद्रोह है और अपने जीवन मे मैने इस विद्रोह की इतनी कीमत चुकाई और कष्ट भोगेहै कि उनकी चर्चा एक दर्दनाक कहानी है।

परन्तु मे यह अवश्य कहूगा कि मेरे इस निबन्ध के साथ इस अलकार का कोई भी सम्बन्ध नही। फिर भी वह निबन्ध पढने मे मुझमे उत्साह बिल्कुल नही रहा,क्योकि मैने यह देखा कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन का यह मच प्रचारको का मच था,विचारको का नही। परन्तु मे प्रचारक नही विचारक हूँ।

अन्त मे आपके सरल साधु व्यक्तित्व और शन्नो बहिन की क्रियाशीलता से मै इतना प्रभावित हुआ हूँ कि जिसे मे भूलूगा नही और जिसका मूल्य बहुत है। निस्सदेह हिन्दी और हिन्दी साहित्य के लिए पजाब मे आप मुझ जसे तुच्छ व्यक्ति से जो सहयोग लेना चाहेगे, उससे मुझे प्रसन्नता होगी। परन्तु यह बात जरूर है कि मैं कभी भी किसी राजनीतिक पुरुष का अरदली बनना गवारा नही कर सकूगा। मै एक अशक्त और एकाकी साहित्यकार अवश्य हूँ, पर मेरी अपनी एक निष्ठा हे और उसके सामने मै सारी दुनिया को हेच समझता हूँ।

—भवदीय, चतुरसेन

प्रिय श्रोमावलकर साहब,

आपको कदाचित स्मरण होगा, कि गत पजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर जब आप वहा गए,तब मैं भी उसमे उपस्थित था। उस समय वहा खुले

अधिवेशन में मेरे भाषण पर आक्षेप किया था, जो सम्मेलन के अध्यक्ष स्व० डा० सत्यपाल [illegible] गया। [illegible] मैंने एक पत्र लिखकर [illegible] किया था, जिसके जवाब में [illegible] पत्र लिखकर भेजा [illegible]।

इस विषय में डाक्टर साहब का अकस्मात् ही स्वर्गवास हो गया। मेरा पत्र तो उन्हें अवश्य ही मिल गया था, पर उन्होंने उस पर क्या विचार किया या नहीं, यह जानने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला।

डाक्टर सत्यपाल मेरे अत्यन्त घनिष्ठ और प्रिय मित्र थे और मैं केवल उन्हीं के नाते अनायास ही [illegible] गया था। ऐसा ही मेरा विचार आपके भी सम्बन्ध में है। मैंने [illegible] अपने मित्र के [illegible] अतिथि की अवज्ञा की थी। [illegible] यह बात आपके कान पड़ी होगी। पत्रों में भी इसकी चर्चा हुई थी। डाक्टर [illegible] इस सम्बन्ध में [illegible] और मेरी स्थिति आपके सामने [illegible]। [illegible] सहृदय, उत्साही और सज्जन [illegible]। [illegible] यदि मेरी सफाई से सन्तुष्ट [illegible] मुझे क्षमा [illegible], [illegible] यह फर्ज हो जाता था कि मैं आपसे क्षमा याचना [illegible]। क्योंकि मैं किसी हालत में उनका [illegible] हुआ सकता था और [illegible] व्यक्तिगत आत्मा की सन्तुष्टि का प्रश्न है। इसलिए मेरे लिए आपकी शरण आने का और कोई दूसरी राह नहीं है। खासकर उस हालत में जबकि मैं अपराधी आपके प्रति भी हूँ और आपकी [illegible] के प्रति भी। डाक्टर साहब के पत्र तथा उसके उत्तर की प्रतिलिपि आपकी सेवा में भेज रहा हूँ और अब आपकी शरण हूँ, आप और आपकी [illegible] मेरे लिए जो सजा तजवीज करें, मेरे लिए प्रतिष्ठा की वस्तु होगी। पत्र [illegible] से लिख रहा हूँ, परन्तु इतना समय आँसू सूखने में लग गया। सादर।

—आपका, चतुरसेन

प्रिय भाई चतुरसेन जी,

आपका तारीख २ जून का पत्र तथा उसके साथ [illegible] प्रतिलिपियाँ मुझे श्रीनगर में जहाँ स्पोर्ट्स [illegible] के लिए मैं गया था, वहाँ मिले। कार्य व्यस्त होने के कारण और प्रवास में था इसलिए आपको तुरन्त प्रत्युत्तर न लिख सका। आप क्षमा करेंगे, ऐसी आशा रखता हूँ। आपके तारीख १६. ४. ५८ के स्वर्गीय डाक्टर सत्यपाल को लिखे पत्र में जो विचार [illegible] आपने प्रकट की है, उन सबसे मैं सहमत नहीं हूँ। किन्तु [illegible] राजकीय स्थान [illegible], इसी कारण किसी व्यक्ति का मूल्यांकन करना ठीक नहीं है यह आपके विचार के साथ मैं पूर्ण सहमत हूँ। [illegible] परिषद् में जो घटना बनी, उसका आपने जो अर्थ किया है वह मुझे योग्य नहीं लगता। मेरा यह [illegible] आप ऐसा नहीं मानेंगे कि उस घटना का मध्य बिन्दु मैं था, इसलिए मेरा यह मन्तव्य है। चाहे इसमें मैं था या दूसरे कोई अन्य व्यक्ति थे, तब भी किसी की पूजा करना यह अलग चीज

है और किसी के प्रति यथोचित आदर बताना यह अलग चीज है। अपने समाज के अलग अलग क्षेत्र मे काम करने वाले जो व्यक्ति होते हैं, वह सब मेरी दृष्टि मे उनके काय के कारण आदरणीय है। जसे कि आयुवद के बारे मे आप आदरणीय माने जाएँगे। आदरणीय व्यक्ति जब आता है तब सभागण खडे होते है, इसमे कोई खुशामद या गुलामी म नही समझता हू। लेकिन आपका जो कुछ अभिप्राय हो, उसके अनुसार आपको चलने का पूरा अधिकार है, तथा इस विषय में अलग अलग राय हो सकती है।

इतना मान्य होने पर भी आपने जो कहा,—'यह सम्मेलन तो श्रीमावलकर और उनकी धर्मपत्नी के विवाह की बात लगती है' यह कहने मे मुझे सुरुचि का भग लगता है। मावलकर आए और गए, यह तो एक बहुत छोटी बात सम्मेलन मे हुई। मेरी तबियत ठीक नही थी,इसलिए मे देरी से आया और जल्दी चला गया। सम्मेलन बुलाने वालो ने मेरे प्रति उदारता और सद्भाव बतलाया,उतना ही अर्थ इसमे से निकल सकता है। मेरा सम्मान करना यह सम्मेलन का उद्देश्य नही था, अगर ऐसा उद्देश्य होता तो जो कुछ आपने कहा वह योग्य नही, परन्तु प्रस्तुत गिना जाता। आपके भाषण मे मेरा नाम लाना और सम्मेलन विवाह की बात लगती है ऐसा कहना यह न था,प्रस्तुत और न था सामान्य रुचि के अनुसार।

इस बात मे कुछ ज्यादा लिखने की आवश्यकता नही है। इतना ही आश्वासन मैं आपको दे सकता हूँ कि आपके मन्तव्य से मुझे कुछ रोष नही है। आपने दिल सफाई से लिखा इसलिए मुझे जो लगा, मने भी लिख दिया है।

अब सम्मेलन की बात। जहा तक मे समझता हूँ वहा तक सम्मेलन का उद्देश्य हिन्दी प्रचार का था,अर्थात् भाषा पाण्डित्य की बात बहुत थोडी थी। पजाब की जो खास स्थिति है जहाँ पजाबी और हिन्दी का जो झगडा बढ़ने का सम्भव है, इस बात पर सोचकर श्रीमती शन्नोदेवी ने मुझे आग्रह से कहा कि जो मे सम्मेलन का उद्घाटन करूगा तो पजाबी हिन्दी का झगडा न बढे और हिन्दी का काम आगे बढे ऐसा सम्भव है। इसलिए मने सम्मेलन के उद्घाटन का या सम्मेलन मे हाजिर रहने का स्वीकार किया था। उसके अतिरिक्त अमृतसर जाकर जलियावाला बाग तथा सिख मन्दिर का दर्शन करने की इच्छा भी थी। आप देख सकेगे कि सम्मेलन केवल साहित्यिक न था। केवल साहित्यिक सम्मेलन ही उसका उद्देश्य न था, इसमे कुछ राजनीतिक मिलावट भी थी। इसलिए यह बात कहता हूँ कि आपको उपेक्षा का जो भास हुआ,इसमे आप सम्मेलन के कार्यकर्ताओ पर कुछ अन्याय करते है। स्टेशन पर जो बात हुई है इसमे गहराई से देखने की जरूरत नही है। मे मुझे तो बहुत छोटा तथा अज्ञ समझता हूँ। लेकिन सौभाग्य से और दुर्भाग्य से लोकसभा का अध्यक्ष होने के नाते आम लोगो की दृष्टि मे देखने योग्य हूँ,ऐसा था। इसलिए स्टेशन पर बहुत से लोग इकट्ठे हो गए और आपने

[illegible] गया [illegible] हिन्दुस्तान [illegible] समय [illegible] और [illegible] समझता हूँ।

[illegible] आभारी हूँ। [illegible] निर्णायक [illegible] आश्वासन देता हूँ कि [illegible] सफाई से लिखा यही [illegible] काफी है।

मैं आज प्रातःकाल श्रीनगर से आया और [illegible] को लिख रहा जाता हूँ। २८ को [illegible] जाऊँगा। आप कुशल होंगे।
[illegible]

आपका ता० [illegible] मिला। [illegible] नैनीताल से आकर आज पढ़ा। आप [illegible] है। परन्तु आपने मेरे मन [illegible] आपका आभार मानता हूँ।

आपको [illegible] साहित्यिक न था। पर [illegible] जाता ही नहीं। मेरे अन्य [illegible] और [illegible] था कि जब मंच पर आपका [illegible] भी [illegible] साहित्यकार, मुझ भाग्यहीन को छोड़कर [illegible] भी लिए।

[illegible] साहित्यकार, [illegible] भी मूल्य इस [illegible] नहीं [illegible] परन्तु [illegible] आप [illegible] मैं ९८ को पार कर [illegible] परन्तु यदि आपने उस सुरुचि [illegible] और आपसे और [illegible] पर मैं आप जैसे सुजन, [illegible] की हिमाकत कर [illegible] हो, [illegible]।
[illegible]

आपका ता० [illegible] आज मिला। आपने निर्दोष [illegible] किया था, उसमें क्षमा माँगना क्या और देना क्या? [illegible] किया था। आपने [illegible] कोई बुरा न किया था। [illegible] आभार [illegible]।

मेरा उम्र अभी ९० [illegible] है, यह [illegible] आपकी जानकारी के लिए है।

—भवदीय, ग० वा० मावलंकर

(८ मई १९५४ को सेठ गोविंददास द्वारा आयोजित रहीम समारोह का निमन्त्रण आचार्यश्री को मिला, जिसका सभापतित्व, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद करने वाले थे। उसीसे सम्बन्धित सेठजी को लिखा गया पत्र)

प्रिय सेठजी,

आपका रहीम समारोह का निमंत्रण मिला। ऐसे इन समारोहो मे निश्चित रूप से दूल्हा राष्ट्रपति और हम साहित्यकार बाराती रहते है। इस प्रकार आप राष्ट्रपति को घेरने का तीन बना रहे है, क्या आप यह नही सोचते। मै आपके नियोजित ऐसे समारोहो मे आऊँ और ५-७ रुपया बस टैक्सी मे खर्च करूँ, सिर्फ दर्शक बनने के लिए। ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ। —चतुरसेन

(मन्त्री, हिन्दी साहित्यकार परिषद् आगरा को लिखा गया एक पत्र)

प्रियवरेषु,

मैने पत्रो मे पढा कि परिषद् आगरे मे एक साहित्य आयोजन कर रहा है। इस अवसर पर परिषद् एक नया आन्दोलन खडा करे, यह मेरी अभिलाषा है। 'साहित्यकार जन जीवन को राजनीतिज्ञो के हाथ से छीन ले'—यही उस आन्दोलन का नारा और उसकी रूपरेखा हो। यदि परिषद् इस सम्बन्ध मे मेरे विचार और योजना विस्तार से सुनने मे अभिरुचि रक्खे, तो मैं स्वयं परिषद् की सेवा मे उपस्थित होकर अभिप्राय निवेदन करूं। सब साहित्य बन्धुओ को नमस्कार।

(उत्तरप्रदेशीय हिन्दी सम्मेलन देहरादून को लिखा गया पत्र)

प्रिय महोदय,

आप देहरादून मे उत्तर प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन कर रहे है। इसके लिए आपका अभिनन्दन करता हूँ। आपने मुझ नगण्य को आमन्त्रित नही किया, इससे इस समारोह मे सम्मिलित होने के आनन्द से मैं वञ्चित रहूँगा, परन्तु एक प्रस्ताव आपके द्वारा उपस्थित करता हूँ कि सम्मेलन एक नया आन्दोलन खडा करे कि—'साहित्यकार जन जीवन को राजनीतिज्ञो के हाथ से छीन ले'। यही उस आन्दोलन का नारा और उसकी रूपरेखा हो। देश भीतर से बिखर रहा है और बाहर से उस पर भारी दबाव पड रहा है। साहित्यकार ही देश की भीतरी एकता को कायम रखने मे सहायक हो सकते है। ऐसी मेरी मान्यता है। यदि सम्मेलन इस सम्बन्ध मे सक्रिय हो तो मै विस्तार से अपने विचार रख सकता हूं। साहित्य बन्धुओ को अभिवादन।

(आचार्यश्री ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' लिखकर उसकी पाण्डुलिपि कुछ विशिष्ट साहित्य महारथियो को जांच पडताल के लिए भेजी थी। उसीसे सम्बन्धित शुकदेवविहारी मिश्र और पं० देवीदत्त शुक्ल के दो पत्र)

[illegible] जी [illegible],

[illegible] आशा है कि [illegible] आपको पसन्द आए [illegible] हम लोगों का न [illegible] आपकी आज्ञानुसार [illegible] चुन सकते है। [illegible] दिया था, उसमें हम लोगों के [illegible] है। हमारे दोनों के [illegible] नहीं आती। [illegible] कठिन नहीं है, [illegible] लिखना चाहें तो लिख [illegible] परिज्ञान' में हम लोगों [illegible] है। बिना उसके क्या व्याख्या [illegible] भी [illegible], उपन्यास आदि [illegible]।

– [illegible], शुकदेवबिहारी मिश्र

प्रिय शास्त्री जी

[illegible] पढ़वाकर सुन ली है। [illegible] उसके बाद के [illegible] किया है। उन दोनों [illegible] विचारधाराओं का [illegible] चीज है। यदि [illegible] सर्वथा पूर्ण [illegible] करेंगे, जब कोई [illegible] काम लिया है, [illegible], साथ ही इस बात [illegible] मैं आपकी इस [illegible] लिए कि [illegible] है, जहाँ तहाँ कुछ [illegible] भी [illegible] करना [illegible] हुई है।

[illegible] 'हमारे शरीर की रचना' नाम की एक [illegible] पुस्तक प्रका[illegible] हुई थी और उस पर '[illegible] पारितोषिक' भी दिया गया था। कदाचित्

आपने इसका उल्लेख नहीं किया है।

सन १९२० के बाद हिन्दी में एक बवण्डर सा आया था। उसी समय 'माधुरी' जबलपुर की 'श्रीशारदा' और 'चाँद' जैसी पत्रिकाएं और पत्र निकले थे। 'श्रीशारदा' और हिन्दी राष्ट्रमन्दिर तथा 'कर्मवीर' सेठ गोविन्ददास ने संस्थापित किए थे। पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्र सेठजी के साहित्यिक मन्त्री थे। उन्होंने श्रीशारदा का सम्पादन भी किया था। वे हिन्दी के एक अच्छे लेखक तथा कवि हैं। हाल में उनका अवधी भाषा में 'कृष्णायन' नाम का एक महाकाव्य निकला है जो रामचरितमानस की शैली पर है। इसमें कृष्ण का जीवनचरित लिखा गया है और यह सिद्ध किया गया है कि वे एक पूर्ण पुरुष थे। उसी बवण्डर के समय में कांग्रेस की नीति जनता में प्रचारित कराने के लिए श्री राजेन्द्रप्रसाद ने एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था और उसके सम्पादक बने थे। उनका हाल में हिन्दी में आत्म चरित प्रकाशित हुआ है जो देश का एक महान् ग्रन्थ है। सन २३ या २४ में अवधवासी लाला सीताराम के आग्रह से सर आशुतोष मुकर्जी ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी में हिन्दी में एम० ए० की परीक्षा देने की व्यवस्था की थी। उसी वर्ष नदिया शान्तिपुर के नलिनीमोहन सान्याल ने सर्वप्रथम हिन्दी में एम०ए० की परीक्षा पास की। सन २५ २६ में सान्याल महोदय ने भाषा विज्ञान नाम की पुस्तक लिखी, जो अपने विषय की एक अनूठी पुस्तक है। पिछले दिनों रायपुर (सी० पी०) के पण्डित रामदयाल त्रिपाठी ने 'गांधी दर्शन' नाम का एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है जिसमें उन्होंने गांधी जी के विचारों की निष्पक्ष आलोचना की है। इस युग के यूनीवर्सिटियों में हिन्दी के हो जाने से अध्यापकों और डाक्टर बनने वाले छात्रों से साहित्य के इतिहास सम्बन्धी कतिपय अनूठे ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें से मुख्य मुख्य का उल्लेख होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में आपको श्री प्रेमनारायण टण्डन, रानीकटरा, लखनऊ द्वारा लिखित वर्तमान समय के लेखकों की डायरेक्टरी से बड़ी सहायता मिल सकती है। मैं आपकी बड़े उत्साह के साथ सेवा करता, क्योंकि इस विषय से मुझको प्रारम्भ से ही प्रेम रहा है, परन्तु दुर्भाग्यवश मैं अन्धा हो गया हूँ—किसी काम का नहीं रहा। मानसिक स्थिति भी ठीक नहीं है। जो बात याद थी वे भी शीघ्रता के साथ भूलती जा रही हैं। इस समय जो कुछ याद आ सकी, उनका यहां उल्लेख कर दिया है। आपकी पुस्तक अपने विषय की अनूठी पुस्तक होगी। एक कमी मुझे यह जान पड़ी है कि लेखकों का उल्लेख करते समय आपने उनके रचनाकाल का ध्यान नहीं रखा है। —देवीदत्त

(संयुक्त प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रेसीडेन्ट सर सीताराम द्वारा लिखा गया पत्र)

श्रीमन्—जयरामजी की,

मुझे दुःख और लज्जा है कि आपके पत्र का उत्तर अब तक न दे सका। कुछ बहुत ही व्यस्त रहा हूँ और हूँ, जिसमें मेरे छोटे भाई तथा माताजी के रोग ग्रसित

हो जाता है। मेरा भी ऐसा ही विचार है। जब इन लोगों को निश्चय हो जायगा, तभी इन्हें कार्य करने का अवसर मिलेगा। अभी तक वे विचार ही करते हैं। इसमें परिवर्तन हो तब ना जाने। इधर मेरा ... अथवा 'किंकर्त्तव्य' की दशा में पड़ा है। आप अपनी इच्छा को निश्चय में पाकर और कागज पर लिख लीजिए। समय पर इसका ... २० मार्च को आप परमात्मा ... सभा ... है, उसी समय ... कृपा बनाए रखिएगा। यह मैं ... नहीं।

भवदीय, सीताराम

(श्री ... १९-६-१९३५ को लिखा गया पत्र)

प्रातःकाल २॥ बजे

कलकत्ता, २६ ६ ३५

प्रिय शास्त्री जी,

प्रणाम! आपका ... दिया है। बिल्कुल ठीक वक्त पर आया। यद्यपि जगह ... थी क्योंकि मुझे सिर्फ सम्पादकीय लिखना बाकी रह गया था और उसके लिए ... रिजर्व थे, पर आपकी चिट्ठी को जरूरी समझ कर उसे ... दिया। निस्सन्देह आपके पत्र में सत्य का बहुत कुछ अंश है। ... जगह गलतफहमी ... पर ... करना ठीक न होगा। ... पर ... निवेदन कर दूँगा कि अमुक ... है। ... जीवन के प्रारम्भ में आपसे झगड़ा ... करूँगा। ... बड़े पते की बातें ... मालूम ... गया है कि चौबेजी ने शास्त्री जी से ... चाहते हैं और ... हैं।

... अभी नहीं। ... स्वस्थ ... १९४२ में ... करना चाहता हूँ और तब ... जाएगा। इस समय तो अपने को नये ... पर ... चाहता हूँ। ... जाय? उस लेख में आप उसी ... पायेंगे। उस कार्यक्रम में ... विषयों पर अथवा साहित्य के किसी ... पर आप भी भाषण दीजिये।

मैं एक बार आपको फिर विश्वास दिला दूँ कि जिस ... ने आपके साथ अन्याय किया था वह कभी का मर चुका और उसका नवीन जन्म होगया है।

आज की पवित्र तिथि मे मै कोई असत्य कह भी नही सकता। पाच वर्ष पहले २९ सितम्बर १९३० को ही ६ घंटे की बीमारी (प्रसूति) मे मेरी पत्नी की मृत्यु होगई थी। मै उनसे दो बात भी न कर पाया। २८ की रात को घर पहुचा था, २९ को वे बीमार हुई ८ बजे प्रातःकाल के समय और २ बजे मेरे जीवन को रेगिस्तान बनाकर चल बसी। मुझे इस बात का घोर दुःख है कि मै उन्हे भूल गया। पर अभी मुझे २०-२५ वर्ष जीवित रहना है और उसमे मै प्रायः नवयुवको का सत्सग करना चाहता हू। आलोचक काम को तो तिलाञ्जलि दे चुका। हा नवयुवको को प्रोत्साहन देने के लिये कभी कभी मुझे लिखना ही पडेगा। पर खुदाई फौजदारी से तो इस्तीफा दे चुका।

आपने मेरे पुराने अपराधो के लिए क्षमा कर दिया इसलिए कृतज्ञ हूँ। सचमुच मुझे बडा दुःख होता, यदि आप मुझे क्षमा न करते। अब मुझे विश्वास है कि श्री दुलारेलाल जी से और उग्रजी से भी मेरा सम्बन्ध ठीक हो जाएगा। अपने जीवन मे मै इतना सुखी कभी नही था, मेरा अभिप्राय आत्मिक सुख से है। वैसे तो दुःखके लिए काफी मसाला है, पर उसका जिक्र नही करूँगा। मेरा काम हँसना और दूसरो को हँसाना है। चौबे लोग इसके लिये प्रसिद्ध भी है। पटने की साहित्य परिषद मे लोगो को हँसाते हँसाते लोटपोट कर दिया। वहा मैने अपना परिचय दिया—'साहित्यिक भाड' के रूप मे। फर्क इतना ही है कि भाडो की हँसी कृत्रिम होती है और मेरी स्वाभाविक है। कभी दिल्ली आना हुआ तो आपको भी हँसाऊँगा।

२९ सितम्बर मेरे लिए पवित्र तिथि है। सवेरे २॥ बजे उठकर सबसे प्रथम पत्र आपको लिखा है। सन्ध्या को ५ बजे एक उत्सव मना रहा हू 'नूरजहां' के प्रकाशन का। यह गुरु भक्तसिंह भक्त का महाकाव्य अभी प्रकाशित हुआ है। शामको मित्र मडली जुटेगी। बडा आनन्द रहेगा। अपने जीवन के आनन्दो को खूब मिल बाट कर भोगना चाहता हूँ। आगामी वसन्त ऋतु मेरे जीवन की सर्वोत्तम वसन्त ऋतु होगी। मेरा भावी जीवन ही पिछली भूलो का परिमार्जन कर देगा। आशा है कि आप सकुशल है। अपने घर वालो को मेरा नमस्ते कहिये। आफिस २ ता० को बन्द होकर १८ को खुलेगा। मै यात्रा पर रहूगा। प्रोग्राम अनिश्चित है। लाहौर गया तो कुछ घटा के लिए दिल्ली सिर्फ आपकी सेवा मे उपस्थित होने के लिए ठहरूँगा।

—विनीत, बनारसीदास चतुर्वेदी

(वाइस चान्सलर डाक्टर जाकिरहुसेन, मुस्लिम यूनीवर्सिटी अलीगढ, का पत्र)

यह हमारे लिए गौरव की बात होगी यदि आचार्य चतुरसेन 'ब्रज भाषा पर मुगल प्रभाव' विषय पर हमारी यूनीवर्सिटी के हिन्दी और संस्कृत परिषद के तत्त्वावधान मे २४ फरवरी, ५१ को सध्या समय साढे चार बजे निबन्ध पढने की कृपा करे।

—जाकिरहुसेन

(गुजराती ...)

... गभे मालूम था, ... आर्शीर्वाद उपन्यास ... विभाग की ओर से ... भापगा द। ... भजकर कृताथ ... किया जाएगा।

(भारत सरकार ... उपन्यासों पर ... २०५८ ... 'बनानी की ... विषय म आचायश्री ... ।)

महाशय,

भारत सरकार ... उपन्यासों ... पुरस्कार ... सत्कृत घोषित हुई। उस ... पुरस्कार, ... वमा ... पर और ... 'मा ... सूरत' पर दिए गए हैं। ... भजा गया था। ... उपन्यासों में हर तरह भाषा, भाव, ... निर्णय सवथा ... मुझे आर्थिक हानि ... है, प्रत्युत मेरे उपन्यास ... है, जिसमें साहित्यिक क्षति ... होना पसिद्ध ... घोषित किए हैं ... है। अब यदि भारत सरकार ... जिसका अथ ... नदनामी प्राप्त हो ... है, ... जाएगी।

... पुस्तकों की दुबारा ... करूगा। ... करने के लिए ... है, ... आपसे ... आप मुझे बताएँ कि मैं किस न्यायालय में न्याय याचना करूं। धन्यवाद।

(डायरेक्टर जनरल, आल इण्डिया रेडियो, नई दिल्ली को लिखा गया एक पत्र)

महोदय,

आपका आमंत्रणपत्र मिला, कृपा के लिए आभारी हूँ। परन्तु अत्यन्त नम्रता पूर्वक इसे सादर वापस कर रहा हूँ, क्योंकि मैं आकाशवाणी द्वारा आयोजित इस तथाकथित साहित्य-समारोह में केवल दर्शक की हेसियत से सम्मिलित होना अपने लिए अपमानजनक समझता हूँ। कारण नीचे निवेदन करता हूँ—

१— मेरी अवस्था ६७ वर्ष की है और मैंने आधी शताब्दी तक साहित्य के देवता की सतत आराधना की है तथा मैंने डेढ़सौ ग्रन्थों का प्रणयन किया है। अथच मेरे सम्पूर्ण साहित्य के सेट का मूल्य चारसौ रुपयों से भी ऊपर है।

२— कथा, कहानी, नाटक, राजनीति, धर्मनीति, चिकित्सा, स्वास्थ्य समाज शास्त्र, विज्ञान, कला सभी विषयों पर मैंने अपनी कलम चलाई है। मेरे १६ उपन्यास, साढ़े चारसौ से ऊपर कहानियां और लगभग बारह नाटक छप चुके है, जो सारे भारत और भारत से बाहर आदर से पढ़े जाते है।

३ —परन्तु इस तथाकथित समारोह में आपने जहां उन कहानीकारों और कथाकारों को समामंत्रित किया है, जो मेरा शिष्य होने में गर्व अनुभव करते है, वहां आपने मुझे याद नहीं किया। आकाशवाणी की दृष्टि में मैं न कथाकार हूँ, न कहानीकार हूँ।

४ —निश्चय ही आपको इस बात का पता भी न होगा कि कौन साहित्यकार किस दर्जे का है और किसे आकाशवाणी द्वारा चुना गया है। यह काम गुटबन्दियोंके दलालों और आत्म विज्ञापकों के हाथों आपने सौंप दिया है और उन्होंने अपने और अपने यार दोस्तों के नामों की खानपूरी करके आपके हस्ताक्षर ले लिए हैं।

५ —यह बात केवल यहीं तक सीमित नहीं कि इस अवसर पर ही यह हुआ हो। कम से कम मैं अपना ही अनुभव बता सकता हूँ कि कठिनाई से साल में एकाध बार मुझे रेडियो भाषण के लिए बुलाया जाता है, जबकि आपके द्वारा नियोजित तथाकथित साहित्य के पदाधिकारी अपने यार दोस्तों को निरन्तर सुअवसर देते रहते हैं, जिससे बहुधा रेडियो पर साहित्य भाषण हास्यास्पद होते हैं।

इसलिए जिस सूचना के सत्य से आप जानकार नहीं हैं, उसे आपके हस्ताक्षरों में प्रकाशित किया जाना मैं सरकार आपके उच्च गौरवयुक्त पद के अनुकूल नहीं समझता और विरोध प्रदर्शन स्वरूप निमंत्रणपत्र नम्रतापूर्वक आपकी सेवा में वापस कर रहा हूँ, तथा समारोह में दर्शक रूप में उपस्थित होने से इंकार कर रहा हूँ।

ज्ञानधाम, ६ अप्रेल १६५१

(राष्ट्रपति को लिखा गया एक पत्र)

श्रीमान्,

आपकी सेवा में यह पत्र मैं कल की मुलाकात के सिलसिले में लिख रहा हूँ।

आपके परामर्श [illegible] और [illegible] से अवश्य मिलता [illegible] परामर्श [illegible] आपको [illegible] में आ [illegible] उचित समझता हूँ।

इस युग में [illegible] राजाश्रय [illegible] है। बौद्ध [illegible] संस्कृत साहित्य का सारा शृङ्गार विक्रम और [illegible] कुमार [illegible] राजाश्रय [illegible] जीवन मिला और [illegible] उनके आश्रित राजाओं का आश्रय पाकर ब्रजभाषा [illegible] । [illegible] और आज न तो साहित्य शृङ्गार [illegible] सम्मान [illegible] । [illegible] समय समय पर अपनी [illegible] साहित्य का [illegible] । इसी प्रकार सभ्यता के आदि युग से [illegible] साहित्य [illegible] सभ्यताओं को जन्म दिया [illegible] राजाश्रय [illegible] । आज भी राजाश्रय ही उस साहित्य को जन्म [illegible] है जो [illegible] सांस्कृतिक बीज वपन करेगा, जिसका जन्म हो चुका है पर पालन [illegible] है।

आज विश्व मानव का [illegible] युग आरम्भ हो रहा है। विश्व साहित्य में आज तक जो रचनाएँ हुई [illegible] समाप्त हो चुका। अब तक साहित्य में [illegible] प्रगति का [illegible] समय समय पर अपने [illegible] साहित्य में [illegible] समय व्यतीत हो चुका। आज के [illegible] सम्पूर्ण [illegible] के टूटे फूटे [illegible] । आज का [illegible] मस्तिष्क में निरवच्छिन्न 'शोषण' को [illegible] और '[illegible]' [illegible] लगा है। उसकी [illegible] 'पूर्ण पुरुष' होने का [illegible] संगठन [illegible] । 'मानव [illegible]' [illegible] रचनाएँ [illegible] जीवन में [illegible] होगा, [illegible] होगा।

[illegible] और [illegible] साहित्यकार का [illegible] है, जिस [illegible] अप्रतिम आलोक [illegible] पृष्ठभूमि पर ही उसका निर्माण होगा। आज [illegible] अधिकार है, अब [illegible] राजाश्रय दे और उसे जीवन निर्वाह की

चि ताओं से मुक्त करे जो अपने कात और उस कालके बाद के मनुष्यो का नेतृत्व करे। जो मनुष्य तत्व का प्रतिनिधि हो, जो मनुष्यो के आदश का विचार करके 'अतिमनुष्या' की सृष्टि करे और अपनी नादध्वनि के सकत पर कोटि कोटि जनसमूह का उसी लक्ष्य बि दु पर केन्द्रित कर और उसे विश्व मे अभय विचरण दे। आज सारा एशिया और योरोप तथा अमेरिका इसी आशा से बुद्ध और गाधी की ज मस्थली की ओर उत्सुकता स देख रहा है।

अब यदि भारत अपन साहित्यकार को राजाश्रय नही दगा तो आनेवाली आधी शताब्दी तक नर लोक पर छा जाने वाली अराजकता को विश्व का कोई समथ राज नीतिज्ञ रोकन मे समथ नही होगा।

दूसरी बात यह कि गाधी सम्प्रदाय से गाधी दशन प्रथक वस्तु है। गाधी सम्प्र दाय गाधीवादी वासना मूलक है, साहित्यकार का उससे कोइ सरोकार नही। गाधी दशन तो साहित्यकार के हाथ मे है। अच्छा साहित्यकार वही है जो विज्ञान को सौन्दय का मूतरूप दता है दशन को कला मे परिणत करता है, तभी उसमे मनुष्या के उनके विचारो को छीन लेने और उनसे अपने विचारो को ओतप्रोत करा देने की सामथ्य प्राप्त होती है।

साहित्यकार विचार सौ दय का सृष्टा है, वह मनुष्यो को जो विचार देता है, उसीके रूप मे उसे लुभाकर सदव के लिए उसे अपना लेता है। पर भूखा साहित्यकार विचार सौन्दय की सृष्टि नही कर सकता। उसकी दशा उस तरुणी भिखारनी जसी हो जायेगी जो सडको पर फटे चिथडे पहने, एक हाथ अपने भूखे पेट पर रखे और दूसरा भीख के लिए फलाकर कोकिल कण्ठ स्वरका विद्रुप बीच राह बखेरती फिरती है।

जहा भूख ही भूख है, वहा कला कहा ? सौ दय कहा ? और विचार कहा ?

—आपका, चतुरसेन

(शिक्षामन्त्री मौलाना अब्दुलकलाम आजाद को लिखे गए तीन पत्र)

माननीय महोदय,

आपन ता० १५ माच के दिन भारतीय साहित्य के सम्ब ध मे आयोजित प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए, निम्नलिखित भाव प्रकट किए है—

' आधुनिक भारतीय भाषाओ मे केवल उदू और बगला ने ही अन्तराष्ट्रीय दर्जा हासिल किया है। पिछली कुछ शताब्दियो मे उन्होने असाधारण उन्नति की है। आधु निक हिन्दी, जो अवधी और ब्रजभाषा से सवथा भिन्न है, केवल इसी शतक मे विक सित होने लगी है। यद्यपि हिन्दी का साहित्य मात्रा और परिमाण की दृष्टि से बहुत बडा है, किन्तु किस्म की दृष्टि से वह विश्व मे स्थान पाने योग्य नही है।'

यह पत्र मै आपके इन उद्गारो के विरोध मे लिख रहा हूँ और इसके समथन

म [illegible] भेज रहा हूं और [illegible] पुस्तक [illegible] यदि आप [illegible] यथाशक्य [illegible] क्रम [illegible] जितनी [illegible] साहित्य [illegible] पुस्तक नहीं [illegible]।

मैं आप पर यह बात भी [illegible] कि सरकारी और अर्द्ध सरकारी जो साहित्यिक और [illegible] होती हैं, उनमें [illegible] यथार्थ [illegible] भी नहीं किया जाता [illegible] रहा हो या जिसमें [illegible] प्रमाण में यही उदाहरण [illegible] जो [illegible] हो रहा है, उसमें मेरी [illegible] भी [illegible] गया। [illegible] जान [illegible] उस विराट [illegible] भेज रहा हूं, [illegible] महोदय [illegible] है। [illegible] कि आप यद्यपि [illegible] माननीय [illegible] मंत्री हैं, तथापि [illegible] कि आप [illegible] साहित्य ही से [illegible] है। [illegible] केवल [illegible] समझता हूं। [illegible] रहा हूं।

[illegible], चतुरसेन

[illegible],

[illegible] कीजिए। सादर।

भवदीय, चतुरसेन

([illegible])

प्रिय महोदय,

[illegible] आपसे भेंट [illegible] आप जो कुछ [illegible] चाहते हैं, वह [illegible] भेज दीजिए।

(अंग्रेजी से अनुदित)

प्रिय महाशय,

आपका ता० १९ नाम्बर का पत्र मिला। म खुश हूँ कि इस गणराज्य मे एक ऐसा भी म त्री है, जो अपने कतव्य पालन म इतना व्यस्त है कि वह एक साहित्यिक से वार्तालाप का भी अवकाश नही निकाल सकता, यद्यपि मुझे इसमे सन्देह है। जिसका एक यह अति तुच्छ प्रमाण हे कि शिक्षा म त्रालय मे इतना भी इ तजाम नही हे कि हि दी पत्रो का उत्तर हि दी ही मे दिया जाय। जबकि सविधान मे हि दी को राज्य भाषा स्वीकार कर लिया गया है। आपने मुझ पर दया करके लिखा है कि म जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह लिखकर भेज दूँ। पर तु मै न तो शिक्षाम त्री का कोई अनुग्रह चाहता हू, न गजम द आदमी हू। मेरी वातालाप का विषय साहित्य सम्ब धी ही होसकता है। पर तु अब, आपके उस पत्रके पानेके बाद कुछ कहना या लिखना म अपनी प्रतिष्ठाके विपरीत समझता हू। मेरेलिए सामयिक पत्रोके कालम खुले है। फिर भी आप मोलाना से मेरी ओर से यह कह सकते हे कि वह हि दी के साहित्यकारो से भी थोडी बहुत जान पहिचान रखे, तो यह न केवल शिक्षा मत्री के कतव्य पालन मे सहायक होगा अपितु उनके लिए साहित्यिक शिष्टाचार भी होगा। कृपया मौलाना से मेरा सलाम कह दीजिएगा।

—भवदीय, चतुरसेन

(श्रीमती सुशीला नायर, स्वास्थ्य म त्री दिल्ली राज्य को ३ ७ ५२ को लिखा गया पत्र)

श्रीमती,

यह पत्र म कल की मुलाकात और बातचीत के सिलसिले मे लिख रहा हूँ। म आशा करता हू कि आपने 'पगध्वनि' देखली होगी। यह अपने ढँग का पहिला साहित्य ग्र थ है। उसम प्रथम अक म गा धी दशन, दूसरे मे गाधीवाद, तीसरे मे गाधी प्रभाव, चोथे म गाँधी जीवन, पाचव म गा धी आदश और छठे म गाधी रूपक है। प्रस्तावना म 'बा' का स्तवन है, जो उनकी निष्ठा का प्रतीक हे। राष्ट्रपति जी ने जिस प्रकार की साहित्य रचना का मुझे सकेत दिया है—उस पर वह छोटी सी कि तु उत्कृष्ट पुस्तक है। इसे पाकेटेबल पुस्तक नही कहा जा सकता।

पर तु, आपका जहा जहा नाम आया है, उसमे आपको आपत्ति नही हे, इसकी सूचना तुर त भेज देने का कष्ट करे, जिससे पुस्तक प्रेस मे दे दी जाए। जुलाई ही मे शायद भी पुस्तक पाठ्यक्रम म स्वीकार की जा रही हे, मे इसे वहा भी भेज रहा हूँ इसी से जल्दी है। आपको जब दस मिनिट का अवकाश हो, तभी मै अपने सहकारी श्री चन्द्रसेन को आपके पास भेज द, ताकि आप इसमे और जो जो नए सशोधन कराना चाहे, वह उन्हे समझादे। सादर।

आचाय चतुसन जी,

आपने अपने नाटक मे मेरा नाम बा के मृत्यु दृश्य मे इस्तेमाल किया, उसमे

गझे ा ि आपनि ा ी । ागा ी आ ा र ी िगा ।

ि ााा, गुणोना नयर

(ग ा ग ी ा ा ि ा ा ा ााफ ग ा ा ा ि ा ा ि ा गया पत्र)

प्रिय महाशय,

आपका ना ९ अप्रैल ा ा िा पत्र मुझे मिला। जिस ान और लहजे म य गा गा िा गया है उससे ा मुझे ऐसा ा ा ा है कि अभी ब्रिटिश साम्राज्य वाद ा गुा ा फनाया नही गया। ा ा ा ि ि ा ा ा ा ीय सरकार की ा ोि यो म पा हुआ है और आपके इस पत्र म ा ी ा है।

निस्स ा ाप ि ा ा राज्य ा ा ा ाफ ा ा है परन्तु मुझे भय है कि आप य ा ा ाना ि जिस ा ा ा ो ा ा ा ा ा ा ा ा िया है, उसने ा ा ाा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ि ि ा किया है और ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा के चरित्र और ा ा ा ी ा ा ा ा ा ा ा ा ा ि ा ा ि ा है।

मेरा आप से य ा ी ा ा है कि आप ा मेरे ि ा ा ा अभिप्राय भी गलत समझा है। मैं ा ा ा ा ा ा ा ा, ा मुनाफा कमाने ी किसी फर्म का प्रति ि ि ि ा ा ा है। मैं ा ा ा ा ा ा ा है जिस ा ा ा ा ा ा ा ा ा ी सुख सा ि ा ा ा ा ा ा ा ि ा ा ि ा है। और अब, ा ा ा आराम और बेफिक्री से ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा है मैं ि ा ा ि ा ा ा बदतर दरिद्र बन गया है, ा ा ि ा जीवन के ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा है।

ा और ा ी कमाई ा मिलनी चाहिए, ा ा ा ा ा ा ा ा है।

ा ि ि ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ि ा ा ा ा ा ा ा िफ अपने साहित्य ा ा ा ा ा ा ा ि ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ि ा ि ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ापके िभाग म नहीं है, ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा, और ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा शुभ काय का मैं आपकी ा जमानत देने ा ी तैयार है।

मैं उस ा ा ा ा ा, कि इस ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा सरकार के किसी भी ा ि ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा है, ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा सरकार अपने ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा है, मैं अपनी सरकार से मान इज्जत की

माग नही करता, मुनासिब जमानत और शर्तो पर लोन लेना चाहता हू।

मै यह भी चाहूगा कि श्री डाइरेक्टर आफ एज्यूकेशन, मेरे इस पत्र को किसी नौकर के प्रार्थनापत्र की श्रेणी मे न समझे। —भवदीय, चतुरसेन

(साहित्य अकादमी दिल्ली को अपनी पुस्तके स्वय प्रकाशित करने के लिए आर्थिक सहायता देने के लिए लिखा गया पत्र तथा उसकी प्रतिक्रिया)

मन्त्री, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

श्री मन्त्री महाशय समीपेषु,

ज्ञात हो कि मेरी ८० वर्ष की अवस्था पूर्ण हो गई है, और मेरे शरीर मे आधा दर्जन ऐसे रोगो का निवास हो चुका है, जो इस आयु मे आक्रमण करते है तथा अच्छे नही होते। मेरे चलने फिरने, तथा नेत्रो की शक्ति तथा पाचन शक्ति आठ आना नष्ट हो चुकी है। फिर भी मै नियमित रूप से १२ से १५ घटे केवल साहित्य श्रम कर रहा हूँ। मै एक ही कलम से पचास वर्षों से लिखता चला आरहा हूँ, तथा २०० से ऊपर अब तक मेरी रचनाए प्रकाशित हो चुकी है। फिर भी साहित्य अकादमी की दृष्टि मेरे ऊपर नही है। प्रकाशको के अनाचार ने मुझे अर्थ चितित करदिया है। यदि प्रकाशक लोग मुझे मेरे चौथाई प्रकाशन की रायलटी भी ईमानदारी से देते रहते तो मुझे आज भी अकादमी के सम्मुख हाथ न पसारना पडता जो मेरे साहित्यिक अस्तित्व से ही बेखबर है। अब मे यह चाहता हू कि मै अपनी तीन बहुचर्चित कृतिया 'वशाली की नगरवधू' 'वय रक्षाम' तथा 'आरोग्य शास्त्र' जो अब प्राय अप्राप्य है, स्वय प्रकाशित करूँ और स्वय लाभान्वित होऊ, जिससे तनिक आराम से अपने दो चार साल व्यतीत कर सकू। मेरी इच्छा है कि अकादमी इस कार्य के लिए मुझे उपयुक्त रकम अनुदान देने की उदारता करे।

किम्बहुना—'याचामोघावरमधिगुणेनाचमेलब्धकामा।'

—चतुरसेन

(अकादमी द्वारा उत्तर)

आदरणीय,

साहित्य अकादमी के मन्त्री महोदय के नाम भेजा गया आपका २१ अप्रल का कृपा पत्र यथा समय मिला। इस सम्बन्ध मे हम अपने विशेषज्ञो को सूचित कर रहे है। उनकी सम्मति प्राप्त होते ही आपको यथा समय तत्सम्बन्धी सूचना भेजदी जाएगी।

—सादर आपका, क्षेमचन्द्र 'सुमन', प्रकाशक सहायक

(प्रकाशन समाचार, राजकमल दिल्ली द्वारा चतुरसेन साहित्य प्रकाशको को गश्तीपत्र)

मान्यवर,

इस पत्र के साथ आपको आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा, मत्री साहित्य अकादमी

ो ि ाग गा पा ा ी गा पतिनिधि भेज ा । ाजी ने ा पत्र मे अपनी ि ाा ा ाा पर ाा ाा ा ाा ा ाा ा ा उनकी कृतियां ा पकाशन ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा स देते रहते ा ा साहित्य ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा । आप आचार्यजी की कृतियों के पकाशन ा ा ा ा ा ा ा ा ा पत्र को हम 'पका शन समाचार' ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा और ा ा ारी मास के ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा । आपके वक्तव्य की प्रतीक्षा रहेगी ।

भव ीय, आप्रकाश

(ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा जवाब तलबी)

मान्यवर आ ा ा,

ा प्रतिनिधि मतलब' लिखा है, जिसमे ा का भीषण ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा आरोप किस ा ा पर ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ात मारी प्रतिष्ठा पर ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा स्पष्टीकरण करना आव ा ा है । ा ।

आप ा, ा ा नाथ

(ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा जवाब तलबी)

ा ा ा ा,

ा ा ा ा ा ा ा ा (ा आप ा ा ा ा ा ी ा ा लिखा है, ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा २१२५६ ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा पर पूरी ा ा ा ी न देने ा ा ा ा आरोप ा ा ा है ।

ा ा ा ा ा ा "ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा, ा आपको उप ा आरोप से हम ा, ताकि ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा आरोप हमारे ा ा अन्याय है, ा हमारी प्रतिष्ठा पर ा ा ा ा ा है ।

ा ा ा ा आप ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा आपका आरोप (ा ा ा ा ा ा ा ा) हमारी ा ा ा पर ा ा ा ा ा ा । अन्यथा पकाशन समाचार द्वारा अपना आरोप ा ा ा ा ा ा ा ा ा ।

भ ा ीय, नरोत्तम भागव

(श्री ैनेन्द्रकुमार, सदस्य साहित्य अकादमी, को लिखा गया पत्र)
प्रियवर,

आपके द्वारा अकादमी के विद्वान मन्त्री महोदय को मै यह पत्र लिख रहा हूँ। पत्र का अभिप्राय इस प्रकार है —

मैने एक पत्र ता २१ ४ ५६ को साहित्य अकादमी को लिखा था। उस पत्र के सम्बन्ध मे दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक राजपाल एण्ड सस जो मेरे भी प्रकाशक है, ने मुझसे जवाब तलब किया है। साथ ही उस पत्र की अक्षरश प्रतिलिपि भी भेजी है। ये दोनो पत्र इस पत्र के साथ आपके पास भेज रहा हूँ।

साहित्य अकादमी ने इस पत्र के सम्बन्ध मे क्या कार्यवाही की, यह अद्यावधि मुझे ज्ञात नही हुआ। परन्तु मेरा यह पत्र नितान्त व्यक्तिगत और गोपनीय था। मै नही समझ सका कि यह बाहरी लोगो के हाथ कसे लगा। क्या अकादमी ने इस पत्र के सत्यासत्य की जाच करने का भार उक्त प्रकाशक को दिया है। पता लगा है कि कुछ विरोधी तत्वो ने द्वेषवश मेरी प्रतिष्ठा भग करने के इरादे से अकादमी के एक कर्मचारी से यह पत्र चुरवाया है। मै आपके द्वारा अकादमी के मन्त्री महोदय से अनुरोध करता हू कि वह इस बात की सचाई का पता लगाने का कष्ट करे, और अपराधी को विभागीय दण्ड दे।

७ १२ ५६ —भवदीय, चतुरसेन

(हिन्दी मन्त्री अध्यक्ष—साहित्य अकादमी, शिक्षामन्त्रालय, नई दिल्ली को लिखा पत्र)
आदरणीय,

इस पत्र के द्वारा मै आपका ध्यान निम्नलिखित तथ्यो की ओर आकर्षित करता हू —

१— मैने एक पत्र तारीख २१ ४ ५६ को साहित्य अकादमी के मन्त्री महाशय को लिखा था। जिसमे मैने अपने साहित्य के प्रकाशन के लिए सहायता मागी थी। पत्र की नकल साथ मे सलग्न है। पत्र पर अकादमी ने क्या निर्णय किया, इसकी कोई सूचना अद्यावधि मुझे नही मिली।

२ – चार दिसम्बर का एक पत्र मुझे दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक, राजपाल एण्ड सस का मिला। जिसके साथ मेरे उक्त पत्र की नकल सलग्न थी। उस पत्र मे उन्होने मुझसे प्रकाशको पर लगाए उन आरोपो का जवाब तलब तीखी और अपमानजनक भाषा मे किया, जो मेरे पत्र मे थी ही नही। उस पत्र की नकल भी आपकी सेवा मे भेज रहा हू।

३—इसके बाद मुझे ज्ञात हुआ कि यह पत्र (जो मैने अकादमी को लिखा था) बहुत से प्रकाशको को भेजा गया है, और खासकर उन प्रकाशको को, जिनसे मेरा सम्पर्क

गे ि रे गए प ा री पर पतिनिधि भेज र । ाम्बीजी ने उस पत्र मे अपनी कृतिया के प्रका ा ा पर समाचार म ाराप ल्गाए ा र िखा है ि यदि उनकी कृतिया । प्रकाशन उन प्रा ा ा ा ा ा ी ा ा ा ा ्या ा मानदारी से दते रहते तो उन गाहित्य प्रा ागी न गामा ा ा ा प ार ा प ा । प्राप आचायजी की कृतियो के पकाशक र ै । गा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा हम 'प्रकाश ा समाचार' के ि ार भाग र ग । म ा ा ा ा ा ा ा ै और जनवरी मास के अक म उनकी ृतिया के ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ग े । आपके वक्तव्य की पती ा रहगी ।

भवदीय, ग्राप्रकाश

(नागरी प्रचारिणी सभा के ... राजा ... को ... पत्र ... तनत्री)
मान्यवर आचार्य जी,

गा ि ा ा ा ा ि ा ा ा ा ा ा ा ा 'परिशिष्ट सलग्न' लिया है, जिसम आप ा पर ा ा ा ा पर अ ा ा ा ा ा ा ा ा गानी का भीषण ारोप लगाया है । ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा आप ा ा आरोप किस ा ार पर लगाया ा ा ी जा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा हमारी प्रतिष्ठा पर आ ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा करना आव श्यक है । कृपया कर ।

भवदीय, विश्वनाथ

रजिस्टर ... (... तनत्री)
प्रिय महोदय,

आप ा ा ा ा ... (जो ा ा ा ा ा ा ा ा ा लिखा है, ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा २१२५६ ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा पर पूरी रायल्टी न देने ा ा ा ा ा आरोप ा ा ा है ।

म ा आपका उप ा ा ा ा ा पर पूरा ि ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा आरोप से हम ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा न ा ा ा, ताकि ा ा ा ा ा ा ा मिथ्या ा ा ा ा ा ा ा ा ा आरोप, ा ा ा अन्याय है ा ा ा ा ा ा ा प्रतिष्ठा पर ा ा ा ा ा है ।

ा आपका आरोप (पूरी ा ा ा ा ा ा ा) हमारी ा ा ा पर ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा प्रकाशन समाचार द्वारा अपना आरोप ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ।

— भवदीय, नरोत्तम भागव

(श्री जनेन्द्रकुमार, सदस्य साहित्य अकादमी, को लिखा गया पत्र)
प्रियवर,

आपके द्वारा अकादमी के विद्वान मन्त्री महोदय को मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। पत्र का अभिप्राय इस प्रकार है —

मैंने एक पत्र ता० २१ ४ ५९ का साहित्य अकादमी को लिखा था। उस पत्र के सम्बन्ध मे दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक राजपाल एण्ड सस जो मेरे भी प्रकाशक है, ने मुझसे जवाब तलब किया है। साथ ही उस पत्र की अक्षरश प्रतिलिपि भी भेजी है। ये दोनो पत्र इस पत्र के साथ आपके पास भेज रहा हूँ।

साहित्य अकादमी ने इस पत्र के सम्बन्ध मे क्या कार्यवाही की, यह अद्यावधि मुझे ज्ञात नही हुआ। परन्तु मेरा यह पत्र नितान्त व्यक्तिगत और गोपनीय था। मै नही समझ सका कि यह बाहरी लोगो के हाथ कैसे लगा। क्या अकादमी ने इस पत्र के सत्यासत्य की जाच करने का भार उक्त प्रकाशक को दिया है। पता लगा है कि कुछ विरोधी तत्वो ने द्वेषवश मेरी प्रतिष्ठा भग करने के इरादे से अकादमी के एक कर्मचारी से यह पत्र चुरवाया है। मै आपके द्वारा अकादमी के मन्त्री महोदय से अनुरोध करता हूँ कि वह इस बात की सचाई का पता लगाने का कष्ट करे, और अपराधी को विभागीय दण्ड दे।

७ १२ ५९ —भवदीय, चतुरसेन

(श्री हुमायू कबीर प्रधान—साहित्य अकादमी, शिक्षामन्त्रालय, नई दिल्ली को लिखा पत्र)
आदरणीय,

इस पत्र के द्वारा मै आपका ध्यान निम्नलिखित तथ्यो की ओर आकर्षित करता हूँ —

१ — मैंने एक पत्र तारीख २१ ४ ५९ का साहित्य अकादमी के मन्त्री महाशय को लिखा था। जिसमे मैंने अपने साहित्य के प्रकाशन के लिए सहायता मागी थी। पत्र की नकल साथ मे सलग्न है। पत्र पर अकादमी ने क्या निर्णय किया, इसकी कोई सूचना अद्यावधि मुझे नही मिली।

२ चार दिसम्बर का एक पत्र मुझे दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशक, राजपाल एण्ड सस का मिला। जिसके साथ मेरे उक्त पत्र की नकल सलग्न थी। उस पत्र मे उन्होने मुझसे प्रकाशको पर लगाए उन आरोपो का जवाब तलब तीखी और अपमानजनक भाषा मे किया, जो मेरे पत्र मे थी ही नही। उस पत्र की नकल भी आपकी सेवा मे भेज रहा हूँ।

३—इसके बाद मुझे ज्ञात हुआ कि यह पत्र (जो मैंने अकादमी को लिखा था) बहुत से प्रकाशको को भेजा गया है, और खासकर उन प्रकाशको को, जिनसे मेरा सम्पर्क

ो, मर पा ि क्रद ा ा ना गगाया गया है।

४ गजामत द्वारा प्रका ा 'प्रका ा समाचार' म यह पत्र खास तौर पर बलबूते स सजाकर छापा गया है। मैंने इसके प्रका ा की माफी मागी थी और वह अस्वीकार कर दी गई, यह मेरे अपमान के लिए छापा गया है। इससे मुझसे सम्बन्धित प्रकाशकों को उत्तेजित करने का प्रयास किया गया है। स्पष्ट है कि ये काम व्यक्तिगत द्वेष के कारण मुझे अपमानित करने तथा मुझे हानि पहुँचाने को किए गए हैं।

५--मुझे इस बात का अत्यन्त आश्चर्य है कि यह पत्र उन लोगों के हाथ कैसे लगा। तथा उन्हें उस पर अकादमी के निर्णय का भी पता कैसे लग गया, जबकि उसका ज्ञान मुझे भी नहीं है। निस्सन्देह यह मेरा व्यक्तिगत पत्र था और उससे सम्बन्धित विषय को सार्वजनिक रूप में प्रकाशित करने का उन्हें अधिकार न था।

११-१०-५६ भवदीय, चतुरसेन

(क्षुब्ध हृदय श्री मिलिन्द जी का पत्र)

पूज्यवर आचार्यजी,

आपका २१-१-५८ का मन्त्री साहित्य अकादमी के नाम लिखा गया आपका पत्र 'प्रकाश समाचार' दिसम्बर १९५८ में प्रकाशित हुआ है। उसे पढ़कर वास्तव में बहुत दुःख और आश्चर्य हुआ, क्योंकि आप सरीखे वयोवृद्ध और पथदर्शक साहित्यकार के प्रति प्रकाशकों का ऐसा व्यवहार देखकर मन ही क्षुब्ध हुआ।

– आपका ही, मिलिंद

(अकादमी द्वारा आर्थिक सहायता से इन्कारी पत्र)

आदरणीय,

आपके दिनांक २१-१-५८ के आर्थिक अनुदान सम्बन्धी प्रार्थनापत्र को हिंदी परामर्शदात्री समिति की २१ दिसम्बर १९५८ की बैठक में प्रस्तुत किया गया था। खेद के साथ सूचित करना है कि समिति ने आपकी प्रार्थना को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट की है। सधन्यवाद

आपका, २० १० कृ० कुमार, सहायक मन्त्री (प्रशासन)

(बड़ौदा निवासी श्री लक्ष्मीचन्द दूलाभाई श्री गायकवाड सर्विस का लिखा गया पत्र और उसका उत्तर)

प्रिय श्री शास्त्री जी,

मैं यह अत्यन्त आशा से यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि इस पत्र का विषय आपसे सम्बन्धित है या नहीं, परन्तु सोवियत दूतावास में मैं केवल आप ही से परिचित हूँ, इससे आपको यह पत्र लिख रहा हूँ।

आपको ज्ञात है कि अमरिका ने सोवियत संघ पर खामखाह संघ के प्रधान मन्त्री

श्री ख्रुश्चेव पर हत्याओं और तानाशाही के गम्भीर आरोप लगाए है, जिनसे विचारको का चित्त चल विचल हो रहा है। वे विचारक—जो किसी भी राजनीतिक प्रभाव से मुक्त शुद्ध साहित्यिक है और स्वभावत ही मानव मित्र है साथ ही सोवियत सघ के प्रशसक भी है, जिनमे मै भी एक हूँ—चाहते है कि इन आरोपो का निराकरण यदि हो सकता है तो किया जाय। खासकर मै इस समय विश्वकी चालू राजनीति पर एक उपयास 'खग्रास' लिख रहा हूँ और उसमे यह आरोप समावेशित करने को बाध्य हूँ। किन्तु चाहता हूँ कि इनका यथार्थ निराकरण भी मेरे उपयास मे अवश्य रहे। आप या मेरे पत्र के विषय से सम्बन्धित सोवियत दूतावास के कोई भी सज्जन इस दिशा मे कुछ सहायता कर सकेगे तो मै अतिशय आभारी होऊँगा। नमस्कार सहित।

२७ १२ ५८ भवदीय, चतुरसेन

मान्यवर आचार्यजी,

आपका २७ १२-५८ का पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप आजकल विश्व राजनीति पर उपयास लिख रहे हैं। मेरी बधाई स्वीकार करे।

जहाँ तक दुनिया के किसी विशेष देश अथवा देशो द्वारा हमारे प्रधान मत्री पर 'हत्याओं' और 'तानाशाही' के कथित अभियोग का सम्बन्ध है, मैं निवेदन करना चाहूँगा कि इस प्रकार के आरोप पिछले चालीस वर्षों से, जब से हमारे देश मे समाजवादी ढाचे ने जन्म लिया है, निरन्तर होते रहे है। उन आरोपो की भयानकता को यदि देखा जाय तो सोवियत सत्ता को १९१७ मे ही समाप्त हो जाना चाहिए था, जैसा कि उस समय पश्चिम के बडे बडे श्रीमानो ने भविष्यवाणी की थी। परन्तु सोवियत सघ का चतुर्मुखी विकास और असाधारण समृद्धि तथा वैज्ञानिक प्रगति को देखते हुए यदि कोई हमारे देश एव हमारे नेताओं पर लगाए गए झूठे आरोपो को सही मानना चाहता है, तो हम उसे क्या कह सकते है।

मै स्वय इस सम्बन्ध मे आपसे बातचीत करता और अपनी योग्यतानुसार स्थिति का स्पष्टीकरण करता, परन्तु मुझे खेद है कि यह सम्भव न हो सकेगा, क्योकि मै इसी सप्ताह स्वदेश लौट रहा हूँ।

फिर भी प्राप्य साहित्य आपको सेवा मे भेज रहा हूँ। शायद उससे आपको कुछ सहायता मिल सके। आशा है आप स्वस्थ एव सानन्द होगे। शुभ कामनाओ सहित।

८ १ ५९ —विनीत, वारान्निकोव, अटैची, सोवियत दूतावास

(पण्डित नेहरू को लिखा गया एक पत्र)

प्रिय नेहरू जी,

देश भीतर से बिखर रहा है और बाहर से उस पर भारी दबाव पड रहा है। आप ससद मे भी और उससे बाहर भी दिन दिन अकेले पडते जा रहे है। कैसे आप

आग आत नाना ।ं ।। । । ामा ा । ग । म ग । गा ं ा पुग्प ० - राजनीति
ग ग । गा न्र, गाप । ा पागा ि । गाप गा । ग । । ग गा । ा । गाति नकार देश
ी भारी ग ा ा ायम ग । म ग । । ा ा ा । गा ग य व्यक्तिगत पत्र
म लिख रहा ह । यदि आ । ि ार । । ा म अप ा ा । ा आप । । लिख भेजू ।
२९ १ ५८ ——आपका चतुरसेन

(डाक्टर अम्बेडकर के सेक्रेटरी का पत्र)

श्रद्धेय आचार्य महोदय ।

सा र वन्द, आप द्वारा र्ित पुस्तक ... और बौद्ध धर्म' नामक पुस्तक डाक्टर बी आर० अम्बेडकर ... । उसके कवर पर 'हिन्दू राष्ट्र का नव निर्माण ...' ... उत्कण्ठा उत्पन्न हुई, किन्तु ... । आप की अन्य रचनायें, 'धर्म के नाम पर' तथा ' ... ' ... । यदि आप 'हिन्दू राष्ट्र निर्माण की एक प्रति भेज सकें तो ... । आपका ... गुण सम्पन्न ... के ... प्रशंसक हैं । यदि आप उनसे मिलने ... समय निकाल सकते हों तो उत्तर दें ।

६ ५ ५९ भवदीय, ... शास्त्री, सेक्रेटरी

प्रिय मित्र,

कृपापत्र मिला ... धन्यवाद । ... जी की सेवा में ... पुस्तक ... मिल गया होगा । ... डाक्टर साहब ... जिक्र ... । ... द्वारा भेजी पुस्तकें मिल गई हैं । ... के बाद ... । ... जी ... अपनी चिकित्सा भी ... रहती है । 'हिन्दू राष्ट्र का नवनिर्माण' ... कोठी में रहता ... मिलने के लिये स्वीकृति ... ।

... शास्त्री, सेक्रेटरी

(१५ मार्च १९५९ ... सम्मान के ... पत्र)

प्रिय ...,

आप ... योग्य ... समझा, और ... आमन्त्रित ... अपनी ओर से ... , उसे भी स्वीकार ... किया । ... केवल ... भर दिया । ... पत्र भी नहीं भेजा, ... को उनके कहने से तब दिया,

जब वह कुछ जानकारी प्राप्त करने आपके पास गया। इन सब कारणों से मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि आप लोगों के हृदय में मेरे प्रति कानी कौडी के समान भी प्रतिष्ठा तथा श्रद्धा नहीं है। राष्ट्रपति के तथा नेहरू जी के भाषणों से मुझे न कुछ ज्ञान की प्राप्ति होगी न मनोरंजन। आप यदि मुझे इस धूमधाम में केवल अपना दरबारी बनाना चाहते हैं तो उसके लिए दिल्ली में बहुत खूब मौजूद हैं, जिनके पास ऐसे कामों में नष्ट करने के लिये बहुत फालतू समय है, तथा हराम की कमाई से खरीदी हुई मोटर गाड़ियां हैं। मैं तो एक गरीब और मजदूर साहित्यकार हूं, आप लोगों की भांति सरकारी पेन्शन पाकर गुलछर्रे उड़ाने वाला खद्दरपोश नहीं। इसलिये मैं अपना मूल्यवान समय आपका दरबारी बनकर नष्ट करने से इन्कार करता हूँ और आप लोगों ने जो मेरे प्रति अवज्ञा प्रकट की है, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आपके भेजे हुए इस निमन्त्रण को तिरस्कारपूर्वक वापस भेजता हूँ।

मैं अपना यह विचार भी आप पर प्रकट कर देना चाहता हूं कि एकेडेमी के आयोजकों में जो नाम दिये गये हैं, उनमें एक भी ऐसा व्यक्ति मुझे नहीं दीखता है, जो संस्कृति क्या है यह भी जानता हो। फिर कांग्रेस तो एक ऐसी मुर्दार और गुमराह संस्था है, जो संस्कृति का निर्माण कर ही नहीं सकती। फिर उससे अधिक गुमराह वे हैं जो योग्यता न होने पर भी केवल पूर्व सुकृत (?) का फल भोगने इस सरकार के शीर्ष स्थानों पर बैठ देश की बहन बेटियों को नंगी और बच्चों को भूखा कलपता देख हंस हंस कर भ्रष्टाचारियों के नोटों के मुट्ठों से भरे हाथों से हाथ मिला रहे हैं। ऐसे लोग आपके इस सांस्कृतिक आयोजन की शोभा बढ़ाने में भी पीछे न रहेंगे।

हां मेरे मित्र, यदि मुझे आपके इस आयोजित तथा कथित सांस्कृतिक आयोजन का मौज मजा लेना होगा तो मेरे जैसे साधारण जनों के लिये दर्शक टिकटों की बिक्री की व्यवस्था है। खरीद कर अपनी आंखें धन्य कर आऊंगा। आप लोगों को अनुग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

—आपका चतुरसेन

१५-३-५१

पुनश्च चूंकि आपके इस सांस्कृतिक आयोजन के कर्त्ताधर्त्ताओं में आप ही एक मेरे परिचित हैं, इसी से यह पत्र मैंने आपको लिखा है। परन्तु वास्तव में है सब आयोजकों के ही नाम। यह पत्र मैंने अपने आत्मचरित में भी नत्थी कर लिया है जिससे आगे आने वाली पीढ़ियाँ यह जान लें कि जिस पुरुष ने चालीस वर्ष अपनी कलम से घास खोदी और ८५ ग्रन्थों से हिंदी का भण्डार भरा, उसके साथ उसी की नाक पर बैठकर इन संस्कृति के ठेकेदारों ने कैसी उपेक्षा और अवज्ञा का व्यवहार किया था। इसलिये मैं आपकी ईमानदारी के नाम पर आप से अपील करता हूँ कि इसे सभी लोगों पर विदित कर दें।

[illegible] सुग्रीव [illegible] स्वास्थ्य मंत्री [illegible]

प्यारे [illegible],

[illegible] मिनिट के [illegible] और [illegible] पर भी [illegible] ध्यान नहीं दिया, जिससे [illegible] और [illegible] है। [illegible] और तुम्हें उस उपन्यास [illegible] विश्वास हुआ [illegible] बुखारी महावीर जी [illegible] सम्पन्न है [illegible] चाहते हो, [illegible] तुम्हारे [illegible] तुम्हारे पास आते हैं। [illegible] सकता [illegible] गया है, [illegible] दिन [illegible] और तुम्हारी [illegible] और मास्टर [illegible] आतो [illegible] तुम्हारा [illegible] और [illegible] नहीं है। [illegible] नीचे [illegible] पानी [illegible] हुए, [illegible] है।

[illegible] तुम [illegible] समझोगे, [illegible] की, जिसने [illegible] है, रात दिन पास रहने वाली मेरी पत्नी तक को

कानोकान खबर नही, उसे तुम या कोई जान कसे सकता है। सूरज को मने पुकारा था कि वह आकर ग्यारह महीने मेरे पास रहकर दुख सागर मे डूबते हुए मेरे अभिशप्त एकाकी जीवन का जरा सा सहारा दे जाय। पर वह न आया,न आया और अब और बहुत सी बातो की तरह, मैने उसके लिए भी सब्र कर लिया।

और बहुतो की भाति तुम्हार पास मे आता नही हूँ परन्तु तुम्हारे आज के सुखी और चिरभिलषित जीवन को दखकर आनदित रहता हू। तुम कदाचि उस पुरुष के आनन्द का महत्व समझ सको,जो स्वय दर्वविपाक से मम व्यथा का शिकार हो चुका हे और प्रियबन्धु के सुख से प्रसन्न हे। म तुम्हार स्वास्थ्य के लिए भयभीत अवश्य हूँ और जब जब तुम्हारे कायभार का ध्यान करता हूँ, सब कुछ भूलकर तुम्हारी ही चिन्ता करने लगता हू। तुम्ह मेरा यह खत एक बेहुदा सा लगेगा, एक फालतू सनक जसा। फिर, साहित्यिक भावुक और सनकी तो होते ही हे। उस दिन तुम्हारे न आने पर मैन आसू अवश्य बहाए,पर ये कम्बख्त तो यो ही बहते बहाते रहते है। आख मे नासूर जो हो गया हे। कुछ इसका यह मतलब नही कि मुझ कुछ दुख हुआ। न इस पत्र के द्वारा म शिकायत ही करता हू। यह पत्र लिखकर तो मैन अपना मन हलका किया है। पढता और फाड फकता। किसी वजीर क लिए ऐसे प्रम पत्र लिखना निहायत बेहूदा हे। हा, इस खत म मने तुम्हे 'तुम' करके सम्बोधन किया है, उसके लिए क्षमा करना। हमेशा ऐसा नही करूगा, पर इस बार मन को न रोक सका।

८ ९ ५५ —तुम्हारा, चतुरसेन

(श्री जैनेन्द्रकुमार का पत्र व्यवहार)

प्रिय जनेन्द्र जी,

'विवत्त' कही से चद्रसेन उठा लाए,कल तमाम दिन लगा कर उसे पढ डाला। पढकर दुख और गुस्स स मेरा मन कसा तो होगया। उपयास नही लिखा गया, कलम-घिसाई की गई है। भाषा जसी बतुकी टूटी फूटी और तुतलाती लगडाती है वसा ही उपयास का विषय प्रसार। कही कोई तुक ही नजर नही आती। कब कोन पात्र गुस्सा होता है, हसता है, रोता हे, आता है, जाता है,इसका पता ही नही लगता। जसे सबने भाग खाली है और जब जो जी मे आता हे,आचरण कर डालता है। सिनेमाओ मे कल्पित अभारतीय जीवन दिखाए ही जाते हे, अब आप उपयासो मे भी ऐसे कमअक्ल पति और सनकी औरत के रेखा चित्रो पर परिश्रम करने लगे। मे इस बात पर विश्वास ही नही कर सकता कि आप इससे अच्छा नही लिख सकते, पर लिखन का मूड भी हो। आगे आने वाली पीढियाँ आपके नाम पर ऐसा साहित्य पढकर क्या कहेगी ? शायद आप इन तारीफ करने वाले भाडो से प्रभावित हो,जो आपके चारो तरफ फले है तथा समालोचना को जिन्होने अपनी कुत्सा का विलास बनाया हुआ है। पर न ये जीवित रहगे,

[illegible] रचना पढ़ी [illegible] और दुखी [illegible] दराजी और [illegible] उसका [illegible] आपका अपनी [illegible] चाहिए। जीवन [illegible] गए, पर [illegible] अब आप [illegible] आलोचना [illegible] अभिप्राय चाहिए।

१ [illegible] ५३

—[illegible]

मान्य शास्त्री जी

[illegible] करता। पर [illegible] अलग मालूम होता [illegible] जाता है। [illegible] जैसा [illegible] की। [illegible]

[illegible] पर इस अर्थ में [illegible] है, उसमें [illegible] जाता ही है। [illegible] है।

पर [illegible] रहता है कि [illegible] तो [illegible] न। [illegible]

२० [illegible] ५[illegible]

[illegible], जैनेन्द्र

(साहित्य अकादमी [illegible] पर प्रथम बार हजार का पुरस्कार श्री माखन लाल चतुर्वेदी को [illegible] पुरस्कार पर [illegible] गया था। [illegible] श्री नेहरू अध्यक्ष पद

पर थे और श्रीजनेन्द्रकुमार भी एक सदस्य के अधिकार से उसमे उपस्थित थे। पुरस्कार निर्णय के तीसरे दिन श्रीजनेन्द्रकुमार आचार्यश्री के पास भारी मन लिए आए और कहने लगे कि परसों एक बहुत भारी अपराध मुझसे हो गया है, जिसका बोझ अभी मेरे मन पर है। इसके बाद उन्होंने मीटिंग की कार्यवाही सुनाई कि किस प्रकार केवल पांच मिनट में उस पुरस्कार का निर्णय श्रीनेहरू जी की जल्दबाजी से हो गया, और मेरे मुंह में 'वैशाली की नगरवधू' का नाम आते आते रह गया। आचार्यश्री ने इसीसे सम्बन्धित यह पत्र जैनेन्द्रकुमार को लिखा)

प्रिय जैनेन्द्र जी,

उस दिन आपने एकेडमी के पुरस्कार निर्णय के सम्बन्ध में आत्मपीडा का जो संकेत किया उसकी मेरे मन पर गहरी प्रतिक्रिया हुई, और न जाने कब कब के दबे हुए दर्द उभर आए। इन तीन दिनों तक मैं उस दर्द से पीड़ित रहा और आज इस अर्द्ध निद्रावस्था में ये पंक्तियां मैंने लिखी हैं। 'वयरक्षाम' के साथ मेरा जो चित्र जा रहा है, उसके नीचे ही ये पंक्तियां—या मेरी उस क्षण की आत्माभिलाष या जो कुछ कहिए, छप रही हैं। यथा समय इन पंक्तियों का भी भाष्य होगा और मैं तब आपकी उस आत्मपीडा का उल्लेख भी करूंगा। मेरा मन था कि यह पुरस्कार मुझे मिलना चाहिए था। शायद 'वैशाली की नगरवधू' उसकी एकमात्र अधिकारिणी थी। मेरा अपने मुंहसे ये शब्द कहना मेरे लिए शोभनीय नहीं है, परन्तु इन शब्दों में मेरे मन का सत्य है, जिसे आपके सम्मुख कहते मुझे तनिक भी संकोच नहीं है। यों मैं दावा नहीं करता कि मैंने उस काल के साहित्य की सही छानबीन की है, जो इस पुरस्कार के लिए नियत था, परन्तु यह भी सत्य है कि ऐसी ईमानदारी से छानबीन निर्णायकों ने भी नहीं की। निश्चय ही निर्णायकों का यह पक्षपात नहीं है, तो घोर अज्ञान है। और मैं तो 'नगरवधू' को इस युग की प्रतिनिधि रचना मानता हूं। दम्भ या आत्मश्लाघा से नहीं, सत्य भाव से। कदाचित् आपको ज्ञात नहीं कि रेडियो ने इस पुस्तक की गन्दी से गन्दी समालोचना की थी। मुझे याद नहीं कि किसी पत्रिका ने भी न्याय किया हो। मेरे साथ जैसा आज तक होता रहा है, वैसा ही मेरी इस रचना के साथ भी हुआ है, पर मुझे अपने पाठकों पर संतोष है। हाल ही में 'सोमनाथ' पर भी रेडियो ने निन्दात्मक आलोचना की थी। तमाशा यह कि दोनों बार रेडियो अधिकारी आग्रहपूर्वक पुस्तक समालोचनार्थ ले गए, मैंने तो भेजा ही नहीं। मैं तो पत्रों को भी समालोचनार्थ नहीं भेजता, क्योंकि मेरी दृष्टि में वे हास्यास्पद और मूर्खतापूर्ण होती हैं। परन्तु यह बात तो अवश्य है कि एकेडमी के ये सदस्य ऐसी कुछ झूठी सच्ची बाहरी धूम धाम सुनते तो शायद उनका ध्यान इस ओर जाता। क्योंकि उनका अपना ज्ञान तो जो है, वह उनके निर्णय ही से प्रकट है। मैं यह भी कहूँ कि गत वर्ष केन्द्र ने जो २००० का पुरस्कार दिया था, मेरी पुस्तक 'नगर-

[illegible] रानी के [illegible] पढ़ी [illegible] और दुखी [illegible] राजी [illegible] हैं, न उनका [illegible]। आपको अपनी [illegible] चाहिए। जीवन [illegible] पर [illegible]। अब आप [illegible] याचना [illegible] चाहिए [illegible] अभिप्राय चाहिए।

[illegible]

– चतुरसेन

मान्य [illegible] जी,

[illegible] पर [illegible] मुझे [illegible] अलग [illegible] है। [illegible] जैसा [illegible] थी। [illegible] और [illegible]।

[illegible] प्रथम [illegible] है, [illegible] है, [illegible] ही है। [illegible] है।

[illegible] रहता है कि आप [illegible] तो [illegible] है [illegible] न। [illegible] है।

[illegible]

[illegible], जैनेन्द्र

(साहित्य अकादमी [illegible] प्रथम [illegible] पुरस्कार श्री माखन लाल चतुर्वेदी [illegible] पर दिया गया था। [illegible] श्रीनेहरू अध्यक्ष पद

पर ने गोर श्रीजनेन्द्रकुमार भी एक सदस्य के अधिकार से उसम उपस्थित थे। पुरस्कार निर्णय के तीसरे दिन श्रीजनेन्द्रकुमार आचार्यश्री के पास भारी मन लिए आए और कहने लगे कि परसों एक बहुत भारी अपराध मुझसे हो गया है, जिसका बोझ अभी मेरे मन पर है। इसके बाद उन्होंने मीटिंग की कार्यवाही सुनाई कि किस प्रकार केवल पांच मिनट में उस पुरस्कार का निर्णय श्रीनेहरू जी की जल्दबाजी से हो गया और मेरे मुंह में 'वैशाली की नगरवधू' का नाम आते आते रह गया। आचार्यश्री ने इसीसे सम्बन्धित यह पत्र जैनेन्द्रकुमार को लिखा)

प्रिय जैनेन्द्र जी,

उस दिन आपने एकेडमी के पुरस्कार निर्णय के सम्बन्ध में आत्मपीडा का जो संकेत किया उसकी मेरे मन पर गहरी प्रतिक्रिया हुई, और न जाने कब कब के दबे हुए दर्द उभर आए। इन तीन दिनों तक मैं उस दर्द से पीड़ित रहा और आज इस श्रद्धनिशाम ये पंक्तियां मैंने लिखी हैं। 'जयरश्याम' के साथ मेरा जो चित्र जा रहा है, उसके नीचे ही ये पंक्तियां या मेरी इस क्षण की आत्माभिलाप या जो कुछ कहिए छप रही हैं। यथा समय इन पंक्तियों का भी भाग्य होगा और मैं तब आपकी उस आत्मपीडा का उल्लेख भी करूंगा। मेरा मन था कि यह पुरस्कार मुझे मिलना चाहिए था। न्यायत 'वैशाली की नगरवधू' उसकी प्रकृत अधिकारिणी थी। मेरा अपने मुंहसे ये शब्द कहना मेरे लिए शोभनीय नहीं है, परन्तु इन शब्दों में मेरे मन का सत्य है, जिसे आपके सम्मुख कहते मुझे तनिक भी संकोच नहीं है। यों मैं दावा नहीं करता कि मैंने उस काल के साहित्य की सभी छानबीन की है, जो इस पुरस्कार के लिए नियत था, परन्तु यह भी सत्य है कि ऐसी ईमानदारी से छानबीन निर्णायकों ने भी नहीं की। निश्चय ही निर्णायकों का यह पक्षपात नहीं है, तो घोर अज्ञान है। और मैं तो 'नगरवधू' को इस युग की प्रतिनिधि रचना मानता हूं। दम्भ या आत्मश्लाघा से नहीं, सत्य भाव से। कदाचित् आपको ज्ञात नहीं कि रेडियो ने उस पुस्तक की गन्दी से गन्दी समालोचना की थी। मुझे याद नहीं कि किसी पत्रिका ने भी न्याय किया हो। मेरे साथ जैसा आज तक होता रहा है, वैसा ही मेरी इस रचना के साथ भी हुआ है, पर मुझे अपने पाठकों पर संतोष है। हाल ही में 'सोमनाथ' पर भी रेडियो ने निन्दात्मक आलोचना की थी। तमाशा यह कि दो-चार रेडियो अधिकारी आग्रहपूर्वक पुस्तक समालोचनार्थ ले गए, मैंने तो भेजी ही नहीं। मैं तो पत्रों को भी समालोचनार्थ नहीं भेजता, क्योंकि मेरी दृष्टि में ये हास्यास्पद और मूर्खतापूर्ण होती हैं। परन्तु यह बात तो अवश्य है कि एकेडमी के ये सदस्य ऐसी कुछ झूठी सच्ची बाहरी धूमधाम सुनते तो शायद उनका ध्यान इस ओर जाता। क्योंकि उनका अपना ज्ञान तो जो है, वह उनके निर्णय ही से प्रकट है। मैं यह भी कहूँ कि गत वर्ष केन्द्र ने जो २००० का पुरस्कार दिया था, मेरी पुस्तक 'नगर-

[illegible]

[illegible] ही गई [illegible] और अशा [illegible] अपनी कलम [illegible] लज्जा [illegible] पाता हू। [illegible] इस प्रकार [illegible] परन्तु शायद [illegible] मुझे उस समय [illegible]।

[illegible] रखना [illegible] लिखना [illegible] 'नग' [illegible] जब मुझे गुस्सा [illegible] आपका सरल स्वत [illegible] मखों की [illegible] आपको समुद्र मे [illegible] भी सीखा [illegible] भी मे आपसे [illegible] हास्यास्पद हुआ [illegible] आपने जो [illegible] नाग [illegible] भी [illegible] [illegible] जारीप्रसाद से, [illegible] माँग [illegible] मुझे आशा है।

[illegible] चतुरसेन

[illegible],

[illegible] और [illegible] आभारी हूँ।

[illegible] आधार नही है, नही

ता म ऱ्गमे पीछे न रहना ।

आपकी पतिभा का म भक्त और स्नेह का ऋणी हू । आपको देखकर कभी लगता है कि समझ सकता ह । क्यो अनिवाय होता है कि समय प्रतिभा को न समझ सके । प्रतिभा म तनिक अतिरिक्त जो सामथ्य होती है, समय उसी से असमथ रह जाता है । 'परशुराम' के साथ जाने वाली पक्तियो ने मन को छू लिया पर समय अपना गिर धुने, आप ता अपने म भरपूर रहने के लिए है ।

माथ कान्न आता है, आशा है वहा आपके अवश्य दशन होगे ।

३० ३ ५५ —विनीत, जनेन्द्रकुमार

प्रिय जनन्द्र जी,

सागरवाला मेरा लेख और उसके प्रत्युत्तर म लिखा गया उस छात्र का लेख मेरे परिचित आर अपरिचित साहित्यजनो न पढा और मुह फेर लिया । जसे इस मामले म उनका काई सरोकार ही नही । यह तो जानता हू कि साहित्यिको की इस दुनिया म न ता याय और अ याय का विचार है, न छोटे बडे की मर्यादा है । अब इस घटना स म निश्चित रूप से इस बात पर पहुचा कि यह साहित्यकारो की जमात कोरी हिजडो की जमात है, जिसम न किसी अपने साथी के मानापमान को अपनाने की क्षमता है, न उसके सरक्षण की ममता । जब मेने स्वय आपका ध्यान इधर आक र्षित किया ता आपने चाहा कि मे आपके हुजूर मे एक अपील दायर करूँ, जिसपर आप एक सिफारिशनामा सागर विश्वविद्यालय म भेजे । आपका मेरा आज का परिचय नही है और आप मेरी मगरूरी को भली प्रकार जानते हे, फिर आपने मुझसे एसी आशा की । शायद इसलिए कि आजकल आप बडे होने के आदी हो गए हे और हर चीज को बडप्पन के चश्मे म होकर देखते हे ।

इन सब बाता की मेरे मन पर जो प्रतिक्रिया हुई है, उसके परिणाम स्वरूप म यह पत्र आपको लिख रहा ह । जिसका उद्देश्य आपको यह सूचित करने का है कि आप जिस 'भारती' का आयोजन कर रहे है, उसमे सम्मिलित होना निरथक समझकर म अपना का उससे पथक करता ह । म निश्चित रूप से यह कह सकता हूँ कि इससे मेरे और आपके बीच जो आत्मीयता है, उसम अणुमात्र भी अ तर नही आ सकता ।

—चतुरसेन

मान्य शास्त्री जी,

नीली वाले फाउन्टेन म स्याही न थी, इससे ही रग लाल है, और न समझे । कार्ड आपका मिला । सवेरे म दिल्ली से बाहर जा रहा हूँ, नही तो मिलता और शायद आपकी नाराजी की जरूरत फिर न रह जाती ।

आपकी 'मगरूरी' जैसा आपने कहा मै जानता हूँ, पर यह भी जानता हूँ, उसे

[illegible] मेन [illegible]

[illegible] ? [illegible] वह [illegible] मुझे दुख [illegible] रखेंगे।

[illegible] [illegible], जन [illegible]

(राष्ट्रपति [illegible] पत्र-व्यवहार)

राष्ट्रपति [illegible],

[illegible] मैंने [illegible] की [illegible] और [illegible] रहा है।

[illegible] भेज रहा [illegible] आपका [illegible] भी और जब भी [illegible] साहित्यकार [illegible]। राज्य द्वारा [illegible], जब [illegible] ही [illegible]। आप राष्ट्र [illegible] हमारी यह [illegible] आपको [illegible] सादर,

[illegible] [illegible], [illegible]

[illegible]

[illegible] पुस्तक [illegible] प्रकाशक [illegible] और [illegible] जानना [illegible]।

[illegible] [illegible], राजेन्द्रप्रसाद

राष्ट्रपति महोदय,

आपके तारीख २ दिसम्बर ५५, संख्या ८६५० एच ५५ के उत्तर मे निवेदन है कि आपको हम केवल इतना ही कष्ट देना चाहते हे कि समारोह मे कुछ क्षण के लिए हमारे बीच उपस्थित रहकर तथा समर्पित ग्र थ ग्रहण कर आप हमे सत्कृत करे।

८ १२ ५५ —भवदीय, चतुरसेन

प्रिय आचार्य चतुरसेन जी,

आपका दिनाक ८ १२ १९५५ का पत्र राष्ट्रपति जी के नाम प्राप्त हुआ। उत्तर मे आपको आदेशानुसार सूचित करना है कि आप अपनी जो पुस्तक राष्ट्रपतिजी को समर्पित करना चाहते हैं, उसको ग्रहण करने के लिए उनका वहा जाना ठीक नही होगा। अत मे आपसे निवेदन करूगा कि आप अपनी पुस्तक राष्ट्रपतिजी को अपने प्रकाशक के साथ राष्ट्रपति भवन मे आकर भेट करने का कष्ट करे। जिस तारीख को आप यह कार्यक्रम रखना चाहे उसकी सूचना दे। उसी के अनुसार व्यवस्था कर दी जाएगी।

१७ १२ ५५ —आपका, वाल्मीकि चौधरी, राष्ट्रपति का निजी सचिव

प्रिय श्री चौधरी वाल्मीकिजी,

आपका १७ दिसम्बर ५५ का पत्र आचार्यश्री को मिला। राष्ट्रपतिजी को समर्पित ग्र थ ग्रहण करने मात्र के लिए वे नही बुलाना चाहते, न वे और उनके प्रकाशक श्री गोलिया इस बहाने से राष्ट्रपतिजी अथवा उनकी सरकार से किसी अनुग्रह की प्रकट या प्रच्छन्न कामना करते हैं। उनका उद्देश्य इस समर्पण क्षण को एक शुद्ध साहित्यिक समारोह का रूप देना है, जिसमे नए सत्साहित्य के प्रति जनसाधारण मे यत्किचित अभिरुचि और सम्मान की भावना का उदय हो, जिसके अभाव मे सत्साहित्य का विकास रुका हुआ है। यदि राष्ट्रपतिजी इसे ठीक नही समझते तो मात्र पुस्तक भेट करने की रस्म अदा करने के लिए आचार्यश्री का तथा प्रकाशक का इतनी दूर से आना बेकार कष्ट करना होगा। ऐसी स्थिति मे आचार्यश्री और उनके प्रकाशक यही यथेष्ट समझेगे कि औपचारिक तौर पर ग्रन्थ की जो प्रति डाक द्वारा राष्ट्रपतिजी की सेवा मे भेजी गई है, उसी को वे स्वीकार करने की कृपा करे।

—भवदीय, चन्द्रसेन, सहायक आचार्य चतुरसेन

(डा० ओ० ने नरसेमाल, जकोस्लोवाकिया के दो पत्र)

प्रियवर भारतीय भाई।

सप्रेम वन्दे। कई वर्ष पूर्व मैने आपके यहा चिट्ठी भेज दी थी, पर तु आपका उसपर कोई जवाब नही रहा। मेरे विचार मे यह बात कुछ कारणो से स्वाभाविक ही हुई थी। एक तो उस समय मेरा हिन्दी अध्ययन ही दोषपूर्ण था और आप उसका उद्देश्य अच्छी तरह समझ नही ले सके, दूसरे तो प्रत्येक मनुष्य अपने दैनिक कार्यकलापो

म फल र ा क ारगा पत ा ार ा गा ा ा ।

 ा ि ा ि प ा ा ामय ा अनुभव कर रहा ि म आप अ त ी ौर म ी । ा ा ा म ी, जिससे म ा ा ा ा अभि य क ा । उसी अवधि म लेकर बहुत कुछ ा गया, लेकिन ि ा आ ा ि ी ा अ ा र गया और बराबर रहा रहता है। हि ी ा पूरी ा ा प्राप्त करना ा ा ा है। मैं अपने देशवासियों को भारतीय संस्कृति और ि ा ि ि ी द्वारा परिचित करना ा ा ा ।

 ा ा ा ि म ा ा ा भारतीय भाषाओं और संस्कृति ि ा ा ा ा ा ा । ा ा ि विश्वविद्यालय तथा भाषा ि ा म ा ा ा । ा ा पत्रों ी हि ी पाठ्य पु ा ि ा ा ा ा ा ा अनुवाद ा है, और इस ा भारतीय ा ा प ि ि ा ा ा ि ा ा है। विश्वविद्यालय ने ा ा ा ा ा ा ि ा ि ा ा रहा है।

 ी ा ि म आप ा ि ा ा आवश्यकता है। दुख के ा ा ा ा ि आप ा ा ी प्रति ि दी पुस्तकालय म ा । यदि आप म ा ा ा आप ा ा महत्त्वपूर्ण पु ा और आप ा ा ा ि ा ा ा ा उसमें मु ा ा ी ा और ा ा । आप ा पु ा ा ा ा म ा मु आ ा ी ि ा ा ा ा ा धन्यवाद दे ा ि ा आप ा ा ा ि ा ा ा ि मेरी ि ा ा ा ा ा ा ा ।

आप ा ा ा ा ा ा, (ा ि ि अनुदित)

(प ा ा)

(ि ा , ा ा)

आप ा ा ि ा ा ा ि ा ा मुझे मिला। ा ि ा प्रसन्नता ि ा ि आप ा ा ा मुझे मिला। आपका ि ा ि ा ा ि ा ा ा ि ा ा ा गया। यही ि ा ा म ा ा ा ा ा ि ा है, ि ा साहित्य ा ा ा ा । ा ि ा ि राष्ट्रवाद, देशभक्ति और ा ा ा ा ा ा ि ा ा मनुष्य की आत्मा और ा ा ा ा ा ा ि ा ा यह आवाज

ऊची कर रहे ह, कि हमारा अपना कोई देश राष्ट्र धम समाज नही है, न हमारा इनके प्रति कोई कत्तव्य है, मनुष्य दुनियाँ की सबसे बडी इकाई है और हम उसके पुजारी ह। हम सब ससार के मनुष्य एक है। आपका यह पत्र हमारी इस भावना मे आशा और प्रसन्नता की ज्योति जगमग करने वाला है। इसीसे म आपका अभिनन्दन करता हूँ और अपने यह आन्तरीय भाव प्रकट करता हूँ कि आप मेरे अति निकट आत्मीय ही ह।

आपका हिन्दी साहित्य और सस्कृति से परिचित होने का सत्प्रयत्न अत्यन्त शुभ है। कामना करता हूँ कि आपकी मनोकामना पूरी हो। आपने जो पुस्तक तयार की है, जब वह छप जाय तब मेरे पास अवश्य भेजिए। तथा आपके देश मे हिन्दी के प्रसार के लिए मेरी और मेरे साहित्यिक मित्रो की जो सेवा आवश्यक होगी, वह हम खुशी से आपको दगे। आप मेरी किसी भी कृति का अपने देश की भाषा मे अनुवाद करना चाहे तो म आपको इसके लिए अनुमति देता हूँ, तथा अभी आपकी सेवा मे पृथक पैकेट म निम्नलिखित दस पुस्तक भेज रहा हूँ। इन्हे आप मेरी ओर से प्रेमोपहार समझिए और सदव आत्मीय की भाति याद रखिए। हार्दिक शुभकामनाओ सहित,

१० १ ५७ —आपका प्रिय बन्धु, चतुरसेन

प्रियवर भारतीय भाई।

दीपावली या क्रिसमस पव दोनो ही का एक मात्र सदेश यह है कि हम वास्तविक स्नेह से प्रम कर। क्योकि स्नेह जीवन की चालक शक्ति है और वास्तविक स्नेह दूरस्थ मित्रो को भी आत्मीय बना लेता है। मधुर स्मरणो के साथ।

—आपका विस्मृत चेक भाई, ओडोलेन स्मेक्ल,

(फादर कामिलबुल्के, रांची का पत्र)

प्रिय महोदय,

आप मेरे विषय म क्या सोचते होगे? मुझको क्या समझगे? अपराधी के रूप म नतमस्तक होकर, मै आपके सामने खडा हूँ और क्षमा मागता हूँ। मुझे इसमे तो रत्तीभर भी सन्देह नही कि मुझे क्षमा मिलगी ही। अगर आप उदार नही होते तो मुझे पत्र क्यो लिखते। फिर भी मे वास्तव मे लज्जित हूँ। गर्मियो मे कलकत्ता गया था, कान का इलाज कराने के लिए। रांची पहुँचकर अत्यधिक व्यस्त रहा और आपके स्नेहमय पत्र की इतनी दर तक उपेक्षा की, मेने। अत क्षमा प्रार्थी हूँ। आशा है आप सानन्द और स्वस्थ होग।

२७ ७ ५८ —आपका, कामिलबुल्के

(सुश्री हर्षिदा पण्डित द्वारा अमेरिका म लिखे गए पत्र)

पूज्य शास्त्री जी,

यहाँ पहुँचे पाँच महिने गुजर गये। पर समय निकालकर आपको पत्र लिख ही

[illegible] निय सकने [illegible] पाठ [illegible] सामाजिक [illegible] समय [illegible] देती है कि [illegible] गया है और मेरे सांस्कृतिक शोधों [illegible] गये है कि [illegible] है। [illegible] रखकर उसी [illegible]

[illegible] आगे न कर [illegible] दुनिया आयी। उसमें [illegible] डाक से आई [illegible] लिखकर जानकारी [illegible] पढ़ [illegible] है। मुझे [illegible] करके आत्मपाती [illegible] अनुवाद गरमी की छुट्टियों में शुरू करूँगी।

[illegible] बन गयी। [illegible] Spon[illegible] निकल गया। [illegible] और Immi[illegible]gration authority [illegible] यहाँ के Faculty Member [illegible] हो गया। [illegible] University of Southern California के Chancellor [illegible] Scholarship [illegible] University Women [illegible] की ओर से स्कालर[illegible] है। मैं उन [illegible] पत्र लिख [illegible] परदेशियों की [illegible] Education Dept में Admission [illegible] था, मैं Course [illegible] है। मुझे अपना M.S. पूरा [illegible] मेरी दृष्टि नयी दिशा में [illegible] है।

[illegible] डाक्टरेट के

विद्यार्थी अमेरिकन ही है उसे हिन्दी सिखाना शुरू किया है। यह विद्यार्थी शायद एकाद साल मे Full bright का Scholarship लेकर हिंद अभ्यास करने आयगा। वह खूब उत्साही युवक है और हिंद विषयक बहुतसी बातोकी जानकारी उसने हासिल की है।

विशेष क्या ? पत्र लिखना और जयन्त परमार को भी पत्र लिखना। उनका पता फिर से लिखती हू।

३ २ ५८

—हर्षिदा के वंदन

सोभाग्यवती सुश्री हर्षिदा पण्डित,

निस्सन्देह आपके पत्र के लिए मै उत्सुक था और जब आपका यह पत्र मिला तो उसे पढकर मुझे आन्तरिक आनन्द प्राप्त हुआ। पत्र मे आपकी जिस दृढता, अध्यवसाय और ज्ञान पिपासा एव ध्येय सिद्धि की लगन का आभास मिलता है उसकी जितनी प्रशसा की जाय, कम है। मै कामना करता हू कि आप सफल मनोरथ होकर अपने पति के साथ वहा से लोटे। शरीर और मन दोनो से स्वस्थ्य और आनन्दित एव स्वदेश आकर वह प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करे, जिसकी आप प्रकृत अधिकारिणी है।

आपके पत्र की एक ही पक्ति मे अमेरीकन नागरिको के चरित्र का जो सकेत मिलता है वह इतना प्रिय है कि यदि उसका व्यवहारिक परिचय दुनिया के मनुष्यो को मिल जाय तो विश्व जिस भयानक आपत्ति की आशका से भयभीत है उससे मुक्त होकर सुख की सास ले। अभी तो समूचा ही विश्व विशेषकर हम लोग भारतीय जिन्होने अमेरीका के द्वारा जापान के नगरो पर अणुबम का नृशस प्रहार देखा है और उसके बाद कोरिया मे जो कुछ हुआ है और अब पाकिस्तान के साथ अमेरीका की जो सैनिक सधि हो रही है जिसे भारत मे अत्यन्त चिन्ता और शका की दृष्टि से देखा जा रहा है, उससे हमारी अन्तरात्मा और मानस दृष्टि मे अमेरीका का जो चित्र अकित होता है वह एक कुत्सित और रक्त पिपासु राष्ट्र का है। आपके पत्र से तो यही ध्वनित होता है कि ये सारे सैनिक अविचार अमरीकन जनता की रुचि और सहमति के विपरीत है, वहा का शासक गण ही, जिसे विश्व मे अपने अर्थ साम्राज्य की स्थापना की बडी भारी चिन्ता है कर रहा है। क्या आप अमेरीकन जनता मे इस भावान्तर पर प्रकाश डालने के लिए कोई सार्वजनिक भाषण नही कर सकती ? या इसी दृष्टिकोण को लेकर वहा के सामयिक पत्रो मे लेख नही लिख सकती ? मै समझता हूँ कि यदि आप ऐसा कर सकें तो आपका वहां स्वागत होगा और आपकी धूम मच जायगी। मेरा जोरदार अनुरोध है कि आप जरूर ऐसा करे। अपने भाषण और लेखो मे, गोष्ठियो मे, जहा भी आपको अवसर मिले आप अमेरीकन नागरिको से कहे कि आप उनके प्रेम, मिलनसारी और आत्मीयता तथा सहृदयता से किस कदर प्रभावित और आप्यायित हुई है। परन्तु मेरे देश के लोग अमेरीकनो को हत्यारा और रक्तपिपासु समझकर भयभीत है

और ऐसा समझता है कि य अमरीका गया तो नारियों को आराम से रहने देना नहीं चाहता।

यह मैं मानता हूँ कि याकि जीवन का स्वागत किया है। हम भारतीय जो हमेशा ढीले ढाले तरीके से और अनेक बातों में जोड़तोड़ करने के अभ्यस्त है, उनके लिए जरूर ही असुविधाजनक हो जाता है कि न कोई हानि नहीं। अमेरीका से आप दूसरी सांस्कृतिक और आर्थिक विचारधारा के साथ जब यात्रा जाना का भी अभ्यास आ समाप्त करके लौटेंगे ता मेरा ख्याल है, आपके भावी जीवन में उससे चुस्ती और सुव्यवस्था ही कायम होगी।

अनुवाद के प्रकाशन के सम्बन्ध में मैं श्रीजयन्त परमार को शीघ्र ही पत्र लिखूंगा और पुस्तक का शीघ्र छापने की व्यवस्था करूंगा। 'नगरवधू' को एक बार अवसर निकालकर आप फिर पढ़ें और इस दृष्टिकोण से उस पर विचार करें कि यह उपन्यास पाश्चात्य संसार में अतीत भारतीय जीवन पर कुछ सांस्कृतिक प्रभाव डालने में सफल होगा कि नहीं और इसका आधार सम्भव गुजराती में हो प्रत्युत अंग्रेजी में कर और इसकी चर्चा वहां जहां तहां साहित्य में और कुछ प्रकाशन संस्थाओं से भी करें। अमरीका रहते आप यदि सम्पूर्ण उपन्यास का अनुवाद न भी कर पाया तो जितने भी अंश का अनुवाद हो जाए उसी पर से किसी प्रामाणिक प्रकाशक से मामला ठीक कर लीजिए कि वह यारोप और अमरीका के लिए 'नगरवधू' का अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित करे। अनुवादक मूल लेखक और अनुवादक दोनों का नाम रहेगा और रायल्टी प्राप्त होगी। पूर्वनिश्चित शर्तों के अनुसार बंटवारा हो जायगा। मैं आशा करता हूं कि यह एक लाभदायक काम होगा।

यह आवश्यक है कि प्रकाशन आप आरम्भ करें। आप इस ढंग से सलाह करें कि अमरीका के साहित्यकार ... आप एक नया रचनात्मक मौलिक उपन्यास लिख रहे हैं ... और ... अंग्रेजी उपन्यास ... भाषा ... और अभिव्यक्ति ... अंग्रेजी साहित्य ... पर ... विचार रखा जाय। ऐसा ... मेरा ख्याल है कि उपन्यास लगभग पांच सौ पृष्ठों में समाप्त हो जायगा। ... और भी ... के साथ साथ ही कुछ अंश ... की जाए, जिससे ... पर भिन्न भिन्न ... प्रकाशकों के पास भेजने में सुविधा ... मैं ... ऐसा ... बन गया है कि रशियन और ... के सांस्कृतिक अधिकारी उसे अपनी भाषाओं में उपस्थित करना चाहते हैं। अब ... सिर्फ ... अनुवाद करने की है। मैं आशा करता हूँ कि अवकाश मिलते ही आप उस काम को अपने हाथ में लेंगी और वहाँ से वापिस होने

के समय दो एक अच्छे प्रकाशकों से सम्पर्क स्थापित करके आएँगी। ताकि यदि वहां रहते कार्य पूरा न भी हो तो यहां आने के बाद उसे पूरा करके प्रकाशित होने के लिए वहां भेज दिया जाय। टाइप आदि करने के लिए यदि कुछ आर्थिक दिक्कत हो तो लिख दीजिएगा, यहां से व्यवस्था करदी जायगी।

बच्चों के लिए बुद्धि विकास सम्बन्धी कुछ भौगोलिक, वैज्ञानिक और ऐतिहासिक एवं नागरिक शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें मैं लिखने की सोच रहा हूँ। ऐसा साहित्य आपको वहां हाथ लगे तो जरूर कुछ पुस्तकें मेरे पास भिजवा दीजिए। पुस्तकें सचित्र ही होनी चाहिए। मेरा नया उपन्यास 'सोमनाथ' सम्भवतः अप्रैल के अन्त तक प्रकाशित हो जायगा, जिसे मैं आपके पास भेजूंगा।

आपने जो वहां एक विद्यार्थी को हिन्दी सिखाना शुरू किया है, आपके इस प्रयत्न की मैं सराहना करता हूँ। आप जरूर युवकों के हृदय में हिन्दी सीखने की रुचि उत्पन्न कीजिए और भारत में आकर हिन्दी का सम्पूर्ण अध्ययन करने की ओर उन्हें प्रवृत्त कराइए। मैं चाहता था कि इधर हिन्दी के जो कुछ नए प्रकाशन हुए हैं, उनमें से कुछ पुस्तकें आपके पास भेजूं पर ऐसा मैं इस भय से नहीं कर रहा कि वहां आप जिस काम में लगी हुई हैं उसमें इन पुस्तकों के पढ़ने का समय नहीं मिलेगा। यहां साहित्य की प्रगति में कोई नवीनता नहीं दृष्टिगोचर हो रही है। राजनतिक वातावरण कुछ ऐसा क्षुब्ध होता जा रहा है, जिससे सारी ही सांस्कृतिक भावनाएँ दब सी रही हैं। इस समय भारत में दो ही विषयों पर जनता का ध्यान केंद्रित है एक प्रयाग के कुम्भ में दुर्घटना के कारण, जहां लगभग दो ढाई हजार नरनारी दो ही चार मिनिट में भीड़ में कुचल कर मर गए। यह दुर्घटना ३ फरवरी की प्रातःकाल ६ बजे कुम्भ के संगम क्षेत्र पर घटित हुई, जबकि वहां चालीस लाख मनुष्यों की अनियंत्रित भीड़ बेकाबू हो गई। दूसरी घटना अमरीका द्वारा पाकिस्तान को सैनिक सहायता दी जाने की है, जिसका सारे ही भारतवर्ष में तीव्र विरोध हो रहा है और एक प्रकार के भय और आशंका का वातावरण देश भर में व्याप्त है। आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्य में कुछ राजनतिक उलझन घटित हो जाए।

अन्त में आपको उन सब सुविधाओं और सुयोगों के लिए बधाई देता हूँ जो आपको वहां प्राप्त हुई हैं। आपके अध्यवसाय और लगन के लिए अभिनन्दन करता हूँ। कृपया मेरी वहां बहुत हार्दिक शुभकामनाएं आप ग्रहण कीजिए और अपने पति से मेरा प्रेमाभिवादन कह दीजिए।

११-३-५४ —शुभाकांक्षी, चतुरसेन

पूज्य शास्त्री जी,

आपका १६वीं मार्च का लिखा हुआ खत मुझे मिले आज कई दिन हो गये

लिखा दिया। मैं प्रत्युत्तर में [illegible] रही थी, आज विचार का गमन कर रही हूँ। आपने आपके पत्र में मेरे लिये जो शुभाकांक्षाएं व्यक्त की हैं, उनके लिये मैं सचमुच आपकी कृतज्ञ हूँ। आपका पत्र पढ़कर मैं इतनी भावुक बन गई कि जैसे मैंने सच मुच अपने योग्य हुए पिता का पा लिया हो। मैं जरा भी [illegible] नहीं करती और सचमुच अपने हृदय की सच्ची भावनाओं को कागज पर उतारने का प्रयत्न करती हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि हमारा सम्बन्ध [illegible] कारणों से हुआ, लेकिन देश से इतनी दूर रही हूँ, मैं आपके साथ जिस आत्मीयता का अनुभव करती हूँ उसका वर्णन कैसे करूं।

यहां पर भाषण करने के अवसर प्राय खूब मिला करते हैं। हिंद में अँग्रेजी [illegible] में झिझकती थी, लेकिन यहां आकर ६ महीनों में कम से कम १०–१५ भाषण कर चुकी हूँ। यहां के लोग हिंद के विषय में बड़े जिज्ञासु हैं और मैं हमेशा हिंदी साड़ी में ही रहती हूँ, जिससे मुझे इतना मान मिलता है कि जिसकी मुझे अपेक्षा ही नहीं थी। यहां चर्च ग्रुपों में, Social Sororities में और Women Clubs में जहां जहाँ जाती हूँ [illegible] दृष्टिकोण समझाने का प्रयत्न करती हूँ। राजगोपालाचारी (उन्हें मैं सच्चा चिंतक नहीं मानती) जिस दिशा में विचार करते हैं और उनके भाषण लेख लगातार में हिंद विरोधी प्रचार यहां भी खूब रहता है, हिंद को बराबर समझने का ये लोग प्रयत्न नहीं करते, लेकिन आम जनता [illegible] है। उसमें हिंद की शांति विषयक नीति का प्रचार करना [illegible] हो गया है। [illegible] कनाडा [illegible] है। [illegible] अमरिकनों को [illegible] आमंत्रित करते हैं और हिंद विषयक गलतफहमी को दूर करने का कोशिश करते हैं। मैं मानती [illegible] कि जितने विद्यार्थी यहां पढ़ने आये हैं, वे हमारी सरकारों के [illegible] unofficials Ambassadors हैं, उनको [illegible] जरा भी [illegible] चाहिये, हिंद को represent करना [illegible]। [illegible] बड़ा दुख है कि [illegible] हमारे विद्यार्थी [illegible] और [illegible] हिंद की [illegible]।

हमारा एक परिचित [illegible] मैं शायद उनका [illegible] American Aeronautic Womens Association [illegible] पायलेट [illegible] रंगीन [illegible] Guide [illegible] सफर में [illegible] Guide ने समझाया होगा कि [illegible] लोग [illegible] की पूजा करते हैं। लोग ऐसा सुनकर हंस नहीं

तो गया कर ? मुझे यह हकीकत जानकर बडा दुख हुआ था । इसलिये आपके समय म से थोडा समय मेरे लिये हमारे हिंद के लिये खर्च करने को नम्र विनती मे आपसे करती हूँ । हिंद को बढा चढा करके तो नही लेकिन जैसा है वैसा सच्चा चित्र उसकी आखो के सामने रखने म आप अगर सहायता करेगे तो म आपकी खूब आभारी रहूगी । ऐसा रहन को हमने Hand Book of India दी है और अनेक बाते बतलाई है । हिंदी भोजन भी खिलाया है । वे करीब सात आठ दिन दिल्ली म रहगी । Imperial Hotel म ठहरेगी । म आगरा, जयपुर, फतहपुर सिक्री, अजमेर देखकर कश्मीर जायेगी । उनके कार्यक्रम के मुताबिक मई के पहले सप्ताह म दिल्ली म पाव रखगी । मैने आपसे पूछे बिना ही आपका पता उन्ह देने की धृष्टता ता की है । आशा है आप मुझे माफ करेंगे । वे आपको पत्र लिखकर आपको उसके आने की सूचना देगी, आप बन सके तो किसी Authentic Guide कोयह काम सौप देना, जिससे हमे शाति रहेगी । वे आपको मिलेगी तो सही पर मे जानती हूँ आप बडे व्यवसायी रहते है, इसलिये समय के मुताबिक काम करना । आपको इसमे थोडीसी तकलीफ उठानी पडेगी जिसका मुझे ख्याल है, पर मेरे पास कोई चारा नही है । दरियागज म हमारी पहचान वाली एक सरकारी कुटुम्ब रहता था पर वह अब लखनऊ रहने लगा है और, और किसी को मै नही जानती जिससे आपको हैरान करती हूँ ।

'रानी की नगरवधू के बारे म मैने यहा की एक लेखिका के साथ बात चीत की है । थोडासा अनुवाद करके प्रकाशक को बताना पडेगा और फिर अन्य बाते तय होगी । मैने आपकी सूचना पर गभीर विचार किया है और अमली बनाने के बारे मे सोच रही हूँ । मौका मिलते ही कार्य करूगी और क्या होना है वह लिखूँगी ।

आपने बच्चो के बारे मे जो साहित्य मगाया है वह थोडे दिनो मे रवाना करूगी । आपका 'सोमनाथ प्रकट होते ही यहा भेजने का आपका विचार बडा पसन्द आया ।

यहा के हाइड्रोजन बम्ब के बारे मे आपने सुना होगा । विज्ञान का उपयोग सहार के बदले सर्जन कार्य मे ही हो यह अत्यत जरूरी है, पर आज तो रशिया और अमरिका दोनो दूसरी दिशा म कार्य कर रहे है । और कोई नवीन नही । पत्र लिखते रहना । मेरे पति आपको प्रणाम कहलवाते है ।

—हर्षिदा के प्रणाम

८।४।५४

सुश्री हर्षिदा पडित,

आपका पत्र मुझे यथा समय मिल गया । मुझे अत्यत दुख है कि मे इतनी देर मे जवाब दे रहा हूँ । कारण क्या बताऊ, आलस्य ही कहना चाहिये । जवाब के लिये कागज उसी दिन मगवा लिया था, परन्तु लिख रहा हूँ आज । अस्तु ! मै बहुधा यह सोचा करता हूँ कि आपसे जो यह अकस्मात ही परिचय हुआ है, इसका परिणाम मेरे

[illegible] दिनों में पत्रोत्तर [illegible] में लगा रही थी, आज विचार कर अमल कर रही हूं। आपने आपके पत्र में मेरे लिए जो शुभाशीर्वाद [illegible] है, [illegible] लिए मैं सचमुच आप की कृतज्ञ हूं। आपका पत्र पढ़कर मैं इतना भावुक [illegible] कि जैसे मैंने सच मुच अपने खोये हुए पिता को पा लिया हो। मैं जरा भी अतिशयोक्ति नहीं करती और सचमुच अपने हृदय की सच्ची भावनाओं को कागज पर उतारने का प्रयत्न करती हूं। मुझे ऐसा लगता है कि हमारा सम्बन्ध व्यावसायिक [illegible] हुआ, लेकिन देश से इतनी दूर अकेली हूं, पर आपके साथ जिस [illegible] का अनुभव करती हूं उसका बयान कैसे करूं।

यहां पर भाषण करने के अवसर प्राय खूब मिला करते हैं। हिंद में अँग्रेजी बोलने में झिझकती थी, लेकिन यहां आकर ६ महीने में कम से कम १२-१५ भाषण कर चुकी हूं। यहां के लोग हिन्द के विषय में [illegible] जिज्ञासु हैं और मैं हमेशा हिंदी साड़ी में ही रहती हूं, जिससे मुझे इतना मान मिलता है कि जिसकी मुझे अपेक्षा ही नहीं थी। यहां [illegible] में, Social Sororities में और Women Clubs में जहां जहां जाती हूं [illegible] दृष्टिकोण समझाने का प्रयत्न करती हूं। राजद्वारा चिन्तक (उन्हें मैं सच्चा चिन्तक नहीं मानती) जिस दिशा में विचार करते हैं और [illegible] भाषण लेख [illegible] में हिंद विरोधी प्रचार यहां भी खूब रहता है, हिंद को बराबर समझने का ये लोग प्रयत्न नहीं करते, लेकिन आम जनता बड़ी समझदार है। [illegible] हिंद की शांति विषयक नीति का प्रचार करना [illegible] हो गया है। [illegible] लोग हिंद में कई [illegible] [illegible] आमंत्रित [illegible] हैं और हिंद विषयक गलतफहमी को दूर [illegible] हैं। मैं मानती [illegible] कि [illegible] यहां [illegible] हमारी सरकारी [illegible] unofficials Ambassadors हैं, [illegible] हिन्द को [illegible] present [illegible] [illegible] है और [illegible] हिंद की [illegible]

[illegible] Women Aeronautic Women's Association [illegible] पायलट [illegible] रंगीन [illegible] Guide [illegible] सफर में [illegible] Guide ने समझाया [illegible] पूजा करते हैं। लोग ऐसा सुनकर हंसे नहीं

तो क्या कर ? मुझे यह हकीकत जानकर बडा दुःख हुआ था । इसलिये आपके समक्ष मे स थोडा समय मेरे लिये हमारे हिंद के लिये खर्च करने को नम्र विनती म आपस करती हूँ । हिंद को बढा चढा करके तो नही लेकिन जैसा है वैसा सच्चा चित्र उनकी आंखो के सामने रखने म आप अगर सहायता करेगे तो म आपकी खूब आभारी रहूगी । मैंने उनको हमने Hand Book of India दी हे और अनेक बाते बतलाई हे । हिंदी भोजन भी खिलाया हे । वे करीब सात आठ दिन दिल्ली म रहेगी । Imperial Hotel मे और वहा से आगरा, जयपुर, फतहपुर सिक्री, अजमेर देखकर कश्मीर जायगी । उनके कार्यक्रम के मुताबिक मई के पहले सप्ताह मे दिल्ली म पाव रखेगी । मैने आपसे पूछे बिना ही आपका पता उन्हे देने की धृष्टता ता की हे । आशा हे आप मुझे माफ करेगे । वे आपको पत्र लिखकर आपको उसके आने की सूचना देगी, आप बन सके तो किसी Authentic Guide को यह काम सौंप देना, जिससे हम शांति रहेगी । वे आपको मिलेगी तो सही पर मे जानती हूँ आप बडे व्यवसायी रहते ह इसलिये समय के मुताबिक काम करना । आपको इसमे थोडीसी तकलीफ उठानी पडेगी जिसका मुझे ख्याल हे पर मेरे पास कोई चारा नही है । दरियागज म हमारी पहचान वाली एक सस्कारी कुटुम्ब रहता था पर वह अब लखनऊ रहने लगा है और, और किसी को मे नही जानती जिससे आपको हैरान करती हूँ ।

'वैशाली की नगरवधू' के बारे मे मैने यहा की एक लेखिका के साथ बात चीत की है । थोडासा अनुवाद करके प्रकाशक को बताना पडेगा और फिर अन्य बाते तय होगी । मैने आपकी सूचना पर गभीर विचार किया हे और अमली बनाने के बारे मे सोच रही हू । मौका मिलते ही कार्य करूगी और क्या होता हे वह लिखूँगी ।

आपने बच्चो के बारे मे जो साहित्य मगाया है वह थोडे दिनो मे रवाना करूगा । आपका 'सोमनाथ' प्रकट होते ही यहा भेजने का आपका विचार बडा पसन्द आया ।

यहा के हाइड्रोजन बम्ब के बारे मे आपने सुना होगा । विज्ञान का उपयोग सहार के बदले सर्जन कार्य म ही हो यह अत्यन्त जरूरी हे, पर आज तो रशिया और अमेरिका दोनो दूसरी दिशा म कार्य कर रहे हे । और कोई नवीन नही । पत्र लिखते रहना । मेरे पति आपको प्रणाम कहलवाते है ।

—हर्षिदा के प्रणाम

८ ४ ५४

सुश्री हर्षिदा पडित,

आपका पत्र मुझे यथा समय मिल गया । मुझे अत्यन्त दुःख हे कि मे इतनी देर मे जवाब दे रहा हूँ । कारण क्या बताऊ, आलस्य ही कहना चाहिये । जवाब के लिये कागज उसी दिन मगवा लिया था, परन्तु लिख रहा हूँ आज । अस्तु ! मै बहुधा यह सोचा करता हूँ कि आपसे जो यह अकस्मात ही परिचय हुआ हे, इसका परिणाम मेरे

साहित्य के विकास पर क्या प्रभाव पड़ेगा। मैं आप से भी अधिक इस अभाव की बात सोचता रहा जो मेरी कमजोर आवाज ... क्या आश्चर्य है कि आप ही वह व्यक्ति हैं जो प्रेरणा से मेरे ... हुई हो। आपकी साहित्य भावना, विचारों की प्राञ्जलता, ... समाज और मानवता के प्रति सच्ची आत्मीयता के भाव ... उनकी उपेक्षा करें। वे नजर अन्दाज हो जायँ। यहाँ प्रवास में आपके प्रति अत्यन्त आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि मेरे साहित्य को आप पसंद करेंगे। ... इस विचार ... में जितना आनंदित हूँ, उसका बखान मैं शब्दों में नहीं कर सकता।

यह पढ़कर कि आप वहाँ भाषण देंगे, तथा प्रीति सम्मेलनों के द्वारा अमेरिकन जनता और अपने भारतीय जनजीवन में मैत्री तथा बन्धुत्व भाव को उत्पन्न करने में सफल हैं। परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप ... भारतीय जीवन में ऐतिहासिक ... भारत ... अपने विचार आपको लिखता हूँ। यह तो मैं आपको प्रथम ही लिख चुका हूँ कि अमेरिका के राजनैतिक ... भारत में भी तीव्र भावना से देखा जा रहा है। पाकिस्तान को जो सैनिक सहायता दी जा रही है, वह एशिया भर का ... माना जा रहा है। ... कि ज्योंही यह ... सक्रिय हो, सम्पूर्ण एशिया ... विरोध में उठ खड़ा हो। परन्तु उसका परिणाम निश्चय ही भयानक होगा। ... यहाँ ... और अन्य ... के प्रयोगों के विरुद्ध आवाज ... एशिया विदेशियों का नियंत्रण ... यह ध्वनि ... होती जा रही है। परन्तु ... पंजाबी ... साहित्य सम्मेलन के अवसर पर अमृतसर में ... भाषण दिया। वह भाषण मैं आपके पास भेजूँगा। उसमें मैंने श्री ... दिया था। ... सम्पूर्ण है। हम साहित्यकार ..., ... प्रमाण ... अमेरिका ... है। ... सम्पूर्ण अमेरिका ... रक्षा ... अमेरिका ... अमेरिका भारत ... आप ऐसी ... अमेरिका ... अमेरिका में अपने ... आपकी सफलता ... पुस्तकें के नाम भेज ... गा, ... सम्मिलित होना चाहिए। ... परिणाम भारत के जन-

मत पर बहुत व्यापक पडेगा। आप अवश्य ही अपने लेखो तथा भाषणो के द्वारा यह आन्दोलन खडा कीजिये। इस शिष्टमडल मे वे ही पुरुष हो जो भारत के प्रतिनिधि साहित्यमनीषी हे तथा किसी राजनीति तथा सरकार से कोई सम्पक नही रखत।

दूसरा काय यह शुरू करे कि रेडियो द्वारा अमेरिकन बच्चो का ससार के बच्चो से मत्री सगठन खडा करे। आप वहा रेडियो अधिकारियो से इस सम्ब ध मे अवश्य वात करे। मे यहा कर रहा हूँ। यदि ससार के बच्चे रेडियो द्वारा एक मत्री सघ स्थापित करे तो यह आगामी दशाब्दी के बाद एक महान सास्कृतिक काय हो जायेगा। आपकी रुचि होगी तो म विस्तृत योजना लिख भेजूगा। आप भारतीय विद्यार्थियोसे भी कभी कभी एकत्रित वार्तालाप कीजिये। आपकी मित्र तो मुझे अभी मिली नही। मैंने उनके साथ के लिए एक दशक ठीक किया था। 'नगरवधू' के अग्रेजी अनुवाद और प्रकाशन पर पूरा बल दीजिये। यदि अभी समूचा अनुवाद सभव न हो तो थोडे अश का अनुवाद तथा पुस्तक का सक्षिप्त विवरण किसी प्रकाशक को दिखाकर प्रकाशन की व्यवस्था कर आइये। यह आर्थिक दृष्टि से भी बहुत लाभदायक होगा। मेरा 'सोमनाथ' आगामी सप्ताह मे तयार हो रहा है। शीघ्र आपको मिलेगा। सब ठीक हैं। आपके तथा आपके पति के स्वास्थ्यवद्धि तथा सर्वोन्नति की शुभकामना कर रहा हूँ।

२५ ४ ५४ शुभाकाक्षी, चतुरसेन

(श्री डिप्टीसेक्रेटरी, आफिशियल लैंग्वेजेज कमीशन, मिनिस्ट्री आफ होम अफेयस नई दिल्ली को लिखा गया पत्र)

प्रिय महाशय,

आपका बिना तारीख का ओपचारिक पत्र मुझे दो दिन पूव मिला था। उसमे लिखे अनुसार मुझे १० फरवरी १९५६ तक सब प्रश्नोके उत्तर लिखित देना सम्भव नही है। केवल अपने निम्न भाव सक्षेपमे लिखकर भेज रहा हूँ। मुझे २१ फरवरी १९५६ को ४ ३० पर कमीशन के समक्ष निर्धारित स्थान पर आने पर आपत्ति नही है परन्तु मेरे आनेजाने की क्या व्यवस्था होगी, कृपया इसकी सूचना दीजिए। मुझे खेद है कि म केवल हिन्दी ही म उत्तर दे सकता हू। धन्यवाद।

—भवदीय, चतुरसेन

१४ २ ५६

भाषा साहित्य का वाहन हे। साहित्य के सोष्ठव से भाषा को अमरत्व प्राप्त होता है। यदि राजनीति किसी भाषा को प्रभावित करती हे तो अन्य विभाषाओ का सपत्न्य भाव उसके विरुद्ध उठ खडा होता हे और स्नेह और आदर के स्थान पर उसके प्रति घृणा और स्पृद्धा का भाव उठ खडा होता हे। हिन्दी के सम्बन्ध मे यही हुआ है। मेरा मत है कि राष्ट्र-भाषा घोषित होने के कारण हिन्दी की अपार हानि हुई है। हिन्दी के साहित्य का विकास रुक गया है। इसकी साहित्यिक निष्ठा पिछुड गई है। हिन्दी

गाहित्य गर ।। गार । गाया।। गमारा गार उगाग ि । पतार ी प्रार प्रभि भग । ३ ८, । प्रा,।।,।।ग ि । गा ि । ।।' ि । गा ि यराग ।। ।गभग रा गान । ।,। ।।, ' । । ि । । । ि ग ाय गा।ागा ग गाप्त य द्रूप रिभापी भार तिया, गत म गर ।।ना, र ति प्रार भि गार्षा । रा अमर स्त्रा ाश्रा क प्रति विरति म ा पा ।। ।।।गरा ।।।।मी, ि रा राजनाति क भार गग र गन्त र ि ागा र ।ुन गुजर। रा आमाग ह ।

म र क्रम गा। ाि । ाि मु। गार ।। ।। म रू गागा हानी चाहिए। पपन लिए भी पार ि । ।। ि ा भी। भिभागारा रा ग्यान परन्तु गातचार त्यत हार । लिए ।ता ाि । । । ।। म। आगा ि । । । । परन् ि ी रा राष्ट्र भागा । स्थम पतार गोर ।। प्र यर ।। । । ।। पर गगर। राजनाति प्रा ार रना तर रना । उन पर भगा ि ।।। मा ।।पा ि । । । ।। मग हृत्रिम ग रा प्राय न ाय है। भ ता । ।। ।।। ि म प ार गोर रातात्कार । अपना हिंदी रा गम्प । र रा ग अभूगा गाि पर र ।। ।ाि । ग । ाय र लिए निम्न गाजना राम म आ ।ि ।।ाि ।

(१) ।ग ग हग ग्म प । गमय ि । ाि। ग ।। ाि । ।र दग वर्षों म हिन्दी ।।।।ात्म ि । ।। ।।। । । । गमय ।।। ।। ।। । ।। ग्यरान ।। आ ि । उ, ।।गृभा। ह गम पर ि भाषा ।। पर ।।न ग्रापी जाय, प्रपितु उग र ।। गृभाषा ि प । । ।।। म ाि । ग ।। जाय ।

( ) ि ।। । लिए ग ।।।र । ग ।। ।।।।। ि ा ग ।। प्रनिवाय कर दिया जाय ।

( ) ग । ग गर ।।।। ।।।।। ग ि । । ग । । ग उपयोग ।। ग्या ार तर लिया जाय। पर । । । ि । । । ि हिन्दी ।। । प । िया जाय ।

( ) गार ।य राज्य ।। ग।।। गम्पू । । ाि ।।। ।।।।पर ि । ।।। ाहिए। ।गि । ाि ।। गार ।। ।। ।। । लिए ग।।ागार ।। पहाय पार पगागा ।।ागा आ गार ग । गम ।। । ।ग ग ।। ार्य म उप याग म ।।या ।। । ।।।।। । ि भाषा ।।। ि म । ि गो पढ़ी जाए । ।। ा ि ।। ।। ि । ।ग आगा प्रगार ग ग ।। ।। ।। ि या जाय । म । । ग ि ।। ग ।। 'भारता' रू ि ।। जाए । गम ग ।।। । स्वरूप भत ।। ि भाषा ग ग ।। भ ।ग।।। ।। ि । ।ग जाग। पर । प्रथम गर ।। और फिर । ि ।। ।। ।। ग ि ।। ।। ग ।। । ।। प्रभग गाग ि ग रूप दिया जाय ।

(५) गग र भार । ग हिन्दी भ ार र गर ।। । प पर गा ।र भी यदि नियत

न किया जाय, जो अनुपात से हिन्दी का सीमित ज्ञान न रखता हो। ऐसे सरकारी कर्मचारियों और अफसरों के लिए प्रथक शिक्षालय खोले जायं, जहां उन्हें ६ मास तक हिन्दी का आवश्यक शिक्षा उनके पद के अनुरूप दी जाय।

ऐसा करने से हिन्दी निर्विरोध दस वर्ष की अवधि मे राष्ट्रभाषा का भार वहन कर सकेगी, ऐसा मैं समझता हूं।

(सत्यकाम विद्यालंकार, सम्पादक 'धर्मयुग', बम्बई को लिखे गए पत्र)

प्रिय सत्यकाम जी,

आपका कृतज्ञता सहित छपा हुआ हुक्मनामा मिला। आप हमारी साहित्यिक रचनाओं को अपनी निर्मम और अज्ञानी कची से अगभग कर उन्हें विकृत करते हैं, इसके अतिरिक्त अपने लेखकों का आदर तो दरकिनार—आप उनसे मैत्री भावना भी रखना अपनी शान के खिलाफ समझते हे, शिष्टाचार इतना कि उनके पत्रो तक का उत्तर देना अपनी शान के खिलाफ समझते हे यह आपकी सम्पादकीय निष्ठा है। आप सम्पादक नहीं, दूकानदार हैं। अपनी दूकानदारी चलाने मे चाकचौब द। तीनसौ पसठ रोज़ रोज़ अपना माल आपके पास भेजते हे। बिना शर्त आत्मसमर्पण सहित। और आप पसन्द की चीज छांटकर बाकी माल कूडे मे फक देते है। पसन्द सोलह आना आपकी। सैया जिसे प्यार करे वही सुहागिन। पसन्द मालके दाम आप अपने ही निर्णय पर देते है, माल के मालिक से पूछते तक नहीं। पूरी सामन्तशाही का अमल। खोटे खरेके आप कैसे पारखी है यह हम आपकी चलती दूकान मे जो कूडा ककट भरा रहता है, उससे अनुमान लगा सकते है। ऐसी हालत मे हमारा आत्मसम्मान हमे यह हुक्म देता है कि आपका हुक्मनामा आपको वापस कर दिया जाय और जब तक आप उस कुर्सी पर है, या जब तक आप अपनी कची और गर्व पर दुख नही प्रगट करते, हम आपके पत्र धर्मयुग का बहिष्कार कर। उसमे एक अक्षर भी न लिखे।

हम यह भी जानते है कि हमारे इस रूठने से आपकी कुछ भी हानि नहीं होगी, आपको लेखकों की क्या कमी। आपके बुद्धू पाठक यह कहकर आपके कान थोडे ही खींचेंगे कि वह लेखक था, उसकी रचनाएँ अब क्यो नही छपती, क्या वह मर गया ??

आप केवल कागज पर लाल पीला रंग बखेरते रहे, और रंगीन लिबास पहिना कर गन्दा सस्ता बाजारू माल ग्राहकों को पटीलते रहे। पसन्द आपकी है, ग्राहको की नहीं। या पत्रिका का शौक लगाते रहे। चलती हुई आपकी दूकान हे, अभी वह चलती ही रहेगी। उसके पीछे पूंजी की गठरी तो हे ही।

साहित्यकार फक्कड है। वह साहित्य रचता हे, सौन्दर्य की सृष्टि करता है, आत्मा मे सत्य का आरोप करता हे। सो आपके उन चादी के टुकडो के लिए नही, जो आप अपनी समझ मे अनुग्रह करके जब तब भेज देते हे जितना जी मे आया उतना।

गई गदार भुगा है, ता गका यह मतात्र न गो कि वह न्य भी न्या सकता ह। उसकी भा एक शान है ग्रार उसकी वह जान आपकी उस किराए की कुर्सी की शान स, जिसपर व्यक्तर गाप र्गाद गदार ता गाा ा समझते है, बहुत भारी है।

१६ ८ ५५ आपका, चतुरसेन

भा सत्यकाम जी

बहुत दिन बाद नियाजनामा मिला। परन्तु यह क्या बात है। गाप हमेशा न्यो अनद्र का मेरे सिर पर उठाते हैं। मैने न ा गद न्वरगा म गक्तर कलम पकडना सीखा है, और मेरी दृष्टि म आज भी उनका य ा स्थान है। गाप मेरा यह पत्र उन्ह भजकर उनपर उनका मा ा न गत ा है। यद्यपि हिन्दी म किसी भा आदमी बडे की मर्यादा नही है, फिरभी आप पर प्रतिष्ठितपद क सम्पा क और हम ा ा ा न ग व्यक्तिगत परिचित है। ा न ा ा है कि आप ा अ ा द्र पर विशेष प्रिय भाव हा परन्तु उसोस आप उना व्य ा क लिए उत्तरदा ा ा ा नहीं गिना सर ा। गाप ा समयुग क न्सी अक म जो विर्णित आपा है,उसम क ा ा नाका क ताम जिस अनुक्रम स लिए गए है,उसी पर मेरा यह गाराप है।

एक विशेषत और भी है,आप मह ा ा ाव और का ा ा ा न रखते है। कृपया रक्षा ा गाप एक मह ा ा स अधिक न राक रग। न आयी जाय ता वापस करद, स्वीकृत रखना व लिए एक मन्ा ा का समय काफी है।

८ ५८ सत्य ाथ, चतुरसेन

भा स ासाम जी

ा ा ा ा आपका आशीर्वाद पाकर आप्याथित ह्रआ। मित्रो स नाराज न ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा स्वाभाविक है। मेरा प ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा दन गया था ा, मित्र भा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा कि गाप मुझ   ा ा ा ा ा समझते है। आप ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा और भी मित्रता ा कि ा ा ा ा ा ा ा, फिर भी ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा कायम हो रहा। पर ा गाप ा बारम्बार ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा, इसलिए जारी रखा। गीत ा आप ा जिस ा ा ा ा ा अग भग किया, ा आभा ा किया कि मेरा प ा पत्नी ा ा ा ा ा ा ा प्यार पा ा ा ा ा ा ा और ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा सम्मुख आई। म प्र ा किसी ा ा ा आदमी क ा ा ा ा ा ा ा ा आप ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा ा है अपितु सब हुए साहित्य म ा ा ा है। आप जा ा ा कि ा ा ा ा ा ा शुद्ध समक ा ा ा ा ा ा ा ा रत्नागुन्दरी ा

शृङ्गार किया जाता है, सो क्या इसीलिए कि उसका इस भोंडे तरीके से अंग भंग कर दिया जाय। पर आपने मेरे साथ केवल यही अनाचार नहीं किया, उपेक्षा भी कम नहीं की। कभी आपने अनुभव नहीं किया कि महीना वर्षो 'धर्मयुग' मेरी कलम से सूना जा जा रहा है। मैं वष्ट कहाने को तैयार हूँ पर यह नहीं स्वीकार कर सकता हूँ कि मैं इतना नगण्य साहित्यकार हूँ। एक ऐसे प्रसिद्ध पत्र का विज्ञ सम्पादक मेरी ओर से एक बारगी ही मुंह फेर कर बैठ जाय और अपने लाखों पाठकों को मेरी कलम से हठात वञ्चित करदे, जबकि मैं स्वयं ही अनन्त मौन होने के निकट पहुँच रहा हूँ। आप नाराज हो सकते हैं, पर मैं इसे आपका साहित्यिक अपराध समझता हूँ और सम्पादक की जिम्मेदारी की उपेक्षा भी।

अब अपने दिल का बुखार तो मैं काफी उतार चुका हूँ। इसलिए अब आपकी आज्ञा का पालन करना भी आवश्यक है। इस पत्र के साथ एक कहानी भेज रहा हूँ और यथावकाश, उपन्यास तो मैं अभी कल ही साप्ताहिक हिन्दुस्तान को दे चुका हूँ, आपको मई के अन्त तक या जून में दे दूंगा। आपकी पसन्द आ जाय तो आप ले सकते हैं।

२० ४ ५६ —भवदीय, चतुरसेन

(श्रीरांगेयराघव ने पत्र में 'प्रियभाई' सम्बोधन लिखा, उसे अपनी आयुमर्यादा में अशिष्टता समझकर आचार्यश्री ने उनसे कारण पूछा, उसीके उत्तरमें रांगेयराघव का यह पत्र)

मान्यवर,

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। धन्यवाद।

मैंने लगभग २३ वर्ष पूर्व से 'कागज काला करना' शुरू किया है, जबकि आपके लड़के बच्चे भी जवान हो चुके होंगे। अतः अपने पत्र में जो मैंने आपके लिए 'प्रियभाई' जैसा—अंग्रेजी के Dear Brother का अनुवाद रूप अपमानजनक शब्द प्रयुक्त कर दिया उसके लिए मुझे खेद है और मैं उस नाते को यहां वापिस ले लेता हूँ। कहानी संग्रह के सम्बन्ध में जब मुझे २५-३० पत्र एक साथ लिखने पड़े तो मैं ऊब गया और उसीमें दुर्भाग्य से मैं भूल गया कि आप इतने अधिक वृद्ध हो चुके हैं और आपका अलग से सम्मान करने के विषय में चूक हो गई। आशा है क्षमा करेंगे।

हम कहानी के प्रेस में जाने पर ही रुपए भेजेंगे, परन्तु आपका नियम है कि आप पहले ही मंगा लेते हैं, दूसरे हमसे अन्य सब लेखकों ने सौ सौ रुपए मांगे हैं, यहां तक कि स्वर्गीय चमनलालजी तक की कहानी के हमें केवल १००) देने पड़ रहे हैं। अतः आपकी १२५) की मांग को हम पूरा करने में असमर्थ हैं। आपको आर्थिक हानि न हो और हमारी असमर्थता का निबाह हो जाए, इसलिए हमने अपने संग्रह को आपकी कहानी से वंचित कर लिया है।

—भवदीय, रांगेयराघव

२८-६ ५६

([illegible]राम [illegible] [illegible]पुरी [illegible] पत्र)

[illegible]

[illegible] आप[illegible] [illegible] [illegible] दिना तक रहेगी। [illegible] आपकी [illegible] का [illegible], [illegible] प्रेरणा भी [illegible] [illegible] आप[illegible]। जि[illegible] भी [illegible] है [illegible] पता तो [illegible] चला। [illegible] पहली [illegible] मे [illegible] आपने मुझे अप[illegible] [illegible] है। आ[illegible] है [illegible] कृपा बना रहेगी।

अभी अपने गा[illegible] मे आया हू और जून भर [illegible] गा।

[illegible] सविनय, श्रीराम बेनीपुरी

[illegible]जी, सादर [illegible]।

आप[illegible] पत्र, [illegible] [illegible] निग्न [illegible], [illegible] मार [illegible]। यहां आया [illegible], [illegible] गया पारिवारिक [illegible]। [illegible] दिने, नहीं [illegible], [illegible] है [illegible] रहा [illegible] जनी दूरी, [illegible] स्टेशन [illegible] पर [illegible] रहा [illegible]। [illegible] भाग जाने [illegible]।

[illegible] शिक्षा है, [illegible]।

[illegible], आप[illegible] [illegible] प्रमियो की [illegible], [illegible] लोगों को [illegible] नहीं। [illegible], दिन [illegible]। [illegible] द।

[illegible] [illegible]राम बेनीपुरी

([illegible] भट [illegible] [illegible] तो आ[illegible], [illegible] गया, पर आत्मीयता [illegible] [illegible] अधि[illegible] [illegible] मिलने आया [illegible], [illegible] पर [illegible] कर, [illegible]पान ने [illegible] आया। [illegible] रीतिनीति

और परम्परा की दुहाई दी। अंतमे मामला राज्यपाल मुंशी के पास पहुंचा और उन्होंने साहित्यकार मुंशी बनकर आचार्यश्री को पालकी मे ही अंदर आने की अनुमती दी। उसी भेंट से सम्बन्धित लिखे गए पत्र।)

प्रिय श्री मुंशी जी,

मैं एक सप्ताह के लिए सपत्नीक यहां आया हूँ। चाहता हूं कि आपसे मुलाकात करूं। पत्नी भी मुंशी को देखना तथा सुश्री लीलाजी का अभिनन्दन किया चाहती हैं। परन्तु हम लोग इस मुलाकात मे महामहिम राज्यपाल की उपस्थिति अवांछनीय समझते हैं। साहित्य मनीषी मुंशी और उनकी कमसखी का दर्शन लाभ चाहते हैं। सुविधा हो तो समय की सूचना दीजिए। सादर। १५ ६ ५४ —भवदीय, चतुरसेन

(इस भेंट मे श्री मुंशी ने अपनी एक कृति आचार्यश्री को पढने को दी थी, उसको पढन के बाद श्री मुंशी को लिखा गया पत्र)

प्रिय मुंशी जी,

आपकी पुस्तक मैंने पढी। मन दुःख और क्षोभ से भर गया। दुःख इस बात का कि अनुवादक ने आपकी भाषा और भावो की बुरी तरह हत्या कर डाली है।

और क्षोभ इस बात का कि कैसे ये सब बाते लिख देने के लिए लीला बहन सहमत हो गई। आपकी सारी साहित्य सम्पदा एक ओर, और यह अशोभन कुत्सा एक ओर। न जाने कब तक इन पंक्तियों को पढकर आने वाली पीढी के पाठक आपके जीवन पर व्यंग और उपहास की वर्षा करते रहेंगे।

जीवन पर संयत आवरण सभ्यता का चिह्न है। असभ्य जन ही नंगे रह सकते हैं। जीवन को सार्वजनिक रूप से नग्न करना सत्य नहीं है। जीवन का सम्पूर्ण विकसित रूप ही जीवन का सबसे बडा सत्य है। वह फूलके समान सुदर्शन शोभनीय और सौरभ पूर्ण होना चाहिए। फूल के उस विकास मे जो कुत्साएं हैं—गन्दी खाद है, माली की डांट डपट है, कीड़े मारना है—वह सब प्रदर्शन की वस्तु नहीं होनी चाहिए, खासकर साहित्य की सीमा में। क्योंकि साहित्य जीवन की व्याख्या है, विवरण नहीं। इसीसे साहित्य का सत्य जीवन के सत्य से भिन्न है।

अब आप यदि इजाजत दें तो मैं कहूंगा कि मैंने प्रथम मुलाकात के समय आपसे जिस [illegible] की आशा की थी वह तो अभी भी उस दिन की मुलाकात मे आपके साथ था। [illegible] मुलाकात में कुछ भी रसोदय नहीं हुआ, वह औपचारिक ही रही। दुबारा फिर भेंट करने की अभिलाषा ने भी जन्म नहीं लिया। फिर भी मैं आपको प्यार [illegible] करता ही हूं। इसी से मैंने यह पत्र लिखा है। चाहता हूं कि लीला बहन को भी दिखा दें। मेरा और मेरी पत्नी का आप और लीला बहिन को सादर प्रणाम।

३-७-५४ —आपका, चतुरसेन

(डा० दशरथ ओझा हिन्दी विश्वविद्यालय का पत्र)

श्रद्धेय श्रा बाबूजी सादर अभिवादन ।

गत सप्ताह साहित्यिक संगम के अवसर पर दिल्ली में एक गोष्ठी बाहर से आने वाले साहित्यकारों से परिचय कराने के निमित्त की गई थी। जिस जगह उन वालों में आपका नाम भी था, किन्तु किसी स्थान पर आपका दर्शन न होने से मुझे आश्चर्य हुआ। अगले दिन राजेन्द्र बाबू के यहां एक पार्टी भी हुई, किन्तु वहां भी आप न दिखाई पड़े। इस प्रकार दिल्लीवालों [illegible] समय में [illegible] का आभास पाकर मुझे चिन्ता सी हुई कि एक उक्त साहित्यिक का उचित [illegible] नहीं मिल रहा है। उस समय समस्त भारत के योग्य साहित्यिक पधारे थे। नाना भाषाओं की पुस्तकों का प्रदर्शन भी दर्शनीय था। आप इस सप्ताह दिल्ली आ [illegible] , अथवा रविवार को मैं आपसे यहीं मिलूंगा।

२६ [illegible] आपका [illegible] दशरथ ओझा

(डा० दशरथ ओझा, दिल्ली विश्वविद्यालय को लिखा गया पत्र)

प्रिय ओझा जी,

उस दिन आपके समारोह में [illegible] उपस्थित न हो सकने का मुझे बहुत खेद है। परन्तु उस वातावरण में मेरा मन [illegible] कि मैं वहां न जा सका। प्रथम तो मैं कभी किसी ऐसे समारोह में जाता ही नहीं जहां कोई राजनीतिक व्यक्ति कुर्सी पर हो। [illegible] और [illegible] उनका [illegible] है। खुदा की जगह [illegible] और उसके [illegible] [illegible] आश्चर्य की बात है कि [illegible] और इस साहित्यकारों [illegible] है। मैंने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समुदाय [illegible] था, परन्तु सभापति जी [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] फिर [illegible] और [illegible] राज [illegible] [illegible] पर, विद्वान् [illegible] और [illegible] सभापति [illegible] [illegible] से, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] महत्त्व की सम्भावना [illegible] मुझ [illegible] [illegible]

पूछ दबाकर। हिंदी साहित्य के वह भाग्योदय देखने की ताव मुझ में कहाँ थी। सो मैं भाग आया। सजा भी पूरी पाई। पूरे दो घंटे में बस पर चढ पाया और दो बजे घर से निकला तो आठ बजे घर पहुँच पाया।

२५ ८ ५८ —भवदीय, चतुरसेन

(मुशी कन्हैयालाल एडवोकेट इलाहाबाद का पत्र)

भाई शास्त्री जी, जयरामजी की।

कृपा पत्र के लिए अनेका बार धन्यवाद। दया से और भक्ति से क्या विरोध है जो भक्तीवाद के खिलाफ ऐसी बडी आलोचना कर डाली? क्या आदमी के जीवन मे शाती ही सब कुछ है? दुख, दर्द का भी कुछ स्थान है कि नही? जिसका साथ, सहयोग, हमदर्दी, प्रेम २७ वर्ष तक प्राप्त था उसकी याद बनाए रहने का यही साधन है कि दूसरी शादी करे? फिर मै तो कुछ ज्यादा दुनियावी प्रकृति का भी नही हूँ। कैसे मै दूसरी शादी के बारे मे सोच भी सकू यह मुम्किन नही है—कम से कम। जी कांप उठता है। यह कोई भक्ती की बात नही है। भक्ती करना साधारण बात नहीं है। मै न भक्त हूँ, न इतना भाग्य ही है, बहुत दुखी हूँ। शरीर की घटती हुई शक्ति से और भी परेशान हूँ। मरीज ऐसा हूँ कि कोई दवा काम ही नही देती। ऐसी लाचारी मे घबराकर आपकी सहायता मागी थी, यदि कुछ हो सके तो करे।

मुझे बडी शिकायत है कि प्रयाग आप आए और बिना दर्शन दिये चले गये। यह काहे की नाराजगी का इजहार था? कृपा बनाए रहिये।

१८ ८ ५८ —आपका, कन्हैयालाल

(दक्षिण भारत के ए० चन्द्रहासन, प्रधान भाषाविभाग महाराजा कालिज का पत्र)

प्रिय महाशय,

मै दिल्ली मे आपसे मिलना चाहता था। पर खेद की बात है कि आपको पहचान नहीं सका और परिषद की बैठक के बाद ही मुझे ज्ञात हुआ कि आप उसमे उपस्थित थे। मै नई परिस्थिति मे दक्षिण के विद्यार्थियो के लिए हिंदी गद्य पद्य सग्रह तैयार करना चाहता हूँ। उसमे आपका एक लेख देना जरूरी भी समझता हूँ। मैट्रिक के स्तर का सरल हिंदी मे एक लेख भेजदे तो बडी कृपा होगी।

१० ५९ —भवदीय, ए० चन्द्रहासन

(श्री रामधारीसिंह दिनकर को लिखा गया पत्र)

प्रिय दिनकर जी,

इन प्रेमचंद जयती के अवसर पर आपने जो भाषण दिया, उसमे आपने भारत के चार सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार गिनाए है। उन चारो मे एक श्रीमुशी भी आपने गिनाये है। परन्तु मेरा मत है कि श्री मुशी भारतीय उपन्यासो की तो बात ही

र है, गुजराती भाषा । भी शब्द ... । मैं यह भी मानता हूँ कि ... लोग ... पर ... उपन्यासों में ... उपन्यास ... आना भी नहीं है। भारतीय संस्कृति और साहित्य ... रूप में भारतीय साहित्य ... उनका पर ... उपन्यास है जो सर्वथा हास्यास्पद है।

आपने यदि अपने मित्र का पक्षपात नहीं किया है। तो मुझे भय है कि आपने भारतीय उपन्यासों का ... बिना ... यह धारणा बना ली है। ऐसी अवस्था में आपकी यह स्थापना ... भार ... जाती है, जिसकी ओर ... अपना ... समझा। इसीसे मैंने आपको यह पत्र लिखा है, जो ... ।

८ । ८ । ५८ भवदीय, चतुरसेन

(... शास्त्री ... लिखा गया पत्र)

प्रिय शास्त्रीजी,

साहित्य ... आप हिंदी ... आपका ... भी पढ़ा। ... जो ... लिए, ... उस नि... विचार ... आप ... कर रहे हैं ... समझा ... लगभग ... का ... सब ... आप ... में ... आरोप ... पर ... मौन ... ।

... भवदीय, चतुरसेन

(पत्र का उत्तर)
श्रद्धेय आचार्यजी,

नमस्कार ! आपका कृपापत्र मिला। आपके बहुमूल्य सुझाव का मैं हृदय म स्वागत करता हूँ। आपकी आज्ञा के अनुसार मै बडे परिश्रम से अपने कथा काश म साय उपस्थित करूगा। कोश मे तीन हजार कहानियो को लेने का विचार है। दुख यह है कि यहा पर कोई अच्छी लाइब्रेरी नही, अनेक पुस्तके प्राप्त नही।

आप अपने कहानी सग्रहो का एक सेट भेज दगे तो अत्यन्त अनुगृहीत रहूँगा।

लेख केवल विद्यार्थियो के लिए एक स्केच सा था, क्षमा चाहता हूँ।

/ ३ ५३ —भवदीय, हरदेव बाहरी

(गुरुकुल कागडी के आचार्य द्वारा प्रेषित पत्र)
मान्य शास्त्रीजी,

श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी की जन्म शताब्दी के अवसर पर 'गुरुकुल पत्रिका' का एक वृहद् विशेषाक निकालने की हम तयारी कर रहे है। स्वामीजी के जीवन चरित्र पर पत्रिका के लगभग ८० पृष्ठ दने का विचार है। यह भाग लिखने के लिए हमे सबसे अधिक उपयुक्त क्योकि आपही नजर आते है, इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप इस काय को स्वीकार करके अपनी सहमति से शीघ्र सूचित करने की कृपा करे। अभी उस दिन रेडियो पर आपकी एक वार्ता सुन रहा था, आपके अपने ही शब्दो मे आपकी रचनाओ का तथा लेखन शैली का सुन्दर परिचय मिला। आशा है आप सवथा प्रसन्न होगे। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो लिखे, उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा।

— आपका,

२८ ६ ०१२

(आचार्यश्री द्वारा उसका उत्तर)
प्रिय भाई नमस्ते !

पत्र का उत्तर देर से द रहा हू। काम बहुत करना पडता हे, अत मेरी असहायावस्था समझ कर क्षमा करगे। आप जो काय मुझे सौपना चाहते हे, मे उसे करने म प्रसन्न ही हूगा। मैने स्वामी श्रद्धानन्द को एक निराले ही रूप मे समझा है। मै उन्हे समग्र उत्तर भारत की सास्कृतिक सोचने विचारने की विचारधारा को ही पलट देने का श्रेय देता हूँ। यह निबन्ध मै अवश्य लिख दगा। यह केवल जीवनचरित्र न होगा, उनके जीवन की व्याख्या होगी। आप मुझे सूचित करे कि लेख कबतक आपको चाहिए। उनके सम्बन्ध मे जो साहित्य आपको उपलब्ध हो, वह भी भेजना होगा। कृपया मेरा 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' भी पढिए जहा मेने आयसमाज और स्वामीजी का उल्लेख किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सवप्रथम मैन ही ऐसा किया है।

—भवदीय, चतुरसेन

(श्री रामकुमार वर्मा का पत्र)

प्रिय शास्त्री जी,

दिल्ली से लौट आने पर उसका खुमार काफी दिनों तक रहा। अब कहीं जाकर समझ पा रहा हूँ, कि यह इलाहाबाद है और यहीं के वायुमण्डल में मैं साँस ले रहा हूँ। आपके समाचार बहुत दिनों से नहीं मिले यद्यपि आपने समय समय पर अपने विचारों से परिचित कराने का वादा मुझसे किया था। आशा है, इस बीच में आपके विचारों में और भी अधिक [illegible] हुआ होगा, जिनसे मैं ही नहीं वरन् पत्रकार जगत भी लाभ उठा सकता है।

हाँ एक बात के सम्बन्ध में मैं आपके विचारों से परिचित होना चाहूँगा। आपको तो ज्ञात ही होगा कि पिछली परिस्थितियों ने 'चाँद' की शक्तियों को क्षीण सा कर दिया था और अन्त में उसे विलीन भी कर लिया था। किन्तु 'चाँद' ने साहित्य और समाज की जो सेवाएँ की, उन्हें आसानी से नहीं भुलाया जा सकता। साहित्य क्षेत्र से 'चाँद' का अस्त एक सामाजिक और साहित्यिक दुर्घटना होगी। अतः उसके उद्धार का उपाय अभी भी किया जा रहा है और यह सम्पूर्ण रूप से विश्वास है कि शीघ्र ही 'चाँद' नवीन शक्ति से समन्वित होकर साहित्य और समाज की शक्तिशाली सेवा करेगा। 'चाँद' का सञ्चालन अब ऐसे हाथों में होगा जो पूर्ण शक्तिशाली हैं और इसलिए 'चाँद' का नवीन युग एक [illegible] क्रान्तिकारी और नवीन [illegible] को लेकर होगा। इस सम्बन्ध में [illegible] और आपकी [illegible] शक्ति की ओर ध्यान आकर्षित किया। मुझे विश्वास है कि आपके सम्पादकत्व में 'चाँद' एक क्रान्तिकारी [illegible] सर्वोत्कृष्ट [illegible] साहित्य समाज [illegible] और [illegible] नवीन [illegible] और [illegible] होगा, [illegible] आपके [illegible] क्रान्तिकारी पत्र [illegible] प्रभावित [illegible] आशा [illegible] सम्पूर्ण [illegible] और स्वीकृति [illegible] उस [illegible] आपका सह[illegible] और [illegible] होगा।

[illegible]

(१) आप प्रयाग [illegible] 'चाँद' [illegible] भार स्वीकार करें और यहीं से सम्पादन करें [illegible] इस सम्बन्ध में मेरा भी आपसे यही अनुरोध होगा, [illegible]।

(२) आप अपने उद्देश्यो और स्कीमो के अनुसार 'चाद' की योजना मे सहायता कर।
(३) मे इसका निश्वास दिलाता हूँ कि भविष्य मे 'चाद' की ओर से किसी प्रकार भी आपको आर्थिक हानि नही होगी।

यदि आपका आना इस ओर निकट भविष्य मे हो तो आप इस विषय मे बात चीत कर ले। मेरे प्रिय मित्र श्री निरजनलालजी भागव आपके इस काय को प्रशसा की दृष्टि मे देखेगे ओर हम लोग एक सूत्र मे आबद्ध होगे। 'चाद' को एक सर्वोत्कृष्ट पत्र बना सकेगे। आशा हे सान द होगे। आप इस पत्र का उत्तर शीघ्र ही देने की कृपा करे। शेष मिलने पर।

२७ ११ ३८ —आपका, रामकुमार वमा

(वृ दावनलाल वमा के चार पत्र)

प्रिय शास्त्रीजी,

आपका २८ १२ ५४ का स्नेहपत्र आज यहा एक वाहक झासीसे लेआया। जगल काटकर १९८० मे यह गाव बसाया था। कुडारगढ से २ मील हे, झासी से २६ मील। रेल तार, डाकघर, सडक किसी से भी इस गाव का कोई वास्ता नही। शायद २ ४ वष म शहर बन जाने। अब यहा का प्रवास कम कर दिया हे। आने जाने मे बडी कठिनाई होती था। शुभकामना के लिए मेरी हार्दिक कृतज्ञता स्वीकार कीजिये। ६५ और ६७ म अ तर ही कितना है? मे और आप दोनो जवान हे। मै आपकी लेखिनी स १९१५ से परिचित हूँ, जब आप और मै दोनो कानपुर के 'प्रताप' मे लिखा करते थ। आप जब समथर जा रहे थे तब एक बार आपके दशन किये थे। अबकी बार जब दिल्ली आऊगा, शाहदरा पहुँचूगा। आशा है आप प्रसन्न है।

१ १५ —स्नेही, व दावनलाल वर्मा

प्रिय शास्त्रीजी,

२० १ ५५ का स्नेहपत्र स्नेहदीप को सबल करके शाहदरे का माग सुझा रहा है। आऊगा, अवश्य आऊँगा। दो दीवाने मिलेगे, खुब घुटेगी !! आप कहा सचमुच इस ओर न भटक पडना। मेरा कुछ ठीक नही, कभी इधर कभी उधर। गाव झासी स २७ मील दूर है। बीच म बेतवा और बहुत सा बीहड। कडार के पास जगल काट कर एक छोटा सा गाव बसाया था, १४ वष होते आते है, नाम श्याममी है। इसलिए शाहदरा सबस अच्छा मिलाप स्थान। माच या अप्रेल मे पहुचूगा, पहले से लिख दूगा जिसम आपको 'ज्ञान ग्राम' म विराजमान पाऊँ। आपके यहा ठहरने मे दिक्कत ! भाई वाह !! वनचरा को भी दिक्कत कही हो सकती हे?

३१ १ ५५ —आपका, वृ दावनलाल वर्मा

प्रिय शास्त्रीजी,

आपका १२ ३ ५५ का कृपापत्र कल स या समय मिला । दिल्लीसे लौटने पर । अपराधी का इकबाल सुनिये, पीछे उसकी क्षमा याचना पर विचार करने की कृपा कीजिये। १४ ३ ५५ की रात दिल्ली गया। रातभर नींद नहीं आई। प्रातःकाल रेडियो स्टेशन पर एक भाषण रिकार्ड कराना था, दरियागंज में लालाबाबू के यहां जहां ठहरा करता हूं, उसके तिमंजिले पर महाकष्ट हुआ। ३ घंटे लग गये। फिर भी यों ही न गया। दरियागंज से काले ... । ४ घंटे वहां ठहरना पड़ा। कभी यह नहीं, कभी वह नहीं। मैथिलीशरण जी की भी तो कविताएँ रिकार्ड होनी थीं। वह मिल गये और कुछ अन्य लोग भी। उसमें वहीं रात होगई। बहुत थक गया था। नींद आया और ९, १० के बीच में सो गया। फिर आपके पास न पहुंच पाया। आशा है कि आप क्षमा कर देंगे। पहला कसूर तो यों भी माफ हो जाता है। अब की बार न होगा। जब कभी दिल्ली आऊंगा शाहदरा पहुंचूंगा। आशा है आप 'मार्गी ... ' शीघ्र भेजने की कृपा करेंगे।

१० ३ ५५ — आपका, ... शर्मा

प्रिय भाई शास्त्रीजी,

बड़ी बात, अपराध भी क्षमा कर दिया गया। अब वह पड़ेगा किसी दिन बिना ... सूचना दिये। ... । फिर जब दो ... मिल ... ।

१८ ४ ५५ स्नेही, ... शर्मा

(डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए० पी० एच० डी० के चार पत्र)

पूज्य आचार्यजी ... ।

आपका पत्र पाकर सत्य ... रहा है। ... कर रहा हूं, जैसा आपके समीप ही हूं। ... मांगा था हुआ, पर ... न लिख सका ... दूसरा चित्र भी उसमें था।

आपका ... गौरव प्रतीत होता है, हमारे किसी पुराने ऋषि की आत्मा ... आपमें ... किया है। ... ऐतिहासिक दृष्टि से ... महत्व ... है। ... मालूम हो सकता था। ... आपसे आपकी आपबीती पुराने ... उच्चतम स्थान ... आया हूँ। जब आपने कार्य प्रारम्भ किया था, हिन्दी ... उठ रही थी। आपकी सभी पुस्तकें ... प्रतीत ... है।

३ २ ५१ - आपका, रामचरण महेन्द्र

पूज्य शास्त्री जी वन्दे ।

पत्र के लिए धन्यवाद । 'स्त्रियो का ओज' पुस्तक मेरे लिए बडी उपयोगी साबित हो रही है । ऐतिहासिक दृष्टि से आपने एकांकी लिखना बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था । आपके द्वारा हिंदी मे जो विशाल काय हुआ है, उसे देखकर स्तम्भित रह जाना पडता है । अँग्रेजो मे स्काट और डिकन्स ने लिखा है शायद हिन्दी मे आपने उससे भी अधिक लिखा है और बहु विषयो पर लिखा है । उस दिन हिन्दी के एक प्रोफेसर आपकी 'स्त्रियो का ओज' पढकर कहने लगे—'शास्त्रीजी ने सब विषयो पर लिखकर अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग किया है । उन्हे केवल एक चीज हाथ मे लेनी थी—उपन्यास ।'

वास्तव मे उपन्यास ही आपका असली क्षेत्र है भी । मैने आपकी अन्य विषयक कृतिया नही पढी है, पर उपन्यास ही सबसे अच्छे आप लिख सकते है । 'हृदय की प्यास' से प्रारम्भ ... 'वैशाली की नगरवधू' शायद अतिम चीज है, जो आपका नाम अमर करेगी । मै यह पुस्तक पढ नही सका हूँ । कालेज मे मगानी है । इस साल का बजट समाप्त हो चुका है । अगले वर्ष आपकी साहित्यिक कृतियो का पूरा सेट मगवाया जाएगा ।

आपसे साहित्यिक इतिहास सम्बन्धी कुछ आवश्यक परामर्श करना है । थीसिस दिखाना है । ठीक भी कराना है । सोचता हू समय मिले तो दर्शन करूँ । दर्शनो की इच्छा अधिक है । मेरे पिताजी प्रोफेसर मोहनलाल जो इसी कालेज मे दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे, आपके 'बनाम स्वदेश' के बडे भक्त है । वे इसे हिन्दी गद्य काव्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ कहा करते हैं । अब से २० २२ वर्ष पूर्व यह पुस्तक उन्होने खरीदी और मुझे जोर जोर से पढकर सुनाया करते थे । फिर आपकी कुछ अन्य कृतिया पढी, जिनमे मिलने की इच्छा बलवती हुई ।

—आपका, रामचरण महेन्द्र

२३ २ ५१

आदरणीय आचार्यजी वन्दे ।

आपकी तीन कहानी पुस्तके मिली । सभी को उनमे दिलचस्पी है । पत्नी पढ रही है । उन्हे 'लाल पानी' की कहानिया बहुत पसन्द आ रही है । 'पतिता' पढकर तो वे रो उठी । इन पुस्तको मे प्रारम्भिक भूमिकाएँ बडे काम की है । उनकी सहायता से और आपके स्वय के लिखे 'नया जीवन' मे प्रकाशित लेख की सहायता से आपकी कहानियो पर ११ पृष्ठ छपने भेज रहा हू । आपका कहानी साहित्य बेजोड है । राजपूत और मुगलो के जीवन पर तो आपने गजब किया है । प्रेमचन्द के बाद कथा साहित्य आपका चिरऋणी रहेगा । इतनी विस्तृत पृष्ठभूमि दूसरे किसी भी कथाकार की नही है ।

मेरा ध्यान आपकी एक अजीब आकर्षक शीर्षक वाली पुस्तक 'मौत के पजे मे जिन्दगी की कराह' पर गया है । न जाने इसमे क्या होगा ? बार बार मन मे इस

क्रांतिकारी रचना को पढ़ने को तबियत करती है। कोई प्रति यदि प्राप्य हो तो भिजवाने की कृपा करें।

६-८-५६ -आपका, रामचरण महेन्द्र

प्रिय आचार्य जी वंदे,

आप कहेंगे कि यह अचानक पत्र कैसा? कारण आपकी एक कहानी है, जो 'चित्रा' में छपी है—'सफेद कौआ'। इस कहानी को पढ़कर दंग रह गया। आचार्यजी, ऐसी कहानी गत ४६ वर्षों में कहीं भी मैंने नहीं पढ़ी है। यहाँ मेरे कालेज के अनेक प्रोफेसरों ने भी इसे पढ़ा है। कमाल है। भाव, कल्पना और प्रतीकात्मकता की गहराई पर हम सभी आश्चर्य कर रहे हैं। क्या यह भारतीय जन क्रांति का पराक्रम चित्रण नहीं है। आपके साहित्य पर मैं एक आलोचनात्मक ग्रन्थ 'नया समाज' में लिखने की बहुत दिन से सोच रहा हूँ। 'नया समाज' में मेरे इस प्रकार के लेख प्रतिमास छप रहे हैं। कृपया अपने साहित्य एवं जीवन के इस अंग में शामिल करने योग्य संकेत Hints दीजिए। आपका समग्र जीवन साहित्य साधना में व्यतीत हुआ है। हिन्दी युग को गाजसे मिलानेवाले आप ही हैं।

मैं आपकी जीवनी भी लिखने को उत्सुक हूँ। एक बार आपके द्वार पर पहुँच कर नोट चुराऊँ। क्या आप मुझे दो चार दिन, इस काम के लिए अपने यहाँ ठहरा सकेंगे? यदि सम्भव हो तो प्रोग्राम बनाऊँ?

८-१०-५२ भवदीय, रामचरण महेन्द्र

(राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का पत्र)

श्रद्धेय शास्त्रीजी

आप जिस [illegible] पधारकर हमें अपने आतिथ्य से सम्मानित करने [illegible] इस [illegible] में [illegible] उस [illegible] था [illegible] आपका [illegible] उसी समय आपसे क्षमा प्रार्थना [illegible] कुमार से इसे आदर [illegible] करता हूँ। [illegible] और [illegible], आप [illegible]

[illegible]

१८ [illegible] आपका, मैथिलीशरण

([illegible] आचार्य [illegible] मेरा [illegible] मित्र [illegible] से [illegible] करना [illegible] है, परन्तु माता पिता [illegible] विवाह की आज्ञा [illegible] है। [illegible] आप माता पिता [illegible] और [illegible] का निवारण करने [illegible] क्योंकि [illegible] विवाह [illegible] पर आत्म[illegible] करने के लिए [illegible] है। [illegible] और [illegible] अपने माता पिता को समझाकर उनकी

अनुमति से ही विवाह करने मे बधना चाहते है। उसी मित्र का यह दूसरा पत्र हे)
आदरणीय शास्त्राजी, सादर वद।

आपके पत्र का पान के बाद मेने उसके माता पिता को मनाने का प्रयत्न किया और आपको यह सुनकर प्रस नता होगी कि आपके अकाट्य प्रमाणो को सुनकर उसके माता पिता उसी लडकी के साथ विवाह करने को तयार हो गए। लडकीके माना पिता पहले से तयार थ। अभी पिछले दिनो दोनो की सगाई हो गई हे। शहर म इस बात की काफी चचा रही। कईया ने तो राम और सीता के सगोत्र होने की बात सुनकर कहा कि—वह तो साक्षात् भगवान थे, वह सब कुछ कर सकते थे, उन्होने कइ प्रकार की लीलाए की, हम उनकी बराबरी थोडे ही कर सकते है। अस्तु।

अब उनका विवाह २२ जनवरी १६५७ को हो रहा है। बारात फाजिलका से मोगा जाएगी। लिखते हुए झिझक होती हे आप हमारी प्राथना स्वीकार करग या नही, हमारी यह इच्छा है कि आप हमारी इस छोटी सी बारात मे सम्मिलित होकर अनुगृहीत कर। मरी ता यह हार्दिक इच्छा है कि सप्तपदि के समय आपका वरद् हस्त वर वधु के शीश पर हो और आपका शुभ आशीवाद उन्हे प्राप्त हो। मे भगवान् शकर स प्रार्थना करता हूँ कि वह हम इस अवसर पर आपकी सेवा करने का अवश्य अवसर द, जिससे कि वर वधु आपका आशीवाद प्राप्त कर सके।

२२ १२ ५६ —भवदीय, रामस्वरूप आत्रय

(गोस्वामी तिलकायत श्री १०८ श्रीगोविन्दलालजी महाराज नाथद्वारा का पत्र)
परम आदरणीय श्री शास्त्री जी,

आपका पत्र दिनाक २३—७—५७ का यथा समय प्राप्त हुआ। खेद केवल इतना ही है कि आपसे कुछ थोडे समय के लिए भी विचार विमश न हो सका, ताकि मुझे भी थोडा बहुत आप जसे विद्वान् और विचारक और सफल लेखक से किंचित् मात्र ज्ञान प्राप्ति का सुअवसर प्राप्त हो सकता। खर, यह तो में सौभाग्य समझगा कि जब भी कभी आप बम्बई आने का कष्ट करे तो अवश्य ही मेरे ही अतिथि बल्कि, अतिथि हो क्यो, हमारे परिवार के एक सदस्य होकर रहे और इसमे मुझे वास्तव मे हार्दिक प्रसन्नता हो होगी।

अगले वष जब मैं मसूरी से वापस लौटा और कुछ दिनो के लिए देहली मे ठहरा था, उस समय मुझे माननीय राष्ट्रपति महोदय से मिलने का भी लाभ मिल गया था। वसे राष्ट्रपति महोदय एक बहुत ही सज्जन और धार्मिक व्यक्ति हे। वे सन १६५१ मे नाथद्वारा श्रीजी के दशनाथ भी पधारे थे। उस समय भी मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अब भी जब भी कभी मुझे अवसर मिलेगा, मुझे उनसे मिल कर हार्दिक प्रसन्नता होगी। आप जसे विद्वान् के लिए साहित्य को मेरे जसा अल्प-

बुद्धिजीवी क्या देख सकता है ? हां मैं आपको उसको समझाने का प्रयत्न अवश्य करूंगा। यदि उसमें आपका किसी भी रूप में सहायक हो सका तो मैं अपने को गौरवान्वित समझूंगा।

मेरे विवाह पर आपको निमन्त्रित न करने की शिकायत आपकी बिलकुल सही है, किन्तु उसमें मेरा उतना दोष नहीं है। क्योंकि उस समय नाथद्वारा ठिकाने पर उदयपुर रियासत का दबदबा था और उन्हीं की मुलाजमात यानी कोर्ट आफ वार्ड का प्रबन्ध था। वरना आज की अवस्था में ऐसी भद्दी और असभ्यता या धृष्टता के व्यवहार की आशा आप मुझ जैसे व्यक्ति से कभी स्वप्न में भी न करें। मैं कम से कम उन व्यक्तियों की श्रेणी का नहीं हूँ जो कि मुंहदेखी चापलूसी किया करते हैं, बल्कि मैं यह कह सकता हूँ कि मेरे में जितनी भी साहस स्वाभिमान और स्पष्टवादिता या निःसंकोच किसी स्पष्ट बात को कह देने की क्षमता या योग्यता प्राप्त हुई है, तो वह आपके लिखे हुए ग्रन्थों के अध्ययन से ही यह वरदान प्राप्त कर सका हूं। मैं एक तरह से आपको अपना गुरू मानता हूँ। आपको स्मरण होगा कि कि जिस समय शायद सन १९४३ या १९४४ में आप काकरोली आए हुए थे, महाराजश्री का इलाज करने के लिए, उस समय कुछ दिनों के लिए नाथद्वारा में भी रहे थे और मेरा और मेरी बड़ी बहिन का, जो कि आजकल बड़ौदा रहती हैं, इलाज किया था। मैं अब तक उस 'आंवले का मुरब्बा' और 'चटनी' का स्वाद भूला नहीं हूं। उसी समय में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विशारद की परीक्षा की तयारी कर रहा था और आपने मुझे … और … प्रसाद द्विवेदी जी और श्रीजयशंकरप्रसाद की रचना 'आंसू' का समझाने और पढ़ाने का श्रम लिया था, यह मुझे आज भी अच्छी तरह से स्मरण है। इसलिए मेरा और आपका आज से ही नहीं बल्कि, एक बहुत लम्बे समय से अपना गुरु शिष्य का सम्बन्ध चला आ रहा है। मैं तो अब भी विद्यार्थी अवस्था में ही हूं और चाहता हूं कि अपने आगे बचे हुए शेष जीवन में आप जैसे गुरुजनों से … प्राप्त कर सकूं, ताकि … और वर्तमान न सुधर सका तो कम से कम अपना भविष्य तो सुधार लूं। यही तो अवसर है, यदि अब भी न चेता तो … । पत्र … लम्बा … जा रहा है। आपको अधिक कष्ट देना मैं उचित नहीं समझता। मेरी धर्मपत्नी और बहिनजी का भी आपकी श्रीमतीजी से … मिलने … बना हुआ है। देखिए, फिर जब कभी प्रभु इच्छा होगी, तब यह सुअवसर मिलेगा ही।

२५ ७ ५७ आपका ही, ति० गोविन्द गोस्वामी

(अध्यक्ष हिन्दी भवन … … का पत्र)

प्रिय … भाई,

आप … आ रहे हैं, यह हिन्दी भवन के लिए बड़े ही हर्ष की बात

है। कृपया तिथि और गाड़ी की हमें सूचना दें ताकि हम स्टेशन पर आपको मिल सकें, जिससे आपको कोई असुविधा न हो। आप बोलपुर स्टेशन उतरेंगे। यदि हमें सूचना न दे सकें तो आप बोलपुर से रिक्शा लेकर शांतिनिकेतन चले आवें और हिन्दी भवन आजाइएगा। हमारा समझ में कार्ड न कोई २७, २८ तारीख को अवश्य मिल जावेगा। गाड़ी पत्र आर और आप हमें इसका हम सुअवसर प्रदान करें। पत्र दिल्ली भी भेजा है। कृपया यह सूचना पहिले दे सकें तो कृपा होगी कि आप कितने दिन हमें दे सकेंगे, हम एक छोटीसी सभा करना चाहेंगे जिससे हमारे विद्यार्थीभी आपका दर्शन कर सकें।

२८.१.५७ —भवदीय, रामसिंह तोमर अध्यक्ष, हिन्दीभवन

(राजर्षि जनक स्मृति समारोह पर भेजा गया अभिनन्दन)

महाशय,

राजर्षि जनक स्मृति समारोह का आयोजन निस्सदेह एक सांस्कृतिक आयोजन है। मिथिला का विदेह वंश सूर्यकुल की वह शाखा है कि जिसने केवल राज्यों को ही जय नहीं किया, अपितु भारत को दार्शनिक और तत्व सम्बन्धी उपनिषदों का गुरु ज्ञान प्रदान किया है। ऋषियों के गुरुपद का स्थान प्राप्त करने का श्रेय तो इतिहास में मिथिला ही के विदेह राजर्षियों को है। इस सुन्दर आयोजन के लिए मेरा हार्दिक अभिनन्दन ग्रहण कीजिए।

१०.२.५८ —भवदीय, चतुरसेन

(नगर ... गार, जबलपुर का पत्र)

पूज्यवर प्रणाम,

साप्ताहिक हिन्दुस्तान में साहित्यकार और सरकार के सम्बन्ध में आपने जो विचार प्रकट किये हैं, वे अत्यन्त समीचीन और विचारणीय हैं। एक दिन हम कई साहित्यिक मित्र भी यही विचार कर रहे थे कि साहित्यिकों को प्रदानकी जानेवाली सरकारी उपाधियों में कहीं न कहीं 'साहित्य' शब्द का समावेश अवश्य होना चाहिए और उपाधि वितरण का मापदण्ड ... ही होना चाहिए। हिन्दी में अनेक ऐसे साहित्यिक हैं, जिनका सारा जीवन शुद्ध साहित्य साधना का जीवन रहा है। वे एक एकांत तपस्वी की भांति साहित्य की रचना कर रहे हैं। परन्तु आज उन्हीं साहित्यिकों को राजकीय सम्मान, सहायता या पुरस्कार प्राप्त होते हैं, जो किसी न किसी रूप में राजनीति में सम्बन्ध स्थापित किये हुए हैं या जो अपने साहित्यिक नेतृत्व की धाक दिल्ली तक पहुंचा पाते हैं। उदाहरण के तौर पर लीजिए, बनारसीदास चतुर्वेदी की तुलना में यहां माखनलाल चतुर्वेदी अथवा पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की साहित्यिक सेवायें क्या किसी तरह कम हैं। सच पूछा जाय तो चतुर्वेदी जी तो एक पत्रकार हैं, उनमें मौलिक कृतित्व की क्षमता रही है। परन्तु इतने समय से वही एक राज्य सभा से चिपके हुए हैं

ओर हमार ि्दी साहित्य गम्मेनन के भूतपूर्व सभापति ओर हि दी के गण्यमान नाम्य कार सेठ गाविन्दास जो भी यह मत्र देख रहे है।

३० ८ ५८ - आपका, नमदाप्रसाद खरे

(पाठका के पत्र)

मा यवर आचाय जी सादर नमस्त,

१२ अगस्त सन् १९५६ ई० क 'साप्ताहिक हि दुस्तान क विचार विमश स्तम्भ म आपके द्वारा की गई एक आलाचना पढ़ी थी। उसका शीषक था 'क्या कोरव पाण्डवो की कथा कपोल कल्पित है?

इसके पश्चात् २४ सितम्बर ५६ क इसी पत्र म प० गिरिधर शमा द्वारा दिया गया उसका उत्तर भी पढ़ा, जिसम कई बात तो सगत जान पडी ओर कई बात दकि यानूसी ढग की था, जिनका निराकरण होना उचित प्रतीत होता है। पर अभी तक उसका समुचित उत्तर देखन म नही आया।

आपकी अपनी विचार धारा भी प्रौढ है, जिसकी पुष्टि 'वशाली की नगर वधू' और वयरक्षाम' जस उप यासा म हुई है। पता नही इतन दीघ काल तक आपकी लखनी कस शात रह सकी।

३ ८ ५७ —आपका एक प्रिय पाठक

आदरणीय शास्त्री जी जयहिद,

आपका साप्ताहिक उप यास तथा समय।नुकूल अनक लख पढ़। आज भारत के द्वारा श्री महेद्रप्रताप नग दिया। कलम क वनी आपन उस महान यक्ति के बाबत आवाज उठाई म हि दी श दो म आपक प्रति आदर व्यक्त करू, यह सम्भव नहीं। कृपया जीवन म आप यह महान् उत्तरदायित्व निबाह प्राथना है। अपन बाबत १८ वर्ष अखिल भारत चरखा सघ म काम करत हुए ४८ म मुक्त हो गया। गा धी विसजन क बा नीति लगी उनके वशी सन की म मालूमी की तरह नीति मतभेद के कारण फसा गया, बचपन स अशान्ति को लगा है। अनक बार अनेक संघ ठनाएं म त्याग करता रहा। आज दुःख है कि नीति स भ्रष्ट हो गया और लाभ से आप सबका अध्ययन कर रहा हूँ। गुजर क लिय दूरी फटी सारी का काम करक सिर्फ दो वक्त के लिये खाना भी कभी १ नही जुटा पाता। दिल्ली अनक बार आया, दुभाग्य स न मिल सका। शहादरा भी आया था। प्रणाम।

५ १ ५७ विनम्र, दीपचन्द जन

मा यवर श्रीआचायजी,

मेरी क्या हस्ती है यह लाभ मेरा, जो आपस पत्र व्यवहार करूँ। क्षमा करेंगे यह आशा है।

[illegible] (मयस्थान तक) १२२ ग्रंथ निकल चुके है। लेकिन मेरे [illegible] आपको ज्ञानग्राम प्रतिष्ठान की दिव्य प्रभा का काम किया [illegible] आपके 'भारतीय सस्कृति का इतिहास' का पता [illegible] कितना व कान कौन सा यह सूची मे देखा।

[illegible] पुजारी है, उन का कृतिया का। यह दो कृतिया मेरे लिए चन्द्र और सूरज है। [illegible] पाखण्डी, धूर्त, जालिम, बईमान, नवश भले ही इनका स्वागत [illegible] रही है। कुछ होने जा रहा है जरूर।

[illegible] प्रकाश की ओर ले जाने वाली यह आपकी दो कृतिया [illegible] सामने आती है और अर्जुन के समान घबराकर कर्त्तव्य से [illegible] आन्तरिक दिशा दिखाकर रास्ते से लगाती है। आपकी यह [illegible] विश्वास है और मै चाहता हू कि मेरे भारत मे आपके जसे [illegible] आचार्यजी, राहुलजी, भगवतशरण उपाध्याय, इनके जसे [illegible] उसमे अधिक आयु मिले। ताकि देव धर्म के व्यापारियो से [illegible] समाज की [illegible]।

[illegible] और एक काम करोगे। प्रलय काल से ववस्वत मनु पुत्री इला [illegible] आपने छोडा ही है, अब जरा और आगे भी ले चलो [illegible] अधबिच न छोडो। अपूर्ण मत रखो! महाभारत [illegible] मजिल नही आएगी। पाप का घडा फूटेगा नही। आपका [illegible] पूरा [illegible] होगा। [illegible] कुरुक्षेत्र तक तो ले चलो।

[illegible] पूरा होगा। आपका उत्तर आएगा और उसमे होगा—हा [illegible]?

[illegible] —गणपत गोरे 'सुधीर'

([illegible] श्री व्रजभूषणलालजी महाराज काकरोली का पत्र)

[illegible],

[illegible] नही मिला है और सम्भव है आप यहा के कुछ ऐसे [illegible] भी हो। किन्तु मेरा आपसे यही आग्रह है कि यहा के [illegible] आप पूर्ववत् ही व्यवहार रक्खये। यहा से जो कुछ त्रुटिया [illegible] हमारी परिस्थिति को, जब मिलूगा रूबरू म ही [illegible] मुझे बहुत आलकस है पर अब आपको जल्दी जबाव दे दिया [illegible] मथुरा जाने का चल रहा है, यदि निश्चित हो जायगा और [illegible] मथुरा जाऊगा तो समय निकालकर अवश्य ही दिल्ली आने का और [illegible] करूँगा। मेरी यही एक इच्छा है कि जो कुछ आपके मन यहा

और हमारे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति और हिन्दी के गण्यमान नाट्यकार सेठ गोविन्ददास जी भी यह सब देख रहे है।

३० ८ ५८ —आपका नर्मदाप्रसाद खरे

(पाठकों के पत्र)

मान्यवर आचार्य जी सादर नमस्ते,

१२ अगस्त सन् १९५६ ई० के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के विचार विमर्श स्तम्भ मे आपके द्वारा की गई एक आलोचना पढी थी। उसका शीर्षक था 'क्या कौरव पाण्डवों की कथा कपोल कल्पित है?'

इसके पश्चात् २९ सितम्बर ५६ के इसी पत्र म प० गिरिधर शर्मा द्वारा दिया गया उसका उत्तर भी पढा, जिसमे कई बाते तर्कसंगत जान पडी और कई बाते दकियानूसी ढंग की थी, जिनका निराकरण होना उचित प्रतीत होता है। पर अभी तक उसका समुचित उत्तर देखने म नही आया।

आपकी अपनी विचारधारा भी प्रौढ है जिसकी पुष्टि 'वैशाली की नगर वधू' और 'वयरक्षाम' जैसे उपन्यासो म हुई है। पता नही इतने दीर्घ काल तक आपकी लेखनी कैसे शान्त रह सकी।

३ ८ ५७ —आपका एक प्रिय पाठक

आदरणीय शास्त्री जी जयहिंद,

आपका धारावाहिक उपन्यास तथा समयानुकूल अनेक लेख पढे। आज भारत के द्वारा श्री महेन्द्रप्रताप नेपथ्य में गया। कलम के धनी आपने उस महान व्यक्ति के बाबत आवाज उठाई म किन शब्दो म आपके प्रति आदर व्यक्त करूँ, यह सम्भव नही। कृपया शेष जीवन म आप यह महान् उत्तरदायित्व निबाहे, प्रार्थना है। अपने जीवन १८ वर्ष अखिल भारत चरखा संघ म काम करते हुए ४८ म मुक्त हो गया। गांधी विचारों के बावजूद गांधी एकी उपाधि... बहुत मनसवी थी, तरह नागरिक ... कारण कहा गया, ... 'शक्ति की' ... बार बार अनेक बार कारागृह म व्यतीत करता रहा। ... जेल म क्षुब्ध रह गया और ... आप सबका ... कर रहा हूँ। गुजर के लिए टूटी फूटी खादी का काम करके सिर्फ दो वक्त के लिए खाना भी कभी २ नही जुटा पाता। लिखना अनेक बार आया, दुर्भाग्य से न मिल सका। शहादत भी आया था। प्रणाम।

५ १ ५७ —विनम्र, लोपचन्द जैन

मान्य शिवपालसिंह जी,

... बडा ही है यह तो मेरी, जो आपसे पत्र व्यवहार करूँ। क्षमा करेगे यह आशा है।

गाज ाक गाप। (ययरत्नाम तक) १२२ ग्रथ निकल चुके है। लेकिन मेरे अपना भाग ग भर गा म आपकी ज्ञानग्राम प्रतिष्ठान की दिव्य प्रभा का काम किया ता उग ११२ग्र ग्र । ा। मा करता आपक 'भारतीय संस्कृति का इतिहास' का पता ता म चला। जब आपका प्रकाशन कितना व कान कौन सा यह सूची मे देखा।

खर, म ता पुजारी हूँ, न ा कृतियो का। यह दो कृतिया मेरे लिए चन्द्र और सूरज है। आपका चाहे पाखण्डी, धूत जालिम, बईमान, नवश भले ही इनका स्वागत न कर, ानि अब ढा न रही है। कुछ हाने जा रहा हे जरूर।

अ कार ा आर म प्रकाश की ओर ले जान वाली यह आपकी दो कृतिया सन्गाि या ता दश पाप सामन नाती है ओर अजुन क समान घबराकर कत्तव्य से न ा ा मा ा वास्तविक दिशा दिखाकर रास्ते से लगाती है। आपकी यह ता पू ा प ा। सभ विश्वास है और मे चाहता हूँ कि मेर भारत मे आपके जसे ो सा ि यन निमाग ान ा आचायजी, राहुलजी, भगवतशरण उपाध्याय, इनके जसे ि ार प्रचार ा ा उमम अधिक आयु मिले। ताकि देव धम के व्यापारियो से मुक्त समाज की रक्षा ता विन।

ताक ाजो! मरा और एक काम करोगे। प्रलय काल से ववस्वत मनु पुत्री इला ा ग राम ता नाकर ता आपन छोडा ही है, अब जरा और आगे भी ले चलो । महाभारत तक ता ा चला! अधबिच न छोडो। अपूण मत रखो! महाभारत ा जब ा ा ा जागाग मजिल नही आएगी। पाप का घडा फूटेगा नही। आपका य । ा ा पूरा ा हागा। ता न चलागे? कुरुक्षेत्र तक तो ले चलो।

प्रा ा! मरा मनारथ पूरा हागा। आपका उत्तर आएगा गौर उसमे होगा—हा ता ग द ा ा ा प्रनाता?

—गरणपत गोरे 'सुधीर'

२८ ।

(ा ा ा ा ा गाग ामी श्री व्रजभूषणलालजी महाराज काकरोली का पत्र)

ाा ा ाा

आपा ा ा ा ा ा ग नही मिला है और सम्भव है आप यहा के कुछ ऐसे ा ा ा ा ा ा ा ा ा मो हो। किन्तु मेरा आपसे यही आग्रह हे कि यहा के ा ा ा ा ा ा ा हो आप पूववत् ही व्यवहार रक्खय। यहा से जो कुछ त्रुटिया हुई है उा ा ा ा हमारी परिस्थिति को, जब मिलूगा रूबरू मे ही ा ा। पत्र ा ा मो मुझ बहुत आलकस है पर अब आपको जल्दी जबाव दे दिया ा। ा ा ा ा ा ा मे मथुरा जाने का चल रहा है, यदि निश्चित हा जायगा और मथुरा जायेगे ता समय निकालकर अवश्य ही दिल्ली आने का और आपस मिलना का प्रय न करूँगा। मेरी यही एक इच्छा है कि जो कुछ आपके मन यहा

के लिए नये भाव आए हों उन्हें निकालकर जैसे पहले भाव थे वैसे ही रक्खें।

१८-१-३८ ई०   —गो० श्रीव्रजभूषण शर्मा कांकरोली

(श्रीमहाराज गोस्वामी श्रीव्रजभूषणलालजी, कांकरोली को लिखा गया 'सोमनाथ' समर्पण विषयक पत्र)

श्रीमहाराज,

जिस प्रकार आप अपने देवता के पुजारी हैं, उसी प्रकार मैं प्रथम दर्शन ही से आपका पुजारी रहा हूँ। पर मैंने कभी भी अपने भाव प्रकट नहीं किए, प्रच्छन्नभावना ही में मेरी निष्ठा रही है। परन्तु इस बार मैंने आपमें सच्चे देवत्व के दर्शन किए। शाश्वत, अक्लान्त, अश्रान्त, स्थितप्रज्ञ, निस्पृह और निर्गुण। अभिनन्दन करना चाहता हूँ, आपका और आपकी उस गरिमा का भी। पर मुझ [illegible] के पास शब्द नहीं।

अब मैं बहुत थकित हो गया हूँ। शरीर [illegible] समझता हूँ। नहीं जानता अब कभी कांकरोली की भूमि स्पर्श कर सकूँगा या। इसलिए अब आपकी पूजा तो होनी ही चाहिए जितनी देर हो रही है ब्याज बढ़ता ही जाता है। वैसे मैं पक्का नादिहन्द हूँ, लेकर पीछे देना जानता नहीं। इससे जीवन पर जिस-तिस का ऋण ही चढ़ गया है। फिर प्यार का ऋण तो मुझे भारी ही बन रहा है। बहयाई को दाद दीजिए दुनिया गवाह है कि फिर भी मैंने कितना हास्य बखेरा है। हाँ, आँसू भी हैं, पर वे मेरे अपने लिए हैं [illegible] उनमें [illegible] कम नहीं हैं, इतना है कि बाहर आते ही तो [illegible] जाय। कमजोर हो गया [illegible], [illegible] बार दुरूह पड़ते हैं। देखना चाहो तो 'अपराजिता' में [illegible], [illegible] आप स्थितप्रज्ञ हैं।

[illegible], पूजा की बात कह रहा था, आपने स्वीकार [illegible], आप्यायित हुआ। 'सोमनाथ' गत २२ [illegible]

[illegible] पूज्य पूजा [illegible]

१-८-५२   आचार्य चतुरसेन

(ओरछा [illegible] का पत्र)

प्रिय [illegible]जी प्रणाम।

[illegible] पत्र मिला। अनेक [illegible]वाद। उसका उत्तर यथासमय शीघ्र न दे सका। [illegible] कारण यह हुआ कि आपका टीकमगढ से फिरता [illegible] मिला। यहा पर मै महारानी साहिबा और मेरी बच्ची को लेकर उनको [illegible] आया हुआ हूँ। [illegible] आज ढाई महीनेसे टाइफाइड ज्वरसे पीडित है। [illegible] परमात्मा [illegible] तबियत अच्छी है। यहा पर एक सप्ताह और [illegible] जाऊगा। वहा पहुँचने पर मै आपको सूचित करूँगा। तब [illegible] कृपा करिएगा। आपसे भेट करके मुझे बडी ही [illegible] लाभ ही होगा।

[illegible] — आपका, वीरसिहदेव

([illegible] रायपुर, [illegible] तीन पत्र)

प्रिय [illegible]जी,

[illegible] पत्र प्राप्त हुआ। पढकर परम प्रसन्नता हुई। भला, आप [illegible] सुपरिचय से किसे प्रसन्नता न होगी?

[illegible] आपके नाम से चिरकाल से परिचित हूँ और इसका सर्वप्रथम सुपरिचय देने [illegible] है। मुझे आपकी निर्मित पुस्तको, सम्पादित पत्रो और लि[illegible] सौभाग्य प्राप्त हो ही जाता है। मुझे आप जैसे समयदर्शी अनु[illegible] वार्तालाप से, यही नही उनकी अपरिचयावस्था मे भी अनु[illegible] गरिमा [illegible] पठन तथा श्रवण से परमाह्लाद होता है। मैं अपने [illegible] समझूगा, यदि आप तदानुकूल साक्षात्कार से अनुगृहीत करेगे।

[illegible] स्वर्गीय मित्र महाराज चन्द्रशमशेर जगबहादुर महोदय की पौत्रियो [illegible] मे भी सचिन्तित हूँ और इस विषय मे प्रयत्न [illegible] समूचित करूँगा।

१९ ९ ३? —भवदीय, स्नेहभाजन, गोविन्दसिह, रायपुर

प्रियवर [illegible]जी सादर प्रणाम,

[illegible] कुशल [illegible] नही, आशा है आप सर्वथा आनन्दमय [illegible] होगे।

आपकी [illegible] पुस्तक, '[illegible] यादपत्र और अमीरो के रोग' इस समय मेरे सामने है। [illegible] देखकर आपको यह पत्र सम्प्रेषित करने की स्मृति हो आई है। आपके प्राय सम्पूर्ण ग्रन्थो के आराम मे विचरण करते करते विराम करने की सुतराम कदापि इच्छा नही होती। वास्तव मे ग्रन्थ वाटिका के सरस, सुन्दर, चित्ताकर्षक, सदभ

सुमनों का सौरभ सुमनों के मन को भी समर्पित प्रमुदित करने वाला क्यों न हो ? सामाजिक धार्मिक एवं राजनैतिक कार्य जो अन्तःकरण से अन्तःकरण [illegible] वे कार्य-कलाप श्रीचतुरसेन से होते है, [illegible] मुझे हर्ष [illegible] है। परमात्मा से प्रार्थना है आपकी इस प्रतिभाशक्ति को प्रतिदिन [illegible], एवं वर्तमान में आपकी साहित्य सेवा द्वारा यह शक्ति युगपरिवर्तनकारी हो।

१३ १ ३३ — भवदीय, गोविन्द सिंह, रायपुर

प्रिय महोदय,

श्रीठाकुरसाहब रायपुर के आदेशानुसार यह पत्र आपकी सेवा में लिख रहा हूं।

आपके पूज्य श्वसुर श्री [illegible] की घनिष्ठ मित्रता है और आपसे भी [illegible] श्रीमान [illegible]। आपकी रचित पुस्तकें भी श्रीमानों के पास हैं। श्रीमान ठाकुर साहब रायपुर आपकी अनुपम हिन्दी लेखन कला [illegible] की भूरि भूरि प्रशंसा किया करते है, [illegible] अंग्रेजी भाषा [illegible] पूर्ण विद्वान व व्रजभाषा [illegible] और [illegible] जानकारी प्राप्त करना चाहते है। [illegible] पद्य व व्रजभाषा के [illegible] उप[illegible], [illegible] रायपुर [illegible], [illegible], अजमेर [illegible]।

[illegible] — भवदीय, [illegible] प्राइवेट सेक्रेटरी

(राजा [illegible] प्रताप [illegible])

प्रिय श्री [illegible] जी,

[illegible] करना [illegible] चार मई [illegible] जाऊंगा।

१८ [illegible] — प्रेम म[illegible]द्र प्रताप

(महाराज शिवगढ के दो पत्र)

प्रिय शास्त्री जी,

एक तार मैंने आपको २३ मई को दिया था कि शहादरे मे स्टेशन पर मुझसे मिल लीजिए, मगर वहा आप नही मिले। दिल्ली पहुँच कर मै सीधे मद्रास मेल से मद्रास के लिए रवाना हो गया। वहा से त्रिवन्नामल्लई मे रमरण महर्षि के दर्शन करते रामेश्वर और जगदीश होते हुए ६ तारीख को शिवगढ पहुँचा। यहा आकर दो दिन मुतवातिर आम खा लिया। इसलिए हाजमा बेहद खराब हो गया। अब तक परेशान रहा आज कुछ बेहतर हूँ, इसी से मेरी अनुपस्थिति मे आपके आये हुए पत्र का उत्तर न दे सका।

२० ६ ३५ — भवदीय, बरखण्डी

प्रिय श्री शास्त्री जी,

आपका पत्र मिला था जिसका उत्तर मैने तार द्वारा दिया। किन्तु मुझे आपका उत्तर देर मे मिला, जिसका उत्तर देना न देना बराबर था, क्योकि आप नियत समय पर किसी प्रकार पहुँच नही सकते थे। आपकी 'वैशाली की नगरवधू' मिली। मेरी श्री नेहरू की स्नेह भेट पर दृष्टि रुक गई। इससे बेहतर भेट आप श्रीनेहरू को दे ही क्या सकते थे।

सत्य तो यह है कि ऐसी किताबी भेट न मैने देखी है न सुनी है।

६ ३ ४६ —भवदीय, बरखण्डी

(एक राजकुमार पाठक का पत्र)

श्रीयुत शास्त्री जी सादर करबद्ध प्रणाम,

मुझे आज यह मौखिक ही समाचार मिला कि 'वैशाली की नगरवधू' पुस्तक पर आपको १०००) रु० का पुरस्कार उत्तरप्रदेश सरकार की ओर से प्राप्त हुआ है। सुनते ही मै इतना आनन्द विभोर हो उठा, कि यदि आप विश्वास करे तो मै कहूगा कि कुछ समय को मै यह निर्णय न कर पाया कि अपने को बधाई दू अथवा आपको यही से भेजू।

आप आश्चर्यचकित होगे मेरा पत्र पाकर। यह मेरा प्रथम प्रयास है आपको कुछ लिखने का। यह पत्र नही वरन प्रेम से ओतप्रोत आनन्दाश्रु के कुछ छीटे है। इन्हे स्वीकार कीजिए। पहले मै क्या लिखू और क्या पीछे कुछ कह नही सकता। प्रसन्नता मे पागल हूँ न। हर्षातिरेक से नाच रहा हूँ। मेरे विचार स्वय इस समय शृंखलाबद्ध नही है, मेरे जीवन की भी एक भी कडी शृंखलामय नही है, तो मेरे भाव कहा मे होगे। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

मैने आपकी प्रथम कहानी पढी थी 'दुखवा मै कासे कहूँ मोरी सजनी।' तभी उत्सुकता हुई थी आपके प्रतिभा के प्रति। 'वैशाली की नगरवधू' जब से पढा, मेरी

ब.त सी मानसिक गुत्थियों का समाधान हो गया, परन्तु तृप्ति न हुई। यदि आप इसे Exaggeration न समझें तो मैं कहूँगा कि लगता ऐसा है कि आप लिखते रहें और मैं प्रत्येक वाक्य, शब्द, अक्षर, बिन्दु तक के विचार आदि सार के सम्मुख शा के पूर्व ही जान लूँ। अवश्य यह मेरा आदर्श समझा जाना चाहिये। मेरा यह गुण स्वाभाविक है।

२६ ४ ५२ विनीत, हरिओम

(डा० गयाप्रसाद एम० ए०, डी० लिट्० आदि का पत्र)

पूज्य आचार्य जी,

आपका प्रेमभरा पत्र मिला। धन्यवाद। मैं आपको आचार्य व आदर्श करता हूँ जिनका कोई अग्रज या इस सम्प्रदाय का। बाबू साहब जी जब जब गया तभी मिले, और मैं महात्मा जी को भली प्रकार जानता। फिर इधर उनका स्वर्गवास हो गया है और फिर भी याद आ जाते हैं। यह प्राप्ति उनसे नहीं होती। यह निराशाजनक है। समय आपको बता देगा कि अपने लिए नहीं बने। जब आप स्वयं जानते हैं फिर मुझसे कोई भी बात छिपी है। उस रूखी सूखी रात में जो आपने कहा है यह तो मैं सोचता हूँ, फिर आपकी उपस्थिति का महत्त्व और ही था। मैं जब सप्ताह भर के लिए दिल्ली आऊँगा, तब अवश्य आपकी उपस्थिति होगा।

६ १२-४६ आपका विनीत, श्यामलाल

(रामनरेश त्रिपाठी का पत्र)

प्रिय शास्त्री जी

आपका पत्र और आपकी सुन्दर रचना मिली। मैं उसे पढ़कर आनन्दित हुआ और मन में सोचता हूँ। आपका प्रेम आमन्त्रण भी मिला। फिर कभी भेजूँगा। आशा है आप स्वस्थ होंगे।

आप आशावादी हैं, भावुक हैं, और मनुष्यता से भरे हैं—यह गुण आपका मिला है।

१२ ५७ विनीत, रामनरेश त्रिपाठी

प्रिय शास्त्री जी,

नमस्कार। आपका पत्र मिला। कार्डों में मुझे मिल गया था। उत्तर के लिए समय नहीं मिला था। आपने जो भेजा था, उसको देखते ही मुझे ज्वर आ गया। मैं बीमार हो गया। डाक्टरों ने बताया गया। मुझे बाहर और भीतर बहुत मार पड़ी। मैं उठ भी न सका। मैं भी पराधीन हो गया। बाबू मिश्र बटिया जी को

गवर नगी ना न ा। अपना नाक्टर भेजकर उसके साथ मुझे बम्बई बुलाकर अस्पताल म भरती ।रा ि्या। उपचार ठीर हुआ और हाथ तो करीब करीब बिलकुल ठीक ही हो गया। पैर ग भी गाथरूम जाने लगा हूँ, पर ज्वर नही गया। रोज ९९, १००, १०१ तक र हो जाता ह । साथ ही सिर और पीठ मे बहुत से जोडे भी निकल आये है। डाक्टर ह त ह, ाओ की गरमी से ऐसा हुआ है। बिटेमिन बी, बी१ के इजेक्सन तीसर ि न लग त ह । दिन भर पडे रहने के सिवा कोई काम नही। अस्पताल से मुझे नर्नदिया जी अपनी कोठी म, जो समुद्र तट पर है, उठा लाये ह । मेरा यह हाल है। अब जीवित बचकर आया तो आपकी बताई दवा का उचित रीति से सेवन करूँगा। श्रीमती जी को नमस्ते। आप सपरिवार स्वस्थ और प्रसन्न होगे।

बम्बई, ३ ५ ५७ —आपका, रामनरेश त्रिपाठी

(हि ी क प्रसिद्ध उप यासकार सन्हैयालाल ओझा, कलकत्ता के दो पत्र)

पूज्यचरण श्री शास्त्री जी,

वयरक्षाम के ग्र थि मुक्ति समारोह पर उपस्थित हो सकने का अवसर तो अब नही रहा, कि तु यदि होता तो यह मेरी एक तीर्थ यात्रा हो जाती। वयरक्षाम, की प्रतीक्षा यदि कोई अ य व्यक्ति मुझ जसी तीव्रता स कर रहा हो तो मै उसे अभिनन्दन देना चाहूँगा। आपको शायद स्मरण होगा कि जब आपने उसे लिखना प्रारम्भ किया था, तभी मुझे उससे परिचित होने का सौभाग्य मिल गया था। फिर जब उसके पहले फर्मे का प्रूफ आया तब भी सयोग ने मुझे दिल्ली उपस्थित कर दिया था। ग्रन्थि मुक्ति अवसर पर मै स्वयम् चेष्टा करके उपस्थित हो जाता, यदि समय पर सूचना मिल जाती। दुर्भाग्य मेरा। कितनी उत्कट इच्छा है कि कब दो चार दिन आपके साथ ही रहकर बिताने का अवसर मिले।

अपनी प्रतिभा तथा अध्यवसाय से आपने हि दी साहित्य को एक नई दिशा दी है, और इस ग्र थ की ग्र थि मुक्ति के साथ, मै समझता हूँ, हिन्दी के उप यास साहित्य का एक नया ही पृष्ठ उन्मोचित हुआ है। आपकी इस छियासठवी वर्ष ग्र थि-उन्मोचन के अवसर पर मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा, और मेरी इस प्रार्थना के साथ मेरी पत्नी, बच्चे सभी सम्मिलित है कि यह दिन भी आपके जीवन ग्रन्थ का एक अभिनव पृष्ठ हो, और ऐसे कितने ही पृष्ठ आपके ग्र थो की पृष्ठ सख्या के समान ही हिन्दी साहित्य का और हमे पढने को मिलते रहे। मेरे शत-शत अभिन दन।

३० ८ ५५ —विनयावनत, स हैयालाल ओझा

आदरणीय शास्त्री जी,

इस हि दुस्तान' से और भी सूचनाएँ मिली ह । एक तो यह कि आप जोडो की वजह से अस्वस्थ ह । गई बार जब हमने आपके दर्शन किए थे तब तो यह शिका

यत [illegible] । [illegible] पुरा [illegible] । [illegible] रही [illegible] और अब आप पुनः [illegible] । [illegible] सूचना यह है कि आप [illegible] 'सांस्कृतिक इतिहास' [illegible] । इसके प्रकाशन की क्या व्यवस्था हो रही है ? [illegible] बाजार में [illegible] ? आप जानते हैं [illegible] यह पुस्तक [illegible] । [illegible] आपके 'ब्रह्मचारी' [illegible] की चर्चा चली । चर्चा का विषय [illegible] 'संस्कृति [illegible] । [illegible] स्वीकार किया कि 'ब्रह्मचारी' [illegible] । [illegible] और भी उनका [illegible] आरम्भ किया । [illegible] । इसलिए [illegible] कि 'सांस्कृतिक इतिहास' [illegible] की आवश्यकता है । परन्तु [illegible] अपनी [illegible] जाता [illegible] दूसरा [illegible] कभी सुनाये ?

'खाना और [illegible]' [illegible] १९०० [illegible] । हिन्दी का सौभाग्य है कि उसे आप जैसा [illegible] महारथी [illegible] हिन्दी के हिमायती [illegible] स्वीकार करते हैं [illegible] । [illegible] 'हिन्दुस्तान' में [illegible] और बार-बार पूछती है कि [illegible] समाप्त होगी ?

९-५-५६ [illegible]

(पाठकों के कुछ पत्र)

[illegible] जी,

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

श्रद्धेय शास्त्रीजी,

'इस्लाम के विषवृक्ष' की आलोचना से आरम्भ कर आपकी कहानिया बराबर पढता आ रहा हूँ। 'दे खुदा की राह पर' जो आपकी कहानी है, वह ससार के सर्व श्रेष्ठ कहानियो के समकक्ष स्थान पानेयोग्य है। आज भी रजिया की (शायद यही नाम उस लडकी का था) वह मूर्ति मेरे सामने नाच रही है, वह दृश्य हाथ मे इलायची लेकर आगे बढना। पता नही अब आपने अपने नाम से 'शास्त्री' शब्द क्यो हटाया। हाल के साप्ताहिक हिन्दुस्तान मे—जब हम एक लाख लेकर उनके कूचेमे गए—कितनी सुन्दर कहानी है। आप चिरायु हो और हिन्दी को अपने गुलदस्ता से सजाए चले जाएँ।

२७ ६ ५५ —आपका, एक अपरिचित श्रद्धालु महेशनारायण डाक्टर

(रशीद अहमद का पत्र)

आदरणीय श्रीमान् आचार्य जी,सादर नमस्ते।

आपकी रचना ने मुझे आकर्षित कर लिया है। यदा कदा पत्रिकाओ म जो मिल जाता है उसे पढ लेता हूँ। आपको मै साहित्य निदशक मानता हू। म आपसे सच कहता हूँ मेरे गुरुदेव! कभी कभी मं बहुत परेशान हो उठता हूँ। जब से उर्दू की ओर से म याम ले लिया और हिन्दी का दरवाजा खटखटाया, मेरे मिलने वाले मुझे नाराज हो गए और हर समय ताना कसा जाता है।

आपकी साहित्य साधना अगाध है। एक तपे तपाये साहित्य मदिर के पुजारी है। आप मेरा रहबर बनकर मुझे भटकने से बचाऐ। अल्लाह ने मुझे आपकी पनाह मे भेजा है। मैं हिन्दी कम जानता हूँ। गलतिया माफ करेगे। उत्तर की चाह है।

३ ३ ५६ —आपका ही, रशीदअहमद

(एक वयोवृद्ध मनीषी द्वारा लिखा गया पत्र)

प्रिय चतुरसेन नमस्ते,

११ अगस्त के 'नवभारत टाइम्स' मे निकला कि १० अगस्त को जो दिल्ली के साहित्यिको ने रवीन्द्रनाथ टैगोर का दिन मनाया,उस सभा का सभापति तुम्हे बनाया। बहुत बडी बात। मै तुम्हे बहुत बहुत बधाएे भेजता हूँ। दिल्ली के ये लोग निहायत ही कजरवेटिव पाए। निहायत तगदिल,खासकर तुम्हारे बारे म,अबके उनकी मेहरबानिया और ऐजाज तुम्हारे सिर पर कसे टूट पडा है, यह कोई रहस्य की बात अवश्य होगी।

लडखडाते है कदम जोहद के ओ पीर मुगा,
तोबा अब टूट के गिरने को है मय ख्वारो पर।

जरूर ही वे तुमसे कोई भारी काम निकालना चाहते है या कोई जिम्मेदारी का छप्पर। तुमने भी अपनी इस्पीच खूब झाडी। रवीन्द्र को तुलसी से जा भिडाया। भला उत्तरप्रदेश के या कहीं के भी ये हिन्दीकवि कोरे सत्यग्राम के वासी भला ये रवीन्द्र

को क्या समझ, क्या जाने । कौन हिन्दी कवि रवीन्द्र के ढंग पर कविता करता है या उससे सहायता लेता है । बंगीय ढंग, बंगीय तर्ज, हिन्दी वालों के लिए बहुत दूर की वस्तु है । रवीन्द्र के बारेमें इसी अखबार में एक लेखक ने लिखा कि वे बंकिम के वन्देमातरम् गीत को नापसन्द करते थे । मुझे पढ़कर निहायत आश्चर्य हुआ । शायद वे अपने जन मन गण को ही पसन्द करते होंगे, जिसे एक धोबन भी नहीं समझती । कुजा वन्देमातरम्, कुजा जन मन गण । सनाउल्ला मौलवी के शब्दों में 'कुजा रामराम कुजा हूहू ।' बंकिम महाकवि महामहिमान्वित हुवा । रवीन्द्र उस स्थान को नहीं पा सकता । जो हो, तुमने अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठकर उचित ही कहा ।

१२-८-५३ —हितपी

('जन जीवन और साहित्यकार' के सम्बन्ध में बनारसीदास चतुर्वेदी सदस्य राज्यसभा का पत्रव्यवहार)

प्रिय चतुरसेनजी, सादर प्रणाम ।

कल मैंने श्रद्धेय टण्डनजी को तलाश किया पर उनके दर्शन नहीं हो सके । शायद वे तब तक लौट गये थे । नवीन जी से मैंने जिक्र किया था । सम्भवतः वे आ सकेंगे, पर उनपर निर्भर न रहना चाहिए । १० को मथुरा ब्रज साहित्य मण्डल के लिए वे मधुपुरी चले जायगे । सर्वोत्तम तो यह होगा कि आप और मैं दोनों किसी दिन प्रातःकाल श्रद्धेय टण्डनजी से मिलें । श्री [illegible] जी से [illegible] जिक्र कर दिया है । मेरा ख्याल है कि पहले [illegible] को ही मिलना चाहिए । [illegible] कि [illegible] में व्यस्त हो गया हूँ कि [illegible] हो गया है । [illegible] चाहते हैं, वह तो माउण्ट [illegible] पर [illegible] । [illegible] में शायद [illegible] अग्रसर हो [illegible] । [illegible] जो [illegible] । मैं [illegible] । [illegible] २० [illegible] तक [illegible] । [illegible] मिलना जरूरी है ।

२-१२-१९५२ [illegible]

भाई [illegible]

[illegible] मिल गया । [illegible] हूँ । [illegible] रहा हूँ, [illegible] है । फिर भी [illegible] हूँ । [illegible] और [illegible] । [illegible] और [illegible] है, मगर [illegible] आप [illegible] । [illegible] बनाने का काम आप [illegible] जी [illegible] प्राप्ति [illegible] चाहते हैं । [illegible] मजदूर [illegible] तथा मजदूरी से पकड़ना हमारा काम है ।

१० या ११ को मै भी मैनपुरी जा रहा हूँ। टण्डनजी से तो इसी बीच मे मिल लेना है। जिससे पहली ही बैठक मे कुछ कदम बढ सके। इस मीटिंग को आप सफल बनाने मे जान लडा दे। उपस्थिति बीस से अधिक न हो, कम चाहे कितनी हो, पर आदमी ऐसे हो जो काम मे जुट जाय। विश्वास रखिए–इस सस्था को आप यदि जन्म दे सके तो यह एक असाधारण कार्य होगा।

आप यदि पहले हिन्दी वालो ही को बुलाना चाहते हो तो ऐसा ही करे,परन्तु मेरा विचार है कि चाहे एक एक ही व्यक्ति हो, अन्य भाषा वालो को भी बुलाइए, वरना उद्देश्य की पूर्ति न होगी। हा, अमन साहब को बुलाना न भूलना, तथा मीटिंग २४ दिसम्बर से प्रथम ही बुलानी होगी। काम के मित्रो से आप मिलते रहे, तथा टण्डनजी से समय ठीक करके मुझे सूचित कर दे। हम लोग बहुत दिन से परिचित है, पर न केवल दूर-दूर ही रहे है, लडे भी है। अब उसी भाति दोष का मार्जन हो तो उत्तम है।

जनजीवन को सयत, सस्कृत और समर्थ करना साहित्यकार का काम है। साहित्यकार ही जनजीवन का नेता और नियन्ता,है। साहित्यकार का अपना कोई देश नही, धर्म नही, जाति नही राष्ट्र नही और इनके प्रति उसका कोई कर्तव्य नही है। 'सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय' उसकी वृत्ति है। सत्य का स्वय दर्शन कर, शिव भाव मे ओतप्रोत हो, सौन्दर्य की रचना कर जन जीवन को उससे सम्पन्न करना उसका ध्रुव ध्येय है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए उसे सतत जन जीवन के प्रति उन्मुख रहना तथा साधक की भाति कूटस्थ रहना चाहिए।

जन जीवन के प्रति उन्मुख साहित्यकार के द्वारा प्रसादित 'साहित्य' ही समाज की रीढ की हड्डी है। उसी के बल पर समाज खडा होता है, चलता है, बढता है, प्रगति करता है।

आज का भारतीय साहित्यकार जन जीवन के प्रति उन्मुख नही है, विमुख है। अब तक चली आती हुई परम्पराओ ने परिस्थितियो ने, तथा आदर्शो ने उसे जन-जीवन से विमुख कर दिया है। ये साहित्य परम्पराए आधुनिकता का प्रतिनिधित्व नही करती, इससे आज के जन जीवन पर साहित्य का शासन नही है। आज का साहित्य जन जीवन पर आवेशित नही है। इसीसे आज का साहित्यकार एकाकी रह गया है।

परन्तु आज का भारतीय जन जीवन सद्य प्रसूत शिशु है, अबोध है, परापेक्षी है, असहाय है। वह राजनीति के निर्मम और कुटिल चरणो मे जा पडा है, जहा उसे प्रश्रय मिल सकता है–पोषण नही, शिक्षण भी नही। उसका विकास और सयम दोनो ही खतरे मे है। वह आवारा हो रहा है, इसीसे सारे देश मे इस सप्तवर्षीय शिशु मे आपाद अराजकता के लक्षण उदय हो रहे है। आज वह अपने ही मे उलझ रहा है, अपने ही मे असन्तुलित और असयत है। एक तरफ दायित्व का गुरुतर भार उस पर

[illegible] [illegible] सकता है।

[illegible] यह [illegible] काम है। [illegible] –

१-- 'साहित्य [illegible]' को स्थापना की जाय।

यह [illegible] सरकारी [illegible]।

२ —यह संस्था भारत [illegible] सरकार की [illegible] पर स्वीकार की जाय।

३ —सरकार [illegible] के आधार पर [illegible]।

४ [illegible] विभागों पर [illegible]—

(क) साहित्य

(ख) [illegible]

(ग) मनोरंजन

(घ) [illegible]

५ [illegible] विभागों [illegible]।

६ [illegible] जाय।

७ [illegible]।

८ [illegible]।

९ [illegible]।

१० [illegible]।

११- [illegible]।

१२ [illegible]।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तत्पश्चात् तीन दिन तक अनेक सदस्य यही रहेगे। इस बीच मे हम लोग टण्डनजी स मिल सकते हे। शिक्षा विभाग की काफी आलोचना मैने पालामेट म कर दी है।

१४ १२ १९५३ —विनीत, बनारसीदास

प्रिय बनारसीदासजी,

मे यह समझा हूँ कि आपको सरकारी सस्था का एक पुरजा बनने की आशा हे। उसका प्रलोभन आप नहीं त्याग सकते, इसीसे किसी नय आ दोलन मे हाथ डालने से डरते हे। नि स देह जसे आप ससद मे निष्क्रिय रह रहे हैं, वहा भी रहेंगे। यह दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि साहित्यकार तो अपनी रचना के नशे म झूम रह हैं और आप जसे साहित्यब धु अपना दृष्टिकोण बहुत ही क्षुद्र बनाए बठे हैं। देश भीतर से अराजक और बाहर स अरक्षित हो रहा है। हम साहित्यकार यदि महज गराबी और चण्डूबाजो की भाति नशे मे बसुध न रह तो कम से कम देश की भीतरी अराजकता को कम करके बहुत अशो तक अपनी सरकार के हाथ मजबूत कर सकते हैं, जो दिन दिन कमजोर और विपदग्रस्त होती जा रही हे।

फिलहाल आप मेरा वह नोट तो टण्डनजी के पास भेज दे। यदि एक मीटिंग आप हि दी भवन म बुला सके तो सूचित कर दे, वरना मै कुछ और सोचू। मेरा वह नोट टण्डनजी को भेजकर तथा मिलकर जो निर्णय हो, उसकी मुझे सूचना द।

१० १२ ५३ —चतुरसेन

प्रिय शास्त्रीजी, सादर प्रणाम।

आपके काड से प्रतीत हुआ कि आपके और मेरे दृष्टिकोणमे कुछ अ तर अवश्य है। उस छोटे से पत्र म आपने एक साथ कई इलजाम मुझ पर लगा दिए है—

१—आपको सरकारी सस्था का एक पुर्जा बनने की आशा है और उसका प्रलोभन आप नही त्याग सकते।

२—इसीसे किसी नये आन्दोलन मे हाथ डालने से डरते है।

३—आप अपना दृष्टिकोण बहुत ही क्षुद्र बनाए बठे हे।

मेरी समझ मे आपके ये आरोप गलत हे पर मे आपसे बहस नही करूँगा। उससे व्यर्थ ही कटुता उत्प न होगी। आप अपने रास्ते पर चलते रहे, म अपने पर। आखिर हम लोग कभी न कभी तो मिलेगे ही, क्योकि हम लोगो का लक्ष्य एक ही हे, यानी राष्ट्रभाषा को उसके अनुरूप गौरव प्रदान कराना। कृपया श्रद्धेय टण्डनजी को अपना नोट 'एक विस्तृत पत्र के साथ' आप स्वय ही भेजे। मैं कल उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ था, पर वहा के मातमपुर्सी के घोर दु खमय वातावरण मे इस विषय की चर्चा करना सवथा असगत होता। स्व० हरिहरनाथ शास्त्री उसी मकान मे रहते थे।

—विनीत, बनारसीदास चतुर्वेदी

१५ १२ ५३

आचार्यश्री का जीवन क्रम

१८९१ जन्म [illegible]

१८९२ [illegible]

१८९३ [illegible]

१८९४ [illegible]

१८९५ [illegible]

१८९६ [illegible]

१९०१ [illegible]

१९०६ पिताजी [illegible]

१९०७ पिताजी [illegible] गुरु [illegible] प्रतिभा [illegible] गुरु [illegible] प्रविष्ट, पं० [illegible] ([illegible]) [illegible]

१९०८ [illegible] गुरु [illegible]

१९०९ [illegible] गुरु [illegible] किया।

१९१० [illegible] जयपुर [illegible] पं० [illegible]

१९११ जयपुर में [illegible]

१९१२ जयपुर में, [illegible] और [illegible] प्रारम्भ किया [illegible]

१९१३ जयपुर [illegible]

१९१४ [illegible]

१९१५ [illegible] जयपुर [illegible] और [illegible]

१९१६ पं० [illegible] में आये [illegible]

१९१८ प्रोफेसरी छोडकर अजमेर चले गए और श्वसुरमह के साथ औषधालय म प्रेक्टिस करने लगे। यही तलवार चलाना भी सीखा।

१९१९ बहन कला की मृत्यु हुई। साघातिक रूप से मस्तिष्क ज्वर मे ग्रसित हुए।

१९२० दिसम्बर म अजमेर से बम्बई चले गए।

१९२१ बम्बई मे भद्र का सग्रहणी मे ग्रसित होना।

१९२३ १४ जून, ज्यष्ठ अमावस को पत्नी तारावती की मृत्यु। २३ जून को भद्र का विवाह। नवम्बर म प्रियम्वदा से द्वितीय विवाह।

१९२४ बम्बई से दिल्ली म आकर चिकित्सालय खोला और पुन दिल्ली मे रहने लगे।

१९२६ इलाहाबाद यूनीवर्सिटी मे हि दी विभाग द्वारा आयाजित कहानी सम्मलन की अध्यक्षता। दिल्ली मे 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना।

१९२७ राम नवमी (अप्रेल) को माता की दिल्ली मे मृत्यु।

१९२९ नवम्बर मे 'चाद' का फासी अक सम्पादित।

१९३० जून मे 'चाद' का मारवाडी अक सम्पादित। १२ नवम्बर, भद्रसेन की मृत्यु राजे द्र कालेज छपरा विद्यार्थियो के समक्ष 'वज्ञानिक दृष्टि से ब्रह्मचय' पर भाषण।

१९३१ गिरीडीह मे विश्वकर्मा ब्राह्मण महासभा छटे अधिवेशन की अध्यक्षता। लखनऊ म 'आरोग्यशास्त्र' छपाया। लगभग एक वष वहा रहे, चिकित्सालय भी खोला।

१९३२ दिल्ली लौटकर चादनी चौक, फव्वारा मे चिकित्सालय खोला।

१९३३ शाहदरा मे अपने निवास के लिए भूमि खरीदी। १८ अक्तूबर विजयादशमी को द्वितीय पत्नी प्रियम्वदा देवी की मृत्यु।

१९३४ दिल्ली मे हि दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। प्रेमच दजी भी आए थे। सम्मेलन मे 'समस्त सस्कृत साहित्य के हि दी प्रकाशन की योजना' का प्रस्ताव उपस्थित किया और वह पास हुआ। 'पराजित गाधी' का प्रकाशन और बम्बई काग्रेस अधिवेशन मे उसकी बिक्री से भारी हलचल। ३ मई, ज्ञान से तृतीय विवाह। ८ जून, पिताजी का निधन।

१९३५ अगस्त मे 'सुधा' के विशेषाक प्रवेशाक का सम्पादन। अलवर म सस्कृत-साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व।

१९३६ मगलाप्रसाद पारितोषक के निर्णायक बने।

१९३७ काकरोली महाराज का आतिथ्य।

१९३८ हरिद्वारा कुम्भ पर आलइडिया रेडियो की ओर से कुम्भ दशन पर पण्डित रामनाथ कालिया के साथ रिलेब्राडकास्ट।

[illegible]

[illegible] पर

[illegible] पर

[illegible], [illegible]

[illegible] राजकुमारों

[illegible]

[illegible] आर [illegible]

[illegible] पर [illegible]

[illegible], [illegible] पर [illegible]

[illegible], और [illegible]

और [illegible], [illegible]

[illegible], [illegible]

[illegible], [illegible]

[illegible] ७ [illegible], [illegible]

[illegible]

[illegible] पर [illegible]

[illegible] और [illegible]

[illegible], [illegible]

[illegible], [illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible] पर [illegible]

[illegible]

[illegible] ८ [illegible] पर

[illegible], [illegible],

[illegible] और [illegible] पर [illegible]

[illegible], [illegible] पर [illegible]

[illegible], [illegible]

[illegible]

[illegible] और [illegible] पर [illegible]

[illegible] पर [illegible],

[illegible], [illegible]

[illegible]

ताजमहल होटल वम्बई के प्रिंसेस चेम्बर मे जस्टिस नटवरलाल, हरीलाल भगवती की अध्यक्षता म काकरोली महाराज गोस्वामी श्री वृजभूषणलाल जी महाराज और उनकी धर्मसखी पुण्यदर्शना सुश्रीचन्द्रलता जी को सोमनाथ समर्पण समारोह ।

१९५५ १६ फरवरी, कमलागर्ग एम० ए० के साथ आलइण्डिया रेडियो पर 'वशाली की नगरवधू' पर चर्चा ब्राडकास्ट । २६ अगस्त को अपराह्न मे भारतीय छात्र सगम द्वारा ६५वे जन्मनक्षत्र पर अभिनन्दन तथा वयरक्षाम ग्रन्थ मुक्ति समारोह की अध्यक्षता लोकसभा के स्पीकर श्री अनन्तशयनम आयगर ने की । २६ सितम्बर सन्ध्या समय पुत्री ज्योत्स्ना का जन्म ।

१९५६ २६ जनवरी, श्री नीलकंठेश्वर कालेज खडवा की साहित्य सभा का उद्घाटन । फरवरी, गवर्नमेंट कालेज कोटा की साहित्य सभाके वादविवाद प्रतियोगिता का सभापतित्व, । ६ जून, भारत सरकार के शिक्षामन्त्री श्रीमाली से ११॥ बजे भेट ।

१९५७ जनवरी, 'शातिनिकेतन हिन्दी भवन' मे विद्यार्थियो के समक्ष भाषण, और प्रश्नो के उत्तर । १० नवम्बर, ईश्वरशरण आश्रम कालेज इलहाबाद मे भाषण । नवम्बर, दो बैलगाडियो के बीच मे आगए, उगली टढी हो गई, बाह मे फ्रेक्चर हो गया । अस्पताल मे फ्रेक्चर ठीक करके एक महीने तक प्लस्तर चढा रहा ।

१९५८ १७ दिसम्बर, सत तरणतारण ५११वी जयन्ती महोत्सव पर अध्यक्षीयभाषण ।

१९५९ दिसम्बर म आलइण्डिया राइटस का फ्रेंस मद्रास मे सम्मिलित होने गए और वहा से दक्षिण भारत यात्रा सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक की ।

१९६० १० जनवरी, दक्षिण यात्रा से घर लौट । १२ जनवरी को रोगाक्रान्त हो अरविन अस्पताल मे भरती हुए । २ फरवरी मध्याह्न १ ३५ पर महाप्रयाण ।

चतुरसेन साहित्य पर पुरस्कार

वैशाली की नगरवधू	१०००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५२
सोमनाथ	६००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५५
वयरक्षाम	६००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५७
गोली	५००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५७
हमारा शरीर	५००)	शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार	१९५८
हमारा शरीर (अग्रेजी अनुवाद)	५००)	शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार	१९५८
राधाकृष्ण	५००)	शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार	१९५८
हमारा शरीर	१००)	उत्तरप्रदेश सरकार	१९५८

चतुरसेन साहित्य की प्रकाशन-अनुक्रम सूची

१	ि ग्रा ी ातीपर ज रानी ुरी	(निब ध)	१९११
२	ाग िभाट	(उप याम)	१९१८
३	ारीर तानि ा	(ारीर विज्ञान)	१९१५
४	अपत्यावतरण	(चिकित्सा)	,,
५	हृदय ी परख	(उप याम)	१९१८
६	यभिचार	(समाज, चिकित्सा)	१९१८
७	अ तस्तल	(हिन्दी ा सवप्रथम गद्य ाव्य)	१९२१
८	सत्याग्रह और असहयोग	(राज ीति)	,,
९	सत्याग्रह और असहयोग	(गुजराती अ ुवाद)	१९२१
१०	हृदय ी परख (गुजराती अनुवाद)	(उप याम)	१९२४
११	ग ाम स देश	(गद्य ाव्य)	१९२५
१२	यभिचार	(गुजराती अनुवाद)	१९२६
१३	अ तस्तल	(मराठी अ ुवाद)	,,
१४	उत्सग	(ना क)	१९२८
१५	'चा द' ा तूफानी विशेषांक 'फांसी अंक'		,,
१६	पथ्यापथ्य	(चिकित्सा)	,,
१७	'चा द' ा सामाजिक विशेषांक 'मारवाड़ी अंक'		१९२९
१८	ि दू राष्ट्र ा नवनिर्माण	(समाज)	१९३०
१९	१९ ग ाम २०	(राजनीति)	,,
२०	ग्रतान	(कहानी संग्रह)	१९२१
२१	गा ग भा	(राजनीति)	,,
२२	ह्रदय ी प्यास	(उप याम)	,,
	म र ा पत्र	(अ ुवा)	१९३२
२४	ग ाग ा या	(उप याम)	,,
२५	आरोग्य शास्त्र	(स्वास्थ्य चिकित्सा)	,,
२६	ा ा ा मा ा	(स्वास्थ्य)	,,
२७	सभा ओर ा	(सामाजिक)	१९३३
२८	ग्रमाध्य ा रोग	(चिकित्सा)	,,

२६	पुत्र	(सामाजिक)	,,
३०	कन्यादपरा (हमारी पुत्रिया कमी हो)	(सामाजिक)	,,
३१	अजीतसिह	(,,)	,,
३२	रजकरा (बार्बाचिन)	(कहानी सग्रह)	१६३३
३३	अमर अभिलाषा (बहते आसू)	(उपन्याम)	,,
३४	आदर्श बालक	(कहानी सग्रह)	,,
३५	वीर बालक	(,,)	,,
३६	भारत मे ब्रिटिश राज्य	(इतिहास)	,,
३७	इस्लाम का विषवृक्ष (भारत मे इस्लाम)	(,,)	,,
३८	बुद्ध और बौद्धधम	(इतिहास)	,,
३	धम के नाम पर	(समाज)	,,
४०	गाधी की आधी (पराजित गाधी)	(राजनीति)	११३४
४१	अमरसिह	(नाटक)	,,
४२	आत्मदाह	(उप यास)	,
४३	राधाकृष्ण	(एकाकी)	,,
४४	वेद और उनका साहित्य	(धम)	१६३६
४५	प्राणदण्ड	(सम्पादित लेख)	,,
४६	स्त्रियो का ओज	(हिन्दी का सवप्रथम ध्व यात्मक एकाकी)	,,
४७	जवाहर	(गद्य काव्य)	,,
४८	राजपूत बच्चे	(कहानी सग्रह)	,,
४६	मेघनाद	(,,)	,,
५०	मुगल बादशाहो की अनोखी बातें	(कहानी मग्रह)	१६ ८
५१	सीताराम	,,	,,
५२	सिहगढ विजय	(कहानी सग्रह)	१६३६
५३	राजसिह	(नाटक)	,,
५४,	सुगम चिकित्सा	(चिकित्सा)	१६४०
५५	आरोग्य प्रवेशिका	,,	,,
५६	नीलमरिग	(उपन्यास)	,,
५७	श्रीराम	(नाटक)	,,
५८	वीरगाथा	(कहानी सग्रह)	,,
५६	कामकला के भेद	(स्वास्थ्य)	१६४२
६०	हिदी भाषा और साहित्य का इतिहास	(साहित्य)	१६४६

९३	अदल बदल	(,,)	,
९४	भारत के मुक्तिदाता	(चरित्र)	,,
९५	गाण्डीवदाह	(काव्य)	,,
९६	स्त्रियो के रोग और उनकी चिकित्सा	(स्वास्थ)	,
९७	कुमारिकाओ के गुप्त पत्र	(,,)	,,
९८	अविवाहितो के पेचीदा गुप्त पत्र	(,,)	,,
९९	छत्रसाल	(नाटक)	१९५४
१००,	सफेद कौवा	(कहानी)	,
१०१	राजा साहेब की पतलून	(कहानी सग्रह)	,,
१०२	कालि दी के कूल पर	(गद्य काव्य)	,,
१०३	अधेडावस्था का दाम्पत्य	(स्वास्थ्य विज्ञान)	,,
१०४	वृद्धावस्था के रोग	(,,)	,,
१०५	आप कसे भरपूर नीद सो सकते है	(स्वास्थ्य)	,,
१०६	बच्चे कसे पाले जाय	(,,)	,,
१०७	जीजी का रसोईघर	(,,)	,,
१०८	विवाहित जीवन का आनन्द	(स्वास्थ्य)	,,
१०९	पत्नी प्रदर्शिका	(,,)	,,
११०	आलमगीर	(उपन्यास)	,,
१११	आप अधिक सु दर कसे बन सकती है	(स्वास्थ्य)	१९५५
११२	क्षमा	(नाटक)	,,
११३	सोमनाथ	(उपन्यास)	,,
११४	वयंरक्षामः	(,,)	,,
११५	मेहनत, आराम और त दुरुस्ती	(प्रोढ शिक्षा)	,,
११६	मक्खिया	(,,)	,,
११७	तन्दुरुस्त रहो और बहुत दिन जिओ	(,,)	,,
११८	अच्छा खाओ अच्छा पीओ	(,,)	,,
११९	शरीर कपडे घर की सफाई	(,,)	,,
१२०	मौसमी बुखार मलेरिया	(,,)	,,
१२१	साफ हवा	(,,)	,
१२२	प्रकाश, हवा का आवागमन	(,,)	,,
१२३	छूत की बीमारिया और उनकी रोकथाम	(,,)	,,
१२४	तमाखू का गुलाम	(,,)	,,

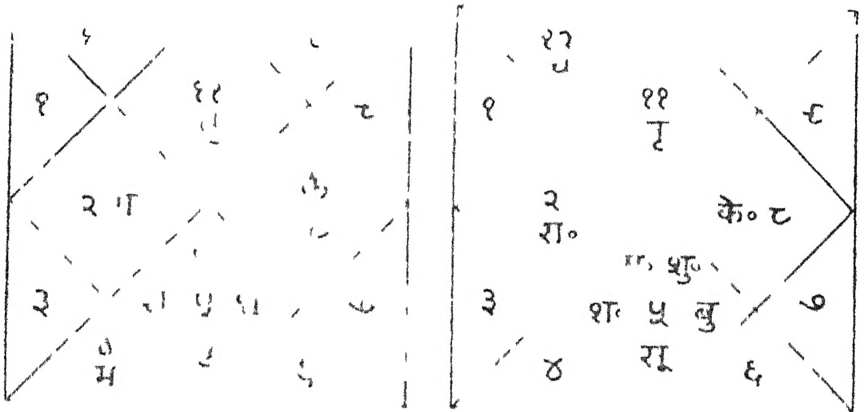
१२५ स्वाभाविक चिकित्सा	(,,)	,,
१२६ नरनाथ रंग वाली लो गुणीरत रजा गोर शराब	(,,)	,,
१२७ रोगाणो फनाना याव कीडे मकोडे	(,,)	,,
१२८ नागरिक जीवन	(,,)	,,
१२९ स्वागत्व नागन	(,,)	,,
१३० जिनाना	(,,)	,,
१३१ रोगा	(,,)	,,
१३२ मातृत्ना	(,,)	,,
१३३ ज़ुआ	(,,)	,,
१३४ पारद्र	(एकांकी रूपक)	
१३५ सत्यव्रत हरिश्चन्द्र	(,,)	,
१३६ नगर ग्राम रास	(उपन्यास)	,
१३७ व्रजभाषा पर मुगल प्रभाव	(साहित्य)	,,
१३८ सभ्यता के विकास की कहानी	(इतिहास)	,,
१३९ स्त्री सुबोध	(गार्हस्थ्य रचना)	,,
१४० गाण्डीवदाह	(काव्य)	,,
१४१ आदर्श भोजन	(श्री समाज शिक्षा)	१९
१४२ स्वास्थ्य रक्षा	(,,)	
१४३ नीरोग जीवन	(,)	
१४४ जो रुपया आपने कमाया, वह कहाँ गया	(,,)	,,
१४५ हमारा शरीर	(,,)	,,
१४६ बड़े आदमियों का बचपन	(,,)	,,
१४७ स्त्री और आदर्श	( )	,,
१४८ धर्मराज	(नाटक)	,,
१४९ स्मारक	(भाष्य, विविध)	,,
१५० भारतीय संस्कृति का इतिहास	(संस्कृति)	,,
१५१ गांधी	(उपन्यास)	,,
१५२ मेरी प्रिय कहानियाँ	(कहानी संग्रह)	१९
१५३ माता और बच्चा भाग १	(पारिवारिक सामाजिक उपन्यास)	,
१५४ ,, ,, भाग २	(,,)	,
१५५ ,, ,, भाग ३	(,,)	१९
१५६, सोमनाथ विध्वंस संस्करण	(,,)	

१५७	आभा	(सामाजिक उपन्यास)	,,
१५८	उदयास्त	(उपन्यास)	,,
१५९	लालपानी	(उपन्यास)	,,
१६०	बगुला के पख	(उपन्याम)	१९५९
१६१	खग्रास	(वज्ञानिक उपन्यास)	,,
१६२	सह्याद्रि की चट्टाने	(ऐतिहासिक उपन्यास)	,,
१६३	पत्थर युग के दो बुत	(सामाजिक उपन्यास)	१९६०
१६४	बिना चिराग का शहर	(ऐतिहासिक उपन्यास)	,,
१६५	सोना और खून	(ऐतिहासिक सामाजिक उपन्यास)	,,
१६६	मोती (मृत्यु उपरान्त अनुज चन्द्रसेन ने पूरा किया)	(उपन्याम)	,,
१६७	हरग निमन्त्रण (रक्त की प्याम का परिवर्द्धित रूप)	(उपन्याम)	,
१६८	पतिता	(कहानी मग्रह)	,
१६९	बाहर भीतर	(कहानी मग्रह)	,,
१७०	दुखवा मै कासे कहूँ	(,,)	,,
१७१	धरती और आसमान	(,,)	१९६१
१७२	मोया हुआ शहर	(,,)	,,
१७३	कहानी खत्म हो गई	(,,)	,,
१७४	भारतीय जीवन पर एक चिडिया की नजर	(,,)	,,
१	भारतीय इतिहास की झाको	(,,)	,,
१७६	अनमोल बोल	(,,)	,,
१७७	अष्ट मगल	(सस्कृत के ८ नाटको के एकाकीकरण)	१९६२
१७८	गान्धारी	(नाटक)	१९६३
१७९	शुभदा ('सोना और खून' का एक अश)	(सामाजिक उपन्याम)	,,
१८०	ईदो (मृत्यु उपरान्त अनुज चन्द्रमेन ने पूरा किया)	(उपन्यास)	,
१८१	श्रीराम (श्रीराम, उत्सग जुआ)	(नाटक)	,,
१८२	आय सस्कृति के पद चिन्ह	(सास्कृतिक उपन्यास)	,,
१८३	कीमिया	(रसायन)	,,
१८४	बुद्ध पूव भारत की सस्कृति	(सास्कृतिक)	,,
१८५	आहार और जीवन	(स्वास्थ्य)	,
१८६	मेरी आत्मकहानी (मृत्यु उपरान्त अनुज चन्द्रसेन ने पूरा की)		,,

[illegible]

[illegible]

[illegible]



[illegible]		गुजराती अनुवाद
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
४, मोती	१०	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]

चतुरसेन साहित्य समिति की सेवाएं

१—समस्त चतुरसेन साहित्य का सग्रह ।

२—पाठको को समस्त चतुरसेन साहित्य की एक ही स्थान से उपलब्धि ।

३—चतुरसेन साहित्य के सम्बन्ध मे सब प्रकार की जानकारी और सूचना ।

४—चतुरसेन साहित्य के प्रकाशित और उपलब्ध साहित्य का प्रसार और बिक्री ।

५—चतुरसेनसाहित्य के अप्रकाशित साहित्य की खोज, अनुसधान और प्रकाशन ।

६—प्रकाशको द्वारा चतुरसेन साहित्य के त्याज्य और विमुख साहित्य का पुनर्प्रकाशन, और पाठको के उससे वचित रहने की समाप्ति ।

७—एम० ए० के हिन्दी छात्रो को चतुरसेन-छात्रवृत्ति का प्रदान ।

८—ज्ञानधाम मे 'चतुरसेन हॉल' का निर्माण तथा देश-विदेश के साहित्यकारो का उसमे आतिथ्य और उन्हे भारतीय साहित्य सस्कृति की उपलब्धि ।

चन्द्रसेन मन्त्री

चतुरसेन साहित्य समिति

ज्ञानधाम, शाहदरा दिल्ली-३२

चतुरसेन साहित्य समिति के

आगामी महान ग्रन्थ

[illegible]

[illegible]

आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य

लेखक

डाक्टर शुभकार कपूर एम०ए०पी०एच०डी०

सोना और खून, भाग ५, ६, ७, ८

लेखक द्वय

चन्द्रसेन, डा० शुभकार कपूर एम० ए०

मेरी आत्मकहानी

के आगामी संस्करण में सम्मिलित करने के लिए आचार्यश्री के संस्मरण, पत्र, भेंट, विवरण घटना क्रम आदि अपनी अमूल्य सम्मति भेजिए।